



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री
सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

जिन्वाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19-03-1971

* मुनिदीक्षा-11-05-1989

* आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संग्रह के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)



संस्कृत नाट्यकोश

लेखक
डॉक्टर रामसागर त्रिपाठी

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रिन्टान
दिल्ली - 110 007

(परम्परानायक)



(द्वितीय पट्टाधीश)



परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरामणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपस्वर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मत्तिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें। मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

॥श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

६९

संस्कृत-नाट्य-कोश

(प्रथम खण्डः नाटक-कोश)

लेखक

डा. रामसागर त्रिपाठी



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८, यू.ए. बगलो रोड, जवाहर नगर

दिल्ली-११०००७

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

३८ यू.ए., जवाहर नगर, बगलो रोड

पो.बा. नं. २११३, दिल्ली-११०००७ दूरभाष २३६३९१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९९४

मूल्य ४००-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो.बा. नं. ११२९, वाराणसी २२१००१ दूरभाष ३३३४३१

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो.बा. नं. १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष ३२०४०४

लेजर टाइपसेटिंग

स्क्रिप्टान्स

ऋ.यू.यू. २७० ए., उत्तरी पौलमपुरा

दिल्ली ११००३

मुद्रक

ए.के. लिथोग्राफर, टैगोर गार्डन, नई दिल्ली

THE

VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA

69

SANSKRIT NĀṬYA KOSHA

(VOL. I : NĀṬAKA KOSHA*)

By

DR. RAMSAGAR TRIPATHI



CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

38, UA , Bungalow Road, Jawaharnagar,

DFLHI 110007

© CHAUKHAMBHA SANSKRIT PRATISHTHAN

(Oriental Publishers & Distributors)

38, U A., BUNGALOW ROAD, JAWAHARNAGAR,

DELHI 110 007



First Edition 1994

Also can be had of

CHAUKHAMBHA SURBHARATI PRAKASHAN

K. 37/117, Gopal Mandir Lane

Post Box No 1129

VARANASI 221001

Telephone 333431

Sole Distributors

CHOWKHAMBHA VIDYABHAWAN

Chowk (Behind the Banaras State Bank Building),

Post Box No 1069

VARANASI - 221001

Telephone . 320404

समर्पण

डा. मगेन्द्र के चरणों में
जिनके वदान्य आशीर्वाद ने मुझ जैसे परशत
लेखको को साहित्य-साधना में प्रवृत्त किया है।

संकेताक्षर

अनु	—	—	अनुवाद/अनुवादक
इति पा	—	—	इतिहास पात्र
ना अनुका	—	—	नाट्य अनुवादकार
ना अभि	—	—	नाट्य अभिनेता
ना आ	—	—	नाट्य आश्रय
ना उप	—	—	नाट्य उपजीव्य
ना उप	—	—	नाट्य उपयोगीपात्र
नाका आदा	—	—	नाट्यकार आश्रयदाता
नाका स	—	—	नाट्यकार सम्बन्धी
नाकृ	—	—	नाट्यकृति
नाकृ स	—	—	नाट्यकृति सबलित
नाट्यी का	—	—	नाट्य टीकाकार
नातयो	—	—	नाट्यतत्त्व योजक
नाद	—	—	नाट्यदर्पण
नापा	—	—	नाट्यपात्र
नाप्रश्न सू	—	—	नाट्यप्रयोजक ऋकसूक्त
नाप्र भा	—	—	नाट्यप्रसारभाषा
नाव	—	—	नाट्यवस्तु
नावि	—	—	नाट्यविधा
नास	—	—	नाट्य सग्रह
नासा	—	—	नाट्य साहित्य
नासापा	—	—	नाट्य सामान्य पात्र
नासास	—	—	नाट्य साहित्य सक्लन
नास्थ	—	—	नाट्यस्थल
वेसा	—	—	वेद साहित्य
वेसू	—	—	वेद सूक्त
शिषू	—	—	शिगभूपाल
शृप्र	—	—	शृङ्गार प्रकाश
स	—	—	सन् (ईसवी)
स	—	—	सबत्/सख्या
साका	—	—	साहित्यकार
साना पा	—	—	सामान्य नाट्यपात्र

अपनी बात

बात १०-१२ वर्ष पुरानी है डा नामवर सिंह के निर्देश पर भरत के नाट्य शास्त्र पर कार्य करने के लिये एक परियोजना बनाई गई थी और उसके लिये यूजीसी ने अनुदान देना भी स्वीकार कर लिया था। किन्तु बाद में अधिक आयु के व्यक्ति को इतनी बड़ी योजना प्रारम्भ करना उचित नहीं समझा गया और वह स्वीकृति वापस ले ली गई। अनुदान की स्वीकृति की सूचना मिल जाने पर प्रारम्भिक तैयारी के रूप में वर्णानुक्रम से कुछ सामग्री सङ्कलित कर ली गई। किन्तु योजना के अस्वीकृत हो जाने पर उस कार्य को आगे नहीं बढ़ाया जा सका। वह सारी सामग्री उपेक्षित पड़ी रही। पिछले वर्ष कुछ मित्रों के परामर्श से उस अधूरे कार्य को पुनः हाथ में लिया गया और निश्चय किया गया कि उसे कोश ग्रन्थ के रूप में सम्पादित कर प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जाय। समस्त कार्य को एक साथ पूरा करने में अधिक विलम्ब और फलतः उसके बीच में ही रुक जाने की सम्भावना थी। अतः निश्चय किया गया कि सम्पूर्ण कार्य को तीन खण्डों में प्रकाशित किया जाय- (१) संस्कृत नाटक परक, (२) नाट्य शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली और (३) नाट्यशास्त्रोपयोगी उपरजक कलायें। इसी योजना के आधीन साहित्य मर्मज्ञों की सेवा में प्रथम खण्ड प्रस्तुत करते हुये सकलनकर्ता (लेखक) प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। दूसरे खण्ड की भी तत्कालीन सकलित लगभग २० प्रतिशत सामग्री विद्यमान है। यदि परमपिता ने अवसर और सुयोग प्रदान किया तो लेखक दूसरे खण्ड को लेकर भी साहित्यज्ञ समाज के सम्मुख उपस्थित होने का प्रयत्न करेगा ऐसी आशा है।

संस्कृत साहित्य का प्रभावो विस्तार हजारों वर्षों की सीमावधि में फैला हुआ है जिसके संरक्षण की प्राचीन काल में कोई व्यवस्था नहीं रही। हजारों की संख्या में प्राचीन पुस्तकों की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ राजघरानों के पुस्तकालयों में भरी पड़ी हैं। उन्हें व्यवस्था देना श्रमसाध्य कार्य है। पारचात्य विद्वानों और उनके पदचिह्नों पर चलने वाले कतिपय भारतीय अनुसन्धाताओं ने इस दिशा में कुछ कार्य किया है। किन्तु फिर भी अनेकशः निश्चयात्मकता का अभाव बना हुआ है। कवियों और कलाकारों का व्यक्तित्व, उनका समय, उनकी कृतियों का विस्तार आदि सभी कुछ अतीत के गर्भ में वितीन हो गया है। कहीं केवल पुस्तकों का नाम शेष रह गया है; कहीं पुस्तकें तो मिलती हैं किन्तु उनके लेखक का पता नहीं। कहीं अधूरे पुस्तकें मिलती हैं। जो साहित्य उपलब्ध भी है उनके अधिकार लेखकों का समय निश्चित नहीं है। सभी कुछ अनुसन्धान सापेक्ष है। अनेकशः वास्तविकता के निकट पहुँचने के लिये कल्पना और सम्भावना का सहाय लेना

पड़ता है। सारक्षण की व्यवस्था बन जाने के कारण आधुनिक कृतियों के विषय में ऐसी सन्देह की स्थिति नहीं के बराबर है। प्रस्तुत कृति में सस्कृत नाटकों के विषय में जो भी सामग्री सुलभ है उसका सकलन कर दिया गया है। जो रचनायें साहित्य जगत में प्रतिष्ठित हो चुकी हैं उनका कुछ अधिक विस्तृत परिचय दिया गया है और उनके प्रमुख पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का भी यथास्थान सक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। परिशिष्ट में रचनाओं की रचना एवं प्रस्तुतीकरण प्रक्रिया एवं भूमिका में सामान्य सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत कृति के प्रस्तुतीकरण में लेखक को प्रशस्त सहयोगी डा अशोक गागुली एवं डा पीसी जैन से प्रोत्साहन के साथ साहित्य सामग्री की भी सुविधा प्राप्त हुई है। डा हरदयाल ने परामर्श से लेखक को कृतार्थ किया है। लेखक अन्तस्तल से इन अकारण बन्धुओं का अभारी है। समय समय पर प्रतिवेशी डा विद्याभूषण भरद्वाज एवं उनकी पत्नी डा स्वर्ण कान्ता के साथ विचार विमर्श हुआ है। पौत्री कु ज्योति त्रिपाठी से भी यत्किञ्चित् सहायता प्राप्त हुई है। ये सभी व्यक्ति लेखक के धन्यवाद के नहीं आशीर्वाद के अधिकारी हैं। प्रकाशन की त्वरा के लिये चौखम्बा सस्कृत प्रतिष्ठान के अधिकारी श्री वल्लभ देव भी प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हैं। लेखक आशा करता है कि सस्कृत नाटक साहित्य के जिज्ञासु इससे कुछ सन्तोष लाभ अवश्य कर सकेंगे।

- रासा त्रिपाठी

भूमिका

संगीत, नृत्य, कहानी, अभिनय, नाट्य का उदय मानव की जन्मजात प्रवृत्ति से ही होता है। किसी भी भावनाप्रवण कविता को सस्वर पढ़ना और सुनना ही पसन्द किया जाता है, जब कोई मनोवाञ्छित सूचना मिलती है या घटना सामने आती है और मन किसी भावना से भर जाता है तब पैर स्वतः धिक्क उठते हैं, कहानी का कहा और सुना जाना मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। बचपन से लेकर परिणत आयुपर्यन्त प्रत्येक व्यक्ति कहानी कहने और सुनाने में आनन्द लेता है। जब कोई व्यक्ति किसी प्रकार ऐसी घटना को सुनाता है जिसका उसकी भावना पर प्रभाव पड़ा है और वह सुनने वालों पर वही प्रभाव डालना चाहता है तब उसके हाथ पैर नेत्र इत्यादि अंग स्वतः अभिनय में प्रवृत्त हो जाते हैं। ऐसी घटना सुनाने वाला कहने वाले को आवाज बनाकर उसकी नकल करता है। कहने वाले ने जो हाथ के इशारे किये होंगे, जिस प्रकार वह चला होगा इस सबकी नकल करेगा। जिन शब्दों का उसने प्रयोग किया होगा उन्हीं का सुनाने वाला अनुकरण करेगा। आशय यह है कि अनुकरण अथवा अभिनय मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। ये सभी एकाकी तत्त्व सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले तत्त्व हैं जो आनन्द साधना में कारण होते हैं। नाट्य इन सबका संघात है। यह दृश्य और श्रव्य दोनों रूपों में आनन्द की सृष्टि करता है। समस्त ललितकलाओं में काव्य मूर्धन्य माना जाता है। काव्य में भी नाट्य का अधिक महत्व है। वामन ने कहा है- 'सन्दर्भों में दशरूपक (नाटक इत्यादि) श्रेष्ठ हैं, क्योंकि सभी गुणों से परिपूर्ण होने से वहाँ (नाटक इत्यादि) चित्रपट के समान विचित्र रूप वाला है।' पाश्चात्य विद्वान् मोस ने भी कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार 'पिछड़ी जाति की प्रत्येक कहानी एक नाटक होती है, क्योंकि कहानी कहने वाला साधारण रूप में कहानी सुनाकर ही सन्तुष्ट नहीं होता, किन्तु वह अगसञ्चालन, भावव्यञ्जक स्वरालय इत्यादि से बाणी को नवीनता देकर अपने वर्णन में जीवन का सञ्चार करना चाहता है। वह घटना को नाटक बना देता है। बच्चे और अशिक्षित व्यक्ति भी इस स्थिति में नहीं होते कि किसी भावना को बिना उस प्रकार की आकृति बनाये और उसी प्रकार की चेष्टायें किये व्यक्त कर सकें।' इस प्रकार सभी प्रकार की कविता का मूल उद्गम नाट्यकता से ही होता है। एक अमेरिकन विद्वान ने विभिन्न राष्ट्रों के प्रगीतों का अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला था और स्पष्ट किया था कि सभी प्रगीतों का वाचन मौलिक रूप में सर्वदा संगीत और नाटकीय नृत्य से समन्वित होता है। अतः यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि, लोकप्रिय नाटक का विकास सर्वदा संगीत और नृत्य से होता है। गोटेस्कल ने

कहा है कि नाटक कविता की कली है प्रगीत और कथा साहित्य का मेल है, वास्तविक घटना की सतत गतिमान प्रफुल्लता है जो आने वाली पीढ़ी की भावना के मेल में स्वयं को विकसित कर लेती है।¹

भारतीय नाटक साहित्य का सीमा विस्तार

भारतीय साहित्य का ही नहीं विश्व साहित्य का सर्वप्राचीन काव्यसकलन ऋग्वेद माना जाता है। जैसा कि ठक्कर विवेचन से सिद्ध है कि प्रत्येक प्रगीत नाट्यमूलक या नाट्यपर्यवसायी होता है। अतः नाटक साहित्य का भी ठहूर ऋग्वेद से ही माना जाता है। उस समय से लेकर आज तक अप्रतिहतगति से संस्कृत नाटकों की रचना हो रही है। इस प्रकार नाटक साहित्य का परिणाह सैकड़ों नहीं हजारों वर्षों की कालावधि में व्याप्त है। सुविधापूर्वक इस नाटक साहित्य परम्परा को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है— (१) आदिकाल— वैदिक युग से ईसवी सन् के प्रारम्भ तक (२) मध्यकाल— ईसवी सन् के प्रारम्भ से १९ वीं शताब्दी के अन्त तक और (३) आधुनिक काल— बीसवीं शताब्दी।

आदिकाल अथवा अन्ययुग

इस काल की कोई पूर्ण नाट्यकृति प्राप्त नहीं होती। ऐसा स्वाभाविक भी है। जैसाकि मैक्समूलर ने कहा है भारतीय और यूनानियों की मनोवृत्तियाँ विरोधी दिशाओं में जाने वाली थीं। भारतीय लोग जीवन को असार असत्य मानते थे तथा जीवन का उनका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना था जबकि यूनानी लोग जीवन को पूर्ण सत्य मानते थे और भौतिक उन्नति को सर्वाधिक महत्व देते थे। यही कारण है भारतीय भावुक कवि समाज अपनी रचनाओं के साथ अपना नाम सुरक्षित रखने के लिये उत्सुक नहीं था। उसे केवल अपनी रचना को सुरक्षित रखने की चिन्ता थी। अतः वह अपनी रचनाओं को समाज में महत्ता प्राप्त महान लेखकों के नाम से प्रसिद्ध करता था जिनके लिये उसका विश्वास था कि उसकी रचना प्रतिष्ठित रहेगी और चलती भी रहेगी। यही कारण है कि वेदव्यास के नाम पर चार वेद सभी पुराण उपपुराण आदि अनेक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। यह साहित्यपरिचय इतनी विराल है कि एक व्यक्ति की जीवन साधना तो हो ही नहीं सकती किसी एक युग में भी इतना साहित्य लिखा नहीं जा सकता। इसका आशय यह नहीं है कि यह साहित्य ठच्चकोटि का नहीं है। इस विषय में मैकडानलस का यह कहना महत्वपूर्ण है कि किसी भी पारवात्यसाहित्य में किसी एक विषय में १० अच्छी कविताएँ संकलित करना बठिन हो जायेगा जबकि वैदिक साहित्य में उपा इत्यादि किसी भी प्राकृतिक तत्व के विषय में बात की बात में ५०० ठच्चकोटि की कविताओं को संकलित कर देना एक साधारण सी बात होगी। वेदों की ठच्चकोटि की रचनाओं पर सारा साहित्यसमाज मन्त्रमुग्ध है यहाँ तक कि पारवात्य विचारकों को वेदों की इतनी प्राचीनता पर भी सन्देह

होने लगा है। इन लोगों का कहना है कि सहृदयता और भावुकता से ओतप्रोत भारतीयमानस वेदों की रचना के बाद हजारों वर्ष मौन रह ही नहीं सकता था। निश्चित ही यह रचना उतनी पुरानी नहीं हो सकती जितनी की भारत में समझी जाती है। आशय यह है कि उस काल में नाटक के क्षेत्र में कितना साहित्य लिखा गया था इसका निश्चयात्मक उत्तर देने का साहित्य जगत के पास कोई साधन नहीं है।

भारत में समस्त ज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन इत्यादि का मूलस्रोत वेद माना जाता है। जिस प्रकार हम अनेक प्रचीन उपाख्यानों का मूल वेद में तलाश करते हैं और पुराणों, बौद्धों, जैनों के अनेक कथानकों का सातत्य वहीं से स्वीकार करते हैं उसी प्रकार नाटकों का मूल भी वेदों में ही होना चाहिए। वेदों को सहिता कहा गया है जिसका अर्थ होता है सकलन। ज्ञात होता है वेद में विखरी हुई ललित काव्यराशि का सकलन किया गया है। सकलन का स्वभाव होता है कि छाटकर अच्छे भाग को सकलित कर दिया जाता है और साधारण भाग की उपेक्षा कर दी जाती है। वेदों में जो अनेक सवाद सूक्त पाये गये हैं उनके विषय में कल्पना की गई है कि ये वस्तुतः किसी नाटक के अंग होंगे जिनमें पद्यों और गीतों के साथ गद्य भी समाविष्ट रहा होगा। सकलन कर्ता ने गद्य भाग छोड़ दिया, केवल पद्यों का सकलन कर दिया। सम्भवतः ये सूक्त किसी नाटक का अंग रहे होंगे।^१ यह स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। इसे हम आज के सन्दर्भ में भली भाँति समझ सकते हैं। टेलीविजन के चित्रहार में विभिन्न फिल्मों के सकलित भाग दिखलाये जाते हैं जिनमें गद्य की प्रायः उपेक्षा ही की जाती है, केवल पद्य भाग का सकलन किया जाता है। ओल्डेन वर्ग की सम्मति में आख्यानक सूक्तों की व्याख्या गद्यपद्यात्मक कथानक की ओर लौटकर ही उस कथानक के प्रकाश में ही की जा सकती है सकलन में जिसका पद्यभाग ही हम तक पहुँचा है और उस पद्य के आधार पर ही पूरे कथानक का उन्नयन करना पड़ता है। इस प्रकार के कथानक कुछ तो ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं, पुराणों, जैन साहित्य और बौद्ध साहित्य में कभी कभी इन प्रगीत सूक्तों की पृष्ठभूमि प्राप्त हो जाती है। एसलेवी, जे हलेंट और वाना एलवी श्रोडर के मत में ये सवाद सूक्त प्रगीत कमोवेश पूर्ण नाटक हैं।^२ विष्टनित्ज का कहना है कि हो सकता है ये सवादसूक्त वास्तविक पूर्ण नाटक न हों फिर भी ये आदिकालीन मानव के अविकसित प्रारम्भिक नाटक हों। वास्तव में ये आख्यान सूक्त हैं और उन्हें आदिमानव के नाटक या प्रगीत काव्यमात्र कहा जा सकता है। पुरुरवा ऋषी सूक्त की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में आये तत्सवद्ध कथानक के परिशिष्ट रूप में ही की जा सकती है।

ऋग्वेद के सवादसूक्तों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उनमें पुरुरवा ऋषी सूक्त शृङ्गार रसात्मक रचना है, यमयमी सूक्त शृङ्गारसाभासव्यञ्जक रचना है। सरमापणि सूक्त

१. (दे. विष्टनित्ज का हिंदी आक इण्डियन लिटरेचर भाग ३ पृ. १८०)

२. (वही पृ. १८०)

कूटनीति परक है, अग्नि के खेद, विवाद, मनोरंजन इत्यादि अनेक भावनाओं का इनमें समावेश है। ऋग्वेद के इन सूक्तों के अनुकरण पर ही बाद में अथर्ववेद में भी (५११) पर एक सवादसूक्त आया है। वैदिक युग के समाप्त होने के समीप भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं जिनमें गद्य के अन्दर इस प्रकार के पद्यखण्ड जोड़ दिये गये हैं। गद्य और पद्य की भाषा में भेद है। पद्य की भाषा ऋग्वेद की परवर्ती भाषा से मिलती जुलती है। इस प्रकार के परवर्ती सूक्तों में ब्राह्मण ग्रन्थों में सुपर्णाध्याय आता है जिसमें महाभारत में आई हुई कद्रु, विनता और गरुड की कथा का प्रतिरूप पाया जाता है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में शुन शेष की कथा आती है। निरुक्त एव उपनिषदों में भी कई छोटे छोटे कथानक मिलते हैं। निरुक्त में वैदिक सूक्तों के सन्दर्भ में इस प्रकार के कथानक दिये गये हैं।

यदि यह कल्पना सही मानी जाय कि अनेक सूक्त नाटक रचनाओं से संकलित किये गये हैं तो उसके लिये सवाद सूक्तों तक सीमित रहना ही उचित नहीं होगा। अनेक अन्य सूक्तों की भी इसी प्रकार की व्याख्या की जा सकती है जिनमें उच्चकोटि की कविता और पारिवारिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। उषा अनेक रूपों में हमारे सामने आती है। यह घौ की चमकीली कन्या एव काली रात्रि की प्रभाशालिनी बहन है। यह अपने प्रेमी के प्रकाश से प्रकाशित होती है। सूर्य उसके पीछे से उसके मार्ग पर प्रकाश रश्मियाँ विकीर्ण करता है और उसके पीछे इसी प्रकार चलता है जैसे एक तरुण पुरुष किसी तरुणी के पीछे उसका पदानुसरण करता है। वह एक नर्तकी है जो शङ्कर कर पूर्व में आकर खड़ी होती है और अपने स्तनों का प्रदर्शन करती है। विवाह विषयक सूक्त सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश डालता है। चन्द्रमा सूर्य की पुत्री सूर्या का प्रेमी है। सूर्या स्वयं चन्द्रमा को पति रूप में चाहती है। विवाह का प्रस्ताव लेकर अश्विन पिता सूर्य के पास जाते हैं। सूर्य उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं और पुत्री को उसके चाहे हुये पति के घर भेज देते हैं। उसको से जाने के लिये दो पहियों वाली गाड़ी पुष्पो से सजाई जाती है। विवाह विधि में यज्ञाग्नि के चारों ओर पश्चिमा की जाती है। तब घरयात्रा पर आशीर्वादों में आशंसा की जाती है और यह आकांक्षा व्यक्त की जाती है कि नवविवाहित दम्पति बहुत अधिक सन्तान प्राप्त करें, सम्पन्नता, दीर्घजीवन और रोगों से निर्मुक्ति का आनन्द लें। तब वधू का हाथ वर के हाथ में दिया जाता है। वर वधू का हाथ पकड़ते हुये कहता है—

गृष्णामि ते सौभाग्याय हस्तं मया पत्याजरदृष्टिर्यथास ।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्य त्वादुर्गार्हपत्याय देवा ॥

[हम तुम्हारा हाथ पकड़ रहे हैं जिसमें हमें अच्छा सौभाग्य प्राप्त हो। मुझ पति के साथ तुम वृद्धावस्था प्राप्त करो, भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि इन सब देवताओं द्वारा मेरे घर में भाग लेने के लिये तुम मुझे भ्रदान की गई हो।]

इसके बाद प्रदान करने के लिये (कन्यादान करने के लिये) अग्निदेव को बुलाया जाता है— 'हे अग्निदेव प्रकाशमान सूर्या को पहले उन लोगों ने वधू समूह के साथ तुम्हारे सम्मुख उपस्थित किया, इसलिये अपनी बारी में पति को पत्नी प्रदान करो और साथ ही उसे सन्तति परम्परा का आशीर्वाद दो ।'

इसके बाद विदा और पति के घर में प्रवेश का अवसर आता है— 'यहीं रहो, वियुक्त मत हो, विस्तार कर और अपने पुत्रों पौत्रों के साथ खेलते हुये अपने ही घर में आनन्द भोगते हुये जीवन को दिये हुये पूरे विस्तार को प्राप्त करो ।'

उषा की बहन निशा भी एक महत्वपूर्ण युवती है। उषा को सूर्य चमकाता है। किन्तु निशा नक्षत्रों से अपना शङ्कार स्वयं करती है। वह सूर्य के अदृश्य हो जाने पर स्वयं को सजाती है और अपने पास से उषा को भगा देती है। अदिति देवताओं की मा है। उसका पुत्र शक्तिशाली वरुण है। वरुण की भाति ही उसमें भी शारीरिक यन्त्रणाओं और नैतिक अपराधों से छुटकारा देने की शक्ति है। वह मा जो ठहरो। सरस्वती भी उच्च देवियों में एक है।

पारिवारिक जीवन के अतिरिक्त सामाजिक राजनैतिक और युद्ध सम्बन्धी सूक्त भी पाये जाते हैं। राजनैतिक और युद्ध सम्बन्धी सूक्तों में वीर रस की प्रधानता है। सरमापणि सवाद कूटनीति विषयक हैं। यह पणिनामक असुरों द्वारा अपहृत गायों के विवाद को लेकर इन्द्र को दूती सरमा और पणियों के बीच हुआ है। कवीलों के जातीय सघर्ष की छाया भी ऋग्वेद के सूक्तों में पाई जाती है। पांच जातियाँ— पुरु, तुर्वश, यदु, अनु और द्रुह्य निरन्तर जातीय सघर्ष में लिप्त रहती थीं। इनका प्राय वर्णन इस रूप में किया गया है कि इनमें चार जातियों ने त्रित्सुओं के राजा सुदास के प्रतिकूल सगठन बना लिया था और अन्य कुलों के कतिपय अन्य राजाओं का सहयोग लेकर १० राजाओं ने परुष्णी नदी के तट पर महायुद्ध लड़ा था। परुष्णी नदी की धारा को पार करने और उसमें अवरोध उत्पन्न करने के प्रयत्न में त्रित्सुओं ने दस राजाओं की सगठित सैन्यशक्ति को पराजित कर दिया था, उन्हें पीछे ढकेल दिया था। इस युद्ध में त्रित्सुओं ने १० राजाओं की सगठित सैन्य शक्ति का महाविनाश किया था।

पुरुजाति सरस्वती के तट पर रहती थी। ऋग्वेद में उनके राजा वसदस्यु का उल्लेख किया गया है जो पुरुकुत्स के पुत्र थे। ऋग्वेद में उनके शक्तिशाली राजकुमार तुक्षी का उल्लेख किया गया है। तुर्वश लोगों के साथ यदु भी सम्मिलित थे। अनु लोग परुष्णी के तट पर रहते थे। ज्ञात होता है कि कण्व लोगों का पुरोहितों का परिवार तुर्वश से सम्बद्ध था और भृगुओं का परिवार अनुजाति वालों का पुरोहित था। उन लोगों का निकटवर्ती सम्बन्ध द्रुह्य लोगों से भी था। ऋग्वेद में मत्स्य जाति का भी उल्लेख किया गया है। त्रित्सु लोगों के शत्रुओं में उनका भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के अनुसार मत्स्य लोग यमुना के तट पर रहते थे।

सुदास के शत्रुओं में सर्वधिक शक्तिशाली भरत लोग थे। विश्वामित्र ने अपनी प्रार्थनाओं से विपाशा नदी के जल में त्रित्सुओं द्वारा उतारने योग्य बाँध बना दिया था। बाद में त्रित्सुओं के सहायक पुरोहित वशिष्ठ हो गये और भरत लोगों का साथ विश्वामित्र ने दिया। इसी प्रसंग में वशिष्ठ और विश्वामित्र एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन गये। युद्ध में वशिष्ठ की मन्त्रणा से सरक्षित त्रित्सु लोग विजयी हुये थे। विश्वामित्र के पूर्वज कुशिक भरतों से निकट रूप में संबद्ध थे। भरतों का यही प्रदेश बह्मवर्त और कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दस राजाओं के संगठन ने पृथ्वी को पश्चिम की ओर से पार करने का प्रयत्न किया था जिसको त्रित्सुराज सुदास ने ५ राजाओं के सहयोग से रोक रखा था। सुदास के सहयोगियों का उल्लेख नहीं किया गया है। सम्भवतः सृज्य उनके सहयोगी थे। ऋग्वेद में पाञ्चालों का उल्लेख नहीं है। कुरुओं का भी प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं पाया जाता। महाभारत का युद्ध कुरु पाञ्चाल युद्ध ही कहा जाता है। ये दोनों जातियाँ अत्यन्त प्रतिष्ठित हैं। इन जातियों का उत्थान बाद में हुआ। ऋग्वेद की महत्वपूर्ण जातियाँ त्रित्सु, तुर्वश इत्यादि बाद में लुप्त हो गईं। ऋग्वेद काल की कई जातियाँ या तो दूसरे नाम से प्रसिद्ध हो गईं या उनका समावेश दूसरी जातियों में हो गया। ऋग्वेद में भरत और कुरु पृथग्वी जातिभा जो महाभारत काल तक आते आते एक हो गईं और उनके नाम पर ही कुरुराज्य की स्थापना हुई। यह भी असम्भव नहीं है कि त्रित्सुओं का विलीन भी कुरुराज्य में हो गया हो। पाञ्चाल का निर्माण भी अनेक जातियों के मिलन से बना था। पाञ्चाल का अर्थ ही है ५ जातियों के मेल से बनी जाति। वैदिककाल की कुछ जातियाँ महाभारत काल तक स्वतन्त्र सत्ता बनाये रहीं जिनमें उशीनर सृज्य, मत्स्य और घेदि प्रमुख हैं। महाभारत काल तक यदु जाति यादव रूप में अपनी सत्ता बनाये रही जिसमें कृष्ण का अवतार हुआ था।^१

ऋग्वेद में जातीय संपर्कों का उल्लेख किया गया है। यदि विचारकों के इस कथन में सत्य का अंश है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्त नाटकों के गीतों से लिये गये हैं तो हो सकता है कि क्षेत्र की और इस काल की कतिपय नाट्यकृतियाँ विद्यमान रही हों जिनमें आये हुये गीतों का सूक्तों के रूप में इस सकलन में समावेश कर दिया गया हो। विष्णुनिबन्ध ने स्वीकार किया है कि अन्य देशों की भाँति भारत में भी नाटक की गहरी जड़ें धार्मिक सम्प्रदाय में गड़ी हुई हैं। वैदिक कर्मकाण्डविधि में ऐसी अनेक व्यवस्थाओं का वर्णन किया गया है जिनको सीधे तौर से नाटक का एक प्रकार माना जाता है।

वैदिक काल के बाद नाटक का सम्बन्ध इन्द्रध्वज महोत्सव से जुड़ गया। यह उत्सव वर्षाकाल की समाप्ति के बाद मनाया जाता था। सम्भवतः यह उत्सव उसी समय होता था जिस समय हम आजकल दीवाली का उत्सव मनाते हैं। कृष्ण का इन्द्रपूजा को हटाकर गोवर्धनपूजा स्थापित करना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। इसके बाद इन्द्र

की पूजा के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा प्रचलित हो गई और नाट्यकला में इन्हीं त्रिदेवों का प्राधान्य हो गया। इनमें प्रमुख स्थान कृष्ण को प्राप्त हुआ। विष्णु पुराण और श्रीमद्भावगवत में कृष्ण लीला के अन्तर्गत रास पञ्चाध्यायी में इस वास्तविकता के दर्शन होते हैं। श्रीमद्भावगवत में कथा इस प्रकार है—

‘शरत् काल था, मल्लिकायें खिली हुई थीं, उड़ीपक वेला थी उसी समय प्राची दिशा के मुख को लाल करिणों से रंगता हुआ चन्द्रोदय हो गया। कृष्ण ने रमण की इच्छा से सुमधुर वशी बजाई जिसमें मानो कामदेव का बीजमन्त्र ही फूक दिया हो। उस वंशी की ध्वनि से आकर्षित होकर झुण्ड के झुण्ड रमणिया अपना गृह कार्य छोड़ कर कृष्ण के पास एकान्त में जा पहुँची। पहले तो कृष्ण ने उन्हें सदाचार का उपदेश दिया फिर उनका विशेष आग्रह देखकर नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय नृत्य चलता रहा फिर अवसर देखकर युवतियों में कामदेव ने प्रवेश किया। कृष्ण यह देखकर एक गोपी को लेकर अन्तर्धान हो गये। (सम्भवतः यह गोपी राधा थी) उस गोपी को अपने सौभाग्य पर गर्व हुआ उसने थक जाने का बहाना किया। तब कृष्ण ने उसको कन्ये पर बैठने के लिये कहा और जब वह कन्ये पर बैठने की चेष्टा ही कर रही थी कि कृष्ण वहाँ से अन्तर्धान हो गये। इधर गोपिया कृष्ण को तलाश करती हुई भटक रही थी। उसी समय वह गोपी भी आकर उनसे मिल गई। अब गोपियों ने मिलकर कृष्ण लीला का अभिनय प्रारम्भ कर दिया। एक गोपी कृष्ण बनी दूसरी पूतना, एक गोपी शकटासुर बनी दूसरी कृष्ण। इस प्रकार सभी गोपियां कृष्ण लीला का अभिनय करने लगीं। उसी अभिनय के बीच में मुस्कराते हुए कृष्ण ने प्रवेश किया।

वेदोत्तर साहित्य और नाटक

व्याकरण

पाणिनि ने दो नटसूत्रकारों का उल्लेख किया है— शिलाली और कृशाश्व।^१ शैलानि ब्राह्मण के नाम पर एक वैदिक शाखा भी बतलाई जाती है। सम्भवतः यही शिलाली है जिन्होंने नटसूत्रों की रचना की। एबी. कौय का कहना है कि पाणिनि के समय के नटसूत्रकारों पर अविश्वास इसलिये होता है कि पाणिनि ने ‘नटसूत्र’ शब्द का तो प्रयोग किया है नाटक शब्द का प्रयोग नहीं किया। पाणिनि के पास नाटक वाचक कोई शब्द है ही नहीं। दूसरी बात यह भी है कि भरत ने पाणिनि का उल्लेख नहीं किया है और न शिलाली एवं कृशाश्व के बारे में कुछ कहा है। किन्तु ये दोनों एतद्वाच विचित्र हैं। पाणिनि नाट्यशास्त्र की नहीं शब्दशास्त्र की रचना कर रहे थे। शिलाली और कृशाश्व शब्दों से उनके सूत्रों के अध्येताओं के लिये शैलालिन और ‘कृशाश्विन’ इन शब्दों की रचना में कुछ विलक्षणता है ‘शैलालिन’ में ‘इ’ को वृद्धि होती है ‘कृशाश्विन’ में ‘ऋ’ को वृद्धि नहीं होती। इस

चैषम्य को सिद्ध करने के लिये पाणिनि को दो सूत्र बनाने पड़े। नाटक के विषय में तो कोई विशेषता थी नहीं, उसमें तो सीधे 'नट' धातु से 'प्बुल' प्रत्यय होकर यह शब्द बन ही जाता। भरत द्वारा उल्लेख करना भी कोई सवल तर्क नहीं है। पाणिनि भरत से बहुत पहले हुये थे। इतने लम्बे समय में उन नट सूत्रों का गुम हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। वे नटसूत्र विद्यमान भी रहे हों किन्तु उनकी ओर भरत का ध्यान न गया हो यह भी असम्भव नहीं है। अतः इन तर्कों के आधार पर इतना बड़ा निष्कर्ष निकाल लेना तर्क सगत नहीं कहा जा सकता कि 'उस समय तक नाट्य कला विकसित हुई ही नहीं थी, अतः नटसूत्रों का क्षेत्र भूकामिनय तो हो सकता है, सामान्य अभिनय नहीं।' इसमें यह निष्कर्ष निश्चित रूप से निकलता है कि उस समय तक नाटक रचना इस स्तर तक पहुँच चुकी थी कि उसको शास्त्रीयता के घेरे में बाधने की आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी थी और नटसूत्र लिखे जाने लगे थे।

व्याकरण के दूसरे महान् आचार्य पत्ञ्जलि के कथन से तत्कालीन नाट्यरचना की सत्ता अधिक स्पष्टता से सिद्ध हो जाती है। भाष्यकार ने दो नाटकों का नाम लिया है—कसवध और बलिबन्ध। वहा यह प्रश्न उठाया गया है कि ये दोनों घटनायें बहुत पहले हो चुकी हैं उनमें वर्तमान काल का प्रयोग कैसे सगत हो सकता है। इसका उत्तर दिया गया है कि वर्तमानकालता तीन रूपों में सिद्ध होती है—(१) शौभिक जो रणमञ्च पर प्रत्यक्ष रूप से कस का वध करते हैं या बलि-बन्धन करते हैं क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप में होता है अतः उसमें वर्तमानता सगत हो जाती है। (२) यही बात चित्र में होती है चित्र में कृष्ण द्वारा कस का वध दिखलाया जाता है, वहा उठाये एव तैयार किये और गिराये जाते हुये प्रहार दिखलाये जाते हैं जिससे वर्तमानकालता आ जाती है और (३) गृन्थवाचक लोग मानव-समूह (श्रोताओं) के सामने कथा कहते हैं। तब वे जो भी वर्णन करते हैं उससे वर्तमानता आ जाती है। इस प्रकार इन तीनों साधनों से कस की उत्पत्ति से लेकर मृत्युपर्यन्त उनका व्यक्तित्व की एक धारणा जनता की बुद्धि का विषय बन जाती है और जनता उसे प्रत्यक्ष दृष्टिविषय मानने लगती है। यहा कृष्ण और कस के दो विरोधी स्वरूप मिश्रित रूप में बुद्धिगत हो जाते हैं। कुछ लोग कृष्णभक्त होते हैं, कुछ लोग कसभक्त। उनके रग का अन्तर भी बुद्धिगत हो जाता है—कोई बालामुख बनाकर आते हैं कोई लाल मुख। इस बुद्धिगत तत्व से सभी व्यवहार सगत हो जाते हैं। इसी लिये व्यवहार में तीनों काल भी सगत हो जाते हैं, जैसे—'अब जाकर क्या करोगे कस तो मार डाला गया' (भूतकाल) 'जल्दी जाओ कस मारा जा रहा है' (वर्तमान) 'कस मारा जायेगा।' कहा भी गया है—

'शब्दोपहितरूपाश्च बुद्धेर्दिषयता गतान्

प्रत्यक्षमिव कसादौ न साधनत्वेन मन्यते'

[जिनका स्वरूप शब्दों द्वारा समीपत कर दिया जाता है और जो बुद्धि का विषय बन जाते हैं उन कमादिकों को (परिशीलक) वध इत्यादि का साधन मान लेता है।]

अन्यत्र भी आचार्यों ने व्यञ्जनों के स्वर के साथ सम्बन्ध के विषय में लिखा है कि व्यञ्जनों की स्थिति नटी जैसी है। जिस प्रकार नटी रगमञ्ज पर जाकर जिसकी पत्नी का अभिनय करती है उसी की बन जाती है, उसी प्रकार व्यञ्जन भी जित स्वर के साथ मिलते हैं उसी के उच्चारण में स्वयं को मिला देते हैं। पतञ्जलि ने दो नाटकों का उल्लेख तो किया है, नटों और नट्याचार्यों की हीनदशा का भी विवरण दिया है। उसमें रगोपजीवियों और रपाजीवा स्त्रियों का भी उल्लेख है :

इस प्रकार व्याकरण का साक्ष्य इस बात का पूरा प्रमाण है ईसवीं शती के प्रारम्भ होने के पहले भारत में नाट्यकला विकसित थी और इस दिशा में अनेक नाट्यकृतियों की रचना भी हो चुकी थी।

पौराणिक साक्ष्य

महाभारत में नाट्यसम्बन्धी नट, सूत्रधार, शैलूष इत्यादि शब्द तो मिलते हैं, किन्तु उसमें पाश्चात्य विद्वानों की मान्यता के अनुसार इस विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि महाभारतकार नाट्यकला से परिचित था या नहीं। इस विषय में महाभारत के परिशिष्ट हरिवंश में स्पष्ट रूप में नाट्यकला के विषय में कई अध्याय व्यय किये गये हैं। हरिवंश पुराण नाटक की सत्ता से ही नहीं उसके कतिपय भेदों से भी परिचित है। इसमें विष्णुवर्च के ८८, ९९३ ९७ अध्याओं में नाट्यकला का उल्लेख किया गया है। प्रद्युम्न प्रभावती विवाह के प्रसंग में रामायण का नाट्यरूपान्तरण प्रस्तुत किया गया। उसमें वाल्मीकि का नामोल्लेख तो नहीं है किन्तु रामायण में प्राप्त सभी विशिष्ट घटनाओं का नाटकीय विवरण है और उसमें राम के विष्णु का अवतार होने का भी चित्रण किया गया है। रामावतार का उद्देश्य राक्षसराज रावण का वध बतलाया जाता है। साथ ही दशरथ द्वारा लोमपाद की पुत्री शान्ता के प्रदान किये जाने, शान्ता द्वारा महान मुनि शूङ्गी ऋषि के लाये जाने, चरित्र के अनुसार चारो भाइयों और ऋद्धी ऋषि के वस्त्राभरण धारण कर नटों और नर्तकों द्वारा अभिनय किये जाने का समावेश है। इस अभिनय में छलिक (टल्लोसक) नृत्य का भी प्रदर्शन किया गया जिसमें शूङ्गार और खीर तथा ताण्डव और लास्य दोनों का योग रहता है। इस उत्सव और नाट्य प्रयोग में कृष्ण रुक्मिणी, बलराम रेवती ने भी अभिनेताओं के रूप में भाग लिया। नारद ने वीणा बजाई, कृष्ण ने वशी बजाई, अप्सराओं ने मृदंग बजाया। देव गन्धर्वों ने नृत्य गीत में योगदान दिया। इस अभिनय में रामकालीन वेषविन्यास नेपथ्य विधान, क्रियाकलाप, पात्रों के संस्कार इत्यादि को देखकर उसकी सफलता पर सारा समाज मन्त्रमुग्ध हो गया। नाटक की सफलता पर जो प्रतिक्रियायें व्यक्त की गई वे भी महत्वपूर्ण थीं। दर्शकों ने उठ उठ कर अभिनन्दन किया। अभिनय की सफलता पर प्रसन्न होकर दर्शक भावावेश में वस्त्राभरण इत्यादि पुरस्कार में प्रदान करने लगे। इसमें आकाशचारी विमान और हाथी भी पुरस्कार में दिये

गये। रामायण के नाटकीकरण के अतिरिक्त कौवेररम्भाभिसरण के अभिनय का भी उल्लेख किया गया है—

रामायण महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकीकृतम् ।

रम्भाभिसार कौवेर नाटक ननूतुस्तदा ॥

हरिवंश के अतिरिक्त, मत्स्य, विष्णुधर्मोत्तर पुराण मार्कण्डेय पुराण इत्यादि दूसरे पुराणों में भी नाट्यसामग्री उपलब्ध होती है। भागवत में अभिनय का उल्लेख किया ही जा चुका है। मत्स्य पुराण और विष्णुधर्मोत्तर पुराणों में नाट्यमण्डपों के निर्माण पर भी प्रकाश डाला गया है। अग्निपुराण में नगरनिर्माण एवं वास्तुकला के विवरण में नर्तों, नर्तकों, वेश्याओं आदि के निवास के लिये नगरों के दक्षिण में व्यवस्था का निर्देश किया गया है। आशय यह है कि यद्यपि हमें तत्कालीन पूर्ण नाटक के दर्शन नहीं होते किन्तु पुराणों में जिस प्रकार का नाट्य सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है उससे स्वभावतः अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय किसी परिमाण में नाट्य रचनायें हुई होंगी जो कालक्रम से लुप्त हो गईं।

नाट्य और धर्म

नाट्य की उत्पत्ति और उसका विकास मूलरूप से धार्मिक वातावरण में हुआ। भ्रत के दिये हुये उपाख्यान के अनुसार उसकी उत्पत्ति में चारों वेदों और तीनों देवों का योगदान है। इसका प्रथम अभिनय इन्द्रध्वज महोत्सव में हुआ था जिसमें सर्वप्रथम ब्रह्मा के द्वारा लिखे हुये नाटकों के अभिनय की ही योजना की गई—

वेदोपवेदै सबद्धो नाट्यवेदो महात्मना ।

एव षण्वता सृष्टो ब्रह्मणा सर्व वेदिना ।

उत्पाद्य नाट्यवेदं तु ब्रह्मोवाच सुरेश्वरम् ॥

इतिहासो मया सृष्ट स सुरेषु निपुज्यताम् ॥ नाश १-१८-१९.

अभिनय में प्रवृत्त होने वाले (अभिनेताओं) की भी प्रमुख विशेषता धार्मिक जीवन, वेद के रहस्य को समझना और साधना इत्यादि गुण ही माने गये थे। वे ही इसके ग्रहण और धारण में समर्थ थे—

य एते वेदगुह्यज्ञा ऋषयः शसितव्रता

एतेऽस्य ग्रहणे शक्ता प्रयोगेधारणे तथा ॥

विष्णों के अपसारण के लिये जर्जर का निर्माण किया गया और सभी देवताओं ने अपनी अपनी पिरोषतायें नाट्यकला को प्रदान कीं। दिशाओं विदिशाओं में विभिन्न देवताओं को रथा के लिये नियुक्त किया गया। नाटक के उद्घाटन में पूजा का महत्व माना गया और कहा गया कि नाट्य की सफलता के लिये पूजा विधि अनिवार्य है—

बलिप्रदानैर्होमैश्च मन्त्रौषधिसमन्वितै ।

धौज्यैर्षस्यैहपानैश्च वलिं समुपकल्प्यताम् ॥११२१॥

नर्तकोर्षपतिर्वापि ययूजा न करिष्यति ।

न कारयिष्यत्यन्यैर्वा प्राप्नोत्यपचयतु स ॥

यथाविधि यथादृष्ट यस्तु पूजा करिष्यति ।

स लप्स्यते शुभानर्णान् स्वर्गलोकं च यास्यति ॥

इस प्रकार नाट्य की उत्पत्ति और उसके प्रचलन में पूजा एवं धार्मिकता का प्रमुख स्थान है। महाभाष्य में कसवध और बलिबन्ध का उल्लेख किया गया है। दोनों नाटकों की धार्मिकता असन्दिग्ध है। इसमें कृष्णोपासना की प्रधानता है। रासमण्डल का प्रचलन इसका स्पष्ट प्रमाण है। धार्मिकयात्राओं में कृष्णलोला के दृश्य दिखलाये जाने की आम प्रथा है। कृष्ण के समान ही नाट्यकला में शिव और राम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वर्षाकाल के उपरान्त नगरों और गावों में रामलीला की योजना नाट्यकला में राम के महत्व की परिचायक है। नाट्य की स्वरूपस्थिरता में शिव-पार्वती के युग्म का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा प्रचलित सास्य और ताण्डव के समावेश से नाट्य प्रयोग में परिपूर्णता आती है। नाट्य और नृत्य के उद्भव और विकास में शिव के नटराज रूप की अभ्यर्थना की जाती है।

लिङ्गपूजा अनेक शताब्दियों से प्रचलित रही है। यूरोपीय विद्वानों ने ग्रीक और रोमन कालों में प्रचलित लिंगनृत्यों के आधार पर भारतीय नाटकों का उद्भव भी लिंगपूजा से माना है। लिंगपूजा किसी रूप में वैदिक काल में भी प्रचलित रही है जिसका आर्यवितोषियों के रूप में ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है। लिंगपूजा सृष्टि की प्रक्रिया का एक रूप है जो प्रकृति और पुरुष के मिलन का प्रतीक है। प्राचीन साहित्य की अनुपलब्धि में कहा नहीं जा सकता भारतीय आर्यों को लिङ्गपूजा की इस असंस्कृत भावना ने किस सीमा तक प्रभावित किया। ऋग्वेद के प्रतिषेधात्मक विवरण को देखते हुये सम्भव तो यही लगता है की आर्य जाति ने यदि कभी शिव के रूप में नाट्यकला को अपनाया होगा तो वह आनन्दात्मक नटराज रूप ही होगा। वही रूप रसानुकूल है, लिङ्गपूजा उसके अनुकूल नहीं पड़ती।

बौद्ध और जैन साहित्य में प्रारम्भ में नाट्यकला और उसकी उपरजक कलाओं नृत्य गीत इत्यादि के प्रति विद्वेषा ही पाई जाती है—

सर्वं विलपितं गीतं सर्वं नाट्यं विडम्बितम् ।

[सभी गीत विलाप हैं और सभी नाट्य विडम्बना हैं।]

किन्तु यह प्रतिरोधी भावना धीरे धीरे दबती गई और बौद्ध साहित्य तथा जैनागमों में उसके प्रति झुकाव कुछ बढ़ता गया। दिव्यावदान, अवदानशतक जैसे बौद्धग्रन्थों में

भगवान् बुद्ध के गुणों में उन्हें नाट्यगुणालंकृत भी कहा गया है। ललितविस्तर में भी हास्य, लास्य, नाट्य इत्यादि सभी कलाओं में मूर्धन्य बुद्ध ही है।^१ नाट्य साहित्य के क्षेत्र में बौद्ध और जैन साहित्य का योगदान उपेक्षणीय नहीं हो सकता।

नाट्यशास्त्र साक्ष्य

शास्त्र का काम सर्वदा लक्ष्य की व्यवस्था करना और उसे समीक्षा पूर्वक नये प्रतिमानों द्वारा बुद्धि गम्य बनाना होता है। लक्ष्य कभी भी कल्पित नहीं होता। उदाहरण के लिये भाषा एक स्वाभाविक प्रवाह में सतत गतिमान स्वाभाविक व्यवहार की वस्तु है। पाणिनि ने इसी प्रचलित भाषा को अपने सिद्धान्तों द्वारा परिष्कृत रूप में प्रस्तुत कर व्यवहर्ताओं के लिये बोधगम्य बनाया। भौतिक द्रव्यों और औषधियों में रोग निवृत्त करने की स्वाभाविक शक्ति है, आयुर्वेदज्ञ उसमें उस शक्ति का आधान नहीं करते, किन्तु आयुर्वेद शास्त्रकार उन औषधियों को उपयोगी बनाने के लिये उनकी व्यवस्था और व्याख्यामात्र करने के श्रेय के अधिकारी है। प्रतिभा एक जन्मजात गुण है। उसके प्रकाश में जो अनुपम कलाकृतियाँ निर्मित होती हैं उनमें आनन्द देने की स्वाभाविक शक्ति सन्निहित होती है। कलाकार की उन्हीं कृतियों को शास्त्रकार सैद्धान्तिक व्यवस्थाओं में बाँध कर परिशीलकों के लिये सुज्ञेय बनाने का प्रयत्न करते हैं। काव्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य आनन्दबर्धन ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि शास्त्रप्रवृत्ति लक्ष्यपरीक्षा पर आधारित होती है।

ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास भारत का महान् ग्रन्थ नाट्यशास्त्र परिशीलकों के सामने आता है। निश्चित है कि नाटकों को जो शास्त्रीय रूप भारत ने दिया है उसके लक्ष्य ग्रन्थ अवश्य रहे होंगे। स्वभावतः प्रश्न पैदा होता है अर्थप्रकृतियों सन्धियों सन्ध्यङ्गों एव अर्धोपश्लेषकों, पूर्वग और प्रस्तावना की जो व्याख्या और व्यवस्था भारत ने प्रस्तुत की है उस सबका आधार क्या था, क्योंकि उसकी पृष्ठभूमि में कुछ न कुछ कृतियाँ अवश्य रही होंगी। उनके अभाव में इस प्रकार के शास्त्र की रचना सम्भव ही नहीं थी। केवल इतना ही नहीं भारत की कृति को देखकर स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है उनके पहले भी नाट्यशास्त्र पर बहुत कुछ लिखा जाता रहा है। वर्तमान नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में भारत ने १०० शिष्यों का उल्लेख किया है जिनमें कई ऐसे हैं जिनका उल्लेख परत के अतिरिक्त कई अन्य आचार्यों ने भी किया है और उनके नाम पर कतिपय सिद्धान्तों का भी निर्देश किया है। ऐसे आचार्यों में कौहल, दत्तिल, शालिकर्ण, वादरायण, नखकुट्ट, अरमकुट्ट इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। स्वयं भारत ने कहीं कहीं वंश परम्परागत (आनुवंशिक) श्लोकों के और कहीं कहीं सूत्रानुबद्ध आचार्यों के उद्धरण दिये हैं। इसमें लक्ष्यग्रन्थों के माध्य शास्त्रीयग्रन्थों की भी परम्परा प्रमाणित होती है। नाट्यशास्त्र स्वयं में एक विश्वकोश (इन्साइक्लोपीडिया) जैसा ग्रन्थ है जिसमें नृत्य, नाट्य, नाट्यवृत्तियाँ, रूपक-

भेद, विभिन्न प्रदेशों के रहन सहन, पहिरावा उदावा, नायक-नायिका भेद, उनके सहायक, संगीत अभिनय इत्यादि नाट्योपयोगी सभी तत्वों का समावेश कर उसे अभिनेताओं और नर्तकों सभी के लिये अपरिहार्य मन्य बना दिया गया है।

भारतीय नाट्यकला पर ग्रीक प्रभाव की बहुत कुछ चर्चा की जाती है किन्तु भरत ने नाट्यविद्या के भेदोपभेदों में जिस मौलिक चिन्तन का परिचय दिया है वह सर्वथा नई तथा सर्वाङ्ग पूर्ण दिशा है। ग्रीक साहित्य में नाटक के केवल तीन प्रकार माने गये थे—त्रासदी, कामदी और उभयमिश्रण। किन्तु भारतीय भेदोपभेद कल्पना में सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक इत्यादि का भी रसास्वादन के साथ विचार किया गया है। नाट्यशास्त्र के आचार्य ने नाट्य के प्रारम्भ, वस्तु के विकास बीज, फल, पताका, प्रकरी, पताका स्थानक, अर्थोपक्षेपक इत्यादि नाट्यरचना के विभिन्न उपयोगी सिद्धान्तों पर^१ विस्तार पूर्वक विचार कर सबका उद्देश्य रसास्वादन निश्चित किया है उसके लिये वस्तु, नैता और रस की विविध व्याख्या प्रस्तुत की और सिद्धान्तित किया कि जिन नाट्यप्रयोगों में पूर्ण रसास्वादन के लिये सबका यथोचित मात्रा में सन्निवेश उचित बतलाया गया और यह सिद्धान्तित किया गया कि जिन नाट्य प्रयोगों में पूर्ण रसास्वादन की सम्भावना हो वे ही पूर्ण नाटक कहे जाने के अधिकारी हैं। वे ही प्रधान रूपक कहे जाते हैं। किन्तु इस प्रकार के नाटकों लिये जिन सविधानकों की आवश्यकता होती है वे कष्टसाध्य और व्ययसाध्य होते हैं। उनके लिये अधिक समय देना पड़ता है, खर्चीली रंगशालायें बनवानी पड़ती हैं। यह व्यवस्था बड़े शहरों और श्रीमानों के लिये तो सुलभ है उनसे आम जनता का व्यापक परिमाण में अनुरञ्जन नहीं हो सकता। सर्वसाधारण के अनुरञ्जन के लिये छोटे छोटे सरल नाट्यों की योजना आवश्यक होती है जिनमें अपेक्षाकृत व्यय भी कम हो और रंगशालायें भी इतनी छोटी हों कि या तो थोड़े समय में ही जमाई जा सकें या उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकें। साथ ही अभिनय के लिये छोटे छोटे कथानक होने चाहिये जिनमें समय भी कम लगे और उनके लिये प्रशिक्षण और अभ्यास (रिहर्सल) भी कम अपेक्षित हो। इसी उद्देश्य से भारतीय आचार्यों ने प्रधान रूपकों के साथ छोटे छोटे अप्रधान रूपकों की भी कल्पना की। कहा जाता है पिछले दिनों यूरोप में भी लघुनाटक आन्दोलन चला था।

नाटक शब्द की निष्पत्ति णट् घातु से हुई है जिसका अर्थ है नृति या नाचना। वस्तुतः इसका सम्बन्ध 'नृती गात्रनिक्षेपे' घातु से है जिसका अर्थ होता है अग संचालन अर्थात् आङ्गिक अभिनय। इस प्रकार 'नाटक' का विशेष सम्बन्ध नृत्यकला से है। नृत्य के साथ संगीत का भी उपकार्योपकारक भाव सम्बन्ध है। एक दूसरी घातु 'नट' अवस्पन्दन अर्थ में भी है जिसका अर्थ है द्रवित होना। इस प्रकार 'नट' के क्रियाकलाप को नाटक की सज्ञा दी जाती है। नट के क्रिया कलाप से नृत्य, गीत, अभिनय, हृदय के द्रवित हो

१ (इन पर विचार सम्पूर्ण नाट्यकोश के दूसरे खण्ड का विषय है। सुविधा के लिये परिशिष्ट में इन विषयों का संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। वहाँ देखना चाहिये ॥)

जाने का भाव ये सब तत्व सम्मिलित हो जाते हैं। अभिनय में वेषभूषा भी आ जाती है। आशय यह है कि नाटक शब्द में ही चारो प्रकार के अभिनय सम्मिलित हो जाते हैं— कायिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य। शास्त्रीय पारिभाषिकता के अनुसार नाटक एक प्रकार की विधा है या एक विशिष्ट प्रकार है। अतः आचार्यों ने सामान्य अर्थ में एक नये शब्द 'रूपक' को अपनाया है जिसका अर्थ है रूप का आरोप कर अभिनय में प्रवृत्त होना। कुछ रूपक ऐसे होते हैं जिनमें सभी प्रकार के अभिनयों का अवसर होता है, इस प्रकार के अभिनयप्रधान रूपकों को सामान्य रूपक कहा जाता है इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य प्रकार के रूपक ऐसे भी होते हैं जिनमें सामान्य अभिनय की नहीं नृत्य गीत की प्रधानता होती है। इस प्रकार के रूपकों को उपरूपक भी सज्ञा दी जाती है। रूपक दो प्रकार के होते हैं— सभी नाट्यांगों का संपात रूप में अभिनय और आस्वादन। इन्हें प्रधान रूपक कहा जाता है। जिन रूपकों को परिपूर्ण बनाने की चेष्टा नहीं की जाती और न उनका आयाम विस्तार होता है उन्हें अप्रधान रूपक कहा जाता है। इस भाँति रूपक तीन प्रकार के हो जाते हैं— प्रधान रूपक, अप्रधान रूपक और उपरूपक।

प्रधान रूपक

अभिनय का उद्देश्य है रसास्वादन। कवि और अभिनेता दर्शकों को प्रेम, क्रोध, भय, उत्साह इत्यादि किसी भाव का आस्वादन कराना चाहता है। किन्तु यों ही तो आस्वादन हो नहीं सकता। उसके लिये परिस्थिति बनानी पड़ती है और किसी व्यक्ति या व्यक्तियों पर उसे ढाल कर दिखलाया जाता है। व्यक्ति तो बहाना मात्र होते हैं, सत्य तो एक मात्र भाव ही होता है। उस भाव के परिणाम स्वरूप जो सुख, दुःख इत्यादि प्रदर्शित किये जाते हैं उन्हीं के प्रभाव में वहकर दर्शक उन भावनाओं का आनन्द सेता है। कवि या अभिनेता ऐसे आवरण में भाव का प्रदर्शन करता है कि सुखमय भावनाओं से जितना आनन्द आता है उतना ही या उससे अधिक दुःखात्मक भावनायें आनन्द देने वाली बन जाती हैं। इसीलिये दुःखात्मक भावनाओं का प्रदर्शन करने वाले रूपक अधिक पसन्द किये जाते हैं और लोग अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ उन्हें देखने में प्रवृत्त होते हैं।

जिन पात्रों पर ढालकर भावना प्रदर्शित की जाती है वे पात्र दो प्रकार के होते हैं या तो वे परिचित होते हैं या अपरिचित परिचित पात्रों के विषय में दर्शकों की भावनायें बनी बनाई होती हैं, अतः उन्हें बड़े चढ़े रूप में प्रदर्शित करने में कवि को भी आसानी होती है और दर्शक भी उस जानी मानी भावना का अपने सत्कारों की सहायता से अधिकाधिक आनन्द ले सकते हैं। राम, कृष्ण, छवण, कंस इत्यादि इतिहास पुराण पात्रों के प्रति दर्शकों की नई भावना का परिचय प्राप्त नहीं करना पड़ता। कवि को भी उसके निर्माण में सुविधा रहती है। दूसरे प्रकार के पात्र काल्पनिक होते हैं। उनके विषय में कवि, पाठक और दर्शक सभी को भावना और उसके चरित्र के स्वरूप के विषय में

मनोवृत्ति बनानी पड़ती है। उसके निर्वाह में भूलों की भी सम्भावना रहती है और विचारों में भी असामञ्जस्य उद्भूत हो सकता है। अतः इसकी रचना में कवि को विशेष सावधान रहना पड़ता है। जिन रूपकों में परिचित पात्रों का उपादान किया जाता है उनको नाटक की सजा दी जाती है और जिन रूपकों में काल्पनिक पात्र अपनाये जाते हैं उन्हें प्रकरण कहा जाता है।

नाटक

इसका प्रारम्भ कलात्मक रूप में होता है। प्रारम्भ को प्रस्तावना या आमुख की सजा दी जाती है। इसका उद्देश्य होता है अनियन्त्रित जन समुदाय को नियन्त्रण में लाकर रसास्वादन के लिये तैयार करना और सर्वप्रथम मङ्गलाचरण के रूप में किसी देवता की स्तुति कर जन समाज को आशीर्वाद देना। उसमें पद्य या गीत प्रस्तुत किया जाता है उसमें कुछ तो काव्य सौन्दर्य होता है, कुछ पद्य में अभिनेय होने की पात्रता और कुछ संगीत सहती। इस सबसे जनता आनन्द लाभ करती है अतः इसे नान्दी कहा जाता है। नान्दीपाठ कर जब सूत्रधार चला जाता है तब दूसरा अभिनेता आकर कवि काव्य इत्यादि की सूचना देता है। यह सूचना भी नाट्य का एक कलात्मक छन्द होती है जिसमें नृत्य होता है ऋतु वर्णन पर गीत होता है, संवाद होता है, किन्तु आंगिक अभिनय नहीं होता। केवल वाचिक अभिनय चलता है। इसीलिये यह भाग भारतोवृत्ति तक सीमित रहता है, वैसे इसमें बोधी और प्रहसन के अंगों के समावेश का विधान है। कलात्मक शैली में पात्र प्रवेश करता है और प्रस्तावना समाप्त हो जाती है।^१

नाटक में अत्यन्त प्रसिद्ध कथावस्तु का उपादान किया जाता है जो एक अत्यन्त उच्चकीर्ति के नायक के विषय में होती है। यह नायक या तो प्रतिष्ठाप्राप्त राजर्षि होता है जैसे अभिमानराजकुन्तल का नायक दुष्यन्त है या कोई दिव्यपात्र होता है, अथवा ऐसा पात्र नायक के पद पर प्रतिष्ठित होने का अधिकारी होता है जो दिव्य होते हुये मानवत्व का अभिमानी हो जैसे भगवान् राम। इन पात्रों की भी प्रसिद्ध कथायें ही नाटक का विषय बन सकती हैं। इन पात्रों के विषय में काल्पनिक कथायें नाटक की कीर्ति में नहीं आती। जो कथायें रामायण महाभारत बृहत्कथा, इतिहास पुराण इत्यादि में अत्यधिक प्रसिद्ध हों वे ही नाटक की कथवस्तु बनती हैं। नायक धीरोदात्त तथा अत्यन्त प्रतापी होना चाहिये। नीतिशास्त्र में यिन गुणों का वर्णन किया गया है नाटक के नायक में उन सभी गुणों की सजा दिखलाई जानी चाहिये। वह कीर्ति की इच्छा करने वाला धर्म सेतु का पालक हो और अपने महान् गुणों से सभी पर छत्र जाने की क्षमा रखता हो। देवता भी उसकी सहायता के लिये तत्पर रहें। उसके लोकोत्तर कर्मा से कथानक ओतप्रोत रहे चाहे वे सफलतायें युद्ध भूमि की हों चाहे प्रेम प्रसंग की। कथानक की परिणति सफलताओं में

१ (प्रस्तावना के विषय में देखिये— परिशिष्ट)

ही होनी चाहिये ।

नाटक की सफलता नाटक का अनिवार्य तत्व है इसीलिये पारचात्य परम्परा में स्वीकृत त्रासदी से इसका पृथक्करण हो जाता है । इसमें न तो नायक की पराजय दिखलाई जाती है, न युद्ध भूमि से पलायन न विवशता अन्य सन्धि । वस्तुतः नाटक का चरम उद्देश्य नायक की विजय और उसकी सम्पन्नता ही है जिसके अभाव में नाटक अपनी सजा से रौ च्युत हो जायेगा । यदि कहीं मध्य में नायक की पराजय का भी प्रश्न उपस्थित हो तो उसकी सूचना पर दे दी जाती है । रंगमञ्च पर उसका प्रदर्शन नहीं किया जाता मृत्यु की तो सूचना भी नहीं दी जाती । कुछ लोग भारतीय नाटकों को कामेडी (पारचात्य कमेडी) कहने के आदी हैं । किन्तु अपने ठीक अर्थ में भारतीय नाटक को कमेडी कहना उसके प्रति न्याय नहीं होगा । कमेडी तो बहुत ही नीचे स्तर की वस्तु है । उसका जीवन और वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं होता । वह एक मजाक की वस्तु है । किन्तु भारतीय नाटक जीवन के वास्तविक अनुकरण है और सर्वथा गम्भीर प्रकृति के हुआ करते हैं । प्रति नायक के शौर्य और शक्ति का बड़े विस्तार से वर्णन किया जाता है और शत्रुओं के प्रतिरोध से उत्पन्न कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने में नायक को पर्याप्त सकटों का सामना करना पड़ता है । अनेकश उसकी सफलता सिद्ध हो जाती है । यह दूसरी बात है कि अन्तिम सफलता नायक को ही मिलती है और वह समस्त प्रतिरोधों को पार कर लेता है । भारतीय मनीषी इस विषय में अत्यन्त जागरूक है कि अच्छाईयों की विजय दिखलाना चरित्र निर्माण के लिये अधिक उपयोगी है । बुराईयों का दुष्परिणाम किसी सीमा तक कृतकार्य हो सकता है किन्तु बुराईयों का अत्यधिक प्रदर्शन स्वयं बुरा है और उसका अवाच्छनीय परिणाम भी हो सकता है ।

नाटक की कथावस्तु प्रख्यात होती है और किसी प्रसिद्ध ग्रन्थ से ली जाती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि नाटककार को वृत्तियां परम्परागत कथानक से सर्वथा कस जाती हैं । नाटक कोई इतिहास नहीं है इसलिये इतिहासकार की भांति नाटककार प्रामाणिक इतिवृत्त लिखने के लिये बाध्य नहीं है । उसे यह अधिकार होता है कि मूल कथा में जो तत्व नायक या रस के प्रतिकूल हो और अपनी योजना से मेल न खाता हो उसे आवश्यकतानुसार बदल ले । इसके लिये वह नई कल्पना भी कर सकता है, नई कथा का प्रवर्तन भी कर सकता है, परम्परागत कथा की नई योजना भी कर सकता है और घटनाओं का क्रमव्यवस्था भी कर सकता है । किन्तु इसके लिये उसे लोक रुचि का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा असत्यता का प्रतिपाद या अनौचित्य स्मरण में उसका कथानक जनमानस में विद्वेषा ही उत्पन्न करेगा । जिन पात्रों के विषय में जनमानस में जो धारणा बनी हो उसका पूर्ण व्यापात उचित नहीं होता । आचार्य शुक्ल के अनुसार ऐसे विषयों में खिलवाड़ की अपेक्षा नई कल्पना कर लेना अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है । नाट्यवर्जनाओं का भी कथानक में ध्यान रखने का आचार्यों ने निर्देश दिया है ।

कथावस्तु का निर्वाह

कथावस्तु का निर्वाह इस रूप में किया जाना चाहिये कि कोई भी अंग अधिक बड़ा और कोई छोटा प्रतीत न हो। नाटक में ५ सन्धिया होती हैं। उसी के अनुसार कम से कम ५ अंकों का विधान है। यदि एक अंक में एक सन्धि की योजना की जाय तो पूरा नाटक सन्तुलित हो जायेगा। किन्तु यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है। फिर भी इतना ध्यान रखना चाहिये कि नाटक इतना बड़ा न बन जाये कि दर्शक उबने लगें। अतः नियम बनाया गया है कि किसी नाटक में १० से अधिक अंक नहीं होने चाहिये। अंक में असम्बद्ध कई घटनायें दर्शकों के नाम पर दिखलाने की जो पारचात्य परम्परा है वह भारतीय आचार्यों की मान्य नहीं है। अंक के अन्तर्गत पूर्ण रूप से संबद्ध एक ही घटना दिखलाने की परम्परा है। छोटी छोटी अन्य घटनायें अयोपक्षेपकों द्वारा दिखला दी जाती हैं। यद्यपि भारतीय नाट्यशास्त्रकारों ने सकलनों का विवेचन नहीं किया है जैसाकि स्पष्ट, कार्य और काल संकलन की परम्परा पारचात्य साहित्य में है, फिर भी एक दिन में निर्वर्त्य कथा को एक अंक में दिखलाने और शेष अंश को सूच्य बनाने का निर्देश भारतीय नाट्य की भी सकलनों के पर्याप्त निकट लाता है। इसी प्रसंग में अयोपक्षेपकों का भी विवेचन किया गया है।

प्रकरण

यह पूर्ण नाटक का दूसरा प्रकार है जिसने रचना की सभी प्रवृत्तियों का नाटक के अनुसार ही निर्वाह किया जाता है। प्रधानक और पात्र कल्पित एवं अपरिचित होते हैं, किन्तु उनकी अन्तरात्मा अपरिचित नहीं होती। वे पात्र हमारे साथ रोज चलने फिरने उठने बैठने बातों के समक्ष ही होते हैं। अतएव उनसे आत्मीयता बना लेने में कठिनाई नहीं होती। अचिरात् उनकी भावनायें परिशीलकों की भावनायें बन जाती हैं और परिशीलक उस आत्मीयता के प्रभाव से रसास्वादन में सक्षम हो जाता है। वस्तुतः नाटक के आदर्श पात्रों की अपेक्षा प्रकरण के पात्र लोकवृत्त के अधिक निकट होते हैं। प्रकरण का नायक ब्राह्मण, बनिया, अमात्य इत्यादि में कोई भी होता है। नायिका कुलवती भी होती है और वेश्या भी अथवा दोनों का मिलाजुला रूप होती है। तरणदत्त में वेश्या नायिका है, पुष्पदूषितक में कुलवती स्त्री और मृच्छकटिक में दोनों ही। किन्तु उनके भी अपने आचार और मर्यादायें होती हैं। प्रकरण के नायक में नाटक के नायक जैसी उदात्तता नहीं होती। कुछ लोगों के मत में निम्नजाति की स्त्री भी नायिका हो सकती है। नायक अधिकतर धीरशान्त होता है किन्तु कुछ लोग उसे धीरोदात्त रखने के भी पक्षपाती हैं। जिस प्रकरण में विट, चेट, कितव, शकार इत्यादि पात्र होते हैं वह सर्कीर्ण प्रकरण कहा जाता है।

नाटक और प्रकरण दोनों पूर्ण नाटक के प्रकार हैं; किन्तु रस निम्नति और रसास्वादन के सुकर होने के कारण नाटक का महत्व अधिक है। समाज के अधिक निकट होने और

यथार्थ चित्रण की विशेषता के कारण प्रकरण नाटक की अपेक्षा पश्चात्त्य मनोवृत्ति के अधिक अनुकूल पड़ता है।

अप्रधान रूपक

भरत ने ८ अप्रधान रूपक माने हैं। दो प्रधान रूपकों को मिलाकर रूपकों की संख्या १० हो जाती है। ये ही १० रूपक परवर्ती आचार्यों को भी मान्य रहे और प्रायः सभी नाट्य शास्त्रकारों ने इस संख्या को महत्व दिया। इन ८ अप्रधान रूपकों में ५ एकाङ्की होते हैं— व्यायोग, अङ्क, प्रहसन भाण और वीथी, समवकार में तीन अंक होते हैं तथा डिम एव ईहामृग में चार चार अंक होते हैं। इनमें चार रूपक प्रसिद्ध कथावस्तु को लेकर चलते हैं और तीन में काल्पनिक कथा होती है। प्रख्यात कथावस्तु को लेकर चलने वाले नाटक हैं— व्यायोग, अङ्क डिम और समवकार तथा कल्पित कथावस्तु को लेकर लिखे जाने वाले नाटक हैं— भाण, प्रहसन और वीथी। ईहामृग में मिश्र कथावस्तु होती है। इन सबके अतिरिक्त ४ अंकों की नाटिका का भी भरत ने उल्लेख किया है जो १० रूपकों के अतिरिक्त है। परवर्ती आचार्यों में कतिपय इसे रूपकों में स्थान देते हैं कतिपय उपरूपकों में। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

(१) नाटिका— इसमें सन्धि, सन्ध्यङ्ग इत्यादि सभी कुछ नाटक के समान ही होता है, किन्तु दोनों में कतिपय अन्तर भी है— एक तो इसकी पूर्ति ४ अंकों में होती है, दूसरे इसमें केवल शृङ्गार रस का और यह भी सीमित दिशा में प्रवृत्त होने वाले शृङ्गार रस का आस्वादन किया जाता है। न वस्तु की विविधता होती है न रसास्वादन का सीमाविस्तार यद्यपि इसमें आस्वादन की गहराई कम नहीं होती। इसके पात्र बंधी बधाई लोक पर चलने वाले होते हैं। एक अन्तर यह होता है कि इसकी कथावस्तु न पूर्णतः ऐतिहासिक होती है न पूर्णतः काल्पनिक। नग्यक ऐतिहासिक होता है और कथावस्तु काल्पनिक।

(२) डिम— दशरूपक में टीकाकार धनिक ने डिम का अर्थ माना है सथात जिसका अर्थ समूह भी है और जोरदार घातप्रतिघात भी है। इस रूपक में अनेक पात्र कार्य प्रवृत्त होकर घात प्रतिघात और दाब पेंच से कथावस्तु को आगे बढ़ाते हैं।

भरत के अनुसार इसकी कथावस्तु प्रख्यात होती है और इसका नायक बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति होता है। इसमें अङ्गोरस रौद्र होता है। शृङ्गार और हास्य को छोड़कर ६ रसों का प्रयोग किया जाता है। शान्तरस को रसरूपता प्रदान करने पर इसमें उसका भी निषेध समझा जाना चाहिये। इसमें ऐसी वस्तु का उपादान किया जाता है जो दीप्त रसों के अनुकूल हो तथा ऐसे भावों तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश रहता है जो कठोर रसों के अभिव्यञ्जक हों। विजली की कड़क, सूर्यचन्द्र के ग्रहण, उल्कापात, भूकम्प, प्रचण्ड वायु, धनपोर युद्ध, पैदल युद्ध, प्रहार और क्रोध पूर्ण ठक्ति प्रत्युक्तिओं की भ्रमण रहती है। माया और इन्द्रजाल बहुत बड़ी मात्रा में दिखलाये जाने का विधान है। बहुत से व्यक्ति

शक्तिशाली युद्ध की तैयारी में लगे रहते हैं जिनमें परस्पर फूट के दृश्य भी सम्मिलित रहते हैं। १६ पात्रों का समावेश विहित है जो अधिकतर देव, असुर, राक्षस, भूत, नाग, यक्ष इत्यादि होते हैं। रचना सात्वती और आरमटी वृत्ति में होती है। दशरूपककार ने भारतीय वृत्ति को भी सम्मिलित किया है। भारती एक सामान्य वृत्ति है। अतः उसका सम्मिलित करना भरत की मान्यता के विरुद्ध नहीं जाता। साहित्य दर्पण कार ने इसमें शान्त रस को भी स्वीकार किया है। विमर्श को छोड़कर सब सन्धिया होती हैं।

भरत ने इसके नायक का उदान्त चरित्र बतलाया है जो इसके उद्धत कथानक से मेल नहीं खाता। नाट्यदर्पण कार ने इसकी संगति इस प्रकार बैठाई है कि इसके पात्र यक्ष, राक्षस, भूत प्रेत इत्यादि होते हैं। ये मानव के लिये उद्धत हो सकते हैं किन्तु अपने वर्ग की दृष्टि से इनके उदात्त होने में कोई विरोध नहीं। अपने वर्ग में तो इनका चरित्र तुलनात्मक दृष्टि से उदात्त हो ही सकता है। इसके उदाहरण हैं त्रिपुरादाह, तारकोद्धरण, वीरभद्रविजय, मन्मथोन्मथन इत्यादि।

(३) ईहामृग- यह चार अकों का नाटक होता है। इसमें वस्तु आशिक रूप में प्रख्यात तथा आशिक रूप में कल्पित होती है। कथावस्तु का मूल ढांचा और पात्र प्रख्यात होते हैं, किन्तु उनका निर्वाह काल्पनिक ढंग से किया जाता है। अकों की संख्या में समानता होते हुये भी इसमें गर्भ सन्धि नहीं होती, केवल तीन सन्धिया होती हैं। साहित्यदर्पणकार का कहना है कि कुछ लोग इसे एकाङ्की नाटक मानते हैं।

ईहामृग का अर्थ है भेडिया। यह जीव अपने छल कपट और चालाकी के लिये प्रसिद्ध है। इस रूपक में इसी प्रकार के छल कपट किये जाते हैं इसीलिये इसका यह नाम पड़ा है। शनिक ने इसका अर्थ किया है ईहा में जो मृग (जंगली जीव), जिस प्रकार जंगली जीव ऐसी स्त्री की कामना करता है जिसका प्राप्त करना अशक्य होता है उसी प्रकार इस नाटक में भी नायक ऐसी नायिका की कामना करता है जिसका प्राप्त हो सकना उसके लिये कठिन होता है। नाट्यदर्पण कार ने अर्थ किया है जिसमें मृगों के समान केवल स्त्री की कामना की जाय। इसमें प्रतिनायक की ऐसी चेष्टा रहती है कि नायक अपनी प्रेयसी प्राप्त न कर सके। नायिका प्रायः दिव्य स्त्री होती है। प्रतिनायक अनेक प्रकार के छल कपट के द्वारा नायक को वञ्चित करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति ला देता है कि युद्ध अनिवार्य हो जाता है।

भरत ने ईहामृग की विशेषतायें बतलाते हुये लिखा है कि इसमें देव पुरुष स्त्रियों के लिये युद्ध में प्रवृत्त रहते हैं, किन्तु परवर्ती आचार्यों ने इस नियम में परिवर्तन कर मर्त्यपात्र को भी इस प्रकार के कथानक का पात्र बनने का अधिकार दे दिया है। दशरूपक के अनुसार नायक और प्रतिनायक में कोई एक मर्त्य हो सकता है, या दोनों मर्त्य हो सकते हैं या दोनों देव। नाट्यदर्पण कार का कहना है कि प्रधान नायक तो दिव्य ही होना चाहिये किन्तु उसमें अनेक उद्धत मानव दिखतभ्ये जाने चाहिये। किन्तु इसमें

सभी एक मत हैं कि समग्र जिस स्त्री के लिये हो वह दिव्य ही होनी चाहिये। पात्रों के उद्धत स्वभाव के विषय में भी मतभेद नहीं है। इसमें स्त्रियों का परिदेवन और क्रोध भी कुछ आचार्यों ने स्वीकार किया है। इसकी दूसरी विशेषतायें हैं- इसकी सुसबद्धता अर्थात् प्रत्येक अंक की कथा परस्पर सबद्ध एवं सुगठित होनी चाहिये। इसमें अविश्वास ही विरोध का मूल कारण होता है। युद्ध और समग्र का मूल कारण वास्तविकता को न समझना भी हो सकता है। इसमें विशेष रूप में सक्षोभ विद्रव रोष भाषण भेद, अपहरण अवमर्दन इत्यादि का अभिनय किया जाता है। कुछ लोग इसमें १० पात्र स्वीकार करते हैं कुछ १२ और कुछ ६ पात्रों में ही इसे सीमित रखना चाहते हैं। कुछ लोगों की सम्मति में भेद दण्ड वध इत्यादि का हेतु स्त्री के अतिरिक्त अन्य भी हो सकता है। इसमें शृङ्गार तथा शृङ्गाराभास दोनों दिखलाये जा सकते हैं। भरत का कहना है कि व्यायोग में जिस प्रकार के पुरुष जिस प्रकार के रस और जिस प्रकार की वृत्ति दिखलाई जाती हैं ईहामृग में भी वही सब होता है। इसमें भेदक केवल इतना है कि इसमें देवस्त्री का अभिनय किया जाता है।

विश्वनाथ ने इसके उदाहरण के रूप में कुसुमशेखरविजय का उल्लेख किया है। कीध ने रक्मिणी हरण को ईहामृग माना है। इसके अतिरिक्त वत्सराज का भी एक ईहामृग प्रसिद्ध है।

(४) समवकार- तीन अक्षों का एक मात्र रूपक। इसका कथानक प्रख्यात होता है जिसमें किसी देवता या राक्षस का सम्बन्ध दिखलाया जाता है।

दशरूपक के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति है- समवकीर्यन्तेर्था अस्मिन्निति अर्थात् जिसमें बाह्य प्रयोजन विखरे रहते हैं। आशय यह है कि समवकार का भेदक तत्व है प्रयोजनों की अनेकविधता। इसमें प्रयोजन अनेक होते हैं- अन्य रूपकों की भाँति केवल एक प्रयोजन नहीं। नाट्यदर्पण का मानते हैं कि त्रिवर्ग के जो पूर्व प्रसिद्ध उपाय होते हैं उन्हीं का इसमें समावेश किया जाता है। ये उपाय विखरे हुये भी हो सकते हैं और परस्पर सबद्ध भी। इसमें विमर्श सन्धि को छोड़कर चार सन्धियाँ होती हैं। प्रथम अंक में मुख प्रतिमुख ये दो सन्धियाँ होती हैं शेष दो अक्षों में एक एक क्रमशः गर्भ और निर्वहण सन्धि होती है। इसमें सभी तत्व (सन्धियों को छोड़कर) तीन तीन ही दिखलाये जाते हैं। तीन उपद्रव- (१) युद्ध या जलप्लावन जन्य (२) वायु अग्नि या गजेंद्रजन्य और (३) नगर के उपरोध से उत्पन्न। नाट्यदर्पणकार जीव, अजीव और उभयजन्य ते तीन उपद्रव मानते हैं। छल भी तीन प्रकार के दिखलाये जाते हैं- वक्त्रों अर्थात् योजना में अपने लोगों का छल कपट, शत्रु द्वारा जाल का फैलाव या दैव वश किसी अन्य ओर से। शृङ्गार तीन प्रकार का होता है- धर्म शृङ्गार अर्थ शृङ्गार और काम शृङ्गार। धर्म में अधिष्ठित रहते हुये और धार्मिक नियमों का पालन करते हुये यदि अपीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जाय तो वह धर्म शृङ्गार होता है। जहाँ अर्थ प्राप्ति के प्रलोभन से काम प्रवृत्ति देखी

जाय वह अर्थ शृङ्गार होता है, जहा उपभोग को आकाङ्क्षा और वासना की प्रेरणा से कामोपभोग में प्रवृत्ति देखी जाय वह कामशृङ्गार होता है। धर्म शृङ्गार का फल होता है पर स्त्री वर्जन और दानादिधर्म। इस प्रकार स्वपत्नी विषयक शृङ्गार का हेतु होता है धर्म और फल भी धर्म ही होता है। अर्थशृङ्गार वेश्याओं और रूपवान पुरुषों के लिये धन रूप फल का देने वाला होता है। काम शृङ्गार की नायिका होती है परासी या कन्या।

समवकार में तीन अंकों में तीन वत्स पृथक् पृथक् दिखलाये जाते हैं। प्रत्येक अंक में एक धर्म, एक कपट और एक उपद्रव दिखलाया जाता है। नाटक में प्रहसन भी होता है और वीथी के अंगों का भी समावेश रहता है। यह नाटक सब से लम्बा होता है। ७ घण्टे १२ मिनट लगे हैं। पहले अंक में १२ दूसरे में चार और तीसरे में दो नाटिका होती हैं। पात्रों की संख्या १२ होती है। कुछ लोग प्रत्येक अंक में १२ पात्र मानते हैं। कुछ लोग कुल मिलाकर १२ मात्र मानते हैं। नायक और प्रतिनायक तथा दोनों का एक एक सहायक, इस प्रकार प्रत्येक अंक में चार पात्र होते हैं। इस प्रकार पूरे नाटक में तीन अंकों में १२ पात्र होते हैं। प्रत्येक अंक की कथा अपने में पूर्ण होती है, किन्तु सम्पूर्ण समवकार का एक प्रयोजन होता है जिससे अंकों के प्रयोजन सबद्ध रहते हैं। रचना का क्रम इस प्रकार रहता है पहले आमुख दिखलाया जाता है, फिर तीनों अंकों के उपरोपक बीज की रचना की जाती है, प्रथम और द्वितीय दोनों अंकों के कथानक का पल्लान किया जाता है। फिर तीसरे अंक की संयोजना इस प्रकार की जाती है कि प्रथम दो अंकों का भी समन्वय हो जाता है। अनुसन्धानात्मक बुद्धि से अध्ययन करने पर समयका दर्शकों को विचित्र साधन में व्युत्पन्न भी बनाता है। सारांश यह है कि समन्वय में हास्यमिश्रित शृङ्गार रहता है, कपट, युद्ध और उपद्रव का समावेश रहता है। दैवी शक्ति की भी सहायता प्राप्त होती है। अनेक विषयों को एक में जोड़कर कथानक का निर्माण किया जाता है।

शास्त्रीय ग्रन्थों में समवकार का उदाहरण अमृतमन्युन बतलाया जाता है। इसी नाटक को अविमन्युन, पयोधिमन्युन नामों से भी याद किया जाता है। वीथ ने पास के पञ्चरात्र को भी समवकार का उदाहरण बतलाया है।

(५) व्यायोग—यह एकाङ्की होता है, व्यायोग शब्द का अर्थ है—‘विशेषणवा समानात् पुज्यन्ते कार्यार्थं सरभन्नेत्रेति व्यायोग’ अर्थात् विशेष रूप से चारों ओर से कार्य के लिये युक्त होते हैं या प्रयत्न करते हैं ठमे व्यायोग कहा जाता है। इस व्युत्पत्ति से ज्ञात हो जाता है कि इसमें कथावस्तु ऐसे नायकों से संबद्ध होती है जो फल प्राप्ति की आतुरता में अपने कार्यकलाप में निरन्तर सत्सम रहते हैं। इसमें केवल एक दिन की घटना को ही नाट्यविषय बनाया जाता है। इसीलिये इसे एकाङ्की रखने का निर्देश है। इसका नायक अल्पवय उद्यत होता है और अपने अपेक्षित फल को यथा सम्भव शीघ्र ही प्राप्त कर लेना चाहता है। इसका नायक प्रयत्नशील व्यक्ति होता है और कथानक भी प्रयत्न ही होता है।

नायक उद्धत होता है और शीघ्र अभीष्ट फल प्राप्त कर लेना चाहता है। इसीलिये बीजोपन्यास के बाद प्रयत्न दिखलाते हुये फल तक पहुच जाया जाता है। इसमें तीन सन्धिया होती हैं— मुख, प्रतिमुख और निर्वहण। भरत का मत है कि इसका नायक कोई राजर्षि होता है, दिव्यपात्र नायक नहीं हो सकता। किन्तु साहित्यदर्पण में दिव्य पुरुष का भी नायक होना स्वीकार कर लिया गया है। युद्ध या सघर्ष का भी नायक होना स्वीकार कर लिया गया है। युद्ध या सघर्ष का कारण कोई स्त्री नहीं हो सकती। इसीलिये इसमें स्त्री पात्र (नायिका) का होना अनिवार्य नहीं माना गया है। कथानक के औद्भत्य के अनुसार ही ओजगुण, दीप्तरस और आरभटी वृत्ति का इसमें प्राधान्य बतलाया गया है। भास का मध्यमव्यायोग और वत्सराज का किरातार्जुनीय इसके उदाहरण हैं।

(६) उच्छ्र (उत्सृष्टिकाङ्क) — अक नाम से ही इसका एकाङ्की होना सिद्ध हो जाता है। नाटक इत्यादि में रचना के खण्डों को भी अक नाम दिया गया है। उस अक से यह अक बड़ा भी होता है और भिन्न भी। इसकी शब्द की व्युत्पत्ति साहित्यदर्पण में वह बतलाई गयी है— 'उज्जान्ता दिसोमरूपमृष्टिर्यत्र' अर्थात् जिसमें मृष्टि विलोम रूप हो। किन्तु इसका आशय क्या है यह समझ में नहीं आता। नाट्यदर्पण में व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है— 'उज्जमणान्मुञ्जासृष्टिर्यत्र उत्सृष्टिका शोचन्त्य स्त्रिय ताभिरङ्कितत्वात् उत्सृष्टिकाङ्क' अर्थात् उत्सृष्टिका ऐसी स्त्रियों को कहा जाता है जिनका जीवन उज्जमण की ओर जा रहा है अर्थात् विलाप करने वाली स्त्रियां उनसे अकित होने के कारण उसे उत्सृष्टिकाङ्क कहा जाता है। स्त्रियों का विलाप प्रलाप ही इसकी सामान्य विशेषता है। सामान्य रूप से इसका वृत्त इसकी सामान्य विशेषता है। सामान्य रूप से इसका वृत्त ख्यात (प्रसिद्ध) होता है। किन्तु भरत ने कहीं कहीं अख्यात वृत्त में भी इसकी सत्ता स्वीकार की है। साहित्य दर्पण के अनुसार प्रसिद्ध इतिवृत्त को ही कवि अपनी बुद्धि से प्रपञ्चित कर उसे नया रूप दे देता है। इसमें जय पराजय दिखलाये जाते हैं। शौर्यमद से अवलिप्त लोग परस्पर दोषों की घोषणा करते हुये वाग्युद्ध भी करते हैं। किन्तु यह वाग्युद्ध होता उन्हीं का है जो शोक परायण होते हैं। अतः इसमें करुण रस की प्रधानता होती है। वैसे शोक के अंग रूप में निर्वेदजदक वचनों का समावेश होता ही है और व्याकुल लोगों की नाना चेष्टाओं का वर्णन भी किया जाता है। मुख्य विषय स्त्रियों का परिदेवन ही होता है जिसके कारणरूप में सघर्ष और युद्ध का चित्रण किया जाता है। सघर्ष और युद्ध का कथन मात्र होता है। उसका प्रदर्शन रंगमञ्च पर नहीं किया जाता।

इसके पात्र अधिकांश प्राकृत जन ही होते हैं। दिव्य पात्रों को विलाप प्रलाप करते हुये दिखलाना ठीक नहीं माना जाता। इसमें सात्वती, आरभटी और कैशकी वृत्तियां नहीं होतीं। बीध का चरना है कि इस विधा का प्रयोग रूपक के अन्तर्गत रूपक को दिखलाने के लिये होता है। वही वही इस प्रकार के अन्तर्वर्ती अंक को प्रेशणक भी कहा गया है। भास का उच्छ्रम इसका उदाहरण है।

(७) भाण- यह घणघातु से बना शब्द है जिसका अर्थ है कथन करना। इसमें जनता का मनोरञ्जन कह कर किया जाता है अभिनय बहुत कम होता है। इसीलिये इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होती है। वह रगमञ्च पर आकर या तो अपनी वीरता या शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन करता है या दूसरों की वीरता इत्यादि का वर्णन करता है। इसीलिये इसमें शृङ्गार और वीर की प्रधानता रहती है। अन्य रस अग्ररूप में आते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य लोकाभिरुचि होता है क्योंकि इसमें विट, धूर्त, कुट्टिनी इत्यादि का वर्णन किया जाता है। इन बातों का ज्ञान तो सामान्य स्तर से ऊँचे राज पुरुषादि को भी अपेक्षित है। इसमें कोई धूर्त रगमञ्च पर आता है और विभिन्न घटनाओं का वर्णन इस रूप में करता है कि उपस्थित जनता उसमें अनुरञ्जन प्राप्त करती है। वह या तो बदमाशों, वेश्याओं, व्यभिचारिणी औरतों, कुट्टिनीयों और दूतियों का वर्णन कर वार्ताकरण को शृङ्गारमय बना देता है या धूर्तों चोरों जुआरियों के साहस पूर्ण कृत्यों का वर्णन कर वीररस की सृष्टि करता है। गणिकायें, मेष युद्ध, मुक्केबाजी, दो प्रतिद्वन्द्वियों के झगड़े, मदन महेत्सव इत्यादि सामान्य विषय हैं जिनका समावेश भाण में होता है। सुनाने वाला व्यक्ति किसी कल्पित व्यक्ति से वार्तालाप करता है और आकाश की ओर देखकर सुनने का अभिनय करते हुये उसकी उक्तियों को देहराता जाता है तथा उसकी ओर से भी उत्तर प्रत्युत्तर करता जाता है। इसमें सभी कुछ वाचिक होता है, इसलिये केवल भारती वृत्ति उसमें रहती है। यद्यपि वीर और शृङ्गार का इसमें उपादान किया जाता है फिर भी इसमें न कैशिकी मानी जाती है न सात्वती और न आरभटी। चतुर्भाषी चारभाषों का एक सकलन है। इसका प्रचार बहुत हुआ है और इसकी अनेक कृतिया उपलब्ध होती हैं।

(८) प्रहसन- यह एक अन्वर्थ सज्ञा है, इसका मुख्य प्रवृत्ति निमित्त मजाक उठाना है। भरत के अनुसार यह दो प्रकार का होता है- शुद्ध और सकीर्ण। भरत का सकीर्ण दशरूपकवक्त्र का विकृत है और सकीर्ण एक नवीन भेद है। शुद्ध प्रहसन में किसी बौद्ध सन्यासी, किसी शैव, वैष्णव या भगवद्भक्त को हसी उड़ाई जाती है। इसी प्रकार कोई तापस भिक्षु, श्रोत्रिय या ब्राह्मण भी प्रहसन में हास्य का विषय हो सकता है। विकृत प्रहसन में वेश्या, चेट, नपुंसक, धूर्त बदमाश, कुट्टिनी, दूती इत्यादि का मजाक उड़ाया जाता है। यदि इसमें वीरों के अंगों का साङ्ख्य हो जाय तो यह सकीर्ण प्रहसन कहा जाता है। इसमें अभिनेता जिसकी हसी उठाना चाहता है उसकी जैसी बोली, वेश, चेष्टा इत्यादि बनाकर लोगों को हसाता है, उसकी पाति चाल चलता है और उन्हीं की हास्यजनक वस्तुओं को दिखलाता है। इसमें एक या अधिक पात्र अभिनय करते हैं। इसका प्रधान रस हास्य होता है तथा दूसरे रस भी हास्य पर्यवसायी ही होते हैं। विश्वनाथ के अनुसार यह दो अंकों का भी हो सकता है। इस विधा की सुदीर्घ परम्परा भारतीय साहित्य में रही है और प्रहसन परक कई कृतिया उपलब्ध होती हैं। मदनविलास इसका पुराना उदाहरण है। लटकमेतक दो अंकों में लिखा प्रहसन है। धूर्तसमागम एक अन्य प्रहसन है।

(९) वीथी- इसका अर्थ है मार्ग। इसके १३ अंग बतलाये गये हैं जो नाटकादि सभी रूपकों में होते हैं। इस प्रकार यह एक मार्ग है जिससे होकर नाटक की अन्यविधाओं तक पहुँचा जा सकता है। नाट्यदर्पण में वीथी का अर्थ टेढ़ा मेढ़ा मार्ग कर इसमें वक्रोक्ति की प्रधानता बतलाई गई है। वीथ ने एक अन्य मत का भी उल्लेख किया है कि वीथी का अर्थ होता है माला। माला में जिस प्रकार अनेक रूपों के पुष्पों का समावेश होता है उसी प्रकार वीथी में भी अनेक रस सम्मिलित रहते हैं। इसमें भी भाण के समान आकाशभाषित का प्रयोग होता है। इसका नायक उत्तम, मध्यम या अधम कोई भी हो सकता है। या तो कोई एक पात्र आकाश भाषित करता है या दो तीन पात्र सवाद का प्रयोग करते हैं। क्रमशः सभी रस प्रयुक्त हो सकते हैं। अन्य सब बातें भाण के समान ही होती हैं। कतिपय आचार्य वीथी में वैशिकी वृत्ति को स्वीकार करते हैं। किन्तु नाट्यशास्त्र में इसे स्वीकार नहीं किया गया है। इसमें एक ही अंक में कई अर्थप्रकृतियाँ होती हैं। सन्धिया केवल दो ही होती हैं मुख और प्रतिमुख। इसका कोई प्रतिष्ठित उदाहरण नहीं मिलता। विश्वनाथ ने मालविका नामक वीथी का उल्लेख किया है।

छोटे रूपकों के उक्त ८ भेद केवल ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। अब इनका प्रचलन साहित्य जगत में बिल्कुल नहीं है। पुराने उदाहरण भी बहुत कम पाये जाते हैं। कुछ प्रकार तो ऐसे हैं कि उनका एक भी उदाहरण नहीं मिलता। यह सच है कि अधिकांश प्राचीन साहित्य लुप्त हो गया है। सम्भव है किसी समय इन सभी की परम्परा विद्यमान रही हो। यह भी सम्भव है जैसा कुछ लोग मानते हैं कि एक ही रचना को लेकर इन प्रकारों के सङ्घन बना दिये गये हों और इनका नामकरण कर दिया गया हो। वस्तुतः उपलब्ध साहित्य तो ऐसी ही कहानी कहता है। कुछ प्रकारों के अधिक उदाहरण मिलते हैं।

उपरूपक

नृत्य और संगीत नाट्य की उपरजक कलाएँ हैं। नाटकों में इन कलाओं का अनिवार्य उपयोग होता है। भरत का कथन- 'नृत्य और गीत का इतना अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये कि कथानक बहुत दूर पड़ जाय और न वस्तु का इतना विस्तार करना चाहिये कि नृत्यगीत का अवसर ही न रहे। यह कथन स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि नाट्य का नृत्य और गीत से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। वैसे तो प्रत्येक नाट्यकृति में नृत्य का योगदान रहता ही है किन्तु कतिपय नाट्यकृतियों में वस्तु बहुत छोटी होती है- अधिक विस्तार नृत्य का ही होता है उनका उद्देश्य नृत्य का आनन्द देना ही होता है, कथानक तो योजना के लिये सम्मिलित कर लिया जाता है। इस प्रकार के रूपकों को विश्वनाथ ने उपरूपक की संज्ञा दी है यद्यपि उनकी परम्परा विश्वनाथ के बहुत पहले चल रही थी।

नृत, नृत्य और नाट्य- नृत्यकला के ये तीन पारिभाषिक शब्द हैं। नृत और नृत्य शब्द 'नृती' गात्रविशेष धातु से बने हैं जिसका अर्थ होता है अग सञ्चालन। नाट्य शब्द नट् धातु से बना है जिसका अर्थ है अवस्पन्दन अर्थात् अंगों का किञ्चित् संचलन। 'नृत' में किसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति नहीं होती। इसमें भाव का नहीं ताल और लय का अनुसरण किया जाता है। ताल और लय के अधीन हाथ, पैर, नेत्र, गर्दन इत्यादि का इस प्रकार चलाना जिसमें एक सुन्दरता उत्पन्न हो जाय नृत कहलाता है। नर्तकिया रगमञ्ज पर आकर अग सञ्चालन के द्वारा दर्शकों के मन को खींच लेती हैं यही 'नृत' है। यह दर्शन की वस्तु है, सुनने के लिये हाथ की ताली (ताल) का द्रुत, मध्यम और विलम्बित लय से शब्द मात्र होता है। यह नृत सप्ताह के प्राय सभी देशों में प्रचलित है और नाट्य के उद्भव में इसका बहुत बड़ा योगदान रहा है। धार्मिक उत्सवों, त्योहारों, मेला दशहरा आदि समारोहों, फसल की कटाई वोआई आदि अवसरों पर हर्ष को प्रकट करने के लिये नृत की योजना की जाती है। विवाह पुत्र जन्म इत्यादि हर्ष के अवसरों पर इसका आयोजन मन को खींच लेता है, दुःख के अवसरों पर इसको वर्जित किया गया है। नाट्य में इसका बहुत अधिक योगदान है। ग्रीक नाट्य का उद्भव इस प्रकार के नृत्यों से ही हुआ है। अंग्रेजी नाट्य के प्रारम्भ में इस प्रकार की परम्परा विद्यमान थी।

अग सञ्चालन का दूसरा प्रकार है नृत्य। इसमें पदार्थाभिनय किया जाता है। पानी भरने, घड़े को सर पर रखने शीशा देखकर शृङ्गार करने इत्यादि की क्रियायें हाथों के सकेत से प्रकट करते हुये जो अग संचालन किया जाता है जिसमें पदार्थाभिनय के साथ पैर निरन्तर गतिशील रहते हैं और नेत्र इत्यादि अंगों की चेष्टायें भी चलती रहती हैं।

नृत और नृत्य दोनों के दो दो भेद होते हैं- कोमल नृत्य जिसे लास्य कहा जाता है और कठोर नृत्य जिसे ताण्डव की सज्ञा दी जाती है। तीसरा स्तर नाट्य का आता है। यह रसाश्रित होता है। रस निष्पत्ति के लिये विभाव अनुभाव इत्यादि के परिशीलन की आवश्यकता होती है जिनका परिज्ञान वाक्यार्थ के द्वारा होता है। अतः वाक्यार्थाभिनय को नाट्य कहा जाता है। इस प्रकार गात्रविशेष मात्र नृत, भावाभिनय नृत्य और वाक्यार्थाभिनय नाट्य कहलाता है। नृत का आश्रय नृत्य में और इन दोनों का आश्रय नाट्य में लिया जाता है। दशरूपक नाट्य के प्रकार हैं जिनमें प्रधानता वाक्यार्थाभिनय की रहती है।

रसाश्रित उक्त भेदों के अतिरिक्त नृत्य के आश्रित भी कुछ भेद होते हैं जिन्हें विश्वनाथ ने उपरूपक की सज्ञा दी है और अब सामान्यतः यह सज्ञा स्वीकार की जाती है।

उपरूपक भेदों का सर्वेक्षण

उपरूपक नामकरण तो सम्भवतः विश्वनाथ का ही दिया हुआ है किन्तु इनके भेदों

की परम्परा पुरानी है। भरत ने तो इनका उल्लेख नहीं किया है— सम्भवतः भरत के समय तक नृत्य के आधार पर अभिनय भेदों की परम्परा का प्रचलन नहीं हुआ था। कोहल के समय तक ये नृत्य रूपक कुछ कुछ स्वरूप लेने लगे थे। कुछ लोग कोहल को ही इस विधा का प्रवर्तक मानते हैं। किन्तु इनका सर्वप्रथम व्यवस्थित उल्लेख धनञ्जय ने दशरूपक में किया। इन्होंने सम्भवतः सर्वप्रथम प्रश्न उठाया है कि जबकि डोम्बी, श्रीगदित इत्यादि नृत्य पर आधारित ७ भेद और पाये जाते हैं तब रूपकों की सख्या १० मानना कहा तक ठीक है और इसके नृत्त, नृत्य और नाट्य के भेद समझाते हुये कहा है कि नृत्याश्रित रूपकों का स्वरूप ही भिन्न होता है। वे रसाश्रित न होकर दाल सय या भावाश्रित होते हैं। अतः उन्हें रूपकों में सन्निविष्ट नहीं किया जा सकता। धनञ्जय के माने हुये नृत्याश्रित ७ रूपक हैं— डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान रासक और काव्य। इस विचारधारा को उनके कनिष्ठ समसामयिक अभिनवगुप्त ने आगे बढ़ाया। इन्होंने ८ भेद स्वीकार किये जिनमें श्रीगदित और काव्य को छोड़कर ५ भेद तो धनञ्जय के ही स्वीकार किये, उनमें तीन और जोड़ दिये— प्रेक्षणक, रासाज्रीड और हल्लीसक। हेमचन्द्र ने १० नृत्यरूपकों का उल्लेख किया— जिनमें अभिनवगुप्त के ८ धनञ्जय का श्रीगदित और अपना गोष्ठी नामक एक भेद और जोड़कर १० की सख्या पूरी की। हेमचन्द्र के बाद रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इस सख्या को १३ तक पहुँचाया। इनमें डोम्बी को छोड़कर ६ भेद धनञ्जय से, हल्लीसक और प्रेक्षणक अभिनवगुप्त से, गोष्ठी हेमचन्द्र से तथा ४ अपने सङ्क, दुर्मिलिता, शय्या और नाट्यरासक जोड़कर (६ + २ + १ + ४) १३ की सख्या पूरी की। इनका नाट्यरासक अभिनव का रासाज्रीड ही है। अग्निपुराण में १७ भेद किये गये और शारदातनय ने इनकी सख्या २० कर दी। इनमें रामचन्द्र गुणचन्द्र के शय्या और भाण को छोड़कर १३ में ११ भेद जिनमें दुर्मिलिता को दुर्मलिका और रासक के स्थान पर सासक कर दिया गया। धनञ्जय द्वारा निर्दिष्ट डोम्बी और रर्ष द्वारा उल्लिखित लोटक शामिल कर लेने से १३ भेद बन गये। इनमें ७ भेद और जोड़ दिये गये— नाटिका, सत्ताप, शिल्पक, उत्ताप्यक, मल्लिका, कल्पवल्ली और पारिजातक। इस प्रकार शारदातनय के २० भेद हो गये। विश्वनाथ के समय तक आते आते नृत्य रूपकों की यही स्थिति थी। विश्वनाथ ने उन्हें उपरूपक की सज्ञा प्रदान की और उनकी सख्या १८ मानकर उन्हें परिनिष्ठित कर दिया। विश्वनाथ द्वारा मान्य सख्या और उनका स्वरूप ही साहित्य जगत में प्रतिष्ठित है और उसे ही अन्तिम माना जाता है। विश्वनाथ ने शारदातनय के २० भेदों में शय्या, भाण, मल्लिका, कल्पवल्ली और पारिजातक ये ५ भेद छोड़ दिये। इस प्रकार शारदातनय के १५ भेद स्वीकार कर लिये तथा तीन अपनी ओर से जोड़ दिये विलासिका, प्रकरणी और भाव। वस्तुतः प्रकरणों की कल्पना नाटिका के आधार पर की गई है, क्योंकि प्रधान रूपक दो ही हैं— नाटक और प्रकरण। अतएव नाटिका के समान ही प्रकरणों भी एक भेद मान लिया गया। नाटिका और प्रकरणों में वही भेद है जो नाटक

और प्रकरण में हैं। वस्तुतः ये दोनों भेद रूपक भेदों के निकट पड़ जाते हैं, अतः इन्हें पूर्णरूप से उपरूपकों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह है कि भरत ने रूपक के १० भेदों के साथ ११वें भेद नाटिका का भी उल्लेख कर दिया। इनका कथानक भी परिमाण में कुछ अधिक ही होता है।

नाटिका का रूप बधा बधायी होता है। इसका प्रधान नायक प्रख्यात व्यक्ति होता है तथा कथानक कल्पित होता है। नायिका कुलवती राजकुमारी होती है, वह अभीष्ट नायक के अन्तपुर में किसी न किसी प्रकार पहुँच जाती है। अधिकतर राजा का मन्त्री किसी राजकुमारी के विषय में यह सुनकर कि ज्योतिषियों के कथानुसार उसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा किसी न किसी प्रकार उसे अपने राजा के अन्तपुर में ले आता है जहाँ किसी विपत्ति में फँस जाने के कारण उसे राजा के अन्तपुर में प्रच्छन्न रूप में रानी की दासी बनकर रहना पड़ता है। सयोगवश राजा का उससे प्रच्छन्न प्रेम हो जाता है जिसमें विदूषक और उसकी एक सहेली का भी योगदान रहता है। तब रानी को ओर से विघ्न लगते हैं जिससे छुटकारा पाने के लिये राजा को प्रयत्न करने पड़ते हैं। अन्त में उसका राजकुमारी होना सिद्ध हो जाता है जो अधिकतर रानी की ही कोई रिश्तेदार होती है। तब रानी उसे राजा से विवाह करने की आज्ञा दे देती है। इस प्रकार प्रसिद्ध नायक और कल्पित कथानक के कारण नाटिका में नाटक और प्रकरण दोनों का मिला जुला रूप होता है। प्रकरणिका भी नाटिका के समान ही होती है। अन्तर यह होता है कि प्रकरणिका में नायक कोई प्रख्यात राजपि नहीं होता अपितु कोई सार्थवाह या बनिया होता है। वैसे प्रकरणिका में कोई ऐसी बात नहीं होती जिससे उसे पृथक् रूप में एक भेद मान लिया जाय।

विश्वनाथ द्वारा माने गये १८ भेदों में नाटिका और प्रकरणिका को छोड़ देने से १६ भेद शेष रह जाते हैं जिनमें १० एकाङ्की हैं और ६ अनेक अकों वाले। नाटिका और प्रकरणिका में तो ४ अक होते ही हैं। शेष का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(अ) अनेक अकों वाले उपरूपक

(१) प्रस्थान- दो अकों का रूपक। इसका नायक दास और नायिका दासी होती है। उपनायक हीन जाति का होता है। भारती और कैशिकी ये वृत्तियाँ होती हैं और इसमें पूर्वाग, मान, प्रवास का अभिनय रहता है और वसन्त का उत्कण्ठा पूर्ण वर्णन किया जाता है। चार खण्डों में बाँटकर नृत्य किया जाता है। अन्त में वीर रस का भी निबन्धन रहता है। अभीष्ट अर्थ का उपसंहार सुतापान के द्वारा किया जाता है। ताल और लय का मिश्रण और विलास की अधिकता इसकी विशेषतायें हैं। उदाहरण—^{मिथुन}शुद्धाविलक।

(२) शिन्पक- चार अकों का उपरूपक। इसमें चारों वृत्तियाँ होती हैं। शान्त और हास्य को छोड़कर सभी रस होते हैं। ब्राह्मण नायक होता है, उपनायक हीन प्रकृति का

व्यक्ति होता है। श्मशान इत्यादि का वर्णन रहता है। आशका, तर्क, सन्देह, ताप, उद्वेग, प्रसक्ति, प्रयत्न इत्यादि २७ अंगों में इसकी रचना की जाती है। उदाहरण— कनकावती।

(३) सलापक— यह तीन या चार अंकों का उपरूपक होता है। इसका नायक कोई पाखण्डी व्यक्ति हुआ करता है, करुण और शृङ्गार को छोड़कर अन्य रस होते हैं। नागरोपरोध, छल, उपद्रव का अभिनय किया जाता है। इसमें न तो कैशिकी वृत्ति होती है न भरती। उदाहरण मायाकापालिक।

(४) दुर्मल्लिका— नाट्यदर्पण में इसका नाम दुर्मल्लिका माना गया है। किन्तु दोनों के लक्षणों में पर्याप्त अन्तर है। नाट्यदर्पण की सम्मति में कोई दूती अश्लील कथाओं द्वारा युवक, युवतियों के चौर्यरत का वर्णन करती है और उसकी बातें प्राम्यकथाओं से भरी होती हैं। नीच जाति होने से धन मांगती है तथा मिल जाने पर और अधिक मांगती है। साहित्य दर्पण के अनुसार इसमें चार अंक होते हैं— वृत्तियाँ कैशिकी और भारती होती हैं। इसमें गर्भ सन्धि नहीं होती, नागरिक व्यक्ति इसके पात्र होते हैं जिनकी सख्या बहुत कम होती है। पहला अंक ६ घड़ी का होता है जिनमें बिट की हसी मजाक चलती है, दूसरा अंक १० घड़ी का होता है जिसमें विदूषक की हसी मजाक दिखलाई जाती है, तीसरे में पीठमर्द का विलास रहता है जो कि १२ घड़ी तक चलता है, चौथा अंक २० घड़ी तक चलता है जिसमें नायक की क्रीड़ा दिखलाई जाती है। उदाहरण— बिन्दुमती।

(५) ब्रेटक— इसका उल्लेख भाव प्रकाशन में भी हुआ है। इसमें ५७८ या ९ अंक हो सकते हैं। इसका नायक दिव्य मानव होता है और विदूषक प्रत्येक अंक में रहता है। इसीसे सिद्ध होता है कि इसका अंगी शृङ्गार रस ही हो सकता है। इसके उदाहरण हैं— विक्रमोर्वशी, स्तम्भितरम्भक, मदलेखा, मेनकानहुष।

(६) सट्टक— इसमें अंको की सख्या नियत नहीं होती। इसके अंको को जवनिका कहा जाता है। न तो प्रवेशक होता है न विष्कम्भक, अद्भुत रस की मात्रा बहुत अधिक होती है। सभा गानों में यह नाटिका के समान होता है। उदाहरण— आनन्दसुन्दरी, कर्पूरमञ्जरी।

(आ) एकाङ्की उपरूपक

जैसा कि बतलाया जा चुका है इनकी सख्या १० होती है। इनमें अधिकांश में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है और सौ पात्रों का अधिक्य रहता है। अधिकांश एकाङ्की उपरूपकों में हास्य और शृङ्गार का प्रधान्य रहता है। कई उपरूपकों के उदाहरण नहीं पाये जाते, क्योंकि वास्तविक रूपक की अपेक्षा इनमें गीत नृत्य, पाद्य की प्रधानता रहती है और कहीं कहीं मूल नाट्य भी रहता है। कथा का व्याज बहुत धीन होता है। कुछ ही घेद ऐसे हैं जिनमें उदात्तता पाई जाती है, अन्यथा मनोरञ्जन परक नृत्य इसमें अधिक रहते हैं। १० उपरूपकों का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

(१) गोष्ठी- इसमें कुल मिलाकर १५,१६ पात्र होते हैं, ९ या १० पुरुष पात्र और ५६ स्त्री पात्र। सभी पात्र जन साधारण से लिये जाते हैं और सामान्य जनजीवन का अभिनय प्रस्तुत करते हैं। इसके सवाद अधिकतर हल्के फुल्के होते हैं जिनमें उदात्तता नहीं होती। इसमें मुख, प्रतिमुख और निर्वहण ये तीन सन्धियां हो होती हैं क्योंकि सघर्ष अधिक नहीं होता। इसमें पानता कामशृङ्गार की होती है और कैशिकी वृत्ति का विशेष आश्रय लिया जाता है। साहित्य दर्पण में इसका उदाहरण दिया गया है- रैवतमदनिका।

(२) नाट्यशासक- इसका उल्लेख भावप्रकाशन, नाट्यदर्पण और साहित्यदर्पण में किया गया है। नाट्यदर्पण में इसकी परिभाषा अत्यन्त सक्षिप्त दी गई है- वसन्त आने पर स्त्रियां प्रेम के आवेश में भरकर जब राजाओं के चरित्र को नृत्य गीत के द्वारा प्रस्तुत करती हैं तब उसे नाट्यशासक की सजा दी जाती है। साहित्यदर्पण में कुछ अधिक विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसके अनुसार इसमें किसी उदात्त चरित्र का नायक के रूप में उपादान किया जाता है और पीठमर्द (नायक के समान तथा उससे घट कर गुणों वाला) उपनायक (सहायक) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें ताल और लय तथा संगीत अधिक मात्रा में होता है। हास्य रस अग्रा होता है और पुष्कल रूप में शृङ्गार का समावेश किया जाता है। नायिका वासकसज्जा होती है अर्थात् एक स्त्री नायिका के रूप में शृङ्गार करके नायक के आने की प्रतीक्षा करती है और दूसरी नृत्य के साथ अभिनय करती हुई उसी के चारों ओर घूमती है। इसमें प्रतिमुख सन्धि का अभाव होता है। कभी कभी मुख सन्धि के बाद निर्वहण सन्धि आ जाती है और कभी कभी अन्य शास्त्रिक कथा का समावेश कर दिया जाता है जिससे गर्भ और विमर्श सन्धियों का भी समावेश हो जाता है। हास्य के सभी अंग इसमें आ जाते हैं। नर्मवती नाट्यशासक में दो सन्धियों का उपादान हुआ है और विलासवती में चार अंकों का। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भारतदुर्दशा की रचना नाट्यशासक के रूप में की थी। किन्तु शास्त्रीय लक्षणों से उसका मेल नहीं बैठता। सम्भवतः भारतेन्दु की नाट्यशासक विषयक कल्पना कुछ भिन्न थी। किन्तु इसका उन्होंने उल्लेख नहीं किया।

(३) उल्लास्य- इसका निरूपण भावप्रकाशन में किया गया है। साहित्य दर्पण में इसका परिचय इस प्रकार दिया हुआ है- इसमें दिव्य वस्तु का उपादान होता है और इसका नायक उदात्त होता है। शिल्पक नामक उपरूपक में जो २७ अंग बताये गये हैं वे इसमें भी होते हैं। इसमें तीन रसों का समावेश होता है- हास्य, शृङ्गार और करुण, समग्र बहुत अधिक दिखलाया जाता है, आसुओं का भी समावेश रहता है और संगीत अन्य मनोहरता भी रहती है। इसमें चार नायिकाएँ होती हैं। इसका उदाहरण है 'देवी महादेवम्' कुछ लोगों के मत में इसमें कभी कभी ३ अंक भी होते हैं।

(४) काव्य- इसका उल्लेख नृत्यपरक रूपक भेदों में दशरूपकम् में भी किया गया है। इसके अतिरिक्त अग्नि पुराण, भाव प्रकाशन में भी इसको स्थान दिया गया है। इसमें

हास्य और शृङ्गार का बाहुल्य होता है। इसकी नायिका कुलटा वेश्या होती है। इसमें आरम्भ को छोड़कर तीन वृत्तियाँ होती हैं अर्थात् विषय वस्तु में कठोरता नहीं होती। इसमें भग्नताल मात्रा और लास्य का बहुत प्रयोग होता है। विदूषक और चिट का प्रयोग भी आवश्यक है। नायिका उच्च गुणों वाली दिखलाई जाती है। इसका उदाहरण है—
यादवोदय।

(५) प्रेक्षण या प्रेहण- इसमें सभी वृत्तियाँ होती हैं। कोई हीन पात्र इसके नायक के रूप में दिखलाया जाता है। न इसमें सूत्रधार होता है न विष्कम्भक न प्रवेशक। गर्भ और विमर्श सन्धिया भी नहीं होती। इसमें युद्ध भी दिखलाया जाता है और क्रोध पूर्ण वार्तालाप भी। नेपथ्य में नान्दीपाठ किया जाता है और प्ररोचना का भी प्रयोग होता है अर्थात् कवि और काव्य की प्रशंसा भी आरम्भ में की जाती है। इसका उदाहरण है वालिवध इसका उल्लेख अभिनव गुप्त ने भी किया है और नाट्यदर्पण भाव प्रकाशन काव्यानुशासन में भी इसका निरूपण किया गया है। नाट्यदर्पण में लिखा है कि गलियों में समूह में, चौराहों पर मद्यशालाओं में जो बहुत से पात्र मिलकर विशेष प्रकार के नृत्य के द्वारा किसी वस्तु का प्रदर्शन करते हैं वह प्रेहण कहलाता है। भाव प्रकाशन में त्रिपुरमर्दन और नृसिंहविजय ये दो उदाहरण दिये गये हैं।

(६) रासक- इसका उल्लेख दशरूपक में भी किया गया है और अभिनवगुप्त ने भी इसे स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त नाट्यदर्पण भावप्रकाशन और काव्यानुशासन में भी इसका निरूपण है। नाट्यदर्पण के अनुसार १६१२ और ८ नायिकायें पिण्डीबन्ध इत्यादि विन्यास में जिसमें नृत्य करते हैं उसे रासक कहा जाता है। साहित्यदर्पण में नृत्य के अतिरिक्त अभिनय भी सम्मिलित कर दिया गया है। इसके अनुसार रासक में ५ पात्र होते हैं और मुख तथा निर्वहण ये दो सन्धियाँ होती हैं। कुछ लोग प्रतिमुख सन्धि का होना भी स्वीकार करते हैं। भारती और वैशिकी ये दो वृत्तियाँ होती हैं। इसमें अनेक भाषाओं और उपभाषाओं तथा अनेक प्रकार की प्राकृतों का प्रयोग किया जाता है। सूत्रधार का अभाव होता है किन्तु नान्दीपाठ किया जाता है। वीथी के सभी अंग रहते हैं। विभिन्न कलाओं का प्रयोग किया जाता है। इसकी नायिका प्रख्यात होती है और नायक मूर्ख। उदाहरण मेनकाहितम्।

(७) श्रौगदित- इसका उल्लेख दशरूपक के समय से ही प्रारम्भ हो जाता है अभिनवगुप्त रामचन्द्रगुणचन्द्र शारदातनय प्रभृति अनेक आचार्यों ने इसे मान्यता दी है। नाट्यदर्पण के अनुसार जिसमें कोई कुलाद्रिना अपने पति के शौर्य, त्याग, औदार्य प्रभृति गुणों का गति के माध्यम से अपनी सखी के सामने उसी प्रकार वर्णन करती है मानो लक्ष्मी विष्णु का वर्णन कर रही हो फिर पति के द्वारा विद्युक्त होने पर गीत का स्वर क्रमशः उपात्म्य परक होता जाता है उस रूपक को श्रौगदित की संज्ञा प्राप्त होता है। साहित्यदर्पण के अनुसार इसकी वस्तु प्रख्यात होती है नायक प्रख्यात और उदात्त होता

है। नायिका भी प्रसिद्ध होती है। गर्भ और विमर्श सन्धिया इसमें नहीं होती। पदार्थ के स्थान पर पद का अभिनय किया जाता है। अतः इसमें भारतीय वृत्ति की प्रधानता होती है। कीच के अनुसार इसमें श्रीशब्द का प्रायः उल्लेख किया जाता है और श्रीरूप धारिणी कोई नटी बैठकर पद गाती है। साहित्यदर्पण में इसका उदाहरण दिया गया है जौडारसातल और कीच ने साधव रचित सुमद्राहरण को एकमात्र इस भेद की रचना कहा है।

(८) विलासिका- इसका एकमात्र उल्लेख साहित्य दर्पण में ही है। इसमें शृङ्गार की अधिकता होती है, तात्पर्य के दसों अंग विद्यमान रहते हैं। विदूषक, पीतमर्द और चिट इसमें विशिष्ट पात्र होते हैं, नायक निम्नकोटि का होता है, वस्तु बहुत बड़ी होती है। किन्तु वेषभूषा और नेपथ्य तथा नाचगान की अधिकता होती है; गर्भ और विमर्श ये दो सन्धिया नहीं होती। कुछ लोग इसे लासिका की सजा प्रदान करते हैं जिसका दुर्भालिका में अन्तर्भाव हो जाता है। इसका कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं होता।

(९) हलसीस- इसका वर्णन नाट्यदर्पण, काव्यानुशासन, भाव प्रकाशन इत्यादि ग्रन्थों में भी पाया जाता है और अभिनवगुप्त ने भी इसका उल्लेख किया है। यह एक प्रकार का नृत्य है जिसमें ८, १० सिमा मण्डल बनाकर तथा एक साथ नायक की मध्य में रखकर उसी प्रकार नाचती है जिस प्रकार वज्रभूमि में गोपी कृष्ण नृत्य को परिभाषती है। इसमें कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है नायक की वाणी उदात्त होती है तथा ताल और लय का बाहुल्य होता है। मुख और निर्वहण दो सन्धिया होती हैं। इसका उदाहरण है- केलिरैवतकम्।

(१०) भाणिका- इसका उल्लेख अनेक आचार्यों ने किया है। यह भाग का सजातीय उपरूपक है। इसमें नेपथ्य विधान अत्यन्त मनोरम होता है, मुख और निर्वहण ये दो सन्धिया होती हैं, कैशिकी और भारतीय ये दो वृत्तियाँ होती हैं। नायिका कोई उच्चकोटि की स्त्री होती है और नायक हीन कोटि का पुरुष। इसके ७ अंग माने गये हैं जिनमें इसकी वस्तु का विस्तरेषण हो जाता है। इसमें प्रसंगवश कार्य का वर्णन किया जाता है (उपन्यास); निर्वेदपूर्ण कथन किये जाते हैं (विन्यास); भ्रान्ति का नाश होता है (विशोध); मिथ्या कथन किये जाते हैं (साध्वस); क्रोध और पीड़ा से उपलब्ध दिये जाते हैं (समर्पण); कोई दृष्टान्त दिष्ट जाता है (निवृत्ति); और अन्त में कार्य का समापन किया जाता है (तहार) इन्हीं सात अंगों में भाणिका की योजना की जाती है।

शारदातन्त्र ने चार अन्य उपरूपकों का वर्णन किया है जो साहित्य दर्पण में उल्लिखित नहीं हैं- (१) पारिजात या पारिजातलता- उदाहरण मगधरागिका, (२) कल्पवल्ली उदाहरण भाणिक्यवल्कि, (३) शोम्बिका उदाहरण गुणमाला, चूडानर्ग, (४) भाग उदाहरण नन्दिमती शृङ्गारमञ्जरी।

मध्य युग अथवा दरबारी कविताकाल

ईसापूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर १९वीं शताब्दी के अन्त पर्यन्त लगभग २००० वर्षका सुदीर्घ काल भारतीय साहित्य साधना के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र का और विशेषकर ललित साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काल है। नाट्यसाहित्य के क्षेत्र में भी इस काल में इतनी बहुमूल्य कृतियाँ प्रस्तुत की गईं जिन्हें विश्व साहित्य में केवल स्थान ही नहीं मिला अपितु उन्हें विश्व की मूर्धन्य कृतियों में गिना गया और पश्चात् जगत् उनके कला सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। इस काल की अधिकांश रचनायें विभिन्न राजघरानों के सरक्षण में हुईं। कलाकार अधिकतर किसी राजघराने के आश्रय में रहकर रचनायें प्रस्तुत करते थे और उन पर पुरस्कार प्राप्त करते थे। अनेक राजा लोग स्वयं कलाकार थे और उनकी कृतियों ने पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इन कृतियों की संख्या सहस्रों में है जिनका केवल एक अंश अबतक प्रकाश में आया है। हजारों की संख्या में इस प्रकार की कृतियाँ राजघरानों के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में सुरक्षित पड़ी हैं। इस विषय में पश्चात् विद्वान् ग्रन्थवाद के पात्र हैं कि उन्होंने मनोयोगपूर्वक इन ग्रन्थों को खोज निकाला है तथा इसके लिये खोज की दिशा उन्मीलित की है जिससे प्रोत्साहित होकर भारतीय विचारकों ने इस दिशा में स्तुत्य कार्य किया है। इस साहित्य और इस पर राजघरानों के योगदान के विषय में सरसरी तौर से प्रकाश डालने के पहले दो प्रश्नों पर विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है एक तो रचनाओं की अनिश्चित स्थिति दूसरे मौक साहित्य का भारतीय नाट्यकला से सम्बन्ध जिस समस्या से भारतीय नाट्य साहित्य पर विचार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दो चार होना पड़ता है।

भारतीय साहित्य का दुर्बल बिन्दु उसके इतिहास का अभाव है। इस विषय में मैक्समुलर का कहना है— भारत में इतिहास का सर्वथा अभाव है, इसका कारण यह है कि इतिहास की सुरक्षा का उत्तरदायित्व शासन वर्ग पर था जिसने सत्ता की नश्वरता को समझ लिया था और जो परमत्व को ही महत्व देता था। इसके प्रतिकूल यूनानी लोग सासारिक व्यक्ति थे और वे भौतिक सुख सुविधा और सम्पन्नता को जीवन का परम ध्येय समझते थे। इसीलिये यूनानी लोग इतिहास को सुरक्षित रख सके जबकि भारतीय इस दिशा में उदासीन रहे। मैकाडनल ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं— 'इतिहास भारतीय साहित्य का एक दुर्बल बिन्दु है। वस्तुतः इसकी सत्ता ही विद्यमान नहीं है। ऐतिहासिक बुद्धि का अत्यन्ताभाव इसका एक ऐसा लक्षण है कि संस्कृत साहित्य का सम्पूर्ण मार्ग इस दोष की छाया से आब्रान्त होकर अन्धकाराच्छन्न हो गया है। यह साहित्य ठीक दिशि निर्धारण की पूर्ण अनुपस्थिति से पीड़ित है और इसकी पीड़ा भोग रहा है। यह इस सीमा तक सच है कि भारतीय खदियों में सबसे बड़े कवि कालिदास का समय बहुत समय तक एक हजार वर्ष की सीमाओं के अन्तर्गत विवाद का विषय बना रहा और अब भी एक या दो शताब्दियों की सीमा के बीच सन्देह से घिरा हुआ है। इस प्रकार

संस्कृत लेखकों की तिथियाँ अत्यधिक सख्त विषयों में सन्निकटता के मोटे अनुमान पर आधारित हैं। पारस्परिक निर्भरता के अभाव में प्रमाण, उद्धरण या सन्दर्भ, संकेत भाषा के विकास या शैली के द्वारा इन तिथियों का अनुमान लगया जाता है।

संस्कृत साहित्य के कलाकारों का निश्चित प्रमाण न मिलने का एक बहुत बड़ा कारण है ईपू का साहित्य उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर भारत ने नाट्यशास्त्र की रचना की थी। जिन साहित्यों में साहित्य भाषा थोड़े थोड़े समय में बदलती रहती है और ऐतिहासिक शासकों में परिवर्तन होता रहता है तथा सामयिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों में नई नई धाराएँ प्रवर्तित होती रहती हैं उनमें यदि ऐतिहासिक उल्लेख न हो तो भी स्वयं साहित्य से उसकी रचना का परिज्ञान हो जाता है। उदाहरण के लिये हिन्दी साहित्य की तीर्जिये। इस सहस्राब्दी के प्रारम्भ में राजपूतकाल में जो अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी डोगरी चल रही थी मुस्लिम साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर असहाय हिन्दू जाति ने भक्ति का मार्ग पकड़ा और भक्ति के लिये आराध्य देव राम कृष्ण की उपासना के लिये अवधी और ब्रजभाषाएँ अपनाई गईं। फिर जब हिन्दू जाति मुस्लिम साम्राज्य के लिये आदी हो गई और साहित्य सिद्धान्तों (पैतियों) की चर्चा चल दी तब शृङ्गार रस का प्राधान्य हो गया और शृङ्गार रस के अधिदेवता भगवान् कृष्ण ही साहित्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित रहे तब भाषा तो ब्रज ही रही किन्तु कृष्ण का शृङ्गार प्रमुख हो गया। फिर अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ जब मुस्लिमों द्वारा अपनाई गयी उर्दू के नाम पर खड़ी बोली का प्रभुत्व बढ़ा तब ब्रजभाषा भी छूट गई और खड़ी बोली में कविता होने लगी। इस शताब्दी की कविता पर भी यदि ध्यान दिया जाय तो काव्य की विषयप्रवृत्ति दशाब्दियों में बदलती रही। इस प्रकार ऐसे साहित्य में यदि ऐतिहासिक देशकाल सुरक्षित न रह सका हो तो भी भाषा और विषय के आधार पर कविता स्वयं अपना देशकाल व्यक्त कर देगी। किन्तु ऐसी सुविधा संस्कृत में नहीं है। संस्कृत भाषा तो अपरिवर्तनशील है ही जो प्राकृत भाषाएँ नाटकों में प्रयुक्त होती हैं उनका भी देशकाल सर्वजन सवेद्य नहीं है। शास्त्रकारों ने उन भाषाओं को भी लगभग परिनिष्ठित बना दिया है। विषय भी सामान्यतः जाने माने ही हैं और शैली भी परम्परागत रूप में ही अपनाई जाती रही है। अतः किसी कृति को देखकर उसके देशकाल का निर्णय करना सरल नहीं है। परिणाम यह हुआ है कि यदि १२वीं शताब्दी की कृति को कोई ६ठी शताब्दी की बतला दे और उसके लिये कुछ तर्क भी प्रस्तुत कर दे तो कोई पाठक आसानी से उस पर अविश्वास नहीं कर सकेगा। किसी साहित्यिक कृति के काल निर्धारण के लिये तर्क का सहारा लेना पड़ता है जिस पर स्वयं विश्वास नहीं होता—

हस्तस्पर्शादिवाच्येन विषये पथि धावत ।

अनुमानप्रमाणेन विनिपातो न दुर्लभः ॥

[अनुमान को प्रमाण मानकर चलने वाले तर्क के आधार पर वस्तुतत्त्व का निर्णय

था। इन सब सम्पर्कों से भारतीय समाज पर यूनानी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और इसी के साथ भारतीय नाट्यकला का उद्भव हुआ। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि भारतीय नाटकों में परदे के लिये यवनिका शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ होता है यवन देश से आया हुआ। येंवर का कहना है कि 'यवनिका' के अतिरिक्त अन्य कोई समानता भारतीय और यूनानी नाटकों में नहीं है। किन्तु विंडिश एक कदम और आगे बढ़ गये। उन्होंने सिद्ध करने की चेष्टा की कि मृच्छकटिक में एटिक की सुखान्तिका का प्रभाव खोज निकाला जा सकता है। कतिपय विचारकों ने यह भी प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि नाट्य की विषयवस्तु भी मेल खाती है। दोनों में राजा एक युवती से प्रेम करता है, उसमें विघ्न उपस्थित होते हैं फिर सुखान्त मिलन होता है। दोनों में मिलन के दृश्य दिखलाये जाते हैं, वियोग होना है वियोग वेदना का चित्रण होता है निशानी भेजी जाती है, डाकुओं द्वारा नायिका का अपहरण किया जाता है प्रवहण भग होता है नायिका कष्ट में पड़ती है, फिर उसका उद्धार हो जाता है। यह साम्य सिद्ध करता है कि भारतीय नाटक का विकास यूनानी नाटकों के अनुकरण के आधार पर हुआ है।

साम्य के जो बिन्दु बतलाये जाते हैं वे इतने सामान्य हैं कि किसी भी नाट्यपद्धति में पाये जा सकते हैं। उस समय राजतन्त्र तो यूनान और भारत दोनों देशों में था, राजकीय चरित्र ही नाट्य के विषय बनते थे। प्रेम उसमें विघ्न विरह वेदना मिलन ये इतने सामान्य तत्त्व हैं कि इनका उपादान कहीं भी पाया जा सकता है। उसमें आदान प्रदान का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। स्वयं पाश्चात्य विद्वान इस विषय में एकमत नहीं हैं। मैकडानल का कहना है कि जितना साम्य यूनानी नाटकों के साथ भारतीय नाटकों का पाया जाता है उससे कहीं अधिक साम्य सेक्सपियर के नाटकों और भारतीय नाटकों में पाया जाता है। यह केवल कल्पना है कि भारत में सिकन्दर के आगमन के बाद यूनानी नाटकों का भारत में प्रचलन हो गया था। यहा के रंगमञ्च पर यूनानी नाटक दिखलाये जाते थे परन्तु यही बात प्रमाणित नहीं है। रह गई यवनिका की बात— विद्वानों का कहना है कि परदों की प्रथा यूनानी नाटकों में थी ही नहीं। फिर उनके अनुकरण का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यवनिका इस नामकरण का अन्य कारण भी हो सकता है। भारतीय नाटकों में यूनान की लड़कियों का सेविका के रूप में उल्लेख किया जाता है। यूनानी साहित्य में भी उस समय यूनानी लड़कियों को भेंट के रूपमें भारत को भेजने का उल्लेख प्राप्त होता है। हो सकता है परदों के उठाने गिराने पर यूनान की लड़किया नियुक्त की जाती हों और इसलिये परदों का भी इन्हीं के नाम पर प्रचलन हो गया हो।

साम्य की अपेक्षा यूनानी नाटकों के साथ भारतीय नाटकों का वैषम्य अधिक है। पहले तो उद्देश्य में भी भिन्नता है। यूनानी नाटकों का उद्देश्य ही भारतीय नाटकों के उद्देश्य से भिन्न है। यूनानी नाटकों में शोवान्तिका का महत्त्व है, उसमें यथार्थवाद पर जोर दिया जाता है। जीवन के भूषित सच्चे चित्र दिखलाकर दर्शकों और आम जनता

को उन बुढ़ियों से दूर करने की चेष्टा की जाती है जबकि भारतीय उद्देश्य आदर्श चरित्र दिखलाकर उसी प्रकार का चरित्र बनाने का प्रयत्न करना माना जाता है। यद्यपि यहाँ भी ध्यान रखना चाहिये कि भारतीय सुखान्तिवाधों को 'कमेडी' कह कर जो गर्हणा की जाती है वह भी पक्षपातपूर्ण विचार ही है। भारतीय नाटक पारचात्य कमेडी जैसे हास परिहास प्रधान नहीं होते। उनमें जीवन्त गम्भीर तत्वों का पर्याप्त समावेश होता है। सघर्ष की उनमें कमी नहीं होती। किन्तु सहर्ष मध्य में दिखलाया जाता है जिसका परिणाम अच्छे पक्ष की विजय के द्वारा आनन्द में होता है। महाभारत का जैसा सघर्ष विश्व साहित्य में शायद ही कहीं देखने को मिले। यह कहना सर्वथा दुस्साहस होगा कि रामायण में सघर्ष नहीं है। यह बात अवश्य है कि भारतीय नाटकों में एक मात्र सघर्ष ही उद्देश्य नहीं होता। कोई भी समस्या नाट्य प्रवर्तक हो सकती है। भारतीय नाटकों में यूनानी नाटकों के समान चरित्र चित्रण की प्रधानता नहीं होती और न चरित्रचित्रण उसका उद्देश्य होता है। यद्यपि रस निष्पत्ति और रसास्वादन नाटक का उद्देश्य होता है। इसीलिये ज्ञात चरित्र वाले पात्रों से सम्बन्धित नाटक सर्वातिशायी माने जाते हैं, क्योंकि उनके चरित्र पहले से विद्यमान दर्शक भावना को आस्वाद्य बनाने का सरल साधन हैं। कौतूहल वृत्ति की प्रधानता वाले नाटक इन्हें उल्लेख्योक्ति के नहीं माने जाते। सारांश यह है कि जब उद्देश्य में भेद जब फल में भेद जब प्रक्रिया में भेद तब एक दूसरे के अनुकरण से उद्भव के सिद्धान्त को मानना किसी प्रकार समझीन नहीं कहा जा सकता। वैसे कला के क्षेत्र में आदान प्रदान स्वाभाविक ही है। ग्रेटे ने अपनी कृति फाट लिखने में प्रस्तावना की योजना में अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रस्तावना से प्रेरणा प्राप्त की। सेक्सपियर के नाटकों के साथ इस प्रकार की समानताओं पर पारचात्य विद्वानों का ध्यान गया है। इस प्रकार का आदान प्रदान अपत्याशित नहीं कहा जा सकता। इस विषय में मैकडानल का कथन है- 'दूसरी बात यह है कि सबसे पुराने संस्कृत नाटकों की विद्यमानता में यूनानी काल से ४०० वर्ष का व्यवधान है। भारतीय नाटक का पूर्णरूप से स्वराष्ट्रीय विकास हुआ है और यद्यपि उसका ग्राह्य अन्धकार के आवरण में ढका हुआ है फिर भी उसकी अपने देश में ही उत्पत्ति की व्याख्या सरलता से की जा सकती है।'

राजाश्रय

इस काल की कविता (नाटक) को दण्डो काव्य की संज्ञा दी गई है। कारण यह है कि इसका काव्य और नाट्य राजा लोगों के आश्रय में ही पनपा है। राजा लोग कवियों को आश्रय देने में गौरव का अनुभव करते थे। कविता सुनने और नाटक देखने का उन्हें शौक था। भारत ने लिखा है नाटक में दी जाने वाली पताका का अन्तिम निर्णय राजा लोग ही करते थे। इसका आशय यह है कि राजा लोगों से इतना प्रवीण होने की आशा भी की जाती थी। अनेक राजा स्वयं कवि हुये हैं, अनेक राजाओं ने नाटक भी लिखे हैं। ऐसे भी उल्लेख पाये जाते हैं कि राजा लोग पुष्कलघन देकर कवियों की रचनाओं

को स्वयं खरीद लेते थे और उन्हें अपने नाम से प्रकाशित कर देते थे। ऐसे नाटकों की संख्या बहुत अधिक है जिनका उल्लेख नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उदाहरण के रूप में पाया जाता है। कहीं नाटक का नाम है। कहीं उनसे उद्धरण दिये गये हैं, कहीं कथानक की उदाहरणों से सगति बैठाई गई है। कई नाटक ऐसे भी हैं कि नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के विवरण से उनका परिचय प्राप्त किया जाता है। ऐसे ग्रन्थ राजघरानों के पुस्तकालयों में सुरक्षित पड़े हैं जिनके अनुसन्धान की आवश्यकता है। कवियों के राजाश्रय का यथास्थान यथामुम्भव परिचय दे दिया गया है। राजकीय पुस्तकालयों के अतिरिक्त कलकत्ता, भद्रास, बगलौर, तजौर, बम्बई, पूना, बनारस, दिल्ली इत्यादि अनेक बड़े शहरों में उच्चकोटि के पुस्तकालयों में पाण्डुलिपियों की सूजी बनी हुई है, अनेक खोज रिपोर्टें विद्यमान हैं। निस्सन्देह इन सबका स्वतन्त्र अनुसन्धान भारतीय कला और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाल सकेगा लेखकों की यह वलवती आशंसा है। छेद इस बात का है कि विदेशी शासन में इस दिशा में जो गति विधि चल रही थी वैसा उत्साह अब इस दिशा में मन्द पड़ गया है। यह भारत की अपार सम्पत्ति है जिसका अनुसन्धान नितान्त अपेक्षित है।

आधुनिककाल २०वीं शताब्दी

२०वीं शताब्दी का भारतीय इतिहास अपने स्वरूप में समस्त प्राक्ता इतिहास से पृथक् दृष्टिगत होता है। यों तो विदेशों से भारत का सम्पर्क ई.पू. ५वीं शताब्दी से किसी न किसी रूप में चलता रहा, शक, हूण, यवन, कुशण आदि आतिया भारत में आती रही, हिन्दू सम्प्रदाय की उदार मनोवृत्ति के कारण वे यहाँ की निवासी ही नहीं बनती गईं अपितु हिन्दू समाज में समाहित भी होती गईं। मुस्लिमों का आगमन उन जातियों के आगमन से इस अर्थ में भिन्न रहा कि मुसल्मान साम्राज्य स्थापना का मशा लेकर एक विजेता के रूप में भारत में आये और असंगठित हिन्दू जाति पर विजय प्राप्त कर यहाँ शासन स्थापित कर लिया। मुसल्मानों का उद्देश्य धर्म प्रचार करना भी था और इसमें वे कभी कभी अत्याचार की नीति भी अपनते थे। किन्तु सब बातों के होते हुये भी वे यहाँ के निवासी बन गये थे और भारतीय समाज से भाई धारा भी स्थापित कर लिया था। शताब्दियों तक दोनों सम्प्रदाय घुलमिल कर भाईधारे के साथ रहते रहे। यद्यपि यवन इत्यादि जातियों के समान उनका अपनी धार्मिक मान्यताओं के साथ हिन्दू समाज में पूर्ण विलय तो नहीं हुआ, किन्तु प्रशासकीय स्तर पर उनका किसी अन्य देश में सम्पर्क न होने के कारण वे शुद्ध भारतीय रूप में यहाँ के निवास बन गये। उनकी संस्कृति, उनके आचार विचार यद्यपि हिन्दू जाति से सर्वथा पृथक् बने रहे, भारतीय समाज की आत्मसात करने की वह प्रक्रिया नहीं अपनाई जो सभी जिसने भारतीय समाज को अभ्युन्नत बनाये रक्षा और विभिन्न विचार धाराओं को आत्ममातृ करने से उसके कलेवर की अभिवृद्धि की। दोनों समाजों में विभेद जो दूर नहीं किया जा सका। सात आठ सौ वर्षों लम्बी अवधि में उदार मनोवृत्ति के मुस्लिम शासक भी हुये और क्रूर स्वभाव के अत्याचारी

शासक भी। प्रथम कोटि के शासक हिन्दुओं की श्रद्धा भी अर्जित कर सके और उनके शासनकाल में साहित्य और कला की अभिवृद्धि भी हुई। दूसरे प्रकार के शासकों ने विद्रोह को जन्म दिया। इस प्रकार उठते गिरते, मिलते लड़ते मुस्लिम और मुगल शासन सूर्य के अस्त होने का समय आ गया।

यूरोप के कई देशों ने भारत में व्यापार बढ़ाने की योजना के आधोन व्यापारिक कम्पनियों को भारत भेज दिया। यहाँ आकर विदेशियों ने अनुभव किया कि हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य का सहारा लेकर भारत में शासन सत्ता स्थापित करने के अच्छे अवसर हैं। उधर छोटे छोटे राजघराने भी परस्पर संघर्ष निरत थे। इन सब संघर्षों का सहारा लेकर यूरोपीय कम्पनियों ने परस्पर होड़ लगाकर साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेज जाति अधिक निपुण और छल कपट में अधिक प्रवीण थी। अतः सफलता उनके हाथ लगी। वे प्रत्येक दिशा में भारत के भाग्य विधाता बन गये। साम्राज्य शक्ति हाथ में आ जाने से उनके मुख्य लक्ष्य व्यापार और अर्थोपार्जन में भी पर्याप्त सहायता मिली। धीरे धीरे भारत की सम्पत्ति से विदेशों के कोश भरने लगे और भारतीय जनता दीन हीन जीवन विताने पर विवश हो गई।

अब अंग्रेजों के सामने सब से बड़ी समस्या थी अपने छल कपट से प्राप्त राज्य को स्थायित्व प्रदान करना। इसके लिये अनेक उपाय किये गये— जमीन्दारी प्रथा कायम कर शासन स्तम्भ तैयार कर दिये गये, अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा शिक्षित जनता से आत्मीयता स्थापित करने की चेष्टा की गई, बड़े कानून बनाकर भारत का रोजगार चौपट किया गया, आयात निर्यात के नियम अपने अनुकूल बनाकर आम जनता को भुखमरी के कगार पर पहुँचा दिया गया जिससे आम जनता में सर उठाने की शक्ति नहीं रही, अदालतों की व्यवस्था ऐसी बना दी गई कि जनता परस्पर लड़ती रहे और न्याय प्राप्त न कर सके।

जन समाज के लिये यह विचित्र स्थिति थी। अभी तक ऐसा कभी नहीं हुआ था कि शासन के लिये कानून सात समुद्र पार बनाये जाय और इस देश में लागू किये जायें, प्रशासकों की नियुक्ति विदेश में हो, अभी तक शासक और शासित घुलमिल कर रहते थे, शासक अपना कर्तव्य समझकर शासितों के कष्ट निवारण के लिये तत्पर रहते थे, उनके सुख, दुःख की स्वयं देखते थे उनके आमोद प्रमोद में शामिल रहते थे। अब अंग्रेज जाति स्वयं को शासक समझती थी और भारतीयों से मिलना आत्मसम्मान के प्रतिकूल समझती थी। बादशाह तो दूर साधारण अंग्रेज भी आतंक स्थापित करने में गौरव का अनुभव करता था।

हिन्दू जनता ने जैसे जैसे मुसलमान शासकों से आत्मीयता स्थापित कर ली थी और 'कोठ नृप होय हमैं का हानी' के आदर्श पर चलने लगे थे। अब नई परिस्थिति ने उनकी भावनाओं को झकझोर कर रख दिया। अंग्रेजों ने नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत अंग्रेजी को माध्यम दो दृष्टिकोणों से बनाया था सरकारी मशीनरी के सञ्चालन के लिये

पुर्जों के रूप में अल्प शिक्षितों को तैयार करना और उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों द्वारा आत्मीयता स्थापित करना। 'अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के बाद भारतीय लोग कहने सुनने के लिये हिन्दुस्तानी होंगे किन्तु हृदय से अंग्रेज होंगे। भारतीयों ने अंग्रेजी शिक्षा को इसलिये अपनाया कि इस शिक्षा के माध्यम से अंग्रेजों के रहस्य को जानकर एक दिन पार्लियामेण्टरी सिस्टम अपने यहां भी स्थापित कर सकेंगे। घस्तुत दोनों उद्देश्य सही सिद्ध हुये।

अंग्रेजी साम्राज्य सत्ता की स्थापना सर्वप्रथम में बंगाल हुई थी और बंगाल में ही नवचेतना का उदय हुआ। राजा राममोहन राय इस नवचेतना के सूत्रधार बने। उच्चकोटि के ज्ञान के अधिकारी होते हुये भी हिन्दू समाज पतन के गर्त में गिरा, पहले मुसल्मानों के और बाद में अंग्रेजों के आधिपत्य में आना क्या यही हिन्दूजाति की नियति है। समझ लिया गया कि यदि इस पतन की अवस्था से त्राण पाना है तो पहले समाज में आई हुई बुराइयों को दूर करना पड़ेगा समाज को उनके अतीत गौरव की याद दितानी होगी और उन्हें शक्तिशाली बनाकर दस्युओं के हाथ से देश को मुक्त कराना होगा। बंगाल में यह उत्तरदायित्व ब्रह्मसमाज ने लिया और हिन्दी भाषी प्रदेश पंजाब और गुजरात में स्वामी दयानन्द ने समाज सुधार का भार अपने कंधों पर लेकर आर्य समाज की स्थापना की। जाति को वैदिक ज्ञान का उपदेश दिया उन्हें उनका गौरव समझाया। आर्य सन्तान को झकझोर कर ठठाया समाज में आई हुई बुराइयों को दूर करने की चेष्टा की और इतर धर्मों की अपेक्षा अपने वैदिक धर्म को अधिक वरिष्ठ सिद्ध किया। जो काम हिन्दी भाषी क्षेत्र में स्वामी दयानन्द ने किया वही बंगाल में स्वामी रामतीर्थ स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द घोष ने किया। उन्होंने ब्रह्मवाद ने नाम पर सारी जाति को संगठित करने की चेष्टा की। हिन्दू जनता की अनुक्रिया बड़ी जबरदस्त थी। सारी जाति अकर्मण्यता की आत्मा पर जमी हुई परतों को झटक कर एक दम कर्म क्षेत्र में कूद पड़ी। समाज सुधार के अनुपद ही राजनैतिक आकाङ्क्षाएँ सामने आने लगीं। सर्वप्रथम सन् १८५७ का सरास्य विद्रोह हुआ जो असफल हो गया। फिर अनेक पक्षों की ओर से स्वराज्य का आन्दोलन चल निकला। कभी हिंसात्मक कभी अहिंसात्मक, कभी वैधानिक कभी अवैधानिक, कभी प्रत्यक्ष, कभी भूमिगत कभी प्रकट और अप्रकट मिला जुला कभी राष्ट्रीय कभी अन्तर्राष्ट्रीय अनेक विध आन्दोलन चलता रहा। अंग्रेजों का दमन चक्र, कूटनीति और फूट नीति भी प्रचलित रही। अनेक सस्याये धर्म के नाम पर अंग्रेजों का साथ भी देती रही। महात्मा गान्धी के नेतृत्व में अहिंसात्मक आन्दोलन भारत में चल रहा था, मुभाषचन्द्र बोस ने विदेशों में जाकर स्वतन्त्रता के लिये सघर्ष किया। अन्त में सभी के पुण्य प्रयास से भारत की अभीष्ट स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। स्वतन्त्र भारत को भी अनेक उलझी समस्याओं का सामना करना पड़ा, देश का विकास हुआ, जन-जीवन में स्वाभिमान की एक झलक दिखलाई दी। रहन सहन के स्तर में सुखद परिवर्तन के दर्शन हुये और निरारा तन्त्र

बादल छट गये।

भारत की प्रायः प्रत्येक भाषा के साहित्य ने स्वतन्त्रता के आन्दोलन में अपना उचित सहयोग प्रदान किया। प्रत्येक प्रदेश में अनेक प्रकार की काव्यात्मक रचनायें हुईं और गीत लिखे गये जिनसे वातावरण के निर्माण में पर्याप्त सहायता मिली। संस्कृत भाषा भी इस दिशा में पीछे नहीं रही और इस दिशा में अनेक नाटकों की भी रचना हुई। अंग्रेजी राज्य जहा गरीबी और विपन्नता का अभिशाप लेकर उपस्थित हुआ था वहा उसके कतिपय वरदान भी थे। छापा खाने के प्रचलन से प्रचार कार्य में सुविधा हो गई; अनेक पत्र पत्रिकायें प्रकाशित होने लगीं। लेखकों को परिशीलक जनता तक अपनी रचनायें पहुंचाने में परेशानी दूर हो गई और रचना के स्थायी संरक्षण की समस्या भी हल हो गई। दो संस्कृतियों और साहित्यों का सम्मिलन एक दूसरे को प्रभावित करता ही है। भारतीय साहित्य भी अंग्रेजी शैली से प्रभावित होने से बचा नहीं रहा और नाट्य रचना पद्धति भी प्रभावित हुई। संस्कृत नाटककार पुराने कैंडे की रचनायें तो करते ही थे प्रवर्तमान परिस्थिति से भी वे छह नहीं थे और अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क ने प्रभाव डाला था उसको अपनाने के लिये भी तत्पर थे। समस्त रचनाओं पर ध्यान देने से वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओं पर रचना करना ही इस साहित्य की सामान्य विशेषता थी। निम्न पक्तियों में वर्गीकृत रूप में तत्कालीन कतिपय रचनाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है—

(१) प्रविधि पर प्रभाव— अंग्रेजी साहित्य में नाटक खण्डों का विभाजन अकों में नहीं दृश्यों में करने की परम्परा थी। छोटे नाटकों का दृश्यों में विभाजन युक्ति युक्त है। अतः प्राचीन परम्परा के साथ कई अर्वाचीन नाटककारों ने अपनी कृतियों का विभाजन दृश्यों में भी किया। इसके दोनों प्रकारों का उपयोग किया गया— नाटक का मूल रूप में दृश्यों में विभाजन या अकों में विभाजन कर अकों का दृश्यों में विभाजन। अकों के नये नामकरण की भी परम्परा चल दी अकों के स्थान पर लोक, उत्साह, कुसुम कल्लोल इत्यादि नामों का भी प्रयोग किया जाने लगा। विश्वेश्वर विद्यभूषण ने चाणक्यविजयम् नाटक में अकों के स्थान पर दृश्यों का प्रयोग किया है। अर्थोपक्षेपक का प्रयोग नहीं किया गया है। इसी प्रकार पटनाभाचार्य ने ध्रुवतापसम् में, घनश्याम ने नवप्रहचरित नामक सङ्क में प्रस्तावना के स्थान पर सूच्यार्थ, विष्कम्भ के स्थान पर काल और अक के स्थान पर प्रपञ्च शब्द का प्रयोग किया है। रमा चौधरी ने परली कमल में दृश्य शब्द का प्रयोग किया है, हरिदास सिद्धान्त वागीश ने मिबारप्रताप में और प्रभुदत्त शास्त्री ने संस्कृत वाग्विभवम् में अकों का दृश्यों में विभाजन किया है।

(२) अंग्रेजों की राज्यस्थापना में कूटनीति— मधुसूदन प्रसाद दीक्षित के नाटक 'भारतविजयम्' में अंग्रेजों की साम्राज्य स्थापित करने में कूटनीति का स्पष्ट चित्रण किया गया है। अंग्रेज भारत में आते हैं, राजनीति में दखल देने लगते हैं। नवाब सुल्तान

के खिलाफ उनके सेनापति मीरजाफर से सन्धिपत्र लिखवाते हैं। मीर कासिम इसका विरोध करते हैं। युद्ध होता है, मीर कासिम पराजित होता है। नन्दकुमार को अन्याय के साथ फाँसी दी जाती है। कांग्रेस का आन्दोलन चलता है। आन्दोलन की विजय होती है और भारत स्वतन्त्र होता है। इस नाटक की रचना सन् १९३६ में हुई थी। तत्कालीन अमेज सरकार ने उसे जप्त कर लिया था जिसको स्वतन्त्रता के बाद उन्मुक्त किया गया।

कम्पनी के हाथ से अमेज सरकार के हाथों में राज्य चले जाने के बाद स्वतन्त्र राज्य भी अमेज सरकार की दस्तदाजी के सामने पगु बन गये थे। रेजीडेण्ट ही राज्यों का कर्ताधर्ता था। इस आशय का एक नाटक गोपीनाथ का लिखा माधवस्वतन्त्र्यम् है। जिसमें जमपुर में मन्त्री का चुनाव होना है। काफी ठछाड पछाड चल रही है तब विक्टोरिया के हस्तक्षेप से माधव को नियुक्त किया जाता है और उसे सारे प्रशासनिक अधिकार दे दिये जाते हैं।

(३) नव जागृति (स्निग्धा) - भारत पूर्ण रूप से विदेशी चगुल में फसा हुआ था। सबसे पहले बंगाल में ही साम्राज्य का सूत्रपात हुआ था और बंगालियों ने सबसे पहले अमेजी शिक्षा अपनायी थी। अतः बंगाल में ही सबसे पहले नवचेतना का उदय हुआ और उसके सूत्रधार राजाराममोहन राय बने। इस विषय में रमा चौधरी ने एक 'भारतपथिक' नाटक की रचना की जिसमें राजा साहब द्वारा ब्रह्मा समाज की स्थापना, सती प्रथा का उन्मूलन, अमेजी शिक्षा का प्रसार इत्यादि सामाजिक सुधारों का प्रयत्न किया गया। ब्रह्म समाज की स्थापना के द्वारा हिन्दू जाति के उच्च आदर्श और महान शक्ति का परिचय कराया गया।

इसी परम्परा में बंगाल में कई महत्व पूर्ण व्यक्तित्वों का आविर्भाव हुआ जिनमें सर्वप्रमुख नाम रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य विवेकानन्द का लिया जा सकता है। इनका व्यापक प्रभाव समस्त भारत पर पड़ा। इनके जीवन और कार्य कलाप पर आधारित कई नाटक लिखे गये जिनमें डा रमा चौधरी लिखित 'युगजीवनम्' शीर्षक नाटक उल्लेख्य है जिसमें रामकृष्ण परमहंस के जीवन एवं कार्यकलापों को नाट्य विषय बनाया गया है। डा रमा चौधरी ने ही रामकृष्ण परमहंस के शिष्य अभेदानन्द के विषय में एक दूसरा नाटक लिखा। यतीन्द्र विमल चौधरी का भारत विवेक शीर्षक एक अन्य नाटक प्रकाश में आया है जिसमें स्वामी विवेकानन्द के जीवन और उनके देश विदेश के कार्यकलाप का चित्रण किया गया है। यतीन्द्र विमल चौधरी ने ही रामकृष्ण परमहंस की पत्नी सारदामणि के विषय में दो नाटक लिखे एक रामकृष्ण परमहंस के जीवन काल में ही 'शक्तिसारदम्' शीर्षक नाटक और दूसरा रामकृष्ण की मृत्यु के बाद लिखा 'मुक्ति सारदम्' शीर्षक नाटक।

भारतीय नवोत्थान का प्रभाव बंगाल तक ही सीमित नहीं रहा। परिचय में भी समाज सुधार का काम स्वामी दयानन्द ने अपने हाथ में लिया। उनका सन्देश था भारत का सर्वोत्तम ज्ञान विज्ञान वेदों से ही उद्भूत हुआ है और वेद ही भारत के सभी आचार

विचार एवं क्रिया कलाप के उन्नायक ईश्वर प्रदत्त महाप्रन्थ हैं। उनको भूलकर ही भारतीय जाति परामर्श के गर्त में गिरी है। भारतीय जनता का उद्धार वेदों की ओर पुन जाने से ही सम्भव होगा। सत्यव्रत ने स्वामी जी के चरित्र और उनके उपदेशों पर 'महर्षिचरितामृत' नामक एक नाटक की रचना की जिसमें ५ अंक हैं— शिवरात्रिव्रत, प्रबोध, गुरुदक्षिणा, पाखण्डखण्डन और मृत्युञ्जय।

समाजसुषा के जिन तत्वों को लेकर ये उन्नायक चले थे उनमें प्रमुख थे बालविवाह, वृद्धविवाह, दहेजप्रथा, छुआछूत, वर्णव्यवस्था के कठोर नियम इत्यादि। इन विषयों को लेकर भी संस्कृत साहित्य में कतिपय नाटकों की रचना की गई। उनमें कतिपय निम्न लिखित हैं—

(अ) विवाहविडम्बनम्— जीवन्त्यायतीर्थ लिखित वृद्ध विवाह से सम्बन्धित नाटक। इसमें ६० वर्ष के एक ऐसे वृद्ध का चित्रण किया गया है जो कन्या के पिता की गरीबी का लाभ उठाकर उससे विवाह करने के लिये आतुर है। कुछ नवयुवक उसे छकाने की योजना बनाते हैं— वे वृद्ध से २००० कन्या के पिता को देने के लिये १००० विवाह व्यय के लिये १५०० जेवरों के लिये और कुछ राशि तरणों का मुख बन्द करने के लिये वृद्ध से लेते हैं और उसी पैसे से उस गरीब कन्या का विवाह कर देते हैं।

(आ) मिथ्याग्रहणम्— इसमें बहुपत्नी प्रथा का मजाक उड़ाया गया है। यह लीलाराव दयाल की रचना है। बहुपत्नी प्रथा मुसल्मानों में विशेष रूप से प्रचलित है। अतः मुसल्मानों के प्रसंग में ही इसे दिखलाया गया है। इसमें पति के बहुपत्नीत्व से मुहम्मद की पत्नी अमीना की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है।

(इ) बालविधवा— लीलाराव दयाल की कृति जिसमें बाल विधवा के पतन का चित्रण किया गया है। वह एक नवयुवक के प्रेमजाल में फँस जाती है। लेखक का सन्देश है कि ऐसी कम आयु की विधवाओं को भारा जीवन नारकीय दशा में रहने के लिये छोड़ देने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि उनका विवाह कर दिया जाय अन्यथा उनके पतन की सर्वदा सम्भावना बनी रहती है।

(ई) नाटककारों ने विधवाओं के सामने भी एक योजना रखी है। केवल विवाह ही नहीं जीवन की सफलता के लिये दूसरे क्षेत्र भी हैं। डा. रमा चौधरी के दिखे नाटक रसमय रासमणि में एक विधवा रासमणि को ऐसी ही कहती है जो अपने वैधव्य जीवन को अयेजों द्वारा सताई गई महिलाओं के संरक्षण में अपने जीवन को सफल बनाती है।

(उ) चामुण्डा— नामक नाटक में एक ऐसी ही विधवा का कथानक है जो अपने वैधव्य जीवन की शिक्षा में लगा देती है। विरागता जाकर डाक्टरी शिक्षा प्राप्त करती है। जब लौटकर स्वदेश आती है तब समाज उसे स्वीकार नहीं करता और मजाक उड़ाता है। किन्तु जब वह प्रधान की बहू को रोगनुक्त कर देती है तब समाज में सम्मानित पद

प्राप्त कर लेती है।

(क) लीलाराव दयाल की रचना गणेश चतुर्थी में अन्यविश्वासों की हसी उड़ाई गई है।

(ए) दहेज के अभिशाप पर कपिल देव द्विवेदी ने 'परिवर्तनम्' शीर्षक नाटक लिखा है। कन्या का पिता पुत्री की शादी के लिये मकान इत्यादि बेच देता है और स्वयं आजीविका के लिये बम्बई चला जाता है। घर में निर्वाह एक कुआ और सीढ़ी के बल पर होता है। मालिक के बम्बई से लौटने के पहले ही एक सेठ कुआ और सीढ़ी पर भी अधिकार कर लेता है। अदालत में मुकदमा जाता है— न्यायाधीश सेठ का पक्ष लेकर फैसला उसके हक में दे देता है। तब आकाशवाणी के निर्देश पर मामला पचायत में जाता है जहाँ उसे न्याय मिलता है।

(ऐ) धुक्क युक्तियों का अन्ये लेकर पारचात्य सभ्यता की ओर भागना भी इस समय की एक समस्या थी। इस विषय को लेकर रमानाथ मिश्र का 'समाधानम्' नामक नाटक प्राप्त होता है। इसमें छात्र छात्राओं द्वारा पारचात्य सभ्यता से प्रभावित होकर गान्धर्व विवाह कर लेने से जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उनपर प्रकाश डाला गया है।

(ओ) वसुपती परिणय— जगन्नाथ लिखित नाटक। इस रचना का उद्देश्य है राजाओं को सत्य पर लाना और राजनीति एवं आर्थिक योजनाओं के हित में यवनों से राष्ट्र को बचाने के लिये हिन्दूजाति में एकता स्थापित करना।

(औ) इस काल की एक बहुत बड़ी समस्या थी जमीन्दारों और पूजीपतियों द्वारा गरीब जनता का ठप्पीडन और जनता के त्राण के लिये किसी उदार देशभक्त का तैयार हो जाना। सरकारी तन्त्र का पूजीपतियों के प्रति पथपात। इस समस्त स्थिति का चित्रण करने के लिये ताराचन्द्रकन्धोपध्याय ने एक बंगाली उपन्यास लिखा था गणदेवता। उस समय इस उपन्यास की पर्याप्त प्रतिष्ठा थी, इस पर पुरस्कार मिला था। अनेक प्रान्तीय भाषाओं में इसके अनुवाद हो गये थे। डा रमा चौधरी ने उक्त उपन्यास के कथानक को लेकर संस्कृत में इसी नाम के नाटक की रचना की।

प्राचीनों के आदर्श

सामयिक जनमानस को परिस्थिति के सुधार के पथ पर लाने के लिये आवश्यक साहित्य के साथ मुसल्मान और विशेषकर मुगलकाल के बर्माण्य वीरों के आदर्श प्रस्तुत कर समाज में चेतना भरने की चेष्टा की। यद्यपि मुसल्मान भारतीय नागरिक बन गये थे और उनका शासन अंग्रेजों का जैसा विदेशी नहीं रहा था फिर भी वे लोग अपनी संस्कृति, अपना आचरण अपने धार्मिक तीर्थ स्थलों आदि का भारतीय करण नहीं कर सके थे। अतः हिन्दुओं की दृष्टि में वे अब तक विदेशी ही बने रहे थे। जिन हिन्दुओं ने उनकी सत्ता को चुनौती दी वे हिन्दू जनता के आदर्श नैदा कहलाये और उनका नाम जनता में

श्रोतासहन देने वाला माना गया। ऐसे नेत्रांशों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो नाम हैं- महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी।

महाराणा प्रताप ने अकबर बादशाह की सत्ता को स्वीकार नहीं किया। उन्हें एक विदेशी को राजपूतों द्वारा अपनी लड़कियाँ दिया जाना जाति के स्वाभिमान के प्रतिकूल प्रतीत हुआ। मानसिंह आदि ऐसे राजपूतों से भी उन्हें घृणा हो गई जो मुगलों को लड़कियाँ दे देते थे और रात दिन मुगल बादशाहों के चरण चुम्बन करते थे। आजीवन कष्ट सहकर, वन वन भटककर और बच्चों की दयनीय दशा देखकर भी उनकी आत्मा विचलित नहीं हुई और वे आजीवन स्वाभिमान की रक्षा करते रहे। अन्त में स्वयं अकबर को झुककर उनके स्वाभिमान को स्वीकार करना पड़ा। महाराणा प्रताप के विषय में हरिदास सिद्धान्त बागोश ने निवारप्रताप नामक नाटक की रचना कर भारतीयों को देश प्रेम की ओर झुकाने का प्रयत्न किया।

छत्रपति शिवाजी की स्थिति भिन्न थी। अकबर बादशाह तो कूटनीति से हिन्दुओं को दबाने और उनके स्वाभिमान को भावना को नष्ट करने का प्रयत्न करते थे, महाराणा प्रताप भी उनकी सत्ता को अस्वीकार कर स्वाभिमान की रक्षा करते थे। कभी कोई भयानक युद्ध नहीं हुआ जिसमें अकबर को हानि उठानी पड़ी हो, किन्तु शिवाजी का विरोधी औरगजेब तो बलात् हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करता था और हिन्दुओं के देव मन्दिरों को ध्वस्त करता था। उसी के समान उत्तर देने के लिये शिवाजी मैदान में आ गये। उन्होंने धर्म राज्य स्थापना की प्रतिज्ञा की, युद्धों में विजय प्राप्त की, बीजापुर से सम्मि की, गिरफ्तार हो जाने के बाद दान की टोकरी में छिपकर बाहर आये, गुर्जर पर अधिकार, राजपद पर अभिषेक, धर्मराज्य की स्थापना उनके महत्वपूर्ण कार्य थे। शिवाजी के विषय में कई महत्वपूर्ण नाटक लिखे गये जिनमें कतिपय नाटकों का उदाहरण के रूप में उल्लेख किया जा सकता है-

(अ) छत्रपति साम्राज्यम्- यह मूलशंकर माणिकलाल का लिखा नाटक है जिसमें शिवाजी की शासन व्यवस्था उनके जीवन और क्रियाकलाप पर प्रकाश डाला गया है।

(आ) शिवाभ्युदयम्- श्यामवर्ण द्विवेदी लिखित शिवाजी के कार्यकलाप पर नाटक।

(इ) श्री शिववैभवम्- विनायक राव वोकोल लिखित नाटक जिसमें शिवाजी की प्रशस्ति की व्यञ्जना की गई है।

(ई) छत्रपति शिवराज- लेखक रामभिकाजी बेलभकर बीजापुर की विजय से लेकर राज्यापेक्ष तक की घटनाओं का चित्रण।

(उ) शिवाजीचरित्रम्- हरिदास सिद्धान्त बागोश लिखित नाटक। इसमें शिवाजी के चरित्र द्वारा नवयुवकों को देशभक्ति की शिक्षा दी गई है।

(ऊ) शिवाजीविजयम्- रंगाचार्य द्वारा लिखित नाटक। इसमें शिवाजी के बन्दी होने

से लेकर साधुवेश में राजधानी पहुँचने तक का चित्रण किया गया है।

राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का २० वर्ष का प्रथम उत्थान काल १९०५ में समाप्त हो गया। इन बीस वर्षों में कांग्रेस प्रस्ताव पास करने और अंग्रेज सरकार से कुछ प्राप्त करने का असफल प्रयास करती रही। इसी बीच जापान की हस्त पर विजय से भारतीय राष्ट्रीयतावादियों को एक झटका लगा। कुछ उग्रवादी तत्व अधिक अक्रमक रख अपनाने लगे। अंग्रेजों ने भारतीय नेताओं की शक्ति को कम करने के लिये बंगाल को दो भागों में बांट दिया। १९०६ में ढाका में नवाब सलीमुल्ला के दत्तावधान में मुस्लिम लोग की स्थापना की गई जो मारम्भ से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में अंग्रेजों का पक्ष लेकर चली थी और राष्ट्रीय आन्दोलन में विरोधी दल का कर्तव्य निभा रही थी। १९०९ में मिंटोमालों रिपोर्ट में मुसलमानों को पृथक् मताधिकार देकर विरोधी भावना अधिक बढ़ा दी गई।

बंगभग के प्रतिकूल बंगाली नवयुवकों सुरेन्द्रकुमार बनर्जी, विपिनचन्द्रपाल, एरसूल, अश्विनी कुमार दत्त और अविन्द्रघोष के नेतृत्व में आन्दोलन चल निकला जिसकी परिणति १९११ में हुई। १९०७ में कांग्रेस गरम दल और नरम दल में विभाजित हो गई। इसके बाद का स्वराज्य का आन्दोलन शासक जाति के विरोध रूप में चल दिया। इस आन्दोलन में देश के महान संपूत क्षेत्र में अवतीर्ण हुये और उनके पुण्य प्रयास से भारत विदेशियों के चंगुल से छूटने का सौभाग्य प्राप्त कर सका। संस्कृत नाटकों में विभिन्न नेताओं के विषय में कई कृतियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

(अ) आश्विन्द घोष— भारत के उन महनीय संपूतों में एक थे जिनको अनेक रूपों में जन समाज का अभिनन्दन प्राप्त हुआ था। वे अनन्य साधारण समाज सुधारक थे, प्रज्वलित राष्ट्रवादी नेता थे अनुपम योगिराज थे जिन्हें साधना में ईश्वर दर्शन हुआ था, टचवोटि के कवि थे और योग साधना की नई पद्धति के जन्मदाता थे। सर्वप्रथम हमें उनके दर्शन बंगभग आन्दोलन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिनचन्द्र पाल, अश्विनी कुमार दत्त के साथ नेता लोगों में होता है। फिर वे अराजकतावादी विद्रोहियों में शामिल हो जाते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध १९१४ में भारतीय स्वतन्त्रता का एक अच्छा अवसर सामझ कर इन्होंने जापान से राक्षस सहायता का प्रयत्न किया। अलीपुर जेल में योग साधना प्रारम्भ की जिसका उद्देश्य भारतीय स्वाधीनता के लिये आध्यात्मिक शक्ति अर्जित करना था। बहन निवेदिता ने एक बार उन्हें पुलिस से बचाने के प्रयत्न में अपने यहाँ बन्दी बना रक्खा था।

उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी सफलता प्राप्ति के बाद स्वयं को ठगर से कुछ मोड लेना और किसी भी सफलता का श्रेय स्वयं न लेना। जेल से छूटने के बाद वे उस समय के बंगाल के फ्रेंच दरनिवेश चन्द्र नगर चले गये। उनकी अन्तर्गता

की पुकार थी और उन्होंने अनुभव कर लिया था कि वे कहीं अधिक उपयोगी विकास मूलक प्रक्रिया सिद्धान्त को प्रोत्साहित करने में समर्थ हैं। इसके लिये उन्होंने 'बन्देमातरम्' पत्रिका का सम्पादन निवेदिता बहन के सुपुर्द कर उससे विराग ले लिया। 'बन्देमातरम्' का गीत उन्हें सर्वाधिक प्रिय था; जिसने उन्हीं को नहीं समस्त राजनैतिक नेतृत्व को और जनसाधारण को प्रभावित किया था। स्थायी साधना के लिये बंगाल को छोड़ कर वे पाण्डिचेरी चले गये और अरविन्दाश्रम की स्थापना के साथ अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थों की रचना की, योग पद्धति को, दर्शन को और कविता को नई दिशा प्रदान कर अक्षयकीर्ति ठपाजित की। 'बन्देमातरम्' गीत को जो बकिमचन्द्र के समय से चला आ रहा था कहा जाता है उन्होंने ही 'भारतमाता' का उद्घोष प्रदान किया।

यतीन्द्र विमल चौधरी ने उनके क्रियाकलाप और जीवन के विषय में 'भारत हृदयारविन्दम्' नाटक की रचना की। भगिनी निवेदिता के चरित्र को लेकर डा रमा चौधरी ने 'निवेदितानिवेदितम्' नाटक की रचना की।

(आ) झासीरानी लक्ष्मीबाई ने १८५७ के सरास विद्रोह में अंग्रेजी साम्राज्य का मुकाबला कर अक्षयकीर्ति ठपाजित की थी उनकी यशोगाथा का चित्रण कुमार विमलचौधरी के नाटक भारतलक्ष्मी में किया गया है।

(इ) लोकमान्य बालगंगाधर तिलक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के मूर्धन्य नेताओं में एक थे। उनके विषय में दो नाटक प्राप्त होते हैं— (i) श्रीराम बेलष्कर लिखित श्रीलोकमान्य स्मृति— इसमें तिलक के अन्तिम जीवन का चित्रण किया गया है। (ii) तिलक-यनम्— यह भी श्रीराम बेलष्कर की ही रचना है जिसमें तिलक के मुकदमों का कोर्टरीन दिखलाया गया है।

(ई) महात्मागांधी अनन्य नेता थे जिनका नाम लेकर और जयजयकार कर स्वतन्त्रता सेनानी आगे बढ़ते थे, जिन्होंने भारत में ही नहीं दक्षिण अफ्रीका में भी स्वतन्त्रता की ज्योति जलाई थी। इनके विषय में प्रत्येक भाषा और साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है। संस्कृत में भी कई नाटक लिखे गये जिनमें कतिपय ये हैं— (i) मधुरा प्रसाद दीक्षित लिखित गान्धी विजयम् इसमें अफ्रीका और भारत में उनकी गतिविधियों का चित्रण किया गया है। (ii) भारततातम्— डा रमा चौधरी लिखित गान्धी प्रशस्ति परक नाटक। गान्धी जी को राष्ट्रपिता की उपाधि दी गई है। इसी को लेकर इस नाटक का नामकरण किया गया है। (iii) मुकुन्दलीलापूतम्— गान्धी जी की तुलना उनके कार्य काल में प्रायः भगवान् कृष्ण से की जाती थी। कृष्ण को मोहन कहा जाता है और गान्धी जी का नाम मोहन दास था। इसी तुलना को लेकर विश्वेश्वर दयाल ने इस नाटक की रचना की थी। इसमें कृष्ण गान्धी रूप और कस ब्रिटिशसरकार रूप माने गये हैं।

(ठ) प्रथम कोटि के नेताओं में सुभाषचन्द्र बोस का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। पहले ये कांग्रेस के प्रथम कोटि के नेता रहे थे। जब द्वितीय विश्व युद्ध

छिड़ा तब देशभक्ति के लिये प्राणपण से समर्पित इस अनन्य सेनानी को प्रतीत हुआ कि गान्धी जी की अहिंसक नीति भारत को स्वतन्त्रता नहीं दिला सकेगी और यदि इस युद्ध का अवसर जाता रहा तो अनन्त काल तक ऐसा सुयोग कठिनाई से प्राप्त हो सकेगा। अतः अमेज सरकार की आखों में धूल झोंककर पहले पश्चिम में हिटलर से और बाद में जापान से मिलकर युद्ध के द्वारा देश को स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न किया जबकि उद्योग सफल होने जा रहा था इस वीरवर का करुण अन्त हो गया। यतीन्द्र विमलचौधरी ने सुभाष चन्द्र की इसी वीरता का चित्रण सुभाषसुभाषम् नामक नाटक में किया है।

(अ) राजेन्द्र प्रसाद स्वतन्त्रता संग्राम के उत्त्वकोटि के नेताओं में एक थे। उनकी अध्यक्षता में भारत का संविधान बना और वे ही भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। उनके जीवन चरित्र को लेकर यतीन्द्र विमलचौधरी ने भारत राजेन्द्र नामक नाटक की रचना की। इसमें नमक सत्याग्रह, हिन्दू मुस्लिम एकता इत्यादि क्षेत्रों में उनके योगदान और राष्ट्रपति पद पर उनके निर्वाचन का चित्रण किया गया है।

(ए) देशबन्धु देशप्रिय- नामक नाटक यतीन्द्र विमल चौधरी की रचना है। इसमें देशबन्धु चित्तरञ्जन दास की गौरवगाथा का चित्रण किया गया है।

(ऐ) कैलासनाथ काटजू की जब बंगाल के राज्यपाल के पद पर नियुक्ति हुई थी तब उनके स्वागत समारोह में कैलासनाथ विजय नामक नाटक की रचना एवं अभिनय किया गया था। इसकी रचना जीवन्त्यापत्तीर्य ने की थी।

स्वतन्त्रता के आन्दोलन में महिलायें भी पीछे नहीं रहीं। इस विषय में दो नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है- (क) वीरगा- यह लीलाराव दयाल की रचना है जिसमें एक युवती की देशभक्ति का चित्रण है जिसने यौवनजन्य सुख भोग को छोड़ दिया और सत्याग्रह संग्राम में कूद पड़ी तथा आन्दोलन की नेत्री बन गई। (ख) इन्हीं की दूसरी कृति बटुविपाक जिसमें एक ऐसे भ्रष्टासकीय अधिकारी के मनस्ताप का चित्रण किया गया है जिसकी पुत्री सत्याग्रह में शहीद हो गई। ये दोनों नाटक कात्पनिक घटनायें हैं जो तत्कालीन स्त्री समाज के सत्याग्रह में योगदान का चित्रण करती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर समस्याओं पर नाटक

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्वभावतः नये प्रकार की समस्याओं ने जन्म लिया। इन समस्याओं पर भी साहित्य रचना हुई है। संस्कृत में विभिन्न विधाओं में लिखे गये साहित्य के साथ कतिपय नाटक भी इस दिशा में प्रकाश में आये हैं जिनमें कतिपय निम्नलिखित हैं-

(अ) पहली समस्या तो विभाजन की ही थी। चिरन्तन काल से भारत का जो स्वरूप चला आ रहा था उसका विभाजन कर देना निस्सन्देह एक अभूतपूर्व घटना थी जिसे सहसा सह सेना सामान्य व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं था। एक आघात लगा यह

कड़ुआ धूट इसलिये पी जाना पड़ा कि इसके बिना भारत के स्वाधीन होने की कोई आशा दिखलाई नहीं देती थी। फिर भी एक आशा बनी हुई थी कि देर सवेर भारत का एकीकरण पुन होगा। इसी आशय को लेकर भरत पिशारोटी ने एकभारतम् की रचना की।

(अ) भारत की जीर्ण शीर्ण दूरी भूटी दशा के सुधार में भारत के संपूर्ण पूर्ण सल्लानता के साथ प्रवृत्त हो गये और भारत सर्वद्वीप विकास करने लगा। सर्वाधिक ध्यान बिजली और पानी पर दिया गया। जो नदिया प्रवाहित होती हुई अपना जल व्यर्थ ही समुद्र के सुपुर्द कर देती हैं उन्हें बाध लिया गया और उनसे बिजली के साथ पानी की आवश्यकता की भी पूर्ति की गई। इस आशय को लेकर यतीन्द्र विमल चौधरी ने 'महिमायभारतम्' शीर्षक नाटक की रचना की जिसमें वैदिक, पौराणिक, इस्लामी भारत की वर्तमान भारत से तुलना करते हुये नवनिर्माण पर प्रकाश डाला। दामोदर बाघ, माइथन बाघ, भाखरा नगल, चबल, नागार्जुनसागर, मुचुकुन्दयोजना, मत्स्यपालन आदि अनेक योजनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

(इ) स्वतन्त्र भारत में काश्मीर समस्या सर्वाधिक उत्तझन लिये हुये सामने आई। अमेज़ों ने कूट नीति से भारत के दो नहीं सैकड़ों टुकड़े कर दिये थे। सभी रियासतों को स्वतन्त्र कर दिया था और उन्हें भारत या पाकिस्तान किसी भी देश में मिलने या स्वतन्त्र रहने का अधिकार दे दिया था। भारत ने निपुणता के साथ बिना खून खराबे के सैकड़ों रियासतें मिला लीं। दोही चार शेष रह गई थी जिनमें काश्मीर भी एक थी। यह मुस्लिम रियासत थी किन्तु इसका राजा हरिसिंह हिन्दू था। वह राज्य को स्वतन्त्र रखकर एक सम्राट बने रहने का स्वप्न देख रहा था। अतः उसने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों से अपनी स्वतन्त्रता स्वीकार कराने की प्रार्थना की। किन्तु पाकिस्तान ने वसात हथियाने का प्रयत्न किया। उस समय परिस्थिति ने कुछ ऐसा मोड़ लिया कि हरिसिंह को भारत में विलय करने के लिये बाध्य होना पड़ा। पाकिस्तान सैनिक शक्ति से वसात अधिकार करने की चेष्टा कर ही रहा था। मामला राष्ट्र सभ में भेजा पड़ा। सुरक्षा परिषद् की ओर से ग्राहम समझौता कराने भारत आये और सारी स्थिति का अध्ययन कर समझौते का एक फार्मुला तैयार किया जिसे भारत और पाकिस्तान दोनों ने स्वीकार किया। उसके अनुसार सर्वप्रथम पाकिस्तान को वह क्षेत्र छाली करना था जिस पर उसने अनुचित अधिकार किया था। पाकिस्तान आज तक उस पहली शर्त को ही नहीं निभा सका। काश्मीर का यह झगडा अब तक भारत और पाकिस्तान दोनों का सिरदर्द बना हुआ है। इस बीच श्यामाप्रसाद मुखर्जी की घटना सामने आई जो शेख अब्दुल्ला पर विश्वास नहीं करते थे। काश्मीर की घटना को लेकर नोर्पाज़े भीम भट्ट ने 'काश्मीरसाधनसमुद्यम' नाटक की रचना की। इसमें समझौते के लिये ग्राहम के आने, नेहरु शेख अब्दुल्ला से बातचीत अन्त में निर्णय, श्यामाप्रसाद मुखर्जी का शेख अब्दुल्ला पर अविश्वास, हरिसिंह के स्थान पर कर्णसिंह की राज्यप्रमुख पद पर नियुक्ति इत्यादि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

(ई) उस समय स्वतन्त्र भारत की अहम समस्या थी- हैदराबाद पर अधिकार करने की। हैदराबाद भारत का सबसे बड़ा राज्य था जिस पर निजाम का शासन था। उस समय वहाँ के प्रधान मंत्री लायक अली खाँ थे। इसकी स्थिति काश्मीर से सर्वथा विपरीत थी। आबादी हिन्दुओं की थी और शासन मुसलमान का था। वहाँ की समस्त शासन व्यवस्था पर एक अनधिकृत व्यक्ति रजाकार कासिम रिजवी ने पूरा अधिकार जमा लिया था। निजाम और प्रधान मंत्री दोनों उसकी उगलियों पर नाचते थे। भारत सरकार के प्रतिकूल उसके वक्तव्य आते थे। वह नित्य लाल किले पर झण्डा फहराने का उत्साह प्रकट करता था और युद्ध की धमकी देता था। निजाम व्यक्तिगत रूपसे अंग्रेज सैन्य सञ्चालकों को नियुक्त करता था और धन के बल पर भारत से निपटने के लिये सैनिक शक्ति बढ़ा रहा था। भारत सरकार ने १ वर्ष का समय दिया था। किन्तु परिस्थिति ऐसी बदली कि भारत सरकार को समझौता तोड़कर पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी और निजाम शरणागत हो गया तथा राज्य का भारत में विलय स्वीकार कर लिया गया। भारत सरकार ने अन्य राज्यों का विलय प्रिन्सीपर्स के आधार पर किया था। निजाम के शरणागत हो जाने और राज्य का विलय स्वीकार कर लेने पर भारत सरकार ने उसे भी प्रिन्सीपर्स दे दिया। इस घटना पर नोर्प्राजे भीमभट्ट ने 'हैदराबादविजयम्' शीर्षक नाटक की रचना की। इसमें रजाकारों के उपद्रव, नेहरू की अतिक्रमण के लिये स्वीकृति, कासिम रिजवी के कहीं भाग जाने नेहरू द्वारा पटेल को बर्खास्त दिये जाने आदि घटनाओं का चित्रण किया गया है।

(उ) नेहरू को अपने शासन काल में चीन से युद्ध की एक गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ा था। नेहरू चीन के प्रति कुछ अतिरिक्त पक्षपाती थे। आन्दोलन काल में वहाँ के प्रधान मंत्री चाङ्काई शेक उनके मित्र थे। किन्तु भारत के स्वाधीन हो जाने के कुछ ही समय बाद कम्युनिस्टों के आक्रमण से चाङ्काई शेक को भाग कर फार्मोसा में शरण लेनी पड़ी और कम्युनिस्टों का शासन स्थापित हो गया। अध्यक्ष माओत्सेतुंग और प्रधान मंत्री चाऊ एन लाऊ बन गये। नेहरू ने नई सरकार से भी मैत्री बनाये रखी और तिब्बत पर चीन के विशेषाधिकार के समझौते को जारी रखा। चीन की तिब्बत के विषय में नियत साफ नहीं थी। वह तिब्बत के दलाई लामा को सब तरह से परेशान कर तिब्बत को पूर्ण रूप से निगल जाना चाहता था। दलाई लामा को विवश होकर दलवल के साथ भारत में शरण लेनी पड़ी और भारत ने अपनी चिरन्तन सस्कृति के प्रति सच्चाई प्रकट करते हुए उन्हें पूरा आश्रय प्रदान किया। उधर सिक्किम को मुख्य भूमि से जोड़ने के लिये चीन ने भारतीय क्षेत्र में होकर सड़क बना ली जिस पर कुछ झड़पें शुरू हो गईं। ये झड़पें अधिकतर पश्चिम तक ही सीमित थीं। अकस्मात् पूर्वोत्तर में पूरी रक्ति से आक्रमण कर दिया गया और चीनी सेनायें आसाम के निकट बोमडीला तक आ गईं। यह भारत की बहुत बड़ी पराजय थी। किन्तु जिस प्रकार चीन ने अकस्मात्

भारत पर ऐसी दशा में आक्रमण किया था जब भारत प्रतिरोध या युद्ध के लिये बिल्कुल तैयार नहीं था उसी प्रकार अकस्मात् ही अपने विजित क्षेत्र को छोड़कर स्वयं वापस चला गया। क्यों उसने आक्रमण किया और क्यों वापस चला गया यह बात किसी की समझ में नहीं आई। इस घटना को लेकर श्रीराम भिकाजी ने 'कैलासकम्प' शीर्षक नाटक की रचना की। इसमें चीन के आक्रमण से उत्पन्न समस्त हिमालय क्षेत्र के भय, हलचल, चन्द्र, आकाशगंगा आदि में सर्वत्र विक्षोभ के बाद भगवान शंकर की कृपा सब शान्त हो गया।

(ऊ) स्वतन्त्र भारत में एक महत्वपूर्ण घटना सम्पन्न हुई थी भारत और पाकिस्तान के संघर्ष में पाकिस्तान का दो भागों में विभाजन और बंगलादेश की स्थापना। युद्ध का कारण यह था कि पाकिस्तान पूर्व और पश्चिम दो भागों में बटा था। दोनों पर पश्चिम से शासन होता था जिसमें पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त और बलोचिस्तान के प्रान्त सम्मिलित थे। उनमें भी पंजाबियों का वर्जस्व था। पूर्व में बंगाल का पाकिस्तानी भाग था। जहाँ की आबादी (चारों प्रान्तों को मिलाकर) पूरे पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक थी। किन्तु शासन सत्ता पर पश्चिमी पाकिस्तान के लोग डटे हुये थे। बंगाल ने स्वयं को उपेक्षित एवं अपमानित समझा और एक प्रकार से सत्ता के लिये संघर्ष करने लगे। पाकिस्तान की सरकार ने निर्मम दमन करना प्रारम्भ कर दिया। बंगाल की जनता पीड़ित होकर भारत की ओर भागने लगी। देखते देखते शरणार्थियों की संख्या बहुत बढ़ गई। भारतीय प्रधान मंत्री ने शरणार्थियों की रक्षा करना अपना धर्म समझा और शरणार्थियों को अपनी भूमि में पहुँचाने का प्रयत्न किया। पाकिस्तान ने उत्तेजना में आकर युद्ध छेड़ दिया जिसमें उसकी बहुत ही बुरी पराजय हुई। इस प्रकार बंगला देश की स्थापना हो गई और शरणार्थी अपने प्रदेश में लौट सके। इसी घटना को लेकर रामकृष्ण शर्मा ने 'बंगलादेशोदयम्' नाटक की रचना की जिसमें बंगाल के सामाजिक, राजनैतिक जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है।

(ए) बंगलादेश के उदय से ही सम्बन्धित शरणार्थिसंवाद, शीर्षक एक अन्य नाटक भी लिखा गया जिसके रचनाकार हैं- वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य। इसमें बंगला देश की स्थापना के बाद वहाँ की दशा का चित्रण किया गया है। छुटकारा दिलाने में भारत की सहृदयता और पाकिस्तान के अत्याचार का चित्रण किया गया है।

(ऐ) भारत की आन्तरिक समस्या भी कम जटिल नहीं थी। प्रान्तीय चुनाव में बंगाल में कम्युनिस्टों की विजय मिली जो अपने सिद्धान्त के अनुसार सभी सम्पत्ति जनता की समझते थे। वे न केवल इसे सिद्धान्त तक ही सीमित रखना चाहते थे किन्तु मनमाने तौर से वे दूसरों के खेत एवं उगी हुई फसल पर भी अधिकार करने लगे। इस दिशा में बंगाल का नक्सलवादी जिला आगे आया। इस प्रकार एक तरह की अराजकता पनपने लगी। अनेक उद्योगपति बंगाल छोड़कर भागने लगे। इन्दिरा गान्धी ने सफलता पूर्वक इसका सामना किया और जैसे तैसे इस प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त की। वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य

ने इस समस्या को लेकर 'सङ्गणव्यायोग' नामक एक नाट्यकृति की रचना की। इसमें नक्सलवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की चर्चा की गई है। इस आन्दोलन के कुछ चिन्ह अब भी आन्ध्रप्रदेश में दृष्टिगत होते हैं।

(ओ) स्वतन्त्रता के विकास के साथ मागे मनवाने की नई विधिया प्रवर्तित की गई जिनमें वेष्टन (घेराव) भी एक है। इसको लेकर वीरेन्द्र कुमार ने वेष्टन व्यायोग नामक एक एकाङ्की की रचना की। सजय नायक है जिसके नेतृत्व में श्रमजीवी मागपत्र लेकर श्रमाध्यक्ष और शिल्पाध्यक्ष के पास जाते हैं। मागे न मानने पर श्रमजीवी अधिकारियों का घेराव कर देते हैं। विवश होकर अधिकारियों को उनकी मागे माननी पड़ती है। तब कलियुग प्रकट होकर श्रमजीवियों को बर्पाई देता है। लेखक ने कर्तव्य की घोर अवहेलना, स्वतन्त्रता के भयानक दुरुपयोग और अनुशासन हीनता की प्रवृत्ति पर आशेष किया है।

(औ) इस बाल में हडताल की प्रवृत्ति भी कर्तव्य हीनता अनुशासन हीनता और स्वतन्त्रता के दुरुपयोग का एक अच्छा निदर्शन है। इस विषय में वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने 'शार्दूलशकटम्' नामक नाटक की रचना की। परिवहन सस्या के कर्मचारी मागों को लेकर हडताल करते हैं। समझौता हो जाता है। कुछ दिनों बाद गवर्नर और मैजिस्ट्रेट आकर परिवहन निगम के कर्मचारियों को संबोधित करने वाले हैं। इस समय का लाभ उठाकर कर्मचारी पुनः हडताल का ऐलान करते हैं। एक मजदूर मारा भी जाता है विवश होकर अधिकारियों को पुनः समझौता करना पड़ता है।

नवीन पद्धति की नाट्यकृतिया

आधुनिक संस्कृत नाट्यरचना में कथानक की नवीन पद्धति के भी दर्शन होते हैं। पितृम जगत् की कई रचनाओं में यह पद्धति अपनाई जाती है कि नायिका का किसी युवक से प्रेम हो जाता है और दोनों प्रेम से प्रभावित होकर विवाह करना चाहते हैं। नायिका को प्राप्त कराने के लिये कोई अन्य व्यक्ति भी आतुर है। वह नायिका के प्रेमी के मार्ग में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित करता है। संघर्ष छिड़ जाता है जो कुछ समय तक चलता रहता है। अन्त में सिद्ध होता है कि नायिका को उस दूसरे व्यक्ति की बहन है जो बचपन में गुम हो गई थी। तब उसके वास्तविक प्रेमी से विवाह के मार्ग में कोई बाधा नहीं रहती और नायिका अपने वास्तविक प्रेमी को प्राप्त कर लेती है। डा. रमा चौधरी की कृति पत्नीकमल भी इसी प्रकार की रचना है। इसमें प्रविधि में भी नई शैली अपनाई गई है। नायिका कमलकलिका रूपकुमार पर आसक्त है। परन्तु नायिका का पिता उसका विवाह मार्तण्ड से करना चाहता है। जब मार्तण्ड को पता चलता है कि नायिका रूप कुमार से मिलती जुलती है तब वह रूप कुमार को पोरान बनना प्रारम्भ कर देता है। वह नायिका के पिता पर भी दबाव डालने की नीति अपनाता है और उस पर भूमिकर न देने का मामला चला देता है। जब नायिका का पिता रत्नमाला बेचने के

लिये मार्तण्ड के पिता प्रभञ्जन के पास जाता है तब वहा पता चलता है कि कमलकलिका तो प्रभञ्जन की पुत्री एवं मार्तण्ड की बहन है जो बचपन में खो गई थी। नायिका का पिता ब्रह्मपद उसका पालक पिता मात्र है। अब कमलकलिका के रूप कुमार के साथ विवाह करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

इस नाटक में प्राग्दोष्टि (फ्लैशबैक) का भी प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अक के स्थान पर दृश्य रक्खा गया है और संगीत का बाहुल्य है।

देशभक्ति परक नाटकों की भी एक सामान्य पद्धति है कि कोई व्यक्ति प्राणपण से देशरक्षा के कार्य में जुट जाता है। तब कोई अन्तस्तल से प्रेम करने वाली युवती उसका पदानुसरण कर उसी युद्धस्थल के निकट घायलों और रोगियों की सेवा करने लगती है। उसका प्रिय घायल होकर उसी के उपचार कक्ष में आता है। इसी आशय का डा रमा चौधरी का लिखा देशदीपम् नाटक नवीन पद्धति पर लिखा गया है। इसमें देशरक्षा हेतु प्राणोत्सर्ग करने वाले वीरों के कार्यकलाप दिखलाये गये हैं। चम्पक वदन एक ब्राह्मण पुत्र है वह अपने मित्र अभ्रप्रतिम के साथ देशरक्षा का व्रत लेता है। दोनों मित्र सेना में भरती हो जाते हैं। चम्पक वदन पदाति सेना में भरती होता है और अभ्रप्रतिम वायुसेना में सम्मिलित हो जाता है। चम्पकवदन की बहन पद्मचन्द्रिका भी प्रातृप्रेम से प्रभावित होकर युद्ध क्षेत्र में घायलों की सेवा शुश्रूषा का कार्यभार सहाल लेती है। चम्पक वदन घायल होकर उसी के परिचारण में आता है जहाँ उसका मित्र और उसकी बहन उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं किन्तु उसे बचा नहीं पाते और वह देश रक्षा के नाम पर बलिदान हो जाता है।

इस नाटक की रचना शैली भी नवीन है। अकों के स्थान पर दृश्यों का प्रयोग तो किया ही गया है कार्यस्थली चयन इत्यादि भी नवीन शैली की ही है और गीतों का बाहुल्य उसे नवीनता प्रदान करता है।

कतिपय स्फुट विषय

इस काल के नाट्य साहित्य में कतिपय अन्य पुटकर विषयों का समावेश भी प्राप्त होता है। इस प्रकार के नाटकों में धनश्याम लिखित नवग्रहचरित एक महत्वपूर्ण रचना है। यद्यपि इसमें भी वर्तमान राजनैतिक सघर्ष की झलक पाई जाती है फिर भी पात्रों के सर्वथा वर्तमान से असंबद्ध होने के कारण इसे पुटकर नाटकों की श्रेणी में ही रखना ठीक होगा। इसमें आकाशचारी ग्रहों को पात्र के रूप में स्वीकार किया गया है। ग्रह नौ हैं और दिन सात ही राहु और केतु के नाम पर कोई दिन नहीं है। इसी आधार पर लेखक ने सघर्ष की कल्पना कर ली है। ग्रहचक्र का स्वामी सूर्य नाटक का नायक है मंगल उसका सेनापति है। राहु प्रतिनायक है जो केतु को लेकर सघर्ष के लिये तैयार हो जाता है। एक बुराई यह भी है कि राहु और केतु के पास कोई राशि नहीं है— १२

राशियों में ५ ग्रहों (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) का दो दो राशियों पर अधिकार है और सूर्य तथा चन्द्रमा के पास एक एक राशि है। यह विद्रोह इसी अन्याय को लेकर उठाया गया है। राहु और केतु का पक्ष है कि उन्हें भी कम से कम एक राशि अवश्य मिलनी चाहिये और उनके नाम पर भी कोई एक दिन अवश्य होना चाहिये। उनका सुझाव है कि शनैश्चर राशिचक्र को पार करने में सबसे अधिक (३० वर्ष) लगता है, उसी को दो फाड़ कर उसके लिये एक दिन की और एक राशि की व्यवस्था की जा सकती है। सघर्ष चलता है देवताओं के गुरु वृश्चिक और दैत्य गुरु शुक्र मिलकर समझौता कराते हैं कि राहु की उक्त मांग तो मानना सम्भव नहीं है किन्तु उसे भी सूर्य के समकक्ष स्वर्णानु (स्वर्ग का सूर्य) की रक्षा दी जा सकती है। राहु सन्तुष्ट हो जाता है और अपना आन्दोलन वापस ले लेता है।

इसी प्रकार का एक अन्य नाटक है जीवन्मयतीर्थ का लिखा शतवर्षिकम् इसमें आजकल की वैज्ञानिक खोजों को आधार बनाया गया है जिनमें चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों पर पहुँचने की चेष्टा की जाती है। मानव विज्ञान के अनुसन्धानों द्वारा विनाश की ओर बढ़ रहा है इसी तत्व को लेकर नाटक की रचना की गई है। मर्त्यमणि नायक है जो राकेटों को अपने शरीर पर पिंपला कर ब्रह्मलोक में पहुँचता है। वहा द्वारपाल भयभीत हो जाता है। चन्द्रमा दुखी है कि बुरी तरह उसका अतिक्रमण किया गया है। मर्त्यमणि चैलेज की मुद्रा में कहता है कि अभी तो मंगल तक ही राकेट छोड़ा गया है शुक्र और बुध तक भी राकेट छोड़ने की योजना बन चुकी है। इस पर राहु को क्रोध आ जाता है, सभी ग्रह मर्त्यमणि को पकड़कर ब्रह्माजी के पास ले जाते हैं। ब्रह्माजी सबको शान्त कर कहते हैं कि मानव को या तो यान्त्रिकी पर अन्धाधुन्य प्रयोग करने से विरत हो जाना चाहिये या १०० वर्ष में पृथ्वी का नाम निशान भी शेष नहीं रह जायेगा।

रूस के महाक्रान्तिकारी साम्यवादी नेता महाराष्ट्र के महासन्त तुकाराम एवं चैतन्य महाप्रभु पर रमा चौधरी की रचनाएँ, शाहजरा बादशाह की राजनीति पर हजारी लाल शर्मा की रचना इसी श्रेणी में आती है। पञ्चानन ने प्रताप के पुत्र अमर सिंह के विषय में अमरमगलम् नामक एक नाटक लिखा था। राजसिंह रावौर पुत्री का विवाह मुगलबादशाह से करना चाहता है, अमर सिंह भी उसे चाहते हैं। रानी अमरसिंह के पक्ष में है। मानसिंह अनेक छल कपटों से अमरसिंह को मार डालना या कलङ्कित करना चाहते हैं। फिर भी अन्त में अमर सिंह को सफलता मिलती है और राजकुमारी उन्हें प्राप्त हो जाती है।

संस्कृत भाषा एक संस्करण सम्पन्न भाषा है जो लोकभाषा नहीं हो सकती। लोकभाषा का स्वभाव परिवर्तनशीलता है जो प्रकाशित होती हुई परिवर्तनों को ग्रहण करती चलती है। बोलचाल और उच्चारण में पिता और पुत्र की भाषा में कुछ अन्तर अवश्य होता है। यह अन्तर पीढ़ियों में बदलते बदलते दो चार सौ वर्ष में भाषा इतना नया रूप धारण कर लेती है कि दूसरी भाषा जैसी प्रतीत होने लगती है। यह परिवर्तनशीलता साहित्य

पर भी प्रभाव डालती है और कुछ सौ वर्ष पहले लोकभाषा में लिखा साहित्य परवर्ती पीढ़ी के लिये असंवेद्य हो जाता है। यह एक बहुत बड़ी हानि है। इससे साहित्य चिन्तन नहीं बन पाता। इस हानि का प्राचीन आचार्यों ने अनुभव किया और एक ऐसी भाषा की आवश्यकता समझी जिसमें लिखा साहित्य असीमित काल तक सुरक्षित रखा जा सके। इसी उद्देश्य से भाषा का संस्कार किया गया और एक ऐसी जकड़ी हुई भाषा का स्वरूप स्थिर कर दिया जिसमें कालान्तर में परिवर्तित होने की प्रवृत्ति जाती रही। यह सच है कि संस्कृत सर्वसाधारण की भाषा नहीं हो सकी, क्योंकि यह नियमों से बंधी हुई है और नियमों का अतिक्रमण कर मनमाने ढंग से बोलने का इसमें अवसर ही नहीं है, साथ ही यह भी सच है कि यह स्थायी साहित्य के लिये सर्वथा उपयुक्त है। हिन्दी में चन्द्रवरदायी तथा उनके समय के दूसरे कवियों की भाषा असंवेद्य हो गई है। संस्कृत नाटकों में जिन प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है उनको भी बिना संस्कृत छाया के समझना कठिन या लगभग असम्भव है। १४वीं १५वीं शताब्दी की भाषा भी आसानी से आज के नवयुवक की समझ में नहीं आती जबकि नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद हजारों वर्ष पहले लिखी हुई व्यास और वाल्मीकि की भाषा इसी रूप में पढ़ी जाती है जैसे वह आज ही लिखी गई हो। निस्सन्देह स्थायी साहित्य रचना का उद्देश्य संस्कृत भाषा पूरी सफलता के साथ पूरा करती जा रही है। यह प्रसन्नता की बात है कि वह आधुनिक साहित्य को भी आत्मसात किये हुये है। नाटक साहित्य ललित कला का सर्वोत्कृष्ट आकर्षक साधन है। किन्तु रचनाकारों की इस ओर प्रवृत्ति साधना में निपुणता प्राप्त कर लेने के बाद ही होता है। सर्वप्रथम मुक्तक में प्रवृत्ति होती है, फिर प्रबन्ध की ओर कवि अभसर होता है और प्रबन्ध में निष्णात होकर महाकाव्य लिखने का साहस करता है। नाटकरचना अत्यन्त परिनिष्ठित काव्यकलाजन्य प्रवृत्ति है जो रचनाकारों को सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठा दिलवाने के कारण होती है। जो गौरव सेक्सपियर और कालिदास को प्राप्त है, कालिदास और भवभूति का जितने गौरव के साथ नाम लिया जाता है वह प्रदिप्टा भारवि, माघ, मिल्टन, वाल्टर स्कॉट आदि को प्राप्त नहीं है। यह सन्तोष की बात है कि संस्कृत का आधुनिक नाट्य साहित्य भी किसी भी दिशा में पीछे नहीं है। इसमें पार्श्वत्य नाटकों के अनुवाद हैं, आधुनिक प्रवृत्तियों की झलक है, आधुनिक नाट्य प्रक्रिया का अनुसरण है जबकि प्राचीनता का अचल भी छूटा नहीं है। लेखक की आशा है इसी प्रकार अनन्तकाल तक संस्कृत नाट्यकला अपना पवित्र कर्तव्य निभाती हुई जनसाधारण को कृतार्थ करती रहे।

अ

अकालजद—(नाकास) ख्यातनामा कलाकार एवं विचारक राजशेखर के बाबा थे। ये स्वयं एक अच्छे कवि एवं कलाकार थे। किन्तु अभी तक इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। फिर भी यत्र तत्र इनकी प्रशस्ति पाई जाती है। जल्हण की सूक्ति मुस्तावली में इनके पद्य उद्धृत किये गये हैं और लिखा है कि कादम्बरीराम ने इनके पद्यों को घोरकर अपने नाट्य में समाविष्ट किया है। सूक्ति मुस्तावली में एक पद्य आया है जिसका आशय है— 'अकालजद एक ऐसा चन्द्रमा है जिसकी स्मृणीय वचन चन्द्रिका का उपयोग कवि-चकोर निरन्तर करते रहते हैं किन्तु उसकी समाप्ति नहीं होती। इन कथनों से प्रतीत होता है कि अकालजद ने सम्भवतः नाटक रचना की होगी जिनकी सूक्तियों को लेकर कादम्बरीराम जैसे नाट्यकारों ने उन्हें अपनी रचनाओं में स्थान दिया।

अक्ष—(नाया) रावण का पुत्र जिसे सीता की खोज के अवसर पर हनुमान ने मारा था। प्रसन्नराघव में विचित्र परिस्थिति दिखलाई गई है— जब प्रेम के तुकाराम जाने पर क्रुद्ध रावण सीता को मारने चतुरा है तभी उसे अपने मारे हुए पुत्र अक्ष का सिर दिखलाई देता है।

अक्षयपत्र—(नाक) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना दामोदरान् भम्बूद्रि (दे) ने १९वीं शताब्दी में की थी।

अक्ष सूक्त—(ऋग्वेद (१० ३८) में एक घृतकार घृत की बुझियों का वर्णन करता है। अपनी दोन होन दशा के लिये वह पशुधाताप कर रहा है क्योंकि घृत में सब कुछ यहा तक कि पत्नी को भी हाट चुका है, उसकी पत्नी गैरों के साथ सोती है, वह घृत के दुष्परीणाम में पीड़ित है और उसके निरः पशुधाताप करता है। यह एकालाप

है जिसमें वक्ता स्वर बदलकर विभिन्न चेष्टायें प्रदर्शित करता है। कुछ विचारकों का कहना है कि इसके अभिनय में पार्श्वों का चलना और उनका प्रभाव अभिनय के द्वारा दिखलाया जाता होगा। किन्तु इस विषय में कोई प्रमाण नहीं है।

अगस्त्य—(नापा) रामायण के महत्वपूर्ण पात्रों में एक। वनवास में राम ने इन के आश्रम में शस्त्र विद्या का अभ्यास किया था और इन्हीं से राम को वह शस्त्र प्राप्त हुआ था जिससे रावण का वध किया गया। इन्हीं के निर्देश पर राम ने पञ्चवटी में आश्रम बना कर निवास किया था जहाँ सीताहरण किया गया। राम विषयक नाटकों में इस पात्र का प्रायः उपादान किया गया है। साथ ही कतिपय कवियों ने उक्त परिवेश से भिन्न परिस्थिति में भी इनका उपादान किया है। उदाहरण के लिए—

(१) उत्तररामदीर्घ—(दे) में राम एक बार पुनः शम्बूक नामक शूद्र मुनि को मारने के लिये अगस्त्य के आश्रम के निकट आते हैं जहाँ राम के हाथों मरकर शम्बूक सश्रुति को प्राप्त होता है और अपने उद्धारक को अगस्त्य-आश्रम में भेज देता है जहाँ पुराने स्थलों को देखकर राम की वियोग व्यथा अत्यन्त तीव्र हो जाती है। वहाँ देवियों की कृपा से सीता छाया रूप में राम को उनकी मूर्छाओं में साक्ष्य देती है।

(२) उन्मत्तराघव—(दे) में जब दुर्वासा के शाप से सीता हरिणी बन जाती है और राम वियोग में उन्मत्त होकर इधर उधर तलाश करते घूमने लगते हैं तब अगस्त्य तपोबल से सारा रहस्य जान लेते हैं और उनको कृपा से सीता पुनः अपने रूप में आ जाती है तथा राम का वियोग दूर हो जाता है।

अगस्त्यलोचामुद्रा सूक्त—(नाप्रज्ञसू) यह एक सवाद सूक्त है। इस सूक्त (११७९) में अगस्त्य, सोपामुद्रा (पत्नी) और उनके पुत्र का वार्तालाप प्रहेलिका रूप में होता है। इसकी व्याख्या प्रजनन रूप में की गई है। औल्डेन बर्ग ने सोपामुद्रा का अर्थ किया है मोहर को तोड़ने वाली अर्थात् सदाचार की मर्यादा का उत्तलन कर रति का आनन्द लेने वाली। इसी प्रकार इसकी प्रजनन रूपता का निर्वाह करने की चेष्टा की गई है।

(१) अग्नि—(नापा) ऋग्वेद में सवादसूक्तों में अग्नि और देवताओं में सवाद (१०५१३) का एक पात्र। अग्नि पोशान और क्रुद्ध है कि उसे देवताओं तक हवि ले जाने में कठिन परिश्रम करना पड़ता है। यह एक दबाने वाला कार्य है, देवता बड़ी बठिनाई से अग्नि को समझाबुझा कर राजी करते हैं। यह सवाद अत्यन्त विषद है।

(२) अग्नि—(नापा) भास (दे) लिखित नाटक अविमारक (दे) में अग्नि अविमारक का पिता है और जब अविमारक प्रेयसी के वियोग में पीड़ित होकर आत्मदाह करना चाहता है तब अग्नि उसे जलाता नहीं अन्त में अविमारक प्रेयसी को प्राप्त कर लेता है।

(३) अग्नि—(नापा) अधिक नाटक (दे) का एक पात्र। सीता की अग्नि परीक्षा

के अवसर पर अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर सीता को लक्ष्मी का अवतार बतलाते हैं और इस प्रकार सीता को अपनी गवाही से पूर्ण रूप से निर्दोष सिद्ध करते हैं।

अग्निमित्र—(नापा) मालविकाग्निमित्र (दे) का नायक। यह एक कामुक नायक के रूप में चित्रित किया गया है। उसकी प्रेमिका विदर्भ की राजकुमारी मालविका है जो पराजित भाई के साथ लुक्ती छिपती अग्निमित्र की राजधानी विदिशा पहुंच जाती है। राजा उसके रूप पर मुग्ध है किन्तु उन्हें अन्तपुर के अनेक घात प्रतिघातों का सामना करना पड़ता है। अन्त में अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने में राजा को सफलता मिल जाती है। यह एक दक्षिण नायक है जो अन्तपुर की सभी रानियों को सन्तुष्ट रखना चाहता है और प्रेम प्राप्त करने के लिये दूसरी रानियों का अपमान नहीं करता।

प्रेमी स्वभाव के अतिरिक्त इनके अन्य गुणों का विकास नहीं हो पाया है। वह एक धीरललित नायक होकर ही रह जाता है। फिर भी उत्तर की विजय अश्वमेध यज्ञ और सिन्धु के किनारे पर्वतों पर विजय उसकी शासनकुशलता और उसकी चौरागति की ओर संकेत करने के लिये भी पर्याप्त है।

यह एक ऐतिहासिक पात्र है। पुण्यमित्र ने मौर्य राजा को सिंहासनच्युत कर १७८ ईपू जिस शुगवरा की स्थापना की थी उसी में इसका जन्म हुआ था। यह पुण्यमित्र का पुत्र था। किन्तु इस नाटक में उसके राजकीय चरित्र की अपेक्षा कामुक रूप को नाटक का विषय बनाया गया है जिसमें प्राचीन भारतीय राजघरानों की चहल पहल के चित्रण में उसके राजकीय स्वरूप का अवमूल्यन हुआ है। वह एक कामार्त नायक के रूप में दृष्टिगत होता है। एक ओर युद्ध चल रहा है किन्तु उसे शस्त्रावेष्टाओं से इतनी फुरसत नहीं मिलती कि वह युद्ध कि ओर भी ध्यान दे सके। अन्त में उसे विजय का समाचार दे दिया जाता है। यद्यपि इससे यह भी व्यक्त होता है कि उसने अपनी शासन कुशलता एवं मानवता के प्रभाव से अधिकारी वर्ग एवं प्रजा वर्ग को इतना समर्पित बना दिया है कि वे पूरी निष्ठा के साथ उसके कार्य का सम्पादन करते हैं और अपने राजा को जीवन का उन्मुक्त उपभोग करने की खुली छूट दे देते हैं। किन्तु सब बातों के होते हुये भी उसके स्वभाव का दक्षिण होना (सभी प्रेमिकाओं को प्रसन्न रखने की चेष्टा) ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

अग्निवीणा—(नाक) डा रमा चौधरी लिखित नाटक। इसमें अग्निवीणा नामक बंगाली काव्य के लेखक नजरुल इस्लाम का चरित्र चित्रित किया गया है।

अधटघटम्—(नाक) उड़ीसा निवासी जोगीपट लिखित नाटक।

अघोरघण्ट—(नापा) मालतीमाधव नाटक का एक प्रतिगायी पात्र। यह अपनी शिष्या कपालकुण्डला के साथ तत्र साधना में लग्न है और इसीलिये चामुण्डा पर मालती की बलि चढ़ाना चाहता है। मालती के रोने की आवाज सुनकर मायव अवसर पर पहुंच

जाता है और अघोरघण्ट को मार डालता है। वह एक कापालिक है और उसके व्यवहार में क्रोध एवं क्रूरता की विशेषता है। उसके नाम के अन्त में घण्ट शब्द का प्रयोग किया गया है उससे कापालिक के नामकरण की शास्त्रीय पर्यादा का पालन हो जाता है।

नाटक में इस पात्र का समावेश एक विशेष मन्तव्य से हुआ है। इसके द्वारा कवि को विमर्श सन्धि के अग सफेद (रोषभाषण) के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हो जाता है। साथ ही उसकी शिष्या कपालकुण्डला की प्रतिशोध की भावना के कारण कथानक को भी आगे बढ़ने का अवसर मिल जाता है।

अगद— (नाकू) दे दूताङ्गद।

अगद— (नापा) रामायण में वाली का पुत्र जो वालिवध के बाद वाली के आदेश पर ही राम के सहायक बन गये थे। इनका सर्वप्रधान कार्य है युद्धारम्भ से पहले राम का समझौता सन्देश रावण के दरबार में ले जाना और वहा शक्ति तथा शान्ति की समन्वय पूर्ण बातचीत द्वारा नीति निपुणता प्रदर्शित करना। इनकी इसी भूमिका का उपादान राम विषयक अनेक नाटकों में हुआ है जिनमें प्रमुख हैं— अभिषेक नाटक (दे.) दूताङ्गद (दे.) अद्भुत दर्पण (दे.) महावीर चरित (दे.)

(१) अभिषेक— नाटक में पिता की मृत्यु के बाद अगद शोकपूर्ण अवस्था में दिखलाये गये हैं।

(२) दूताङ्गद— का नामकरण ही अगद के दौत्यकर्म को लेकर किया गया है। जी बुलहर ने भूषट लिखित जिस दूताङ्गद नामक नाटक का सक्लन किया था उसकी अनेक प्रतियां पाई जाती हैं और पिरोल का कहना है कि जितनी प्रतियां हैं उतने ही दूताङ्गद हैं अर्थात् सभी प्रतियों में पृथक् पृथक् पाठ पाये जाते हैं। गुजरात काठियावाड कच्छ के प्राइवेट पुस्तकालयों में जो अनेक प्रतियां पाई जाती हैं उनका सक्लन 'अगद' नाम से किया गया है। कैटेलागस कैटेलागारम (१४) में भी इसका सक्लित रूप विद्यमान है। किसी किसी प्रति में लखक का नाम सुभट दिया गया है या सम्भवतः भूषट का ही लखक प्रमाद से बिगडा हुआ रूप है। (परिचय क लिपि देखिये दूताङ्गद) किन्तु पाठभेद से अगद के चरित्र पर कोई व्यतिरिक्त प्रकाश नहीं पड़ता। इस का अगद के दौत्यकर्म की निपुणता में ही पर्यवसान होता है। रावण समझाना चाहता है कि सीता उससे प्रेम करती है किन्तु अगद मानने से इन्कार कर देता है और दौत्यकर्म असफल हो जाता है।

(३) अद्भुतदर्पण— रामचरित्र का लेकर लिखा गया नाटक है किन्तु इस का प्रारम्भ ही अगद के दौत्यकर्म से होता है।

(४) महानट्यक— में अगद की वावदकता और ठहर प्रत्युत्तर की निपुणता प्रकट होती है। इस कथापकथन की महना इमी से प्रकट होती है कि हिन्दी के मूर्धन्य कवि गान्धारी दुर्लभादास ने रामचरित्रमञ्जर में इस मनाद का पूरा आश्रय लिया है। महानट्यक

का यह खण्ड अन्य खण्डों की अपेक्षा अधिक नाटकीय है।

(५) महावीरचरित- में अगद समझौते की दो शर्तें लेकर उपस्थित होता है और उस आधार पर समझौता कराना चाहता है, शर्तें हैं- सीता का प्रत्यर्पण और रावण का लक्ष्मण के चरणों में प्रणत होना। रावण शर्तों को तुकरा देता है और अगद को बन्दी बनाना चाहता है। किन्तु असफल होता है।

अङ्गुष्ठदानम्- (नाकू) दे राम किशोर मिश्र।

अजय पाल- (नाका आदा) नाट्यकार रामचन्द्र (दे) के आश्रय दाता। ये हेमचन्द्र के आश्रयदाता कुमार पाल के भतीजे थे। इसका समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध था। अजयपाल के नाम पर नानार्थसंग्रह नामक एक कोश ग्रन्थ भी बतलाया जाता है। हो सकता है वह उन्हीं की रचना हो।

अजितापीड- नवी शताब्दी के पूर्वार्ध में काश्मीर के राजा। इसके शासनकाल में शकुन ने अपनी रचनायें साहित्य जगत् को प्रदान की थीं। नाट्यरस तत्व की व्याख्या करने में इनका महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

अञ्जनापवनझय- (नाकू) हस्तिमल्ल लिखित सात अकों का नाटक। इसकी रचना १३वीं शताब्दी में की गई थी। यह मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी (स २७२) में सुरक्षित है।

अण्णराय सुरपुरम्- (नाका) दे सुएणुम् अण्णराय।

अण्णा शास्त्री- (नाका) इनका लिखा मौनाश्रीपरिणय (दे) नाटक मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी की संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग में स ०२७९ पर संवर्तित किया गया है।

अतन्द्रचन्द्रिका- (नाका) १७वीं शताब्दी के जगन्नाथ कवि द्वारा लिखित नाटक। फतेह शाह के दरबार में उपस्थित सामन्तों के मनोरञ्जन के लिये इसकी रचना की गई थी। इसका उल्लेख पैटार्सन की रिपोर्ट में किया गया है जो कि बम्बई क्षेत्र में पाण्डुलिपियों की खोज पर तैयार की गई थी। इस रिपोर्ट के चार खण्ड हैं जिनमें दूसरे खण्ड की २२वीं सख्या पर इस नाटक का उल्लेख है।

नाटक की रचना मालतीमाधव से प्रभावित ज्ञात होती है। इसमें भी दो युग्म हैं- चन्द्र और चन्द्रिका एवं सागर और चन्द्रकला। चन्द्र का प्रतिद्वन्दी एवम् तमिस्रा का पुत्र विमूढ कादम्बनी नामक सिद्धयोगिनी की सहायता से चन्द्र पर आक्रमण करता है परन्तु हार जाता है। तब कादम्बनी चन्द्रिका का अपहरण करती है किन्तु चन्द्रिका की सखी शारदा उसे छुड़ाकर उसे चन्द्र से मिलाती है। दूसरे युग्म में चन्द्रकला विमूढ की बहन है जिनका संयोग कराने में कलावती प्रयत्नशील होती है। कलावती को चन्द्रिका के छद्मवेश में तैयार कर सानुमती नामक एक सिद्धयोगिनी ने विमूढ के साथ विवाह करा

दिया है। अन्त में चन्द्र और चन्द्रिका एव सागर और चन्द्रकला दोनों युग्म विवाह बन्धन में बंध जाते हैं।

अतिरात्रयज्वन्- (नाका) नीलकण्ठविजयचम्पू के लेखक नीलकण्ठ दीक्षित के सगे भाई थे। इनका समय १७वीं शताब्दी है। ये तन्त्रविद्या और यज्ञविधियों के ज्ञाता एव शैव सिद्धान्त के विशेषज्ञ थे। ये जन्मजात कवि एव आलोचक थे। इन्होंने पाच अर्कों के एक नाटककुशकुमुद्वतीयम् (दे) की रचना की जिसमें राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश के नागकन्या कुमुद्वती के साथ प्रणयसम्बन्ध का चित्रण किया गया है। कहा जाता है कि इसके अतिरिक्त इन्होंने एक काव्य और त्रिपुराविजयनामक चम्पू की भी रचना की थी। काव्य और चम्पू अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं।

कुशकुमुद्वतीय की प्रति पैलेस लायब्रेरी लखनऊ में सुरक्षित है। जिसका कैटेलाग (VIII ३३७८) में उल्लेख किया गया है।

अयकिम्- (नाकू) यह सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय (दे) की एक नाटयकृति है। इसकी रचना १९७० में हुई थी और इसका अभिनय सस्कृत साहित्य परिषद् के ५५वें अधिवेशन में प्रस्तुत किया गया था। इसका प्रकाशन ठसी परिषद् में सन् १९७८ में कराया गया था। इसकी शैली आधुनिक है और इसमें सामाजिक विसंगतियों का उपहास उड़ाया गया है।

(१) **अथर्ववेद-** (नात्रयो) यह चतुर्वेद है। भारत के अनुसार पञ्चम वेद नाटयवेद की रचना करने में ब्रह्माजी ने इससे रस तत्व ग्रहण किया था।

अन्य वेदों के असमान अथर्ववेद अभिजातवर्ग के त्रिपा कलाप के स्थान पर जनजीवन की प्रवृत्तियों उनके अन्धविश्वासों और उनके प्रयाग में आने वाले जादू टोना को लेकर चला है। नारियों का प्रेम प्राप्त करने दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने, इसके लिये उपकरण जुटाने के साथ शत्रुमर्दन मारण अधिचार इत्यादि जन समाज की हृदियों की इसमें वर्ण्य वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया है। यह सभी रस सामग्री है। इसलिये अथर्व से रस ग्रहण की संगति बैठ जाती है। डा नगेन्द्र के अनुसार नाटयशास्त्र में कामशास्त्र स विषय के उपादान का जो निर्देश दिया गया है उसका आशय यही है कि अथर्ववेद स वस्तु का उपादान काम सूत्र में किया गया और कामसूत्र से नाटय शास्त्र में आया है। इस प्रकार नाटयशास्त्र काम सूत्र के माध्यम से अथर्ववेद से उपनृत हुआ है।

(२) **अथर्ववेद-** (नाकूस) ऋग्वेद में वैदिक सूक्त सग्रह की सवाद सूक्त परम्परा के अन्तर्गत अथर्ववेद में भी एक सूक्त (५ ११) आता है जो सवादसूक्त है। ऋत्विज की कामना एक गाय प्राप्त करने की है। वह इसके लिये देवता अथर्वा से प्रार्थना करता है किन्तु देवता उसकी अभिलाषा पूरी करने का तैयार नहीं है। अन्त में देवता द्रविण हो जाता है और वह उसकी प्राप्य वस्तु प्रदान करने के साथ ही उसके साथ स्थाया मैत्री भी

स्थापित करने का वचन देता है। अथर्व वेद के कतिपय अन्य सूक्तों में भी सवाद का समावेश है, किन्तु उनमें या तो सवाद नाग्य है या आख्यानपर्यवसायी है जिन्हें अभिनय की श्रेणी में लाना दुष्कर है।

अथर्वा- (नापा) अथर्व वेद के एकाकी सवादसूक्त में ऋत्विज गाय के लिये अथर्वा देव से प्रार्थना करता है। पहले तो अथर्वा उस प्रार्थना को ठुकरा देता है किन्तु बाद में स्वीकार कर लेता है। इस सूक्त में अथर्वा वैदिक ऋषि के रूप में नहीं एक अनुग्राहक देवता के रूप में आये हैं, अतः उन्हें नाट्यपात्र के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

अदिति- (नापा) ऋग्वेद (४-८) सूक्त का एक पात्र। यह एक सवाद सूक्त है जिसमें इन्द्र, अदिति और कामदेव भाग लेते हैं। इसमें अदिति सवाद परायण एक पात्र है।

अदितिकुण्डलाहरण- (नाकृ) कादम्बरीराम (दे.) (रामकृष्णकादम्बरी राम) लिखित नाटक। इस रचना में ७ अंक हैं। नरकासुर ने देवमाता अदिति का कुण्डल चुरा लिया है। इन्द्र इसको सूचना कृष्ण को देते हैं। श्री कृष्ण विभिन्न प्रदेशों के राजाओं को एकत्र कर नरकासुर को पराजित करते हैं और इस प्रकार अदिति का कुण्डल प्राप्त हो जाता है। इस समस्त गतिविधि में कृष्ण के साथ सत्यभामा भी रहती हैं।

इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी। इसमें वर्णाश्रम धर्म की महत्ता, सत्य परायणता, मिथ्या एवं अन्य विश्वास का प्रतिषेध इत्यादि मानवीय गुणों पर विशेष बल दिया गया है। दाशरथि महोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसकी प्रति सिन्धिया ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट उज्जैन के पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्त की जा सकती है।

अद्भुतदर्पण- (नाकृ) महादेव (दे.) का लिखा १० अंकों का नाटक। इसमें लका पर राम की विजय का अंकन किया गया है। इसमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि अद्भुत रस ही सब रसों का सिरमौर है। इसके पात्रों में मानव के साथ वानर, भालू, राक्षस जैसे रामायणप्रसिद्ध पात्रों का तो रंगमञ्च पर अवतरण दिखलाया ही गया है लका में मायावी घटनायें भी घटित होती हुई दिखलाई गई हैं। नाटक का कथानक हनुमान के लका से लौट आने के बाद प्रारम्भ होता है और राम के राज्याभिषेक पर्यन्त दिखलाया गया है। इसमें विदूषक का भी समावेश किया गया है जो राधा विश्वनाथ नाटकों में प्रायः नहीं देखा जाता।

अगद के दौत्यकर्म के असफल हो जाने पर जब युद्ध अनिवार्य हो जाता है रावण लका में मायावी शक्तियों को एकत्र कर लेता है जिनमें शम्बर अन्यतम मायावी है। वह वानर वेश में वानर सेना में प्रवेश करता है किन्तु जाम्बवन्त द्वारा सन्देह में पकड़ लिये

जाने पर अदृश्य हो जाता है। जाम्बवन्त वास्तविक बानर दधिमुख को शम्बर समझ कर पकड़ लेता है। तब शम्बर दधिमुख का रूप धारण कर राम के सामने प्रकट होता है और बतलाता है कि अगद रावण से मिल गया है, इसके साथ ही शम्बर अगद का वेष धारण कर सुग्रीव का सर राम के सामने रख देता है किन्तु लक्ष्मण इस बात पर विचारा नहीं करते कि सुग्रीव वास्तव में मारा गया है। इतने में सुग्रीव वहा आ जाते हैं और सारा सन्देह दूर हो जाता है। रावण का सेनापति अगद वेष में शम्बर को वास्तविक अगद समझ कर बन्दी बना लेता है शम्बर सेनापति को अपनी वास्तविकता बतलाना है तब जाम्बवन्त सुन लेता है और उसे पुन पकड़ लेता है।

रावण के समुद्र ने रावण को एक ऐसा दर्पण भेंट में प्रदान किया था जिसमें तीन योजन की सारी घटनायें प्रतिफलित हो जाती थी। वह दर्पण सयोग से विभोषण के हाथ लग गया था जिसे विभीषण ने राम को प्रदान कर दिया था। राम युद्ध का सारा दृश्य उसी दर्पण में देखते हैं। रावण पक्ष के सभी वीर मारे जाते हैं युद्ध का परिणाम राम के पक्ष में जाता है। तब मायासुर की माया चलना है। वह राम का रूप धारण कर सीता के सामने प्रकट होता है और सीता से कहता है कि पाण्डु में वास करने के कारण दूषित हो चुकी हो अतः मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता। सीता दुःखित होकर अग्नि प्रवेश करती है कि एकदम आकाश वाणी होती है कि सीता शुद्ध है उनमें कोई दोष नहीं। आकाश से ही दशरथ भी आशीर्वाद देते हैं।

इस नाटक की रचना १६६० में हुई थी। तज़ौर लायबेरी में न VIII ३५३४ पर यह प्राप्त की जा सकती है। इसका प्रकाशन काव्यमाला सोरोज स हो गया है।

अद्भुतपञ्चर—(नाकू) यह १८वीं शताब्दी के नारायण दी (दे) की शृङ्गार एवं वीर रस प्रधान रचना है। इसका कथानक रत्नवती मालविकाग्निमित्र जैसी रचनाओं से मेल खाता है। तज़ौर के शाहजी की महाराणी ने सुन रक्खा है कि उसकी मौसेरी बहन लोलावती के विषय में ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की है कि उसका पति सार्वभौम सम्राट होगा। रानी को अपने विषय में भी भविष्यवाणी ज्ञान है कि उसकी सौत की पुत्र पुत्रराज का पद प्राप्त कर उसका आज्ञाकारी बनेगा। परिस्थितियां कुछ ऐसी बनती हैं कि उसके राज महल में उसकी वरी मौसेरी बहन लोलावती सारसिका के नाम से आ जाती है। रानी सारवधानी के साथ राजा से उसका प्रत्यक्षीकरण बचानी है। किन्तु दोनों एक दूसरे को देख ही नहीं लेते परस्पर प्रेमजाल में भी फस जाते हैं। जब रानी को इसका पता चलता है तब वह क्रुद्ध होकर उसे लकड़ी के पिण्डों में बन्द कर देता है। जब उसे पता चलता है कि सारसिका वास्तव में उसकी मौसेरी बहन लोलावती है तब वह प्रयत्न पूर्वक राजा से उसका विवाह कर देती है।

इस नाटक की रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी। इसका प्रथम अभिनय १७०८ में महामहोत्सव में सम्पन्न हुआ था। इस नाटक को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि

यह सामयिक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है किन्तु वास्तव में इसका कोई सम्बन्ध सामयिक घटनाओं से नहीं है।

अद्भुतरंग- (नाकू) हरिजीवन मिश्र (दे) का लिखा एक प्रहसन। राजा मदनक विक्रम एक वैष्णव से नाराज हो जाता है। वैष्णव का नाम गूढरस मिश्र है। राजा विधवा विध्वंसक नामक आचार्य से उस कामाग्निकुण्ड में तप्त होने का दण्ड दिलवाता है। कुण्ड दहन के लिये वरुणा के साथ आचार्य का पत्नी भी आती है। किन्तु अन्त में ज्ञात होता है कि विदूषक ही विधवाविध्वंसक की पत्नी है।

इसका रचनाकाल १७वीं शताब्दी है।

अद्भुतसद्यवम्- (नाकू) वनमाली मिश्र लिखित नाटक।

अद्भुतार्णव- (नाकू) यह कवि भूषण लिखित १२ अंकों का नाटक है। कैटेलागस कैटेलागोरम् (१११२) में इसका उल्लेख किया गया है।

अद्भुताशुक- (नाकू) जगूआलवार आयर उपनाम जगू वकुलभूषण लिखित ६ अंकों का नाटक। यह वेणीसहार का लगभग उपक्रम है। इसकी विशेषतायें हैं- रगमञ्च पर रय का आना कृष्ण का मृगवेष धारण करना चीर हरण का दृश्य भीमसेन का सी वेष पाशों का एक साथ रगमञ्च पर एकत्रित होना। इस नाटक में छायातत्व का भी समावेश किया गया है और एकोक्तिर्यो एव सूक्तिर्यो का बाहुल्य है।

इस नाटक की रचना १९३१ में हुई थी और १९३२ में बंगलौर से इसका प्रकाशन हो गया। इसका प्रथम अभिनय यदुगिरि के भगवान् सपत्न्युम्मार के हरिकिरीटोत्सव के अवसर पर किया गया था।

अनगजीवन- (नाकू) वारादाचार्य लिखित भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणालयक उपखण्ड स XXI ८३४७ एव त्रिऔर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि उपखण्ड के सूची पत्र स VII ३५६६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **अनगतिर्लक-** (नाकू) यह एक भाण है जिसकी रचना श्रीनिवास के पुत्र रगनाथ ने की थी। यह मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में स III ८१७३ पर प्राप्य है।

(२) **अनगतिर्लक-** (नाकू) युवराज (दे) लिखित भाण। इसकी पाण्डुलिपि विजयपट्टम की आर्णलायब्रेरी में ज्ञान की जा सकती है।

अनङ्गदाप्रहसन- (नाकू) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना जगू श्री वकुलभूषण ने सन १९५८ में की थी। इसकी नायिका वेश्या है जो अगदान किये बिना ही पैसा पैदा करती है। एक परिवार में दो भाई हैं पहले एक भाई आता है जा वेश्या को एकावली देता है। इतने में बड़ा भाई बाहर दरवाजा खटखटता है। तब वह वेश्या छोटे भाई का मुँह काला कर उसे अन्दर के कमरे में छिपा देती है। बड़ा भाई जब अन्दर आता है तब

उससे भी देह व्यापार का शुल्क लेकर उसी प्रकार कमरे में छिपा देती है। छिपाने के पहले दोनों भाइयों से एक ही बात कहती है— 'तुम अन्दर चलो मैं पुरुष वेष में आकर तुम्हें मिलूंगी, अब दोनों भाई एक दूसरे को वेश्या समझकर प्रणय निवेदन करने लगते हैं। बाद में रहस्य खुलने पर दोनों लज्जित होते हैं।

जयपुर से प्रकाशित होने वाली भारतीय पत्रिका में इसका प्रकाशन हो चुका है।

अनगवद्विद्याविलास—(नाकू) वरदाचार्य (दे) लिखित भाग। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के कैटेलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स में इसका उल्लेख XXI ८३४५ संख्या पर किया गया है। एक उत्सव में प्रदर्शन के लिये इसकी रचना की गई थी।

अनङ्गमङ्गल—(नाकू) सुन्दर लिखित एक भाग जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में संख्या ११२ पर किया गया है।

अनङ्गमञ्जरी—(नापा) शृङ्गार भूषण भाग की नायिका है जिससे मिलने नायक विलासशेखर गणिकाओं के मुहल्ले में आता है। गणिकाओं में यह प्रमुख है जिसके साथ विलासशेखर की प्रणय लीलाओं का चित्रण किया गया है।

अनगलतिका—(नाकू) एक भाग जिसका उल्लेख लेवी ने किया है। यह लक्ष्मी नरसिंह की रचना बतलाई गई है।

अनगलेखा—(नाकू) यह अज्ञात नामा कवि की लिखी हुई अनुपलब्ध कृति है। इसका उल्लेख जयराथ ने अलंकार सर्वस्व की टीका में किया है जिसका प्रकाशन काव्यमाला संस्करण के १९वें भाग में किया गया है।

अनगवती—(नाकू) यह अज्ञातनामा लेखक की रचिका है जिसका उल्लेख नाट्य दर्पण एवं शृङ्गार प्रकाश में किया गया है।

(१) **अनङ्गविजय—**(नाकू) यह एक भाग है जिसकी रचना कोटुनि नविरात्र नाम से प्रसिद्ध कविसार्वभौम उपाधिधारी रामवर्मा (दे) ने की थी। इसका उल्लेख कृष्णमाचार्य ने हिंदी आफ सस्कृत लिटरेचर में किया है। यह सुकोमल भावनाओं से भरी एक रचना बतलाई जाती है।

(२) **अनगविजय—**(नाकू) जगन्नाथ (दे) लिखित भाग। इसका उल्लेख तजौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में खण्ड ७ की स ३०२९१ पर किया गया है।

(३) **अनङ्गविजय—**(नाकू) यह एक भाग है जिसकी रचना गौतम गोत्र के शिवराय कृष्ण ने की थी। इसको मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विद्वानात्मक पाण्डुलिपि अनुभाग स XXI ८३४७ पर संकलित किया गया है। इसकी रचना चिन्मयेन्द्राय के पुत्र नरेश महिपान के आग्रह पर बम्बलूर में अभिनय के लिये की गई थी।

(४) अनङ्गविजय- (नाकृ) यह रामवर्मन युवराज का लिखा हुआ भाण है जिसमें मनोरम रसाभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। इसका प्रकाशन त्रिचूर से हो गया था।

अनङ्गशेखर- (नापा) यह शङ्करशेखर भाण का नायक है जो अनङ्गमञ्जरी गणिका से मिलने गणिकाओं के मुहल्ले में जाता है और आकाशमादित के द्वारा अनेक दृष्टिओं से तत्कालीन परिस्थिति का चित्रण करता है।

अनङ्गसर्वस्व- (नाकृ) यह लक्ष्मीनृसिंह लिखित भाण है। तजौर के राज पुस्तकालय में पाण्डुलिपि अनुभाग (VII ३५७८) ये इसका उल्लेख किया गया है।

अनगसेना- (नापा) धूर्त समागम प्रहसन (दे) की नायिका। जो भी देखता है उसे चाहने लगता है। गुरु, चेला, धर्माधिकरण में नियुक्त ब्राह्मण, विदूषक सभी उस पर एकाधिकार करना चाहते हैं। वह न्याय को पसन्द करने वाली दिखलाई गई है। जब कभी कोई विवाद उठता है वह न्यायकाये के पास निपटारे के लिये भेज देती है यह दूसरी बात है कि न्यायकारी स्वयं उसे अपने पास रखने के लिये लालचिन हो जाता है और फैसला होने तक अपने पास ही रखने का निर्णय देता है।

अनङ्गसेना हरिनान्दिनी- (नाकृ) शक्तिवासकुमार लिखित प्रकरण। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है।

अनगहर्ष मात्रराज- (नाका) ये चेदि प्रदेश के कल्चुरि वशीय राजा थे। दक्षिणी बिहार और उत्तरी मध्यप्रदेश को लेकर जो एक राज्य बनाया गया था उसी को चेदि राज्य की सज़ा दी जाती थी। जिसको राजधानी माहिषती थी और इस पर हैहय या अनूप देश के अधिपति पौराणिक कार्तवीर्यार्जुन का राज्य था। माहिषती का आधुनिक नाम महेश्वर या महेश है। बाद में इन राजाओं की राजधानी जवलपुर के निकट त्रिपुरी (आधुनिक तेवर) चली गई। अनगहर्ष मात्रराज के पिता का नाम नरेन्द्रवर्धन था।

अनगहर्ष के विषय में कई धारणाएँ हैं- कुछ लोग इनकी उपरिधि मात्रराज मानते हैं और कुछ लोग (एम आर कवि) इन्हें मायुराज से अभिन्न बतलाने हैं। मायुराज प्राकृत (माउराज) का एक रूप प्रतीत होता है। कुछ लोगों का विचार है कि अनगहर्ष मात्रराज और मायुराज ये दो पृथक् कवि थे। एमएल मेहता का विचार है कि महाराज हर्ष की ही अनगहर्ष की सज़ा दी जाती है क्योंकि एक पद्य में उन्होंने अनग शब्द का प्रयोग किया है। सोड्डल ने इनका उल्लेख वाक्पतिराज और विशाखदेव के साथ किया है। कुट्टिनी मत में इनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है।

इन्हें महाराज हर्ष से अभिन्न मानना सगत प्रतीत नहीं होता। ज्ञात होता है कि इनका समय महाराज हर्ष से पहले का है। महाराज हर्ष और इन्होंने उदयन चरित्र विषयक जो नाटक लिखे हैं उनमें इन्होंने हर्ष की परम्परा नहीं निभाई है। इनकी परम्परा सुबन्धु, भास और शूद्रक से सम्बन्ध रखती है। इनके बहिष्पयक नाटक में उदयन की दूसरी रानी

पद्मावती बतलाई गई है जोकि प्राचीन परम्परा का परिचय देती है जबकि हर्ष ने दूसरी रानी का नाम रत्नावली लिखा है जो परवर्ती परम्परा है। इससे ज्ञात होता है कि इनका समय महाराज हर्ष से पहले का है। इनका उल्लेख अभिनवगुप्त भोजराज धनिक हेमचन्द्र रामचन्द्र गुणचन्द्र कुन्तक और सर्वानन्द ने किया है तथा इसकी रचनाओं के उद्धरण भी दिये हैं।

इनके दो नाटक प्रसिद्ध हैं- उदात्तराघव (दे) और तारस वत्सराज (दे)। विण्टरनित्र कोथ इत्यादि कई इतिहासकारों का विचार है कि अनगहर्ष या माक़राज और मायुराज ये दो पृथक् व्यक्तित्व थे। इनके अनुसार तारस वत्सराज की रचना अनगहर्ष ने और उदात्तराघव की रचना मायुराज ने की थी।

(१) अनन्त- (नाका) इनको अनपोतनायक नाम से भी जाना जाता है। ये समीत नाट्य शास्त्र के आवार्य एवं आन्ध्र मण्डलाधिपति ख्यातनामा शिगमूपास के पिता थे। इनका उल्लेख रसार्णव सुधाकर में भी किया गया है। इनका लिखा रामकथा परक नाटक अभिरामराघव (दे) प्रकाश में आया है।

(२) अनन्तदेव- (नाका) मनोनुबन्धनम् नाटक के लेखक। इनका समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनके गुरु स्वामी रामतीर्थ थे। उक्त नाटक के अतिरिक्त इनकी एक रचना हरिभक्तिचन्द्रिका भी प्राप्ता होती है जिसमें शङ्कर मूलक हरिभक्ति की प्रधानता है।

(३) अनन्तदेव- (नाका) इनकी लिखी कृष्णभक्ति चन्द्रिका (दे) कृष्ण विषयक नाटक है। इनका उल्लेख चयनिकाओं में किया गया है। सम्भवत अनन्तदेव सिलहार राज कवि ही प्रसूत अनन्त देव है जिनके अनुदान की तिथि १०१६ शक संवत् (सन् १०९४ ई.) दिया हुआ है।

(४) अनन्त पण्डित- (नाका) स्वानुभूति नाटक के लेखक। ये १७वीं शताब्दी के कवि हैं और इनका निवास स्थान बनारस था।

(५) अनन्तराम- (नाका) इनका लिखा नाटक स्वानुभूतिनामिका एक प्रतीक नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में १७५२ पर किया गया है।

अनपोत नायक- (नाका) ८ (१) अनन्त एवं (२) अभिराम राघव।

अनयसिन्धु- (नापा) रास्यार्णव (दे) नामक हास्य नाटक का नायक। इसकी पराशना यह है कि ताग बजार की मर्मादाओं में बध है- लिखा पतिव्रता है और पुरुष एक पत्नीव्रत। अखिर वह मन्त्री का अपनी परेशानी बतानता है और मन्त्री समाधान के लिये बन्धुता कुट्टिनी के पास भज देता है जहां उस सभी प्रकार के अपने मनोनुकूल व्यक्ति मिल जाते हैं जो उसके नाम अनयसिन्धु (अन्याय का समुद्र) से ठीक रूप में मेल खा जाते हैं। बन्धुता भी पूरा न्याय करती है। वह वृद्धों का नवयुवकी लडकिया भेंट

करती है और नवयुवकों को वृद्धाओं से सन्तोष करना पड़ता है।

अनर्घ नलचरित- (नाक) मुद्रार्न (दे) लिखित नाटक। इसका प्रकाशन चौखम्भा प्रकाशन बनारस से हो चुका है।

अनर्घराघव- (नाक) मुरारि कवि (दे) रचित ७ अंकों का नाटक। इसमें रामचरित को नाट्य का विषय बनाया गया है। कवि का दावा है कि इस नाटक में उदात्त, वीर और अद्भुत रसों का पूरा आस्वादन प्राप्त किया जा सकता है। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, सीता स्वयंवर, परशुराम सवाद, रामवनगमन, सीताहरण, वालिवध, रावणवध, के बाद राम का अयोध्या आगमन तथा राम का राज्याभिषेक इत्यादि राम कथानक की प्रतिष्ठित घटनाओं का समावेश किया गया है। इस नाटक में क्लोपकथन अत्यधिक संख्या में है और अनेक घटनाओं को सूत्र ही रखा गया है। विश्वामित्र के दो शिष्यों शुन शेष और पशुमेद के सवाद से, वाली, रावण, जामवन्त हनुमान और ताड़का के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। सवादों के माध्यम से प्रकृति चित्रण भी किया गया है। जामवन्त और श्रमणा के सवाद से राम के वन गमन की पूरी जानकारी प्राप्त हो जाती है। राम और वालि के युद्ध का परिचय लक्ष्मण और गुह निषाद के सवाद के माध्यम से दिया गया है। इसी प्रकार रावण के चरों सारण और शुक के वार्तालाप में राम के सेतुबन्धन और लका गमन की सूचना मिलती है। दो विद्याधरों रत्नचूड और हेमचूड के वार्तालाप के द्वारा राम रावण युद्ध का वर्णन किया गया है।

प्रतिष्ठित कथानक में अनेक नवीन उद्भावनायें भी दृष्टिगत होती हैं। रावण का मन्त्री मात्स्यवान रावण का सीता से विवाह कराने के लिये आतुर है। निष्पत्त होकर वह शूर्पणखा को राम के वन जाने की योजना में लगा देता है। शूर्पणखा मन्त्रा के रूप में कैकेयी का पत्र लेकर दशरथ के पास जाती है जिसमें दो वरदान मागे गये हैं। राम का वनवास उसी पत्र के आधार पर होता है। संक्षेप मित्र गुह निषाद को बचाने के प्रयत्न में दुन्दुभि के अस्थिकाल को उलट देते हैं जिससे वालि क्रुद्ध होकर युद्ध करने आ जाता है और वालिवध का उपक्रम हो जाता है। इसी प्रकार की कई कल्पनायें की गई हैं। राम के वन से लौटने में विभिन्न प्रदेशों के वर्णन के प्रसंग में कल्पना का विचित्र सहारा लिया गया है। राम पहले सुमेरु और चन्द्रलोक का दर्शन करते हैं, फिर लका से अयोध्या की ओर चलते हैं। मार्ग में मलय पर्वत, प्रसन्नगिरी, गोदावरी, मात्स्यवान्शिखर, कुण्डिनपुर, काशी, उज्जयिनी, माहिषती, यमुना, गंगा, वाराणसी, मिथिला होकर पश्चिम की ओर प्रयाग में आते हैं- फिर अपनी राजधानी अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं।

मुरारि कवि की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी शब्द प्रयोग की क्षमता। इसीलिये व्याकरण के ग्रन्थों में उनके उदाहरणों को अपनाया गया है। मुरारि की शब्द योजना पर पाण्डितों में अनेक भूक्तिया प्रसिद्ध हो गई हैं।

इसका प्रकाशन वाज्यमाला सीरीज में १८९४ में हो गया था। इस पर टीकायें

है- पूर्ण सरस्वती (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट स III ३४४०), हरिहर (तजौर लायब्रेरी III ३३१५), मानविक्रम (मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक रिपोर्ट II २५४०), रुचिपतिदत्त (बम्बई से प्रकाशित), धर्मानन्द (मद्रास लायब्रेरी का डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८३५५), वरद के पुत्र कृष्ण (प्रतिया डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग, मद्रास XXI ८३५७, तजौर VIII ३३२२, रोप गिरि शास्त्री रिपोर्ट II ६७, २०९ त्रैवार्षिक रिपोर्ट II १४५०), लक्ष्मीधर उपनाम रामानन्दाश्रम (प्रतिया-त्रैवार्षिक रिपोर्ट XXI ८३५९, तजौर VIII ३३१९), विष्णु पण्डित (डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८३६०), मुक्तिनाथ के पुत्र विष्णु भट्ट (वही ८३८१), लक्ष्मण सूरि (मद्रास से प्रकाशित), जिन हर्ष- गणि (पेटर्सन IV २५ श्री निधि), पुरुषोत्तम त्रिपुरारि (कैटेलागस ११५), धनेश्वर (बम्बई संस्करण में उल्लिखित)।

अनसूया- (नाय) अभिज्ञान शकुन्तलम में शकुन्तला की दो सखियों में एक। दूसरी सखी प्रियम्बदा है। इन दोनों का और साथ में शकुन्तला का अदृष्ट प्रेम है। राजा के शब्दों में दोनों की उमर, रूप और लावण्य एक जैसा है जिस एक रूपता को देखकर आश्चर्य हो जाता है। फिर भी शकुन्तला का रूप लावण्य अभूतपूर्व है और दोनों सखिया उसके सौन्दर्य पर गर्व करती हैं। दोनों सखिया विनीत हैं, वाक्पटु हैं, शिष्ट हैं और मधुर भाषिणी हैं। दोनों शकुन्तला को देख रेख रखती हैं, दोनों रहस्य से परिचित हैं, दोनों राजा और शकुन्तला को मिलाने में समान रूप से प्रयत्नशील हैं, विदा की तैयारी में दोनों मिलकर कार्यक्रम पूरा करती हैं। इस प्रकार दोनों का सामञ्जस्य निस्सन्देह आश्चर्य जनक है।

साम्य के साथ दोनों का वैयम्य भी स्पष्टणीय है। अनसूया का व्यवहार कुछ इस प्रकार का है जैसे एक बड़ी बहन अपनी छोटी बहनों को सुख सुविधा के प्रति स्वयं को उत्तरदायी समझती है और अपने कर्तव्य का तत्परता से निर्वाह करती है। रंझार भावना उसके अन्दर भी है किन्तु वह इस दिशा में हल्कापन कभी नहीं दिखलाती। यदि उसके सामने प्रियम्बदा रंझार विषयक बानचीत करती है तो वह स्वयं ठठनी सीमा तक ही शामिल होती है जिनकी उसके बडप्पन के अनुकूल है। किन्तु वह प्रियम्बदा को रोक्ती नहीं अपितु प्रोत्साहन ही देती है। प्रियम्बदा भी उसके बडप्पन को मानती है और ठठार-दायित्व की सारी बातें उसे ही करने देती है। राजा का स्वागत वही करती है, राजा के सम्भार के लिये फल इत्यादि लाने का शकुन्तला को वही आदेश देती है। जब राजा का प्रेम शकुन्तला से जुड़ जाता है तब शकुन्तला को समर्पित करते हुये बड़ी बहन के समान राजा से वही आर्चना करती है- 'मुना है राजाओं की अनेक प्रेमिकायें होती हैं, अतः इस मेरी सखी से ऐसा व्यवहार करना कि बाद में इसके बन्धु-बान्धवों को इसके लिये शोक न करना पड़े। जब राजा चुनाने का वादा कर चला जाता है तब अनसूया को चिन्ता सगी हुई है कि कहीं राजा धोखा तो नहीं दे गया, यदि राजा भूल गया और अपने अन्त,

पुर में रमने लगा तो बेचारी भैरी सट्टी क्या करेगी। किन्तु प्रियम्बदा को यह आशका नहीं है क्योंकि उसकी दृष्टि में इस प्रकार की आकृति वाले बुरे चरित्र के व्यक्ति नहीं होते। इसके प्रतिकूल प्रियम्बदा को दूसरी आशका है कि इस प्रकार मनमाने ढंग से गान्धर्व विवाह कर लेने को पता नहीं पिता जी किस भावना से ग्रहण करें। किन्तु यह आशका अनसूया की नहीं है— उसकी दृष्टि में प्रत्येक लड़की का पिता यही चाहता है कि उसकी पुत्री अच्छे घर में जाय। यदि यह काम परमात्मा ही पूरा करदे तो गुरुजन की और क्या चाहिए?

अनसूया जितनी लौकिक व्यवहार में निपुण और गम्भीर है प्रियम्बदा उतनी ही चुलबुली और शृङ्गार चेष्टाओं में निपुण है। वह मौके बेमौके शकुन्तला को छेड़ती और मजा लेती रहती है। किन्तु उसे शकुन्तला के सौन्दर्य से न तो ईर्ष्या है और न उसके प्रति कोई दुर्भावना है। वह शकुन्तला को चिढ़ाकर नाराज करना और फिर मना लेना खूब जानती है। इतना ही नहीं वह प्रेम के जोड़-तोड़ में भी निपुण मालूम पड़ती है। जब उसे मालूम पड़ जाता है कि शकुन्तला राजा से प्रेम करने लगी है तब वह तत्काल राजा को मिलाने का उपाय सोच लेती है और पत्र भेजने के लिये तैयार हो जाती है, क्योंकि राजा की दशा देखकर उसने पहले ही अनुमान लगा लिया है कि राजा भी प्रेम वेदना से पीड़ित है। जब राजा शकुन्तला के पास आकर बैठ जाता है तब वही दोनों को एकान्त देने का मार्ग निकाल लेती है और निपुणता के साथ गौतमी के आने की भी सूचना देती है। इन बातों में अनसूया की गति बिल्कुल नहीं है। जब बड़ी होने के कारण उस पर शकुन्तला के जन्म का विवरण देने का उत्तर दायित्व आ पड़ता है तब— 'भैरव का रूप लावण्य देखकर विश्वामित्र ने ' इतना कह कर शरमा जाती है। वह विश्वामित्र के बाद के किये हुये कार्य का कैसे वर्णन करे? राजा स्वयं समझ लेते हैं। इस प्रकार दोनों सहेलियों का चित्रण दो रूपों में किया गया है। जिनके व्यवहार में साम्य भी है और वैषम्य भी।

अनसूया चरितम्— (नाट्य) विष्णु दत्त त्रिपाठी (दे) लिखित नाटक, रचना काल २० वीं शताब्दी।

(१) अनादिमिश्र— (नाट्य) मणिमाला नाटिका के लेखक, समय १२वीं शताब्दी का मध्य, इनकी अध्यापकी वृत्ति थी तथा इनके पूर्वज विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध अच्छे कवि एवं ग्रन्थकार थे। इनके पितामह मुकुन्द ने मुदितमाधव गौतिकाव्य की रचना की थी इनके एक अन्य पूर्वज कवि चन्द्राय दिवाकर अनेक ग्रन्थों के निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। स्वयं इनका अपनी विद्वत्ता के लिये पर्याप्त मान था। उत्कल प्रदेश के खुण्डपास के राजा नारायण मागपारा ने आपका सत्कार किया था। मणिमाला नाटिका के अतिरिक्त इन्होंने राससगोष्ठी और काव्यकेलिकल्तोत्तिनी की भी रचना की थी। कुछ लोगों का विचार है कि सम्भवतः रास सगोष्ठी के लेखक अनादि मिश्र कोई अन्य व्यक्ति थे।

(२) अनादिमिश्र- (नाका) इनका लिखा राससगोष्ठी (दे) उपरूपक प्राप्त होता है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

(३) अनादिमिश्र- (नाका) प्रभवती नाटक के लेखक सम्भवतः ये मणिमाला के लेखक अनादि मिश्र एवं राससगोष्ठी लेखक अनादि मिश्र दोनों से भिन्न है।

अनारकली- (नाकू) प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा को लेकर डा. वेङ्कटराम राघवन (दे) ने सन् १९३१ में इसकी रचना की थी। इसमें अभिनय के लिये ५० से भी अधिक पात्रों का उपयोग किया गया है। पात्रों के कथन भी लम्बे लम्बे हैं। दृष्टे अंक में सलीम का एक कथन ६५ पंक्तियों का है। इस प्रकार यह नाटक अभिनय के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है। फिर भी विश्वसस्कृतसम्मेलन में मद्रास में दो बार और दिल्ली में एक बार इसका अभिनय किया जा चुका है। इसका प्रकाशन रचना के ४० वर्ष बाद सन् १९६२ में किया गया। मूल कथानक में यह परिवर्तन किया गया है कि अनारकली को मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता। अकबर की हिन्दू बहू उसे बचा लेती हैं।

अनुकूलगलहस्तकण्ठ- (नाकू) विष्णुपद भट्टाचार्य (दे) का लिखा दो अंकों का हास्य प्रधान रूपक। इसका विशेषता है लम्बे रगनिर्देश और एकोक्तियों की प्रचुरता। इसका प्रकाशन १९५८ में मञ्जूषा में हुआ था। रचना २०वीं शताब्दी की है।

अनुभवचिन्तामणि- (नाकू) यह घनश्याम (दे) की रचना है। इसका उत्त्प्रेष १९०५ में प्रकाशित संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट की रिपोर्ट में किया गया है।

अनुमितिपरिणय- (नाकू) १८वीं शताब्दी के भरद्वाज गोत्रीय नृसिंह (दे) द्वारा लिखित प्रतीक नाटक। इसमें परामर्श की पुत्री अनुमिति के न्यायरसिक से विवाह का अंकन किया गया है। ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स में इसका परिचय दिया गया है।

अनुशासन पर्व- (नास) महाभारत का १३वां पर्व। महाभारत में नाट्य सामग्री का उत्त्प्रेष नहीं है। केवल परवर्ती भाग १२वें शान्ति पर्व और १३वें अनुशासन पर्व में विद्वानों ने नाट्यकलाविषयक संकेत का निर्देश माना है। प्रो. हिलब्राण्ड ने शान्ति पर्व (१२१४०-२१) में नाट्यशिल्पी का निर्देश माना है और टीकाकार नीलकण्ठ अनुशासन पर्व (१३३३-१२) में नटों और नर्तकों का निर्देश मानते हैं। कवि के अनुसार इन दोनों स्थलों पर मूक अभिनय और मूक अभिनेता का मानना ही ठीक है।

अन्तर्व्याकरण नाट्य परिशिष्ट- (नाक) देखो नाट्य परिशिष्ट।

अन्यक- (नास) एक वंश जिसका पाणिनि के एक सूत्र (४१११४) में वृष्णियों और कुरओं के साथ उपादान किया गया है। पतञ्जलि ने उपसन (कृष्ण के नाम) और श्रद्धन्व (उद्धर) का इसका उदाहरण के रूप में उल्लेख किया है। भाम के नाट्यों में इस वंश के पात्रों का उपादान किया गया है।

अन्यैरन्यस्य दृष्टि प्रदीयते- (नाक) यह एकाङ्की नाटक है। जिसका मञ्जूषा के जनवरी १९५५ के अंक में प्रकाशन हुआ था। इसके लेखक हैं- क्षितिशचन्द्र चट्टोपाध्याय इसमें मुकुन्दानन्द स्वामी जी की मजाक उड़ाई गई है जिसे गबे राजा के बाल उगाने के लिए मन्त्रियों ने बुलाया है। राजा उसे कभी मोदकानन्द, कभी मोदक मुकुन्द कभी मदनानन्द कह कर पुकारते हैं जिससे वह चिढ़ता है। एक बार राजा द्वारा मान्यता दिये जाने पर वह प्रसन्नता से ठुल पड़ता है और उसकी पगड़ी गिर जाती है, तब ज्ञात होता है वह स्वयं गजा है, राजा उसे अपमानित कर भगा देते हैं।

अन्नदेवता- (नाक) डा वनमाला (दे) लिखित नाटक।

अन्यायराज्यप्रध्वसन- (नाक) रामानुजाचार्य ह्री लिखित अक या उत्पटिकाङ्क।

अपरपञ्चरात्र- (नाक) यह रामदत्त पन्त (दे) लिखित नाटक है। इसमें भास के पञ्चरात्र का अनुकरण किया गया है और उसी विषय को लेकर नाट्य रचना की गई है।

अप्य या अप्यय दीक्षित- (नाका) प्रसिद्ध विचारक शास्त्रकार एवं साहित्यकार। ये प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित के गुरु थे और दर्शन के साथ ही इनका काव्यशास्त्र पर भी अधिकार था। इन्होंने छोटों बड़ों सब मिलाकर लगभग १०८ पुस्तकें लिखी थी। वेदान्त और मीमांसा दर्शनों पर इनका पूरा अधिकार था। इनके लिखे ग्रन्थों में वसुमतीचित्रसेनाविलास नामक एक नाट्य कृति भी है जिसकी पाण्डुलिपि मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती है।

इनका समय १६वीं शताब्दी का ठहराया था। इनके पिता भरद्वाज गोत्रीय रगराज दीक्षित एवं बाबा अच्यान दीक्षित थे। पिता और बाबा दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान एवं साहित्यकार थे। इनका समय वेल्तूर, विजयनगर और पाण्ड्य प्रदेश में व्यतीत हुआ था। ७२ वर्ष की आयु में विदम्बरम् में इनका देवाहसान हो गया।

अप्या दीक्षित- (नाका) इन्हें अप्पा शास्त्री या पेरिया अप्पा नाम से भी याद किया जाता है। ये श्रीवत्स गोत्रीय विदम्बर के पुत्र थे जिनका उपनाम अन्नन शास्त्री भी है। ये विश्वनाथ के भाई थे। इन्का निवास स्थान तञ्जौर के निकट बिलापुर था। ये कृष्णानन्द के शिष्य थे जिनसे इन्होंने तर्कशास्त्र और काव्यशास्त्र की शिक्षा पाई थी और इन विषयों में प्रवीणता के उपलक्ष्य में कविगार्किक सार्वभौम की उपाधि प्राप्त की थी। ये तञ्जौर के शाह जी के कृपापात्र थे। इनकी दो नाट्यकृतियाँ प्रकाश में आई हैं- शृंगारमञ्जरी शाहजीय (दे) और मदन भूषण (दे) भण्ण। इनके अतिरिक्त इन्होंने एक रम्पकाव्य की भी रचना की थी।

अप्याशास्त्री- (नाका) द अप्पा दीक्षित।

अप्रतिमप्रतिमम्- (नाक) जगु वसुनभूषण (दे) का लिखा रूपक। यह दो अंकों का रूपक है। धृतराष्ट्र ने भीम की लोट भूमि को वर्णित कर दिया था उमो को लेकर

लेकर इस नाटक की रचना की गई है।

अभ्यमन्यु- (नाकू) यह चतुर्मुख लिखित एक अपभ्रंश काव्य है जिसमें कतिपय नाटकीय तत्व विद्यमान हैं अतः कृष्णमाचार्य ने इसे नाटक के रूप में स्वीकार किया है। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में इसका उल्लेख किया गया है। भोजराज के शृङ्गार प्रकाश एव शारदातनय के भावप्रकाशनम् में भी इसका उल्लेख पाया जाता है।

अभयकुमार- (नापा) प्रबुद्धोद्दिष्टेयप्रकरण का एक पात्र। यह मगध के श्रेणिक का मन्त्री है और अपराधियों को पकड़ने के लिए नियुक्त होकर अपने उत्तरदायित्व का सफलता पूर्वक निर्वह करता है।

अभयदत्त- (नापा) मुद्राराक्षस का एक पात्र जिसने राक्षस के आदेश पर चन्द्रगुप्त को विष देने की चेष्टा की और रहस्य खुल जाने पर चाणक्य ने वह विष पीने के लिये उसे ही विवश कर दिया जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

अभयदेव- (नाआ) गुजरात में कुमार पाल के उत्तराधिकारी चक्रवर्ती राजा। इनका समय १३वीं शताब्दी का मध्य भाग है। इनको अभयपाल भी कहा जाता है। मोहराज पराजय नामक प्रताप नाटक के लेखक यश देव के ये अभयदाता थे।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्- (नाकू) कालिदास (दे.) लिखित नाटक। सामान्य रूप से इसे शकुन्तला नाटक भी कहा जाता है। यह भारतीय साहित्य की सर्वोत्तम मणि और विश्व की सर्वोत्तम नाट्यकृतियों में एक है। पारश्चात्य जगत् जिन भारतीय रचनाओं पर मन्त्रमुग्ध हुआ है उनमें इस रचना का मूर्धन्य स्थान है। जर्मन विद्वान् एव कलाकार गेटे ने इस यौवन की कत्ती को वृद्धावस्था की प्रौढता से स्वर्ग की मृत्यु लोक से मेल कराने वाला और मन को जादू जैसी शक्ति से बाधने वाला बनलाया है।

नाटक का सोव महाभारत है किन्तु कवि ने इसमें यथेष्ट परिवर्तन कर इसे सर्वथा नया रूप द दिया है। पद्य पुराण में इससे मिलती जुलती कथा पाई जाती है। दुष्यन्त शिकार खेलने मालिनो क वनों में जाते हैं और मयोज वन वन के आश्रम के निकट पहुच जाते हैं जहा कुलपति वन अपनी पालिता पुत्री शकुन्तला को अतिदमन्यार का भार सौंपकर तीर्थ यात्रा पर चले गये हैं। राजा छिपकर शकुन्तला और उसकी सखियों की यात्राचीन सुनता है। वह प्रथम दर्शन में ही शकुन्तला के रूप पर आसक्त हो जाता है। सखियों में उसे ज्ञात हो जाता है कि शकुन्तला दायण पुत्री नहीं विश्वामित्र की मन्त्रा में उत्पन्न क्षत्रिय पुत्री है। अतः राजा को वह उपभोग्या हो सकता है। उधर शकुन्तला भी राजा पर अनुरक्त हो जाती है। राजा तपोवन की रक्षा क बहाने कुछ दिनों के लिए वहा रुक जाता है। और बहाना बनाकर विदुषक को वहा से हटा देता है। राजा और शकुन्तला का प्रणय मन्वन्थ बढ़ जाता है और राजा शकुन्तला म गान्धर्व विवाह कर लेता है। शकुन्तला गर्भवती हो जाती है। राजा दो चार दिन में बुला लन का वादा

कर वहाँ से चला जाता है।

शकुन्तला राजा की याद में खोई रहती है और अतिथि सत्कार के अपने कर्तव्य का भी ठीक रूप में पालन नहीं कर पाती। फलतः दुर्वासा के क्रोध और शाप की पात्र बनती है कि उसका प्रेमी उसे भूल जायेगा और याद दिलाने पर भी याद नहीं कर सकेगा। सखियाँ इस शाप को सुनती हैं और प्रार्थना करके शाप को सोमित करा लेती हैं कि राजा का विस्मरण तभी तक रहेगा जब तक वह कोई अपनी निशानी नहीं देखेगा। शकुन्तला इस शाप से सर्वथा अनभिज्ञ है। कण्व तीर्थ यात्रा से लौटते हैं उन्हें शकुन्तला के गान्धर्व विवाह और गर्भ स्थिति का पता चल पाता है। वे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लेते हैं और शकुन्तला को दो शिष्यों एवं गौतमी के साथ पति के घर को भेज देते हैं। मार्ग में एकतीर्थ में शकुन्तला की उगली से अगूती गिर जाती है।

राजा शाप के प्रभाव से शकुन्तला को पहिचानते नहीं। यद्यपि अभूतपूर्व सौन्दर्य पर वे रीझ अवश्य गये हैं किन्तु धर्मव्यतिक्रम के भय से वे उसका परित्याग कर देते हैं। लौटते समय शकुन्तला की माता मेनका शकुन्तला को गोद में लेकर अन्तर्ध्यान हो जाती है और उसे ले जाकर महर्षि कश्यप के आश्रम में रखती है जहाँ शकुन्तला पुत्र को जन्म देती है और उसका पालन पोषण वहाँ होता है।

इधर शकुन्तला की खोई हुई अगूती मछली के पेट से एक मछुने के साथ लगती है। वह राजा की अगूती है और राजा के नामाक्षर उस पर मुद्रित हैं। अतः मछुआ उससे राजा के पास पहुँचा देता है। अगूती देखने से शाप का प्रभाव जाता रहता है और राजा को हर एक बात याद आ जाती है। राजा शकुन्तला के वियोग में तड़पने लगता है। इसी अवसर पर इन्द्र का सारथी मातलि राजा को दानवों पर विजय के इन्द्र के कार्य के लिये स्वर्ग लोक को ले जाता है। राजा विजय कर जब लौटते हैं तब हिमालय पर कश्यप के आश्रम में उतरते हैं। वहाँ उनका स्त्री पुत्र से सम्मिलन होता है। महर्षि कश्यप उन्हें शाप की बात बतलाते हैं जिससे राजा के प्रति शकुन्तला की शिकायत दूर हो जाती है और राजा की पश्चात्ताप की भावना जाती रहती है। दोनों का सुखमय सम्मिलन हो जाता है।

भाषा शैली अलंकार, वस्तु रस इत्यादि सभी दृष्टियों से शकुन्तला नाटक सार भारतीय साहित्य का मास्टरपीस है। इस एक ही कृति में भारतीय मस्कृति का पूरा चित्र उजागर हो जाता है। गृहस्थ धर्म वन्य जीवन स्वर्ग का निवास जीवन के विविध क्षेत्र अनेक प्रवृत्तियाँ अनेक विध सम्बन्ध इत्यादि प्रत्येक पक्ष का विशद चित्र प्रस्तुत कर दिया गया है। दुष्यन्त के चरित्र में धर्म भीरु और इन्द्रिय लोलुप दुराचारी दोनों विरोधी मनावृत्तियों का इतनी निपुणता से गुम्फन किया गया है कि कहीं जोड़ का पता ही नहीं चलता। व राजा भी है और राजकीय कर्तव्यों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक है। शकुन्तला व च. ३ में एक अल्ट्रा बालिका एक प्रेमिका एक विषयापयोग परायण युवती एक परित्यक्ता

धर्मशील महिला जो यातनार्थ सहती हुई मैके में पुत्र को जन्म देती है इत्यादि अनेक चित्र समाविष्ट कर दिये गये हैं। कहने को तो यह बनवासिनों भोली भाली हरिणी है किन्तु साथ ही उसका पूरा पूरा परिवार है— पिता है, माता है, सहेलिया क्या सहेली जैसी बहनें हैं, प्रेमी और रक्षा में समर्थ भाई हैं, मा है, मैका है, वृध, लता, पशु पक्षी के रूप में ही सही सारा समाजिक वातावरण है, फिर एक योग्य पुत्र है। इस प्रकार हिन्दु समाज का पूरा चित्र केवल एक चित्र में ही हमारे सामने आ जाता है। अच्छे घरानों में दो ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं या तो गम्भीर चिन्तनशील मितभाषी या फिर दबंगी के साथ अपनी बात रखने वाले व्यवहार कुशल व्यक्ति, इसी प्रकार बहनों में भी दो ही प्रकार की होती हैं— या तो अपने बड़प्पन की मर्यादा में बंधी हुई छोटी बहनों के प्रति उत्तर दायित्व निभाने वाली या फिर हसोड चुलबुली एव प्रेम व्यवहार में बहनों का निपुणता से साथ देने वाली। इसी दृष्टि से कवि ने भाइयों और बहनों के सुगम कल्पित किये हैं। निस्सन्देह दुर्वास के शाप की जबरदस्त कल्पना कवि की कला निपुणता का एक सशक्त निदर्शन है। विदा के अवसर का वन्य जीवन से भी कवि ने ऐसा वातावरण बना दिया है कि हम उसी वातावरण में खो जाते हैं। केवल एक एक पद्य में कवि ने समाज का परिपूर्ण लेखा जोखा प्रस्तुत कर दिया है— इसमें पुत्री को विदा करने वाले पिता के मनोभाव हैं, पुत्री की सदा की छूटने वाली अतीत जीवन की झांकी है, पिता का दामाद के प्रति निवेदन है और सुगृहणी के कर्तव्यों का उपदेश है। इस प्रकार कला, रस, विवर्ण और व्यापक परिवेश सभी दृष्टियों से अभिज्ञानशाकुन्तल बेजोड है इसमें सन्देह नहीं।

अभिज्ञान शाकुन्तल पर लिखा गया साहित्य बहुत विशाल है जिसमें टीकायें हैं, समीक्षाएँ हैं, भाषान्तर हैं, परिचयात्मक लेख हैं। यह एक अत्यन्त विशाल साहित्य राशि है। शाकुन्तला का प्रकाशन विश्व के अनेक भागों में हुआ है और होता जा रहा है। कतिपय टीकाकारों का नामोल्लेख किया जा सकता है— राघव (टीका बम्बई से प्रकाशित हुई है), कात्यवेम (बम्बई से प्रकाशित) घन श्याम (अमेजी भूमिका के साथ त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित), अभिराम (कैटेलागस कैटेलागोरम ११३, II १८७, III ६), प्रेमवन्ध (कलकत्ता से प्रकाशित), डीवी पन्त (कलकत्ता से प्रकाशित), विद्यासागर (कलकत्ता से प्रकाशित), वेङ्कटाचार्य (मद्रास से प्रकाशित) श्रीकृष्णनाथ, बालगोविन्द (त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट III ३९४२), दक्षिणवर्तनाथ (वही III ३९४२), रामवर्मन और राम पिश रोटी (त्रिचूर से प्रकाशित), कृष्णात्मा पञ्चानन, चन्द्रशेखर, डमरु वल्लभ, प्राकृताचार्य, नारायण, रामभद्र, शङ्कर इत्यादि। इनके अतिरिक्त अनेक टीकायें ऐसी हैं जिनके लेखकों के नाम अज्ञात हैं।

अमेजी में अनुवादक सर डब्लू जोस (कलकत्ता) एम विलियम्स (लन्दन और बम्बई से प्रकाशित) केके घट्टाचार्य (कलकत्ता से प्रकाशित) कमल सत्यनाथन (मद्रास), टी आर रत्नम् अय्यर (मद्रास), के वनजी (मदिया), जेजी बेनिंग (इलाहाबाद) आर वामुदेव राव (मद्रास) रविदत्त (पटना) अनुवाद कलकत्ता से प्रकाशित), एएम राइट (स्मिथसोनियन

पाण्डुलिपि), एस राय (कलकत्ता), अन्य भाषाओं में अनुवादों का परिचय स्किलर ने दिया है (विब्लियोथेका)।

अभिज्ञान शाकुन्तलम पर प्रमुख परिचयात्मक एवं समालोचनात्मक कृतियाँ एम स्किलर (बिब्लि ४८-५६), वी मजूमदार (संस्करण की भूमिका), आर पिशेल (संस्करण की भूमिका), पी एन पाटेकर (संस्करण की भूमिका - पूना), एन सी विद्यारत्न (संस्करण की भूमिका, कलकत्ता), टी ई श्रीनिवासाचार्य (संस्करण की भूमिका - कुम्भकोणम), टी होल्स (संस्करण की भूमिका - लन्दन), एस राय (संस्करण की भूमिका - कलकत्ता), आर आर रवे 'डे कालिदास शाकुन्तला (बेस्त्र्यू), वी सरकार 'शाकुन्तला रहस्य' टी लक्ष्मी नरसिंह राव 'शाकुन्तला' (जर्नल ऑफ मिथिक सोसाइटी बंगलौर IX ६३), आरकुलकर्णी 'ए यूनीवर्सिटी इन दि शाकुन्तला' एसी वनर्जी 'कालिदास हिज प्वाइटी एण्ड भाइण्ड' (कलकत्ता), रवीन्द्र नाथ टैगोर 'शाकुन्तला एण्ड इट्स इनर मीनिंग (बंगाली में), अमेजी में अनुवाद (मद्रास रिव्यू IX) भारती III-२५)।

अभिनन्द- (नाका) शतानन्द के पुत्र एवं (१) भीम पराक्रम के लेखक। इनका लिखा रामचरित महाकाव्य अधिक प्रसिद्ध है जिससे, मम्मट, भोज, महिमभट्ट जैसे महान शासकों ने उद्धरण दिये हैं। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में इनके भीम पराक्रम नाटक की एक प्रति सुरक्षित है जिससे उनका इस नाटक का कर्तृत्व सिद्ध होता है। सोड्डल ने इनकी और राज शेखर की प्रशंसा की है। इनकी जिस क्रम से प्रशस्ति लिखी गई है उससे ज्ञात होता है कि ये राज शेखर के पूर्ववर्ती थे। इन्होंने स्वयं हारवर्ष युवराज का उल्लेख किया है और लिखा है कि यह युवराज अपने सिंहासन पर स्थान देकर इनका सम्मान किया करते थे। इन्होंने और सोड्डल ने हारवर्ष को कवियों के आश्रय दाताओं में विक्रम, हाल और हर्ष के समकक्ष रखा है। अभिनन्द का समय नवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

अभिनव कालिदास- (नाका) वशिष्ठ गोत्रीय सर्वशास्त्री के पुत्र कृष्णमूर्ति स्वयं को अभिनव कालिदास कहते थे। उनका लिखा मदनमाधुदय भाग प्राप्त होता है। जिसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग में स II २०१३ तथा स III २८७३ पर किया गया है। इन्हीं की एक दूसरी कृति यक्षोल्लास भी प्राप्त होती है। इनका समय १७वीं शताब्दी माना जाता है। एक दूसरे अभिनव कालिदास के नाम पर कई चम्पू और काव्य ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। कुछ लोग इन दोनों कवियों को एक ही मानते हैं। दूसरे अभिनव कालिदास ने अपना वास्तविक नाम नहीं लिखा है, किन्तु उनके शिष्य कविकुञ्जर ने उनको पिनाकिनी नदी तटवर्ती विधानगर के राजा राजशेखर का दरबारी कवि बतलाया है जिनका समय ११वीं शताब्दी का मध्य भाग है। अतः दोनों कवियों का एकीकरण नहीं हो सकता। अनेक अन्य कवियों ने भी इस उपाधि को धारण करने की चेष्टा की है जिनमें भागवत चम्पू के लेखक गोपाल शास्त्री, नजराजयशोभूषण के

लेखक नृसिंह कवि, सक्षेप शकटविजय के लेखक भाषव आदि सम्मिलित हैं। इसी प्रकार शृङ्गारशेखर या शृङ्गारकोश के लेखक ने भी कलियुगकालिदास की उपाधि धारण की थी।

अभिनवगोपालपुलिन्दिनीचरित- (नाक) यह एक संगीत रूपक है जिसमें बीच बीच में संगीत का प्रयोग किया गया है। दजौर लायबेरी के XII ७३५२ सख्या पर इसका उल्लेख किया गया है।

अभिनवभारती में उल्लिखित कतिपय नाटक- (नाक) अभिसारिका वञ्चितक (अ XXI), उदातरायव (XIX), वृत्त्यायवण (XVII), गुणमाला (IV), चूडामणि डोण्डिका (IV), तापसवत्सराव (VI), दक्षिचारूदत (XIX), देवी चन्द्रगुणम् (XVIII), द्रौपदीस्वयम्बर (VI), पाण्डवानन्द (XIX), पादताडनक (XVI), पुष्पभूषितक (XVIII), प्रतिमानिरुद्ध (XIX), मायापुष्पक (XIII), मुद्राराधस (XVIII), राघवविजय (IV), स्वप्रवासवदनम् (I),

(१) अभिनवराघव- (नाक) धीरस्वामी (दे) लिखित नाटक। हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में इसका उल्लेख किया है और इससे उद्धरण भी दिया है। कुछ लोग ने इस नाटक क धीरस्वामी द्वारा लिखे होने पर सन्देह व्यक्त किया है। यदि धीरस्वामी ही इसके लेखक हैं तो क्या ये वे ही धीरस्वामी हैं जिन्होंने अमर कोश की टीका धीरतराणि की रचना की थी या बाई अन्य धीर स्वामी हैं इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

(२) अभिनवराघव- (नाक) सुन्दरचौरायव (दे) का लिखा नाटक। इसमें रामायण कथा का नाटक के रूप में प्रभुतीकरण किया गया है। इस नाटक में ८ अंक हैं। शृङ्गाररस प्रधान है। पात्रों का वेप बदल कर रंगमञ्च पर आना इस नाटक की बहुत बड़ी विशेषता है। नायक अधिकतर सामने नहीं आता। अन्य पात्रों के सवादों की भामान है। यह नाटक पढ़ने योग्य ता है किन्तु अभिनय योग्य नहीं है। फिर भी इसका प्रथम अभिनय चैत्रयात्रा महोत्सव के अवसर पर रंगमञ्च के रंगनाथ देवालय में किया गया था। इसमें कान्यक प्रसंगों की भरमार है, भूल कथानक विलुप्त बदल दिया गया है। या पात्रों की अधिकता के कारण कथानक जटिल हो गया है।

इसकी हस्तलिखित प्रति मागरविरविशालय के पुस्तकालय में प्राप्त की जा सकती है। इंग्रज अतिरिक्त ट्रार्निंगल वेटेन्नाग आफ मस्कून मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरिएण्टल लायब्रेरी मद्रास में II ३३८३ पर भी इसका उल्लेख किया गया है।

अभिनववेणीसहस्र- (नाक) यह पुरुषोत्तमदेव महाराज (दे) का लिखा रूपक बनलाया जाता है।

अभिनव- (नापात्र) अर्जुन का पुत्र जो चक्रवर्त में मारा गया था। यह कई नाटकों में एक पात्र के रूप में या उल्लेख रूप में आया है-

- (१) दूतश्लोक- में इसकी मृत्यु पर पाण्डव समाज में शोक मनाया जा रहा है।
 (२) वेणी सहार- में इसकी मृत्यु का उल्लेख किया गया है।
 (३) पञ्चात्र- में विराट्पुर में इसकी गिरफ्तारी और सुभद्रा के साथ विवाह दिखलाया गया है।

(४) धनञ्जय विजय- में इसका सुभद्रा के साथ विवाह दिखलाया गया है।

अभिमन्युनाटक- (नाट्) यह शालग्रामलिखित महाभारतविषयक नाटक है। इसमें पाण्डव पुत्रअभिमन्यु की कथा आई है। इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है।

अभिरामचित्रलेखम्- (नाट्) १० अकों का यह विशाल प्रकरण कविवत्सल का लिखा हुआ है। भुजागराज की पुत्री चित्रलेखा के साथ अभिराम के विवाह का इसमें विवरण है। कहा जाता है इसका प्रथम प्रस्तुतीकरण चैत्रोत्सव के अवसर पर श्रीराम में किया गया था। यह मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में ट्रायनियल कैटेलाग (III ३९४५) संख्या पर अंकित है।

अभिरामयणि- (नाट्) यह सुन्दर मिश्र (बाज्जागिरि) द्वारा लिखा हुआ ७ अकों का रामविषयक नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ स २६ पर किया गया है। इसकी रचना १५९९ में हुई थी और विल्सन द्वारा क्रियेटर में II ३९५ में इसका विश्लेषण किया गया है। इसका प्रथम अभिनय जगन्नाथपुरी में पुरुषोत्तम विष्णु के महोत्सव के अवसर पर किया गया था।

(१) अभिरामराघव- (नाट्) यह राम कथा परक रचना है। इसके लेखक हैं अनन्त या अनपोत (दे) जो शिशुभूषण के पिता थे। इसका उल्लेख रसार्णवसुधाकर में किया गया है।

(२) अभिरामराघव- (नाट्) यह रामविषयक नाटक है जिसकी रचना नैपाल के माणिक ने सन् १८९० में की थी।

अभिषेक- (नाट्) भास (दे) कृत रामविषयक नाटक। इसमें ६ अंक हैं। यह रामायण के किष्किन्धा मुन्दर और युद्धकाण्डों पर आधारित है। इसका प्रारम्भ बालिवध से होता है और उनकी समाप्ति राम के राज्याभिषेक के साथ हो जाती है। कथानक अधिकांशतः प्रतिमा (दे) के समरूप ही है। इस नाटक में भी प्रतिमा नाटक के समान नायिका दृष्टिगत होती है। इसमें यथास्थान संगीत का भी प्रयोग किया गया है। प्रतिमा की अपेक्षा इस नाटक में कवि ने वाल्मीकि का अधिक अनुसरण किया है। किन्तु उनकी मौलिक कल्पनाशीलता भी इस नाटक में यत्र तत्र प्रस्तुत हुई है विशेष रूप से सतुबन्ध के प्रसंग में। वाल्मीकि रामायण में कायदे से सेतु बाधने का वर्णन है जबकि इस नाटक में राम सेतु पर पुल नहीं बाधते। वरुण राम की अमोघ शक्ति से भयभीत होकर सामने आते हैं राम की प्रार्थना करते हैं और समुद्र को दो भागों में विभाजित कर देते हैं। बीच

में जो मार्ग निकल आता है उसी से सेना सहित राम समुद्र पार पहुँच जते हैं। इसी प्रकार की कतिपय छोटी मोटी कल्पनायें की गई हैं। इसकी भाषा मनोरम तथा प्रसादगुण पूर्ण है। उच्चकोटि की कल्पनायें और चित्रण की विशेषतायें इसे अधिक मनोरम बना देती हैं। इसमें राम को पूर्ण ब्रह्म का अवतार माना गया है और नाटक के अन्त में अग्निदेव सोता को लक्ष्मी का अवतार बतलाया गया है।

अभिसारिकावञ्चितक- (नाक) विशाखदत्त (दे) लिखित नाटक। भोजराज ने विशाखदेव की कृति के रूप में इसका उल्लेख किया है। अभिनवगुप्त ने भी अभिनव भारती में इसका उद्धरण दिया है। इन उद्धरणों और नामकरण पर विचार करने से इस नाटक के कथानक का उन्नयन इस प्रकार किया जा सकता है- 'भास(दे) के स्वप्रवासवदत्तम् (दे) के बाद का इसमें कथानक है। उस नाटक में यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता को छिपाकर उदयन का पद्मावती से विवाह करा दिया गया था। इस नाटक में किसी शरारती व्यक्ति ने पद्मावती को उदयन की आखों से गिराने के लिये यह प्रसिद्ध कर दिया कि पद्मावती ने सैतिषाडाह के वशीभूत होकर पुत्र का वध किया है। हो सकता है उदयन का यह पुत्र वासवदत्ता से उत्पन्न हुआ हो। इस पर राजा को पद्मावती से घृणा हो गई। वे समझने लगे कि जिसे वे अप्सरा समझ रहे थे वह तो विष से भरी सर्पिणी निकली। पद्मावती ने समझ लिया कि राजा किसी प्रकार की सफाई भी नहीं सुनेंगे। अतः उसने एक योजना बनाई- वह शिकारी की पुत्री का रूप धारण कर वन में राजा को आकर्षित करने लगी। स्त्रियों के विषय में राजा बहुत कमजोर था ही। अतः वह पूर्ण रूप से उस शिकारीकन्या पर आसक्त हो गया और उसे अभिसारस्थल पर मिलने लगा। जब राजा पूर्ण रूप से रूपजाल में फँस गया तब वह अपने रूप में आ गई और राजा को सफाई दी जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया।

अभिसारिका को वञ्चित करने के कारण इस नाटक का नाम अभिसारिकावञ्चितक रखा। भोजराज के इन शब्दों से- वत्सराज सम्भावितपुत्रवधायै पद्मावत्यै क्रुद्धः इस कथानक पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। अभिनवगुप्त के ये शब्द भी कथानक के उन्नयन में सहायक होते हैं- विशाखदत्तकविकृते अभिसारिकावञ्चितके वत्सेरास्य पद्मावतीभट्टराक्षरी वेशाद्याचरणरूपात् सीताचेष्टितात् काम प्रत्यानीत।

वहीं वही इस पुस्तक का नाम अभिसारिकावञ्चितक भी मिलता है। यह नाटक अगनीला द्वारा नटायन प्रत्यागमन का उदाहरण है।

अभिसारिकावञ्चितक- (नाक) (६) अभिसारिका वञ्चितक।

अभेदानन्द- (नाक) यह डा रमाचौधरी लिखित १२ दूरियों का रूपक है जिसमें एकूण परमरस के शिष्य अमैदानन्द का चित्रण किया गया है।

अपरचन्द्र- (नाका) वनमाना नाटिका (दे) के लखव। य भी जैन कवि हैं किन्तु

जिनदत्त सूरि के शिष्य अनेक ग्रन्थों के निर्माता प्रसिद्ध अमर चन्द्र से ये भिन्न थे। इसी प्रकार काव्याम्नाथ के लेखक अमरचन्द्र से भी ये भिन्न थे।

अमरमङ्गल- (नाक) पञ्चानन लिखित नाटक। इसमें माहराणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह के जीवन को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। इसकी रचना सन् १९१३ में हुई थी। यह ८ अंकों का नाटक है जिसमें कर्नल टाड ने 'एनाल्स आफ राजस्थान' का सहारा लिया गया है। राजसिंह राठौर अपनी पुत्री का विवाह मुगल बादशाह से करना चाहते हैं किन्तु उस पर अमर सिंह भी मुग्ध है। रानी पुत्री को अमर सिंह के पास भेज देती है। मानसिंह अनेक छलकपटों द्वारा अमरसिंह को नष्ट कर देना या उसे चरित्र धष्ट कर देना चाहता है। किन्तु सारी पोल खुल जाती है। जिस वेश्या को अमर सिंह के चरित्र नारा के लिये प्रेषित किया गया था वह अमर सिंह के प्रभाव में स्वयं साध्वी बन जाती है। अन्त में मेवाड़ की विजय होती है और अमरसिंह का विवाह भी हो जाता है।

अमरसिंह माणिक्य- (नाक) वैकुण्ठ विजयम् नाटक के लेखक। समय १६वीं शताब्दी। ये नोआरवाली के राजा लक्ष्मण माणिक्य के पुत्र थे।

अमरमार्कण्डेय- (नाक) शङ्करलाल का लिखा नाटक। इस की रचना २०वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुई थी। मुनि मूकण्डु और पत्नी विशालाक्षी को शिव-पार्वती की कृपा से सर्वज्ञ पुत्र प्राप्त हुआ था, किन्तु वह उपमन्यु के उपदेश से मृत्युञ्जय मन्त्र जपकर एव माता-पिता की साधना के प्रताप से चिन्तित हो गया था। पहले यमदूतों को विमुख होना पड़ा। जब स्वयं यमराज महिष पर आरुढ़ होकर आये तब शिव से उनका युद्ध हुआ। यम मूर्छित हो गये और मार्कण्डेय की प्रार्थना पर शिव ने उन्हें सचेत कर दिया, वे यमलोक चले गये तथा मार्कण्डेय अमर हो गये।

इस नाटक में गद्य के स्थान पर भी पद्य का प्रयोग किया गया है और इसमें प्राकृत का प्रयोग विल्कुल नहीं है। छायातत्व का भी समावेश बहुत अधिक किया गया है। करुणा, भय, राजपक्षपात जैसे अमूर्त तत्वों का पात्ररूप में प्रवेश इसमें प्रतीक तत्व का परिचायक है।

अमरमौरम्- (नाक) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित नाटक। इसमें १२ अंक हैं जिनमें मौराबाई के विवाह के बाद की घटनाओं को नाट्य विषय बनाया गया है। इसका प्रकाशन प्राच्यवाणी मन्दिर कलकत्ता से हो गया था।

अमर्यमहिमा- (नाक) यह तिरुवैकटाचार्य का लिखा रूपक है। रामचन्द्र को पत्नी पर क्रोध इसलिये आता है कि उसने स्वादिष्ट भोजन नहीं बनाया। आफिस में जाकर वह अपना क्रोध अपने अधीनस्थ अधिकारी पर उतारता है। वह अधीनस्थ अधिकारी घर जाकर अपनी पत्नी पर अपना क्रोध बुझाता है और उसकी पत्नी नौकरानी को आड़े हाथों

लेती है।

अमियनाथ चक्रवर्ती- (नाक) ये बंगाल के साहित्यकार हैं। इन्होंने हुबली में संस्कृत परिषद् की स्थापना की थी। इनके पिता का नाम दुर्गानाथ था। इनकी मृत्यु १९७० में हो गई। इनकी कई पुस्तकें प्रकाश में आई हैं जिनमें हरिनामामृत, सम्भवामि युगे युगे, धर्मराज्य (नाटक) श्रीकृष्ण चैतन्य एवं मेघनाद वध का उल्लेख किया जा सकता है।

अमीलिया गलन्ति- (नाक) जर्मन कवि सेसिंग के लिखे एमेलिया गैलेट्टो का संस्कृतानुवाद है। इसके अनुवादक आर. सामशास्त्री हैं जिन्होंने ११ दृश्यों में इसे भाषान्तरित किया था। मैमूर संस्कृत कालेज जर्नल में इसका प्रकाशन हो गया था।

अमृत्युमात्यम्- (नाक) जगू कुल भूषण का लिखा दो अंकों का नाटक। प्रथम अंक कृष्ण के बाल्य काल के विषय में और दूसरा अंक उनके मयुरा में प्रथम प्रवेश के विषय में है। इसमें नृत्य गीत और चटपटे संवादों का समावेश हुआ है। कृष्ण की अलौकिक शक्ति का भी इसमें प्रदर्शन किया गया है। दधिभाण्ड नाम के एक गोप ने कृष्ण को एक गोपी की पकड़ से बचा लिया जब वे पकड़न घुसा कर भाग रहे थे। उसके पुस्कार के रूप में कृष्ण ने उसे चतुर्भुज रूप में दर्शन देकर मोक्ष प्रदान किया। कृष्ण के कहने से एक गोप कन्या ने सोने का कवच देकर जामुन खरीद लिये थे। वे जामुन सोने के हो गए। कृष्ण वेष बदल कर एक मालाकार से माला मांगने गये। उसने यह कहकर माला देने से इन्कार कर दिया कि य माला तो कृष्ण के लिए है। उसे कृष्ण ने चतुर्भुज रूप में दर्शन देकर मोक्ष प्रदान कर दिया।

(१) **अमृतमन्थन-** (नाक) नाट्यशास्त्र ४२ में इस समवकार का उल्लेख है। जब नवीन नाट्यगृह में रगदैवत पूजन समाप्त हो गया तब भरत ने ब्रह्माजी से अग्रिम आदेश की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने आदेश दिया कि अमृत मन्थन का अभिनय करो। यह उत्साहजनक और देवताओं को आनन्द देने वाला है मैंने इस समवकार की रचना की है। यह धर्म, अर्थ और धाम का साधक है। जब उसका अभिनय किया गया तब बर्म और भावों के अनुदर्शन में देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अमृतमन्थन की कथा मराभारत में आई है।

(२) **अमृतमन्थन-** (नाक) अमृतमन्थन की पौराणिक कथा को लेकर लिखा गया नाटक। ७ अंकों के इस नाटक के लेखक हैं वेङ्कटाचार्य। इसका रचनाकाल १२वीं शताब्दी का उक्तार्थ है।

(३) **अमृतमन्थन-** (नाक) श्री निरामाचार्य (ईश्वरदास) (दे.) लिखित एवं अर्धनाट्यरचना। जयदेव के गान गोविन्द (दे.) के भगवान यह भी नाटक और प्रगीत के पद्य की रचना है। यह नाट्यकृति की अपेक्षा प्रगीत काव्य अधिक है।

(४) अमृतमन्थनम्- (नाक) नारायणशास्त्री (दे) लिखित ८ अंको का नाटक ।

अमृतशर्मिष्ठा- (नाक) विरवनाथ सत्यनारायण (दे) लिखित नाटक । महाभारत की शर्मिष्ठा ययाति की कथा का नई भंगिमा के साथ इसमें उपादान किया गया है । शर्मिष्ठा ययाति के वियोग में मरणासन्न अवस्था में रोगशय्या पर पड़ी है । चिकित्सक वैशम्पायन आता है । शर्मिष्ठा पूर्वजन्म का हाल बतलाती है और कहती है कि अगली पूर्णमासी को वह चन्द्रमा में मिल जायेगी । वैशम्पायन उसे ययाति से मिला देता है जो कि चन्द्रवशीय राजा है । यह नौ अंको का नाटक है । इसमें एकोक्तियाँ पर्याप्त मात्रा में हैं । सवादो में चपलता के दर्शन होते हैं ।

अमृतोदय- (नाक) यह गोकुलनाथ लिखित प्रतीक नाटक है । इसमें इन्होंने मृष्टि की उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक की जीवात्मा की कथा लिखी है । इसमें श्रुति, आन्वीक्षिकी, कथा, पतञ्जलि, जावालि इत्यादि पात्रों का प्रवेश कराया गया है । इसका रचनाकाल १६९२ माना जाता है । इसका प्रकाशन काव्यमाला सीरीज बम्बई में १८९७ में हुआ था ।

यह रचना दार्शनिक विषय को लेकर चलती है । प्रमिति (विशुद्ध ज्ञान) श्रुति की पुत्री है जिस पर सुगतापम (बौद्ध दर्शन) के सैनिक आक्रमण कर देते हैं तब आन्वीक्षिकी और तर्क उसकी रक्षा कर उसे पुरुष के पास पहुँचा देते हैं । उधर पुरुष पुरुषोत्तम के वियोग में पीड़ित है । पतञ्जलि उसका उपचार योग सिद्धि के द्वारा करते हैं । तब वह स्वस्थ होकर पुरुषोत्तम में विलीन होने के लिये आतुर हो जाता है । बुद्धमत, जैनमत, पाशुपत वैष्णव मत सभी से आन्वीक्षिकी मुक्त करती है और सभी को पराजित करती है । अपवर्ग क्षेत्रज्ञ नगर का अधिपति बन जाता है जिसका अभिनन्दन साध्य योग, मीमांसा, वेदान्त ये सभी करते हैं । यही पर नाटक समाप्त हो जाता है ।

अमोघराधव- (नाक) राम विषयक एक लुप्त नाटक । इसका उल्लेख शिवा भूयल के रसार्णव मुद्राकर में किया गया है । इसके लेखक का पता नहीं है ।

अम्बरमाला- (नापा) विद्वत्शालमञ्जिका (दे) की एक पात्र । रानी मजाक करने के लिये अपने दाम डमस्क को लड़की के कपड़े पहनाकर उसे अम्बर माला नाम दे देती है जिसका अर्थ होता है आकाशकुसुम । इसी प्रकार उसके और सम्बन्धियों का नाम तय कर लिया जाता है- पिता शशश्रृङ्ग अर्थात् खरगोश के सींग जो नहीं होते, माता का नाम है मृगतृष्णिका । विदूषक मूर्ख बन जाता है और उसका एक लड़के में विवाह करा देने से खूब मनोरञ्जन होता है । इस मजाक का बदला लेने में विदूषक भी पीछे नहीं रहता जिससे कथानक को आगे बढ़ाने में महायत्न मिलती है ।

अश्विकादत्त व्यास- (नाका) इनका लिखा मामवनम् प्रकाश में आया है । इनका समय है २०वीं शताब्दी ।

अम्बुजवल्लीकल्याण- (नाका) दे श्रीनिवासामाचार्य (४)

अम्भोधिमन्थनम्- (नाक) दे समुद्रमन्थनम् (२)।

अम्पालभाषण- (नाक) दे वसन्त तिलक।

(१) अम्पालाचार्य- (नाक) दे वरदाचार्य।

(२) अम्पाल आचार्य- (नाक) इनका लिखा चोल भाग बनलाया जाना है। इनके पिता घटित सुदर्शनआचार्य थे। ये १७वीं शताब्दी के कलाकार थे।

अयश्चणकम्- (नाक) नारायण शास्त्री १ (दे) लिखित ७ अकों का नाटक।

अयोध्याकाण्डम्- (नाक) यह एकाङ्की नाटक है जिसकी रचना महालिंग शास्त्री ने की थी। यह एक प्रहसन है जिसमें पारिवारिक विषमता का चित्रण किया गया है। नायिका चारमती का चारुचन्द्र से विवाह होता है। परिवार में आने पर सास शतहृद और नन्द सदापिनी से परेशान होकर चारमती फाँसी लगाकर आत्महत्या करना चाहती है। जिसे पति चारुचन्द्र और समुर शर्वराज बचाना चाहते हैं। समुर विवाद शान्त करके क लिय पुत्र और पुत्रवधू को दूधक परिवार वमाकर रहने की आज्ञा दे देते हैं।

अय्यलुनाथ- (नाक) ये आन्ध्रप्रदेश के निवासी थे। इन्होंने निरुमलनाथ तथा त्रिमलनाथ नामों से भा यन्द किया जाता है। ये कोम्मगनी (वाम्मकण्ठी) परिवार के गंगाधर के पुत्र थे। सन् १७५० में इन्होंने कुहनापैक्ष (दे) नाम का एक प्रहसन लिखा था जो मद्रास की ओरियंटल लायब्रेरी में लायनियल टैक्लाग स III ८२५१ पर प्राप्य है।

अय्या दीक्षित- (नाक) दे राम मद्र दीक्षित।

अय्यभाषण- (नाक) कुम्भवाणम् निवासी रामभद्र दीक्षित (दे) लिखित भाषण। इसे शृङ्गारतिलक के नाम से भी जाना जाता है। कहा जाता है कि इनका एक मित्र वरदाचार्य (उपनाम अम्पालाचार्य) ने कमलतिलक भाषण अथवा अम्पाल भाषण की रचना की थी उसी की प्रतिद्वन्दिता में रामभद्रदीक्षित ने इस भाषण की रचना की। इसमें भुजंगशेखर और हमाला की प्रेम लीला के महामय काव्यों का नाटकीय रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। नायक भुजंगशेखर प्रपत्नी हमाला से त्रिमुक्त हो जाने के कारण अत्यन्त दुःखी है। उस आश्वामन मिलता है कि वह यद्यपि पति के घर चली गयी है फिर भी उनका मिलन शिर हागा। वह गणिकाओं की गलियों में धूमता है आकाशभाषित करता है सभों दवनाओं एन्द्रजालिकों पर्वतों इत्यादि का वर्णन करता है। अन्त में उसका सम्मिलन हमाला से हो जाता है।

यह एक नय प्रकार का भाषण है जिसमें वरदाओं के साथ भुजंग शेखर का शारीरिक व्याकरण हो दिखलाया हो गया है कुलाग्रनाओं के साथ भाषण व्यापार चलता है। यह बात दूसरे पूर्ववर्ती भाषणों में नहीं पाई जाती।

काय क अनुमर इसकी रचना मदुरा दत्ता के विवहात्म्य में अर्पित उन्मत्त में प्रार्थित वान के उदश्य में की गई थी। इस का प्रकारान्तर काव्यमाना अम्भोधिमन्थन में

हो गया था। रामचन्द्र ने इस पर टीका लिखी थी (दे) कैटेलागस कैटेलागोरम् स १६६०) इसकी रचना १७वीं शताब्दी में हुई थी।

अरवट्टघट- (नाट्) खोत स्कन्द शर्कर लिखित लघु नाटक।

अरिष्ट- (नापा) भाम के बानचरित में अरिष्टामुर का युद्ध होता है जिसमें अरिष्टामुर मारा जाता है यह युद्ध भयानक था जिसे देखने के लिए कृष्ण ने गोप गोपियों को पहाड़ पर चढ़ जाने का आदेश दिया था।

(१) **अरुणगिरिनाथ प्रथम-** (नाका) ये गौतमगोत्रिय सोमवल्ली शास्त्रा के राजनाथ प्रथम और अभिरामाश्रमिका के पुत्र थे। इनका मातृकुल, पितृकुल और पत्नी कुल सभी शिक्षित और साहित्यकारों के परिवार थे। ये विजयानगरम् के १४वीं शताब्दी के प्रौढ़ देवगण की सभा को सुशोभित करते थे। इनको कवि की घोषणा सर्वदा डिमिडिम की आवाज के साथ की जाती थी। अतः डिमिडिम कवि को मार्कभौम की उपाधि प्राप्त हुई थी। इन्होंने शास्त्रार्थ में कवि मल्ल को पराजित किया था। इनका लिखा सोमवल्ली-योगानन्द (दे) प्रहसन प्राप्त हुआ है।

(२) **अरुण गिरिनाथ द्वितीय-** (नाका) ये पारेन्द्र अपहरण के निवामी राजनाथ द्वितीय के पुत्र थे और कुमार डिडिम या डिडिम चतुर्थ के नाम से याद किये जाते हैं। इनका समय १६वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनका लिखा वीरभद्रविजय (दे) नामक चार अकों का डिम प्रकाश में आया है जिसका उल्लेख मद्रास पुस्तकालय की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में किया गया है।

अरुणाचलकेतनम्- (नाट्) विश्वेश्वर विश्वभूषण (दे) लिखित नाटक।

अरुन्धती- (नापा) वशिष्ठ की पत्नी। भवभूति के उन्नत रामचरित में सीता परित्याग के अभिनय के आयोजन में जब राम समस्त दूर्य को वानप्रस्थिक समझ कर मूर्छित हो जाते हैं तब अरुन्धती लव और कुश के साथ सीता को लाकर राम की मुर्छा दूर कर उनके परिवार से मिला देती है और राम पूर्ववत् परिवार के साथ रहने लगते हैं तथा इसके साथ ही नाटक समाप्त हो जाता है।

(१) **अर्जुन-** (नापा) महाभारत के मध्यम पाण्डव के रूप में प्रतिष्ठित अत्यन्तम पात्र। ये महाभारत के सर्वोत्कृष्ट धनुर्धर और वीरता के प्रतीक बन गये हैं। अपनी साधना के बल पर इन्होंने शस्त्रशक्ति प्राप्त की थी जिसमें शङ्ख का दिया हुआ पारुपत अक्ष भी सम्मिलित था। कृष्ण के परम सखा थे और ठन्हीं के लिये गीता का उपदेश दिया गया था। महाभारत विषयक नाटकों में प्रायः इनका समावेश हुआ है। कुछ उदाहरण-

(१) **हरिवंश पुराण-** ये नाटकीय प्रदर्शन का उल्लेख किया गया है। अन्धक की मृत्यु के बाद यादवों ने जो आमोद प्रमोद मनाया ठमसे अम्माओं ने नृत्य एवं अभिनय द्वारा कृष्ण सीताओं का प्रदर्शन किया। उसके बाद नाट्य मुनि ने जनता के मनोरंजन के

लिये जिन पात्रों का प्रदर्शन किया उनमें अर्जुन भी एक थे। इस प्रकार उस प्राचीन काल में भी अभिनयता की ओर अर्जुन की प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

(२) द्रुपदोत्कच- (दे) में द्रुपदोत्कच द्वारा धृतराष्ट्र के सामने अर्जुन के पराक्रम के साथ बदला लेने की धमकी भरी भविष्य वाणी की जाती है।

(३) कर्णभार- (दे) अर्जुन और कर्ण का युद्ध सन्निहित है। शल्य के सारथ्य में युद्ध के लिये कर्ण प्रस्थान करते हैं- दूसरी ओर अर्जुन का भी रथघोष कर्णगोचर होता है।

(४) वेणी महार- में अर्जुन कई स्थानों पर दृष्टि गत होते हैं। अभिमन्युवध के बाद बदला लेने की उनकी प्रतिज्ञा सामने आती है। वे भीम के साथ अवतीर्ण होकर वृद्ध राजा धृतराष्ट्र का अपमान करते हैं और अपने व्यवहार का समर्थन इस बात से करते हैं कि द्रौपदी के अपमान में धृतराष्ट्र की भी मौन स्वीकृति थी। द्रौपदी के वेणीमहार (वेणी समेट कर बांधने) के अवसर पर भी कृष्ण और अर्जुन उपस्थित होते हैं। अर्जुन में वीरता तो है किन्तु भीम के समान उन में वर्चस्वता और उद्विग्नता नहीं है। धृतराष्ट्र दुर्योधन से युद्ध विराम की प्रार्थना करते हुये कहते हैं कि अर्जुन से सारा ससार डर रहा है- भीत जगत् पाल्गुनान्। अर्जुन ने कर्ण के सामने ही उनके पुत्र का वध कर दिया और कर्ण कुछ नहीं कर सके। यह उनकी वीरता का एक महत्वपूर्ण मानदण्ड है।

(५) पार्थपराक्रम- में अर्जुन द्वारा विराट पुर में अकेले ही सारी कौरव सेना को पराजित कर विराट की गायों की रक्षा करने में वे सफल होते हैं।

(६) धनञ्जयविजय- (दे) में विराट पुर में कौरव सेना को पराजित करने में दिखलाई गई अर्जुन की वीरता का चित्रण किया गया है। इसमें अर्जुन दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हैं।

(७) सुभद्राहरण- में अर्जुन भिशुव के रूप में सुभद्रा के पिता के घर जाकर उससे मिलते हैं और कृष्ण की सहायता से उसका अपहरण करते हैं।

(८) सुभद्रापरिणय- में भी सुभद्रा और अर्जुन के परिणय और विवाह का चित्रण किया गया है।

(९) अर्जुन- (नापा) यह एक दानव है जिसका माहर्षय यमल नामक दूसरे दानव का साथ रहता है। भास के बालचरित (६) में कृष्ण द्वारा यमलार्जुन वध की सूचना दी गई है।

अर्जुनराज- (नाक) यह हस्तिमल्ल का लिखा नाटक है। कैटलागस कैटलागोरम स १३० पर इसका उल्लेख किया गया है।

अर्जुनवर्मा- (नापा) थारा तमारी व परमार वंशीय राजा थे। ये भोजराज (८) व यग स उत्पन्न हुए थे। इनका समय १३वां शताब्दी है। ये पार्लियात मजरी (८) नामक

नटिका के नाटक हैं जिसका रचना इनके गुरु मदनवत्सलस्वामी ने की थी। परिवर्तनजोषी का दूसरा नाम विजयभा है। इसमें इनका बरता और प्रेम लाता को नट्य विषय बनाया गया है। इन्होंने गुजरात के चालुम्य वंशाध्य भोजदेव को युद्ध में पराजित किया था और उनका पुत्री परिवर्तनजोषी से विवाह किया था।

अर्घ्यपञ्चक नाटक- (नाकू) यह पाँच अंकों का नाटक है जिसके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। इसका विषय वान है- तबौर जिला के कृष्णपुराम में जिस सौराज्य देवता का पूजा होती है उनके यहाँ मन्मथ का किस प्रकार जन्म हुआ, किस प्रकार रन्ध्या सुर ने उस सन्तुद्र में फेंक दिया। किस प्रकार शम्बर क नौकरों ने मछला क पेट में बच्चे को प्रश्रुत किया किस प्रकार शम्बर का पुत्री जो वास्तव में रात का अवतार था उस बच्चे पर आसक्त हो गई, उसे पली धातु पला पला और अन्त में उत्तम विवाद कर दिया।

इस नाटक में ५ तत्वों का नाटकाय रूप प्रदान किया गया है चिन्ता योग सनात्म व्यंग्यर हनुदशन और अभीष्टलाभ-

चिन्तायागसनात्मो व्यापारो हेतुदर्शनम्।

अभीष्टलाभ इत्यर्घ्यपञ्चक नाटकीकृतम्।

इसलिये इस नाटक का नामकरण अर्घ्यपञ्चक किया गया है।

मद्रास की ओरियण्टल लायब्ररी का संस्कृत पण्डितपियों का विवरणात्मक सूची में इसका उल्लेख XXI ८८७७ पर किया गया है।

अलका- (नापा) महावीर चरित में अलका नागा का मानवकृत रूप। वह और लका (मनवकृत) क प्रति सचेदना प्रकट करने उस वक्त भाता है जब लका का युद्ध समाप्त हो चुका है और रात्रि मात गया है।

अवकोणकाशिकम्- (नाकू) नरायणराज्ञा (१) (६) निखन १० अंकों का नाटक।

अवधानसरस्वती- (नाका) द काश् के निवासी थे। इनका लिखा सुहृदमञ्जरी (६) रचक धन तजौर के सार पुस्तकालय में स. ११११ ३५९९ पर सङ्कलित किया गया है।

अवन्तिका- (नापा) स्वन्वमवर्तन में यौगन्ध्याय न वानवदन का इस नाम से परवना के पास धाहर क रूप में रख दिया था।

अवन्तिमुन्दरी- (नाका) राजरत्नर का पत्नी इनका लिखा इना नाम का प्रथम (६) प्रकाश में आया है।

(१) अवन्तिमुन्दरी- (नाकू) यह एक प्रथम (६५) है। इसका रचना राजरत्नर का पत्नी अवन्तिमुन्दरी न का था। इनका विषय है पतन्य में काश् क अर्घ्य ग्रहण पर का विवरण।

(२) अवन्तिसुन्दरी—(नाक) वेङ्कटरामरायण का लिखा प्रेक्षक है, इसका आधार अवन्तिसुन्दरी लिखित प्रेक्षक ही है।

अवलोकिता—(नापा) मालती माधव (दे) में कामन्दकी की सहायिका है। यह अपनी सहयोगिनी सौदामिनी के साथ मिलकर मालती को कपालकुण्डला के चगुल से बचानी है।

अविनाशी स्वामी—(नाका) शृङ्गारतिलक (दे) भाण के लेखक। ये आत्रेयगोत्र के वन्दवासा परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनका समय १९वीं शताब्दी का उत्तमार्ध है।

अविमारक—(नाक) भास (दे) कृ. ६ अंको का नाटक। यह नाटक लावकथा पर आधारित है। दीर्घतपम् ऋषि के शाप से सौवीर राज का पुत्र विष्णुसेन १ वर्ष के लिए सपरिवार घण्डाल बन जाता है। वह गुप्त रूप से कुन्निभोज के नगर में रहने लगता है। वहा वह अविमारक नामक अमुर को भार डालता है इसलिये उसका भी नाम अविमारक पड जाता है। वह अपना एक भाजी कुरगी को एक बिगड़े हाथी से रखा करता है। जब राज यह समाचार सुनता है तब अविमारक से ही पुत्री कुरगी का विवाह कर देना चाहता है। किन्तु अविमारक इतना निम्नवश का है कि यह सम्बन्ध सम्भव नहीं हो पाता। उधर कुरगी और अविमारक एक दूसरे के वियोग में तडपते हैं। उनका प्रेम सीमातीत हो गया है एक बार धात्री की सहायता से अविमारक कुरगी के वक्ष में पटुच जाता है, किन्तु पकड लिया जाना है और उसकी आकाङ्क्षा पूरी नहीं हो पाती। वह आग से जलकर आत्महत्या करना चाहता है। किन्तु अग्निदेव उसे अस्वीकृत कर देते हैं और वह बच जाता है। तब पर्वत से गिर कर आत्महत्या करना चाहता है किन्तु वहा उसे एक विद्याधर मिल जाता है। वह उसे एक अगूठी देता है जो जादुई है और उससे वह अदृश्य रूप में कुरगी के वक्ष में पटुचकर प्रत्येक रात में अपनी प्रमिका का उपभोग कर सकता है। इस कार्य में उसे विदूषक को भी सहायता मिलती है। इसके पहले कुरगी ने भी आत्महत्या की चष्टा की थी किन्तु वह भी बच गई थी। जब राजा कुन्निभोज को इनके प्रच्छन्न विहार की सूचना मिलती है तब वह पोरगीन हो जाता है और कुरगी का विवाह अपने दूसरे भाजे जयवर्मा से कर देने का विचार करता है। इसी समय नाद आ जाते हैं और बतलाते हैं कि विष्णुमेन वस्तुतः वरगीन्द्रेश की पत्नी सुदर्शना में अग्नि द्वारा उत्पन्न किया हुआ पुत्र है और उसका केवल पालन पोषण सौवीर राज के यहा हुआ है। काम्निविमना जान कर राजा कुरगी का विवाह विष्णुमेन (अविमारक) से कर देता है— यहा नाटक समाप्त हो जाता है।

यह एक शृङ्गार प्रधान नाटक है। भावना की तीव्रता को अभिव्यक्त करने में भाग को अच्छी सफलता मिली है। घटनाओं और चरित्र व्यासों की धिक्कता और आवृत्ति जो भाग की शैली की विशेषता है इस नाटक में भी देखी जा सकती है। विदूषक (८) के चित्रण में कवि ने अधिक निपुणता दिखाई है। वह म्यामिभक्तमवका की भूमिका भला

भाति निभाता है। स्वयं नायक भी उसकी प्रशंसा करता है। पात्रों की भ्रमर इतने भी है। भाषा विषयानुकूल है और चरित्रचित्रण सशक्त। नाटक में संवाद रोचकता उत्पन्न करते हैं। कल्पित कथा पर आधारित होने के कारण इसे प्रकरण विधा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यह नाटकीयता की दृष्टि से एक सफल रचना है और कथोपकथन में स्वाभाविकता से परिपूर्ण है। रसनिष्पत्ति और कलात्मकता में यह रचना कालिदास से होड़ लेती है और प्रकृतिचित्रण तथा सूक्तिसाहित्य की दृष्टि से भी इसे उच्च कोटि की सफलता प्राप्त हुई है।

अविमारक- (नायक) यह अविमारक नाटक का नायक है। यह धराने में उच्चकोटि के माता पिता से जन्मा एक साहसी वीर व्यक्ति है। यह उसका दुर्भाग्य है कि एक शाप के प्रभाव से उसे एक वर्ष के लिये चाम्बाल बन जाना पड़ता है। अपने इस दुर्भाग्य के अवसर पर वह अपने मूलनिवासस्थान पर रहना स्वापमान के प्रतिकूल समझता है और अपनी बहन के नगर में जाकर गुप्त रूप से अपना समय बिता देना चाहता है पर वीरवृत्ति उसे वहां प्रच्छन्न नहीं रहने देती। जब वीरता की आवश्यकता पड़ती है वह स्वयं को रोक नहीं पाता और अविमारक नामक राक्षस को मार कर वह उसके उत्पीड़न से जनता को राण देता है। इससे वह विष्णुसेन से अविमारक बन जाता है। वीरता प्रदर्शन का दूसरा अवसर तब आता है जब उसकी भांजी कुरगी एक विण्डैल हाथी की चपेट में आ जाती है और उसकी जीवन रक्षा आवश्यक हो जाती है। वह इस कार्य का भी सफलता पूर्वक निर्वाह करता है और राजकुमारी बच जाती है।

इस दूसरी घटना से उसके जीवन में एक मोड़ आ जाता है। कुरगी उससे सम्पर्क में आ गई है और दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हो गये हैं तथा दोनों एक दूसरे को दिल दे बैठे हैं। राजा भी उसकी वीरता के पुरस्कार के रूप में उसे कुरगी दे देना चाहता है, पर यहाँ उसका दुर्भाग्य आड़े आता है। एक हीन जाति के व्यक्ति को राजकुमारी का हाथ दे देने से राजा कतरा जाता है। अविमारक का दूसरा गुण है उसका सीमा से अधिक भावुक होना। वह सक्षिप्त से सम्पर्क से ही या प्रथम दर्शन से ही कुरगी के प्रति प्रेम पीड़ा में ऐसा निमग्न हो जाता है कि उसे अपना जीवन भी व्यर्थ मालूम पड़ने लगता है। वह एक बार नहीं दो बार आत्महत्या की चेष्टा करता है किन्तु बच जाता है। एक बार धात्री के उद्योग से वह कुरगी के कक्ष में पहुँच गया था। किन्तु मनोरथ की पूर्ति के पहले की पकड़ा गया, दूसरी बार एक गन्धर्व की जादुई अंगूठी से उसे अपनी प्रेमिका का सम्पर्क प्राप्त हो जाता है और प्रत्येक रात वह उसका उपभोग भी करने लगता है। किन्तु यह सम्बन्ध अधिक दिनों नहीं चलता और दुःख राजा को पता चल जाता है। राजा इस कृतक से छुटकारा पाने के लिये, शोषातिशोष किसी अन्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये आतुर हो जाता है। अन्त में नारद उसकी वास्तविकता का परिचय राजा को दे देते हैं और उसका मनोरथ पूरा हो जाता है, प्रेमिका उसे अपनी पत्नी

रूप में प्राप्त हो जाती है।

वह गुणवान होने के साथ गुणप्राही भी है और विदूषक की हास्योक्तियों पर मुग्ध है, साथ ही विदूषक की वीरता, युद्ध कौशल और सान्त्वनावचनों की प्रशंसा करता है। विदूषक भी उसके गुणों पर मुग्ध है और उसके अपना स्थान छोड़कर चले जाने और गुम हो जाने के बाद उसकी खोजखबर में कोई कमी नहीं रखता।

अशोककानाने जानकी- (नाकृ) २० वीं शताब्दी के सुरेन्द्र मोहन की लिखित लघुनाटिका। यह सवादप्रधान रचना है और इसमें प्रधान रूप से सीता मन्दोदरी, विजय, विकटा, सकटा के सवाद नाट्य विषय बनाते हैं।

अश्वघोष- (नाका) कवि, दार्शनिक और नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित अश्वघोष सुवर्णाधी के पुत्र, पार्श्व के शिष्य तथा सम्राट् कनिष्क के प्रमुख सभासद थे। इनका जन्म साकेत में हुआ था। सम्राट् कनिष्क के सभासद होने के कारण ही इनका समय ईपू. पहली शताब्दी से ई. की दूसरी शताब्दी के मध्य भाग में किसी समय माना जाता है। पहले ये वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे किन्तु एक प्रश्न पर पार्श्व से पराजित होकर ये बौद्ध बन गये थे। अपनी विजय की भेंट के रूप में सम्राट् कनिष्क ने इन्हें भगवद्गोत्र से भाग लिया था और अपने साथ उत्तर पश्चिम में अपनी राजधानी ले गये थे। कौथ ने इन्हें, प्रथम कवि एवं प्रथम नाटककार माना है यद्यपि वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इनके पहले नाटक की अनेक परम्परायें प्रचलित हो चुकी थीं। कहा जाता है कि अश्वघोष इनका वास्तविक नाम नहीं था अपितु इनके प्रवचन से घोड़े भी प्रभावित हो जाते थे इसलिये इन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई थी। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं। कुछ लोग इन्हें आर्यमूर और मातृचेता से अभिन्न मानते हैं। किन्तु इस मान्यता में कोई प्रमाण नहीं क्योंकि तीनों के नाम अलग अलग रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

अश्वघोष के नाम पर तीन रचनायें प्रमाणप्रतिपन्न हैं- बुद्ध चरित और सौन्दरानन्द नामक दो महाकाव्य एवं शारिपुत्रप्रकरण (दे.) नामक नाटक। इनके अतिरिक्त दो अन्य छोटे छोटे रूपक- प्रतीक रूपक (दे.) एवं गणिका विषयक रूपक (दे.) भी प्राप्त हुये हैं। अतिपुत्र अन्य ग्रन्थ भी इनके नाम पर जोड़ दिये गये हैं जैसे- माहयानश्रद्धात्पादसमर, गण्डीस्तोत्रगाथा, चन्द्रमूची और मृगालकार।

अश्वघोष की रचना शैली की विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। शब्दचयन की निपुणता, गुम्फन का सौन्दर्य, कालिदास का जैसा उपमासौन्दर्य और सहजप्रवाह इनकी अनन्य विशेषतायें हैं। यद्यपि उनका शब्दचयन पुराना और कहीं कहीं व्यवहारशील भी है फिर भी भावों की स्वाभाविकता और विचारों की उदात्तता प्रशंसनीय है। दार्शनिक विचारों को काव्य की मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करने की इनमें अपूर्व शक्ति है। इनकी भाषा कहीं कहीं व्याकरण विरुद्ध है। इसका कारण या तो लेखक का प्रमाद है या प्राकृत का प्रभाव। बौद्ध होने के कारण इनका धारन में कम चीन और तिब्बत में अधिक

प्रचार हुआ। इनके प्रयों का उद्धार भी विदेशी साहित्य से हो किया गया।

इनके नाटक यद्यपि खण्ड रूप में ही प्राप्त हुये हैं फिर भी उनसे दो बातें प्रमाणित हो जाती हैं- अश्वघोष जितने सशक्त कवि थे उससे कम सशक्त नाटककार भी नहीं थे। दूसरी बात यह है कि यद्यपि ये उपलब्ध प्राचीनतम नाटक हैं फिर भी इनसे इतना प्रमाणित हो जाता है कि उस समय भी नाट्य कला पूर्ण रूप से परिवृद्ध थी और उसकी जो परम्परायें प्रतिष्ठित थी उनका प्रायः पालन किया गया है। नाटक का अकों में विभाजन, गद्य और पद्य का यथोचित विनियम, संस्कृत और प्राकृत का उचित रूप में पात्रानुकूल प्रयोग, संस्कृत काव्य के परम्परागत छन्दों का प्रयोग ये सब तत्त्व इस बात के परिचायक हैं कि अश्वघोष किसी प्रतिष्ठित परम्परा का अनुसरण कर रहे थे। इस विषय में विदूषक (दे.) का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। पात्रों के नामकरण में भी प्रचलित परम्परा के निर्वाह के दर्शन होते हैं। किन्तु इस बात का पता नहीं चलता कि उस समय प्रस्तावना और नान्दी पाठ की कौन सी विधि अपनाई जाती थी। भरत वाक्य की प्रचलित परम्परा यह है कि अन्त में मुख्यपात्र (नायक) आकर प्रश्न करता है कि 'हम अब तुम्हारा कौन सा उपकार करें?' और उत्तर में लोक कल्याण की आशंसा करता है। किन्तु अश्वघोष के नाटक में प्रश्न नहीं किया गया है- वैसे ही भगवान् बुद्ध ने इन्द्रिय निग्रह और ज्ञान वृद्धि करते हुए निर्वाण प्राप्ति की आशंसा की है। केवल इतने से ही लूडर्स ने निष्कर्ष निकाल लिया है कि उस समय तक भरत वाक्य की अर्वाचीन परम्परा विकसित नहीं हुई थी। किन्तु अन्यद्वारा आशंसा परक भरतवाक्य अन्यत्र भी पाये जाते हैं। अतः यह निष्कर्ष उचित नहीं कहा जा सकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जितना अंश प्राप्त हुआ है उससे प्रतीत होता है कि उस समय नाट्य कला की कोई टेक्निक प्रतिष्ठित अवश्य थी जो भरत प्रतिपादित नाट्यकला से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। यदि कभी इनके नाटकों का पूर्ण उद्धार किया जा सका तो यह साहित्य जगत् की महान् उपलब्धि होगी इसमें सन्देह नहीं।

अश्वजित्- (नापा) शारिपुत्र प्रकरण (दे.) का एक पात्र। शारिपुत्र और अश्वजित का धर्म विषयक विवाद होता है जिसमें अश्वजित का साथ विदूषक भी देता है। अन्त में शारिपुत्र की विजय होती है।

अश्वत्थामा- (नापा) महाभारत का एक प्रतिष्ठित पात्र। ये द्रोण के पुत्र हैं और भारत युद्ध में दुर्योधन के सहयोगी हैं। ये अपने प्रकार के अनन्य योद्धा हैं किन्तु उन्हें महाभारत युद्ध में अपनी शक्ति प्रदर्शन का पूरा अवसर नहीं मिलता। उरुभग और वेणीसहस्र नाटकों में इनको पात्र रूप में स्वीकार किया गया है-

(१) वेणी सहर- में पिता की छत्रपूर्ण रक्षा से अश्वत्थामा बहुत दुखी है। उनके मामा कृपाचार्य उन्हें सान्त्वना देते हैं और सेनापति पद दिये जाने की प्रार्थना लेकर दुर्योधन के पास जाने का परामर्श देते हैं। उधर कर्ण दुर्योधन को कुछ ऐसा वैसा समझाकर

अश्वत्थामा के विरुद्ध कर देता है। अश्वत्थामा के आने पर कर्ण के साथ उनकी जोरदार झड़प होती है जिसमें क्रोध में अश्वत्थामा बाह्यचिह्न जनेऊ को भी तोड़कर फेंक देता है और दुर्योधन के सामने ही कर्ण के सर पर पाद प्रहार करता है। किसी भाति विवाद शान्त होता है किन्तु दुर्योधन सेनापति बनाने की अश्वत्थामा की प्रार्थना ठुकरा देता है। अतः अश्वत्थामा भी कर्ण के जीवनकाल में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर लेता है। कर्ण के मारे जाने पर वह पुनः दुर्योधन से सेनापति बनाने की प्रार्थना करता है तब दुर्योधन का उत्तर होता है— 'अब तुम दुर्योधन के मारे जाने पर युद्ध करना।' अतः उसे पुनः शक्ति प्रदर्शन से वञ्चित हो जाना पड़ता है।

वह महान् वीर है, किन्तु उसे उचित अवसर नहीं मिलता। कर्ण के सर पर पाद प्रहार कर देना कोई मामूली बात नहीं थी। किन्तु दुर्योधन का कर्ण के प्रति पक्षपात उसे शक्ति प्रदर्शन से वञ्चित कर देता है। उसे इस पक्षपात पर कुछ क्रोध भी आता है किन्तु धृतराष्ट्र के इस कथन से शान्त हो जाता है कि यह वही दुर्योधन है जिसके साथ तुमने स्तन पाया किया और एक साथ गोद लेने में मेरा यह रेशमी वस्त्र गन्दा हो जाता था— अब तुम इस पर क्रोध मत करो।

(२) उत्स्यग— में भीम द्वारा जघायें तोड़े जाने से व्याकुल पड़े हुए दुर्योधन के पास यह आता है। यद्यपि दुर्योधन उसे शान्त रहने का उपदेश देते हैं तो भी वह प्रतिशोध लेने की शपथ लेता है। वह दृढ़ निश्चयी है— यहाँ तक कि अन्त में दुर्योधन के मना करने पर भी बदला लेने का अपना निश्चय नहीं छोड़ता और बदला लेकर रहता है।

अश्वमेधनाटक— (नाट्य) यह भलगाव के राजा सुमतिजितामित्रमल्लदेव लिखित नाटक है जिसमें महाभारत के अश्वमेध यज्ञ का कथावस्तु के रूप में उपादान किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड ३ सख्या ८ पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

असज्जाति— (नाट्य) धूर्त समागम (दे) का एक पात्र। इसे न्याय करने का उत्तर दायित्व सौंपा गया है। इसके सारे निर्णय हास्य रस के अनुकूल हैं। जब दो व्यक्ति एक लड़की के लिये लड़ते हुए आते हैं तब उसका निर्णय होता है— 'जब तक अन्तिम निर्णय न हो जाय तब तक यह मेरी होकर रहेगी। जब उस लड़की पर बर्ज वसूल करने वाला व्यक्ति आता है तब वह विदूषक के पैसे लेकर कर्ज चुका देता है। इसी प्रकार और भी उसकी चेष्टायें हास्यपरक हैं।

असुर— (नाट्य) (१) त्रिपुरदाह— (दे) का एक पात्र जिस पर भगवान् शंकर ने विजय प्राप्त की है।

(२) वत्सरात्र— के समुद्रमन्थन नामक समवकार में सुरों के साथ मिलकर समुद्र मन्थन करने वाले और प्राच्य तलों का वटवारा करने वाले असुर।

(३) कदासीत्सागर— में यथः असुर की पुत्री ने पुत्रतिलो क नृत्य में अपनी सखी

का मनोविनोद किया। इससे पुस्तकियों के नृत्य की सत्ता प्रमाणित होती है जिससे कुछ लोग परवर्ती नाट्य कला की उत्पत्ति मानते हैं।

असूयिनी- (नाकू) लोलाराव दयाल (दे) लिखित ८ अंकों की नाटिका। नायिका रेविका नामक धौवरी के बच्चे जीते नहीं हैं। वह बड़ोसिन के बच्चे की बलि देकर अपने बच्चे को जीवित रखना चाहती है। किन्तु अन्त में स्वयं ही पाप कर्म समझकर इस उपक्रम को छोड़ देती है।

अहोवल्लर्नीसह- (नाका) नल विलास नामक ६ अंकों के नाटक के लेखक। इसका समय १८वीं शताब्दी है। इनका सम्मान मैसूर नरेश बोडियार द्वितीय (१७३२-१७६० ई) एव चामराज वेडियार (१७६०-१७७६ ई) ने किया था।

आ

आञ्जनेय विजय- (नाकू) यह भाष्यकार का लिखा राम साहित्य विषयक एक नाटक है। मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग स २७३ पर इसका उल्लेख किया गया है।

आद्यराज- (नाका) वाणभट्ट ने आद्यराज की कृतियों में उत्साह के प्रयोग की योजना की प्रशंसा की है। आद्यराज कौन है इस पर पिरोल, विष्णानित्र प्रभृति अनेक विचारकों का मत है कि वाण ने अपने आश्रय दाता कन्नौज के महाराज हर्ष को ही आद्यराज कहा है। किन्तु राजशेखर और भोजराज के विवेचन से ज्ञात होता है कि इस नाम के कोई दूसरे ही राजा सम्भवतः शालिवाहन थे। राजशेखर ने लिखा है कि 'सुना जाता है कुन्नाल में शातवाहन नाम का राजा था जिसने अपने अन्त पुर को प्राकृतमय बना दिया था। भोजराज ने लिखा है कि आद्यराज के राज्य में सभी प्राकृत बोलते थे। इससे सिद्ध होता है कि शालिवाहन ही आद्यराज थे। राजशेखर ने स्पष्ट लिखा है— 'आद्यराज शालिवाहन।' शालिवाहन केवल एक कुशल शासक ही नहीं थे एक अच्छे कवि भी थे। उन्होंने अपने राज्य को प्राकृत मय बना दिया था। और प्राकृत की गाथाओं का राज्य भर में सक्तन कर एक करोड़ गाथायें एकत्र कर ली जिनसे अच्छी गाथायें छोटकर ७०० गाथाओं की गाथासप्तशती का सम्पादन किया।

ज्ञात होता है शालिवाहन ने गाथा-सप्तशती के समान कोई या कुछ नाटक भी लिखे थे जिनमें 'उत्साह' का भी प्रयोग किया गया था। उत्साह शब्द से वाण का क्या आशय है यह प्रकट नहीं होता। यह एक पारिभाषिक शब्द है, किन्तु इसका परिचय न तो नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में दिया गया है, न काव्य शास्त्र में उपलब्ध होता है और न संगीत शास्त्र में ही इस विषय में कुछ कहा गया है। वाण के शब्द इस प्रकार हैं—

आढ्यराजकृतोत्साह हृदयस्थै स्मृतैरपि।

जिह्वानकृष्यमाणेषु न कविष्वे प्रवर्तते ॥

{ अर्थात् आढ्यराज ने जिन उत्साहों की रचना की है यदि वे हृदय में ही स्थित हों या उनका स्मरण किया जाय (उनके सौन्दर्य से प्रभावित होकर) जवान अन्दर को भागने लगती है उसका साहस कवित्वरचना में होता ही नहीं ! }

इस विषय में उत्साह के कई अर्थ किये जाते हैं— कुछ लोगों का विचार है कि आढ्यराज नाट्य या काव्य के खण्डों (अंक या सर्ग) के लिये उत्साह शब्द का प्रयोग करते थे। कुछ लोग शैलीविशेष को उत्साह कहते हैं और दूसरे लोग सगीत की ताल उसका अभिप्राय बतलाते हैं। भोजराज ने लिखा है कि आढ्यराज की रचनाओं में प्रत्येक उपखण्ड के अन्त में धैर्य शब्द का प्रयोग रहता है। किन्तु उनकी गाथासप्तशती में इस नियम का निर्वाह दृष्टिगत नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि आढ्यराज शातवाहन या शालिवाहन ने (संस्कृत के शातवाहन का ही प्राकृत रूप शालिवाहन है) अन्य रचनायें भी प्रस्तुत की होंगी जिन में कविपय नाटक भी हो सकते हैं।

आत्मविक्रय— (नाट्) रमानाथ मिश्र (दे.) का लिखा नाटक। यह हरिश्चन्द्र के कथानक को लेकर लिखा गया ५ अंकों का नाटक है जिसकी रचना १९५३ में और प्रकाशन १९६१ में हुआ था।

आत्माराम— (नाट्) ये अच्चाव दीक्षित के पुत्र और नीलकण्ठ दीक्षित के पिता थे। इन्होंने उत्तररामचरित और साहित्यरत्नकर पर टीकायें लिखी थीं।

आत्माबलीपरिणय— (नाट्) यह एक प्रकरण है जिसकी रचना रामानुजाचार्य 'क्षी' ने की थी। इसका रचनाकाल २० वीं शताब्दी है।

आत्रेय— (नाट्) यह नागानन्द में जन्मूतवाहन का विदूषक है जो अपने चरित्र के अनुसार बुद्ध और भद्र पात्र है। उसका चरित्र उसकी भूमिका के अनुसार हास्यजनक दिखाया गया है। हास्य की सृष्टि उस समय अधिक होती है जब विदूषक मक्खियों को भगान के लिये चादर आढ़ कर लटका रहता है और बिट शाखरक उसे अपनी प्रेयसी समझ कर उसका आलिंगन और लाड प्यार करने लगता है। हास्य की परिस्थिति तब और अधिक बन जाती है जब बिट की प्रेयसी नवमालिका आ जाती है और बिट उसे शान्न करने की चेष्टा करता है।

आत्रेयवस्द— (नाट्) १९वीं शताब्दी के कलाकार हैं। इनका निवास स्थान वेङ्कटगिरि पर था। इनका लिखा (४) रक्मणी परिणय (दे.) नाटक उपलब्ध होता है।

आत्रेयी— (नाट्) उत्तर राम चरित की एक पात्र। वासन्तो क साथ इसके सवाद से राम के अश्वमेध करने दृष्टा सीता के दो बच्चों को वात्सीकि इस शिक्षा दिये जाने की सूचना मिलती है। उनके सवाद से इस बात का भी पता चलता है कि उस समय

आश्रमों में सहशिक्षा का विधान था और वाल्मीकि के आश्रम में सर्वाधिक उत्त्वकोटि का शिक्षा दी जाती थी। अगस्त्य इत्यादि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त कर छात्र विविधता सम्पादन के लिये वाल्मीकि-आश्रम को ही जाया करते थे।

आदिकाव्योदय- (नाक) महालिंग शास्त्री का लिखा नाटक। इसका रचना १९३२ में हुई थी और फिर सरोधित रूप १९४२ में तैयार किया गया। इसमें वाल्मीकि द्वारा लवकुश के पालन पोषण से प्रारम्भ कर दोनों कुमारों का रामायण गान और उसके बाद राम के स्त्रीपुत्रों से मिलन तक की कथा का उपादान किया गया है।

आनन्दकोश- (नाक) एक प्रहसन जिसका उल्लेख सिंगभूपाल लिखित रसार्णव सुधाकर में किया गया है तथा वहा इसके उद्धरण भी दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त इस विषय में कुछ और ज्ञात नहीं है।

आनन्दचन्द्रोदय- (नाक) रत्नीताललिखित नाटक। अल्वर स्टेट का संस्कृत पाण्डुलिपियों की ग्रन्थ सूची (स १९३ पर) उल्लिखित। इसका मुद्रण १९४१ में बड़ौदा में हुआ था।

आनन्दतिलक- (नाक) यह कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य (दे) लिखित भाण है। यह इण्डिया आफिस लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में स २४ पर अंकित है और दो खण्डों में प्रकाशित गुप्त्यव ओपर्ट द्वारा सम्पादित तथा मद्रास स प्रकाशित 'भ्रातृवेद लायब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया' संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची में स १८२४ पर भी इसका उल्लेख किया गया है।

आनन्दधर- (नाक) इनकी लिखी माधवानल (दे) नामक एक नाट्य कृति प्रान्त होता है जिसका उल्लेख कैटलागस कैटलागोरम में स ११८ पर किया गया है।

आनन्दरघुनन्दन- (नाक) यह विश्वनाथ सिंह (दे) द्वारा लिखा गया रामकथा परक नाटक है। इसकी रचना पहले हिन्दी में हुई जिसके विषय में कहा जाता है कि यह हिन्दी का प्रथम नाटक है। हिन्दी नाटक १८३० में पूरा हुआ। यह उसी का संस्कृत में अनूदित नाटक है। इसमें ७ अंक हैं। राम जन्म से नाटक का प्रारम्भ होता है। विवाह वनगमन साताहरण, शत्रुसंवाद सुप्रतियोगी, रघुमान का लकागमन, सेतुबन्धन, विभीषण मैत्री युद्ध अग्नि पराक्षा रामराज्याभिषेक ये सभी घटनायें नाटक का विषय हैं। संवाद और अभिनय की दृष्टि से नाटक महत्वपूर्ण है। पञ्चव्यावहार का भा नाटक में समावेश किया गया है इसके अनुवादक का पता नहीं। सम्भव है लेखक ने हिन्दी नाटक के पूरा हो जाने पर स्वयं उसे संस्कृत में रुपान्तरित कर दिया हो। हिन्दी से समानाधिक संस्कृत शब्दों की अनुवादक ने स्वयं रचना कर ला।

आनन्दराघव- (नाक) यह राजचूडामणि दाक्षिण (दे) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें विवाह से लेकर सिंहासनार्यन्त भगवान् राम के चरित्र का कथानक क

रूप में ग्रहण किया गया है। इसकी प्रस्तावना में कवि की वंश परम्परा का वर्णन किया गया है और महाराज रघुनाथ के पारिजात हरण तथा नलाम्युदय नामक नाटकों का उल्लेख किया गया है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग स. XXI ८३९२ तथा कैटेलागस कैटेलागोरम स. १६६१ में इसका उल्लेख किया गया है।

आनन्दराय- (नाक.) २०वीं शताब्दी के विमलवतीन्द्र चौधरी (दे.) लिखित नाटक। इसमें राधाकृष्ण लीला को नाट्य विषय बनाया गया है। इन लीलाओं के साथ छायावन्त भी पर्याप्त मात्रा में है। रंगमञ्च पर कस द्वारा कृष्ण पर तीर चलाया जाना मुष्टिक घाणूर के साथ बलदेव और कृष्ण का मुष्टिकयुद्ध कृष्णद्वारा कसवध इत्यादि दृश्यों का विधान किया गया है।

आनन्दराय भाकिन- (नाका.) जीवानन्दन नामक प्रतीक नाटक के लेखक। ये १८वीं शताब्दी के तजौर के राजा सभोजी और तुक्कोजी के मन्त्री थे। इनके आश्रम में वेद कवि रहते थे जिन्होंने विद्यापरिणय नाटक की रचना की और वह अपने आश्रय दाता (आनन्दराय) को भेंट कर दी। वेद कवि का ही दूसरा इसी प्रकार का नाटक जीवानन्दन भी था जो आनन्दराय के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। (दे. वेद कवि)

आनन्दलतिका- (नाक.) इसकी रचना कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य (दे.) ने १८वीं शताब्दी में की थी। इसमें अक के स्थान पर कुसुम शब्द का प्रयोग किया गया है। कृष्णपुत्र साम्ब और रेवा के प्रणय और विवाह को लेकर ५ अंकों (कुसुमों) के इस नाटक की रचना की गई। कृष्ण को नारद से सभाचार मिलता है कि उनका पुत्र साम्ब रेवा पर अनुरक्त है। रेवा राजा दमन की पुत्री थी। राजा दमन ने पुत्री के स्वयंवर में समस्यापूर्ति में विजय की शर्त लगाई थी जिसमें साम्ब जीत जाता है और उसका रेवा से विवाह हो जाता है। पुत्री को विदा करते समय राजा दमन रो पड़ता है। मन्त्री उसे सान्त्वना देते हैं।

इस नाटक की रचना सामन्तचिन्तामणि के मनोविनाद के लिये की गई थी। जब उसकी पुत्री का विवाह हो गया था और वे कन्या के वियोग से दुखी थे।

आनन्दविजय- (नाक.) यह बिहारी कवि रामदास झा का लिखा नाटक है।

आनन्दसुन्दरी- (नाक.) यह एक सट्टक है जिसकी रचना तुक्कोजी के अमात्य धनश्याम ने १८वीं शताब्दी में की थी। दुल्लज द्वारा संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो खोज रिपोर्ट सन् १९०५ में प्रस्तुत की गई थी उसमें २१४२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

आधारगसुत- (आचार्यद्रुमुक्त) श्वेताम्बर जैनो के १२ आगमों में एक। यद्यपि बौद्ध और जैन दोनों धर्मों में काल्पनिक कथावस्तु से मनोरंजन को गर्हित माना गया है

तथापि कहीं कहीं उन्हें उपादेय भी बतलाया गया है। उनमें आया रग (II १११४) भी एक है।

आयु- (नापा) विक्रमोर्वशी (दे) नाटक का एक पात्र। यह पुरूरवा और उर्वशी का पुत्र है। इन्द्र ने पुरूरवा के लिये उर्वशी के प्रदान करने के समय शर्त लगा दी थी कि उर्वशी उतने समय तक ही पुरूरवा के साथ रहेगी जब तक पुरूरवा उर्वशी से उत्पन्न पुत्र का मुख नहीं देख लेगे। उर्वशी पुरूरवा के साथ आनन्दमय जीवन बिता रही थी और पुरूरवा के प्रेम में इतनी खो गई थी कि वह उन्हें छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। इसी बीच उनके इस पुत्र का जन्म हो गया। उर्वशी ने पुरूरवा द्वारा उसके मुख देख लिये जाने से बचाने के लिये पुत्र के पालन-पोषण को कहीं दूर व्यवस्था कर दी। फलतः वियोग की सम्भावना जाती रही। आयु ने यौवन प्राप्त कर लिया। एक बार एक गृध्र पुरूरवा की एक बहुमूल्य मणि लेकर आकाश में उड़ चला। राजा ने उसका पीछा किया। संयोग वश एक युवक ने वाण से गृध्र को मार दिया। राजा को वह वाण मिला जिस पर लिखा था पुरूरवा व उर्वशी के पुत्र आयु का वाण। राजा उस युवक को देखकर अत्यन्त हर्षित हो जाते हैं क्योंकि उन्हें शर्त का पता नहीं है। किन्तु उर्वशी बहुत दुखी हुई। उसे पुरूरवा से वियोग की सम्भावना सालने लगी। किन्तु इन्द्र ने एक विशिष्ट युद्ध में पुरूरवा की सहायता के उपलक्ष्य में सर्वदा केलिये उर्वशी उन्हें प्रदान कर दी और राजा का स्त्री पुत्र के साथ आनन्दमय जीवन चलता रहा।

आर. कृष्णमाचार्य- (नाका) दे कृष्णचार्य आर।

आरण्यिका- (नापा) यह प्रियदर्शिका (दे) नाटक की नायिका का नाम है। राजा ने प्रियदर्शिका को यही नाम देकर अन्तपुर में वासवदत्ता की अनुवरी बना कर रखा था। इसे आरण्यिका भी कहा जाता है। यह अत्यन्त रूपवती है। इसकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर और उसे घेर लेते हैं। वह प्रेयसी है और अन्त में अपने प्रेम को प्राप्त करने में सफल हो जाती है।

आरण्यिका- (नापा) दे आरण्यिका।

आर. साम शास्त्री- (नाका) इनका लिखा जर्मन कवि लेसिंग के एमेलिया गैलेट्टी का संस्कृत में अनुवाद ११ दृश्यों में मैसूर संस्कृत कालेज जर्नल (VII ११६) सख्या प्रकाशित हुआ था।

आस्वेत्तिनयनारु- (नापा) ब्रीडाभिराम नाटक (दे) की नायिका जो कामवासना से भरी है और उस पर सामन्त लोग कामना से अन्ये होकर टूट रहे हैं तथा आपस में मारने मारने का सामान करने के लिये को तैयार हैं।

आर्य- (नापा) वैदिक परम्परा में मकर की सन्नान्ति के अवसर पर महाव्रत में गौरवर्ण वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र में एक सफेद खाल के लिये सवर्ण दिखलाया जाता

है। वैश्य को आर्य कहा गया है। वीथ के अनुसार शूद्र तमोवल का प्रतीक है और वैश्य तेजोवल का अथवा शूद्र शीत का प्रतीक है और वैश्य घीष्म का। इसमें गौरवर्ण तेजोवल और घीष्मशक्ति की विजय तमोवल और शीत पर दिखलाई जाता है जिसका उद्देश्य है- सूर्य द्वारा उर्वर शक्ति प्राप्त करने का उत्सव। यज्ञों के अवसर पर जो ये छोटे छोटे अभिनय दिखलाये जाते थे वे नाटक के विकास में अवश्य सहायक हुये होंगे।

आर्यक- (नापा) मृच्छकटिक में एक पात्र यह राजा पालक के प्रतिकूल सफल विद्रोह करता है, पहले यह बन्दी बना लिया गया था, किन्तु अन्त में राजा पालक को गद्दी से उतार कर राजा बन जाता है।

आर्य श्यामिलक- (नाका) दे श्यामिलक।

आर्यसूर्य- (नाका) इनका जन्म कौण्डिन्यगोत्र में हुआ था। इन्होंने विजय विक्रमनामक एक व्यायोग की रचना की जिसका उल्लेख मद्रास की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में स ॥ १७५१ पर किया गया है। आर्यसूर्य नाम के एक अन्य ग्रन्थकार का उल्लेख एक दूसरी ग्रन्थ सूची में किया गया है जिसने आर्य रामायण लिखी थी। सम्भवत वह कोई अन्य व्यक्ति था।

आलस्यकर्मोपम- (नाक) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना नायर केके (दे) ने की थी। (रचना काल १९४२-४३)

आश्चर्यचूडामणि- (नाक) इसे केवल चूडामणि भी कहा जाता है। यह शक्तिभद्र (दे) का लिखा नाटक है जो मालावार में लिखा गया सम्भवत पहला नाटक है। इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि यह एक आश्चर्यजनक बात है कि दक्षिण से भी एक नाट्यकृति प्राप्त हो- अब तो आकाराकुसुम भी छिलने लगेंगे और बालू से भी तेल निकलने लगेंगे। इसमें ज्ञात होता है कि यह नाटक कुत्तशेखर के १०वीं शताब्दी के उन नाटकों में भी प्राचीन है जो केरल के प्राचीनतम नाटक माने जाते हैं।

७ अंकों का यह नाटक रामकथा विषयक है। इसमें शूर्पणखा का राम के पास आगमन, उसको विवृतकरना सीताहरण लवा में सीता के प्रति रावण का उत्कट प्रेम, हनुमान का लवागमन इत्यादि कथानक लिया गया है। इनका नामकरण सीता की जादुई चूडामणि और राम की अद्भुत अंगुठी के आधार पर किया गया है। इसमें म्यान स्थान पर उच्चकोटि की कविता के दर्शन होते हैं।

केरल में इस नाटक का बहुत अधिक महत्व है। इसकी प्रविधि भास से मिलती है और भास के नाटकों के समान ही इसका अभिनय किया जाता है तथा इसे सम्मान दिया जाता है। कुप्पुम्माभी शास्त्री ने एक विस्तृत भूमिका के साथ इसका प्रकाशन मद्रास में कराया है।

मालावार में इस नाटक को वहा के व्यावसायिक नट प्रस्तुत करते हैं और इसका नाम भास के प्रतिमा और अभिषेक नाटक के साथ लिया जाता है। वेणीसहार के पद्यों से इसके कतिपय पद्य मिलने जुलते हैं। कुम्भू स्वामी ने इनके सम्य पर विशेष विचार किया है और विवेचन से निष्कर्ष निकाला है कि इसका रचनाकाल ८वीं या नवी शताब्दी की सुविधापूर्वक स्वीकार किया जा सकता है।

आषाढस्य प्रथमदिवसे- (नाकू) डा वेङ्कटराम राधवन का लिखा एव मद्रास आकाशवाणी से प्रसारित एक प्रेक्षणक (ओपेरा था संगीत नट्य) इसमें रामगिरि पर्वत पर कालिदास के यक्ष के जाने की काल्पनिक कथा संगीत के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। रचना २०वीं शताब्दी में हुई। मेघदूत की पूर्ववर्ती कथा का सहारा लेकर इसकी रचना की गई। मेघदूत पर आधारित १७ गीतों का यह संग्रह है।

इ

इन्द्रिया परिणय- (नाकू) यह वीराधव (दे) लिखित एक नाटक है। १९१५ ई इल्ट ने संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो खोज रिपोर्ट तैयार की थी उसमें स III १७९४ IX पर इसका उल्लेख किया गया है। यह रिपोर्ट मद्रास लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दुमती- (नाकू) भोजराज ने खण्डकथा के रूप में इस प्राकृत रचना का उल्लेख किया है। जहां किसी बड़ी कथा से कोई छोटा खण्ड निकाल कर रचना प्रस्तुत की जाती है तब उसे खण्डकाव्य कहा जाता है। प्रस्तुत रचना रघुवश के इन्दुमती स्वयंवर से निकालकर तथा रसानुकूल काट छाट कर लिखी हुई प्रतीत होती है। ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत से ज्ञात होता है कि यह केवल पद्य में थी। कुछ लोगों ने इसे नाटिका की श्रेणी में स्थान दिया है (दे कृष्णमाचार्य लिखित संस्कृत साहित्य का इतिहास) हो सकता है कि इसकी रचना पद्यात्मक अभिनय के रूप में की गई हो।

(१) **इन्दुमती परिणय-** (नाकू) यह विवाह विषय को लेकर लिखा गया नाटक है। इसके लेखक का पता नहीं है। इसका उल्लेख कैटेलागस वैटेलागोरम स १५९ पर किया गया है। गुस्तव ओपर्ट द्वारा दक्षिण भारत के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में जो खोज की गई थी और दो भागों में उसकी रिपोर्ट मद्रास में सुरक्षित की गई थी उस रिपोर्ट की स II ०८८२ में भी इसे प्राप्त किया जा सकता है।

(२) **इन्दुमती परिणय-** (नाकू) १९वीं शताब्दी के तम्रोर के राजा शिवाजी महाराज की रचना। यह यक्षगानात्मक रचना है जिसमें सूत्रधार शरम्भ से अन्त तक उपस्थित रहता है और कथानक का सञ्चालन करता है। सभी संवाद संस्कृत में हैं। सर्वप्रथम जयगान

इत्यादि इसके बाद गणेशादि अनेक देवताओं की स्तुति, इसके बाद कथानक का प्रारम्भ होता है। रघुवंश में वर्णित अज इन्दुमती विवाह का इसके कथानक के रूप में उपादान किया गया है। इसकी भाषा प्रायः अशुद्ध है। तजौर की चैत्रोत्सव बृहदोश्वर यात्रा में इसका प्रथम अभिनय हुआ था।

इन्दुमतीराघव- (नाकू) इन्दुमती और रघुवंशी अज के विवाह विषय को लेकर लिखा गया १७वीं शताब्दी का नाटक। इसके लेखक हैं कक्कसेरी महातिरि (दे) इस नाटक के केवल दो अंक प्राप्त होते हैं। इस नाटक की प्रति मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय में सुरक्षित है। संस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनियल कैटेलाग IV ४७७८ पर इसका पता दिया हुआ है। इसी पते पर इसी नाम के नाटक का लेखक दामोदर (कक्क सेरी पट्टेरी) को भी माना गया है। किन्तु उनका समय १५वीं शताब्दी बतलाया जाता है।

इन्दुलेखा- (नाकू) भोजराज ने वीथ्यङ्ग त्रिगत के प्रकरण में इस रचना का उल्लेख किया है और इससे एक उद्धरण दिया है जिसमें राजा और उसके मित्र (स्पष्टतः विदूषक) की बातचीत दिखलाई गई है। शाहदत्तनय ने भी वीथी इन्दुलेखा का उल्लेख किया है और भोजराज द्वारा दिया हुआ उद्धरण ही दोहरा दिया है जिसमें उन्होंने भोजराज द्वारा दिये गये पाठ का सशोधन भी किया है। बहुरूपमिश्र ने भी यही उद्धरण दोहरा दिया है किन्तु इसे एक अन्य मालतिका से लिया हुआ बतलाया है। इस उद्धरण के अतिरिक्त इस नाटक या मालतिका नाटक के विषय में न तो इसके लेखक का पता है न इसका कथानक ज्ञात है। केवल तीन पात्रों का पता चलता है राजा विदूषक और नायिका इन्दुलेखा (अथवा मालतिका जो भी उल्लेखानुगत हो।)

(१) इन्द्र- (नापा) भात के नाटयशास्त्र के पहले और अन्तिम अध्यायों में नाटयोल्लसि और प्रसार के जो पौराणिक उपाख्यान दिये गये हैं उनमें इन्द्र और उनके दावार का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं ने ब्रह्माजी से नेत्रों और कानों को आनन्द देने वाले किसी दृश्य-श्रव्य के निर्माण की प्रार्थना की। ब्रह्मा जी ने वह प्रार्थना स्वीकार कर पञ्चम वेद नाटय वेद की रचना की। इन्द्र की अमूर्तों पर जीत के उपलक्ष्य में सर्वप्रथम जो नाटक प्रस्तुत किया गया उसमें दैत्यों पर इन्द्र की विजय का प्रदर्शन किया गया था। दैत्यों ने बार बार विघ्न डालने का प्रयत्न किया और बार बार इन्द्र ने उनके विरोध का दमन किया। अन्त में ब्रह्माजी ने स्थायी समाधान के लिये दैत्यों को समझाया बुझाया कि नाटक देवताओं का ही नहीं दैत्यों का भी क्रीडनीयक है। इसमें देवताओं और दैत्यों दोनों के गुण अवगुण दिखलाये जाते हैं।

नाटक पहले देवताओं के सामने इन्द्र व ही दावार में दिखलाये जाते थे और उनका प्रथम भात के शिष्य किया करते थे। इनमें ऋषियों मुनियों की भी मन्त्राव उठाई जाती थी। अतएव उन लोगों ने शाप दे दिया कि अभिनय करने वालों को अच्छी निगाह से नहीं देखा जायेगा और वे (सदाचार की दृष्टि से) लोक निन्दित जीवन बितान पर बाध्य

होंगे। इन्द्र की विन्ता बढ़ गई। वे ऋषियों के पास गये और उनके सामने अपनी चिन्ता रखी कि इस प्रकार तो नाट्यकला नष्ट हो जायेगी। ऋषियों ने शाप में सरोधन कर दिया कि अभिनेता भले ही अच्छी दृष्टि से न देखे जायें कला का असम्मान नहीं होगा और नाट्यकला आदर की दृष्टि से देखी जायेगी।

इन्द्र की मित्रता नहुष से थी। अतः इन्द्र ने नहुष के आग्रह पर मृत्युलोक में नहुष की सभा में अभिनय करने का अप्सराओं को आदेश दिया। किन्तु देवताओं ने मृत्युलोक के लोगों से अप्सराओं का स्वच्छन्द मिलना जुलना पसन्द नहीं किया। तब इन्द्र ने भरत को मृत्युलोक में जाकर वहा नाट्यकला प्रवर्तित करने और वहा के लोगों को अभिनय कला सिखाने का आदेश दिया। भरत ने अपने बच्चों और शिष्यों को मृत्युलोक में कला प्रवर्तित करने के लिये भेजा। उन लोगों ने तत्काल जाकर कला का प्रवर्तन किया। शाप के प्रभाव को अधिकाधिक कम करने के लिये ब्रह्माजी ने इस कला को आशीर्वाद दिया कि यह कभी नष्ट नहीं होगी।

(२) इन्द्र—(नापा) ऋग्वेद के कई सवादों में इन्द्र प्रमुख पात्र है, इनमें कतिपय इस प्रकार है—

(अ) नेमघार्गव— और इन्द्र का सवाद (सू. ७-१००) नेम भार्गव प्रार्थना करता है और इन्द्र प्रसन्न होकर उसका उत्तर देते हैं।

(आ) इन्द्र और वसुक्त का सवाद—(१०-२२) इसमें वसुक्त की पत्नी की भी छोटी सी भूमिका है।

(इ) इन्द्र, अदिति और कामदेव सवाद—(४१८)

(ई) इन्द्र अदिति और वृषाकपि— का वाद विवाद (१० ८६) इसमें सभी वक्ता दूसरे के तर्क का खण्डन करने और दोष निकालने में निपुण हैं पर कोई अपने दोष नहीं देखता।

(उ) इन्द्र और मरुतो का सवाद—(११६५, १७०) इन्द्र के पुत्रों ने वृत्रासुर के साथ युद्ध में इन्द्र का साथ छोड़ दिया था, इन्द्र क्रुद्ध है, पुत्र उन्हें शान्त करना चाहते हैं। अन्त में इन्द्र का क्रोध शान्त हो जाता है।

(ऊ) इन्द्रवरुणसवाद—(सू. ४४२) दोनों एक दूसरे से सापेक्षिक श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं।

(ए) इन्द्र का एकात्म्य—(सू. १० ११९) इसमें सोमपात्र से उन्मत्त होकर इन्द्र अपना गुण गान स्वयं करते हैं।

(३) इन्द्र— ऋग्वेद तथा दूसरे प्रकार के प्राग्वर्ती साहित्य में इनका निर्देश जो किया गया है जबकि ये स्वयं नाट्य पात्र नहीं हैं। ऐसे कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

(अ) सामायण्य सवाद—(सू. १० १०८) पणि नामक असुरों ने इन्द्र को गायें चुरा

लो है। इन्द्र की दूती सरमा नामक कुतिया उन्हें तलाश करते हुए वहा पहुंच जाती है और इन्द्र की ओर से पणियों से वार्तालाप करती है।

(आ) इन्द्रध्वज उत्पन्न- (सू १ १६५, १७०, १७१) इसमें मरुतों द्वारा मृत्यु के माध्यम से इन्द्र की विजय का प्रदर्शन किया गया है।

(इ) राज्याभिषेक विषयक सूक्त- किसी राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर जिन सूक्तों के मन्त्र बोले जाते थे उनमें इन्द्र के राज्याभिषेक की प्रतिध्वनि रहती थी जिसका मन्त्र होता था कि उसने समय के लिये राजा को इन्द्र की मान्यता प्राप्त हो जाती थी।

(ई) भारत के नाट्यशास्त्र के अनुसार सर्वप्रथम इन्द्र की असुरों पर विजय के उपलक्ष्य में उसी कथानक को लेकर इन्द्रध्वज महोत्सव के रूप में अभिनय किया गया।

(उ) इन्द्रध्वज उत्पन्न- में विरोध करने के लिये दैत्य उठ खड़े हुये। तब इन्द्र के जर्जर द्वारा उन्हें मार भगया गया।

(ऊ) शकुन्तला नाटक- में दूठे और ७वें अंकों में यद्यपि इन्द्र सामने नहीं आते फिर भी उनके दुष्यन्त के साथ सम्बन्ध पर विस्तृत प्रकाश डाला गया।

(४) इन्द्र- (रापा) लौकिक नाटकों में भी अनेकश इनकी पात्रता चित्रित की गई है। कुछ उदाहरण-

(अ) भ्राम के कर्णधार- में इन्द्र ब्राह्मण के वेष में वर्ण से कुण्डल और कवच मागने आते हैं और कवच कुण्डल लेकर अमोघ वज्र प्रदान करते हैं।

(आ) महावीर चरित- में इन्द्र और चित्राक्ष आकाश से राम रावण युद्ध का वर्णन करते हैं क्योंकि देवता होने के कारण उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है।

(इ) राजशेखर कृत बालरामायण में राम और रावण के शेर युद्ध का इन्द्र वर्णन करते हैं।

(ई) वनराज क कृष्णरदाह का भरत वाक्य इन्द्र के द्वारा कहा गया है।

(उ) विक्रमोर्वशी में जब पुरुरवा के प्रति प्रेम की उन्मत्तताजन्य असावधानी में उर्वशी अभिनय में गड़बड़ कर देती है और इस अपराध के लिये भरत उन्हें मृत्युलोक में रहने का शाप दे देते हैं तब इन्द्र ही उस शाप को निषन्धित कर उस समय तक मृत्युलोक में रहने की व्यवस्था बर दते हैं जब तक राजा उर्वशी के पुत्र का मुख न देखे। अन्त में जब राजा पुत्र आयु का मुख देख लेते हैं तब उर्वशी को अत्यन्त दुखी होकर पुरूरवा का माथ छोड़ना पड़ रहा है और पुरुरवा भी वियोग वेदना से पीड़ित होकर पुत्र पर राज्यभार डालकर वन को जाने के लिये तैयारी कर रहे हैं उसी समय नाट्य इन्द्र का सन्देश समझ आ जाते हैं कि इन्द्र ने दैत्यों को पराजित करने के लिये पुरुरवा को स्वर्ग में आमन्त्रित किया है और इस उपलक्ष्य में सर्वदा के लिये उर्वशी उन्हें प्रदान कर दी गई है।

(५) इन्द्र- (तृतीय) ये कर्णाटक के राष्ट्रकूट के राजा थे और इन्होंने कन्नौज के राजा महोपाल को पराजित करने की चेष्टा की थी। इनका उल्लेख क्षेमीश्वर ने चण्डकौशिक की प्रस्तावना में किया है। क्षेमीश्वर के अनुसार महोपाल ने राष्ट्रकूट के इन्द्र को पराजित कर दिया था जिसे राजकीय क्षेत्रों में स्वीकृत किया जाता है। जबकि इन्द्र का दावा है कि उसने कान्यकुब्ज नरेश को जीत लिया था। कुछ लोगों के मत में ये महोपाल राजशेखर के आश्रमदाता महीपाल से अभिन्न थे।

इन्द्रगान्तिकोण्ड सूरि- (नाका) ये दक्षिण भारतीय नारायण के पुत्र थे। इनका लिखा भाण शृङ्गारसभृङ्गार प्राप्त होता है। इनका कथन है कि इन्होंने महेशमानस-महोत्सव नामक ग्रन्थ की भी रचना की। सम्भवतः यह दूसरा ग्रन्थ महाकाव्य है।

इन्द्राणी- (नापा) ऋग्वेद के सूक्त १० ८६ में इन्द्र, इन्द्राणी और वृषाकपि का वाद विवाद होता है। वादविवाद का विषय है- एक बन्दर ने इन्द्राणी को क्रुद्ध कर दिया है। इस सवाद में प्रत्येक बक्ता दूसरे के कथन में दोष निकलता है किन्तु स्वयं अपने दोष नहीं देखता।

इन्दिरा परिणय- (नाक) यह श्री शैल के पुत्र वीर राघव का लिखा एक नाटक है। मद्रास में १९०५ की संस्कृत पाण्डुलिपि विषयक ई. हुल्ड्रज की रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है।

इरावती- (नापा) मालविकाग्निमित्र के प्रसिद्ध नायक अग्निमित्र की छोटी रानी। इसका स्वभाव ईर्ष्यालु और कर्कश है। यह छिप छिप कर राजा की प्रेम चर्चायें सुनती है और क्रोध में प्रचण्ड हो जाती है तथा राजा का विरोध करने में राजा की मर्यादा का भी अतिक्रमण कर देती है। परन्तु जब मालविका की वास्तविकता खुलती है तब वह क्षमा माग लेती है।

इत्तनूरामस्वामी शास्त्री- (नाका) ये १९वीं शताब्दी के लेखक हैं। इनका लिखा कैवल्यवती परिणय नाटक प्रकाश में आया है।

ई

ईचमवडि श्रीनिवासाचार्य- (नाका) दे श्रीनिवासाचार्य ईचमवडि

ईश्वरदत्त- (नाका) चतुर्भाणी (दे) में सङ्कलित धूर्त विटसवाद (दे) नामक भाण के लेखक। इनके व्यक्तित्व के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। क्या ये तीसरी शताब्दी के राजा शिवदत्त के पुत्र ईश्वर सेन थे या ये आभौर जातीय महाशत्रु थे जिनके सिक्के प्राप्त हुये हैं।

धूर्तविटसवाद में पाटलिपुत्र में दृश्य फलक के द्वारा सवाद के पाध्यम से कामशास्त्र

की विधियों की व्याख्या की गई है। इसमें सामाजिक विषयों का उपादान हुआ है। भोजराज ने इससे उद्धरण दिये हैं। चतुर्भागी के चारों नाटकों में इसीमें विट स्वयं रत्नमञ्च पर आता है। अन्य नाटकों में विट का मित्र उसके क्रिया कलाप की सूचना देता है। इसमें विट स्वयं नायक है।

ईश्वर शर्मा—(नाक) इनका लिखा एक भाण बतलाया जाता है जिसका नाम है शृङ्गार सुन्दर। इनके विषय में इसके अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं है कि ये बिम्बली के निवासी थे।

उ

उग्रसेन—(नापा) भास के बालचरित का एक पात्र। ये कस के पिता थे जिन्हें कस ने बन्दीगृह में डाल दिया था। कस को मारकर कृष्ण ने इन्हें बन्दीगृह से छुड़ाकर पुनः राजसिंहासन पर स्थापित किया।

उज्जीवितमदालसा—(नाक) दे मदालसा (३)

उत्तर कुरुक्षेत्र—(नाक) इसके लेखक हैं विश्वेश्वर विद्याभूषण। इसमें ५ अंक हैं जिनमें महाभारत युद्ध के बाद महाभारत के प्रमुख पात्रों की परिस्थितियों का अंकन किया गया है। कुन्ती का वानप्रस्थ कृष्ण की प्रभास यात्रा द्वारा का में यादों का विनाश महिलाओं का दस्युओं द्वारा अपहरण इत्यादि घटनाएँ ही इस नाट्यकृति का विषय बनी हैं। इसमें कथानक की एकरूपता नहीं है। विभिन्न चित्रण एक में जोड़कर उन्हें एक रूप प्रदान करने की चेष्टा की गई है। कार्यव्यवहार की कमी होने के कारण इसमें नाटकीयता का तत्व नगण्य है। यह कहने भर के लिये नाटक है। संस्कृत साहित्य पत्रिका में १९५०-५१ में इसका प्रकाशन हुआ था।

उत्तरचरित—(नाक) रामकृष्ण (भवभूति) (दे) लिखित राम के उत्तरकालीन चरित पर आधारित नाटक। इसमें सवकुश के जन्म और पालन पोषण का चित्रण किया गया है। दक्षिण भारत में संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में विवरण और उद्धरण दिये गये हैं। यह खोज हुल्टज ने १९०५ में की थी और यह रिपोर्ट मद्रास में सुरक्षित है।

उत्तरनैपथ्यचरितम्—(नाक) मोहक वाचन आबाजी लिखित नाटक इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी।

उत्तररामचरित—(नाक) भवभूति (दे) लिखित सीतानिर्वासन विषयक ७ अंकों का नाटक। भारतीयनाट्य साहित्य में कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् के बाद या उसके समकक्ष अथवा उससे भी अधिक महत्वपूर्ण नाटक के रूप में इसे मान्यता प्रदान की गई है। इसी नाटक के कारण कालिदास और भवभूति की धूर्तमेढी का प्रवाद चल पड़ा है।

इस नाटक का मुख्य उद्देश्य लोकानुरजन के लिये राम द्वारा सीता के निर्वासन का नाटकीकरण करना है।

नाटक की प्रस्तावना में ही उस समस्त परिस्थिति का उल्लेख कर दिया गया है जिससे सुविधा पूर्वक सीता का परित्याग सम्भव हो सका। प्रस्तावना से ही ज्ञात हो जाता है कि राम का राज्याभिषेक महोत्सव समाप्त हो चुका है। उत्सव में आये हुये सभी अभ्यागत एवं लकावासी विभीषण इत्यादि एवं दक्षिण भारतीय सहचर सुग्रीव इत्यादि जा चुके हैं तथा उत्सव की सारी चहल पहल समाप्त हो चुकी है। राम की बड़ी बहन शान्ता को उसके बचपन में ही राजा लोमपाद ने गोद ले लिया था और उसका विवाह शङ्गी ऋषि से कर दिया गया था। यह भी ज्ञात हो जाता है कि शङ्गी ऋषि ने १२ वर्षों का यज्ञ प्रारम्भ किया है जिसमें शामिल होने के लिये कौशल्या इत्यादि मातायें एवं वशिष्ठ एवं अरुन्धती दामाद के यहां चले गये हैं। साथ ही जनक भी चले गये हैं जो राम के राज्याभिषेक में राम का सत्कार करने आये थे। यदि ये सभी गुरुजन अयोध्या में विद्यमान होते तो सीता निर्वासन कदाचित् इतना सरल न होता सम्भव था राम को दब जाना पड़ता और लोकानुरजन की अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर पते। प्रस्तावना में ही यह भी मालूम पड़ता है कि रावण के यहां रहने के कारण सीता की बंदनामी फैली हुई है।

99894

पहला अंक- के प्रारम्भ में अष्टावक्र दामाद के यज्ञ से सन्देश लेकर आते हैं। वे बतलाते हैं कि माता इत्यादि सभी लोग कुछ समय तक यज्ञ में ही रुके रहेंगे-माता इत्यादि सभी पूज्य महिलाओं ने राम को आदेश दिया है कि सीता का जो भी दोहद हो उसे अविलम्ब पूरा किया जाय। वशिष्ठ का आदेश है कि सर्वात्मना प्रजानुरजन करते रहो। इस पर राम अपनी प्रतिज्ञा दोहरा देते हैं कि प्रजा के अनुरजन के लिये स्नेह दया सुख यद्यत्क भी सीता को भी छोड़ने में मुझे दुःख नहीं होगा। इसी समय लक्ष्मण प्रवेश कर निवेदन करते हैं कि राम के पूर्ववर्ती जीवन के विषय में चित्रवीथी तैयार हो गई है। जिसमें सीता की अग्नि परीक्षा पर्यन्त राम के जीवन वृत्त विषयक चित्र क्रमबद्ध रूप में सजा दिये गये हैं। अतः लक्ष्मण की प्रार्थना पर राम और सीता चित्रवीथी देखने चल देते हैं। चित्र इतने अच्छे बन पड़े हैं जैसे वे चित्र नहीं मूल तत्व ही हों। राम एक एक चित्र को देखते जाते हैं और उस समय की भावना में बहने जाते हैं। चित्रों में विश्वामित्र के दिये हुये जृम्भवास्ती के चित्र हैं, राम सीता से उनको प्रणाम करने के लिये कहते हैं और आशंसा करते हैं कि ये शश्व गर्भस्थ बालक के पास स्वतः उपस्थित हो जायेंगे। जब सीता के सामने पञ्चवटी के दृश्य आने हैं तब सीता उन्हीं प्रदेशों में पुनः विचारण करने का दोहद प्रकट करती है। सीता के श्रान्त हो जाने के कारण राम यहीं पर चित्र दर्शन का कार्य रोक देते हैं और लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि तत्काल रथ तैयार कर सीता के दोहद को पूरा किया जाय। लक्ष्मण रथ लेने के लिये चले जाते हैं, राम

की चाह का सहाय लेकर सीता सो जाती है। राम दाम्पत्य जीवन की सुख सुविधाओं, महत्व और आदर्श की भावनाओं में बह रहे हैं कि उसी समय दुर्मुख नामक चर आता है और सूचना देता है कि जनता में सीता की बदनामी फैली हुई है। राम अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं किन्तु तत्काल सीता परित्याग का निर्णय कर लेते हैं और इसके लिये दुर्मुख के ही हाथ लक्ष्मण के पास आदेश भेज देते हैं। उसी समय उन्हें लवणासुर से शसिन ऋषियों का संदेश मिलता है। उसके दमन का प्रबन्ध करने के लिये राम चले जाते हैं और उनके परोक्ष में ही लक्ष्मण सीता को लेकर वन की ओर प्रस्थान करते हैं। प्रथम अंक यहीं समाप्त हो जाता है। इस अंक का नाम चित्र दर्शन है जिसमें चित्रों के माध्यम से राम के शक्तन जीवन की झांकी दिखलाकर उससे उत्तर चरित के सम्बन्ध की योजना की गई है।

दूसरा अंक- इस अंक का नाम पञ्चवटीप्रवेश है। प्रारम्भ में मिश्र विष्कम्भक से ज्ञात हो जाता है कि सीता परित्याग को १२ वर्ष बीत चुके हैं। इस विष्कम्भक में आत्रेयी और वासन्ती की बातचीत है। वासन्ती वनवास काल की सीता की सहेली है जिसे वन देवता कहा गया है। वन्य जीवन तक सोमित रहने के कारण उसे यह भी सूचना नहीं मिली है कि सीता का परित्याग किया जा चुका है। वाल्मीकि आश्रम में दो बालक बही आगये हैं जो इतने विचित्र हैं कि जृम्भवास उन्हें बचपन से ही सिद्ध हैं। एक तो सारा आश्रम ठन्ही में व्यस्त रहता है दूसरे समयों से एक शिकारी द्वारा पक्षियों के जोड़े में एक को मारा जाता हुआ देखकर वाल्मीकि के मुख से एक छन्दस्वती काणी निकल गई जिसके आधार पर वे नित्य रामायण रचना करने में लगे रहते हैं। अतः आश्रम की सारी व्यवस्था ठञ्छिन्न हो गई है क्योंकि कुलपति को उस ओर ध्यान देने का विलकुल अवसर नहीं मिलता। इसीलिये आत्रेयी अगस्त्य के आश्रम में प्रवेश लेने जा रही है। उससे वासन्ती को यह भी पता चल जाता है कि राम ने अश्वमेध करना प्रारम्भ कर दिया है जिसके लिये सीता की स्वर्णमयी मूर्ति बनाई है और अश्व छोड़ा जा चुका है जिसकी रक्षा के लिये कुमार लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु को नियुक्त किया गया है। यहीं यह भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित करने के लिये शम्बूक शूद्र का वध करने के निमित्त राम दण्डक वन में आने वाले हैं। इसी पृष्ठभूमि के साथ राम दण्डक वन में प्रवेश करते हैं शम्बूक का वध करते हैं जो एक दिव्य पुरुष है और शाप से मुक्त बन गया था। राम द्वारा भारे जाने पर वह शाप मुक्त होकर पुनः दिव्य पुरुष बन जाता है। वह अगस्त्य का आमन्त्रण देता है। राम पुष्पक विमान से अगस्त्य आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। वे दण्डकारण्य की पुरानी स्मृतियों में खो जाते हैं और सीता विधोष की वेदना उन पर अधिकाधिक हावी हो जाती है।

तीसरा अंक- यह इस नाटक का वह भाग है जिसके बल पर भवभूति ने कल्याणस का मूर्दावतार होने की प्रतिष्ठा पाई है। इसके विष्कम्भक में तमसा और मुरला इन दो

देवियों की बातचीत से ज्ञात हो जाता है कि लक्ष्मण सीता को छोड़कर चले गये थे तब सीता गंगा की धारा में कूद पड़ी, वहाँ उनके दो बालक उत्पन्न हुये जिनकी रक्षा और पालन पोषण का भार दूध पीने तक मृगा और पृथ्वी इन दो देवियों ने अपने ऊपर ले लिया बाद में दोनों बालकों को वाल्मीकि आश्रम में भेज दिया तथा सीता कहीं पाताल लोक में रह रही है। आज राम दण्डक वन में आ रहे हैं यहा सीता के द्वारा पहले उपभुक्त स्थानों को देखकर उनकी वियोग वेदना अधिकाधिक बढ़ने और उनके बार बार व्यामोहित होने की सम्भावना है। अतः भगवती मागीरपी सीता को बच्चों के १२वें जन्मदिन के बहाने मृत्युलोक में ले आई हैं। राम के दण्डक वन में आने पर वे अदृश्य रूप में तमसा के साथ रहेंगी और उनकी प्रत्येक मूर्छा में स्पर्श से उन्हें होश में लाने की चेष्टा करेंगी। राम पंचवटी में आते हैं, उनकी मुलाकात वासन्ती से हो जाती है दोनों पुराने परिचित स्थानों पशु-पक्षिओं आदि को देखते हैं और करुण विभोर हो जाते हैं। तमसा और सीता अदृश्य रूप में उनके साथ लगी हैं। राम के मूर्छित हो जाने पर सीता अपने स्पर्श से उनकी मूर्छा दूर कर देती है। राम कह उठते हैं— सीता का स्पर्श प्राप्त हो गया। वासन्ती इसे राम का प्रलाप समझती है एक बार सीता का हाथ भी राम के हाथ में आ जाता है किन्तु सीता हाथ छुड़ा कर निकल जाती है। विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई है। राम को जो दशा है लगभग वैसी ही दशा सीता की भी है। एक के साथ वासन्ती है दूसरे के साथ तमसा। सभी की भावनायें पराकाष्ठा पर पहुँची हुई हैं। वास्तव में भवभूति इस अक में पत्थरों को भी हल्ला देते हैं।

चौथा अंक— यह राम सम्बन्धित दूसरे व्यक्तियों की भावनाओं के विषय में है। कौशल्या इत्यादि राम के पारिवारिक सदस्य दामाद का यज्ञ समाप्त कर अहृत्यती के साथ आश्रम में आ जाते हैं, क्योंकि वे सीता से शून्य अयोध्या में जाना नहीं चाहते। उधर जनक इत्यादि भी वाल्मीकि के दर्शन के लिये आते हैं। दोनों परिवारों का मिलन होता है। वीतराग भी जनक की सीता के प्रति भावनायें अन्यन्त उदीप्त हैं। वे क्रोध में भी हैं यहा तक कि वे राम को शाप देने के लिये भी उद्यत हैं। कौशल्या शोक से गड़ी जा रही हैं। बड़ी कठिनाई से वे गृष्टि (कञ्चुकी) के साथ जनक के सामने आती हैं। जनक उपेक्षा करते हैं, किन्तु जब कौशल्या मूर्छित हो जाती हैं तब जनक उनके प्रति सदय हो जाते हैं। सभी लोग तीव्र भावना से भरे हैं। उसी समय बालकों के मध्य खेलते लव उन्हें दिखलाई पड़ जाते हैं। वे उन्हें पास बुलाते हैं। बालक की मुखाकृति देखकर सभी को उनके राम का पुत्र होने का सन्देह हो जाता है किन्तु कोई इस बात को कहता नहीं। बालक का मानवीय व्यवहार, उसकी शालीनता, उसका रामायण का ज्ञान सभी को आश्चर्य घकित कर देता है। अन्त में अश्वमेध के घोड़े के विषय में सुनकर लव चलता जाता है और उसके कहने से उसके साथी बालक उस घोड़े को खदेड़कर आश्रम की ओर ले जाते हैं।

पात्रवा अंक- कुमारपराक्रम परक है। सेनायें छोड़ा छुड़ाने सामने आ जाती है। कुश तो रामायण का कथाभाग अभिनीत करने के लिये देने के निमित्त भरत के पास गया है। सेनाओं का मुकाबला करने का भार लव पर ही आ पड़ता है। लव वीरता से मुकाबला करता है और बाद में जूम्भकास से सारी सेनाओं को जड़ बना देता है। उसी समय चन्द्रकेतु से उसकी मुलाकात हो जाती है। दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं और दोस्त बन जाते हैं। लव बातचीत में बहुत शालीन है किन्तु दर्प में भी पीछे नहीं हटता। परशुराम के गौरव को भी सहन नहीं करता और नम्रता के साथ राम की भी आलोचना करता है। वह अपने युद्ध कौशल, वीरभाव और शालीनता से सभी को प्रभावित करता है।

छठा अंक- कुमारप्रत्यभिज्ञान विषयक है। इसमें राम पहली बार अपने पुत्रों को देखते हैं। सर्वप्रथम विद्याधर और विद्याधरी के वार्तालाप में लव और चन्द्रकेतु के दिव्यास्त्रों द्वारा युद्ध का समाचार मिलता है। चन्द्रकेतु के आग्नेयास्त्र, फिर लव के वारुणास्त्र और पुनः चन्द्रकेतु के वायव्यास्त्र का वर्णन है। इसी समय विमान से राम आ जाते हैं। दोनों कुमार प्रणत होते हैं। राम उनके जूम्भकास के प्रयोग की बात सुनते हैं। उसी समय कुश भी आ जाते हैं। वे युद्ध की बात सुनकर उत्तेजित हैं और अस्त्र प्रयोग का विचार करने लगते हैं। किन्तु लव उन्हें चन्द्रकेतु से मित्रता की बात कहकर शान्त कर देता है। राम दोनों पुत्रों को मिलकर प्रसन्न होते हैं तथा उनसे रामायण सुनते हैं। उसी समय बच्चों के झगड़े की बात सुनकर गुरुजन भी आ जाते हैं। नेपथ्य से आवाज आती है कि राम को क्षीण देखकर मातायें मूर्छित हो गई हैं, राम यह सुनकर व्यथित होते हैं।

सातवा अंक- सम्मेलन नामक है। इसमें सभी परिवारजनों और नागरिकों के सम्मेलन में एक नाटक दिखलाया जाता है जोकि गर्भाङ्क है। उसमें सीता परित्याग का अभिनय किया गया है जो अनेक भावों को जागृत करने वाला है। समस्त परिचय नाटक के द्वारा प्राप्त कर तथा अग्नि, गंगा पृथ्वी, वात्समीकि इत्यादि सभी का समर्थन प्राप्त कर जनता सीता को निर्दोष स्वीकार कर लेती है और राम सीता लव कुश सभी का सम्मिलन हो जाता है। यही नाटक भी समाप्त होता जाता है।

रसात्मक दृष्टि से यह नाटक बहुत उच्चकोटि का है। भास और कालिदास की प्रतिष्ठाया इस नाटक में दृष्टिगत होती है। किन्तु रसात्मक दृष्टि से यह नाटक उनसे आगे बढ़ गया है। दुष्यन्त के वियोग में अदृश्य रूप में एकाकिनी सानुमती उनके साथ घूमती है विदूषक निर्लिप्त श्रोता है। जबकि इस नाटक में कोई और नहीं साक्षान् नायिका सीता अदृश्य रूप में राम के साथ घूम रही है। राम की विरहदशा की साक्षिणी वामन्ती तटस्थ नहीं है। यह स्वयं सीता के प्रति व्यवहार से बहुत दुखी है। सीता भी एकाकिनी नहीं है उनके साथ भी सहचारी तमसा है। यह परिस्थिति निस्सन्देह अधिक हृदयहारी है। भास की मासवदन्ता मुक्त उदयन से बात करती है और उसकी बाह को ठीक करके चारपाई

पर रख देती है जबकि सोता अनेक बार मूर्छित राम की मूर्छा दूर करने के लिये उनका स्पर्श करती है। यहा जागृत अवस्था में एक दूसरे के प्रति भावाभिव्यक्ति की जाती है जिसमें दोनों के सहचरों का सहयोग प्राप्त है।

रसात्मकता, काव्यकला, परिस्थिति निर्माण, चित्र चित्रण इत्यादि अनेक दृष्टियों से यह नाटक उच्चकोटि का बन पड़ा है। किन्तु इसकी सीमायें भी अनेक हैं। इसमें नाटकीयता पाण्डित्य के बोझ से आक्रान्त है। समास गर्भित पदावली कथा या आख्यायिका के अनुकूल तो हो सकती है किन्तु उसका अभिनय बहुत कठिन है। भाषा की एकरूपता अखरती है। प्रमुख पात्रों और विष्कम्भक के अप्रधान पात्रों की भाषा में कोई अन्तर नहीं। भाषा में दार्शनिक और शास्त्रीय संवेदनशील दुष्कर शब्दों का स्थान स्थान पर समावेश भाषा को दुरुह बना देता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें कथानक बहुत छोटा है एवं एकरूप है जिससे विकास और सन्धियों का समुचित निर्वाह नहीं हो सका है। कथानक के विभिन्न खण्ड जुड़े हुये से मालूम पड़ते हैं। हास्य की कमी और विदूषक का अनुपादान नाटक के आस्वादन में कमी की प्रतीति कराते रहते हैं। इस प्रकार एक उत्कृष्ट कविका उत्कृष्ट नाटक अनाटकीयता के कारण उस प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं कर सका जिसका यह अधिकारी हो सकता था। फिर भी करुणा और चन्द प्रकृति चित्रण में इसका कोई शानी नहीं और इसीलिये इसे विश्वसाहित्य में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ है।

इस नाटक पर अनेक प्रतिष्ठित टीकायें लिखी गई हैं जिनमें प्रमुख टीकाकार हैं—वीरराघव (बम्बई से प्रकाशित); लक्ष्मण सूरि (कुम्भकोणम् से प्रकाशित); ए. चक्रा (कलकत्ता से प्रकाशित); जे. विद्यासागर, अभियान, प्रेमचन्द्र, तर्क वागीश, आत्माराम (मद्रास ओरियण्टल पुस्तकालय में त्रैवार्षिक रिपोर्ट में III १५९९ १६०१ तक सकलित); भोता जी शास्त्री (नागपुर से पटवर्धन द्वारा प्रकाशित); राम चन्द्र (मद्रास से प्रकाशित); बी. एस. घाटे (नागपुर से प्रकाशित); घनश्याम (मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट में १७२० पर सकलित) लक्ष्मी कुमार ताताचार्य (पाण्डुलिपि उनके पुत्र के पास) राघवाचार्य (कैटेलोगस कैटेलोगोस १६३)

वित्मान के धियेटर (१२७५-३३४) में परिचय एवं अनुवाद, तीन अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता से प्रकाशित (अनुवादक — एच. मुखोपाध्याय, सी. एच. टावो और आर. के. महाचार्य) एस. के. वेल्वात्कर द्वारा अनुवाद (हर्वर्ड यूनिवर्सिटी के प्राच्य विभाग द्वारा प्रकाशित) बी. एस. पटवर्धन (अनु. नागपुर से प्रकाशित)

अनेक अन्य भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुये। अनेक समीक्षात्मक लेख भी लिखे गये एवं प्रकाशित हुये। यह साहित्य भी पर्याप्त विस्तृत है।

उत्तरा—(नापा) (१) प्रह्लाद देव के पार्ष पण्डित में एक पात्र। इसे बृहन्ना के वेष में अर्जुन ने नृत्यगान की शिक्षी दी थी और बाद में इसका विवाह अभिमन्यु के साथ हो गया।

(२) नारायण के वनश्रय विजय में उक्त प्रसंग में ही इस पात्र का उपादान हुआ है। नाटक के अन्त में इसका विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ हो जाता है।

उत्सावती—(नाक) भूजीव टेवाचार्य (दे) लिखित रूपक

उदयन—(सानापा) गुणाढ्य की बृहत्कथा में चित्रित एक सामान्य पात्र। बृहत्कथा के मूल कथानायक नरवाहन दत्त का पिता। इसका उपादान कई नाटकों में तो किया ही गया है— कालिदास ने मेघदूत में लिखा है कि इसने प्रद्योत (माहसेन) की पुत्री (वासवदत्ता) का अपहरण किया था। यह वत्सदेश का राजा था। यह एक ऐसा पात्र है जिसको नायक बनाकर ईसवी सन् के प्रारम्भिक वर्षों में तथा सम्भवतः इसके पहले भी कई नाटक और काव्य लिखे गये। इन नाटकों और काव्यों की रचना सुबन्धु के आस पास (पहले और बाद में) की गई। सुबन्धु का रचना काल विन्दुसार के आस पास माना जाता है।

(१) **उदयन—**(नापा) भास के स्वप्नवासवदत्तम् (दे) नाटक का नायक। यह धीर ललित दक्षिण नायक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है प्रेम की सच्चाई। यह जिस वासवदत्ता को मृत समझता है उसके प्रति भी प्राणपण से समर्पित है फिर भी दूसरी पत्नी वासवदत्ता को इसका जरा भी आभास नहीं होने देता। इसके मन्त्री इससे इतना अधिक प्रभावित हैं कि दत्तचित्त होकर इसका कल्याण साधन करने में तत्पर रहते हैं। इससे इस नायक के उदार और उदात्त गुणों का परिचय प्राप्त होता है। मन्त्रियों की कर्तव्य परायणता और अध्यवसाय के गुण ही इसे सर्वतोमुखी सफलता दिलवाने में कारण बनते हैं।

(२) **उदयन—**(नापा) भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण (दे) का नायक। यह अपने सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है और कुमारिकाओं पर रूप का जादू चलाने में सिद्धहस्त है। यह संगीत कला का प्रेमी है और वीणावादन में सिद्धहस्त है। इन्हीं गुणों के आधार पर वह केवल यौवन के उपभोग में ही सफल नहीं होता अपितु राजनैतिक महत्व भी प्राप्त करता है। विलासी होते हुए वह सच्चा प्रेमी है। महासेन (प्रद्योत) ने उसे अपनी पुत्री के लिये चुना है और जाल बिछाकर इसे गिरफ्तार कर अन्तपुर में ले आया है तथा पुत्री को वीणा सिखाने के लिये इसे नियुक्त कर दिया है। स्वभावतः दोनों का प्रेम बद्धमूल हो जाता है। जब मन्त्री इसे छुड़ाने के लिये योजना बद्ध रूप में प्रयत्न करते हैं तब वह बिना वासवदत्ता के अपने राज्य में नहीं जाना चाहता और प्रेम के निर्वाह के लिये इसे कैद के जीवन में रहना भी स्वीकार्य है। इन गुणों के अतिरिक्त इसे शिकार का और विरोध रूप से हाथी के शिकार का शौक है जिसके कारण ही उसे प्रद्योत का बन्दी होना पड़ता है।

(३) **उदयन—**(नापा) हर्षकृत रत्नावली का नायक। भास के नाटकों के उदयन की तुलना में उसके चरित्र का अवमूल्यन हुआ है। यह सामान्य नायकों में धीर ललित की कोटि में आता है जो सर्वदा निश्चिन्त रह कर जीवन के विषयोपभोगों में निरत रहता है व्यवहार में बौमल होता है और कलाओं में रुचि लेना उसका स्वभाव होता है। वह

स्वयं स्वभाव से निश्चिन्त है ही परिस्थितियों ने भी उसकी निश्चिन्तता में सहयोग दिया है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा चुकी है, सचिवों ने राज्य-सञ्चालन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया है, भलो भाति आवश्यकताओं की पूर्ति कर दिये जाने से प्रजा में सुख शान्ति है, सारी समस्यायें हल कर दी गई हैं। वासवदत्ता जैसी अनुपम सुन्दरी उसके अन्तपुर में है फिर उसे चिन्ता किस बात की। निश्चिन्तता की सीमा यह है कि कोशल नरेश शक्तिशाली शत्रु है, युद्ध चल रहा है, उसे रूमण्वान चला रहा है। राजा को इस बात की भी चिन्ता नहीं कि युद्ध का समाचार ही ले ले। विजय के बाद उसे यों ही समाचार सुना दिया जाता है। प्रजा की सुख समृद्धि और राज्य की सम्पन्नता देखकर सिंहलेश्वर का मन्त्री वसुभूति पद पद पर चकित होता है। व्यवहार में उसकी मृदुता की सीमा यह है कि वह सुसगता काञ्चनमाला जैसी परिचारिकाओं से भी सम्मान जनक भाषा में बात करता है और उन्हें बैठने के लिये आसन देकर सम्मानित करता है। विदूषक को चित्र फलक छिपाने का काम सौंपा गया है वह उसे छिपा नहीं पाता और उसकी मूर्खता से रानी चित्रफलक देख लेती है जिससे विषम समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। फिर भी वह रुष्ट नहीं होता। उसकी कलापरायणता कामदेवोत्सव में आमोद-प्रमोद और नृत्यगान से स्वतः प्रकट हो जाती है। उसका परिचारक वर्ग भी इतना निपुण है कि सुसगता बात की बात में सागरिका का हूवहू चित्र बना देती है जिसे देखकर प्रत्येक व्यक्ति उसे सागरिका समझ लेता है। जादूगर की क्रियायें देखने में भी उसकी कलाभिज्ञता एव कला प्रेम प्रकट हो जाता है। वह उदार है यहा तक कि शत्रु की प्रशंसा करने में भी उसे सकोच नहीं होता, वह वीर एव साहसी भी है। सबके मना करने पर भी आग में कूद पड़ता है और सागरिका को निकला लाता है। वह सागरिका से प्रेम तो करता है किन्तु विवाह करने के लिये तब तक तैयार नहीं होता जब तक उसे यह ज्ञात नहीं हो जाता कि सिंहलेश्वर के उच्च घराने में पैदा हुई है। इससे उसका कुलाभिमान व्यस्त होता है। सीझने की उसकी प्रवृत्ति है, वह सौन्दर्य का पारखी है। सागरिका का चित्र देखकर ही उस पर अनुरक्त हो जाता है। उसका सबसे बड़ा गुण है उसका अदृष्टपूर्व सौन्दर्य। रत्नावली जैसी सुन्दरी उसे एक बार देखकर अपने जीवन को धन्य मानने लगती है।

उक्त गुणों के होते हुये भी वह दक्षिण नायक नहीं है। वह शठ नायक की श्रेणी में ही आयेगा। वह सागरिका के रूप का दीवाना है किन्तु रानी से डरता है। प्रेम के आवेश में कई बार गलती कर जाता है। रानी को सागरिका और सागरिका को रानी समझने की भूल कर बैठता है। रानी के सामने ही अपराध करता है और झूठ बोलकर उस पर पर्दा डालना चाहता है। नई प्रेमिका के प्रति भी सच्चा नहीं है। जब वासवदत्ता उसे गिरफ्तार कर लेती है तब वह उसे विल्कुल भूल जाता है। उसके चरित्र का अवमूल्यन ही हुआ है। एक राजा का इस प्रकार का चरित्र कभी उचित नहीं कहा जा सकता।

(४) उदयन- (नापा) अभिसरिवाचित्रक (दे) का नायक। यह न तो स्वप्नवासवदत्तम् के उदयन के समान दक्षिण नायक है और न रत्नावली के समान शठ नायक। फिर भी उसका चरित्र दाक्षिण्य की ओर अधिक झुका हुआ है।

उदयवर्मा- (नाका) रसिकभूषण (दे) का लेखक। इनका समय है १९वीं शताब्दी।

उदात्तकुण्डर- (नाक) भाव प्रकाशन में अल्लाप्प उपरूपक का उदाहरण। अन्य अप्राप्य।

उदात्तरायव- (नाक) मायुग्राह (अनगहर्ष) कृत नाटक। यह नाटक अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। यह राम कथा विषयक नाटक है। उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इसमें प्रसिद्ध राम कथा में कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं। स्वर्गमृग मारने राम नहीं लक्ष्मण जाते हैं। वसु मुनि की दोन वाणी सुनकर राम उन्हें बचाने बाद में जाते हैं। इसी प्रकार वालि वध का प्रसंग छोड़ दिया गया है जिससे छन पूर्वक वालि को मारने का कलक राम पर नहीं लगता। इस नाटक में कवि की विशेष प्रवृत्ति भयनाक रस की ओर झुकाव पड़ती है। वालि वध का उल्लेख न करने पर भवभूति का प्रभाव लक्षित किया गया है। इससे इस नाटक का रचना काल भवभूति से बाद का सिद्ध होत है। अभिनवगुप्त, धनिव, भोज, हेमचन्द्र, रामचन्द्र गुणचन्द्र, कुन्नक और सर्वानन्द प्रभृति वाङ्मयशास्त्रियों ने इस नाटक का उल्लेख किया है तथा कई काव्य शास्त्रकारों ने इससे उद्धरण दिये हैं।

उदाररायव- (नाक) पर (२) नारायण शास्त्री (दे) का लिखा नाटक है। इस नाटक का पता नहीं चलता केवल उल्लेख मिलता है।

उद्गानुदशानन- (नाक) मकलिंग शास्त्री (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें पार्वती के मान को लेकर कथानक प्रवृत्त हुआ है। पार्वती कूटकर शरवण चली जाती है। उधर नारद के कहने पर शरवण कैलाश पर धावा बोलता है और कैलाश को उखाड़ने लगता है। शकर अगुठे से कैलाश को दवा देते हैं। जिम से कैलाश की स्थिति डावाडोल हो जाती है। पार्वती पयर्भात होकर शङ्कर जी से चिपट जाती है और मान भग हो जाता है। शरवण शकर को स्तुति करता है और शकर प्रसन्न होकर उसे चन्द्रहास कृपाण एवं पुष्पक विमान प्रदान करते हैं।

इस नाटक में विचित्र पात्रों का उपदान हुआ है- शरवण के १० मुख, कार्तिकेय के ६, शृङ्गिरिअश्वमुख, गणेशगजमुख। इसमें प्राकृतिक चित्रण पर्याप्त मात्रा में किया गया है।

उद्दण्डनाथ- (नाका) दे उदण्डी।

उदण्डी- (नाका) १७वीं शताब्दी के नाटककार एवं कवि। इन उदण्ड और उदण्डनाथ नामों से भी याद किया जाता है। कुछ लोगों ने इन्हें दण्डा मयङ्गने की पुत्र

की है। इनके पिता का नाम रगनाथ और माता का नाम रगाम्बा था। ये काशी के पास लाटपुर नामक गाव में रहते थे। नल्ल कवि के सुभद्रा परिणय के अनुसार इनके पिता तजौर जिला के कन्दर माणिक्य गाव के रहने वाले एक अच्छे कवि थे। ज्ञात होता है कन्दरमाणिक्यम् इनका जन्म स्थान था और बाद में ये लाटपुर चले गये। इन्होंने दक्षिण भारत के अनेक शिक्षा क्षेत्रों में अपना समय बिताया था और बाद में मालावार चले गये थे जहाँ अनेक पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराकर कीर्ति अर्जित की। कहा जाता है एक पण्डित की पत्नी ने देवापधन कर अपने पुत्र के द्वारा अपने पति की पराजय का इससे बदला लिया। कौथ ने इन्हें कालोक्त का दरवारी कवि माना है। इनकी कई रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें मल्लिकामारुत (दे) नामक एक नाटक भी है।

उद्दालकचरित—(नाकू) राजराजवर्मा (दे) ने सेक्सपियर के औपैलो का इस नाम से संस्कृत गद्य में अनुवाद किया है।

उद्धत वृकोदर—(नाकू) यह एक प्रेङ्गणक है जिसकी रचना मैसूर के भागवतकृष्ण ने की थी। मैसूर पुस्तकालय में संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाषा (स २७८) में इसका उल्लेख है।

उन्मत्तक—(नापा) (१) भनविलास (दे) प्रहसन का एक पात्र।

(२) प्रतिज्ञा योगन्धरायण (दे) में योगन्धरायण ने उदयन को छुड़ाने के लिये उन्मत्तक का वेश बनाया था।

उन्मत्तकवि कलश—(नाकू) यह वेङ्कटेश्वर (दे) लिखित प्रहसन है। इसका कलश नामक नायक ऋण लेकर जीविका चलाता है और कर्ज वसूल करने वालों से भागता फिरता है। इस भाग दौड़ में उसके कुछ शिष्य उसके साथ हैं जिनसे उसका धार्मिक विषयों को लेकर झगडा भी हो जाता है। इसी दौड़धूप में वह देवालय के अन्दर विधवा में रत भगवद्भक्त से, व्यभिचारी ब्राह्मण से, विदेशी के साथ भागी हुई पत्नी के लिये रोने वाले ब्राह्मण से मिलता है। अन्त में कर्ज वसूलने वाले पठान उसको दुर्गति करते हैं। इसमें नायक की एक दिन की दिनचर्या दिखलाई गई है। कथानक का विषय हास्य और नग्न सङ्गार है। इस रचना का दूसरा नाम लम्बोदर प्रहसन भी है। इसका प्रकाशन मद्रास से हुआ है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

(१) उन्मत्तराघव—(नाकू) भास्कर (दे) लिखित रूपक जो अक या उत्सृष्टिकाक है जिसे प्रेङ्गखणक भी कहा जाता है। इसकी रचना कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक के अनुकरण पर की गई है। दुर्वासा द्वारा शापित एक पुष्पोद्यन में सीता प्रवेश कर जाती है और शाप के अनुसार हरिणी बन जाती है। राम विषोग में उन्मत्त होकर अनेक स्वगत कथन करते हैं। वे कथन ही नाटक का मुख्य विषय है। रहस्य के ज्ञाता आगत्य की कृपा से सीता पुनः अपने रूप में आ जाती है।

इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। इसी नाम वाली एक रचना का हेमचन्द्र ने उद्धरण दिया है। किन्तु यह रचना उससे भिन्न है। क्योंकि हेमचन्द्र ने चित्रमाय और राम के सवाद का उदाहरण दिया है जो इस रचना में नहीं है। अतः निश्चित है कि वह कोई और रचना रही होगी।

(२) उन्मत्तराघव- (नाकू) महादेव शास्त्री लिखित नाटक विक्रमोर्वशीय चतुर्थ अंक के अनुकरण पर लिखा गया नाटक। कैटेलागस कैटेलागस (I ४६) पर इसका उल्लेख किया गया है।

(३) उन्मत्तराघव- (नाकू) विरुपाक्ष का लिखा इसी प्रकार का नाटक।

उन्मादवासवदत्ता- (नाकू) यह शक्तिभद्र (दे.) की रचना बतलाई जाती है। किन्तु यह अब तक प्राप्त नहीं हुई है।

उपगुप्त- (नापा) बौद्ध साहित्य दिव्यावदान में इनके नाम पर जो कवितायें दी हुई हैं वे किसी नाटक का अंश प्रतीत होते हैं। इससे अनुमान होता है कि बौद्ध साहित्य में कोई नाटक विद्यमान था जिसके ये या तो लेखक थे या पात्र। इनके सहयोगी मार (दे.) का भी इनके साथ ही उल्लेख किया गया है।

उपतिष्ठ- (नाअभि) बुद्ध शिष्य, सौगन्धिकाहरण (दे.) के एक अभिनेता।

उपनिषद्- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) में विवेक की पत्नी और प्रबोध की मा। इसका पुत्र प्रबोध महामोह को पराजित कर काशी पर अधिकार जमा लेता है।

उपहारवर्मा चारितम्- (नाकू) श्री निवास शास्त्री का लिखा नाटक। १८८८ से तेलुगु लिपि में इसका प्रकाशन हुआ था। प्रहार वर्मा की पत्नी प्रियम्बदा ने पुष्पपुर जाते हुये मार्ग में बन्धों को जन्म दिया। जब उपहारवर्मा मिथिला से पुष्पपुर से लौट रहा था उसके पत्नीके विकट वर्म ने विद्रोही बनकर प्रहार वर्मा को बन्दी बना लिया और स्वयं मिथिला का शासक बन गया। जिस समय प्रहार वर्मा को बन्दी बनाया गया प्रियम्बदा नवजात शिशु को दासी को सौंप गई। किन्तु दासी वन्य पशुओं से भयभीत होकर भाग गई। जंगल में पड़े निरीह पशु को पुष्पपुर का राजा राजहंस उठा ले जाता है और पालन पोषण करता रहता है। उसका नाम उपहार वर्मा रखवा गया। जवान होकर उपहार वर्मा मिथिला पर आक्रमण कर विकट वर्मा को मार डालता है और माता पिता को बन्दीगृह से छुड़ाना है। बड़ा वह विकटवर्मा की प्रेमिका कल्पसुन्दरी से विवाह करता है और स्वयं मिथिला का शासक बन जाता है। यह पुस्तक मद्रास के तत्कालीन गवर्नर को भेंट की गई थी।

उभयरूपकम्- (नाकू) यह महात्तिग शास्त्री (दे.) का लिखा कल्पनिक कथा पर आधारित नाटक है। कुक्कुट स्वामी के दो पुत्र हैं। बड़ा पुत्र चन्द्रोदति भारतीयता का अनुयायी है जबकि छोटे पुत्र छागल ने विदेश में शिक्षा पाई है। वह माम जोवन से द्वेष

करता है। पिता को छोटे पुत्र पर अभिमान है। वह छागल का विवाह ग्राम कन्या से करना चाहता है, किन्तु छागल इसके लिये तैयार नहीं है। उसे हेम्लेट में अभिनय के लिये आमन्त्रण मिलता है। वह शंभु बनाकर बालों को एक लिफाफे में छोड़कर कर चला जाता है। वहाँ हेम्लेट के अभिनय का कागज पड़ा है जिसे देखकर लोग समझते हैं कि छागल ने आत्महत्या कर ली है। लिफाफे के वालों को विष समझा जाता है। बाद में जब सेवक पत्र लेकर आता है तब वास्तविकता का पता चलता है और कुक्कुट स्वामी पछताते रह जाते हैं। इस नाटक का प्रकाशन उद्यान पत्रिका में १९६२ में हुआ था।

उभयाभिसारिका- (नाट्य) वररुचि (दे.) लिखित भाण। इस नाटक का सकलन चतुर्भाषी (दे.) में किया गया है। इसके वररुचिकृत होने में लोगों को सन्देह है क्योंकि वररुचि जैसा मूर्धन्य चिन्तक इस प्रकार की निम्न कोटि की रचना नहीं लिख सकता था। इसका कथानक एक ऐसी सुन्दरी से संबद्ध है जो दो प्रेमियों से प्रेम करती है और दोनों का अभिसार करती है। ये दो प्रेमी हैं कुलेरदत्त और नारायण दत्त। भाण के नियमों के अनुसार यह एकाङ्की है और एकांता है।

रामच पर विट आता है और नायकनायिका के क्रिया कलाप की सूचना देता है। नायकनायिका स्वयं रामच पर नहीं आते। कथि इस रचना का समय १००० ई या उसके बाद का मानते हैं। इसके डे के अनुसार इसका रचनाकाल ६ठी शताब्दी है। डब्लू रायस इसकी रचना कन्नौज के हर्षवर्धन काल की मानते हैं। (दे. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी सन् १९२४ स ७६२ और उसी का शताब्दी परिशिष्ट स १२६ से १३६ तक)

उमापति उपाध्याय- (नाका) बिहारो कवि हैं ये मिथिला के रहने वाले थे और इनका लिखा परिजातहरण नाटक प्राप्त हुआ है।

उमातपस्विनी- (नाट्य) विश्वेश्वर विद्या भूषण लिखित नाटक।

उमापतिधर- (नाका) राजा लक्ष्मण सेन के मन्त्री तथा उनके पञ्चरत्नों में एक थे। कहा जाता है कि राजा का एक मातंगी से प्रेम था जिसकी वदनामी सभी ओर हो रही थी। कवि ने उससे विरत करने के लिये कुछ पद्य लिखे जिसमें वदनामी के विषय में कुछ सकेत दिये गये थे। राजा ने क्रुद्ध लोकर उन्हें पद से हटा दिया। किन्तु कुछ समय बाद जब राजा ने उन्हें दुःखस्था में देखा तब राजा को पश्चात्ताप हुआ और उन्हें पुन सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। इनका लिखा कृष्णचरित काव्य अब उपलब्ध नहीं होता इन्होंने परिजातहरण नामक एक छोटा सा नाटक लिखा था। इनके कतिपय पद्य सदुक्तिपूर्ण और सूक्तिमुक्तावली में मिलते हैं। प्रियर्सन के अनुसार ये मिथिला के हरिसिंह देव के समा कवि थे। उमापति ने उन्हें हरिहर देव कहा है।

उमापरिणय- (नाक) सुन्दरार्य लिखित १० अंकों का नाटक। इसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है। नृत्य गीतों की अधिकता है। बहा जाता है यह लेखक की पहली रचना है। संस्कृत साहित्य परिषद् के त्रिपुरापल्ली के वार्षिक उत्सव में इस नाटक का अभिनय अनेक बार किया गया है।

उम्पदन्तीजातक- (नाक) बौद्ध साहित्य के जिन प्रकीर्णक खण्डों में नाट्य सत्ता की छाप देखी जाती है उनमें यह भी एक है। एक राजा अहिपारक नामक सेनापति की रूपवती पत्नी पर आसक्त हो जाता है और तीव्र वियोगवेदना का अनुभव करने लगता है। जब उसे ज्ञात होता है कि वह दूसरे व्यक्ति की पत्नी है और उसे उपलब्ध नहीं हो सकती तब वह अत्यन्त पीड़ित हो जाता है और अपनी भावनाओं को सुकुमार विलापों में परिणत हो जाने देता है। अहिपारक पत्नी को बहुत चाहता है। किन्तु राजा की करुण दशा पर तरस खाकर राजा को अपनी पत्नी प्रदान करने के लिये राजी हो जाता है। किन्तु राजा इस पापकृत्य को करना आस्वीकृत कर देता है। यहाँ पर असाधारण रूप से उच्चकोटि का सवाद छिड़ जाता है जिसमें राजा और सेनाधिकृत दोनों ही अपनी उच्चारण्यता में एक दूसरे का अतिव्रमण करने का प्रयत्न करते हैं। अन्त में गुणों की विजय होती है और राजा संन्यास ले लेता है।

संगीत रूप में यह एक बहुत लम्बा सवाद है जो विष्टरनित्य के अनुसार असामान्य रूप से नाटकीयता के ओत प्रोत हैं। (जातक स ५२७)

उम्बेकाचार्य- (नाका) दे भवभूति।

उरुभग- (नाक) भास (दे) का एक एकाङ्की नाटक जिसे अक या उत्सृष्टिकाङ्क की मज्ञा दी जा सकती है। इसमें भीमद्वारा दुर्योधन की जघायें तोड़ने का चित्रण किया गया है। सैनिक लोग रगमञ्च पर भीम और दुर्योधन के मुख्य युद्ध का वर्णन करते हैं। कृष्ण के गुप्त संकेत से भीमसेन गदा द्वारा दुर्योधन की जघायें तोड़ देते हैं। खून बहने लगता है दुर्योधन गिर जाता है। बलराम क्रुद्ध होकर भीमसेन को मार डालना चाहते हैं किन्तु दुर्योधन उन्हें शान्त कर देता है। तब रगमञ्च पर दुर्योधन के माता पिता पत्निया और दुर्जय नामक छोटा पुत्र प्रवेश करते हैं। शोक का वातावरण छा जाता है। रानिया विलाप करने लगती हैं। सर्वाधिक कारुणिक दृश्य तब उपस्थित होता है जब छोटा पुत्र जघायें टुटो होने के कारण पिता की गोद में बैठने में असमर्थ है। दुर्योधन सबको समझाता है। अन्तिम दृश्य में अश्वत्थामा प्रवेश करते हैं और दुर्योधन के समझाने बुझाने पर भी पाण्डवों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं। दुर्योधन के भाइयों और अप्सराओं की छायायें उसक सामने तैरने लगती हैं और रगमञ्च पर ही मृत्यु हो जाती है। यद्यपि रगमञ्च पर मृत्यु हुई है फिर भी यह त्रासदी नहीं है क्योंकि उसकी मृत्यु पर सामाजिकों में त्रास की भावना उत्पन्न नहीं होती। एक दुष्ट की मृत्यु का सामाजिक अभिनन्दन ही करते हैं। भास ने परवर्ती विचारधारा व प्रतिकूल रगमञ्च पर मृत्यु का दृश्य दिखलाया है। इस

नाटक का कर्षण दृश्य बहुत ही लोमहर्षक एवं हृदयद्रावक है।

उर्मिला- (नापा) लक्ष्मण की पत्नी एवं जनक पुत्री। महावीर धरित (दे) में यह विश्वामित्र के आश्रम में लक्ष्मण को देखती है, दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं तथा वही दोनों का विवाह निश्चित हो जाता है।

उर्वशी- (नापा) स्वर्ण अम्बरा-

(१) ऋग्वेद में पुरुखा उर्वशी सूक्त (१० १५) (दे) में पुरुखा की प्रेयसी। यह उच्चकोटि के सवाद सूक्त की उच्चकोटि की प्रेयसी है।

(२) कालिदास के विक्रमोर्वशीय- (दे) की नायिका उसके उदाम और असयत प्रेम की व्यञ्जना बड़ी मनोरम है। वह एक सच्चे सहृदय की प्रेमिका है जो अनायास ही अपने पुत्र के प्रति प्रेम को भी अपने दाम्पत्य प्रेम पर विलीन कर देती है। इतना ही नहीं वह प्रेम के लिये अपने कर्तव्य को भी तिलाञ्जलि दे देती है और जब अभिनय का अवसर आता है वह निश्चित पाठ को भूलकर अपने वास्तविक प्रेमी का नाम ले लेती है। ईर्ष्या की भी उसमें कमी नहीं जिम्मे के दण्ड स्वरूप उसे लता में रुपान्तरित हो जाना पड़ता है। उसका विलासवासनाजन्य उदाम आवेश पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ है। न उसमें आत्म सन्तुष्टि है न सहन शक्ति। उसे अन्त में अपनी प्रेम साधना का उचित पुरस्कार मिलता है और वह सदा के लिये अपने प्रेमी की हो जाती है।

(३) भरत- ने जिस लक्ष्मी स्वयंवर नाटक का प्रयोग किया था उसके कथानक के अनुसार सोपात्र की भूमिका निभाने वाली उर्वशी थी।

(४) भरत- ने स्वर्गलोक की अम्बरा उर्वशी को प्रख्यात अभिनेत्री बतलाया है।

उर्वशीसार्वभौम- (नाक) दे प्रधानि वेङ्कटभूपति।

उल्लाधराधव- (नाक) यह सोमेश्वर देव (दे) की रचना है जिसमें राम कथा को रुपयित किया गया है।

उषानिरुद्ध- (नाक) उषा और अनिरुद्ध विषयक नाट्यकृति। इसकी रचना काशिराज ने की थी। संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज की दिशा में भण्डारकर की बम्बईजोर्जपोस्ट के द्वितीय भाग में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **उषापरिणय-** (नाक) दे श्री निवास (१) इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम (स १ ३८) पर किया गया है।

(२) **उषापरिणय-** (नाक) दे श्रीनिवासाचार्य (इच्चमवाडि) मैसूर और कुर्ग के पुस्तकालय में संस्कृत पाण्डुलिपियों के सूचीपत्र में जिम उषा परिणय का उल्लेख है वह सम्भवतः यही है। लेविस राइस ने बंगलौर के अनुसन्धान में इसे प्राप्त किया था।

(३) **उषापरिणय-** (नाक) कृष्णदेवरायलिखित नाटक। कहा जाता है इसकी प्रति हैदराबाद स्टेट के एक पुस्तकालय में सुरक्षित है। इनका समय १६वीं शताब्दी है।

(४) उषापरिणय- (नाक) यह रुद्रदेव (दे) लिखित नाटक है। तजौर के कैटेलाग में स (III ३६६९) पर इसका उल्लेख किया गया है। राजेन्द्र मित्र द्वारा खोज में प्राप्त मित्रनोटिसेज में इसका उल्लेख स III १९२ पर भी किया गया है।

(५) उषापरिणय- (नाक) रामस्वामी शास्त्री लिखित नाटक।

उषा रागोदय- (नाक) रुद्रदेव लिखित एक नाटिका। यह प्रसिद्ध पौराणिक कथा उषा और अनिरुद्ध की प्रेमलीला को लेकर लिखी गई है। कैटेलागस कैटेलागोरम १७१ पर इसका उल्लेख किया गया है। विल्सन के थियेटर II ३८८ में इसका विश्लेषण मिलता है।

(१) उषाहरण- (नाक) देवनाथ उपाध्याय लिखित ६ अंकों का नाटक। इसमें उषा और अनिरुद्ध के परिणय की कथा चित्रित की गई है। इसमें गीतों की अधिकता है और चित्रण कीर्तनिया पद्धति पर किया गया है।

(२) उषाहरण- (नाक) यह वामनभट्टवाण की रचना बतलाई गई है। आरवी कृष्णमाचार्य ने पार्वती परिणय की अग्रेजी भूमिका में इस रचना का उल्लेख किया है। किन्तु इसकी पाण्डुलिपि कहाँ उपलब्ध हो सकती है इसका कुछ पता नहीं चलता।

(३) उषाहरण- (नाक) उषा और अनिरुद्ध के परिणय को लेकर लिखा गया नाटक। इसके लेखक हैं हर्षनाथ। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ स ७१ पर किया गया है।

(४) उषाहरण- (नाक) बिहारी कवि देवानन्द (दे) का लिखा नाटक। रचनाकाल अज्ञात है।

ऋ

(१) ऋग्वेद- (नाआ) भारत के अनुसार नाटयवेद के उत्पादन में ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य का उपादान किया था। (विवेचन के लिये देखिये भूमिका भाग)

(२) ऋग्वेद- (सवाद सूक्त) एवी वीष के अनुसार सवाद सूक्तों की सख्या अनिश्चित है क्योंकि जिन सूक्तों की रचना सवाद रूप में हुई है उनके अतिरिक्त अनेक अन्य सूक्तों की योजना भी पात्रों के विभाजन की कल्पना कर के जोड़ी जा सकती है। किन्तु कम से कम १५ सूक्त निर्विवाद रूप से सवाद सूक्त हैं। वे हैं- (१) यम यमी सूक्त १०१० (२) पुरुवाउर्वशी सूक्त १०९५, (३) नेमभार्गव सूक्त ७१००, (४) अगान्यतोपामुद्रा सूक्त ११७९ (५) इन्द्रवसुक्र सूक्त १०२४, (६) इन्द्र अदिति कामदेव सूक्त ४१८ (७) इन्द्र इन्द्राणी वृषाकपि सूक्त १०४६, (८) सरमा पणिसूक्त १०१०८, (९) अग्नि मरुत् सूक्त १०५१३, (१०) विश्वामित्र नदी सूक्त ११६५, (११-१२) II

इन्द्रमस्तु सूक्त ११६५, १७०, (१३) वशिष्ठ पुत्र सूक्त ७३३, (१४) इन्द्रवरुण सूक्त ४४२, (१५) इन्द्र का एकालाप जिसमें इन्द्र सोमपान से मत्त होकर स्वयं अपने गुणों का बरवान करते हैं।

ऋद्धिनाथ झा- (नाका) ये उषा हरण (दे) नाटक के लेखक मैथिल हर्षनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म मिथिला में शारदापुर नामक स्थान पर हुआ था। इनको साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त थी। राजबंसने में इनका विशेष सम्मान था। राजमाता को ये पुराण सुनाते थे और राजकुमार को शिक्षा देते थे। महाराणा महेश्वरलालाविद्यालय से प्राचार्य के पद पर कार्यरत थे। इनके लिखे २ नाटक प्राप्त होते हैं- शशिकला परिणय और एकाङ्की पूर्णकाम।

ए

एकचक्रा- (नाट्य) एक विशिष्ट स्थल जहाँ कौमुदी मित्रानन्द की एक विशिष्ट घटना घटित होती है। (दे कौमुदीमित्रानन्द)

एकभारतम्- (नाट्य) भरतमिश्रोटी (दे) लिखित नाटक।

एमीलिया गेलेटी- (नाट्य) यह जर्मन कवि लेसिंग की ११ दृश्यों की एक जर्मन रचना है जिसका संस्कृत अनुवाद श्री आर. शाम. शाली ने किया था। इसका प्रकाशन मैसूर संस्कृत कालेज की ओर से हो गया था।

एलीगिरी- (नाट्य) दे प्रतीक नाटक।

ऐन्दवानन्दम्- (नाट्य) रामचन्द्रलिखित १८वें शताब्दी का नाटक। इसमें ८ अंकों में यथापि का चित्रण किया गया है।

ओ

ओकारनाथमगलम्- (नाट्य) विश्वेश्वर विद्याभूषणलिखित नाटक।

ओमप्रकाश शास्त्री- (नाका) 'युधिष्ठिर' नामक नाटक (दे) के लेखक।

औ

औशीनरी- (नापा) विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा की पत्नी। वह एक गरियामयी उदात्त चरित्र वाली रमणी है। राजा यद्यपि उर्वशी के प्रेमपाश में रचे वस्ते हैं फिर भी राजा के प्रति भी दाक्षिण्य का निर्वाह करते हैं। राजा भी पति प्रेम प्राप्त करने के लिये प्रियानुप्रासादन

नामक व्रत करती है। साथ ही वह राना को अपनी प्रेयसी क साथ मुखभाग की अनुमति भी प्रदान करती है।

क

कस- (नापा) कृष्ण का मामा जिसने अपने पिता उग्रमेन को बन्दी बनाकर स्वयं शासन भार सम्भाल लिया था और भविष्यवाणी पर विश्वास कर बहन क ही सारे बच्चे नहीं मरवा दिये अर्थात् जब पता चला कि उसको मारने वाला बच्चा बच गया है तब क्षेत्र के सभी बच्चों का मारने का आदेश दे दिया। अन्त में कृष्ण के हाथों मारा गया। कृष्ण विषयक अनेक नाटकों में इसका पात्र रूप में उपादान किया गया है। कतिपय निम्न स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है-

(१) पतञ्जलि द्वारा उल्लिखित कसवध नाटक का पात्र। पतञ्जलि ने लिखा है कृष्णभक्तों और कस भक्तों का युद्ध होता था। कृष्णभक्त लाल रंग का और कसभक्त काले रंग का मुखौटा लगा कर युद्ध करते थे। चेहर के रंग से ही अच्छ और बुर का पता चलता था।

(२) धाम के बालवर्तित- (दे) में वह अत्याचारी शासक है साथ ही वह मृत्यु से डरा हुआ भी है। जीवन क मार में वह अपनी बहन के बच्चों को मारता है साथ ही सभी नवजान शिशुओं को मारने का आदेश देता है। जिस बालक क विषय में कहा गया है कि वह उस मारने वाला है उसके समाप्त करने क सभी हथकण्डे अस्त्रास्त्रा है। पर अन्त में कृष्ण द्वारा मारा जाता है।

(३) शयकृष्ण- (दे) (४) हरिदास (दे) (५) दामादर (दे) (६) कृष्ण कवि (दे) इन सब कवियों के लिखे कसवध काव्य में लगभग सामान्य परम्परा का अनुसरण करने हुए उसे दुष्ट तथा आततायी पात्र क रूप में दिखलाया गया है।

कसवध- (नाक) इस नाम के कई नाटक संस्कृत में पाये जाते हैं। निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हैं-

(१) यद्यपि पतञ्जलि ने महाभाष्य में कसवध और बालिवन्ध (२) का उल्लेख किया है। अतः की घटनाओं के लिय वर्तमान का प्रयोग क्यों होता है इसका उत्तर दन हुए महर्षि ने लिखा है कि कसवध इत्यादि नाटकों में कस और कृष्ण की भूमिका द्वारा धर्मक प्रत्यक्ष दिखलाई जाती है। वर्तमान में देखने क कारण उनमें वर्तमान काल का प्रयोग सगत हो जाता है। ज्ञात होता है पतञ्जलि के पहले भी कतिपय नाट्य कृतियाँ प्रचलित थी। यद्यपि उनका वर्तमान इत्यादि क विषय में कुछ भी प्राप्त नहीं है।

(२) शेषकृष्ण- (दे) लिखित नाटक उसमें ७ अंकों में कसवध का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इसका आधार श्रीमद्भागवत का १०वां स्कन्ध है। कृष्ण के प्रारम्भिक चरित्र के साथ कसवध प्रस्तुत किया गया है और उपसेन के राज्यारोहण तक कथानक उसमें आ गया है। कहा जाता है यह नाटक विश्वेश्वर मरोत्सव के बनारस में खेलने के लिये लिखा गया था।

(३) हरिदास- (दे) लिखित नाटक इसकी रचना कवि ने केवल १३ वर्ष की आयु में की थी।

(४) दापोदर- (दे) लिखित इसी नाम का एक अन्य नाटक।

(५) कृष्णकवि- (दे) लिखित इसी नाम का नाटक।

कसन्तिक- (नाकू) यह हरि यज्वन (दे) नामक कवि का लिखा कृष्णचरित्र विषयक नाटक है। मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि विभाग में कैटेलाग की सं ६३६ पर इसे संकलित किया गया है।

कक्कसेरीभट्टातिरि- (नाका) भालावार का एक नाटककार। कहा जाता है कवि उदण्डो (उदण्डनाथ) ने इनके पिता को पराजित किया था। तब इनकी माता ने देवाधान कर पिता का बदला लेने वाले इस पुत्र को जन्म दिया जिसने केवल १२ वर्ष की आयु में उदण्डनाथ को पराजित कर माता की इच्छा पूरी की। इनका मलयालम में लिखित नाटक प्रसिद्ध है। संस्कृत में लिखा एक अन्य नाटक इन्दुमतीराघव (दे) भी प्रकाश में आया है।

कञ्चनाचार्य- (नाका) धनञ्जयविजय (दे) नामक व्यायोग के लेखक। ये कप्पीमुनि वंश के नारायण के पुत्र थे और कन्नौज के राजा जयदेव के आश्रम में रहते थे। जयदेव का उल्लेख इनके नाटक की प्रस्तावना में भी किया गया है। जयदेव का समय १२वीं शताब्दी है। अतः इनका भी समय १२वीं शताब्दी ही माना जाना चाहिए।

कञ्चुकी- (नापा) (१) उत्तर रामचरित में इसका प्रयोग नई भगिनी के साथ हुआ है। वस्तुतः यह परिवार का एक सदस्य जैसा होता है। घर के बच्चों के प्रति उसका व्यवहार ऐसा ही होता है जैसे मानो वे उसके अपने बच्चे हों। रामचन्द्र को वह सर्वदा रामभद्र कहने का आदी रहा और जब राम राजा बन गये अभ्यास वंश वह उन्हें अब भी रामभद्र ही कह जाता है किन्तु तत्काल स्वयं को सुधार लेता है। किन्तु राम उसे घरेलू नाम से ही पुकारने का आदेश देते हैं। इससे राम के निर्लिप्त व्यवहार पर अच्छा प्रकाश पड़ता है जहाँ घरेलू कर्मचारियों को भी घर के सदस्य जैसा ही सम्मान दिया जाता है।

(२) अनर्घराघव- में भी इसके चरित्र से परिवार के साथ आत्मीयता का ही बोध होता है। जनक का कञ्चुकी जनक के घर में सयानी हो रही लड़की के विवाह के लिये

चिन्तित है। वह सीता की परिवारिका कलहसिका के साथ इस विषय में बात भी करता है :

(३) वेणीसहार- में कञ्चुकी का प्रयोग पताकास्थानक में होता है। जहाँ दुर्योधन भानुमती से कहता है- 'तुम्हारा स्थान तो हमारे ये उरू हैं' यहाँ उरू शब्द के साथ कञ्चुकी का यह वाक्य- 'टूट गया, टूट गया' जुड़ जाता है। उसने वास्तव में ध्वजदण्ड के लिये 'टूट गया' शब्द का प्रयोग किया था जिसने 'उरू' के साथ जुड़कर भविष्य की घटना भीम द्वारा दुर्योधन के उरू तोड़े जाने की सूचना दी।

(४) अभिज्ञानशाकुन्तलम्- में कञ्चुकी की सामान्य परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। जब उसने सेवा काल प्रारम्भ किया था तब ऐसा बूढ़ा नहीं था। उस समय उसने दण्ड केवल इसलिये धारण किया था कि दड लेकर चलना कञ्चुकी के आचार की एक अनिवार्य प्रथा थी। किन्तु अब बुढ़ापे के कारण जब वह लड़खड़ाकर गिरने लगता है तब दण्ड उसे बचाने का साधन बन जाता है। उसकी याददाश्त भी अत्यन्त शिथिल हो गई है। अब उसकी स्मृति बुझने वाले दीपक के समान हो गई है जो शयन पर के लिये उमड़ता है और तत्काल अन्धकार से व्याप्त हो जाता है।

कञ्चुकी की यही स्थिति अन्य नाटकों के विषय में समझ लेनी चाहिए।

कटुविपाक- (नाकृ०) सीताराव दयाल लिखित एकाङ्की नाटक। इसमें एक ऐसे प्रशासकीय अधिकारी की पारचात्ताप प्रवण मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है जिसकी पुत्री रेखा सत्याग्रह में शहीद हो गई है। इसकी रचना लेखिका की माँ द्वारा लिखित कहानी माँ ज्योति पर आधारित है।

कणजयानन्द- (नाका) 'रुक्माङ्गदम्' (दे०) नाटक के लेखक, इनका समय १८वीं शताब्दी है।

कण्व- (नापा०) अभिज्ञानशाकुन्तलम् का एक पात्र। ये सुरासुर गुरु कश्यप के पुत्र, नैष्ठिक ब्रह्मचारी कुलपति हैं। निरन्तर साधना में निरत रहते हैं। तपस्या के प्रभाव से वे चिरत्वाल्न हो गये हैं। उनकी शक्ति से ही विष्णुवर्मा राक्षस इत्यादि उनके आश्रम के निकट पटक नहीं पाने। दुष्यन्त एक शक्तिशाली राजा हैं, फिर भी वे कण्व से भयभीत हैं। उनके तपसिद्ध होने का परिचय हमें पग पग पर मिलता है। पुत्री के गर्भवती हो जाने की सूचना उन्हें आकाशवाणी से प्राप्त होती है। शकुन्तला और दुष्यन्त के पुनर्मिलन का समाचार देने के लिये जब अदिति कश्यप से कहती है तो कश्यप यही उत्तर देते हैं कि तपस्या के प्रभाव से कण्व सब कुछ जानते हैं। केवल इतना ही नहीं पुत्री की विदा के समय रेशमी साड़ी और अनेक प्रकार के उपकरण उनकी तापसी सिद्धि के प्रभाव से अवस्मात् प्राप्त हो जाते हैं।

कण्व की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वनवासी होते हुए भी लोकवृत्त से

पूर्ण परिचित है। उन्होंने विदा के समय शकुन्तला को जो उपदेश दिया, दामाद को जो सन्देश दिया पुत्री के पिता के जीवन का जो चित्र खींचा और पुत्री से वियुक्त होने वाले पिता की मानसिकता का जो अभिव्यञ्जन किया वह वास्तव में एक व्यवहार कुशल पिता का आदर्श चित्रण है। ये चार पद्य शकुन्तला नाटक के सर्वोत्तम पद्य कहे जाते हैं। वस्तुतः इनमें भारतीय सामाजिक जीवन का पूरा चित्र खींच दिया गया है। विदा के समय के वातावरण में उनका ध्यान केवल शकुन्तला की सहेलियों पर ही नहीं जाता परन्तु पक्षी वृक्ष इत्यादि भी उनकी आत्मापता का विषय बनते हैं। उक्त व्यावहारिकता के साथ उनके तापस रूप का भी अपलाप नहीं होता और 'पराये पुत्रीधन को आज उसके अधिकारी को सौंप कर मेरी अन्तरात्मा विशुद्ध हो गई है' इस एक वाक्य में वे सारे विषादमय वातावरण से स्वयं को अलग कर लेते हैं।

कदम्बकेलिमाला- (नाकू) यह एक अग्रज नाटक नन्दीपति (दे) का लिखा बताया जाता है।

कदी- (नापा) हर्षनामदमर्दन में एक पात्र मौलचूकर (दे) के गुरु। इनका उल्लेख रदी के साथ किया जाता है।

कनकजानकी- (नाकू) क्षेमेन्द्र (दे) लिखित नाटक। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती। इसका उल्लेख कविकण्ठाभरण में किया गया है।

कनकलेखा- (नाकू) वामनभट्टवान (दे) लिखित ४ अकों का नाटक इसमें वीरवर्मा की पुत्री कनकलेखा और व्यास वर्मा के विवाह को चित्रित किया गया है। दोनों विद्याधर थे जो एक क्षत्रिय के शाप से मृत्युलोक में उत्पन्न हुये थे।

कनकावती माधव- (नाकू) सहिष्यदर्पण में शिल्पक नामक उपरूपजके उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। (शिल्पक की विशेषताओं के लिये देखिये भूमिका भाग)। इस नाटक के विषय में और कुछ ज्ञान नहीं है।

कनकवल्ली परिणय- (नाकू) शौनसासरास्ती (१) का लिखा विवाहविषयक नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम स १९४ पर इसका स्वतन्त्र किया गया है।

कनकाक्षी परिणय- (नाकू) (१) दीनपात्र (दे) लिखित विवाह विषयक नाटक। इसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम स १८६ पर किया गया है।

कनकाङ्गी- (नाकू) (१) नारायण गाली (दे) लिखित ७ अकों का नाटक।

कनिष्क- (इतिपा) इसका सामान्य भारतीय इतिहास में और विशेषकर संस्कृत साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। सामान्य धारणा है कि शक सत्त्व इन्हीं का घलाप हुआ है जो कि सन् ७२ में प्रारम्भ होता है। वस्तुतः कनिष्क शक नहीं कुषाण थे। किन्तु बाद में समस्त विदेशी आक्रान्तियों को शक इस सामान्य नाम से याद किया जाने लगा। बहुत समय तक इनका बताया हुआ सत्त्व प्रयोग में बना रहा।

बनिष्क को विदेशी आक्रान्ता एवं विजेता के रूप में इतना अधिक याद नहीं किया जाता जितना उन्हें उनके बीर्ति स्तम्भों और कला साहित्य एवं धर्मसंरक्षकों तथा आश्रयदाताओं में माना जाता है। इनका पेशावर का चैत्य अत्यन्त प्रतिष्ठित रहा है। शङ्ख्यमुनि के अनुयायियों को आश्रय देने के कारण बौद्ध पुरोहित वर्ग में इन्हें बौद्ध धर्म का राजकुमार माना जाता था। अश्वघोष इन्हीं के दरवारी कवि थे। साहित्य और विज्ञान की अनेक शाखाओं के कालनिर्धारण में इनका आश्रय लिया जाता है।

कन्दर्पकेलि- (नाकृ) अज्ञातनाम कविकृत प्रहसन। साहित्य दर्पण में इसका उल्लेख किया गया है।

कन्दर्पदर्प अथवा कन्दर्पदर्पण- (नाकृ) यह भाण रचना है। इस नाम की तीन कृतियाँ प्राप्त होती हैं-

(१) रामराय वेल्तमकोण्ड- (दे) लिखित। इस रचना के विषय में और कुछ ज्ञान नहीं है।

(२) श्रीकण्ठ- (दे) लिखित। इस रचना का सकलन तजौर पुस्तकालय की सं VII ३५७५ पर किया गया है।

(३) श्री कृष्ण- (दे) लिखित। मैसूर संस्कृत लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग में १२वीं सङ्ख्या पर इसका सकलन किया गया है।

कन्दर्पविजय- (नाकृ) यह एक भाण है जिसकी रचना कौशिक गोत्रीय धनगुरु ने की थी। इसका प्रथम अभिनय श्रीराम में हुआ था। ऑरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग विवरणात्मक सूची में स XXXI ८३८१ पर इसका सकलन किया गया है।

कन्दर्पसम्भव- (नाकृ) यह एक प्रकरण है। शिंगभूपाल ने रसार्णवसुधाकर में और विश्वेश्वर ने चम्पारवूडामणि में अनेकरी इसका उल्लेख किया है तथा इससे उद्धरण दिये हैं। शिंगभूपाल का समय १४वीं शताब्दी का अन्त एवं १५वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। अतः इस प्रकरण की रचना इससे पहले ही हुई होगी।

(दे शिंगभूपाल द्वारा उल्लिखित नाटक)

कन्हैयालालपञ्चतीर्थ- (नाका) इनका लिखा हर्षवसान नाटक (दे) रामकथा परक है। इस नाटक का प्रकाशन सद्वादिसंस्कृतजर्नल मद्रास से हो चुका है।

कपटगज- (नाव) प्रतिज्ञायौगन्धरापण (दे) में महाराज उदयन को बन्दी बनाने के लिये कपट गज का निर्माण किया गया था और उसी के सहारे प्रद्योत ने उदयन का गिरफ्तार कर लिया था जो आगे चलकर उदयन और कामवदता के प्रेम में कारण बना।

(१) कपालकुण्डला- (नाकृ) यह ७ अंकों का हरिचरण लिखित नाटक है। इसकी रचना प्रसिद्ध उपन्यासकार वकिमचन्द्र के इसी नाम के बंगाली उपन्यास के आधार पर की गई है। नवकुमार की प्रथम पत्नी मति बाह्यनवेश धारण कर कपाल कुण्डला में

मिलती है। अतः उसके पति के मन में उसके चरित्र पर सन्देह हो जाता है। अन्त में अपमानित नायिका को आत्महत्या करने पड़ती है जिसका परिणाम यह होता है कि पश्चात्ताप से पीड़ित होकर नायक स्वयं आत्महत्या कर लेता है। यह उपन्यास का अनुवादमात्र है। किन्तु शैली की दृष्टि से इसमें नाटकीयता आ गई है। अतः कुछ विचारकों ने इसका समावेश नाटक के अन्तर्गत किया है।

(२) कपालकुण्डला—(नाक) विष्णुपद भट्टाचार्य लिखित नाटक।

कपालकुण्डला—(नापा) मालतीमाधव (दे) नाटक की एक पात्र। यह अधोरघ्ण्ट की शिष्या है और गुरु के साथ तान्त्रिक साधना में निरत है जिसके लिये वह देवी पर मालती की बलि चढ़ाने में अधोरघ्ण्ट की सहायता करना चाहती है। सयोग से उसी समय माधव पहुँच जाता है, वह अधोरघ्ण्ट को मारकर मालती को बचा लेता है। कपालकुण्डला अपना निश्चय नहीं बदलती। अवसर पाकर वह मालती का अपहरण कर लेती है और उसे मन्दिर में ले जाकर बलि चढ़ाना चाहती है किन्तु सफल नहीं हो पाती क्योंकि समय पर कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी पहुँच जाती है और मालती की रक्षा कर लेती है।

कपाली—(नापा) दे कापालिक (२)

कपित्थ—(नापा) बालरामायण (दे) में एक वानर जो अपने साथी दक्षिण से मिलकर सेतु रचना का विस्तृत विवरण तैयार करता है।

कपिलदेव द्विवेदी—(नाका) रामप्रसाद शास्त्री के पुत्र एवं शिक्षा की अनेक उपाधियों से विभूषित। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्रविभागाध्यक्ष। इन्होंने सस्कृतपरिपद की स्थापना की। इनका लिखा परिवर्तन (दे) शीर्षक नाटक प्रकाश में आया है।

कपिलेश्वर महाराज—(नाका) ये १४वीं शताब्दी में उड़ीसा के निवासी थे। इनका लिखा परशुराम विजय रूपक बतलाया जाता है।

कपोतालया—(नाक) लीलाशय दयाल (दे) लिखित प्रहसन।

कबन्ध—(नापा) अनर्घराघव (दे) में एक पात्र रामायण में कबन्ध के मारे जाने का वर्णन है। किन्तु अनर्घराघव में उसका उपादान नई कल्पना के साथ हुआ है। कबन्ध राम के मित्र गृह निषाद को युद्ध में आक्रान्त कर लेता है। लक्ष्मण गृहनिषाद की चीत्कार सुनकर वहा पहुँचकर गृह निषाद की रक्षा कर लेते हैं।

कमलक—(नापा) हम्मीरमदमर्दन (दे) में एक गुप्तचर जो वीरधवल और तेजपाल को मेवाड़ राज्य के विनाश की सूचना देता है। स्नेहों के आक्रमण से लोग आतङ्कित होकर आत्महत्या पर आमादा हैं, अनेक लोगों ने आत्महत्या कर ली है। ऐसे कुअवसर पर कमलक द्वाँडस देकर और वीर धवल के पहुँचने की सूचना देकर उनकी रक्षा करता

है। वीरधवल का नाम सुनकर म्लेच्छ भाग खड़े होते हैं और मेवाड की रक्षा हो जाती है।

कमला कण्ठीरव- (नाकू) काजीवरम के निवृत्त ब्रह्मदेश के निवासी लक्ष्मीधर के पुत्र नारायणाध्वरि का लिखा नाटक। तजौर की पैलेस सत्यवहरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग (VIII ३३१४) में इसका उल्लेख किया गया है।

कमलाकर भट्ट- १७वीं शताब्दी में गुजरात के उद्भट विद्वान्। अनेक विषयों पर इनकी उच्चकोटि की रचनाएँ पाई जाती हैं, प्रमुख रूप से ये धर्म शास्त्र के विद्वान् थे और उसी विषय में इनकी रचनाएँ अधिक सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। इनकी रचनाओं में रसिक विनोद (दे) नामक एक ग्रंथक भी है।

कमलाविलास- (नाकू) दे नन्दिघोष विजयम्।

कमलिनी कलहस- (नाकू) यह राजचूडामणि दीक्षित (दे) लिखित चार अकों का नाटक है। इसमें कमलिनी और कलहस के विवाह को रूपायित किया गया है। कमलिनी कमलाकर की पुत्री एवं नायक कलहस की भाँजी थी जिसे धाय की पुत्री के साथ अपहृत कर लिया गया था और जिसे कमलजा के नाम से कलहस के यहाँ रख दिया गया था। कलहस उसे चाहने लगता है। उसे भरत नाट्यम् की शिक्षा दी जाने लगती है। मदनोद्यान में काम सन्तप्त अवस्था में दोनों मिलते हैं किन्तु कलहस की पत्नी के विघ्न डाल देने के कारण उनका सम्मिलन नहीं हो पाता। जब पत्नी को पता चलता है कि कमलजा उसकी बहन कमलिनी है तब वह विवाह की अनुमति दे देती है और दोनों का विवाह हो जाता है।

इस नाटक में सभी ४१ पात्रों के नाम प्रकृति से लिये गये हैं। इसकी रचना प्रसादगुण पूर्ण तथा सुबोध है और इसमें सगीतात्मकता का प्रयोग किया गया है। चोल शासक महाराज रुपुनाथ के शासन काल में अन्ननासन पुर में विष्णु की यात्रा के समय इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसका प्रकाशन मद्रास से हो गया है।

कमलिनी राजहस- (नाकू) केरल के कवि एवं नाटककार पूर्ण सरस्वती (दे) की रचना। इसमें ५ अंक हैं इसमें राजहस एवं कमलिनी के विवाह का चित्रण किया गया है।

करुणा- (नापा) प्रबाध चन्द्रोदय की एक पात्र। वह शान्ति की सखी है। जब शान्ति अपनी माँ श्रद्धा के विषोग में दुःखी है वह शान्ति को समझाती है और दिगम्बर जैन, बौद्ध धर्म, दर्शन, सोम सिद्धान्त आदि में श्रद्धा की खोज करने का परामर्श देती है किन्तु सब व्यर्थ है। वे सब अपनी अपनी प्रेमिकाओं के साथ दिखलाई देती हैं।

कर्ण- (नापा) (१) भास के कर्णभार का नाटक। इस नाटक में कर्ण के वृद्धावस्था चरित्र का बहुत ही कलात्मक शैली में चित्रण किया गया है। कर्ण को इस बान का गौरव

प्राप्त है कि उसने एक देवता को भी दान दिया है और वह भी देवराज को। प्रतिदान प्राप्त करने की उसे विल्कुल आकाङ्क्षा नहीं है। इन्द्र पेंट रूप में उसे स्वयं प्रतिदान देते हैं। शल्य के मना करने पर भी वह अपने निश्चय से विरत नहीं होता। वह परिस्थितियों का शिकार है। एक ओर मित्र के प्रति कर्तव्य, दूसरी ओर भाइयों के साथ युद्ध की अवाञ्छनीय स्थिति। गुरु के शाप से शक्ति हीन अस्त्र। इन विषमताओं से पराहत भी वह अपनी धर्मभावना का व्यतिक्रम नहीं करता। वह मागता नहीं किन्तु मागने वाले को कुण्डल कवच के रूप में अपना जीवन ही दान कर देता है। शक्ति का प्रतिदान भी स्वार्थ और स्वरक्षा के लिये नहीं केवल ब्राह्मणवचन पालन के लिये ही स्वीकार करता है। कवि उसे आदर्श रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हुआ है। ११८१५

(२) वेणी संहार- मैं कर्ण एक वीर व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। दुर्योधन का वह मित्र है और उसकी वीरता पर विश्वास करके ही दुर्योधन अश्वत्थामा की अभ्यर्चना अस्वीकार कर देता है तथा उसे (कर्ण को) सेनापति बनाता है। इस अवसर पर अश्वत्थामा और कर्ण का घासधिरुद्ध सवाद कर्ण के चरित्र को उजागर करता है।

महाभारत का यह पात्र परम प्रतापी, परम त्यागी परम उदार महावीर योद्धा है जो अर्जुन के लिये कृष्ण के मन में भी भय का कारण बना हुआ है। किन्तु वेणीसंहार में उसके प्रति न्याय नहीं किया जा सका है। यहाँ वह एक ईर्ष्यालु एवं दुरभितन्त्रि परायण व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वह दुर्योधन को समझा देता है कि द्रोणाचार्य का मशा कुक्कुल का विनाश कर अश्वत्थामा को राजा बनाने का था। इसीलिये अश्वत्थामा की मृत्यु की झूठी खबर सुनकर अस्त्र को त्यागकर मृत्यु को वारण कर लिया। दुर्योधन उसकी कुमन्त्रणा पर विश्वास कर अपने सर्वाधिक शक्ति शाली योद्धा अश्वत्थामा की शक्ति के उपयोग से घञ्चित हो गया। अश्वत्थामा सबके सामने उसके (कर्ण के) सिर पर पाद प्रहार कर देता है किन्तु वह कुछ नहीं कर पाता। वह सेनापति है- उस पर अपने वीरों की रक्षा का भार है किन्तु उसके देखते देखते उसके पुत्र का वध कर दिया जाता है और भीमसेन उसकी उपस्थिति में ही दुरशासन को मार कर उसकी छाती का खून पी लेता है, कर्ण कुछ भी नहीं कर पाता। अश्वत्थामा के पिता की मृत्यु हो चुकी है, मानवता का तकाबा है कि उस समय उसके प्रति सहानुभूति दिखलाई जाय। दुर्योधन इस विषय में अपना कर्तव्य पूरा भी करता है किन्तु कर्ण में इतनी मानवता भी शेष नहीं है- वह उस अवसर की गम्भीरता नहीं समझता और आरोप प्रत्यारोप में लग जाता है। निस्मन्देह नाटक में उसकी महता की उपेक्षा की गई है जो उसके प्रति अन्याय है।

कर्ण कुतूहलम्- (नाट्य) भोलानाथ शुक्ल (दे) लिखित नाटक।

कर्णपराक्रम- (नाट्य) यह एक नाटक रचना है जिसका उल्लेख विश्वनाथ ने किया है। अब यह नाटक प्राप्त नहीं होता।

कर्णपुर- (नाट्य) मृच्छकटिक में वासवदत्ता का नौकर। जब वसन्तसेना सबाहक

का कर्ज चुकाकर उसे द्यूत विजेता के चगुल से छुड़ा देती है और वह उज्जैन की सड़क पर एक हाथी की जद में आ जाता है। वह अकेला ही हाथी को ललकारता है और उसे अधिकार में ले लेता है। सवाहक की प्राण रक्षा हो जाती है और जनता आश्चर्य चकित हो जाती है। उपस्थित जन समाज के मध्य में चारुदत्त अपनी चादर (शवारक) उसके ऊपर डालकर चला जाता है। कर्णपूर अपनी गौरव गाथा अपनी स्वाभिनी वासवदत्ता को सुनाता है। वासवदत्ता शवारक पहिचान लेती है और उससे उसके मन में कर्णपूर के प्रति द्विगुणित आत्मीयता बढ़ जाती है।

कर्णभार- (नाकू) पास (दे) का लिखा हुआ नाटक। युद्ध विषयक होने के कारण इसे व्यायोग कहा जा सकता है। अर्जुन से युद्ध करने के लिये कर्ण और शल्य प्रस्थान करते हैं कर्ण शल्य को अस्त्रों की छलपूर्वक प्राप्ति की घटना सुनाते हैं और कहते हैं कि उसी छल के दण्ड के रूप में उन्हें परशुराम का शाप मिला है कि समय आने पर ये अस्त्रशस्त्र साथ नहीं देंगे। इसी समय ब्राह्मण वेष में इन्द्र आते हैं और कर्ण से पिशा में अभेद्य कुण्डल और कवच लेकर ही सन्तुष्ट होते हैं। उपहार के रूप में इन्द्र उन्हें अमोघ शक्ति प्रदान करते हैं जिसे कर्ण ब्राह्मण का प्रसाद समझ कर स्वीकार कर लेते हैं। इन्द्र शक्ति देकर चले जाते हैं और कर्ण तथा शल्य युद्ध के लिये प्रस्थान करते हैं।

प्रस्तुत कथानक महाभारत पर आधारित है, किन्तु लेखक ने इसमें यथेष्ट परिवर्तन किये हैं। इन्द्र युद्ध के पहले नहीं युद्ध के प्रस्थान के समय कुण्डल कवच मागने आते हैं और वह भी ब्राह्मण वेष में। कर्ण बदले में शक्तिया मांगते नहीं हैं किन्तु इन्द्र स्वयं उन्हें भेट रूप में दे देते हैं।

इस नाटक में नान्दी पाठ, प्रस्तावना और भरत वाक्य का प्रयोग किया गया है। नाट्यशास्त्र के भाषा विषयक नियम का भी प्रयोग किया गया है। उच्च पात्रों की भाषा अर्ध मागधी रखी गई है। इस नाटक की शैली बड़ी ही मार्मिक और कलात्मक है। कर्ण के चरित्र की उदात्तता और उसकी उदारता बहुत ही प्रभावशाली ढंग से धिखित की गई है। इस नाटक में भास की कला का निखार अधिक अच्छे ढंग से किया गया है।

इस नाटक में महाभारत की एक छोटी सी घटना की कल्पना शक्ति से सर्वथा नये रूप में ढालकर मनोरम बना दिया गया है।

कर्णसुन्दरी- (नाङ्ग) ११वीं शताब्दी की विस्तृत लिखित एक नाटिका। भीमदेव के पुत्र चालुक्यगज कर्णदेव का विद्याधरो की राजकुमारी कर्णसुन्दरी के साथ विवाह होना है। मन्त्री के प्रयत्न से राजकुमारी का अन्तपुर में प्रवेश हो जाता है। राजा उसके देखते ही आसक्त हो जाते हैं जिससे रानी के मन में ईर्ष्या जागृत होती है। वह उनके मिलन में विघ्न डालती है। एक बार वह स्वयं कर्णसुन्दरी का वेष बनाकर राजा के पास पहुँच जाती है। एक बार वह एक सड़के को कर्ण सुन्दरी के वेष में सजाकर राजा से विवाह करा देने का प्रयत्न करती है। किन्तु मन्त्री चालाकी करके वास्तविक कर्णसुन्दरी से राजा

का विवाह करा देता है।

इस आशय के कई नाटक मस्कृत साहित्य में लिखे गये और उनमें कथानक का पर्यवसान राजा की विजय में होता है। वह इसमें भी हुआ है। इस नाटक की रचना अनाहिलवाड के कर्णदेव के पियाणल्लदेवी से विवाह का उत्सव मनाने के लिये की गई थी। इसका प्रकाशन बम्बई से काव्यमाला सीरीज स ७ में हुआ था।

कर्णमुन्दरी- (नापा) विल्हण रचित कर्णमुन्दरी (दे) की नायिका जिसका चालुक्यराज कर्णदेव के साथ गुप्त प्रेम था जो अन्त मन्त्री के प्रयत्नों से विवाह में बदल गया।

कर्पूरचरित- (नाकू) यह वत्सराज लिखित एक भाण है जिसमें एकाकी पात्र कर्पूरक नामक जुआरी अपनी द्यूत ब्रोडों और रागेलियों का एकालाप द्वारा वर्णन करता है और अभिनय द्वारा प्रदर्शन करता है। गायकवाड सीरीज बडौदा से रुपकशतक के अन्तर्गत इसका प्रकाशन हो गया है।

कर्पूरमञ्जरी- (नाकू) राजशेखर (दे) लिखित ४ अंकों का रूपक जिसे पूर्ण रूप से श्रुत में लिखे होने के कारण सट्टक की सज्ञा दी गई है। इसकी रचना मालविकाग्नि-त्रि के आदर्श पर हुई है। इसमें कुन्तल की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी के साथ कुमार चन्द्रपाल की प्रेम लीला का चित्रण किया गया है। वह रानी की मौसेरी बहन है, भैरवानन्द तान्त्रिक ने उसे राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया और प्रथम दर्शन में दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया। नायिका पत्र द्वारा राजा पर अपना प्रेम प्रकट करती है और सखी विचक्षणा एवं विदूषक के प्रयत्न से राजा अनेक बार प्रेमिका को देखता है। उसका अनुराग बढ़ मूल हो जाता है। जब रानी को इस बात का पता चलता है तब वह उसे बन्दीगृह में डाल देती है किन्तु राजा उसके बन्दीगृह तक पहुँचने के लिये एक सुरंग बनवा देता है और वहाँ पहुँचकर उद्यान में प्रेमिका के साथ स्वच्छन्दविहार करता है। जब रानी को पता चलता है तब रानी उस सुरंग को बन्द करवा देती है। तब राजा चामुण्डा के मन्दिर की ओर दूसरी सुरंग बनवा लेता है जिसका प्रवेश प्रतिमा के पीछे है। अतः किसी को पता नहीं चलता।

कुछ समय बाद तान्त्रिक आता है। रानी के मन में प्रभाव जमाया जाता है कि राजा के चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के लिये लाट देश की राजकुमारी से विवाह करना अत्यावश्यक है। तान्त्रिक कहता है कि तन्त्र विद्या के प्रभाव से मैं राजकुमारी को अपने महल से यहाँ ला सकता हूँ। रानी स्वीकृति दे देती है और लाट देश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी वहाँ लाई जाती है। उसका विवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न होता है।

इस नाटक में प्रेम-विपर्यय, रानी की ईर्ष्या, गुप्त मिलन और छल पूर्व रानी की स्वीकृति प्राप्त करने का अच्छा चित्रण हुआ है। विद्वानों ने इसे भारतीय साहित्य में

ठन्वकोटि का सुखान्त रूपक माना है। इससे कवि का प्राकृत भाषा पर संस्कृत के समान ही पूरा अधिकार सिद्ध होता है। इसका कथानक भी लोकगाथा से लिया हुआ प्रतीत होता है। कहीं कहीं कवि ग्राम्यता की सीमा तक पहुँच गया है। इसमें कवि ने संस्कृत को पुरुष के समान बठोर और प्राकृत को नारी के समान कोमल बतासाया है। कलापूर्ण छन्दों में कवि ने प्रभात मध्याह्न सन्ध्या अन्तर्पुराविलास कन्दुवक्रीडा इत्यादि नायिकाओं के प्रिय मनोरंजन का वर्णन किया है। तन्त्रविद्या के प्रभाव से ही कर्पूरमञ्जरी दोनों चार उपस्थित हो जाती है। हंस्य की दृष्टि से यह एक सफल कृति है।

इस पुस्तक पर कामराज धर्मदास पोताम्बर और धर्मचन्द्र की टीकाओं का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागाम स १ ८२ II १५ III १८ और पेटर्सन की रिपोर्ट स IV २५ तथा V ४३२ पर किया गया है। वासुदेव की टीका बम्बई से और जे विद्या सागर की टीका कलकत्ता से प्रकाशित हुई है। कृष्णसूरि की टीका मद्रास के विवरणात्मक कैटेलाग (XXI ८३५५) में नृसिंहराज (दे) और अनन्तदास की टीकायें त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट की क्रमशः III ३८२ और III ३९३६ पर उल्लिखित हैं। अनन्त दास सम्भवतः मालावार के कृष्णशंकर गुरु के शिष्य थे।

कर्पूर मञ्जरी—(नापा) कर्पूर मञ्जरी (दे) नामक नाटिका की नायिका। यह अत्यन्त रूपवती है सभी नायिकाओं की श्रीरीति बना देती है आनन शोभा की चादनी से आवाज का ध्वनित कर देती है रमणियों के सौन्दर्य गर्व को घूर कर देती है। झूले में उसका विरोध मन लगता है पदावान से अशोक को प्रफुल्लित करना उसका व्यसन है। राजा को अपने गुणों से उमने पूर्ण रूप से आवद्ध कर लिया है।

कर्मफलम्—(नाक) रमानाथ मिश्र लिखित एक प्रहसन। इसमें भारतीय समाज की विषमताओं को चित्रित किया गया है। इसकी रचना १९५५ में और प्रकाशन सम्भवतः १९६१ में हो गया था।

कलकल—(नापा) उदण्डी (दे) लिखित नाटक मल्लिकामाहत (दे) का एक पात्र। यह नायक का मित्र एवं और रमयन्तिका का प्रेमी है। यह एक सहयोगी युग्म है जिसकी प्रेमलीला मुख्य नायक नायिका की प्रेमलीला के साथ ही चलती है।

कलङ्कमोचन—(नाक) पद्मान (तर्क वागीश) (दे) लिखित नाटक।

कलहस—(नापा) मालतीमाधव (दे) में यह पात्र का मित्र है। इस विट कहा गया है। किन्तु कीम के अनुसार इसमें विट की कोई विशेषता नहीं है। अतः इस विट कहना ठीक प्रतीत नहीं होता।

कलहसिका—(नापा) अनन्तदास (दे) में यह सीता की सहचरी है और कश्यप की क साथ बालाहास में सीता के विवाह का प्रस्ताव रखती है।

कलानन्दक—(नाक) यह रामचन्द्र शास्त्र (दे) लिखित नाटक है। कलावती और

नन्दक के वियोग और पुनर्मिलन के कथानक को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। कहा जाता है नन्दक का जन्म भद्राचलम् के देवता रामभद्र के प्रसाद से राजकीय परिवार में हुआ था। वहीं इस नाटक का नायक है। वह दिल्लीपति की पुत्री कलावती के गुणों को सुनकर उस पर अनुरक्त हो गया है। उधर कलावती भी उसके गुणों पर रीझी हुई है। वह गौरी पूजा के बहाने अपने प्रेमी से मिलती जुलती है। किन्तु कलावती का पिता नन्दक को पुत्री दना नहीं चाहता। नन्दक को त्रिकाल वेदी योगी की सहायता मिल जाती है जिसके तपोविष्णु को नन्दक ने दूर किया है। इसीलिये वह नन्दक का प्रत्युपकार करना चाहता है। उमी की कृपा से कलावती और नन्दक का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

पैलेस लायब्रेरी सजौर के पाण्डुलिपि अनुभाग स VIII ३३६१ पर इसे संकलित किया गया है।

कलावतीकामरूपम्- (नाकू) यह १८वीं शताब्दी के नव कृष्णदास (दे) का लिखा नाटक है इन्हें केवल कृष्णदास नाम से भी याद किया जाता है। इसमें कलावती के अपहरण और काशी के राजकुमार कामरूप द्वारा उसके छुड़ाये जाने का अंकन किया गया है। कलावती को लेकर कुछ राक्षस भाग रहे थे। उसी समय काशी के कामकेतु राजा का पुत्र कामरूप वहा आ गया और सघर्ष के साथ कलावती छुड़ा ली गई। तब विवाह की योजना बनी। यही पर पाचवें अंक में नाटक की प्रति टूट जाती है और पूरा नाटक उपलब्ध नहीं होता।

मद्रास प्राच्य लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग में विवरणात्मक कैटेलाग C III ३९८४ में इसका संकलन किया गया है।

कलिकेलि- (नाकू) अज्ञान नामा कवि रचित प्रहसन। इसका उल्लेख और उद्धरण सिंग भूपाल के रसार्णव मुद्राकार में एव शास्त्रातनय द्वारा किया गया है।

कलिकाकोलाहल- (नाकू) रामानुजाचार्य ही (दे) का लिखा नाटक। यह अप्रकाशित है और अयोध्या में कालीप्रसाद त्रिपाठी के यहा इसकी प्रति बतलाई जाती है।

कालिंग नरेश- (नापा) प्रियदर्शिका (दे) में विरोधी पात्र। यह प्रियदर्शिका को चाहता है। इसीलिये अग्राज पर आक्रमण कर उसे बन्दी बना लेता है। किन्तु अग्राज की पुत्री प्रियदर्शिका निकल जाती है और उसका मनोरथ सफल नहीं होता।

कलिप्रलायनम्- (नाकू) विद्याधर शास्त्री (दे) लिखित नाटक। इसमें चार अंक हैं। इसमें कलि और राजा परीक्षित की भागवतोक्त कथा का आधार लिया गया है।

कलिप्रादुर्भाव- (नाकू) महालिंगशास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक। द्वापर युग समाप्ति पर है। कात्यायन मिश्र ने अपना खेत एक वैश्य को बेचा है जिसमें गड़ा हुआ

स्वर्णमुद्राघाण्ड वैश्य को प्राप्त होता है। वैश्य उसे कात्यायन को लौटना चाहता है। किन्तु कात्यायन उसे इसलिये स्वीकार नहीं करते कि वे तो खेत बेच चुके हैं। मुबदमा न्यायालय में जाता है। इस बीच कलियुग का प्रादुर्भाव हो जाता है और दोनों की नियत बदल जाती है। न्यायालय कोई निर्णय नहीं कर पाता और सारी राशि राजकोश में जमा कर ली जाती है।

इस नाटक की रचना १९३८ में और प्रकाशन १९५६ में हुआ था। इसमें द्वार और कलियुग के छायात्मक पात्र दिखाए गये हैं और पात्रों के कथन अधिक सम्ये हैं।

कलियुग कालिदास- (नाट्) इनका लिखा शृङ्गारशेखर या शृङ्गारकोश (दे) प्राप्त होता है। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं। किन्तु श्रीकण्ठ (दे) ने अपने पिता का नाम कलियुग कालिदास लिखा है। हो सकता है शृङ्गारकोश के लेखक कलियुग कालिदास ही श्रीकण्ठ के पिता हों।

कलिवत्सल- (नाट्) कौतुक सर्वस्व (दे) प्रहसन का एक पात्र यह राजा है जो सत्याचार नामक ब्राह्मण को अत्यन्त पीड़ित करता है। अमत्याचरण पाप स्वच्छन्द प्रम इन सबको पूरा प्रश्रय मिला हुआ है। राजा ने सभी विवेकशील ब्राह्मणों को राज्य बाहर कर दिया है। किन्तु गणिका से प्रेम करने के कारण उसे रानी का कोप भाजन होना पड़ता है।

कलिविजयम्- (नाट्) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक।

कलि विधूननम्- (नाट्) यह नारायण शास्त्री की रचना है। इसमें १० अंक हैं। इस नाटक के कथानक का आधार नलोपाख्यान है। नल का स्वयंवर में वरण द्यूत बनवास और पुनः राज्य प्राप्ति तक का इसमें अंकन किया गया है। छाया तत्व का भी इसमें समावेश किया गया है। विष्णुधन्व मे कलि की भूमिका नल का सर्प के पेट में जाना और वहीं से कुरूप होकर निश्चलना चार लोक पालों का नल के रूप में उपस्थित होना आदि इस नाटक की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इस नाटक में अनुभाग का मनोरम प्रयोग किया गया है और चरित्र चित्रण सरासरी है।

कल्याणकृत्यम्- (नाट्) शर्मागिरि लिखित नाट्यकृति। मैमूर पुस्तकालय क पाण्डुलिपि अनुभाग की प्रत्येक सूची में उल्लिखित। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। इसका प्रथम अभिनय श्रीरंगप्रसाद के चैत्रोत्सव में किया गया था। मैमूर पुस्तकालय में स. २७५ पर इसका संस्करण किया गया है।

कल्याणकुञ्जिकम्- (नाट्) विष्णुपद भट्टाचार्य लिखित ९ अंकों का नाटक। मुनिशिक्षित एव वक्ता युवक मुकुन्द अपने डाक्टर मित्र प्रसाद के माध्यम से एक नौकरी प्राप्त कर लेता है। मानिय उमे इस शर्त पर नौकरी देता है कि वह उसकी पुत्री प्रियुषतिमा का निरशुन्य पदावेगा। इसी शिष्टान्त के प्रसंग में दोनों का प्रेम हो जाता है। उधर

विद्युत्प्रतिमा की सखी कुन्दकलिका डा प्रशान्त पर अनुरक्त है और बीमारी के बहाने उसके निकट सम्पर्क में आती है। दोनों का प्रेम बढ़ जाता है। दोनों को उनकी प्रेमिकायें मिल जाती हैं।

इस नाटक की रचना १९५६ में और प्रकाशन १९५९ में मञ्जूषा नामक पत्रिका में हुआ था। इसकी विशेषताये हैं- लम्बे रगनिर्देश बंगाली लोकोक्तियों का संस्कृतोक्ति अंग्रेजी शब्दों का अनुरणनात्मक संस्कृत शब्दों में अनुवाद सरल भाषा, गीतों की अधिकता हास्यजनक घटनायें इत्यादि।

कल्याणपुराज- (नाट्य) तिरमलाचार्य (दे) लिखित नाटक। इसका संकलन मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी की पाण्डुलिपि शाखा की पुस्तक सूची में स २७५ पर किया गया है।

कल्याणसौगन्धिक- (नाट्य) यह नीलकण्ठ लिखित नाटक ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खान रिपोर्ट की स III ४४५० पर संकलित किया गया है। नीलकण्ठ प्रसिद्ध नीलकण्ठ दीक्षित से भिन्न थे।

कल्याणीपरिणय- (नाट्य) (१) श्रीनिवास (दे) लिखित नाटक। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम स १८६ पर किया गया है।

कविकर्णपूर- (नाट्य) चैतन्यचन्द्रोदय (दे) नामक महानाटक के लेखक। इनका वास्तविक नाम परमानन्द था। चैतन्य महाप्रभु ने इन्हें कवि कर्णपूर की उपाधि दी थी। कविता के क्षेत्र में अब ये इसी नाम से जाने जाते हैं। ये बंगाल में नदिया क निकट कञ्चनज्योति के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शिवानन्द सेन था। सम्भवतः ये जीव ग्नेश्वरी के शिष्य थे। ये चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी थे। उक्त नाटक के अतिरिक्त इनके अन्य रचनाये हैं- गौराङ्गगोदेशदीपिका, एक चम्पूकाव्य और एक अलंकारशास्त्र विवरण कृति।

कविकालिदास- (नाट्य) कविन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक।

कविकुल कमल- (नाट्य) डा रमा चौधरी (दे) लिखित ८ दृश्यों का नाटक। इसने कल्पाग्राम के पार्वती कवि का चित्रण किया गया है।

कविकुल कौकिल- (नाट्य) डा रमा चौधरी लिखित १० दृश्यों का कल्पाग्राम जीवन गाथा को लेकर लिखा गया नाटक १९६७ में उज्जैन में कल्पाग्राम मन्दिर में जीवन क निष्ठ इसकी रचना हुई थी। एकोक्तिरा, एवम् सबद और साहित्य इनका विशेषण हैं।

कविचन्द्र दिवाकर- (नाट्य) ये उड़ीसा निवासी अनादिनिष्ठ (दे) के पूर्वज थे। इनके अनेक रचनाये प्रसिद्ध हैं जिनमें प्रभावती (दे) नन्दिका नामक एक नाट्यकृति भी है।

कविचन्द्र द्विज- (नाका) ये १८वीं शताब्दी के लेखक हैं इनका लिखा काम कुमार हरण (दे) नाटक प्रकाश में आया है।

कवितार्किक- (नाका) ये वाणीनाथ के पुत्र एवं राजा भाणिक्य देव के कुल पुरोहित थे। राजा भाणिक्य देव उन १२ स्वतन्त्र अधिपतियों में एक थे जो १६वीं शताब्दी में मुगल आक्रमण के समय बंगाल में शासन कर रहे थे। कविार्किक ने कौतुक रत्नाकर नामक एक अत्यन्त मनोरंजक प्रहसन लिखा जिसमें एक अत्यन्त दुर्बल राजा की हसी उड़ाई गई है।

कवितार्किकसिंह- (नाका) रत्नमणीपरिणय (२) के लेखक।

कविन्द्र (कवीन्द्र) आचार्य- (नाका) पता नहीं चलता यह उपाधि मात्र है या वास्तविक नाम। इनका जन्म गोदावरी के तट पर किसी स्थान पर हुआ था। यौवन काल में ही ये सासारिकता से विरक्त होकर सन्यास लेकर बंगरस में रहने लगे थे। कहा जाता है शाहजहा से मिलकर इन्होंने इलाहाबाद और बनारस का तीर्थकर माफ करवाया था जिससे हिन्दू सम्प्रदाय में इन्हें असीमित ख्याति प्राप्त हुई थी और इनके विषय में अनेक प्रशस्तियां लिखी गईं। श्रीकृष्ण उपध्याय ने इन गद्य पद्यात्मक प्रशस्तियों का सकलन बनारस से कवीन्द्र चन्द्रोदय नाम से प्रकाशित कराया था जिनके साथ प्रतिष्ठित विद्वानों और महात्माओं का लेखक के रूप में नामोल्लेख किया गया है।

इन्होंने अपने मित्र विश्वनाथ न्याय पचानन के कोषाध्यक्ष कृष्णभट्ट की सम्मति से संस्कृत साहित्य की प्रत्येक शाखा का एक पुस्तकालय स्थापित किया था जिसकी पुस्तक सूची का प्रकाशन बड़ौदा संस्कृत प्रतिष्ठान से हुआ था। इन्हें अपनी सन्यास वृत्ति और आभ्यात्मिकता के लिये जहागीर, शाहजहा और दाराशिकोह से पर्याप्त सम्मान मिला था। इनके समूह में कतिपय नाटक भी पाये जाते हैं जिनमें सरस्वतीकण्ठाभरण और हास्यनाटक का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ विद्वानों की राय है कि ये उनके स्वरचित नाटक थे।

कविषण्डित- (नाका) इनका लिखा हृदयविनोद (दे) प्रहसन प्राप्त होता है।

कविवल्लभ- (नाका) इनकी लिखी अभिरामचित्रलेखम् (दे) नामक एक नाट्यकृति पाई जाती है। कहा जाता है इन्होंने आदित्यभट्टिय नामक एक धर्म शास्त्रीय कृति की भी रचना की थी।

कविसार्वभौम- (नाका) दे (३) रामवर्मा।

कवीश्वर- (नाका) इनका लिखा भाषवानल (दे) नाटक प्रकाश में आया है। यह एक उपाधि ज्ञात होती है। सम्भवतः कवीन्द्र नाम से प्रसिद्ध उपाधिधारी व्यक्ति ही कवीश्वर है जिनके विषय में कहा जाता है कि ये गोदावरी तट पर स्थित एक साधारण से वस्त्र में रहते थे। इन्होंने ऋग्वेद की आश्वत्थामन शाखा का अध्ययन किया था।

और दूसरी शाखाओं में भी निपुणता प्राप्त की थी।

(देखिये कविन्द्र (कवीन्द्र) आचार्य)

कस्तूरी रगनाथ- (नाक) ये बधूल गोत्रीय वीरराघव के पुत्र और सुन्दर वीरराघव (दे) के पिता थे। इन्होंने रघुवीर विजय नामक तीन अकों का एक समवकार लिखा था जिसमें राम और सीता के विवाह का चित्रण किया गया है।

काञ्चनकञ्चुकीयम्- (नाक) विष्णुपद भट्टाचार्य (दे) लिखित नाटक रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

काञ्चनपण्डित- (नाक) धनञ्जय विजय (दे) व्यायोग के लेखक। इनको कन्नौज के जयदेव का संरक्षण प्राप्त था जिसका उल्लेख प्रस्तावना में किया गया है। जयदेव का समय १२वीं शताब्दी है। धनञ्जय विजय का प्रथम अभिनय विद्वत्सभाज के सामने किया गया था जिसकी अध्यक्षता गदाधर मिश्र ने की।

(१) **काञ्चनमाला-** (नाक) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ७ अकों का नाटक।

(२) **काञ्चनमाला-** (नाक) मुनेन्द्रमोहन लिखित लघु नाटक। यह बाल साहित्य की दृष्टि से लिखा गया लघु नाटक है। इसका आधार है धूरोपीय पौराणिक मिडास राजा की कथा। नायिका किसी परी से ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेती है कि वह जिस चीज को छू दे वह सोने की हो जाये। अब उसका खाना भी सोने का होने लगा। वह भूख से छटपटाने लगी। तब उसी परी से प्रार्थना कर उसने उस शक्ति से छुटकारा पाया। इस नाटक का प्रकाशन मजूषा में हुआ था।

कात्यायनी- (नापा) भास के बालचरित की एक पात्र यशोदा के यहाँ जो लड़की हुई थी और कृष्ण से जिसे बदल लिया गया था कस ने उसे ८वीं सन्धान समझकर मार डाला। शव का एक अश पृथ्वी पर गिरा शेष भाग स्वर्ग को चला गया। वह अवशिष्ट भाग भयानक रूप धारण कर कस के सामने प्रकट हुआ जिसके पीछे उसका भयानक परिवार प्रकट हुआ जिनमें प्रत्येक ने कस विनाश का सक्ल्य प्रकट किया।

कादम्बरीकल्याण- (नाक) (१) नरसिंह (दे) ने वाणभट्ट की प्रतिष्ठित गद्य रचना का ८ अकों में नाटकीकरण किया है। प्रकृति सौन्दर्य और कदम्बा की भावना के चित्रण में इसमें काव्यतत्व अत्यधिक मात्रा में प्रस्तुतित हुआ है। कल्पनाशीलता इसमें पर्याप्त मात्रा में है। कादम्बरी को चन्द्रापीड के सामने लाने के लिये इसमें अन्तर्नाटिका का प्रयोग किया गया है।

(दार्थेनियल कैटेलग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास स III ३४८९)

वेम भूपाल ने साहित्य चिन्तामणि में इसका एक पद्य उद्धृत किया है। इसका पहला पद्य वाणभट्टवाण की कनकलेखा के प्रथम पद्य से मिलता है।

कादम्बरीनाटकम्- (नाट्) विनोद विहारी (दे) लिखित नाटक।

कादम्बरी राम- (नाका) राजशेखर ने इनका प्रशंसा की है जिसका उल्लेख जल्हण ने किया है। इनके विषय में कुछ भी पता नहीं। किसी एक कादम्बरीरामकृष्ण का भी उल्लेख पाया जाता है जिनका लिखा अदिति कुण्डलाहरण नामक नाटक बतलाया जाता है। जिसका समय १९वीं शताब्दी का है। अतः राजशेखर ने जिन कादम्बरीराम की चर्चा की है वे निश्चय ही कोई अन्य कादम्बरी राम रहे होंगे।

कान्तिमयी- (नाट्) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अकों का नाटक।

कान्तिमयी परिणय- (नाट्) चाककनाथ लिखित नाटक। इसमें शाहजी और कान्तिमयी के विवाह का अंकन किया गया है। इसका नाम कान्तिमयी सह राजीयम् भी है। कान्तिमयी और शाहजी की प्रणयलीला चलती है फिर सस्कृत नाटकों का परिचित कथानक चलता है। शाहजी का पत्नी प्रणय लीला में विघ्न डालती है। किन्तु अनेक कठिनाइयों के बाद राजी हो जाती है और तब विवाह होता है।

यह शृङ्गारप्रधान रचना है जिसमें गीतियों का प्रयोग किया गया है। भाषा शास्त्रानुसार संस्कृत और प्राकृत है। किन्तु कहीं कहीं सी पात्रों द्वारा भी संस्कृत का प्रयोग किया गया है। चतुर्थ अंक में कवल सस्कृत का प्रयोग किया गया है। बीच बीच में हास्य का पुट इसकी अन्यतम विशेषता है। कुछ लोग इसे अप्पानाथ की रचना मानते हैं।

यह तर्जोरी की पेंसेस लायब्रेरी में पाण्डुलिपि अनुभाग के सूचीपत्र में खण्ड VIII स ३३६७ पर उल्लिखित है।

कान्तिमती शाहराजीयम्- (नाट्) दे कान्तिमती परिणय।

(१) कापालिक- (नापा) द अधोरघण्ट।

(२) कापालिक- (नापा) यह मतविलास (दे) में शैव मतानुयायी है जो पत्नी के साथ विनाश शराव में डूबा रहता है और शराव के गुण गाता है। कपाल की खोज में भी अच्छा मगहजन होता है। इसे कपाली भी कहा जाता है।

(३) कापालिक- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय में सोम सिद्धान्त। वह जैन मत और क्षणिक को सुधारण में मत बदर तथा गाता श्रद्धा की खोज में महाप्रता देने का वादा कर शान्ति को लेकर चला जाता है।

काम- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे) का एक पात्र। परमवत्स ब्रह्म से मनस् नामक जा पुत्र उत्पन्न हुआ है उसकी प्रवृत्ति नामक पत्नी से महामोह का जन्म हुआ। इस वश का निवृत्ति नामक दूसरी पत्नी से सन्नति से सघर्ष हुआ और अन्त में काम इत्यादि के विरोधी वर्ग की विजय हो गई।

कामकन्दलम्- (नाट्) यह कृष्णयन की लिखी तीन अकों की नाट्यकृति है। नायक श्रीराम नामक विलासी ब्राह्मण है और ४ नर्तकिया नायिकायें हैं। नायक कामकन्दला

पर अनुरक्त है जो कि राजा कामसेन की नर्तकी है। राजा नायक को निर्वासित कर देता है। तब नायक विक्रमादित्य की सहायता लेकर कामसेन पर आक्रमण करता है और उसे पराजित कर देता है। तब कामसेन श्रीपति को कामकन्दला प्रदान कर देता है। इस नाटक में ११ निर्देश बहुत कम हैं। इसका प्रकाशन चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थमाला बनारस से हो चुका है।

कामकला विलास- (नाकू) प्रधानि वैकटभूपतिलिखित भाग। मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि उपखण्ड में जो पुस्तकें संकलित हैं उनमें इसका भी नाम है। (पाण्डुलिपि संकलन स २२५ २८७ और ६८७ एवं परिशिष्ट)

कामकुमार हरणम्- (नाकू) १८वीं शताब्दी (पूर्वार्ध) के कवि चन्द्रद्विज की लिखी उषा अनिरुद्ध की पौराणिक कथा पर आधारित। यह 'आकिया नाट' नामक असमी परम्परा का नाटक है। इसका अभिनय असम के महाराजशिव सिंह के आदेश पर किया गया था। इसका प्रकाशन असम की साहित्य सभा जोरहाट की ओर से १९६२ में कराया गया था। इसमें संस्कृतनिष्ठ असमी भाषा का भी यत्र तत्र प्रयोग किया गया है। रंगमञ्च पर विवस पात्र का प्रवेश इसकी विशेषता है।

कामदत्ता- (नाकू) यह एक भाणिका है जिसका उदाहरण के रूप में साहित्य दर्पण और रसार्णव सुधाकर के उल्लेख किया गया है। यह ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हो सका है। कुछ लोगों ने इसे प्रकरणों में समाविष्ट किया है।

कामदेव- (नापा) ऋग्वेद ४१८ में इन्दुअदिति और कामदेव के मनोरञ्जक सवाद का एक प्रमुखपात्र।

कामन्दकी- (नापा) मातली माधव (दे.) की एक प्रमुख पात्र। वह माधव के पिता देवरात की पूर्व परिचिता है और उसी को मातली और माधव के विवाह का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। वह सात्त्विक गुणों से सम्पन्न बौद्ध भिक्षुणी है। वह विवाह के लौकिक कार्य में कर्तव्य बुद्धि से पड़ना चाहती है क्योंकि मातली का विवाह एक अयोग्य व्यक्ति से होने जा रहा है जिसे बचाना उसका कर्तव्य है। उसे लोक वृत्त और आदर्श जीवन का पूरा ज्ञान है। मातली और माधव के प्रणय की सफलता में परिणति बहुत कुछ उमके प्रयत्न का फल है। वह पति पत्नी के गृहस्थ जीवन का आदर्श भी समझती है और मातली के गुम हो जाने पर अत्यन्त शोकाकुल हो जाती है जो उसकी सहृदयता का एक प्रमाण है।

काममञ्जरी- (नाकू) (१) नाट्यण शाली लिखित ६ अंकों का नाटक।

कामविलास (नाकू) वेङ्कप्पा (दे.) लिखित भाग। नायक पल्लवशेखर को अनेक सुन्दरियों से प्रेम है। स्त्रियों का चित्रनाश किस प्रकार होना है यह इसमें दिखलाया गया है।

कामशुद्धि- (नाकू) डा वेङ्कटराम राघवन का लिखा एकद्वी नाटक। रति (काम की पत्नी) को काम और मधु (वसन्त) की चेष्टायें पसन्द नहीं हैं। उनके कार्य सदोष है। अतः वह उनकी शुद्धि के लिये तपस्या करती है। शिव प्रकट होते हैं और उसे आश्वासन देते हैं कि काम को भस्म करके वह नये काम का निर्माण करेगा जो रति की इच्छा के अनुकूल होगा तथा जिसे पुरुषार्थों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

इसका प्रसारण आकाशवाणी से भी हो चुका है। कालिदास समारोह में इसका अभिनय किया गया था। भारतीय परम्परा और यूरोपीय पद्धति का सम्मिश्रण इसकी अन्यतम विशेषता है।

कामाक्षी परिणय- (नाकू) अज्ञातकर्तृक विवाह विषयक नाटक। इसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम में स १९४ पर किया गया है।

कामिनी कामुकोस्लास- (नाकू) एक भाषा जिसका मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की सस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनिपल कैटेलाग में स II २६१९ पर उल्लेख किया गया है। उसके लेखक या रचना काल का कोई पता नहीं है।

कारायण- (नापा) विद्वत्शालभञ्जिका (दे) में विदूषक। वह राजा का सच्चा सेवक है और हास्य सृष्टि के अतिरिक्त प्रणय प्रसंगों में राजा का दिग्दर्शन भी करता है। उसकी सहज बुद्धि ठोस है। यद्यपि पहले रानी के हाथों अपमानित होता है, किन्तु बाद में वह भ्रष्टा बदल चुका होता है।

कालविलासम्- (नाकू) राजरूप तर्करल (दे) का लिखा नाटक।

कालिकान्तकौतुक- (नाकू) रामकृष्ण का लिखा एक प्रहसन। आरजी भण्डार कर की बम्बई प्रेसीडेंसी में सस्कृत ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट स १८९७ में इसका उल्लेख किया गया है।

कालिकेलि यात्रा- (नाकू) यह श्रीकृष्ण नञ्जुण्ड रचित भाषा है। कोटिलिंग (क्रैगनूर) में भद्रकाली के मदनमहोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसका सकलन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुपाग में विवरणात्मक सूची में स XXI ८१९८ पर किया गया है।

कालिदास- (नावा) सस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कलाकार- कवि एवं नाटककार। इन्हें विश्व के महान कवियों और कलाकारों में अत्यन्त महनीय स्थान प्राप्त हुआ है। कुछ लोगों के विचार में ये भारतीय साहित्य के ही नहीं विश्व साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं। एक कवि ने बड़ी ही मनोरम कल्पना की है- गणना करने में सकेतक सर्वप्रथम छोटी उगली पर पड़ता है और दूसरे नम्बर पर उसके पास की ठगली पर। दूसरी ठगली का नाम अनामिका है। कवि की कल्पना है कि प्राचीन काल में जब कवियों की गणना हुई तब पहला सकेतक कालिदास के नाम पर पड़ा, फिर जब खोज हुई कि दूसरे स्थान

पर किस कवि को रक्खा जाय तो कोई ऐसा कवि नहीं मिला जो दूसरे स्थान पर कालिदास के पास बैठने का साहस कर सकता। अतः उस उगलो का नाम ही अनामिका पड़ गया। जर्मनी के प्रसिद्ध कलाकार कविवर गेटे ने कालिदास को भूमि पर स्वर्ग उतारने वाला मूर्धन्य कवि माना है। वस्तुतः अभिज्ञान शाकुन्तल में नागरिक जीवन के सफल अभिव्यञ्जन के मध्य कवि ने कश्यप आश्रम के प्रसंग में स्वर्ग की झांकी दिखलाई है। वस्तुतः कला द्वारा स्वर्ग को ही पृथ्वी पर उतारा दिया गया है।

यह एक विदम्बना ही है कि इतने बड़े कलाकार के देशकाल के विषय में साहित्य जगत् को निश्चयात्मक रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। वैसे तो कवियों द्वारा स्वयं अपने विषय में या दूसरे कलाकार के परिचय के सम्बन्ध में कुछ लिखने की प्रवृत्ति प्राचीन भारत में कभी नहीं रही किन्तु कृतियों में कुछ ऐसे सकेत अवश्य मिल जाते हैं। पर कालिदास के विषय में इस प्रकार के सकेत भी नगण्य हैं। इनके विषय में केवल एक दो सकेत मिलते हैं— अभिज्ञान शाकुन्तल का प्रथम अभिनय विक्रमादित्य की विद्वानों से परो हुई सभा में हुआ था। दूसरा सकेत उनके मालविकाग्निमित्र में मिलता है जिससे ज्ञात होता है भास, सौमिल्लिक कवि उनसे पहले हो चुके थे तथा उन कवियों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो चुका था। इनसे भी इनके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ पता नहीं चलता। बात यह है कि भारतीय इतिहास में अनेक विक्रमादित्य हुये हैं। किस विक्रमादित्य के राज्यकाल में कालिदास हुये थे इसका पता लगाना बहुत कठिन है। साथ ही यह पता लगाना भी सरल नहीं कि भास और सौमिल्लिक इनसे कितना पहले हुये थे। इनके विषय में निश्चित रूप से केवल इतना ज्ञात है कि इनके विश्व प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल का प्रथम अभिनय उन विक्रमादित्य की 'अभिरूपभूयिष्ठ' परिषद् में हुआ था जो स्वयं भी रस भाव की विशेषज्ञाओं में सर्वज्ञ विद्वान् थे। विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा को विक्रम कहना भी उनके सम्बन्ध का बोधक है।

कालिदास के जीवन के विषय में यद्यपि कुछ भी निश्चयात्मक रूप में ज्ञात नहीं है फिर भी इनकी स्थिति की पूर्वापर सीमायें निश्चित की जा सकती हैं। इन्होंने मालविकाग्निमित्र का नायक अग्निमित्र को बनाया है। ये अग्निमित्र शुंगवंशीय पुष्यमित्र के पुत्र थे जिन्होंने मौर्यवंश का उच्छेद कर मध्य देश में शुंगवंश का शासन स्थापित किया था। स्वयं अग्निमित्र ने पूर्वी मालवा के विदिशा नगर को अपनी राजधानी बनाया था। कालिदास ने विदिशा नगरी का भी राजधानी के रूप में उल्लेख किया है। 'तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणा राजधानीम्' पुष्यमित्र का समय ई.पू. १५० वर्ष के आस पास है। अतः अग्निमित्र का समय ई.पू. की प्रथम शताब्दी ठहरता है जो विक्रम संवत् के प्रारम्भ से भी मेल खा जाता है। यह कालिदास की उपरी सीमा है। इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास इससे पहले नहीं हो सकते।

ई.पू. की ७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में चाणक्य ने कालिदास का उल्लेख किया है

और पुलकेशी द्वितीय के ऐहोल शिलालेख (६३४ ई.) में भी उनका उल्लेख किया गया है। अतः सिद्ध हो जाता है कि इनका समय इसके बाद का नहीं हो सकता। इस प्रकार ईपू प्रथम शताब्दी से ई की ७वीं शताब्दी के मध्य लगभग ६-७ सौ वर्ष के अन्तराल में इनका होना निश्चित है।

अग्निमित्र एक प्रतिष्ठित राजा अर्थात् वे किन्तु इतने प्रसिद्ध नहीं थे कि ६-७ सौ वर्ष बाद का कवि उनको नायक बना कर नाटक की रचना करता। विदिशा राजधानी का उल्लेख किया ही गया है। शुगवशियों के राजघराने के मन्त्री कण्व वशीय थे। शकुन्तला का पालन पोषण भी कण्व ऋषि के आश्रम में हुआ था। ये सब प्रमाण कालिदास को ई की प्रथम शताब्दी का ही सिद्ध करते हैं। इस काल में शकों की सत्ता और शासक की उपाधि भी प्रमाणित हो जा सकती है।

किन्तु उक्त मान्यता के प्रतिकूल एक सबल तर्क यह है कि आम धारणा कालिदास को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्य काल में मानने की है। अनेक विचारक रघु की दिग्विजय यात्रा में समुद्रगुप्त की दिग्विजय यात्रा के दर्शन करते हैं। समझा जाता है कि कुमार सम्भव की रचना भी कुमार गुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में की गई थी। १६वीं शताब्दी के एक पद्य में विक्रमादित्य के दरबारी रत्नों में कालिदास का भी नाम लिखा गया है। किन्तु वह पद्य प्रामाणिक नहीं है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर शासक की उपाधि धारण की थी। यह भी एक प्रमाण है जो कालिदास को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कालीन सिद्ध करता है।

गुप्त वंश के एक दूसरे सम्राट स्कन्दगुप्त ने भी विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार जयशंकरप्रसाद ने कालिदास के एक पद्य में स्कन्दगुप्त और उनकी प्रेयसी देवसेना के श्लिष्ट मूलक सकेत के दर्शन किये हैं— 'स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम्'।

एक विचार यह भी है कि ये यशोधर्मा के समय में हुये थे। यह कल्पना डा फर्गुसन की है जिसे डा हर्नली ने अपनाया है। महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री और मैक्समूलर ने भी इसी मत को मान्यता दी है। किन्तु इसके प्रतिकूल बहुत कुछ कहा जा सकता है। उनके समय की किसी भी रचना में उनको विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने काता नहीं बतलाया गया है। उस सम्राट ने टूटों को रराया था शकों को नहीं। यशोधर्मा का सम्बन्ध दशपुर से था उज्जैन से नहीं। यद्यपि कालिदास ने दशपुर का भी उल्लेख किया है किन्तु उनका रागात्मक सम्बन्ध उज्जैन से ही था।

जिस प्रकार कालिदास का समय अनिश्चित है उसी प्रकार उनके स्थान के विषय में भी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बंगाल का नवद्वीप काश्मीर, जम्मू, उज्जैन पंजाब इत्यादि अनेक स्थान इनके मूल स्थान के विषय में कल्पित किये जाते हैं। वैसे तो कालिदास ने समस्त भारत को अपनी काव्य कला के वर्ण्य व रूप में बना र,

किन्तु उनका विशेष सम्बन्ध उज्जैन और उत्तरी पहाड़ों से प्रतीत होता है। मूल स्थान का प्रश्न यों भी अनिश्चित रहता है। मनुष्य जन्म कहीं लेता है किन्तु उसकी लीला भूमि कहीं और होती है और जीवन यात्रा कहीं अन्यत्र सम्पन्न होती है।

रचनायें- कालिदास की कृतियों में अनेक छोटी मोटी रचनायें बटलाई जाती हैं। किन्तु ८ रचनायें प्रामाणिक कोटि में आती हैं- दो महाकाव्य- रघुवश और कुमार सम्भव, एक छण्ड काव्य मेघदूत, दो स्फुट वाक्य- ऋतुमहार और शुद्धातिलक तथा तीन नाटक- मालविकाग्निमित्र, (दे) विक्रमोर्वशीय (दे) और अभिज्ञानशाकुन्तलम् (दे)।

कालिदास की कला- की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी समाहार शक्ति। कूची के दो एक उपयोगों से ही उनका चित्र ऐसा चमक उठता है कि लोग वाह वाह करने को विवश हो जाते हैं। लम्बे कथानक को समेट कर एक साधारण पद्य में समाहित कर देना, चरित्र की अनेक विशेषताओं और घटनाओं को एक ही पद्य में व्यक्त कर देना उनकी अनन्यसामान्य विशेषता है। कविता में न तो कुछ अधिक कहने की आकांक्षा रहती है न अधिक विस्तार के कारण जो ऊबता है। इनमें परिमाण (बैलेंस) के औचित्य का परिपातन आश्चर्यजनक है। इनकी लेखनी ने प्रायः सभी रसों का स्पर्श किया है किन्तु इनका प्रधान रस शुद्धार है जिसके सम्भोग और विप्रलम्भ इन दोनों छोरों को अभिव्यक्ति देने में ये अपना सानी नहीं रखते।

इन्हें वैदर्भी रीति का सर्वोत्कृष्ट कवि माना जाता है। यही रीति समप्रगुणा कहलाती है। चाहे १० गुणों की दृष्टि से विचार करें चाहे तीन की, इनकी कविता गुणों से ओत प्रोत है। विचारकों की परम्परा इन्हें उपमा प्रयोग में सिद्धहस्त मानती है। उपमा मूलक प्रायः समस्त अप्रस्तुतविधानमूलक अलंकारों के प्रयोग में इन्होंने सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। प्रसाद गुण की प्रमुखता ने इनकी कविता को कलामर्मज्ञों की श्रेणी से ऊपर उठाकर सर्वसाधारण के लिये आस्वादीय बना दिया है। कोमल कान्त पदावली में मधुर्यगुण पर्याप्त मात्रा में कमनीयता को अपने अन्दर समाये हुये है। इनकी काव्यपाधुरी की तुलना दुर्लभ है। अभिव्यक्ति की निपुणता, वर्ण्य विषय की रमणीयता, रसप्रकाशन का वैशद्य, साल सुबोध गूढार्थव्यञ्जक शब्दों का प्रयोग इन सभी दृष्टियों से कालिदास की कला अद्वितीय है। जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श करने की इनमें अपूर्व क्षमता है। प्राकृतिक सौन्दर्य में स्वयं को विलीन कर देने की इनकी शक्ति के विषय में हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचक आचार्य शुक्ल का यह कथन कितना सार गंभीर है कि आज देशभक्ति के नाम पर लोग व्याख्यान देते हैं, चन्दा उगाहते हैं, जेलें काटते हैं, पर कालिदास की देश भक्ति के सामने मैं उन्हें कुछ नहीं मानता जो देश की पत्नी पती पर नाच उठता था। समस्त भारत को कविता का लक्ष्य बनाकर राष्ट्रीय एकता का जो सन्देश कवि ने दिया है वह आज की राष्ट्रीय विचारधारा में कितना सटीक है। इनके काव्यों में भारतीय संस्कृति का यथार्थ रूप प्रतिबलित हुआ है जिससे इनकी कविता में धार चाद लग गये हैं।

पारश्वात्य आलोचकों का यह कहना कि 'अन्त में सरस्वती ने अपने वरद पुत्र को प्राप्त कर ही लिया' सर्वथा सत्य है इसमें सन्देह नहीं।

(१) कालिदासचरितम्- (नाट्) मुम्बई निवासी श्रीराम भिकाजी चेलण्कर लिखित ५ अकों का नाटक। इसका कथानक सर्वथा नवीन है। उज्जैन में विक्रमादित्य के दरबार में कालिदास पराष्ट विभाग में उपसचिव हैं जो अपनी प्रतिभा के बल पर पण्डित सभा में स्थान पा जाते हैं। वसुधा महाराणी और पण्डित सभाध्यक्ष उनके विरोधी हैं। खबर मिलती है कि विदर्भ का राजा कोशल नरेश के साथ मिलकर उज्जैन पर आक्रमण करना चाहता है। वसुधा के कहने से राजा कालिदास को विदर्भ भेज देते हैं जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है। विदर्भ का राजा परिचरिका सरस्वती को कालिदास के मन की बात जानने के लिये नियुक्त करता है। सरस्वती विदिशा को निवासो है अब उसे कालिदास से आत्मीयता है और योजनानुसार कालिदास के भाई रघुनाथ को उनके स्थान पर बन्दीगृह में रखकर कालिदास को छुड़ाती है तथा कालिदास सैनिक वेष में जब उज्जयिनी पहुँचते हैं उस समय वसुधा और पण्डित सभा के अध्यक्ष की प्रेरणा से गोपाल उनकी माला और ग्रन्थ चुनने पहुँचना है। कालिदास उसे पकड़ लेते हैं और क्षमा दान दे देते हैं। उधर विदर्भ में रघुनाथ और सरस्वती में प्रेम हो जाता है। उज्जैन में वसुधा और पण्डित सभाध्यक्ष मिलकर कालिदास पर राजद्रोह का मुकदमा चलाते हैं, किन्तु रघुनाथ और सरस्वती के रहस्य प्रकट कर देने से कालिदास छुटकारा पा जाते हैं।

कालिदास को कवि कुलगुरु की उपाधि दी जाती है पर वे नवलपरिषद से त्यागपत्र देकर साहित्य रचना में सत्तान्न हो जाते हैं।

इस नाटक की रचना १९६१ में संस्कृत नाट्य महोत्सव में अभिनय के लिये की गई थी और उसी वर्ष इसका अभिनय किया गया। इसके अकों का पारश्वात्य शैली में दृश्यों में विभाजन किया गया है। एकांताओं का भी इसमें समावेश है और संस्कृत छन्दों के साथ मराठी के स्थानीय छन्दों का भी उपयोग किया गया है।

(२) कालिदास चरितम्- (नाट्) इस नाटक की रचना वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य (दे) ने सन् १९६७ में अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर अभिनय के लिये की थी। इसमें ७ अंक हैं। कालिदास एक प्रतिभामानी नायक हैं, मर्छापि दक्षि है। उन्हें विक्रमादित्य की राजसभा में नवाल परिषद की सदस्यता प्राप्त हो जाती है। वहाँ वे मञ्जुभाषिणी के प्रेम पारा में पस जाते हैं। जब यह रहस्य विक्रमादित्य को ज्ञात होता है तब वे मञ्जुभाषिणी को बन्दी बना लेते हैं और कालिदास को एक वर्ष का निर्वासन देते हैं। इसी निर्वासन की अवधि में कालिदास मेघदूत की रचना करते हैं। जब निर्वासन की अवधि समाप्त हो जाती है विक्रमादित्य मञ्जुभाषिणी से उसका विवाह करा देते हैं। विक्रमादित्य की दिग्विजय यात्रा का वर्णन कालिदास रघु के नाम पर करते हैं। अन्त में विक्रम कहते हैं कि कालिदास के कारण विक्रम अमर बना

है।

महत्वपूर्ण पात्रों का परिचय प्रवेश के पूर्व गीतों के माध्यम से दिया गया है। गीतों का प्रचुर प्रयोग, एकात्म्य की अधिकता, मेघदूत के पद्यों का समावेश, प्राकृत का अभाव इस नाटक की अन्यतम विशेषतायें हैं।

कालिदास नाटकम्- (नाकृ) नित्यानन्द षष्ठाचार्य (दे) लिखित नाटक।

कालिदास महोत्सवम्- (नाकृ) इस हास्य प्रधान नाटक की रचना ग्वालियर निवासी डा हरि रामचन्द्र दिवेकर ने की थी। स्त्री पात्र का अभाव इसकी विशेषता है। कुछ दिनों स्वर्ग में बिताकर कालिदास नारद के साथ मर्त्यलोक में आते हैं। एक पैपलेट उनके हाथ लग जाता है जिसमें लिखा है कि कालिदास महोत्सव होने जा रहा है जिसका वक्ष्य है कालिदास का विशाल स्मारक बनवाना। यह उत्सव कालिदास के जन्मदिन के अवसर पर होने वाला है। जब कालिदास विश्वविद्यालय के निकट जाते हैं तब उन्हें प्रवेश नहीं मिलता क्योंकि उन्होंने मैट्रिक पास नहीं किया है। कालिदास को विवश होकर द्वारपाल के पद से आयोजन देखना पड़ता है। वहाँ के प्राध्यापक कालिदास की रचनाओं से विलकुल परिचित नहीं हैं। संयोजक एव उद्धारक को संस्कृत नहीं आती। वह उर्दू बोलता है। कालिदास इसका विरोध करते हैं। उनसे छात्र वर्ग प्रभावित होता है और उन्हें बोलने का अवसर देता है। अन्त में भरत वाक्य के इस कथन के साथ नाटक समाप्त होता है 'मुवा और बुद्ध पीढ़ी में सामञ्जस्य बना रहे।'

इसका अभिनय कालिदास महोत्सव के अवसर पर उज्जैन में आयोजित किया गया था। इसका प्रकाशन साहित्य अकादमी की ओर से १९६५ में किया गया था।

कालिन्दी- (नाकृ) तीन अंक के इस नाटक की रचना श्रीराम भिकाजी वेल्णकर ने की थी। इसका विषय है हिंसा अहिंसा का विवेक। अयोध्या के राजा चण्डप्रताप की दो पुत्रियाँ हैं बड़ी पुत्री अहिंसावादी सुधाशु को व्याही है। छोटी पुत्री का विवाह दुर्गेश्वर से तय किया जाता है जिसका हिंसा में विश्वास है। सुधाशु इस विवाह का विरोध करता है। तब दुर्गेश्वर इस पर आक्रमण कर देता है। अहिंसावादी होने के कारण सुधाशु प्रतिरोध नहीं करता। तब उसकी पत्नी युद्ध के लिये उतरती है जो गिरफ्तार कर ली जाती है। पत्नी पर आई हुई आपत्ति को देखकर सुधाशु अहिंसाव्रत छोड़कर युद्ध के लिये आ जाता है। तब दुर्गेश्वर कहता है मेरी विजय हो गई। फिर हिंसा अहिंसा के विवेचन के बाद विवाह सम्पन्न किया जाता है। इसमें प्राकृत का प्रयोग विलकुल नहीं किया गया है।

कालिय- (नापा) चालचरित्र में एक दानव नाग जिसे कृष्ण ने नाश लिया था।

कालीपाद तर्काचार्य- (नाका) आधुनिक काल के प्रतिष्ठित विद्वान् एव प्रशस्त साहित्यकार। ये मधुसूदन सरस्वती और हरिदास सिद्धान्तवागीश जैसे महत्वपूर्ण

साहित्यकारों के वंश में उत्पन्न हुये थे। इनका जन्म फरीदपुर जिले में कान्यकुब्ज मिश्र परिवार में सन् १८८८ में हुआ था। पिता का नाम सर्वभूषण हरिदास शर्मा था। इन्हें जीवन में तर्काचार्य विद्यावारिधि, महाकवि आदि अनेक उपाधिया प्राप्त हुई थीं। महामहोपाध्याय की उपाधि भी इन्हें मिली थी। जीवन के अन्तिम काल में ये डीलिट भी हो गये थे। राष्ट्रपति द्वारा इन्हें पाण्डित्य प्रशस्तिपत्र भी दिया गया था। इनको अभिनय का भी शौक था और प्रतिष्ठित पात्रों के अभिनय में इन्हें प्रशंसा प्राप्त हुई थी। इनका व्यवसाय अध्यापन कार्य था और इन्होंने १९५४ में ६५ ६६ वर्ष की आयु में अवकाश ग्रहण किया था। सन् १९७२ में इनका देहावसान हो गया।

इनका साहित्य अत्यन्त विशाल एवं बहुक्षेत्र व्यापी है। दर्शन पर इनकी बहुत सी पुस्तकें हैं। रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि का छायानुवाद भी किया था। बंगला में भी इनकी अनेक पुस्तकें हैं। ललित साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने महाकाव्य खण्डकाव्य गद्य काव्य समालोचना इत्यादि के क्षेत्र में अनेक पुस्तकें लिखी थीं। इनके लिखे नाटक हैं— नलदययन्तीय प्रशान्तरत्नाकर माणवकगौरवम्, युगलाङ्गुलीय तथा स्यमन्तकोद्धार।

कालेय कौतूहल— (नाकू) भारद्वाज लिखित प्रहसन। इसका प्रकाशन पूना से हुआ। कैटेलागस कैटेलागोरम स। ३९६ पर भी इसका सकलन किया गया है।

काशीकोशलेश— (नाकू) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

काशीनाथ शास्त्री— (नाका) दे भेरी काशीनाथ शास्त्री।

काशीपति— (दे) मुकुन्दानन्द

काशीहिन्दूविश्वविद्यालय— (नाकू) इस नाम की एक एकाङ्किका है जिसकी रचना मधुसूदन (दे) ने की थी।

काश्मीरसन्धानसमुदायम्— (नाकू) इस नाटक के लेखक हैं नीर्पाजे भीमभट्ट। इसमें हिन्दुस्तान में विलय विषयक काश्मीर की गुप्तरी को लेकर रचना की गई है। राष्ट्रसंघ की ओर से काश्मीर समस्या सुलझाने के लिये माहम भारत आते हैं। इनकी नेहरू और शेख अब्दुल्ला से बात होती है माहम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि काश्मीर की जनता हिन्दुस्तान के साथ रहने की पक्षधर है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी शेख अब्दुल्ला पर विश्वास नहीं करते। अन्त में निश्चय किया जाता है कि काश्मीर स्वतन्त्र ध्वज का प्रयोग कर सकेगा और साथ ही भारतीय ध्वज को भी सम्मान देगा। वर्ण सिंह राज्य प्रमुख नियुक्त किये जाते हैं। यह नाटक वर्तमान राजनैतिक घटना को संस्कृत के रंगमंच पर लाया है। इसका प्रकाशन अमृतवाणी प्रिन्सिपल के १९५२-५३ के अंक ११ १२ में तथा स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में भी हुआ है। इसका विभाजन अंकों के स्थान पर दृश्यों में किया गया है। नाटक में ८ दृश्य हैं। नान्दीपाठ का अभाव है।

किरातव्यायोग— (नाकू) यह बुन्दुकुन्दनविराज (दे) लिखित एक व्यायोग है।

इसका उल्लेख एम कृष्णभाचार्य ने हिष्टी आफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर में किया है।

(१) किरातार्जुनीय व्यायोग- (नाक) यह केरल निवासी ताम्पुरान् द्वारा प्रसिद्ध शिव और अर्जुन युद्ध विषयक कथानक को लेकर लिखा गया व्यायोग है।

(२) किरातार्जुनीय व्यायोग- (नाक) यह एक व्यायोग है जिसको रचना राम वर्मा (दे) ने की थी। इसमें किरात वेषधारी शङ्कर और अर्जुन के युद्ध का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन सहृदय सस्कृतजर्नल मद्रास से हो चुका है।

(३) किरातार्जुनीय व्यायोग- (नाक) वत्सराज (दे) लिखित व्यायोग। इसमें किरात वेषधारी शङ्कर और अर्जुन की युद्ध विषयक भारवि की इसी नाम की रचना का नाटकी-करण किया गया है। इसका प्रकाशन बड़ौदा गायक बाड सीरीज में रूपकशतक के अन्तर्गत स IV १९१७ में हो गया था।

किलोस्कर- (नाका) ये मराठी नाटककार है। इनके लिखे संगीतसौभद्रम् का वेलण्कर ने सस्कृत में 'सौभद्रम्' नाम से अनुवाद किया जिसे बम्बई में पर्याप्त सफलता मिली और कई बार उसका प्रदर्शन किया गया।

कुक्षिम्भरिभैक्षव- (नाक) प्रधानवेङ्कटलिखित एक प्रहसन। इसका कथानक हास्यजनक एवं अश्लील है। इसमें कुक्षिम्भरि नामक बौद्धाचार्य की कामुक चेष्टाओं का चित्रण किया गया है। वह कामकलिका वेश्या पर रोज़ा है और वज्रदन्त नामक शिष्य को उसको लाने के लिये भेजता है। कुक्षिम्भरि की विधवा प्रेमिका कुर्कुती अपने नौकर पिचण्डिल से वज्रदन्त को घमकी दिलवाती है कि कामकलिका के हूण प्रेमी तुम्हारे नाक कान काट लेंगे। अतः कामकलिका से दूर ही रहना। जब कुक्षिम्भरि वन की ओर जाता है तब रास्ते में उसकी कई प्रेमिकायें मिलती हैं। उसे मार्ग में चार्वाक, दिगम्बर, क्षपणक, वैदेशिक, विट इत्यादि जो भी मिलते जाते हैं सभी की पोल खुलती है। जब वह बुद्धायतन पहुँच जाता है तब उसकी प्रेमिका कुर्कुती कामकलिका के हूण प्रेमी का और उसका नौकर पिचण्डिल हूण के नौकर का रूप धारण कर आता है। पिचण्डिल शिष्यों को भौंटाता है। इसी समय वास्तविक हूण और उसका नौकर आ जाता है। हूण कुर्कुती को दण्ड देता है और उससे वलात्कार करता है तथा हूण और नौकर पिचण्डिल से मैथुन करता है। उसी समय कुक्षिम्भरि आ जाता है और कुर्कुती को छुड़ाने की चेष्टा करता है। तब हूण का नौकर कुक्षिम्भरि के साथ भी मैथुन करता है। फिर वे दोनों चले जाते हैं। इसी समय वज्रदन्त कामकलिका को लेकर आता है। विदूषक कहता है कि कुक्षिम्भरि कामकलिका पर मठ की सम्पत्ति सुटा देगा। अन्त में वज्रदन्त मठ का अधिपति बन जाता है।

कुञ्जिकुट्टमतविरान- (नाका) दे (१) रामवर्मा।

मणि के प्रभाव से दूर हो सकता था। एक बार अनजाने में ही उर्वशी उस वन में चली जाती है और शाप के प्रभाव से लतारूप में परिणत हो जाती है। उसका प्रेमी उसकी कल्पना अनेक भौतिकतत्वों में करते हुये जब सगमनीय मणि के साथ उस लता को घेड़ता है तब प्रेयसी उसकी बांहों में आ जाती है और शाप का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

(१) कुमारविजय- (नाकू) भास्करयज्वा लिखित नाटक। इसमें शिव पार्वती विवाह कुमारजन्म और तारकवध का चित्रण किया गया है। मुसलीपट्टम से इसका प्रकाशन हुआ है।

(२) कुमारविजय- (नाकू) घनश्याम (दे) लिखित १८वीं शताब्दी का एक नाटक। इसमें दक्षयज्ञ में आम्बोत्सर्ग कर देने के बाद सती का उमारूप में जन्म और उसके बाद कुमारजन्म और तारकवध इत्यादि घटनाओं को रूपयित किया गया है। इसमें एकालापों की अनेकता, प्रगल्भ चरित्रचित्रण और छायातत्व के समावेश के साथ तत्कालीन सामाजिक विषमताओं और धर्म के नाम पर चलने वाले चरित्रपतनों पर प्रकाश डाला गया है।

मद्रास से १९०५ में प्रकाशित कैटेलाग में HR III १६८२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

कुमुदगन्ध- (नापा) अश्वघोष के उपलब्ध नाटक में विदूषक का नाम। इस नामकरण में शास्त्रीय परम्परा का पालन किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि अश्वघोष के समय तक भी कुछ न कुछ नाट्य परम्परायें सत्ता में आ चुकी थीं।

कुमुदचन्द्र- (नापा) मुद्रित कुमुदचन्द्र (दे) नाटक का एक पात्र। यह दिगम्बर जैन है और श्वेताम्बर जैन देवसूरि से शास्त्रार्थ करता है जिसमें पराजित हो जाता है। अतः इस नाटक का नाम ही मुद्रितकुमुदचन्द्र पड़ा है।

कुमुदिका- (ना आधार) वृहत्कथा में वर्णित एव वसन्त सेना की प्रतिरूप एक वेश्या जो एक दरिद्र ब्राह्मण से सच्चा प्रेम करने लगी थी। जब उसका प्रेमी राजाद्वारा बन्दी बना लिया गया तब उसने राज्यच्युत राजा विक्रमसिंह से मैत्री की और अपनी कलाओं द्वारा उसे राज्य प्राप्ति में सहायता दी। विक्रमसिंह ने राज्यप्राप्ति के बाद वृत्तज्ञा वश गणिका को अपने प्रेमी से विवाह करने की अनुमति दे दी। सम्भवतः यह कथानक ही मृच्छकटिक की रचना में श्रोत बना।

कुमुदती- (नापा) दे कुशकुमुदतीयम्।

कुमुदती- (नाकू) यह एक प्रकरण है जो अथ उपलब्ध नहीं होता। इसके कर्ता का भी कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता। शूद्रक (दे) ने पद्म श्राधुनक (दे) नामक भाग में इसका उल्लेख किया है और एक पद्य भी उद्धृत किया है जिससे ज्ञात होता है कि इस रचना में कुमुदती नामक किमी राजकुमारी के शूर्पक के साथ प्रेम की नाट्य विषय बनाया

गया है।

कुम्भकर्ण- (नापा) यह रामायण का प्रसिद्ध पात्र है। इसके चरित्र का स्वतन्त्र विकास नहीं हो सका है। रावण इसे युद्ध के लिये भेजता है और वह राम के हाथों मारा जाता है। अनर्घराघव, बालरामायण और प्रसन्नराघव में इसका रावण के भाई और युद्ध के सेनानी के रूप में उपादान किया गया है-

(१) अनर्घराघव- में यह रगमञ्च पर नहीं आता, उसके युद्ध में जाने और मारे जाने की केवल सूचना दी जाती है।

(२) बालरामायण- में दिव्य अस्त्रों से उसके युद्ध का चित्रण किया गया है। किन्तु अन्त में वह राम से पराजित हो जाता है।

(३) प्रसन्नराघव- में रावण कुम्भकर्ण को भेजता है जो राम के साथ युद्ध करते हुये मारा जाता है।

कुम्भीलक- (नापा) मूच्छकटिक में वसन्त सेना का चेट, वह मागधी चोलता है।

कुरंगी- (नापा) अविमारक की नायिका। यह राजा कुन्तिभोज की पुत्री है। एक बार एक हाथी के बिगड़ जाने पर यह उस हाथी की पकड़ में आ जाती है और मृत्यु के निकट पहुँच जाती है तब अविमारक उसकी रक्षा करता है। इससे दोनों एक दूसरे को प्राणपण से चाहने लगते हैं। एक बार धात्री के उद्योग से दोनों में सम्मिलन का अवसर भी आता है। किन्तु पकड़ लिये जाने से उनका मनोरथ पूरा नहीं होता। दोनों आत्महत्या की चेष्टा करते हैं किन्तु सफल नहीं हो पाते। किन्तु बाद में एक विद्याधर की दी हुई तिरस्करिणी अगूठी से वह अदृश्य होकर नित्य राजकुमारी का उपभोग करता रहता है। अन्त में भेद खुल जाने और यह ज्ञात हो जाने पर कि अविमारक वास्तव में काशी नरेश का पुत्र विष्णुसेन है उनका विवाह कर दिया जाता है और उनके प्रेम की सफल परिणति हो जाती है।

कुलशेखर वर्मा- (नाका) केरल के राजा कवि (१० वीं ११ वीं शताब्दी); इन्होंने दो नाटक लिखे थे तपतीसवरण (दे) और सुभद्राधनञ्जय (दे) कुछ लोग इन्हें कुन्दमाला के लेखक कुलशेखर से अधिन्न मानते हैं। वस्तुतः केरल के राजघराने में इस नाम के कई कवि हुये हैं जिनमें मुकुन्दमाला के लेखक कुलशेखर की धार्मिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्ता प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि ये विष्णु की कौस्तुभ मणि के अवतार थे। वैष्णव सन्त के रूप में इन्हें अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। राजसिंहासन का परित्याग कर ये सन्यासी हो गये थे। इनके आश्रित कवि वासुदेव ने युधिष्ठिरविजय काव्य में इनकी प्रशंसा गाई है। मुकुन्दमाला के लेखक कुलशेखर आत्मार थे।

इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता कि आत्मार कुलशेखर और नाटक का

कुलशेखर एक ही व्यक्ति थे या भिन्न भिन्न व्यक्ति। यदि ये भिन्न भिन्न व्यक्ति थे तो इनमें कौन पहले और कितना पहले हुआ था। यह भी निश्चित नहीं है कि वामदेव ने जिन कुलशेखर का वर्णन किया है वे कौन से कुल शेखर थे। सामान्य धारणा यह है आत्मार कवि कुलशेखर नाटककार कुलशेखर की अपेक्षा कहीं अधिक प्राचीन थे। अनेक कुलशेखरों के कारण इनके समयों में इतना अन्तर है कि केरलीय परम्परा इन्हें तीसरी शताब्दी का मानती है जबकि कुछ विचारक इन्हें १३वीं शताब्दी तक से जाते हैं।

कुवलयमाला- (नायक) कुन्तल नरेश चण्डमहासेन की पुत्री, विदयाशालभञ्जिका (दे.) की एक पात्र। चण्डमहासेन जब पराजित होकर उज्जैन आ जाते हैं तब उनके साथ उनकी पुत्री भी आती है। वह अत्यन्त रूपवती है। एक दिन जब वह नर्मदा स्नान कर बाहर निकल रही थी उज्जैन नरेश विद्याधर मल्ल की उम पर निगाह पड़ गई और विलासी राजा उस पर आसक्त हो गया।

रानी को राजा के इस झुकाव के कारण नई सौत की सम्भावना से अत्यन्त चिन्ता हुई। उस समय साठ प्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की पुत्री मृगाङ्गवती लडका बनकर मृगाङ्गवर्मा के नाम से वहाँ रह रही थी। अतः रानी ने नई सौत से छुटकारा पाने के लिये कुवलयमाला का विवाह मृगाङ्गवर्मा से करने का निश्चय किया। किन्तु परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बदलीं कि कुवलय माला का विवाह उज्जैन नरेश से सम्पन्न हो गया।

कुवलयवती- (नायक) कृष्ण कविशेखर (दे.) लिखित चार अकों की नाटिका। इसमें कृष्णकथानक को एक नया रूप दिया गया है जिसमें मालविकाग्निमित्र रूप की वह प्रेमकथा की शैली अपनाई गई है जिसमें कोई सुन्दरी नायक के घर में किसी रूप में रहती है। सयोग एवं परिस्थिति वश नायक का उससे प्रेम हो जाता है जो गुप्तरूप से चलता रहता है। जब नायक की पत्नी को ज्ञान होता है वह विघ्न डालती है जिससे कथानक में उलझन उत्पन्न हो जाती है। बाद में जब पता चलता है कि वह सुन्दरी तो अत्यन्त उच्चकोटि के परिवार की है तब पत्नी विवाह की आज्ञा दे देती है।

इस नाटक में पृथ्वी ब्रह्मा जी के प्रपत्य से कुवलयवती नामक एक मानवी कन्या बन जाती है। उसे नारद जी ने एक अगूठी दी है जिसके प्रभाव से वह उसे पहनने पर रत्नजटित मूर्ति बन जाती है। नारद उसे रुक्मिणी के पास यह कहकर छोड़ जाते हैं कि वे उसके उचित वर की खोज में जा रहे हैं। इमोलिये उसका नाम रत्नपान्यालिका बनानाते हैं। एक दिन वह अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ उपवन में जाती है और अगूठी पहिन कर रत्न जटित मूर्ति बन जाती है तथा उसी रूप में अपनी सहेली से बात करती है। इसी बीच कृष्ण आ जाते हैं जिन्हें यह देखकर आश्चर्य होता है कि चन्द्रलेखा एक मूर्ति के साथ वार्त्तानाच कर रही है। हड़बड़ाहट में मूर्ति के हाथ स अगूठी गिर जाती है और वह सुन्दरी कुवलयवती के रूप में आ जाता है। मरल से बुलाया आने पर कुवलयवती

कृष्ण को निराश और उदास छोड़कर चली जाती है। कृष्ण को भूमि पर पड़ी हुई अंगूठी मिल जाती है। कृष्ण उस पर अंकित मन्त्र के अक्षरों को समझ कर उस रहस्य से परिचित हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों का निर्वाध प्रेम चलता रहता है। जब रुक्मिणी को इस बात का पता चलता है तब वह उसे बन्दी बना देती है। एक राक्षस उस बन्दीगृह पर आक्रमण कर देता है तब रुक्मिणी कृष्ण की सहायता मांगती है। कृष्ण उसका वध करने चले जाते हैं। जब वे उसे मारकर लौटते हैं उसी समय नाद आ जाते हैं और वे इस रहस्य का उद्घाटन करते हैं कि ब्रह्मा के आदेश से पृथ्वी कुवलयवती का रूप धारण कर इस महल में आई है। तब रुक्मिणी विवाह की अनुमति दे देती है और विवाह यथा विधि समाप्त हो जाता है।

इस नाटिका की रचना रघुकोण्डा के देवता प्रसन्नगोमल के वसन्तोत्सव के अवसर पर अभिनय के लिये हुई थी। इसे कुवलयावली और रत्नपाञ्चालिका के नाम से भी जाना जाता है। इसका सकलन कैटलागस कैटलागगोरम स III २५ पर किया गया है।

कुवलयविलासम्- (नाट्) यह रायस अरोवत मन्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक है। इसमें नायिका मदालसा और नायक कुवलयारव की प्रणय कथा का चित्रण किया गया है। इसकी रचना १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विजयनगर के राजा श्रीरङ्गराज के आग्रह पर की गई थी।

कुवलयानटी- (नाट्) अवदान शतक में अभिनेताओं की एक मण्डली की नर्तकी। इस मण्डली ने शोभवती नगरी, राजगृह इत्यादि अनेक स्थानों पर अपनी कला का प्रदर्शन किया। कुवलय नये लोगों के चरित्र को डिगाती रही। अन्त में बुद्ध ने उसे बृद्धा के रूप में परिवर्तित कर उसकी वृत्ति का अन्त कर दिया। उसने अपने कर्मों पर पश्चात्ताप किया और उसे सिद्धपद की प्राप्ति हो गई।

कुवलयावली- (नाट्) दे कुवलयवती।

कुवलयाश्चरित- (नाट्) लक्ष्मण भागव्य चन्द्र (दे) लिखित नाटक। इसमें मदालसा और कुवलयारव की प्रेमलता दिखाई गई है। यह १६वीं शताब्दी की रचना है। कैटलागसस कैटलागोरम III २५ पर इसका उल्लेख है।

कुवलयाश्च चरित- (नाट्) लक्ष्मण भागव्यचन्द्रदेव (दे) लिखित ९ अंकों का नाटक। इसमें कथानक के रूप में मदालसा और कुवलयारव की प्रणय कथा का उपादान किया गया है।

कुवलयारवीय- (नाट्) यह कृष्णदत्त (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक है जिसमें एक वैदिक विद्यार्थी (कुवलयारव) का पुत्री मदालसा से प्रेम दिखलाया गया है। इस नाटक का नायक शत्रुजित् का पुत्र ऋतुध्वज है जिसे गालव ऋषि यज्ञरक्षा हेतु शत्रुजित् से माग ले जाते हैं। गालव उन्हें कुवलय नामक अश्व दे देते हैं। पातालकेतु प्रतिनायक

है जो यज्ञध्वंस करने और अश्व का अपहरण करने के लिये ककालक और करालक इन दो योद्धाओं को भेजता है। युद्ध में पराजित होकर करालक भाग जाता है, किन्तु ककालक छद्मवेष में मुनि शिष्य सालकायन बनकर वही रहने लगता है। पातालकेतु के धावा बोलने के कुछ पहले ककालक नायक ऋतुध्वज को दूर ले जाता है। किन्तु अवसर पर नायक उसे खदेड़ते हुये पाताल तक ले जाता है। वहा वह गन्धर्व विश्वावसु की पुत्री मदालसा को देखता है जिसका अपहरण कर पातालकेतु उसे पाताल में ले आया है। कन्या के पिता विश्वावसु और गालव ऋषि की आज्ञा लेकर नायक मदालसा से विवाह करता है। नायक युवराज बन जाता है। राजा उसे आश्रमाक्षा का भार सौंप देते हैं। मुनि वेषधारी ककालक नायक को आश्रम रक्षा का भार सौंपकर काशी चला जाता है।

यह मूलकथा मार्कण्डेय पुराण से ली गई है जिसमें लेखक ने यथेष्ट परिवर्तन किये हैं। इसका प्रथम अभिनय मरिचमर्दिनी देवी के चैत्रावली के पूजन के अवसर पर हुआ था।

इसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम स ११३ में किया गया है।

(१) कुश- (नापा) निर्वासित सीता ने वाल्मीकि आश्रम में लव और कुश को जन्म दिया और वाल्मीकि आश्रम में ही उनका पालन पोषण किया गया और शिक्षा दीक्षा सम्पन्न हुई। अब वाल्मीकि के सामने एक समस्या थी कि सीता का चरित्रपरिशोधन किस प्रकार किया जाय और जो राजकुमार उनके आश्रम में पालन पोषण एवं परिवर्धन प्राप्त कर रहे हैं उन्हें उत्तराधिकार प्रदान करने का क्या उपाय हो। इसके लिये मुनि ने रामायण की रचना की और दोनों राजकुमारों को कण्ठस्थ करा कर सारे राज्य में उसका गायन कराया जिसमें अभिनय रूपता भी सम्मिलित थी, कुशलव कुशीलव बन गये। इससे जनता में व्याप्त सीता चरित्र के विषय में मिथ्याधारणा समाप्त हो गई और राजकुमारों को अपना अधिकार प्राप्त हो गया।

(२) कुश- (नापा) भवभूति के उत्तररामचरित में एक पात्र। परित्यक्ता सीता दूब मरने के लिये गंगा में कूद पड़ती है जहा उन्हें पृथ्वी देवी और गंगा देवी बचा लेती है। गंगा की धारा में ही सीता दो बालकों को जन्म देती है जिनको वाल्मीकि आश्रम में सीता के साथ पहुँचा दिया जाता है। धीरे धीरे बालक यौवन को प्राप्त करते हैं। राम ने सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर जो अश्वमेध ग्रारम्भ किया है उसके अश्व की रक्षा करते हुये लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु जब आश्रम के निकट आते हैं तब लव उस अश्व को बाध लेते हैं। भयानक युद्ध होता है। समाचार पाकर राम आत है और उनका युद्ध रुक जाना है।

मुनि वाल्मीकि ने जिस रामायण की रचना की है वे उसके अभिनय का आयोजन करते हैं जिसका दर्शक के रूप में राम का परिवार उपस्थित होता है। सीता के गंगा में

कूद पड़ने, पृथ्वी तथा गंगा द्वारा बचाये जाने, दो बालकों के जन्म एवं वात्सल्य आश्रम में पहुँचाये जाने के दृश्य अभिनय द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। अभिनय इतना सफल है कि राम सारी घटना को सत्य समझकर बार बार प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगते हैं। राम मूर्छित हो जाते हैं। अरुन्यती के साथ सीता आकर राम की मूर्छा दूर करती है। जनता सीता का स्वागत करती है और राम दोनों बालकों के साथ सीता की स्वीकार करते हैं।

(३) कुश- (नापा) अतिरात्रयज्वन् लिखित 'कुश कुमुद्वतीयम्' में राम पुत्र कुश का कुमुद्वती से प्रणय सम्बन्ध दिखलाया गया है।

(४) कुश- (नापा) दे रामकृष्ण (भवभूति) और उनके लिखे उत्तरधरित में लवकुश।

(५) कुश- (नापा) दे कशलविविजय।

कुशकुमुद्वतीयम्- (नाक) अतिरात्रयज्वन् लिखित राम विषयक नाटक। यह ५ अंकों का नाटक है जिसमें राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश और नागकन्या कुमुद्वती के प्रणय सम्बन्ध को कथानक के रूप में स्वीकार किया गया है। राम के बाद अयोध्या नगरी उजड़ गई। किन्तु नागलोक की राजकुमारी नयचन्द्रिका विहार के लिये निर्जन अयोध्या में आती है नगर की अधिष्ठात्री देवी तिरस्वरिणी के प्रभाव से इस रहस्य को जान लेती है। कुश ने अयोध्या को छोड़कर कुशावती को राजधानी बनाया है। सागरिका कुश को दिव्यदृष्टि देकर कुमुद्वती के दर्शन करा देती है। कुश उसके रूपसौन्दर्य पर रीझकर अयोध्या को नये रूप से सजाकर वहाँ रहने लगते हैं। कुश और कुमुद्वती का परस्पर अनुराग बढ़ने लगता है जिसमें सागरिका भी सहायता करती है। किन्तु कुमुद्वती का पिता अयोध्या की दुर्दशा देखकर कुमुद्वती के बहा जाने पर प्रतिबन्ध लगा देता है और कुमुद्वती का विवाह शत्रुपाल के साथ तय कर देता है। प्रतिबन्ध होते हुये भी सागरिका के प्रयत्न से नायक-नायिका मिलते रहते हैं। विदूषक और लव नायिका के पिता कुमुद का दर्प भग करने के लिये सर्पयज्ञ का आयोजन करते हैं। सर्पयज्ञ से आतंकित कुमुद प्राणरक्षा की प्रार्थना करते हैं और कुश के साथ कुमुद्वती का तथा लव के साथ कुमुद्वती की बहन कमलिनी का विवाह कर देते हैं।

यह एक प्रकरण है जिसकी रचना भाण की शैली पर हुई है। प्रथम अभिनय हालास्य चैत्रोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसका रचना काल १७वीं शताब्दी है। इस नाटक की प्रति पैलेस लायब्रेरी लखनऊ में सुरक्षित है जिसका कैटलाग स VIII ३३७८ पर उल्लेख किया गया है।

कुशलविविजय- (नाक) वेङ्कटकृष्ण (उपनाम वेङ्कटेश) लिखित राम विषयक नाटक। इसमें राम पर रामपुत्रों की विजय दिखलाई गई है जिससे निर्वासित सीता की पुन प्राप्ति होती है।

ब्रह्मकोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग स ७६ पर इसका उल्लेख किया गया है। मद्रास की प्राच्य पाण्डुलिपि लायबेरी के डिस्ट्रिक्टिव कैटेलाग में इसी नाम की एक पुस्तक का (XX ७८११ पर) उल्लेख किया गया है साथ ही उसमें रचनाकार का नाम कविवल्लभ बतलाया गया है किन्तु उसके कर्तव्य पर सन्देह भी व्यक्त किया गया है। हो सकता है यह वेङ्कटेश की लिखी हुई पुस्तक ही हो।

कुशलवोदय- (नाक) नेपाली कवि छविलास सूरि लिखित नाटक।

कुसुमवाणविलास- (नाक) यह एक भाग है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ११३ पर किया गया है। इसके लेखक या रचनाकार का कोई पता नहीं।

कुसुमशेखर विजय- (नाक) यह एक ईहामृग है जिसकी रचना अभिनय के मन्तव्य से भरत ने की थी। अब यह पुस्तक उपलब्ध नहीं होती। इसका उल्लेख शारदातनय, विश्वनाथ और बहुरूप मिश्र ने किया है।

कुसुमावचय- (नाक) मधुसूदन सास्वती (दे) लिखित नाटक।

कुहनाभैक्षव- (नाक) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना बोम्मगन्ती परिवार के अप्पलुनाथ (उपनाम तिरुमलनाथ) ने की थी। मद्रास ओरियण्टल लायबेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग द्वायेनियल कैटेलाग स III ८२५१ पर इसका उल्लेख है। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग स २७६ पर भी इसका उल्लेख है।

कृतकयौवतम्- (नाक) नारायणशास्त्री लिखित १० अकों का नाटक।

कृतार्थ माधव- (नाक) यह नाटक राम माणिक्य कविराज का लिखा है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड ३ स २५ पर किया गया है।

कृत्यारावण- (नाक) यह राम कथा परक नाटक है जो अब लुप्त हो गया है। अभिनवगुप्त, रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाट्य दर्पण) शारदातनय (भाव प्रकाशन) भोजराज (शृङ्गार प्रकाश) प्रभृति नाट्य शास्त्र और काव्य शास्त्र लिखने वालों ने या तो इसके उद्धरण दिये हैं या इसका उल्लेख किया है। शारदातनय ने सुबन्धु की बतलाई हुई पाच नाट्य जातियों में इस नाटक को समग्रनाटक का उदाहरण बतलाया है। इसके लेखक का पता नहीं।

कृपाचार्य- (नापा) महाभारत का प्रतिष्ठित पात्र। वेणी सरार में इनकी भूमिका स्वल्पमात्र में आई है।

कृपासुन्दरी- (नाक) यह मोहाराज पराजय (दे) नामक प्रतीक नाटक की नायिका और विवेकचन्द्र की पुत्री है। राजकुमार पाल उसकी ओर आकर्षित है। किन्तु रानी राज्यश्री और उसकी सखी रौद्रता के सक्रोच से और उनके विष्म डालने से उनका प्रणय बन्धन सम्भव नहीं हो पाता। मन्त्री प्रजदकेतु जब रानी के मन में यह भाव जगा देता है कि महाराज पर विजय प्राप्त करने के लिये कृपासुन्दरी से विवाह अनिवार्य है तब रानी स्वयं इस विवाह का प्रबन्ध करती है।

यह एक ऐतिहासिक पात्र है जिसका उल्लेख जिनमण्डल के कुमारपाल प्रबन्ध में किया गया है। कुमारपाल ने इससे ११५९ में विवाह किया था। किन्तु कवि ने प्रतीक नाटक में इन्हें वित्कुल नया रूप दे दिया है। नाटक में यह विवेक चन्द्र की पुत्री है। हेमचन्द्र के आश्रम में इसका परिचय कुमार पाल से होता है। यह धार्मिक प्रवृत्ति की उदात्त चरित्र वाली महिला है। विवाह के पहले रात लगाकर इसने लोकोपकार के अनेक कार्य सम्पन्न कर दिये।

कृष्णपरक-नाटक-साहित्य- (नासा) कृष्णविषयक नाटक साहित्य को कुछ प्रमुख रचनायें ये हैं- महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कसवध का उल्लेख किया है। भास के दो नाटक बालचरित और दूतवाक्य, रामकृष्ण की गोपालवन्दिका, मथुरादास की वृषभानुजा नाटिका, चैतन्य महाप्रभु की प्रेम्णा से रूप गोस्वामी ने दो नाटक लिखे- ललितमाधव और विदग्धमाधव। इनके अतिरिक्त इन्होंने एक भाष भी लिखा- दानकेलिकौमुदी, शेषकृष्ण का कसवध, मुरारिविजय, मुक्तावरित और सत्यभामापरिणय रविवर्मा का प्रद्युम्नाभ्युदय, राममाणिक कविराज का कृतार्थमाधव, वैद्यनाथ तत्सत् की कृष्णतीता, कृष्णकुतूहल, बालिकावञ्चिनक, रामाराधा, हरियज्जन वा कसान्तक, अनन्तदेव की कृष्ण भक्तिचन्द्रिका, सुन्दरराज का वैदर्भीवासुदेव, हेज्जल का राधाविप्रलम्भ चयनीचन्द्रशेखर का मथुरानिरुद्ध, जीवराम की मुरारिविजय, उमापति का पारिजात हरण।

कृष्ण- (नाका) ये नृसिंह के पुत्र थे। इन्होंने द्रौपदी परिणय नामक नाटक की रचना की थी जिसका सकलन मद्रास के पुस्तकालय में किया गया है।

(१) कृष्ण- (नापा) भास के दूतवाक्य में कृष्ण का महिमामय रूप खुलकर सामने आया है। ये दूतवाक्य नाटक के प्रमुख पात्र हैं। मन्त्रि के अन्तिम प्रयास के रूप में कृष्ण दौत्यकर्म करने दुर्योधन की सभा में जाते हैं और सत्त्वाई के साथ महाविनाश से बचने के लिये दुर्योधन को समझाने की चेष्टा करते हैं। दुर्योधन के तर्कों का उत्तर देने में उनकी वक्तृत्व शक्ति का प्रतिफलन हुआ है। दुर्योधन पहले से ही कृष्ण को अपमानित करने की योजना बनाये बैठा है और कृष्ण के स्वागत में उठ खड़े होने को एक दण्डनीय अपराध घोषित कर देता है। किन्तु यह कृष्ण का प्रभाव ही है कि सभामद ही नहीं स्वयं दुर्योधन भी बैठा नहीं रह पाता।

दूतवाक्य में कृष्ण के विष्णुरूप की अभिव्यक्ति बहुत अच्छे रूप में हुई है। विश्वरूप दर्शन में तो उनका स्वरूपव्यक्त हो ही जाता है साथ ही असों का चमत्कार भी उनके विश्व रूप के सर्वथा अनुकूल है। उदाहरण के लिये अनङ्ग चक्र आकाश गंगा से जल प्राप्त करता है, मरुमन्दार की हिला देता है, समुद्र को सक्षुब्ध कर सकता है और नक्षत्रों को गिरा सकता है।

कृष्ण शाणागत वत्सल भी हैं और धृतराष्ट्र की प्रार्थना पर दुर्योधन को क्षमादान

कर देते हैं।

(२) कृष्ण- (नापा) भास के बालचरित में प्रमुख पात्र। यहा कृष्ण की महिमा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है और उनके बाल रूप पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। चुने हुए मल्लो पतना शकट धेनुक प्रलम्ब, यमलार्जुन जैसे अनेक वीरों को खेल खेल में ही यमलोक पहुँचा देना, यमुना में अकेले ही कूद कर कालिया दमन इत्यादि लीलायें उनके शौर्य की व्यञ्जक है। वे कंस की सभा में बात की बात में ही हाथों का दमन कर कंस को पछाड़ देते हैं। साथ ही उनमें करुणा भी कम नहीं है। वे अनेक असुरों का बधकर समस्त जगत को त्राण देते हैं कुम्भा के कुम्भापन से उसे छुटकारा देते हैं। उपसेन को बन्दीगृह से छुड़ाकर राजा बना देते हैं। गोप गोपियों के साथ ब्रीडा उनके मधुर पक्ष की व्यञ्जक है।

कृष्ण के चरित्र में चमत्कारों की भी इयता नहीं। वसुदेव के मार्ग दर्शन के लिये नवीन ज्योति का उद्भव यशोदा की मृतलङ्की का शीघ्र जीवित हो जाना नन्द के स्नान के लिये जलधारा का स्वतः प्रादुर्भाव उनके अलौकिक स्वरूप के अभिव्यञ्जक तत्व हैं। गोपालों के वेष में आयुधों का प्रवेश इत्यादि कल्पित ऐसे तत्व हैं जिनसे कृष्ण के माहात्म्य और उनकी लोकांतरशक्ति का पूरा प्रतिफलन हो जाता है तथा उससे कविगत कृष्ण भक्ति की पर्याप्त अभिव्यक्ति हो जाती है।

कृष्ण के मधुर रूप का भी इस नाटक में प्रतिफलन हुआ है गोप गोपियों के साथ नाच गान हल्लोसक नृत्य मधुर रूप के परिचायक हैं।

संक्षेप में उनका व्यक्तित्व सर्वगुण सम्पन्न है। वे परमशक्ति का स्रोत हैं सारी अविश्वसनीय घटनायें उनके परम प्रताप से सम्पन्न हो जाती हैं। वे दया का आवतार हैं बचपन में ही अकल्पनीय शक्ति से भरपूर हैं और बड़े से बड़े दैत्यों को पछाड़ देना उनके बायें हाथ का खेल है। वे मधुर रस के मूर्तावतार हैं, उनकी लोकोत्तर शक्ति उनके प्रत्येक कार्य से अभिव्यक्त होती है और उन्हें पूर्ण ब्रह्म के पद पर प्रतिष्ठित कर देती है।

(३) कृष्ण- (नापा) वेणो सहार में कृष्ण का चरित्र अधिक प्रस्फुटित नहीं हुआ है। फिर भी उनके दौत्यकर्म से ही नाटक का प्रारम्भ होता है जो दुर्योधन की हठधर्मिता से अमफल हो जाता है। युद्ध में योद्धा रूप में भाग न लेते हुये भी वास्तविक सहायक बने हैं- उन्हें बर्मापदेशा करा गया है। पण्डवों में परस्पर सौम्य बनाय रखकर युद्ध का चित्रण का आरंभ जान का श्रेय उन्हें ही दिया गया है।

(४) कृष्ण- (नापा) बन्धाराज व हस्मणा परिणय में उनकी भिक्षुशालिना शक्ति और प्रथम उन्मत्त मत्वाई को अभिव्यक्ति मिलती है।

(५) कृष्ण- (नापा) बन्धाराज व हस्मणा परिणय में उनकी भिक्षुशालिना शक्ति और प्रथम उन्मत्त मत्वाई को अभिव्यक्ति मिलती है।

में महान् शङ्करी और प्रेमी के रूप में इनका चित्रण किया गया है जो श्रीमद्भागवत की प्रधान प्रवृत्ति है। राधा के साथ उनकी प्रेम लीलाओं में उनके रसिक भाव की यथेष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

(६) कृष्ण- (नापा) सामराज दीक्षित लिखित श्रीदामचरित में वदान्यता, उदारता और मित्रता की सच्चाई के अतिरिक्त भगवान् कृष्ण की उचित पुरस्कार देने की प्रवृत्ति पर भी प्रकाश पड़ता है।

(७) कृष्ण- (नापा) वृषभानुजा में प्रेमिका को रुठाने-मनाने की प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है।

(८) कृष्ण- (नापा) सुभद्राहरण में कृष्ण की उम कुशलता का चित्रण किया गया है जिसमें पारिवारिक विरोध होते हुये भी अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण में उनके सफल योगदान का चित्रण किया गया है।

(९) कृष्ण- (नापा) हरिदूत में कृष्ण की दौत्यकर्म निपुणता का, (१०) गीत गोविन्द में प्रणय लीला का, (११) गोपाल कैलि चन्द्रिका में प्रणयलीला के साथ उनकी पाम तन्त्र रूपता का परिचय मिलता है जिसमें राधा शक्तिरूपा है, कृष्ण चौरहरण के प्रसंग में वस लौटाने के मूल्य के रूप में गोपियों से भक्ति मागते हैं। रासलीला का प्रसंग भी भगवान् के मधुर भाव का व्यञ्जक है।

कृष्ण अवधूत- (नाका) इनके लिखे सर्वविद्या विनोद नाटक का उल्लेख कीथ ने सस्कृत में किया है।

(१) कृष्णकवि- (नाका) दे शेषकृष्ण।

(२) कृष्णकवि- (नाका) शर्मिष्ठापयाति के लेखक। हो सकता है ये शेषकृष्ण (दे) से अभिन हो जिनकी सना अक्बर के राज्यकाल में पाई जाती है।

कृष्णकविशेखर- (नाका) इनकी लिखी नाटिका कुवलपवती (दे) प्रकाश में आई है। इनके विषय में कोई अन्यवृत्तान्त ज्ञान नहीं होता।

कृष्णकुतूहल- (नाक) यह मधुसूदन (दे) लिखित नाटक है। इसका सक्लन कैटेलागस कैटेलागोरम स १११९ पर किया गया है।

कृष्णकैलिमाला- (नाक) यह चार अकों की नाटिका है जिसकी रचना नन्दापति ने १८वीं शताब्दी में की थी। इस नाटिका में कृष्ण जन्म एवं लीलाओं का चित्रण किया गया है।

कृष्णगीति- (नाक) कालीकट के जमोतिन राजा भानवेद लिखित नाटक। इसे कृष्ण-नाटक की भी संज्ञा दी जाती है। इसका प्रकाशन त्रिचूर से हुआ है जिसमें भूमिका भी है। इसकी प्राम्बुलिपि प्रतिष्ठा ओरियन्टल लायब्रेरी मद्रास में भी उपलब्ध होती है। त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट स III ४०३२ और VI ७२७६ में संकलित की गई है। यह एक

मये प्रकार की नाट्य कृति है जिसमें आख्यानतत्व पद्यों में और भावतत्व संगीत में व्यक्त किया गया है। यह एक गीति नाट्य है। गुरुवायूर के मन्दिर में प्रति वर्ष इसका अभिनय होता है।

कृष्णाचन्द्राभ्युदय- (नाकृ) कृष्णचरित्र परक इस नाटक की रचना शङ्करलाल (दे.) ने की थी।

कृष्णदत्त- (नाका) सदाराम और आनन्द देवी में ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुये थे। इनके लिखे नाटक हैं- पुरञ्जनचरित कुवलयारवोय (दे.) और सान्द्रकुतूहल (दे.) इनकी रचनाओं में २२ सगों का एक राधाहस्य काव्य भी है जिसमें राधाकृष्ण प्रेमलीला का वर्णन किया गया है। इस काव्य पर उनकी स्वयं की टीका है। इन्होंने गीतागोविन्द पर टीका लिखी और उसके अनुकरण पर गीतगणपति काव्य की रचना की। चण्डीचरितचन्द्रिका भी उन्हीं की लिखी बतलाई जाती है।

कृष्णदास- (नाका) ये १८वीं शताब्दी में मालावार के निवासी थे। इनका लिखा कलावतीकामरूपम् (दे.) नामक प्रकरण प्राप्त होता है। इन्हें नवकृष्णदास नाम से भी याद किया जाता है।

कृष्णादेव राय- (नाका) विजय नगर के तुलुव वंश के शासक थे। इनका शासन काल १५०९ से १५२९ तक है। ये प्रतिष्ठित शक्तिशाली शासक थे और प्रायः समस्त दक्षिण प्रदेश में इनका शासन चला था। इन्होंने स्थान स्थान पर अपने सामन्त नियुक्त कर रखे थे। अनेक युद्धों में इन्हें शानदार सफलता मिली थी। इनके दो नाटक प्रकाश में आये हैं- उपापरिणय और जम्बवतीकल्याण। इनके अतिरिक्त इनके कतिपय काव्य तेलुगु भाषा में भी प्राप्त होते हैं। इनका एक काव्य ग्रन्थ मदालसा चरितम् भी पाया जाता है। इनको कृष्णराय सज्ञा से भी अभिहित किया जाना है।

कृष्णान् तम्पी- BA (नाका) सस्कृतकालेज त्रिवेन्द्रम् में प्रधानाचार्य थे। इन्होंने छोटे छोटे कई नाटक लिखे हैं। इनके नाटक हैं- ललिता प्रतिक्रिया, वनज्योत्स्ना और धर्मस्थ सुक्षा गति इनके नाटकों का प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् से हुआ है।

(१) **कृष्णनाटक-** (नाकृ) मानवेद लिखित १६५२ की नाटक गीति इसे नाट्य की सज्ञा दी जा सकती है। इसमें आख्यान तत्व पद्यों में और भावना मूलक तत्व गीतों में प्रयुक्त किये गये हैं। गुरुवायूर मन्दिर में इसका प्रतिवर्ष अभिनय किया जाता है। त्रिचूर में मंगलोदय कम्पनी द्वारा इसका प्रकाशन किया गया।

(२) **कृष्णनाटक-** (नाकृ) दे वण्णगीति।

कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य- (नाका) दुर्गादास चन्नवर्ती के पुत्र थे। इनका कविताओं का संग्रह आनन्द तिलक नाम से प्राप्त हुआ है जो ५ कुसुमों में विभाजित है। इसमें बीच बीच विवरणात्मक और आख्यानात्मक भाग भी विद्यमान हैं। मराठ भी

सम्मिलित है और रगमञ्च जैसे कतिमय निर्देश भी विद्यमान है जिससे यह कृति नाट्य रचना का सीमा स्पर्श करती है। इन्होंने रामायणसार भी लिखा था और इनके आनन्दतिलकभाण का भी पता चलता है। शकुन्तलानाटक की व्याख्या लिखने वाले कृष्णनाथ कोई अन्य व्यक्ति है।

(आनन्दतिलक इण्डिया आफिस लायब्रेरी सस्कृतपाण्डुलिपि अनुभाग में स २४३ पर अंकित है और आनन्दतिलक भाण का उल्लेख दो खण्डों में प्रकाशित गुस्टान ओपर्ट द्वारा प्रकाशित 'श्राइवेट लायब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया' की सस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची १८२४ पर किया गया है।) इनकी लिखी नाट्यलतिका नामक नाट्य कृति भी उपलब्ध होती है।

कृष्णपन्त- (नाका) १९वीं शताब्दी में पिता वैद्यनाथ के यहां जन्म हुआ था। इनका समय २०वीं शताब्दी तक चलता रहा। इनकी रचनाये हैं- कामकन्दल (नाटक) रत्नावली (गद्य) और कालिका (मन्दाक्रान्ताशतक)

कृष्णप्रसाद शर्मा- (नाका) बीसवीं शताब्दी के काठमाण्डू (नेपाल) निवासी कवि। इनके लिखे कृष्णचरित इत्यादि १२ ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं। कविरत्न एव विद्या वारिधि ये उपाधियां इन्हें प्राप्त हुई थीं। इनका पूर्णाहुति नाटक भी प्रकाश में आया है।

कृष्णभक्तिचन्द्रिका- (नाक) यह अनन्त देव द्वारा लिखी एक नाट्य कृति है। बम्बई क्षेत्र में पेटर्सन द्वारा प्रस्तुत सस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में स II २३, १०३ पर इसका सकलन किया गया है। इसके अतिरिक्त ट्रावनकोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में स १८० पर इसका उल्लेख किया गया है।

कृष्णभक्तिरसायन- (नाक) जीवदेव का लिखा नाटक। इसको भक्तिभागवत की भी सझा दी जाती है। इसका उल्लेख गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा की कवीन्द्र सूची में १९६७ संख्या पर किया गया है।

कृष्णमाचार्य- (कविष्ठल) (नाका) ये तिरुपति के निवासी कौशिक गोत्रीय रगनाथ के पुत्र थे। ये तर्क शास्त्र और दर्शन में प्रवीण थे। इनके समीक्षात्मक निबन्ध और काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त रसार्णव तारा (दे) नामक एक भाण भी बतलाया जाता है। इनका जन्म १८८३ में और मृत्यु १९३३ में हुई।

कृष्णपाचार्य आर- (नाका) इनका समय १९वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और २०वीं शताब्दी का प्रथम चरण है। इनकी सामाजिक और अनुसन्धानात्मक अनेक कृतियां मद्रास की सहृदया नामक पत्रिका में प्रकाशित होती रहीं। इसके साथ ही इन्होंने सेक्सपियर के दो नाटकों का सस्कृत में अनुवाद भी किया- ऐज यू लाइक इट का 'यथामितम्' नाम से और मिड समर नाइट ड्रीम का 'वासन्तिका स्वप्न' नाम से।

(१) कृष्णमिश्र- (नाका) प्रबोध चन्द्रोदय (दे) नामक प्रतीकरूपक के लेखक। कामकोटि शकरपीठ की वशावली के अनुसार १०९७ से ११६५ ई तक चन्द्रशेखर सरस्वती शकर पीठ के पीठाधीश्वर थे और मख तथा कृष्णमिश्र ये दो कवि उनके समसामयिक थे। इनके पिता का नाम विष्णु था। ये शकर वेदान्त (अद्वैतवाद) के अनुयायी थे। बहरा जाता है कि इनके शिष्यों में एक ऐसा था जो दर्शन के अध्ययन को व्यर्थ समझता था। उसके प्रतिबोध के लिये प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक की रचना की गई थी। इस नाटक का बाह्यदत्त श्राद्धारिकभावना परक और उसका अन्तस्तत्त्व वेदान्त प्रचार परक था। इसका प्रथम अभिनय जेजाकभुक्ति के चन्देल राजा कीर्तिवर्मा की उपस्थिति में किया गया था। इस बात का उल्लेख १८९८ के शिलालेख में पाया जाता है।

नाटक के आमुख में राजा कीर्ति वर्मा और उनके मित्र गोपाल की चेदिराज कर्णदेव की सेना पर विजय दिखलाई गई है। उस विजय के उपलक्ष्य में जो आनन्दोत्सव मनाया गया था उसी में विजेताओं का अभिनन्दन करने में मन्तव्य से इस नाटक की रचना की गई थी और उसी में उसका प्रथम अभिनय किया गया था।

महोवा के शिलालेख के अनुसार कीर्तिवर्मा चन्देल राजा थे और उन्होंने अपने सेनापति गोपाल को साथ लेकर चेदिराज कर्ण पर आक्रमण कर दिया। नाटक के आमुख में गोपाल की कीर्तिवर्मा का मित्र बतलाया गया है जबकि शिलालेख के अनुसार गोपाल उनके सेनानायक थे। कामकोटि शकर पीठ के वशावली के अनुसार मख और कृष्णमिश्र गरी ४७ के अधिष्ठता चन्द्रशेखर के समसामयिक थे, चन्द्र शेखर का समय १०९७ से ११६५ ई है। कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०४९ से १११६ ई है। तथा इनकी विजय का समय १०६५ दिया हुआ है। अतः यही समय इस नाटक की रचना का भी होना चाहिए। सम्भवतः ये बगाल के मूल निवासी थे।

(२) कृष्णमिश्र- (नाका) बोरविजय नामक ईहामृग के लेखक। (दे) कोनो ने इस नाट्यकृति का उल्लेख अपनी नाट्य विषयक पुस्तक में किया है।

कृष्णमूर्ति- (नाका) दे अभिनव कालिदास।

कृष्णमूर्तिकुमार मञ्जुलाचार्य- (नाका) दे वल्लवीपल्लवोत्सास।

कृष्णराय- (नाका) दे कृष्णदेवराय।

(१) कृष्णलीला- (नाक) वैद्यनाथ लिखित नाटक। इसमें दो युगों की प्रेमलीला का चित्रण किया गया है- राधा-कृष्ण एव चन्द्रप्रभा विजयनन्दन। इसकी रचना १८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में की गई थी। इसका प्रथम अभिनय सधनीयात्रोत्सव में किया गया था। इसका सक्लन कैटेलागस कैटेलागोस स I १२३ और स II २४७ पर किया गया है। अल्दार स्टेट में संस्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेलाग स ९८ पर भी इसका सक्लन किया गया है।

कृष्णलीलातरंगिणी- (नाक) नारायणतीर्थ लिखित नाटक ।

कृष्ण विजय- (नाक) यह वेंकटवाद (दे) का लिखा एक ड्राम है । इसका सम्बन्ध मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणान्तर्गत सूची स ८५६९ ७४ पर किया गया है । इसके आमुख में इनके पूर्वजों की अनेक रचनाओं का परिचय दिया गया है ।

कृष्णशास्त्री- (परितियूर) (नाका) रामशास्त्री के पुत्र थे । इनका जन्म तञ्जौर के कडगवडि नामक स्थान पर सन् १८४३ में हुआ था । इनके वाम दादा ऊँचे सरकारी पदों पर नियुक्त थे तथा अपनी पवित्रता और शिक्षा के लिये प्रसिद्ध थे । इनकी रचना में हनुमान, मौनाक्षी इत्यादि कई शतक तथा एक सेटायर के अतिरिक्त कौमुदीसोमम् (दे) नामक एक नाटक भी है जो मद्रास से प्रकाशित हो चुका है ।

कृष्णानन्द वाचस्पति- (नाका) इनके लिखे नाट्यपरिशिष्ट या अन्तर्व्याकरण नाट्यपरिशिष्ट का प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है जिसमें व्याकरण के सिद्धान्तों की नाटकीय मनोरंजन के साथ शिक्षा दी गई है ।

कृष्णाब्धिशयनम्- (नाक) यह (१) श्रीनिवासाचार्य (दे) का लिखा नाटक है जो कि अब तक प्रकाशित नहीं हो सका है । कृष्णमाचार्य के अनुसार इसकी प्रति राजमदन में इनके पुत्र आरएस कृष्णमाचार्य के पास अब भी सुरक्षित है । इसका अभिनय उसी स्कूल में हुआ था जहाँ ये कार्यरत थे ।

कृष्णाभ्युदय- (नाक) कृष्ण जन्म को लेकर लोकनाथ भट्ट द्वारा लिखा गया नाटक । इसका प्रकाशन जवलपुर से १९६४ में हुआ था । प्रथम अभिनय काञ्चीपुर के हस्तगिरि नाथ की वार्षिक यात्रा महोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था ।

कृष्णार्जुन विजयम्- (नाक) यह वेंकटराम सीधी दीक्षितार लिखित ५ अकों का नाटक है जिसके अकों का विभाजन दृश्यों में किया गया है । प्रथम चार अकों में प्रत्येक में दो दो दृश्य हैं जबकि अन्तिम अंक में तीन दृश्य हैं । इसमें युधिष्ठिर द्वारा गय नामक गन्धर्व की रक्षा दिखलाई गई है ।

कृष्णावधूत पण्डित- (नाका) 'गीतम्' शीर्षक ईहामृग के लेखक । इनका समय १९वीं शताब्दी है ।

केलिरैवतक- (नाक) यह हल्लीस नामक उपरूपकका उदाहरण है । इसका इसी रूप में उल्लेख साहित्य दर्पण और भावप्रकाशन में किया गया है । अब यह रचना उपलब्ध नहीं होती ।

केशवनाथ- (नाका) इनका लिखा गोदापरिणय (दे) नामक विवाहविषयक नाटक प्राप्त होता है जिसका उल्लेख कैटेलगास कैटेलगोम् खण्ड १ स ११५९ पर किया गया है ।

केशव शास्त्री- (नाका) सुभद्रार्जुन (दे) नाटक के लेखक । इस नाटक की प्रति

खड़ा हो जाता है। जब उसे बाहर निकालने पति पत्नी आये तब वह उन दोनों की आँखों में भूसा झोंक देता है। जब तिलमिलाकर ये आँखें साफ करने लगते हैं तब सभी चिउड़े कौण्डिन्य खा लेता है और कहता है कि अब डाक्टर को मुँह का फोड़ा ठीक करने बुलाऊँ या आँखों से भूसा निकलाने। यदि चिउड़े तुम अकेले खाते तो तुम्हें ब्रह्मपक्षस होना पड़ता। मैंने सारे चिउड़े खाकर तुम्हें ब्रह्मपक्षस बनने से बचा लिया।

कौण्डिन्य ब्राह्मण- (नापा) कौण्डिन्य प्रहसन का मुख्य पात्र। यह पेटू ब्राह्मण है जिसका रसोई पर आक्रमण टाल सकना असम्भव हो जाता है। उसकी दृष्टि में मनुष्यों में वर्गभेद और उनमें सधस का मूल कारण भूख ही बतलाया गया है। भूख ही एक ऐसी जीवन की चाहत है जो एक साथ नहीं चलने देती।

कौतुकरत्नकर- (नाक्) कवि तार्किक का लिखा प्रहसन। एक मूर्ख राजा इसका नायक है। इसके सभी पात्रों के नाम हास्य जनक हैं। नगरी पुण्यवर्जिता, राजा दुरितार्णव, मन्त्रिगण - कुमतिपुत्र मुख्य पुरोहित - आचार कालकूट सेनापति समर कातर, आरम्भक अधिकारी सुशीलान्तक, चिकित्साधिकारी ध्याधिवर्धन ज्योतिषी अंशुभन्तक इमका मुख्य कथानक है - रानी दुरशीला का अपहरण हो जाता है। उसकी खोज के लिये राजा ने सभी प्रकार के दुश्चरित्र, दुष्ट लोगों को नियुक्त किया है। वसन्तोत्सव आ गया है, अतः राजा को सहधर्मिणी की आवश्यकता है। मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राजा अनगतरागिणी वेश्या से विवाह कर लेता है। तभी पता चलता है कि वषट्वेषधारी नामक ब्राह्मण ने रानी का अपहरण किया था। बड़ी ब्राह्मण अब अनगतरागिणी पर भी डोरे डाल रहा है। कोर्ट में मामला जाता है। ब्राह्मण अपराधी घोषित होता है। किन्तु वसन्तोत्सव में खुलकर भाग लेने से उसका अपराध धुल जाता है।

कौतुकसर्वस्व- (नाक्) गोपीनाथ चक्रवर्ती लिखित प्रहसन। सत्याचार एक पुण्यात्मा ब्राह्मण है जो कलिवत्पल के राज्य में सभी प्रकार के अन्याय देखता है। परपोइन झूठ बोतना, धर्मशीलों के प्रति घृणा इत्यादि आम बातें हो गई हैं। सेनापति बहुत वीर है जो तलवार से मक्खन की टिकड़ी भी काट सकता है किन्तु मच्छर के सामने कापने लगता है। ऋषि लोग बुढ़ापे के कारण जो काम स्वयं नहीं कर पाते उसे अधर्म कह देते हैं। राजा स्वच्छन्द प्रेम की धोषणा करता है किन्तु गणिका से प्रेम प्रसंग में रानी उस तलव कर देती है। गणिका की मित्राज पुरी के लिये सभी लोग दौड़ पड़ते हैं। राजा उसे प्रसन्न करने के लिये सभी ब्राह्मणों को देश निकाला दे देता है।

बंगाल में दुर्गापूजा के अवसर पर खेलने के लिये इसकी रचना की गई थी। इसके रचना काल का पता नहीं चलता कैटलागस कैटलागोरम स १३१ और III २८ पर इसका संकलन किया गया है। विल्सन ने वियेटर स II ४१० पर इसका विश्लेषण किया है। सामान्यतः यह रचना अच्छी मानी जाती है। बीथ के अनुसार यह नाटक अन्य प्रहसनों से अधिक रोचक और कम अश्लील है।

कौत्सस्य गुरुदक्षिणा- (नाकृ) वासुदेव द्विवेदी (दे) लिखित एकाङ्की। यह रघुवश के ५वें सर्ग के कथानक पर आधारित है। वरतनु के शिष्य कौत्स द्वारा राजा रघु से गुरुदक्षिणा के लिये सहायता मागने का कथानक इसमें रूपायित किया गया है।

इसका प्रकाशन सस्कृतप्रचारपुस्तकमाला वाराणसी से हुआ है।

कौमुदगन्ध- (नाकृ) दे कोमुदगन्ध।

कौमुदी- (नापा) (१) कौमुदी मित्रानन्द (दे) की नायिका। इसका जीवन अनेक विषम परिस्थितियों से आक्रान्त है। पहले तो यह एक मक्कार साधु के नियन्त्रण में है जो विभिन्न धनिकों से उसका विवाह कर पतियों को मौत के घाट उतार देता है और उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेता है। संयोग से उसे एक निपुण तथा साहसी व्यक्ति मित्रानन्द मिल जाता है जिस पर साधु की कोई कला नहीं चलती। कौमुदी पुराने पतियों की सम्पत्ति लेकर उसके साथ चली जाती है। किन्तु वह चोर समझ ली जाती है और राजपुरुषों के हाथ में पड़ जाती है। मित्रानन्द का राजा पर कुछ अहसान है जिससे वहा भी छूट जाती है। राजा उन्हें मन्त्री के सरक्षण में दे देता है। वहा भी मन्त्री की नियत कौमुदी पर विगड जाती है। मन्त्री धोखा देकर मित्रानन्द को नारवल के इच्छुक एक व्यक्ति के पास भेजकर उससे छुटकारा पाकर कौमुदी पर अधिकार करना चाहता है। मन्त्री की पत्नी कौमुदी को घर से निकाल देती है। वहा से छूटकर वह आदिवासियों के सरदार वद्वदन के हाथ पड़ जाती है। वहा पर राजा के पत्र द्वारा छुटकारा पाती है। तब वह एक कापालिक के हाथ पड़ जाती है। उधर किसी तरह घटकता हुआ मित्रानन्द भी वहा पहुच जाता है। कापालिक एक शव में प्राण फूक देता है जो तलवार लेकर उठ खड़ा होता है किन्तु मित्रानन्द मन्त्री के प्रभाव से उसका रुख कापालिक की ओर मोड़ देता है और कापालिक अदृश्य हो जाता है। अन्ध में सिद्धराज के स्थान पर दोनों का विवाह हो जाता है और वे आनन्द से रहने लगते हैं।

(२) कौमुदी सुधाकर (दे) की नायिका। सुधाकर नायक काल्याणी यात्रा में कौमुदी पर आसक्त हो गया है। किन्तु एक कापालिक कौमुदी का अपहरण कर लेता है। नायक उसे दूढ़ निकालता है। फिर राजा वसुमित्र के लिये उसका उपहरण किया जाता है फिर उसकी रक्षा हो जाती है और नायक नायिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

(३) कौमुदी सोमम्- (दे) की नायिका। राजा शरदारम्भ ने पुत्री कौमुदी को अशुभ लग्न में जन्म लेने के दोष में परिहार के लिये एक गणिका को सौंप दिया। एक वसन्तोत्सव में ज्योत्स्नावती का राजा सोम उस पर आसक्त हो गया। किन्तु सोम पर राजा अन्धकार के अग्रिमण के मध्य कौमुदा का अपहरण हो जाता है। गभीर दबी उसे बचाकर सोम से उसका विवाह करा देता है।

कौमुदीमहोत्सव- (नाकृ) मद्रास में प्राण नटक का सम्पादन रामकृष्ण कवि

और रामनाथ शास्त्री ने किया था और उसके साथ एक प्रस्तावना भी लिखी थी। नाटक की उपलब्ध प्रति में न तो नाटक का नाम है और न लेखक का पता चलता है। सूत्रधार के कथन में कौमुदीमहोत्सव का श्लेष दिया गया है जिसके आधार पर सम्पादकों ने कल्पना कर ली है कि इस नाटक का नाम कौमुदीमहोत्सव होगा। पुष्पिका में लेखक का नाम कीड़ों ने छा डाला है, केवल अन्तिम दो अक्षर 'क्या' पढ़ने में आ रहे हैं। ये अक्षर तृतीया एक वचन के अन्तिम अक्षर मालूम पड़ते हैं। जिससे ज्ञात होना है कि इस पुस्तक की रचना किसी ऐसी स्त्री ने की थी जिसके नाम का अन्तिम अक्षर 'का' है। कल्पना का गई है कि इसकी लेखिका विज्रिका है।

मगध के शासकों का निच्छत्री वंश वालों से पुराना वंश चल रहा था। मगध के शासक सुन्दर वर्मा के मेनाधिकारी चन्द्रमेन ने निच्छत्री वंश के शासकों से साठ गाँव कर षडयन्त्र से मगध पर आक्रमण करा दिया। युद्ध में सुन्दर वर्मा मारा गया। मगध के मन्त्री मन्त्रगुप्त ने मन्त्रियों के कुछ पुत्रों को मिलाकर विन्ध्याचल में पम्पा नामक स्थान पर राजकुमार कल्याणमल्ल को छिपा दिया और गुप्त रूप से राजकुमार को सिंहासनासीन करने के अवसर की खोज करने लगा। कुछ वर्षों में उसने सेना को फोड़ लिया और षडयन्त्रकारी को पराजित कर दिया। कल्याण मल्ल को पुनः राज्य प्राप्ति हो गई। उसके राज्यारोहण के अवसर पर उत्सव में इस नाटक का अभिनय किया गया था।

यह नाटक राजनैतिक दावपेंचों से सम्बन्धित है। किन्तु साथ में प्रेम प्रसंग का समावेश कर इसे मनोरंजक बनाया गया है। राजा सुन्दरवर्मा के राज्यकाल में योगसिद्धि नामक परिचारिका (नर्स) कल्याण मल्ल की देख रेख के लिये नियुक्त थी। जब सुन्दर वर्मा युद्ध में मारे गये योगसिद्धि विवश होकर सन्यासिनी बन गई। वह तीर्थ यात्रा के प्रसंग में मथुरा आती है जहाँ शूरसेन के राजा कीर्तिसेन उसका विशेष मन्त्र कर रहे हैं। वह विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शन करने जा रही है। अतः कीर्तिसेन अपनी पुत्री कीर्तिमती को उसके साथ कर देते हैं। सयोगवरा विन्ध्याचल के मध्य में पम्पा में उनका कल्याणमल्ल से परिचय होता है। कीर्तिमती और कल्याण मल्ल एक दूसरे को देखने हैं और एक दृष्टि में दोनों में ठक्कट प्रेम हो जाता है। उन दोनों के चित्र को देखकर योगसिद्धि अपने पालित राजकुमार को परिचय लेती है और पुरानी स्मृतियों में उसका हृदय भर जाता है। इसी बीच मन्त्रगुप्त की योजना सफल हो जाती है वह षडयन्त्रकारियों को पराजित कर मगध के शासन पर कल्याणमल्ल का अधिकार कर देता है। उसके पहले ही योगसिद्धि मधुत को लौटकर कल्याणमल्ल और कीर्तिमती के प्रेम की बात बतलानी है। कीर्तिमेन पहले ही कल्याणमल्ल की चतुरता और निजुगता से प्रभावित है। अब पुत्री की प्रेम भावना उसे और अधिक स्नेहशील बना देती है। वह स्वयंसाधु भेजकर विवाह का प्रस्ताव करता है और कल्याणमल्ल उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है।

राज्यारोहण का उत्सव कौमुदीमहोत्सव के रूप में मनाया जाता है। अतः इस नाटक

का नामकरण भी उसी आधार पर कल्पित कर लिया गया है। इसमें उच्चकोटि की काव्याकला है जो कहीं कहीं कालिदास से होड लेती है।

इस नाटक का कथानक ऐतिहासिक है। इसका सम्बन्ध गुप्त काल के प्रारम्भ से है। ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्क या उसके उत्तराधिकारी ने प्रशासन की सुविधा के लिये मद्रक जाट लोगों को आमन्त्रित किया था। यह शर्कों की जाति थी जिसकी सामाजिक स्वच्छन्दता के कारण इन्हें सम्मानित दृष्टि से नहीं देखा जाता था। जैसा कि महाभारत के कर्णपर्व से स्पष्ट है। इस जाति के लोगों को शवरो के दमन करने के मन्तव्य से बिहार और कौशाब्धी के मध्य का प्रदेश दिया गया था। उनकी हैसियत सामन्त लोगों की थी। जायसवाल के अनुसार यह गुप्त राजाओं का वर्ग था। प्रथम गुप्त सामन्त के शासन का विस्तार इलाहाबाद और साकेत (अयोध्या) तक था। इसका पुत्र घटोत्कच और घटोत्कच का पुत्र चन्द्रसेन कहा जाता है। इस चन्द्र या चन्द्रसेन ने ही गुप्त वंश के शासन की नींव डाली थी। तत्कालीन मगध सम्राट् सुन्दरवर्मा के अनेक रानिया थी किन्तु उनमें सन्तान किसी से नहीं थी। अतः सम्राट् ने चन्द्र को गोद से लिया और सम्भवतः उसे ही शासन का उत्तराधिकारी सौंपने को विचार भी था। सयोगवश सम्राट् की छोटी रानी ने कल्याणमल्ल को जन्म दे दिया जिससे शासन को एक वाम्ताविक उत्तराधिकारी मिल गया और हीनजाति के शासन की सम्भावना से जनता का पीछा छूटा।

जब चन्द्र को शासन की बागडोर अपने पैरों के नीचे से सरकती मालूम पड़ी तब उसने मगध के शत्रु लिच्छवियों की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह कर लिया जो अपने पति को असौमित्र प्रतिष्ठा प्रदान करने में कारण बनी। लिच्छवियों की शक्तिशाली सेना लेकर चन्द्र या चन्द्रसेन ने मगध पर आक्रमण कर दिया और युद्ध में महाराज सुन्दरवर्मा खेत रहा, मगध की गद्दी पर चन्द्र का शासन स्थापित हो गया उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। वह एक क्रूर शासक था और उसके सहायक लिच्छवी भी अत्याचारों से जिन्हें कौमुदीमहोत्सव की लेखिका ने राक्षस कहा है। नवीन शासन के अत्याचारों से जनता ब्रास्त हो उठी जो कि पहले से ही हीनवशीय होने के कारण चन्द्र को अच्छी निगाह से नहीं देखती थी।

कल्याण मल्ल अभी दुधमुहा बच्चा था। किसी न किसी प्रकार मन्त्रियों ने उसे निकाल कर बाकाटक वंश वालों के संरक्षण में किष्किन्ध्या में भेज दिया। जब कुमार बड़ा हो गया तब मन्त्रियों ने चन्द्र को पराजित कर उसे राज्य पर स्थापित कर दिया। उसके राज्यारोहण के अवसर पर ही यह नाटक खेला गया था। राजकुमार कल्याणमल्ल की शादी मयुरा की राजकुमारी से हुई थी।

कौमुदी मित्रानन्द—(नाट्) यह (१) रामचन्द्र द्वारा लिखित १० अंकों का एक प्रकरण है। वीथ के अनुसार यह एक पूर्ण नाट्य कृति नहीं है किन्तु अनेक घटनाओं को नाट्य शैली में प्रस्तुत कर उन्हें एक में जोड़ दिया गया है जिनका समाहार एक फल में

हो जाता है।

कौमुदी और मित्रानन्द की प्रेम कथा इसकी आधिकारिक कथावस्तु है। कौमुदी वरुण द्वीप में एक विहार के अध्यक्ष की पुत्री है। वह एक साधु के नियन्त्रण में है जो बहुत ही धूर्त और मज्जार है। कौमुदी का विवाह अनेक पतियों से किया गया और साधु ने उन सब पतियों को विवाह मण्डप के नीचे बने एक गर्त में झोंक दिया। वह सार्थवाह मित्रानन्द के सम्पर्क में आती है। मित्रानन्द ने अपने एक मित्र के साथ वरुण द्वारा निर्दयता पूर्वक बाधे गये सिद्धराज को मुक्त कराया है और वरुण से मोहन मन्त्र प्राप्त किया है। अतः उस पर साधु का अत्याचार नहीं चल सका। कौमुदी और मित्रानन्द का प्रेम हो जाता है। कौमुदी पुराने पतियों का धन लेकर मित्रानन्द के साथ सिंहल को भाग जाने के लिये उद्यत है। किन्तु राजपुरुष उसे चोर समझते हैं। इस प्रकार वे एक नई विपत्ति में पड़ जाते हैं। सयोगवश मित्रानन्द ने मन्त्र के प्रभाव से राजा लक्ष्मीपति को सर्पदंश से बचाया था। अतः राजा हस्तक्षेप कर उन्हें बचा लेता है और उन्हें मन्त्री के संरक्षण में दे देता है।

यहां दूसरी विपत्ति आ जाती है। मन्त्री की निगाह कौमुदी पर है और वह मित्रानन्द से छुटकारा पाकर कौमुदी को हस्तगत करना चाहता है। इसके लिये वह पत्र देकर मित्रानन्द को एक सामन्त के पास भेजता है जो नरवलि के लिये किसी पुरुष की ढलाश में है। वहां भी भाग्य से उसे एक साथी मैत्रेय की सहायता मिल जाती है जिसने सामन्त को जड़ी बूटी के प्रभाव से रोगमुक्त किया था। अतः मैत्रेय की सहायता से मित्रानन्द विपत्ति से छूट जाता है।

इधर मन्त्री की पत्नी ईर्ष्यावश कौमुदी को घर से निकाल देती है। तब कौमुदी भटकती हुई आदिवासियों के सरदार वज्रदन्त के हाथ में पड़ जाती है। उसी के यहां किसी सार्थवाह की पुत्री सुमित्रा और उसके परिवार के साथ कौमुदी का परिचय हो जाता है। वज्रदन्त सभी को बन्दी बना लेता है। वहीं मित्रानन्द का मित्र मकरन्द भी पहुंच जाता है। इसी समय कौमुदी और मित्रानन्द का समाचार जानने के लिये राजा का पत्र आता है जिसका लाभ उठाकर कौमुदी वज्रवर्मा के माध्यम से मकरन्द और सुमित्रा का विवाह कर देती है।

एकचक्रानगरी में एक कापालिक भूमिगत कन्दरा में लियों का प्रवेश कराता है। उसी समय वरुण स्त्रीलोलुप विद्याधर को नष्ट करने के लिये मित्रानन्द की सहायता चाहता है। वह एक शव में प्राणों का संचार कर देता है जो अपने हाथ में तलवार लेकर उठ खड़ा होता है। तब मित्रानन्द अपने मन्त्रों के प्रभाव से उसका रुख कापालिक की ओर मोड़ देता है। कापालिक अदृश्य हो जाता है। मकरन्द के कारण पर नारायणनाभक एक व्यक्ति अपना अधिकार जमाना चाहता है जिसका विनाश मित्रानन्द और विजयवर्मा के आने पर समाप्त हो जाता है।

यह नाटक रसात्मक दृष्टि से अत्यन्त निम्नकोटि का है। केवल आरच्यजनक घटनाओं में अद्भुत का यत्किञ्चित् आस्वाद प्राप्त हो जाता है।

इसकी रचना ११७३ से ११७६ के मध्य हुई। प्रकाशन १९१७ में भावनगर से किया गया।

कौमुदी सुधाकर- (नाट्य) एक प्रकरण जिसकी रचना चन्द्रकान्त ठाकुर (दे.) ने की थी। इसका प्रकाशन कलकत्ता से किया जा चुका है। कौमुदी और सुधाकर के प्रेम को लेकर इसके कथानक की रचना की गई है। नायक सुधाकर ने कात्यायनी यात्रा महोत्सव में नायिका कौमुदी को देखा है और वह उस पर आसक्त हो गया है। खण्डमुण्डन नामक एक कापयलिक नायिका का अपहरण कर लेता है। किन्तु नायक सुधाकर उसे ढूँढ निकालता है। दूसरी बार फिर राजा वसुमित्र के लिये उसका अपहरण किया जाता है। किन्तु भगवती की कृपा से उसकी फिर रक्षा कर ली जाती है। अन्त में नायक नायिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

इस नाटक की रचना १८८८ में हुई थी और उसी वर्ष कलकत्ता से उसका प्रकाशन हो गया था। हरचन्द्र के यहां पुत्रों के विवाह के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था।

कौमुदीसोमम्- (नाट्य) कृष्णशास्त्री पट्टितियूर लिखित ५ अकों का नाटक। यह एक प्रेम प्रधान नाटक है जिसमें उच्चकोटि की कविता के दर्शन होते हैं। इसमें नामकरण प्राकृतिक तत्वों के आधार पर किये गये हैं जिससे यह नाटक प्रतीक नाटक जैसा प्रतीत होता है। पुष्करपुरी में शरदाम्भ राजा के यहां कौमुदी कन्या का जन्म अशुभ लग्न में हुआ है। अतः दोषशान्ति के लिये उसे कस्तूरिका नामक गणिका को सौंप दिया जाता है। ज्योत्स्नावती एक दूसरी नगरी है जिसकी रानी तारावती द्वारा आयोजित वसन्तोत्सव में कस्तूरिका और कौमुदी दोनों आती हैं। ज्योत्स्नावती का राजा सोम कौमुदी पर मोहित हो जाता है। इसी बीच सोम की राजधानी पर अन्धकार नामक राजा का आक्रमण होता है और परिणाम स्वरूप कौमुदी का अपहरण हो जाता है जिसे गभस्ति देवी बचा लेती है और सोम तथा कौमुदी का पुनर्मिलन हो जाता है।

इस रूपक की रचना १८६० में केरल नरेश रामवर्मा के राज्याभिषेक के अवसर पर की गई थी। इसका प्रकाशन मद्रास से हुआ है।

कौशल्या- (नाट्य) राम की भाता। रामायण में इनमें मातृत्व के गुण और सहृदयता भाग्युर है। कर्तव्य परायणता की भी कमी नहीं। रामायण में इसके प्रति सहानुभूति जाग्रूत होती है। यह सचमुच अत्यन्त दुःख से पीडित है जैसाकि इसने स्वयं कहा है- सौतों के उलौडन में पडो रहने से पति के पौरुष में न कल्याण देखा न सुख-

‘न दृष्टपूर्वं कल्याण सुख वा पतिपौरुषे’

पुत्र का निर्वासन, वैधव्य और अन्त में बहू का निर्वासन तथा पौत्रों का जगल में जन्म । किन्तु राम विषयक अधिकांश नाटकों में इस पात्र की उपेक्षा ही हुई है । उत्तर रामचरित में अवश्य उसके प्रति समवेदना व्यक्त की गई है । सन्यस्त जीवन बिता रहे जनक से उनकी मुलाकात बन में होती है जहाँ करुणा छा जाती है और समवेदना का वातावरण अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है । कौथ के शब्दों में उनकी समवेदनाओं में अमापिकता है और चित्रण हृदयस्पर्शी है ।

कौशिक- (नापा) यह चण्डकौशिक नाटक का एक पात्र है । यह क्रोधी व्यक्ति है । जिस समय यह वेदत्रयी की साधना में निरत है, आश्रम में आती हुई स्त्रियों की करुण वेदना को सुनकर उसी समय वहाँ पहुँचे हुये हरिश्चन्द्र भूल से यह समझ जाते हैं कि आश्रम में किसी स्त्री का बलिदान किया जा रहा है । वे आश्रमवालों को अपराध कह देते हैं जिससे कौशिक रुष्ट होकर शाप दे देते हैं और प्रतिक्रिया बड़ी भयानक होती है । उनके क्रोध को शान्त करने के लिये हरिश्चन्द्र को अपना राज्य ही नहीं सर्वस्व दे देना पड़ता है यहाँ तक कि स्त्री, पुत्र को और स्वयं को भी बेचना पड़ता है ।

कौशिक नरत्नबोध- (नाका) इनका लिखा राजासर्वस्व (दे) नामक एक भाग प्राप्त होता है जिसका सकलन तजौर की पैलेस लायब्रेरी में स VIII ३९०६ पर किया गया है ।

कौशिकी- (नापा) मालविकाग्निमित्र (दे) की एक पात्र । वह मालविका और उसकी सहायिका रही है और विपत्तियों की मारी तपस्विनी बनकर विदिशा में आई है । वह उदात्त पात्र है, विदुषी है और संस्कृत बोलती है, नृत्यकला और सर्पदश चिकित्सा में पारंगत है । वह मालविका को राजा के निकट लाने में सहायक होती है किन्तु मालविका की वास्तविकता प्रकट करने के लिये तब तक चुप रहती है जब तक उसका उचित अवसर नहीं आता । वह पीटर्मर्दिता (गुणवती सहायिका) बढी गई है और एक विश्वसनीय दूती का कर्तव्य पूरा करती है । वह मालविका के साथ राजा के विवाह में सहायक होते हुये भी रानी धारिणी को डाँटस बधाती है और उसकी विश्वास पात्र बनी रहती है ।

क्रीडाभिराम- (नाक) इस नाम की एक कौथी संस्कृत में लिखी गई थी जो अब उपलब्ध नहीं होती । किन्तु तेलुगु में इसका अनुवाद मिलता है । इसमें संस्कृत नाट्य के छाया रूप के अन्तर्गत चित्रदर्शन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । प्रतापरद्र ॥ के आश्रय में इसकी रचना हुई थी । टिटिभ और गोविन्द ये दो व्यक्ति वाराणसी की सड़क पर घूम रहे हैं । वे सड़क के आस पास के दृश्यों को चित्र पट पर दिखाते हुए सुविचारित एवं मनोरंजक रूप में वर्णन करते हैं । इसमें कनवास के पारदे पर पालनाडु के ६५ नायक दिखावाये गये हैं । चित्र दर्शन के इसी व्यवसाय में सगा एक शारारती बच्चा संगीत के

बोलों पर अभिनय करता है जिसे एक पेशेवर औरत गाती है। दृश्य में नायिका वासना से उत्तेजित है और सामन्त लोगों का इस रूप में प्रदर्शन किया गया है कि वे नायिका के लिये वासना में अन्धे हो रहे हैं तथा आपस में विनाशक संघर्ष में निरत हैं।

क्रीडा रसातल- (नाकू) विश्वनाथ ने श्रीगदित उपरूपक के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया है जो अब प्राप्त नहीं होता।

क्रूरसापत्यम्- (नाकू) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ६ अंकों का नाटक।

क्लान्तकौन्तेयम्- (नाकू) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक।

क्लिष्टकीचकम्- (नाकू) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक।

क्षणिकविभ्रम- (नाकू) लाला राव दयाल लिखित एकछत्री जिसमें एक ऐसे पति का चित्रण है जो पत्नी के दुर्व्यवहार से तंग होकर घर छोड़ देता है।

क्षयणक- (नापा) (१) मन्नाक्षस का एक पात्र। यह एक गुप्तचर है।

(२) प्रबोधचन्द्रोदय में जैनमत का प्रतीक।

क्षमा- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय में राजा विवेक की प्रधान नायिका।

क्षमाशीलो युधिष्ठिर- (नाकू) दे युधिष्ठिर।

क्षितिशेखर चट्टोपाध्याय- (नाका) इनका समय १८९६ से १९६१ ई है। इनके पिता शरच्चन्द्र और माता गिरिवालादेवी थीं। ये प्रसिद्ध वैयाकरण एवं भाषा शास्त्री और कलकत्ता विद्यालय में तुलनात्मक भाषाशास्त्र के प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे। इन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन किया था। इनकी रचनायें मञ्जूषा में प्रकाशित होती रही थी। इन रचनाओं में एक एकाकी 'अन्यैरन्यस्य दृष्टिं प्रदीयते' भी है जो जन १९५५ में प्रकाशित हुआ था।

क्षीराब्धिशयनम्- (नाकू) यह १९वीं शताब्दी के श्रीनिवासाचार्य का प्रथम कृति है जिसके नाम से ज्ञात होता है कि इसमें विष्णु भगवान की शेष शय्या को कथानक की पृष्ठ भूमि के रूप में स्वीकार किया गया होगा। कृष्णाचार्य ने लिखा है कि इसकी पाण्डुलिपि उनके पुत्र आर कृष्णमाधव्य के यहाँ सुपुष्टित है जो राजमदन के निवासी थे।

सुतक्षेपीयम्- (नाकू) यह श्री जीनन्माधवीर्य का लिखा नाटक है जिसकी रचना २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में और प्रकाश १९७२ में नाटकचित्र के जगतगुरु कलकत्ता में किया गया था।

इसका नायक रगनाथ है जो दमराज के एक अधिवारी चित्रगुप्त का स्वागत सत्कार करता है। चित्रगुप्त उसे बतलाने है कि उनकी आजु केवल एक वर्ष शेष है। किन्तु यदि वे तीन दुजियो के लिये उनका घर पर अपनी का प्रबन्ध करें तो आयु बढ़ाई जा सकती है। रगनाथ इस परामर्श के अनुसार कथं करने लगते हैं। मृत्यु के बाद रगनाथ को

यमलोक ले जाया जाता है। जब यमराज उपस्थित होते हैं तब चित्रगुप्त की योजना के अनुसार रगनाथ छौंक देता है। सामान्य आचार है कि किसी को छौंक आने पर 'जीव' 'जीव' कहा जाता है। उसी परम्परा के अनुसार यमराज 'जीव' 'जीव' कह देते हैं। तब चित्रगुप्त कहते हैं कि अब तो आपको इसे जीवन दान देना ही होगा क्योंकि आपने 'जीव' 'जीव' कह दिया है और इसने गरीबों के घरों पर छानी को व्यवस्था की है। तब यमराज उसके जीवन का लेखा जोखा देखकर गरीबों के लिये छानी की व्यवस्था के पुरस्कार के रूप में उसे पुनः जीवन में लौटने का आदेश देते हैं।

इसका प्रथम अभिनय सास्कृतिक समाज की प्रतिष्ठा के अवसर पर किया गया था।

क्षेमीश्वर—(नाका) इनको क्षेमेन्द्र के नाम से भी पुकारा जाता है। किन्तु प्रसिद्ध काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र से ये भिन्न थे। इनके चण्डकौशिक की प्रस्तावना में लिखा है कि यह नाटक कन्नौज के राजा महोपाल के लिये लिखा गया था। कहा नहीं जा सकता कि क्या ये महोपाल वही थे जिनके लिये राज शेखर ने बालभारत की रचना की थी। यदि वे वही महोपाल हों तो ये राज शेखर (दे) के समसामयिक सिद्ध होते हैं। वैसे इन्होंने अपने आश्रयदाता की कर्णाटों पर विजय का उल्लेख किया है जिससे राजशेखर के साथ इनकी समसामयिकता प्रमाणित होती है। पिरोल इसी मत के हैं किन्तु कण्णमाचार्य का मत है कि ये महोपाल ११वीं शताब्दी के भुवनमल्ल हैं जिनकी कतिपय प्रशस्तियां प्राप्त हुई हैं। इनके पितामह के भाई का नाम विजय प्रकोष्ठ था।

इनके दो नाटक प्रसिद्ध हैं— नैषधायन (दे) और चण्डकौशिक (दे)। ये बड़े छन्दों में लिखने के शौकीन हैं और उसमें सिद्धहस्त भी हैं। विष्णुनिबन्ध का कहना है कि भाषा की शक्ति कर्ण भावना और सन्धे समासों की शैली भवभूति की याद दिलाती है यद्यपि ये वहाँ तक पहुँचते नहीं हैं। अज्ञातनामा कवि की हरिश्चन्द्रयशश्चन्द्रिका कुछ लोगों के मत में इन्हीं की रचना है।

(१) **क्षेमेन्द्र—**(नाका) ११वीं शताब्दी के बहुमुखी प्रतिभा के धनी, काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र का उपनाम व्यासदास भी प्राप्त होता है। इनके पिता प्रकाश सेन बहुत बड़े दानी थे और उन्होंने विभिन्न धार्मिक कार्यों में लगभग ३ करोड़ रुपिया व्यय कर दिया था। अभिनवगुप्त इनके गुरु थे। पहले ये शैव मानानुयायी थे किन्तु बाद में सोमाचार्य की शिक्षा के प्रभाव से वैष्णव हो गये थे और भगवतधर्म का पालन करने लगे थे। यद्यपि ये बौद्ध नहीं थे फिर भी उस धर्म के प्रति उनकी दृष्टि उदार थी।

साहित्य की शायद कोई ही विधा या कोई ही विषय विभाग हो जिसमें इन्होंने रचना न की हो। महाभारत रामायण जैसी मूर्धन्य कृतियों का साक्षिणीकरण बृहत्कथा और वादम्बरी का पद्यबद्ध अनुवाद, धार्मिक, उपदेशात्मक, कर्मकाण्ड सम्बन्धी, नीतिमूक्ति, कविशिक्षा काव्यशास्त्र, छन्द शास्त्र, राजनीति, इतिहास सस्मरण, भौगोलिक वर्णन, व्यापार,

सीनरी, पुराण, राजावली, आर्थिक लेन देन, कवि परिचय यहां तक कि कामशास्त्र सम्बन्धी विषय भी इनकी मौलिक रचना के क्षेत्र से अछूते नहीं रहे। इनकी अनेक कृतियां अब लुप्त हो गई हैं। उनका नामोल्लेख मात्र शेष रह गया है।

क्षेमेन्द्र को कोई नाट्यकृति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। इनकी दूसरी कृतियों में कतिपय उद्धरण या उल्लेख पाये जाते हैं जिनसे ज्ञात होता है इन्होंने कई नाटक भी लिखे थे। औचित्यविचारचर्चा से दो नाटकों का पता चलता है— ललितरत्नमाला और चित्रभारत। इस दूसरे नाटक से कवि कण्ठाभरण में भी उद्धरण दिया गया है। कविकण्ठाभरण में कनकजानकी नामक एक तीसरे नाटक से भी उद्धरण दिया गया है। कृष्णमाचार्य ने 'कलावतीकामरूपम्' प्रकरण का रचयिता भी क्षेमेन्द्र को ही माना है।

क्षेमेन्द्र जैसे बहुमुखी प्रतिभा के घनी थोड़े ही रचनाकार होते हैं। अभी तक इनका साहित्य अनुसन्धानापेक्षी है और हम तत्कालीन भारत के विषय में इनकी रचनाओं से बहुत कुछ जान सकते हैं। केवल विस्तार की दृष्टि से ही नहीं इनका महत्व औदात्य, लालित्य, वैदग्ध्य और कला की दृष्टि से भी कम नहीं है।

(२) क्षेमेन्द्र—(नाका) दे क्षेमीश्वर।

ख

खर्परखान—(नापा) हम्मीरमदमर्दन का एक पात्र।

खेत स्कन्दशंकर—(नाकर) ये २०वीं शताब्दी के नागपुर निवासी कवि हैं। सरकारी सेवा में कार्यरत रहे और नागपुर में कृषि विभाग से सेवा निवृत्त हुये। इनको छोटे छोटे छात्रोपयोगी नाटकों के लिखने का शौक था। इनके लिखे नाटक नागपुर एव बम्बई में ठठसों पर प्रस्तुत किये गये हैं। ये नाटक हैं— मालाभविष्यम् हाहन्त शारदे, लाला वैद्य, ध्रुवावतार और अरघटघट्ट।

ग

गंगा—(नापा) (१) उत्तर रामचरित में गङ्गा के मानवीकृत रूप को पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। निर्वासित सीता प्रसव वेदना से पीड़ित होकर गंगा में कूद पड़ती है। वहीं दो बालकों को जन्म देती है। गंगा और पृथ्वी दोनों दो बच्चों के साथ सीता को वाल्मीकि आश्रम में भेज देती हैं। अभिनय के अवसर पर भी यही दृश्य दिखलाया जाता है जिसको देखकर राम के सहित समस्त परिवार अभिभूत हो जाता है।

(२) प्रसन्नराधक में मानवीकृत पात्र । यह यमुना की सहेली है और यमुना से अपने भाई सुभीव के वालि द्वारा किये गये निर्वासन पर दुख प्रकट करने उसके पास गई है ।

गंगातरंगिका- (नाकू) यह पारिजात रत्ना या केवल पारिजात नामक उपरूपक का उदाहरण है । जिसका उल्लेख शारदातनय ने किया है । अब यह रचना प्राप्त नहीं होती ।

गंगादासप्रतापविलास- (नाकू) यह १ अकों का नाटक है जिसकी रचना (३) गंगाधर ने की है । इसमें चम्पकपुर (गुजरात) के राजा गंगादास भूवल्लभ प्रतापदेव का गुजरात के शाहमुहम्मद द्वितीय (१४४३-१४५१) के साथ संघर्ष दिखलाया गया है । इसके ५वें अंक का अभिनय अहमदाबाद के सुल्तान मुहम्मद के दरबार में दिखलाया गया है । इसका उल्लेख इण्डिया आफिस कैटेलाग स ४१९४ पर किया गया है ।

(१) गंगाधर- (नाका) चन्द्रविलास (दे) नाटक के लेखक । ये १३वीं शताब्दी के चारणल के राजा प्रताप रूद्र देव के दरबारी कवि अगस्त्य की बहन के पुत्र थे । कहा जाता है कि राघवाष्टुदय नाटक भी इन्हीं का लिखा हुआ था । इन्होंने महाभारत की कथा का भी नाटकीय पद्धति पर विरलेषण किया था ।

(२) गंगाधर- (कविराज) (नाका) ये १९वीं शताब्दी के अन्त और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल में विद्यमान थे इनकी लिखी तारावती नाटिका (दे) बतलाई जाती है ।

(३) गंगाधर (नाका) इनका समय १५वीं शताब्दी का मध्य भाग है । इनका लिखा गंगादासप्रतापविलास नामक ऐतिहासिक नाटक इण्डिया आफिस लायब्रेरी में संकलित किया गया है ।

गंगाधर सुनु- (नाका) ७ अकों के राघवाष्टुदय के लेखक ।

गंगाभागीरथम्- (नाकू) यह एक नाट्यकृति है जिसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है । यह रचना अब उपलब्ध नहीं होती ।

गंगावतरण- (नाकू) यह नीलकण्ठ लिखित ८ अकों का नाटक है इसमें स्वर्ग से गंगा के उतरने का अंकन किया गया है । कैटेलागस कैटेलागोरम स III ८० पर इसका उल्लेख किया गया है ।

गजाननचरित- (नाकू) शिवनन्दन (दे) लिखित नाटक ।

गजानन याल कृष्ण पलसुले- (नाका) ये २०वीं शताब्दी के नाटककार हैं । इनका लिखा वीरसावरकर अवदान विषयक नाटक 'धन्योहम्' बदलाया जाता है । इनका लिखा एक दूसरा नाटक 'भासोऽहम्' भी प्राप्त होना है । ये पूना विरविद्यालय में संस्कृत के विभागाध्यक्ष थे ।

गजेन्द्रलालशर्कर- (नाका) ये २०वीं शताब्दी में गुजरात के निवासी थे । इन्होंने

विषमपरिणयम् नामक नाटक लिखा था।

गजेन्द्रव्यायोग- (नाक) यह व्यायोग मुहुम्बई वेङ्कटराम नासिंह आचार्य (दे) की रचना है। इस व्यायोग में गजेन्द्रमोक्ष की प्रसिद्ध कथा विव्रित की गई है। नृत्य और गीत की इसमें अधिकता है। इसका प्रथम अभिनय सिंहगिरिनाथ के चन्दन महोत्सव पर किया गया था। इसे व्यायोग तो कहा गया है किन्तु व्यायोग की व्यवस्थाओं का इसमें पूरा निर्वाह नहीं हुआ है।

गणदास- (नापा) मालविकाग्निमित्र में मालविका को राजा की दृष्टि में लाने के लिये विदूषक ने जिस नृत्य प्रतियोगिता का आयोजन किया था उसमें मालविका को नृत्य की शिक्षा देने के लिये इन्हीं को नियुक्त किया गया था। इस प्रकार मालविका और अग्निमित्र को निकट लाने में इनका भी योगदान था।

गणदेवता- (नाक) डा रमाचौधरी द्वारा ताराशंकर बन्योपाध्याय लिखित गणदेवता शीर्षक उपन्यास पर आधारित नाटक।

गणपति- (नाका) चल्हण के उद्धरण से ज्ञात होता है कि राजशेखर ने इनकी प्रशस्ति में कहा है कि इनकी रचना अत्यन्त आनन्द देने वाली है। इनके 'महामोद' की पूजा विद्याधर भी करते हैं। क्या महामोद इनकी नाट्यकृति है? मृच्छकटिक पर गणपति की एक टीका भी पाई जाती है। क्या टीकाकार गणपति इनसे अभिन्न हैं?

गणपतिविलासम्- (नाक) यह नैधुव व्यङ्गदेश (दे) लिखित नाटक बरलाभा जाता है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है। कहा नहीं जा सकता नैधुव का ही लिखा एक दूसरा नाटक सभपतिविलासम् ही तो यह रचना नहीं है।

गणपति शास्त्री- (नाका) उच्चकोटि के साहित्यकार एवं अनुसन्धाता। इनका जन्म १८६० में तिल्लीविली जिले के तिरुवई स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम रामसुब्बा अय्यर था। इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई थी। ये सस्कृत कालेज त्रिवेन्द्रम् में प्रिंसिपल थे और बाद में टावन्कोर के महाराजा के सरक्षण में त्रिवेन्द्रम् में प्रकाशनों के अधिष्ठाता बन गये थे। इनका सबसे बड़ा कार्य है भास के नाटकों की खोज करना और इन नाटकों के अनुसन्धाना के रूप में ही ये ससार में जाने जाते हैं। इनके द्वारा सम्पादित पुस्तकों की भूमिकाओं में इनकी अत्यधिक विशेषता के दर्शन होते हैं। केवल १७ वर्ष की आयु में इन्होंने माधवीवसन्त नामक एक प्रकरण की रचना की थी जो टावन्कोर पुस्तकालय स १८० पर सुरक्षित है।

गणिका- (नापा) (१) कौतुक सर्वस्व (दे) में राजा कलिवत्सल की प्रेमिका। राजा ने स्वच्छन्द प्रेम की घोषणा की है। वह उसी के अनुसार गणिका से प्रेम करता है, किन्तु उसे राजा का कोप भाजन होना पड़ता है।

(२) कौतुक रत्नाकर- (दे) गणिका का एक पात्र है जब मदन महोत्सव में गणिका

नायिका का स्थान ले लेती है तब उसके साहसिक कारनामों के हास्य में अभिवृद्धि करते हैं।

(३) अश्वघोष के शारिपुत्र प्रकरण- के साथ उपलब्ध गणिका विषयक रूपक का एक पात्र। पूर्ण नाटक उपलब्ध न होने के कारण इसके चरित्र और उद्देश्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

गणिका विषयक रूपक- (नाकृ) अश्वघोष (दे) के शारिपुत्र प्रकरण के साथ इसके कुछ भाग प्राप्त हुये हैं। प्रति सर्वथा उच्छिन्न है और उसके आधार पर कथानक का कोई रूप स्थिर नहीं किया जा सकता। हस्तलिपि और सामान्य रूप रेखा के आधार पर कहा जा सकता है कि यह कृति भी अश्वघोष की ही है। इसके पात्र हैं- मागधवती गणिका कौमुदगन्ध विदूषक, नायक (सम्भवतः सोमदत्त सन्नक) दुष्ट, धनञ्जय (सम्भवतः राजकुमार), दासी, शारिपुत्र मौद्गल्यायन और भोव नाम का एक निम्न कोटि का पात्र। इस नाटक का उद्देश्य शृङ्गार से शान्त की ओर प्रवृत्त करना ज्ञात होता है। इसका मूल उद्देश्य धार्मिकता ही है किन्तु अधिक प्राग शृङ्गार के लिये व्यय किया गया है। दृश्य स्थल गणिका का घर और आशिक रूप में उद्यान का एक भाग चुना गया है। उत्सव के लिये पर्वत शिखर तय किया गया है। प्राप्त खण्डों से ज्ञात होता है कवि को शृङ्गार और हास्य के चित्रण में भी महारत हासिल थी और चोर जुआरी, शराबी, के चित्रण में कवि ने पर्याप्त सफलता पाई है।

इस रचना में नाटयशास्त्र के तत्व अधिक मुखर होकर सामने आये हैं। विदूषक का नाम कौमुदगन्ध रखा गया है जो कुमुदगन्ध का बना हुआ रूप है और नाटयशास्त्र की इस परम्परा के अनुरूप है कि विदूषक का नाम पुष्प, वसन्त इत्यादि तत्वों के आधार पर होना चाहिए किन्तु गणिका के नामकरण में शास्त्रीय मर्यादा की उपेक्षा की गई है। शास्त्रीय मान्यता है कि गणिका नाम सेना, सिद्धा, दत्ता इत्यादि के साथ होना चाहिये। मागधवती नाम इस मान्यता का अपवाद है। ज्ञात होता है नाटयशास्त्र की यह मान्यता बाद में सत्ता में आई होगी। कतिपय पात्रों का नामकरण नहीं किया गया है- दुष्ट नायक इत्यादि नामों को चरित्र परिचायक नामों के साथ ही छोड़ दिया गया है। कवि ने कल्पना की है कि नायक शायद सोमदत्त है और धनञ्जय सम्भवतः राजकुमार है क्योंकि उसके लिये नाटयशास्त्रीय परम्परा के अनुसार भट्टिदालक शब्द का प्रयोग किया गया है।

गणेशचतुर्थी- (नाकृ) यह लीलाराम दयाल (दे) की लिखी नाटयकृति है। लेखिका ने इस अन्यविश्वास की पृष्ठभूमि में इसकी रचना की है कि चतुर्थी के दिन चन्द्रदर्शन कुपलदायी होता है। (चतुर्थीचन्द्र दर्शन क विषय में गोस्वामी तुलसीदास का कथन- तौ पर नारि लिलार गोसाईं। तजिय चौय चन्दा की नाई ॥)

गणेशचरित- (नाकृ) धनरथाम (दे) लिखित नाटकों में इसका उल्लेख पाया जाता है। पर अभी तक इसका पता नहीं चल सका है।

गणेशपरिणयम्- (नाक) यह सात अकों का नाटक वैद्यनाथ शर्मा व्यास (दे) का लिखा हुआ है। ब्रह्मा की पुत्रियों सिद्धि और बुद्धि के साथ गणेश के विवाह का कथानक लेकर इस नाटक की रचना की गई है। ब्रह्मा जो शिवजी के पास अपनी पुत्रियों के गणेश के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं। इधर गणेश अपने दूत नन्दी को सिन्धुराज के पास बन्दी बनाये हुये इन्द्रादि देवताओं को मुक्त करने की माग लेकर भेजते हैं। सिन्धुराज इन्कार कर देते हैं तब युद्ध होता है जिसमें सिन्धुराज पराजित होता है देवताओं को कैद से छुटकारा मिल जाता है। वे सब गणेश के विवाह में शामिल होते हैं।

इस नाटक का प्रकाशन इण्डियन प्रेस प्रयाग से सन् १९०४ में हुआ था। मिथिला राजवंश के जनेश्वर सिंह ने इसे पुरस्कृत किया है।

गरुड- (नापा) (१) वालविरत (दे) में जब वसुदेव कृष्ण को नन्द के सुपुर्द कर देते हैं तब गरुड गोपवेश धारण कर कृष्ण की सेवा में उपस्थित हो जाते हैं।

(२) नागानन्द (दे) में गरुड ने नागों से समझौता कर रक्खा है कि एक नाग नित्य उसके भोज्य के रूप में उपस्थित होगा। उसी प्रसंग में एक दिन एक नाग (शखचूड़) के स्थान पर जीमूतवाहन चला जाता है। जब भोजन के मध्य में भी भोज्य जीमूतवाहन प्रसन्न मुद्रा में दिखताई पड़ता है तब उसे मालूम होता है कि उसने कुछ भूल की है। तत्काल उसमें दैवीवृत्तिजन्म करुणा उत्पन्न हो जाती है। वह विवेकशील है। मासाहारी पक्षी की योनि में होते हुये भी वह भूलका अनुभव कर दयावश भोजन से विरत हो जाता है। वह हड्डियों की राशि पर अमृत वर्षा कर मृतनागों को जीवन दान देता है। विवेकशीलता और करुणा उसके दैवी गुण हैं।

(३) दूतवाक्य- (दे) में जब कृष्ण अपना विश्व रूप प्रकट करते हैं तब उनका वाहन गरुड वहाँ उपस्थित हो जाता है।

गर्वपरिणति- (नाक) नन्दलाल विद्याविनोद (दे) प्रणीत नाट्यकृति। इसमें पाश्चात्य सभ्यता की हीनता का प्रतिपादन किया गया है। रामचन्द्र और कमला का बड़ा पुत्र कृष्णदास भारतीय सभ्यता में पला है और उस पर पाश्चात्य सभ्यता का कोई प्रभाव नहीं है जबकि छोटा पुत्र सुरेश पढ़ा लिखा है और पाश्चात्य सभ्यता के प्रति आकृष्ट है। वह अपने बड़े भाई को घृणा की दृष्टि से देखता है क्योंकि वह पाश्चात्य सभ्यता से दूर है। वह क्रूर स्वभाव का है जिससे बड़े भाई के प्रति उसके व्यवहार के कारण माता-पिता व्यथित रहते हैं। एक दिन सुरेश वन को जाता है जहाँ वह चक्कर में फँस जाता है। वहाँ पाश्चात्य सभ्यता और पुस्तकीय ज्ञान उसकी कुछ भी सहायता नहीं करते तब उसका बड़ा भाई ही जाकर उसकी रक्षा करता है। इससे सुरेश के व्यवहार में अन्तर आ जाता है और वह पाश्चात्य सभ्यता के मिथ्या मोह को छोड़ देता है।

इस नाटक में नवीनता के भी दर्शन होते हैं। अकों का दृश्य में विभाजन किया

गया है। इसमें गान्दी, अर्थोपश्लेषक, प्रस्तावना का अभाव है जो भारतीय कला की विशेषतायें हैं। पूरा नाटक गद्य तथा छोटे छोटे वाक्य खण्डों में लिखा गया है। पूरे नाटक में केवल भारत वाक्य पद्य में है। इसमें करुणा और हास्य का सम्मिश्रण है तथा चरित्र विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। पारिवारिक वातावरण के चित्रण में लेखक ने सफलता पाई है। सन् १८८५ में सस्कृतचन्द्रिका में इसका प्रकाशन हुआ था।

गान्धारी- (नापा) (१) वेणीसहार में यह दुर्योधन को युद्ध से विरत करने का प्रयत्न करती है और एक बार पति के साथ युद्ध भूमि में जाकर दुर्योधन को सन्धि के लिये प्रेरित करती है। वह दुर्योधन की मा है और उसमें भी मातृसुलभ वात्सल्य है। किन्तु फिर भी वह सच्चाई और औचित्य को समझ सकती है। दुर्योधन के कल्याण मार्ग का भी ठीक अनुमान लगा सकती है। कुटुम्बनाश की भयानक कल्पना से वह विचलित है, उसे दलने की भरसक चेष्टा करती है पर सफल नहीं होती।

(२) उरुभग (दे) में दुर्योधन की घायल अवस्था में परिवारजनों के साथ गान्धारी भी आती है। सभी पुत्रों और विशेषकर दुर्योधन की दुर्गति पर वह करुणा से भरी हुई है। पर नियति के द्वारा निर्धारित मार्ग का वह अतिक्रमण कैसे कर सकती है?

गान्धी विजयम्- (नाक) मधुरा प्रसाद दीक्षित का लिखा नाटक। गान्धी जी की अग्नीका तथा भारत की गतिविधियों का इसमें चित्रण किया गया है। साथ ही तिलक नेहरू, पटेल, इर्विन के चरित्रों पर भी प्रकाश डाला गया है।

गिरिजाया. प्रतिज्ञा- (नाक) इसकी लेखिका हैं श्रीमती लीलाराव दयाल। गिरिजा के एकमात्र पुत्र की हत्या कर दी जाती है। गिरिजा बदला लेने का निश्चय करती है। एक दिन जेल से भागा हुआ कैदी शरण की तलाश में गिरिजा के घर आता है। गिरिजा उसे कुर्चे में छिपा देती है। बाद में जब पता चलता है वही उसके पुत्र का हत्यारा है तब वह बदला लेने की ठानती है। किन्तु जब कैदी कहता है कि मैं भी अपनी माता का एकाकी पुत्र हूँ तब गिरिजा उसे क्षमा कर देती है। यह रचना २०वीं शताब्दी की है।

गिरिसर्वधनम्- (नाक) जीव न्यायतीर्थ (दे) का लिखा नाटक। इसमें कृष्ण द्वारा पर्वत उठाव करने की कथा नाट्य रूप में प्रस्तुत की गई है। सुदर्शन चक्र, योग भाषा इत्यादि का इसमें छाया रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसमें स्थान स्थान पर हास्य का पुट है और संगीत तथा नृत्य की बहुतायत है।

गीतम्- (नाक) कृष्णावधूतपण्डित (दे) लिखित ईरामुग। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई था।

गीतगणपति- (नाक) कृष्णदत्त लिखित गीतात्मक रचना जो गीतगोविन्द की शैली पर लिखी गई थी।

गीतगोविन्द- (नाक) जयदेव की इस कृति को कुछ विद्वानों ने नृत्यनाटिका की

सज्ञा दो है। इसमें केवल तीन पात्र हैं— कृष्ण, राधा और उनकी सखी। इन पात्रों द्वारा गाये हुये गीतों का निबन्धन इसमें किया गया है। साथ ही यत्र तत्र प्रगीतात्मक पद्य भी पाये जाते हैं जिनमें या तो कृष्ण विषयक स्तुतियाँ हैं या अगविन्यास का परिचय दिया गया है अथवा भावों का उद्रेक व्यक्त होता है।

मैकडानल ने गीतगोविन्द का परिचय देते हुये लिखा है— 'गीतगोविन्द शुद्ध प्रगीत और शुद्ध नाटक के मध्य में सक्रमण की अवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना है, एक प्रगीतात्मक नाटक है जिसका समय तो यद्यपि १२वीं शताब्दी है, किन्तु सर्व प्राचीन आदियुग की नाट्यविद्या का एक साहित्यिक निदर्शन है। जो बंगाल में अब तक जीवित है और निश्चित रूप से नियमित पाठको के पहले इसका उद्भव हुआ होगा। कविता में अपने ठीक अर्थ में सवाद वित्कुल नहीं हैं क्योंकि इनके तीनों पात्र एक प्रकार के प्रगीतात्मक एकालाप में अपने को व्यस्त रखते हैं जिसमें शेष दो में एक को श्रोता के रूप में समझ लिया जाता है। कभी कभी तो वित्कुल कहीं कोई भी नहीं होता। कविता का विषय है सुन्दर कृष्ण का सुन्दरी गोपी राधा से प्रेम सन्बन्ध, प्रेमियों का परस्पर मनमुटाव और विच्छेद तथा अन्त में दोनों का मिलाप। यह बात जीवन की उस घटना से ली गई है जिसमें कृष्ण स्वयं गोपरूप में हैं, यमुनातट पर रहते हैं और गोपियों के साथ प्रेमलीला का भरपूर आनन्द लेते हैं। यह सम्भव है कि उस कवि ने कृष्ण के जीवन की घटनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले लोकप्रिय नाटकों को अपने नमूने के रूप में स्वीकार किया हो जैसा कि बंगाल की यात्राओं में अब भी होता है। उस कवि ने स्वरूप को बहुत बड़ी परिपूर्णता प्राप्त कर ली है। इसके लिये अत्यन्त कठिन छन्दों के प्रयोग में सरलता के साथ भाव सौन्दर्य की पद्धति अपनाई है।'

गीतगोविन्द पर टीकाओं की पर्याप्त सख्या है जिनमें प्रमुख टीकाकार हैं— उदयनाचार्य, कृष्णदास, गोपाल, नारायणदास, रामतारण, रामदत्त, रूपदेव विठ्ठल, विरवेश्वर, शालिनाथ, हृदयभरण, तिरुमलराय, श्रीकण्ठमिश्र, लक्ष्मण सूरिकृत गीतामन्द (इनका वास्तविक नाम लक्ष्मीधर है) कृष्णदत्त, जगद्धा, वनवाली भट्ट, पीताम्बर, शेषकमलाकर और शेष त्वाकर (सम्पिलित लेखक), वासुदेव वाचासुन्दर, अनूपभूषति, श्रीकण्ठ मिश्र, नारायण, शंकर मिश्र, भगवदास, कुम्भकर्णराज, लक्ष्मण, चैतन्यदास पूजक, मानाङ्क और दो अन्य अज्ञातनामा लेखकों की टीकायें— एक सपर्य दीपिका और दूसरी बाल बोधिनी।

गीत गौराङ्गम— (नाकू) वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित ५ अंकों का गीति नाट्य। इसमें चैतन्य महाप्रभु को महत्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण किया गया है। महाप्रभु तथा उनकी पत्नी विष्णुप्रिया के चरित्र की मार्मिक व्यञ्जना हुई है। गीतिनाट्य होने के कारण इसमें गीतों का प्राधान्य है और गद्य का अभाव स्वाभाविक है। प्रवेशक, विष्कम्भक इत्यादि का प्रयोग नहीं किया गया है। अलंकारों का विरल प्रयोग हुआ है। शैली वैदर्भी है। कहा जाता है इस नाटक की रचना में लेखक की पुत्री वैजयन्ती ने पर्याप्त योगदान दिया

(१) गैर्वाणी विजय इसका प्रकारान् पालघाट से हुआ है।

गोकुलनाथ- (नाका) ये माता उमादेवी और पिता पीताम्बर के पुत्र थे। इनका जन्म १७वीं शताब्दी में मिथिला के श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये मिथिला के राघवसिंह के समसामयिक श्रीनगर के फतेह शाह के दावारी कवि थे। इन्होंने काव्यात्मक तथा शास्त्रीय अन्य रचनाओं के साथ दो नाटक भी लिखे थे- एक प्रतीक नाटक अमृतोदय (दे) और दूसरा मुदितमदालसा (दे)। १० वर्ष की आयु में बनारस में इनका देहावसान हो गया।

(१) गोदापरिणय- (नाकू) मद्रास की ओरियण्टल मैन्सुस्क्रिप्ट लायब्रेरी में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग खण्ड २१ स ८३९९ पर इसका उल्लेख है। इसके लेखक हैं (५) श्रीनिवास (श्री शैल जिनका लिखा रामकधारापौण्य नामक एव राम काव्य भी है।)

(२) गोदापरिणय- (नाकू) केशवनाथ लिखित नाटक कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ स ११५९ पर इसका संकलन किया गया है।

गोदावरी- (नापा) यह मसनराघव में समुद्र से बात करते हुये रावण द्वारा सीता हरण, जटायु हाग अवरोध और उसकी मृत्यु इन सब घटनाओं का परिचय देता है।

गोदावर्म युवराज- (नाका) इसे केवल युवराज भी कहा जाता है। ये ब्रैंगनोर (केरल) के जूनियर युवराज थे और १८०० ई से १८५१ तक विद्यमान थे। इनकी कई पुस्तकें बतलाई जाती हैं जिनमें रससदन (दे) एक भाग भी है। दूसरी रचनाओं में रामचरित (काव्य) श्री षादसप्तक (काव्य) मुरारिपु स्तोत्र, सुधानन्द लहरी सम्मिलित हैं। इनको रामवर्मा के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

गोपालकेलिवन्दिका- (नाकू) इसे गोपालचन्द्रिका नाम से भी जाना जाता है। गुजरात के देवजीति (सम्भवतः देवजी) के पुत्र राम कृष्ण का लिखा एक भाग। यह पूर्ण रूप से संस्कृत में लिखा गया है और आशिक रूप में पौराणिक तथा आशिक रूप में गीतात्मक भी है। यह एक छेतिमुक्त नाट्य रचना है जिसमें महाकाव्य की वर्णनात्मक शैली और नाटक की अभिनयात्मक शैली दोनों के दर्शन होते हैं। इसमें संगीतात्मक अनुपातों और रंग निर्देशों दोनों में स्थान स्थान पर भूतकाल का प्रयोग किया गया है जो कि अभिनय पात्र प्रस्तुति के प्रतिकूल पड़ता है।

इसका मूल स्वर धार्मिक है। कृष्ण के गोचरण विषयक दूरियों का विनाश कुछ नो गीतों के द्वारा और कुछ गद्य के द्वारा किया गया है। इसमें गोपवेष्टाधारी कृष्ण (विष्णु) अपनी शक्तिस्वरूपा राधा के साथ रामसुत पर आते हैं। गोप जयन्त विदूषक का काम करने हुये हाम परिहसमय वातावरण प्रस्तुत कर देता है। वृन्दा और लक्ष्मी के मन्दाद में कृष्ण और राधा का तादात्म्य स्थापित किया गया है और बतनाया गया है कि कृष्ण पुष्पोत्तम भगवान् हैं और राधा उनकी शक्ति है। गोपाल बालाओं का घोर हरण उनकी

भक्तिभावना की परीक्षा है और वस्तु के प्रतिदान के मूल्य में कृष्ण उनसे भक्ति मागते हैं।

पूर्णमा और शब्द के वार्तालाप में व्यक्त होता है कि दोनों इसलिये छिन्न हैं कि कृष्ण रासलीला नहीं कर रहे। कृष्ण आते हैं और दोनों कृष्ण को रासलीला की प्रेरणा देते हैं। तब कृष्ण योगमाया को प्रेरित कर गोपियों को बुलाते हैं और उसी समय रासलीला प्रारम्भ हो जाती है। इसके साथ ही सूरधार भगवान की महिमा को अपरिमेय बतलाकर नाटक का उपसंहार कर देता है। इसमें ज्ञान और वैराग्य की अपेक्षा भक्ति को वरीयता प्रदान की गई है।

इस नाटक की नाट्यविधा का ठीक रूप से निर्णय करना किञ्चित् अशक्य है। कुछ लोग इसे महानाटक के समान छायानाटक मानते हैं क्योंकि इसमें रंग निर्देशों में भी पद्यों का उपादान किया गया है। गद्य की मात्रा बहुत कम है, सवाद पद्य में हैं। इसमें महानाटक का उल्लेख भी किया गया है— नटों के यह पूछने पर कि बिना शकृत के नाटक कैसे खेला जा सकता है सूत्रधार स्पष्ट बरता है कि हनुमन्नाटक में तो केवल संस्कृत ही है। इसको गीतगोविन्द के साथ भी समता बतलाई गई है। किन्तु गीतगोविन्द प्रगीतात्मक अधिक है। यह परिचयी प्रदेशों के स्वाग के अधिक निकट पड़ता है जिसमें अभिनेता, वर्णनात्मक पद्यों का पाठ भी करता है और अभिनय में भी भाग लेता है। इसमें अभिनय के निर्देश अतिमात्र में भरे पड़े हैं। किन्तु वर्णनात्मकता के साथ अभिनेयता का प्रकार चलती होगी इसका उत्तर आसान नहीं है। ज्ञात होता है कोई ब्राह्मण इसका पाठ करता होगा और उसके शिष्य रंगमञ्च पर उस पाठ के अनुरूप अभिनय करते होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रगोतकाव्य और नाट्यकृति के मध्य की वस्तु है। जैसा अन्य अनेक कृतियों के विषय में कहा जाता है इस नाटक की रचना भी पाठ्य नाटक के रूप में हुई होगी। इस प्रकार के नाटकों के अनुकूल रासज्जा कठिन होती है। यूरोप तथा भारत के आधुनिक नाटकों में प्रायः रंग निर्देश भरे रहते हैं। किन्तु उनका पूर्णतः पालन नहीं किया जाता। यह नाटक निश्चय रूप से समानुज के बाद का है।

गोपाल चन्द्रिका— (नाक) दे गोपालकेलिचन्द्रिका।

गोपाल चिन्तामणि— (नाक) शङ्करलाल (दे) लिखित नाट्यचना।

गोपालदास— (नाका) ये बंगाली कवि एवं कविराज (वैद्य) थे। इन्होंने चिकित्सा शास्त्र पर चिकित्साभूतम् एवं छन्दशास्त्र पर छन्दोमञ्जरी नामक पुस्तकें लिखी थीं। इनका लिखा पारिजात हाण (दे) नाटक भी है।

गोपालराय— (नाका) इनकी दो भाषा कृतियों (शङ्करमञ्जरी और शङ्करराज) का उत्सख कैटेलागस कैटेलागोरम् (II १५८ और १६०) में किया गया है। इनके पारिजातहाणविषयक कृतियय पद्यों का सकलन सदुक्तिवर्णान्त में प्राप्त होता है।

गौतम- (नापा) मालविकाग्निमित्र में विदूषक। सामान्यतः विदूषक का काम हसी, भजाक के द्वारा नायक का मनोरंजन करना और नाटक को सजीव बनाना होता है। किन्तु इस विदूषक का कार्य इससे कुछ अधिक है। वह बुद्धिमान और वार्थकुशल है और विषम परिस्थिति में भी रास्ता निकाल लेता है। वही दो शिक्षकों की होड़ उत्पन्न कर मालविका को सामने लाने और राजा को उसका परिचय देने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब रानी द्वारा मालविका बन्दिनी बना ली जाती है तब वही (विदूषक ही) सर्पदश का बहाना कर रानी की अगूठी प्राप्त कर लेता है और मालविका को बन्दीगृह से छुड़ाता है। इस प्रकार नाट्य वस्तु को गति देने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

गौतमी- (नापा) अभिज्ञान शकुन्तलम में यह कुलपति की बहन है और घर की वयोवृद्ध महिला की भूमिका निभाती है। यही लड़कियों में मान्य है और उनके नियन्त्रण में रखती है। प्रत्येक विषय में कुलपति कण्व भी उसकी सम्मति लेते हैं। शकुन्तला को पति भवन से जाने में सहयात्री बर्ग की नेत्री यही है। यह परिवार की एक सम्मानित महिला है और व्यवहार तथा बातचीत में कुशल है। जब राजा शकुन्तला से सम्बन्ध होने की बात से इन्कार करता है तब केवल इतना कहती है- "आप दोनों का अकेले में एक पर एक जो व्यवहार हुआ उसके लिये मैं क्या कह सकती हूँ। इसने गुरुजनों की परवा नहीं की और तुमने बन्धुजनों से पूछा नहीं (उसी का यद् दुष्परिणाम है)। जब परित्यक्ता शकुन्तला वरुण होकर रोती हुई अपने बर्ग के साथ चल देती है तब स्वयं कोई निर्णय न लेकर वयस्क भ्रान् स्थायी शार्ङ्गशर को उस ओर प्रेरित कर देती है।

गौरी दिगम्बर- (नाकृ) यह शङ्कर मिश्र कवि (दे.) का लिखा हुआ प्रहसन है। कैटलागस कैटलागोरम स III ३७ पर इसका उल्लेख किया गया है। के. जायसवाल ने मथुरा में पाण्डुलिपियों की जो खोज की थी उसकी दिवरणात्मक रिपोर्ट में इसका उल्लेख स II ५५ पर किया गया है।

गौरीदेवी- (नापा) नागानन्द में महत्वपूर्ण भूमिका। मलयवती को स्वप्न में ये ही भावी पति का परिचय देती हैं जो अन्ततः मलयवती और जीमूतवाहन की सफल प्रणयलीला में परिणत होता है। नाटक को सुखान्त बनाने में पुनः इनका प्रवेश कराया जाता है। जीमूतवाहन का परोपकार में प्राणन हो चुका है। तीनों कथाभागों का एक मात्र आश्रय नायक मर चुका है। सभी कुछ शोक में समाप्त होने जा रहा है। उसी समय गौरीदेवी प्रविष्ट होकर और जीमूतवाहन को पुनरुज्जीवित कर नाटक को सुखान्त ही नहीं बनाती बल्कि स्वप्न में दिये हुये अपने निर्देश को भी सफल बनाती है।

गौरी का प्रवेश एक दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है। वैसे तो यह नाटक बौद्ध मनोवृत्तिप्रधान है। गौरी का प्रवेश सेखक की सर्वधर्म समभाव की प्रज्ञा का परिचय देता है, इसे पूर्ण बौद्ध नाटक नहीं बनने देता।

घ

(१) घटोत्कच- (नापा) मास (दे) के मध्यमव्यायोग (दे) का प्रमुख पात्र। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी मातृ भक्ति। किन्तु मानवता की भी उसमें कमी नहीं। वह माता के भोजन के लिये ब्राह्मण परिवार के किसी सदस्य को ले जाना चाहता है। किन्तु जवरदस्ती नहीं करता। किसको ले जाना है यह समझौते से तय करता है और जब परिवार के सदस्य नित्यकर्म का समय मागते हैं तब वह उदारता पूर्वक दे देता है। वह वीर भी है और समय आने पर भीम से भिड जाता है। अन्त में माता पिता की आज्ञा से ब्राह्मण परिवार को उसके घर तक भेजने में सकोच नहीं करता।

(२) घटोत्कच- (नापा) मास (दे) के दूत घटोत्कच नाटक का प्रमुख पात्र। इसका उपादान महाभारत से किया गया है। किन्तु महाभारत की दानवी प्रवृत्ति के प्रतिकूल यहाँ उसे दौत्यकर्म जैसा महत्वपूर्ण कार्य सौंपा जाता है और वह भी कृष्ण और अर्जुन द्वारा। अपने कर्तव्य का वह पूरी तत्परता और सफलता से पालन करता है।

(३) घटोत्कच- (नापा) वेणो सहाय का एक पात्र। वह भीम का हिडिम्बा से उत्पन्न पुत्र है। वह अत्यन्त शक्ति के साथ युद्ध करता है, किन्तु अन्त में मारा जाता है, इसमें उसकी ना इतना रुष्ट हो जाती है कि राक्षस दम्पती को मांस खाने और खून पीने के लिये प्रेरित करती है। व वहाँ बहुत ही बीभत्स दृश्य उद्घाटित कर देते हैं।

घट्ट शेषाक्षर्य- (नाका) ये बभ्रुलंगोत्रीय रामानुज के पुत्र थे। इनका सम्बन्ध कवितार्किक परिवार से था। य १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मद्रास प्रेसीडेंसी के मधल गड्डा नामक स्थान पर रहते थे। इनका लिखा प्रपन्नमपिण्डीकरण निरुत्त (द) नामक प्रतीक नाटक मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के विवरणात्मक सूची पत्र में म ८४२४ पर उल्लिखित है।

घनगुरु- (नाका) इनका जन्म कौशिक गात्र में हुआ था। इनका लिखा कन्दर्प विजय (दे) नामक भाण प्रकार में आया है।

घनश्याम- (उपनाम आर्यक) (नाका) ये मौनभार्गववंशीय काशीमहादेव और कमला के पुत्र एवं १८वीं शताब्दी के तुक्को जी महाराज के मन्त्री थे। इन्हें सर्वज्ञ, कण्ठोत्तर, व वरयवाक् इत्यादि अनेक उपाधियाँ प्राप्त थीं। इनका शिक्षितों का परिवार था, दो पत्नियाँ थीं- सुन्दरी और कमला। दोनों विदूषी तथा लेखिका थीं। इन्होंने बचपन से ही रचना करना प्रारम्भ कर दिया था। अपने जीवन में इन्होंने १०० से अधिक पुस्तकें लिखी थीं- ६४ सम्स्कृत में, २० प्राकृत में और २५ अन्य भाषाओं में। इनकी पत्नी ने विद्वत्शालभञ्जिका को टोंका की भूमिका में इनकी रचनाओं का उल्लेख किया है। इनके लिखे काव्य पद्य हैं- भगवत्पादचरित, वेङ्कटेशचरित, सम्पत्तिमण्डन, अन्यापदेशशतक, ५ माहात्म्य। इनका एक अबोधोपाकर काव्य भी है जिसमें प्रत्येक पद्य के दोन दोन अर्थ होते हैं। इस प्रकार

इन्होंने एक ही काव्य में कृष्ण, नल, और हरिश्चन्द्र की कथाएँ कह दी हैं। कलिदूषण नाम का इनका एक अन्य काव्य है जिसकी रचना संस्कृत और प्राकृत दो भाषाओं में की गई है। इन्होंने अनेक ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी हैं। विद्वत्शालभञ्जिका पर केवल तीन घण्टे में टीका लिख दी। उसी ग्रन्थ पर इनकी पत्नी ने एक दूसरी टीका लिखी। उत्तर रामचरित की टीका केवल एक रात में पूरी कर दी। निम्नलिखित ग्रन्थों पर इन्होंने टीकाएँ लिखी थीं— अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरित, वेणीस्तार, हल गायसप्तशती, विक्रमोर्वशी, भोजचम्पू, नीलकण्ठ चम्पू, कविराक्षस, कादम्बरी, नासवदत्ता, दशकुमार चरित। भोजचम्पू के अपूर्ण युद्ध काण्ड को इन्होंने पूरा किया। कहा जाता है महावीरचरित के अन्तिम दो अंक अपूर्ण थे जिनकी पूर्ति उन्होंने की थी। इन टीकाओं में अनेक उपलब्ध होती हैं।

इनके लिखे नाटकों की संख्या भी पर्याप्त है जिनमें अनेक नाट्य विधाओं का प्रयोग किया गया है। प्रमुख नाटक हैं— गणेशचरित, मदनसजीवन भाण, कुमारविजय, अनुभवचिन्तामणि, आनन्दसुन्दरी, चण्डानुशाग प्रहसन इत्यादि। मदनसजीवन भाण की रचना २६ वर्ष की आयु में की गई थी। नवग्रहचरित (सप्तक) केवल २१ वर्ष की आयु में लिखा गया था। इनकी कृतियों में प्रचण्डराहूदय नामक एक प्रतीकनाटक, एक विचित्र प्रकार की रचना डमरुक और काव्यशास्त्र पर रसार्णव नामक एक ग्रन्थ बंटाया जाता है। कहा जाता है साहित्य रचना में तो इन्हें प्रवीणता प्राप्त ही थी ये राजनीति में भी निपुण थे।

घोष यात्रा— (नाक) चार अंकों का यह शीतलचन्द्र लिखित डिम कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। यह रचना महाभारत में आये हुये कथानक को लेकर लिखी गई है। इसका दूसरा नाम युधिष्ठिरानुशास्यम् भी है।

च

चण्डकौशिक— (नाक) यह क्षेमीश्वर (दे) लिखित पौराणिक हरिश्चन्द्रोपाख्यान पर आधारित ५ अंकों का नाटक है। हरिश्चन्द्र ने एक बार नासमझी में विश्वामित्र की भर्त्सना कर दी थी जिस पर रुष्ट होकर विश्वामित्र ने शाप दे दिया था। उसी शाप के प्रभाव से मुक्त होने के लिये हरिश्चन्द्र अपना सारा राज्य विश्वामित्र को दे देते हैं और दक्षिण के रूप में सहस्र स्वर्णमुद्रायें भी उन्हें प्रदान करनी पड़ती हैं। उन मुद्राओं के लिये पत्नी और पुत्र को एक ब्राह्मण के हाथ बँच देते हैं तथा स्वयं को एक चाण्डाल के हाथ बँचकर श्मशान की पहोदारी स्वीकार कर लेते हैं। सयोगवश पुत्र की मृत्यु हो जाती है और पत्नी अन्तिम संस्कार के लिये उसी श्मशान घाट पर ले आती है। हरिश्चन्द्र बिना श्मशान कर लिये सत्कार की आज्ञा नहीं देते। इससे उनके चरित्र की दृढ़ता प्रकट

हो जाती है। बालक जी उठता है और उसका राज्याभिषेक कर दिया जाता है।

इस नाटक में कर्ण, भयानक और भीमत्स चित्रण मालती माधव की मदद दिला देते हैं। कात्यायनी की रक्तमयी पूजा अद्भुत रूप में चित्रित की गई है। भाषा कर्ण वर्णन के सर्वथा अनुकूल है और लम्बे लम्बे समास भयानक तथा भीमत्स चित्रण में चार चाद लगा देते हैं।

इस नाटक का प्रकाशन कलकत्ता से तर्कालकार की व्याख्या के साथ कर दिया गया था। दूसरी बार विद्यासागर की व्याख्या के साथ इसका पुनः प्रकाशन हुआ। बम्बई और मैसूर से भी इसका प्रकाशन किया गया। एम स्किलर द्वारा विब्लिओपेकाइण्डिका स १२६६ पर भी इसका उल्लेख है।

चण्डोपाख्यम्—(नाकू) जीवन्त्याय तीर्थं लिखित दो अंकों का नाटक। यह द्वितीय विश्वयुद्ध की भूमिका पर लिखा गया तत्कालीन परिस्थितियों का परिहास पूर्ण परिचय देता है।

स्टैलिन ने धर्मनाश की घोषणा की है। धर्म भारत की ओर भागता है। एक ओर हिटलर और मुसोलिनी विश्व विजय के लिये परामर्श करते हैं। दूसरी ओर अपेक्ष प्रदिग्धा करता है कि जर्मनी का नाम निशान भी मिटा देगा। जापान और जर्मन एव रूस और इंग्लैण्ड में सन्धि होती है। अमेरिका और इंग्लैण्ड दोनों मित्र राष्ट्र हैं।

इसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका एव आचार्य पञ्चायत ग्रन्थमाला से हो गया है।

चण्डोपाख्यम्—(नापा) या चन्द्रपाल कर्पूरमञ्जरी का नायक है। वह कर्पूरमञ्जरी का प्रेमी है। फिर भी दक्षिण नायक है। वह रानी से भी कटुता का व्यवहार नहीं करता। जब रानी उसकी प्रेमिका को बन्दीगृह में डाल देती है तब भी कठोरता न दिखलाकर सुरग बनवाकर प्रेमिका से मिलने का उपाय निकालता है। जब रानी सुरग बन्द करवा देती है तब दूसरी सुरग बनवा लेता है। अन्त में उसकी आकाङ्क्षा पूरी होती है और उसे अपनी प्रेमिका से पाणिग्रहण का सुयोग प्राप्त हो जाता है।

चण्डानुरंजनम्—(नाकू) यह धनश्याम (दे.) लिखित एक प्रहसन है। तजौर पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभागों में स VIII ३६२० पर इसका उल्लेख किया गया है।

चण्डीवरितम्—(नाकू) दे रुद्रशर्मा त्रिपाठिनः।

चण्डीनाटकम्—(उपनाम चण्डी विलास) इसके लेखक हैं धारतचन्द्र राय। चण्डीवरित की पृष्ठ भूमि को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें प्राकृत के स्थान पर हिन्दी और बगाली भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी और इसका प्रकाशन भारतचन्द्र ग्रन्थावली के अन्तर्गत हो गया था।

चतुरीचन्द्रिका- (नाकृ) यह एक भाग है। इसकी रचना शारंग्यपाद के पुत्र बेहूयार्थ ने की थी। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियन्टल लायब्रेरी के संस्कृत पम्पुलिपि अनुभाग में ट्रायेनिपल कैटेलाग में की गई है। सम्भवत इसका प्रथम अभिनय निरूपति के उत्सव के अवसर पर किया गया था।

चतुर्भाषी- (नाकृ) चार भाषों का एक संग्रह। ये चार भाग हैं- वररचि की उभयाभिस्तारिका ईश्वरदेव का धूर्तवित्त सखाद आर्यश्यामिलक का पादताडितक और शूद्रक का पद्य प्राप्तरक। भारतीय परम्परा इन रचनाओं को कालिदास की पूर्ववर्ती मानती है। किन्तु कीच का विचार है कि ये रचनाएँ १००० ई से पहले की नहीं हो सकतीं। कर्तृत्व पर भी कीच ने प्रश्न चिन्ह लगाया है। उनके मत से वररचि और शूद्रक तो इन भाषों के लेखक हो ही नहीं सकते। दूसरों के विषय में भी अनिश्चितता बनी हुई है।

भाव वस्तु योजना रस इत्यादि अनेक दृष्टियों से ये नाटक एक जैसे प्रतीत होते हैं। इनमें प्रचोदना के तत्व भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। मानों नियमानुसार ये सब एकात्म्य और एकाङ्गी हैं। इन चारों के लेखकों का परिचय निम्नलिखित पद्य से प्राप्त हो जाता है-

वररचिरोश्वरादेन रयमिलक शूद्रकश्च चत्वार

एते भाषान् बभूवुः का शक्ति कालिदासस्य ॥

इस पद्य में लेखक ने कालिदास की अपेक्षा भी इन कवियों को अधिक महत्ता प्रदान की है। किन्तु यह पद्य अत्यन्त पारवर्ती काल में लिखा गया था। अतः इसको प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। रयमिलक को छोड़कर किसी का कर्तृत्व प्रामाणिक नहीं होता।

भाग के नियम के अनुसार ये सब एकाङ्गी और एकात्म्य हैं। रामयज्ञ पर विट आता है। नायक विट का मित्र होता है किन्तु वह रामयज्ञ पर नहीं आता। विट स्वयं नायक नहीं होता किन्तु नायक के त्रियकल्प की सूचना देकर दर्शकों का मनोरंजन करता है। केवल धूर्त विट सखाद में विट स्वयं नायक है। इन नाटकों में केवल शुद्धाधिक साहित्यिक कानों की ही सूचना नहीं दी जाती अतः अनेक अन्य सामाजिक विषयों का भी संनवेष्टा किया जाता है।

एक रामयज्ञ कवि ने इसका सम्पादन त्रिवार से किया था जिसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका भी है।

चतुर्मुख- (नाका) दे अभिनयनः।

चन्द्रक- (नाका) दे चन्द्र।

चन्दनदास- (नाका) यह मुद्रारक्षस का महत्त्वपूर्ण पद्य है। यह रक्षस का इतना विरक्त पात्र मित्र है कि रक्षस सैन्य मारुत और बदला तन की पञ्चता से प्रेरित होकर

जब जाने लगता है तब अपना परिवार चन्दन दास के ही यहा छोड़ जाता है। जब चाणक्य को गुप्तचर विभाग से इस बात की सूचना मिलती है तब वह चन्दनदास को बुलाकर राक्षस का परिवार सौंप देने की मांग करता है। पहले तो चन्दनदास हीला हेवाला करता है किन्तु जब चाणक्य नहीं मानता तब वह निर्भय होकर स्पष्ट कह देता है 'अन्वस तो मेरे पास परिवार है ही नहीं यदि होता भी तो भी नहीं देता।' चाणक्य के सामने इस प्रकार कहना माफ़ूली बात नहीं थी। यह बात उसके साहस और उदात्तता को व्यक्त करती है। चाणक्य भी मन में उसके लिये वाह वाह कह उठता है। चाणक्य रष्ट होकर उसे शूली देने का आदेश दे देता है। शूलों पर चढ़ने जाते हुये वह अत्यन्त इर्षित है कि उसे मित्र कार्य में प्राण देने पड़ रहे हैं। यह डसका महान त्याग उसे मानवता के उच्च धरातल पर पहुँचा देता है। अन्त में उसी की भूमिका राक्षस को मन्त्री पद ग्रहण करने के लिये वाध्य कर देता है। और उसी से चाणक्य को विजय लाभ होता है।

चन्द्र- (नाक) नाटककार के रूप में चन्द्र का नाम साहित्य जगत् में प्रसिद्ध है। इनकी एक कृति लोचनानन्द (दे) का तिब्बती अनुवाद तजौर में मिला है। नाट्यशास्त्र के १९वें अध्याय की अभिनवभास्ती में अभिनवगुप्त ने इनका उल्लेख किया है। इसी प्रकार चन्द्रक और चन्द्रक नाम भी प्रसिद्ध है। पता नहीं ये सब एक ही हैं या पृथक् पृथक्। कल्हण ने राज तरंगिणी (II १६) में लिखा है कि काश्मीर के तुजिन राजा के राज्य काल में चन्द्रक नाम का कोई महाकवि हुआ जिसने वेदव्यास का अंश था और उसने इस प्रकार के नाटकों की रचना की थी जो सभी लोगों के देखने योग्य थे। तुजिन का समय १०३ एडी या कनिष्क के अनुसार ३१९ एडी माना जाता है। चन्द्रक के नाम पर सुभाषितावली में जो पद्य पाये जाते हैं वे विभिन्न नाटकों के नन्दी पाठ मालूम पड़ते हैं। इत्सिंग ने महासत्त्व चन्द्र का उल्लेख किया है जो प्रगीतकार और नाटककार थे तथा जिन्होंने विश्वान्तर जातक को बाज्य रूप दिया था जिसे भारत के सभी भागों में गाया जाता था। किन्तु यह साध साहित्य अब लुप्त हो गया है। तेवो ने चन्द्र व्याकरण के रचयिता चन्द्रगोमिन को ही इत्सिंग का महासत्त्व चन्द्र माना है। किन्तु यह मत विद्वानों को स्वीकृत नहीं है। चन्द्र गोमिन का समय भी बहुत पहले का है क्योंकि इनका उल्लेख काशिकाकार ने किया है। सारांश यह है कि जो नाम चन्द्र, चन्द्रक, चन्द्रदास, महासत्त्व चन्द्र, चन्द्रगोमिन इत्यादि नाटककारों के बताये जाते हैं उनकी एकता अनेकता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

चन्द्रक- (नाक) दे चन्द्र।

(१) चन्द्रकला- (नाक) नारायण रविद नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम (I १७९) में उल्लेख।

(२) चन्द्रकला- (नाक) विश्वनाथ कविराज लिखित नाटिका। साहित्य दर्पण में इसका उद्धरण किया गया है।

चन्द्रकला कल्याणम्- (नाट्) शृङ्गारप्रधान इस नाटक की रचना १८वीं शताब्दी में मैसूर वासी नृसिंह कवि ने की थी। चन्द्रकला (नयिका) कुन्तल के राजा रत्नकर की पुत्री है। उस पर नवराज (नयक) अनुसूक्त है। उन दोनों का सम्मिलन विदूषक और चन्द्रकला की चेष्टियों के उद्योग से होता है। भगवती अम्बिका स्वप्न में स्वयंवर रत्न के आदेश देती है। उसके अनुसार स्वयंवर रचा जाता है। नयिका अपने प्रेमी के गले में जयमाला डाल देती है।

इसकी कथा वस्तु ऐतिहासिक है। इसका प्रथम अभिनय गालगुप्तिश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर पर किया गया था।

चन्द्रकलापरिणय- (नाट्) यह विवाह विषयक नाटक है जिसकी रचना नृसिंह (दे) ने की थी। इस नाटक का सकलन कैटलागस कैटलागोरम खण्ड ३ स ३८ पर किया गया है।

चन्द्रकान्तकालिकार- (नाट्) कौमुदी सुधाकर (दे) प्रकरण के लेखक। इन्हें महम्मदोपाध्याय की उपाधि प्राप्त थी। इनका जन्म बंगाली परिवार में राधाकान्त के पुत्र के रूप में हुआ था। गवर्नमेण्ट स्कूल कालेज बनारस में १८८३ से ८७ तक ये दर्शन और काव्यशास्त्र के प्रोफेसर थे। इन्होंने उक्त नाटक के अतिरिक्त सती परिणय और चन्द्रवंश नामक काव्यों की भी रचना की जिनमें कुमारसम्भव और रघुवंश का अनुकरण किया गया है। साथ ही इनका एक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी बतलाया जाता है।

चन्द्रकेतु- (नाट्) उत्तर रामचरित में लक्ष्मण का पुत्र। इसे अश्वमेध की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था। जब यह अश्व की रक्षा करते हुए वाल्मीकि आश्रम के निकट पहुँचा तब-कुश ने घेड़ा बाध लिया। जब दोनों पक्षों का सामना हुआ दोनों ओर किमी अज्ञात प्ररण से आत्मपना उत्पन्न हो गई और दोनों एक दूसरे के प्रति सहृदयता का अनुभव करने लगे। फिर भी दोनों ओर से युद्धानुकूल नोक झोंक आरोप प्रत्यारोप प्रारम्भ हो गया। फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें दिव्यास्त्रों का खुलकर प्रयोग किया गया। राम के पहुँच जाने से युद्ध रूक गया। चन्द्रकेतु ने अपने विरोधी वीर की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। यह चन्द्रकेतु की सद्दयता उदारता और गुण माह्वता का प्रमाण है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय- (कआ) कालिदास के सर्वाधिक सम्भावित आश्रयदाता। कालिदास ने शकुन्तल के अंशुल में विज्रम का उल्लेख किया है। विज्रमेर्वरी नामकरण में स्पष्ट ही विज्रमदित्य का संकेत है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विज्रमदित्य की उपाधि धारण की थी। कुमारसम्भव का रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमार गुप्त के जन्म का अभिनन्दन करने के लिये बतलाई जाती है। रघु की दिग्विजयपराज में समुद्रगुप्त की दिग्विजयपराज की प्रतिध्वनि प्रस्तुत होती है मल्लिकार्जुनमित्र में अश्वमेध यज्ञ पर जो विशेष बल दिया गया है वह स्पष्ट ही समुद्रगुप्त के यज्ञ की प्रतिध्वनि है।

कालिदास के ग्रन्थों से प्रस्पृष्ट होने वाली तत्कालीन प्रवृत्ति भी सर्वाधिक रूप में गुप्त काल के अनुकूल है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि बहुत अधिक सम्भव है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में ही कालिदास हुये हों।

चन्द्रगुप्त- (नापा) मुद्राराक्षस का प्रमुख पात्र। नन्दवंश के अयोग्य, स्वार्थ परायण तथा मनमाने शासन को समाप्त कर चाणक्य ने गुणों के आधार पर इन्हीं को सम्राट के रूप में अभिषिक्त करने का प्रयत्न किया और यह चाणक्य की सम्भावना के अनुकूल वैसा ही सिद्ध भी हुआ। नाटक में वह परम गुरुपक्त शिष्य है। चाणक्य उसे हृदय से चाहता है और प्रेम से ही उसे वृषल (शूद्र) कहता है। किन्तु साथ ही वह यह भी कहता है कि यह वृषल वास्तव में वृष साधारण गाय वैलों में घूमने वाला साड है जो अपने प्रभाव से सभी को दबाये रखने की शक्ति रखता है। यह उसकी महत्ता का सार्थक चित्रण है।

चन्द्रगोपिन्- (नाका) दे चन्द्र।

चन्द्रदास- (नाका) दे चन्द्र। इन्हें चण्डदास भी कहा जाता है।

चन्द्रप्रभा- (नाकृ) यह अज्ञातनामा कवि की रचना है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम (I १८२) में किया गया है।

चन्द्रलेखा विद्याधर- (नाकृ) यह अज्ञातनामा कवि का लिखा नाटक है। पैलेस लायब्रेरी लखनऊ की पाण्डुलिपि ग्रन्थ सूची में स VIII ३३९४ पर इसका प्रकथन किया गया है।

चन्द्रलेखा- (नाकृ) चार अकों का एक सट्टक जिसकी रचना रुद्रदास ने की थी। इसमें मानवेदायज और चन्द्रलेखा के विवाह का अंकन किया गया है। मानवेदायज स्वयं एक कवि और नाटककार हैं। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के ट्रायनियल कैटेलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट में IV ४७६२ पर इसका उल्लेख है।

चन्द्रलेखा विजय- (नाकृ) यह देवचन्द्र (दे) का लिखा ५ अकों का प्रकरण है। प्रकरण के अन्त में कुमारपाल को प्रशस्ति है जिसमें अणोरज पर कुमारपाल की विजय का वर्णन किया गया है। इसका प्रथम अभिनय अजित नाथ के वसन्तोत्सव में किया गया था। जैसलमेर के पुस्तकालय के पाण्डुलिपि सूचोपत्र में इसका उल्लेख किया गया है।

चन्द्रलेखाविलास- (नाकृ) यह एक भाण है जिसका सकलन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुभाग की विवाणात्मक सूची में XXI ८४०२ पर किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं।

चन्द्रवर्मा- (नापा) विद्वरालभञ्जिका (दे) में विद्याधर मल्ल का लाट प्रदेश का सामन्त जो पुत्र होन होने के कारण अपनी पुत्री मृगाङ्गवती को पुत्ररूप में मृगाङ्गवर्मा

बनाकर अपने अधिपति विद्याधरमल्ल के यहाँ भेज देता है।

(१) चन्द्रविलास- (नाकू) (१) गङ्गाधर (दे) रचित नाटक। इसमें चन्द्र और कुमुदिनी की काल्पनिक कथा का उपादान किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम् (II ३६) में इसका उल्लेख किया गया है।

(२) चन्द्रविलास- (नाकू) रद्रशर्मा त्रिपाठिन् का लिखा नाटक। बम्बई में पेटर्सन द्वारा संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज III २०९ और ३३८ में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) चन्द्रशेखर- (नाका) ये काव्यशास्त्र के प्रतिष्ठित आचार्य विश्वनाथ कविराज के पिता थे। इन्हें राज दरबार की ओर से अत्यन्त प्रतिष्ठित राजकीय पद सन्धिबिग्रहिक प्राप्त था। इनका विद्वानों और साहित्यकारों का परिवार था। इनकी लिखी पुष्पमाला नाटिका का उल्लेख विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में किया है। इनकी एक पुस्तक भाषार्णव भी पाई जाती है।

(२) चन्द्रशेखर- (नाका) ये प्रसिद्ध साहित्यकार धनश्याम के पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता की कृतियों डमरुक और प्रचण्ड राहूदय (दे) की व्याख्याएँ लिखी हैं। धनश्याम के दूसरे पुत्र गोवर्धन अन्ये थे फिर भी पिता की कृपा से विद्वता प्राप्त की थी और घटकर्पर पर एक टीका लिखी थी।

(३) चन्द्रशेखर- (चयनो) (नाका) ये बाजपेयी गोपीनाथ राजगुरु के पुत्र थे जो कि १७वीं शताब्दी में बुन्देल खण्ड के वीर केशरी रामचन्द्र के गुरु थे। इनके लिखे मधुरानिरुद्ध नाटक का कैटेलागस कैटेलागोरम् खण्ड १ स ४२६ पर उल्लेख किया गया है।

चन्द्रशेखर विलासम्- (नाकू) यह तजौर नरेश शाहजी महाराज की लिखी बक्षगान प्रकार की रचना है जिसमें यथाम्थान तेलुगु का भी प्रयोग किया गया है। इसकी सर्वप्राचीन प्राप्त पाण्डुलिपि १७०१ की है जिसमें इसकी रचना १७वीं शताब्दी के अन्त की प्रतीत होती है। इसमें भगवान् शिव के बालकूट पान का बक्षानक अपनाया गया है। शिवजी बालकूट को व्रण में ही स्थापित कर लेते हैं क्योंकि उन्हें भय है कि उनकी उदारस्थ सृष्टि वहाँ बालकूट से नष्ट न हो जाय।

चन्द्रस्वाधी महोत्सव- (ना अव) एक महोत्सव है जिसके अवसर पर खेलने के लिये वत्सराज (दे) ने रुक्मिणी हरण (दे) की रचना की थी।

(१) चन्द्राभिषेक- (नाकू) रामेश्वर (दे) लिखित नाटक। इसकी रचना विशाखदत्त के मुद्राराक्षस के अनुकरण पर उमी में मिलने जुलने बक्षानक को लेकर हुई है जिसमें चाणक्य द्वारा नन्द वंश का विनाश और चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक का अयन किया गया है। यह रचना मुद्रा राक्षस जैसी उच्चकोटि की नहीं है और न इसमें कृत्तनोति उस सीमा तक दिखलाई गई है।

कैटलागम कैटलागोरम । १८२ में इसका उल्लेख किया गया है ।

(२) चन्द्राभियेक- (नाक) यह वाणरवर लिखित ९ अकों का नाटक है । इसमें चन्द्रगुप्त के राज्याभियेक का अंकन किया गया है । योगेन्द्र के दो शिष्य हैं- विनीत और दान्त । उन्हें गुरु दक्षिणा देने के लिए १४ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की आवश्यकता है । दोनों शिष्य विन्ध्यवासिनी की आराधना करते हैं जो प्रकट होकर गुरु से परामर्श करने का निर्देश देती हैं । दोनों शिष्य गुरु के पास जाकर स्वर्णमुद्राओं की प्राप्ति का उपाय पूछते हैं । गुरु बतलाता है कि आज से ५वें दिन राजा नन्द की मृत्यु हो जायेगी । विनीत वहा जाकर कहे कि मैं सर्जीवनी औषधि के प्रभाव में राजा को पुनर्जीवित कर दूंगा । मैं उस समय परकाय प्रवेश की विद्या से राजा के शरीर में प्रविष्ट हो जाऊंगा । और राजा को पुनर्जीवित कर देने के पुरस्कार के रूप में तुम्हें वह राशि मिल जायेगी । जितने दिनों मैं नन्द के शरीर में रहूँ उतने दिन मेरे निर्जीव शरीर की रक्षा दान्त करेगा ।

शकटार मन्त्री को पता चल जाता है कि मृत राजा के शरीर में कोई आत्मा प्रविष्ट है । वह पता लगाकर योगेन्द्र के शरीर का दाह कर्म सस्कार कर देता है । अब शकटार को राजा की रक्षा करने की विन्ता है । वह राजा से मिलकर अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और कहता है कि यह कार्य मैंने प्रजा हित में किया है । राज्य की गतिविधि बदलती है और राजा किसी बात से गृष्ट होकर शकटार को पदच्युत कर देता है तथा उसके स्थान पर राक्षस को मन्त्री बना देता है । शकटार को सपरिवार बन्दी बना लिया जाता है । किन्तु एक बार किसी उर्विन उतर से सन्तुष्ट होकर राजा उसे छोड़ देता है । अब शकटार बदला लेने के लिये घाणक्य से मिलता है और दोनों कूटनीति में नन्द का शिकार कर चन्द्रगुप्त को गद्दी पर बैठाते हैं ।

वर्दवान् के राजा चित्रसेन के आदेश से कुसुमाकोटान में इस नाटक का प्रथम अभिनय किया गया था । इसमें छाया तन्त्रों का आश्रय लिया गया है तथा कपट नाटक का अन्त प्रवेश भी किया गया है । स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं है तथा उपेक्षणीय है । इसका समय १९वीं शताब्दी का मध्य है ।

चन्द्रिका- (नाक) यह रामपाणिनाद लिखित एक वीथी है । इसका प्रथम अभिनय राजवशी मार्टण्ड के समय में त्रिवेन्द्रम में किया गया था ।

इसका नायक स्वप्न में एक मुद्रा को देखकर कामानुर हो जाता है । फिर जब मर वहलाने पुष्पोद्यान में जाता है तब उसे भोजपत्र पर लिखा एक प्रेम पत्र मिलता है और आकाशवाणी से उसे मन्देश मिलता है कि इस प्रेम पत्र को लिखने वाली चन्द्रिका राजा की रानी बनेगी । इस समय नेपथ्य से आवाज आती है कि चन्द्रिका का एक राक्षस ने अपहरण कर लिया है । राजा मूर्छित हो जाता है । होश में आने पर वह विद्रूपक के परामर्श से लम्बोदर की उपासना करता है । लम्बोदर दोनों से राक्षस को मार डालता है और चन्द्रिका तथा राजा का विवाह हो जाना है ।

चन्द्रिकाकलापीड- (नाक) यह रामवर्मा (दे) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें चन्द्रिका और चन्द्रशेखर के विवाह का विवर्ण किया गया है। इस नाटक की रचना मालावार के सेलूर स्थान पर चैत्रमास के नीलकण्ठोत्सव में प्रदर्शन करने के लिये हुई थी।

(ट्रायेनियल कैटेलाग आफ सस्कृत मैयुस्क्रिप्ट्स ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास III ३१५९)

चन्द्रिकाजनमेजय- (नाक) पद्मनाभ लिखित नाटक। यह पौराणिक कथा पर आधारित रचना है।

चर्चना- (टी) शकुन्ता नाटक की विस्तृत किन्तु अशुद्ध टीका। इसके कुछ भाग मालावार से लाकर मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में सुरक्षित रखे गये हैं। इस टीका में त्रैविक्रम की असामान्य विद्या का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस टीका में भास के सभी १३ नाटकों की अनियमितताओं का भी विवेचन है। साथ ही चोणा वासवदत्ता (दे) और चाण्डाल रामायण को भी भासकृत बनलाया गया है।

चाणक्य- (नापा) मुद्राराक्षस का प्रधान पात्र- (क) यह भारतीय कूटनीति का अन्वर्थावधार है। सारे सेनायें तैयारी करती ही रही, किन्तु इसने अपने बुद्धि कौशल से पहले नन्द बश का नाश किया और फिर नन्द बश के परम भक्त एव वदला लेने के लिये आनुर राक्षस को चन्द्रगुप्त का महामन्त्री बनने के लिये बाध्य कर दिया। चन्द्रगुप्त को नष्ट करने के जो भी जिनने भी उपाय राक्षस ने किये उनसे लौटकर उन्हीं राक्षस के अनुयायियों और मित्रों का विनाश हुआ।

(ख) जो चन्द्रगुप्त और चाणक्य का विशेष बराबर चन्द्रगुप्त को कमजोर करना चाहता था वही राक्षस उल्टा जाल में फँस गया। सीमान्त के जिन राजा लोगों को आधा राज्य देने के वायदे पर महापद्म के लिये लाया था उनमें एक एक को चाणक्य ने निरस्त कर दिया। गुप्तचरों का जाल इतना सगठित था कि कोई भी उस कूटव्यूह का उत्सङ्गन नहीं कर सका। सभी गुप्तचर जीवसिद्ध सिद्धार्थक, मर्वाथसिद्धि इत्यादि स्नेहशोल और पूर्ण अनुयायी हैं और नीच से नीच काम करने को तैयार रहते हैं। यहाँ तक कि अधिक का कार्य तक करने के लिये चाण्डाल का रूप भी धारण कर लेते हैं। वह सामान्य जीवन एव उच्च विचार का आदर्श रूप हैं। महान साम्राज्य के महामन्त्री का कार्य करते हुये भी अविचल मन्थामो का जीवन व्यतीत करता है और वही रूप में महान् शत्रु को पराजित करता है।

(ग) यह नाटक का नायक है। यद्यपि देखने में उसकी नीति का फल भोक्ता चन्द्रगुप्त है और साथ ही राक्षस को भी भौतिक रूप में उसका फल मिला ही है, किन्तु वास्तविक मन्त्रज्ञ तो चाणक्य की ही कही जायेगी। उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेने

का लाभ तो प्राप्त हो किया है। इसके अतिरिक्त प्रस्तावना के बाद उसी का प्रथम प्रवेश होता है। सारा कथनाक सूत्र उसी के नियन्त्रण में संकलित होता है और अन्त में उसको सफलता की घोषणा वह करता है। 'आज घाड़े हाथा इत्यादि के अतिरिक्त सभी कैदों छोड़ दिये जाय केवल मेरी शिखा बचेगी।' भरत वाक्य में भी वही प्रश्न करता है कि 'अब हम तुम्हारा और क्या उपकार करें।' चन्द्रगुप्त केवल आभार प्रदर्शित करता है किन्तु अन्तिम वाक्य राक्षस का है। यह कथन भी राक्षस का पराजय और वाक्य को विजय में ही पर्यवसित होता है।

(घ) छल की किसी भी वास्तविकता और अन्तर्गता तक पहुँचने की उसमें अभूतपूर्व क्षमता है। उसने सूक्ष्मदृष्टि से सारे रहस्य तक पहुँचकर राक्षस की सभी योजनाओं को उसी के पराजय की ओर उन्मुख कर दिया। साथ ही जिन सहायकों को आधा राज्य देने के वायदे पर लाया था और अन्ततः वे सब उसके प्रतिद्वन्द्वी बन गये उन सबको नीति के बल पर ही समाप्त कर दिया। राक्षस ने विजयन्ता के बल पर चन्द्रगुप्त को मरने की चेष्टा की थी किन्तु उससे पर्वतक को मार दिया। पर्वतक का भाई वैद्यचनक अपना अधिकार लेने पर डटा था उसे आधा राज्य देने का अभिनय कर नगर प्रवेश का यात्रा में मरवा दिया। गुप्तचरों के माध्यम से पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के मन में भय उत्पन्न कर उसे बनबूझ कर विरोधी बना लिया और उसी के विरोध के बल पर राक्षस पर विजय प्राप्त की। कुलूत का चित्रवर्मा, मलय का सिंहनद, कारगीर का पुष्कराक्ष, सिन्धु का सुर्ग और फारस का मेघनाद सभी मलयकेतु के सहायक थे। वाक्य नीति के प्रभाव से स्वयं मलयकेतु ने ही सबको मरवा दिया।

(ङ) मानवता की उसमें कमी नहीं। उसका अभिमान और बड़बोलपन उत्पन्न हो है किन्तु उसका हृदय बहुत कोमल है। वह शत्रुओं का भी भरपूर प्रशस्तक है और अन्त में सभी को पुरस्कार देता है। वह परम देशभक्त है। वह जानता है कि जब तक देश में चन्द्रगुप्त जैसे गुणवान्, दक्ष और शक्तिशाली सम्राट का शासन नहीं होगा और राक्षस जैसे स्वनिष्पक्ष राजनीतिज्ञ मन्त्री का उसे सहयोग नहीं मिलेगा यह राज्य कभी समृद्ध नहीं हो सकता। वास्तव में चन्द्रगुप्त को भी उसने ही इस कुशलता के लिये स्वयं तैयार किया था। उसके सभी कार्यों का सङ्कलन करने वाली देशभक्ति ही थी जिसने चन्द्रगुप्त जैसा महान् सम्राट् देश को प्रदान किया।

(१) चाणक्य विजयम्- (नाक) विश्वेश्वर विद्याभूषण (दे) का लिखा ५ अंकों का नटक। इसका विषय है नन्द पर विजय और चन्द्रगुप्त का राज्य प्राप्ति। यह नवीन शैली की रचना है जिसने अपरोक्षकों का प्रयोग नहीं किया गया है। अंकों का दृश्य में विभाजन इसकी एक अन्य विशेषता है। प्रसङ्गिक रूप में एकांकियों का प्रयोग किया गया है। सम्राट् छोटे रूप में है। नटक में छापान्त का भी स्पर्श है। अन्त में पराजय दृश्य का संदेश दिया गया है। रूपकमञ्चरी ग्रन्थानुसार से इसका १९६७ में

प्रकाशन हुआ था।

(२) चाणक्यविजयम्- (नाट्) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें नन्दवध चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण, राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त की मन्त्रित्व पद की स्वीकृति इन कथाभागों का समावेश हुआ है।

आस इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेंस के २०वें अधिवेशन में सन् १९५९ में इसका अभिनय किया गया था।

चाणूर- (नापा) भास के बालचरित का एक पात्र। कृष्णा ने उसका वध किया। मृत्यु का दिखलाया जाना नाट्य वर्जनाओं में आता है। किन्तु भास ने इस नियम का पालन नहीं किया है। यह रगमञ्च पर ही मारा जाता है और इसकी लाश भी रगमञ्च पर ही पड़ी रहती है।

चाण्डाल- (नापा) (१) मृच्छकटिक में चारुदत्त को शूली पर चढ़ाने के लिये दो चाण्डाल आते हैं। यद्यपि चारुदत्त के गुणों की छाप उनके हृदय पर भी लगी है, किन्तु अपने कर्तव्य पालन के प्रति वे पूर्ण रूप से सजग हैं। चारुदत्त की सन्निकट मृत्यु से शोकाकुल स्त्री समाज की अशु धारा उन्हें भी प्रभावित करती है। उन्हें आकाश रोता हुआ और वज्र गिरता हुआ प्रतीत होता है। अपने निष्ठुर व्यवसाय के प्रति सजग होते हुए भी वे सहृदयता से रिक्त नहीं हैं।

(२) मुद्रा राक्षस- में चन्दन दास के परिवार को शूली पर चढ़ाने के लिये चाणक्य के गुणचरों ने ही चाण्डाल का रूप धारण किया है। छद्म रूप में भी वे अपने कर्तव्य का सफलता पूर्वक निर्वहण करते हैं।

(३) चण्डकौशिक- में महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्र का देह निर्यातन करने के लिये स्वयं को चाण्डाल के रूप में देते हैं। वहा भी चाण्डाल एक पात्र है।

चाण्डालरामायण- (नाट्) शकुन्तला की टीक चर्चना (दे) में इस नाटक का उल्लेख किया गया है। टीकाकार के अनुसार यह एक छाया नाटक है जिसकी रचना भास ने की थी। किन्तु इस नाटक का कहीं कोई पता नहीं चलता।

चामुण्डा- (नाट्) एल व्यासराज शस्त्री लिखित चार अंकों का हास्यप्रधान नाटक। एममें एक विधवा का कथानक है जो विलायत से डाकरी पास कर लौटती है। ग्रामोण जनता उसका तिरस्कार करती है। किन्तु जब प्रधान की बहू को वही टीक करती है तब विशेष शमन हो जाना है और वह ग्राम्य जीवन में आदर प्राप्त कर लेती है।

यह २०वीं शताब्दी की कृति है चिन्दाद्रिपेट मद्रास से इसका प्रकाशन हुआ है।

चाम्दत- (नाट्) भास (६) की एक अपूर्ण नाट्यकृति। इसके चार अंक उपलब्ध होन हैं जिनके भास ने प्रभावना है, न भरत वाक्य। कहा नहीं जा सकता यह कृति भास

के अन्तिम जीवन की रचना है और भास उसे पूरा नहीं कर सके अथवा नाटक का अधिकांश भाग उच्छिन्न हो गया है और आजकल अधूरी रचना उपलब्ध होती है। कीध महोदय के अनुसार इसमें दो मत नहीं हो सकते कि स्वयंवासवदत्तम् (दे) भास की सर्वोत्तम कृति है। किन्तु यह धारणा इसीलिये सत्य है कि चारुदत्त उपलब्ध नहीं होता। इस नाटक का गौरव इसी बात से सिद्ध है कि यह प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिक की आधार भूमि तैयार करता है। चारुदत्त के जो अंक उपलब्ध हैं उनके कथानक का पूरा आधार मृच्छकटिक में ग्रहण किया गया है। हो सकता है शेष मृच्छकटिक भी शेष चारुदत्त के अनुपलब्ध भाग पर आधारित हो।

चारुदत्त एक सार्यवाह है जो दानशीलता के कारण दरिद्र हो गया है। वह एक वेश्या वसन्तसेना के प्रेम में फस जाता है। एक बार जब राजा का साला सस्थान वासवदत्ता का पीछा कर रहा था वासवदत्ता चारुदत्त के यहां शरण लेती है और जाते समय अपने आभूषण चारुदत्त के पास छोड़ जाती है। रात में सज्जलक नाम का चोर जेवरों को चुरा ले जाता है क्योंकि उसे अपनी प्रेमिका प्राप्त करने के लिये धन की आवश्यकता है। उसकी प्रेमिका वसन्तसेना की दासिनी है और निश्चित रकम देकर ही उसे दासत्व से मुक्त कराया जा सकता है। प्रातःकाल जब चारुदत्त को पता चलता है कि उसके घर से जेवर चोरी हो गये हैं तब वह अपनी पत्नी की रत्नावली विदूषक के हाथ वसन्तसेना के पास भेज देता है। इसमें चारुदत्त की पत्नी की उदारता भी सम्मिलित है जो निस्संकोच भाव से रत्नावली का उत्सर्ग कर देती है। वसन्तसेना को चोरी का पता चल चुका है। किन्तु चारुदत्त से पुनः मिलने की आशा से वह रत्नावली को स्वीकार कर लेती है। वसन्तसेना सज्जलक की प्रेमिका को मुक्त कर देती है। वह उदारता पूर्वक चारुदत्त के एक पुत्र से सेवक का उसके महाजन से उद्धार भी करा देती है और बाद में चारुदत्त के पास चली जाती है। यहीं पर नाटक की समाप्ति हो जाती है। समाप्ति पर प्रतीत होता रहता है कि चोरी का आरोप चारुदत्त पर लग रहा है और वसन्तसेना अभी सकटापन्न अवस्था में है। यदि कभी इस पूरे नाटक का अनुसन्धान किया जा सका तो साहित्य जगत् का बहुत बड़ा उपकार होगा। अभिनवगुप्त ने दक्षिण चारुदत्त का जो उल्लेख किया है वह सम्भवतः यही रचना है।

(१) चारुदत्त- (नापा) भास (दे) के नाटक चारुदत्त (दे) या दक्षिणचारुदत्त का नायक। मृच्छकटिक के चारुदत्त (दे) का प्रारम्भिक रूप इसमें उसका प्रेमी रूप ही चित्रित किया गया है। उसमें उसकी उदारता, त्याग वृत्ति और उससे उत्पन्न दक्षिणता का चित्रण किया गया है। सज्जलक द्वारा चोरी गये आभूषणों के बदले में वह कहीं अधिक बहुमूल्य रत्नावली वसन्तसेना के पास भेज देता है। इस नाटक में चारुदत्त और वसन्तसेना के चरित्रों का परिमार्जन नहीं हुआ है। चारुदत्त अभी तक चोरी की वदनामी से मुक्त नहीं हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि चरित्र चित्रण अभी अधूरा है।

(२) चारुदत्त- (नापा) शूद्रक (दे) कृत मृच्छकटिक (दे) का नायक यह अवन्तिपुरी का एक प्रसिद्ध सार्ववाह (व्यापारी दल का मुखिया) है। इसे अपने पिता पितामह से अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। किन्तु वह एक उदार, वदान्य एवं परोपकारी व्यक्ति है जिसकी प्रतिष्ठा दूर दूर तक फैली है। और जन समाज में उसे आदर और प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है। अपनी उदारता और वदान्यता के कारण उसने सारी सम्पत्ति समाप्त कर दी है। अब वह कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहा है। किन्तु उसे कष्ट की नहीं इस बात की चिन्ता है कि अब याचकों को देने के लिये उसके पास कुछ नहीं है। उसने सम्पत्ति तो खो दी है किन्तु गुणों की उदारता में कोई कमी नहीं आई है।

वह रूपवान भी है और नगर की सर्वाधिक सुन्दरी तथा सम्पन्न वेश्या वसन्तसेना (दे) उसे दिल दे बैठी है। वह उसके गुणों एवं रूप पर रीझी है तथा सर्वस्व देकर भी उसे प्राप्त करना चाहती है। किन्तु वसन्तसेना के पीछे राजा का साला सस्थानक पड़ा है। एक देवयाग से लौटते समय जब सस्थानक वसन्तसेना का पीछा करता है तब वह शरण प्राप्त करने के लिए चारुदत्त के घर में प्रवेश कर जाती है और चोरों के ढर से अपना सारा जेवर चारुदत्त के यश घरोहर के रूप में रख जाती है। उस जेवर को रात में शक्तिशाली चुरा ले जाता है। यह एक अपयश का मामला है। अतः चारुदत्त बहुत ही सुन्दर रत्नहार जो उसकी पत्नी का अन्तिम आभूषण है और वसन्तसेना के सभी आभूषणों से अधिक मूल्यवान है उन आभूषणों के बदले में भेज देता है। वसन्तसेना को आभूषण मिल गये हैं फिर भी एक बार फिर चारुदत्त के दर्शनों की लालसा में वह रत्नावली को स्वीकार कर लेती है।

वसन्तसेना चारुदत्त से मिलने जाती है और वहीं रात बिताती है तथा दूसरे दिन पुष्पकण्ठ नामक जीर्ण उद्यान में सैर सपाटे का प्रोग्राम बनाया जाता है और वसन्त सेना को ले जाने के लिये गाड़ी तैयार की जाती है। किन्तु वसन्त सेना घोखे से सस्थानक की गाड़ी में बैठ जाती है। चारुदत्त की गाड़ी में जेल से भागा हुआ आर्यक बैठ जाता है। यद्यपि उसे सहाय्य देने में राजा के कोष भाजन होने का खतरा है फिर भी चारुदत्त माहस के साथ उसकी रक्षा करता है।

सस्थानक उस पर वसन्तसेना की हत्या का आरोप लगाता है और सारे प्रमाण जुटा देता है। अतः न्यायालय से उसे मृत्युदण्ड का आदेश दे दिया जाता है। परन्तु वसन्त सेना समय पर उपस्थित होकर उसे बचा लेती है। इसी बीच राज्य परिवर्तन हो जाता है और आर्यक राजा बनकर उसके उपकार का बदला देता है। चारुदत्त को निग्रह अनुग्रह का अधिकार मिल जाता है। वह अन्धकारियों का सभी को पुरस्कार देता है। किन्तु जब शंकर (सस्थानक) को दण्ड देने का प्रश्न उसके सामने आता है तब वह अपनी उदारता को मुश्किन रखने हुए उसे छोड़ देता है। वह अपनी उदारता को इसी रूप में देखता है कि किसी विरोधी पर उपकार करना भी उसे दण्ड देने बराबर ही है।

वह सभी गुणों का भण्डार है, विनीत है, त्यागी है, कार्यकुशल है, कलानिपुण एवं कलाप्रेमी है, मधुर भाषी है, कुलीन है- सम्भवतः ब्राह्मण है। सब लोग उससे प्रेम करते हैं। सामान्यतः अच्छे नायक के लिये अपेक्षित सभी गुण उसमें विद्यमान हैं।

(१) चार्वाक- (नापा) वेणी सहार में एक पात्र। यह एक राक्षस है जो चार्वाक (नास्तिक) व्यक्ति का रूप धारण कर आता है। भीम द्वारा दुर्योधन मारा जा चुका है किन्तु चार्वाक युधिष्ठिर को झूठा समाचार देता है कि भीम और अर्जुन की मृत्यु हो गई है। इससे खलवली मच जाती है। युधिष्ठिर शस्त्र लेने के लिये दौड़ पड़ते हैं। आने वाले भीमसेन को दुर्योधन समझकर द्रौपदी भाग खड़ी होती है। जब वास्तविकता का पता चलता है द्रौपदी प्रसन्न होकर वेणी (केशपाश) का सयमन करने लगती है। चार्वाक भीम के आने के पहले ही पलायन कर जाता है।

(२) चार्वाक- (नापा) प्रबोध चन्द्रोदय (दे.) में देहात्मवादी दार्शनिक जो महामोह का पक्षपोषक है।

चार्वाकताण्डवम्- (नाकृ.) वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य (दे.) लिखित ८ अंकों का नाटक। इसमें अन्य दर्शनों से चार्वाक का शास्त्रार्थ दिखलाया गया है।

चालुक्यराज- (नापा) कर्णसुन्दरी (दे.) नाटिका का नायक।

चितिनिग्रहम्- (नाकृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

चित्तवृत्ति कल्याण- (नाकृ.) भूमिनाथ (नल्ला दीक्षित) (दे.) लिखित एक प्रतीक नाटक। इसका उल्लेख कैटेलोगस कैटेलोगोरम में ११८६ पर किया गया है।

चित्रदीपम्- (नाकृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक।

चित्रभारत- (नाकृ.) दे. क्षेमेन्द्र।

चित्रमाय- (नापा.) उदात्तराघव (दे.) के खण्डित रूप में प्राप्त अंशों में यह एक पात्र है जो शिकार के लिये गये हुये लक्ष्मण के भयभीत होने की सूचना आवाज बनाकर राम को देता है जिससे यदि लक्ष्मण की रक्षा के लिये राम आश्रम छोड़कर वन को चल दें तो सीताहरण के लिये रावण को अवसर मिल जायेगा। इससे राम दुविधा में पड़ जाते हैं।

चित्रयज्ञ- (नाकृ.) (१) विल्सन ने इस नाम के एक नाटक का उल्लेख किया है जिसकी शैली उनके अनुसार महानाटक से मिलती है। जिसकी रचना प्रमुख रूप में पद्यात्मक हुई है। स्थान स्थान पर गद्य का प्रयोग सूचना के लिये किया जाता है। ज्ञात होता है इस प्रकार के नाटक अभिनय के लिये नहीं पढ़ने के लिये लिखे गये थे। यदि इनका अभिनय भी किया जाता तो सूचक आकर समय समय पर पद्य और गद्य के माध्यम से सूचना दे देता था। हो सकता है जैसा कि हेमचन्द्र ने प्रामाणित किया है सूत्रधार ही यह कार्य करता हो और सूचना देकर किसी पात्र के अभिनय में शामिल हो जाता हो। यह

स्वाग की शैली है जो कई प्रदेशों में अपनाई जाती है।

(२) वैद्यनाथ वाचस्पति- भट्टाचार्य लिखित इसी नाम का नाटक। इसकी रचना १८२० में नदिया के राजा के अनुरोध पर की गई थी।

चित्ररथ- (नापा) महावीर चरित का एक पात्र। जो एक गन्धर्व है। यह इन्द्र के साथ सवाद करते हुए राम रावण युद्ध का वर्णन करता है। चित्ररथ और इन्द्र दोनों गगन घाती हैं। अतः उन्हें ऊपर से युद्ध अवलोकन की सुविधा प्राप्त है।

चित्रलेखा- (नाकृ) भोजराज ने इस प्राकृत रचना का उल्लेख उपकथा के उदाहरण के रूप में किया है जहाँ किसी बड़ी रचना के अन्तर्गत आई हुई किसी अति प्रसिद्ध कथा को लेकर रचना की जाती है। कुछ विचारकों ने इस विधा का समावेश नाटिका के अन्तर्गत किया है। कहा नहीं जा सकता कि यह अप्राप्त रचना दृश्य काव्य के रूप में थी या श्रव्य काव्य के रूप में। यह भी पता नहीं कि यह स्वतन्त्र कृति थी या किसी बड़े ग्रन्थ का एक भाग।

चित्रोत्पलावलम्बितक- (नाकृ) अमात्य शकुन लिखित प्रकरण। इसका उल्लेख नाट्य दर्पण में किया गया है।

(१) चतसूर्यलोक- (नाकृ) रानी मरामिन् चिन्ननरसिंह कवि लिखित प्रतीक नाटक। इसी नाम का एक नाटक विजयापट्टम से प्रकाशित हो चुका है। किन्तु यह नाटक उससे भिन्न है- जिसकी सूचना कृष्णमाचार्य को विजयापट्टम के पी एल एडवोकेट ने दी थी। इसी नाम का एक अन्य नाटक भी उपलब्ध होता है जिसके लेखक का पता नहीं है।

(२) इसी नाम की एक रचना मुकुन्दरसिंह आचार्य लिखित प्राप्त होती है। इस रचना का प्रकाशन विजयनगरम् से हो गया है।

चिपिटक चर्वणम्- (नाकृ) यह जीवन्त्यायतीर्थ लिखित एक प्रहसन है। इसका नायक कपाली और नायिका रोगिणी हैं। कपाली धनी किन्तु अत्यन्त कृपण हैं। उमकी चष्टायें हास्य का कारण बनी हैं। इसका प्रकाशन नाटकचक्रम् में हो गया है।

चिरजीव- (नाका) दे रामदेव।

चूडानाथ भट्टराय- (भट्टाचार्य २) ये नैपाली कवि हैं। नैपाल के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय काठमांडू में प्राचार्य थे। इनका लिखा परिणाम नामक (दे) ७ अंकों का नाटक प्राप्त होता है। इनका समय २०वीं शताब्दी है। इन्हें चूडामणि भट्टाचार्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

चूडामणि भट्टाचार्य- (नाका) दे चूडानाथ भट्टराय।

चूडामणि- (नाकृ) अभिषेकानुज ने डोम्बिका उपरूपक के उदाहरण के रूप में इस अप्राप्त कृति का उल्लेख किया है। (दे अभिषेक भारती अंक ४)

चैतन्य- (नापा) चैतन्य चन्द्रादय का एक पात्र चैतन्य महामुनि की आध्यात्मिक

शक्ति अपरिमेष है जिससे कलि और अघर्म घबरा उठे हैं। शक्ति और मैत्री भावनायें घबरा उनके चरित्र को उदात्त बनाती हैं।

चैतन्यचन्द्रोदय- (नाकू) कवि कर्णपुर (दे) विरचित प्रतीक नाटक। इस नाटक का उद्देश्य चैतन्य देव की आध्यात्मिक शक्ति और लीला का चित्रण करना है। इसमें कुछ पात्र वास्तविक हैं और कुछ कल्पित एवं भावना के मूर्तीकरण हैं। १० अंकों का यह नाटक आशिक रूप में प्रतीक, आशिक रूप में दार्शनिक और आशिक रूप में ऐतिहासिक है। यह प्रताप रुद्र के निर्देश पर लिखा गया था। कलि और अघर्म वार्तालाप करते हैं कि चैतन्य के उपदेशों से उनका (कलि और अघर्म का) जनता पर शासन समाप्त हो रहा है। उसी समय चैतन्य शिष्यों के साथ सद्धर्म का उपदेश देने आ जाते हैं। इस नाटक में भक्ति इत्यादि भावनाओं का मात्रातीकरण किया गया है। नाट्य कृष्ण इत्यादि पौराणिक पात्र हैं और चैतन्य प्रताप रुद्र इत्यादि कविप्रिय पात्र वास्तविक हैं।

इसकी रचना उड़ीसा के गजपति मल्ल की आज्ञा से १५७० में की गई थी। काव्यमाला संस्करण १९०६ में कलकत्ता और बम्बई दोनों स्थानों से इसका प्रकाशन किया गया था। (लेवी द्वारा विवेचन- से थियेटर इण्डियन पैरिस १८९० स २३७)

चंद्रघण्ट- (नाकू) वैद्यनाथ वाचस्पति लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें दधयज्ञ की कथा अपने पूरे विस्तार में चित्रित की गई है जिसमें देवताओं का एकत्र होना और धन विधि का विवरण आ जाता है। इस पुस्तक का सङ्कलन कैटेलागस कैटेलागोरस स ११८७ पर किया गया है। विल्सन के थियेटर II ४१२ १५ में इसका विश्लेषण प्राप्त होता है।

चैतन्यचैतन्यम्- (नाकू) चैतन्य महाप्रभु के चरित्र चित्रण पर आधारित डा रमा चौधरी (दे) का ५ दृश्यों का नाटक।

चौककनाथ- (नाका) इनका लिखी तीन रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है- सेवन्तिनापरिणय, कान्तिप्रती- परिणय और रमन्विलास नामक भाग। इनके पिता भरद्वाज गोत्रोप तिष्ठाध्वरि थे और माता का नाम नरमम्बा था। ये रामभद्र के शिष्यक और नीलकण्ठ के मित्र थे। ये तजौर में शाहजो महाराज के आश्रित कवि थे और इन्होंने दक्षिण कनारा का यात्रा की थी तथा राज्या वासव के दरबार तक गये थे।

चौरचतुरोदयम्- (नाकू) चौपंकज के विभिन्न पक्ष को लेकर हास्य सृष्टि करने वाला एक प्रहसन। इसके लेखक हैं जीवन्त्यायनोर्थ। संस्कृत सार्वत्र्य पारषद पत्रिका में १९५१ में इसका प्रकाशन हुआ था।

चौलभाण- (नाकू) इन भाग की रचना जयद आचार्य न १७वीं शताब्दी में की ग। कव्यर्त भद्र में पेटर्सन न संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो छोज की थी जिसकी रिपोर्ट ४ गण्डो में प्रकाशित हुई थी उसमें न १२६४ पर इसका उल्लेख किया गया है। ये

वरदाचार्य प्रसिद्ध अम्मालाचार्य से सम्भवत भिन्न थे।

चौधरी यतीन्द्रविमल- (नाक) दे यतीन्द्र विमल चौधरी।

चौर्य- (नापा) महामोह पराजय में विरोधी पक्ष महामोह का एक सदस्य। कृपामुन्दरी और कुमारपाल के विवाहोत्सव में कृपामुन्दरी के अपहरण पर कुमारपाल ने जिन व्यसनों का निर्वासन किया था उनमें यह भी एक था।

चौर्य- (शास्त्र) मृच्छकटिक में शर्विलक चारुदत्त के महा घोरी करने के अवसर पर इस शास्त्र का स्मरण करता है। इसके आचार्य हैं- कनकशक्ति और देव हैं- स्कन्द (स्वामिकार्तिकेय)

छ

छत्रपति शिवराज- (नाक) श्रीराम भीवाजी वेलणकर (दे) लिखित ५ अकों का नाटक यह एक ऐतिहासिक नाटक है। शिवाजी की विजयपुर विजय से लेकर राज्यारोहण तक की घटनाओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन देववाणी मन्दिर एवं भारतीयविद्याभवन से हुआ है।

छत्रपति साम्राज्यम्- (नाक) यह १० अकों का ऐतिहासिक नाटक है। इसकी रचना मूलशकर माणिक लाल याज्ञिक ने की थी। इसमें शिवाजी की शासन व्यवस्था का चित्रण किया गया है। इस नाटक में शिवाजी की धर्म राज्य स्थापित करने की प्रतिज्ञा उनकी अनेक दुर्गों और राज्यों पर विजय बीजापुर से सन्धि मुगल सम्राट् दारा शिकोह पर मिठाई की टोकरी में बाहर आना गुर्जर प्रदेश पर अधिकार राजपद पर अभिषेक तथा धर्म राज्य की स्थापना इन सब ऐतिहासिक घटनाओं का कथानक के रूप में उपादान किया गया है।

यह नाटक बड़ोदा से प्रकाशित हुआ है।

छलितराम- (नाक) यह एक राम विषयक नाटक है जो अब उपलब्ध नहीं होता और न इसके लेखक का पता चलता है। किन्तु जो उद्धरण दिये गये हैं उससे ज्ञात होता है कि इसमें राम व वनवास से लौटने के बाद से लेकर उदररामचरित की घटनाओं का नाट्य विषय बनाया गया है। उद्धरणों से पता चलता है कि रचयिता ललित एवं प्रसाद गुण पूर्ण है और इसके निर्धार में उदात्तता पयास मात्रा में निष्पन्न है।

इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणधर ने नाट्यदर्पण में एवं धनिक ने दशरूपकम् की अवन्ताक टीका में किया है। इसी प्रकार विश्वनाथ ने भी इसमें उद्धरण दिया है। भास्कर ने शृङ्गार प्रकाश में इस प्रसंग में इसका उल्लेख किया है कि जरा कवि एतिहास कथा वस्तु का लेकर उसका प्रतिगम्भार कर उम नया रूप दे देता है। इसी प्रकार प्रबोध में

भी रस के अविभोग के प्रकरण में और लक्षणविवेचन में उसे उद्धृत किया गया है।

छविलालसूरि—(नाका) ये नेपाली कवि हैं। इनका लिखा कुशलबोदय नामक एक नाटक बतलाया जाता है। इसके अतिरिक्त विरक्तितरंगिणी, सुन्दर चरित वृत्तालकार ये रचनाएँ भी इनके नाम से प्रसिद्ध हैं।

छायानाटक—(नावि) संस्कृत नाट्य शास्त्र में इस विधा का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु इस विधा के जो तत्व या इसका जो स्वरूप बतलाया जाता है उसकी सत्ता अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय साहित्य में पाई जाती है। सम्भवत इसका निकट सम्बन्ध कठपुतलियों के नृत्य से है। जर्मन विद्वान पिशेल दो कठपुतलियों के नृत्य से ही नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं। किन्तु कीध का कहना है कि कठपुतलियों के नृत्य से बहुत पहले नाटक का जन्म हो गया था। लूडर्स ने छाया द्वारा प्रदर्शन का सिद्धान्त स्वीकार किया है। इसमें रंगमञ्च पर एक परदा याग दिया जाता था और उसके पीछे चमड़े, लकड़ी या दफती की मूर्तियाँ चलती भ्रित्तों और अभिनय करती दिखलाई जाती थीं। उन मूर्तियों के पीछे लैम्प का प्रकाश डाला जाता था जिससे उनकी छाया परदे पर पड़ती थी और दर्शक उनके अभिनय का आनन्द लेते थे। पीछे की ओर सवाद इस रूप में बोला जाता था जो उन चल छायाओं का सवाद ज्ञात होता था। इस प्रकार ये छाया चित्र वर्तमान टाकीज का प्रति रूप थे। विल्सन का कहना है कि किसी नाटक के प्रारम्भ, सामूहिक अभियान या परिचित जीवन के चित्रों को छाया चित्रों द्वारा दिखलाया जाता था। नाटक प्रारम्भ होने के पहले जन समाज के अनुरजन के लिये परदे के पीछे जो पूर्वगम की व्यवस्था की जाती थी उसका प्रदर्शन सम्भवत इन छाया पटों पर किया जाता था। उत्तर रामचरित में अदृश्य रूप में सीता उपस्थित होती है और वे राम की मूर्छा दूर करने के लिये उनका बार बार स्पर्श करती है। इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम् में सानुमती अदृश्य रूप में राजा की वियोग दशा का अवलोकन करती है। सम्भवत ये दृश्य भी छायापट पर ही दिखलाये जाते थे। मुद्राराक्षस में चित्रपट दिखलाने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। महाभारत में रघोपजीवन शब्द शान्ति पर्व में आया है। जिसकी व्याख्या करते हुए नीलकण्ठ ने लिखा है कि दाक्षिणात्य में जलम्पडतिका नामक एक दृश्य विधा प्रसिद्ध है जिसमें पतले वस्त्र के व्यवधान में चमड़े इत्यादि के बने राजा, मन्त्री इत्यादि की चर्या दिखलाई जाती है। यह वस्तुतः छाया पटों का ही स्वरूप है।

इसी विधा के अन्तर्गत दृश्य दिखलाकर संगीत रूप में या सामान्य सवाद के रूप में वर्णन करना भी सम्मिलित है। अभिनवगुप्त ने इस प्रकार चित्र दिखला कर वर्णन करने के तीन प्रकार बतलाये हैं—चैत्रिक जिसमें चित्र या मूर्तियाँ इत्यादि दिखलाकर कथा कही जाती है। इसी के अन्तर्गत चित्रपुत्रिका (कठपुतली) का भी समावेश हो जाता है। मन्थिक अर्थात् अभिनय द्वारा वर्णन करना तथा शौभिक जिसमें तद्रूप कपड़े इत्यादि धारण कर तथा बलफिर कर कहानी कही जाती है। इन सबको अभिनवगुप्त ने नाट्य छाया के

अन्तर्गत ही सन्निविष्ट किया है। श्रीडाभिरामनाटक नामक नाट्य काव्य में भी इस विधा पर प्रकाश डाला गया है।

छाया नाटक- (नाकू) यह विद्वल का लिखा नाटक है जिसका कथानक बीजापुर की आदिलशाही वंश परम्परा (१४८९-१६६०) पर आश्रित है। इसका प्रकाशन बम्बई से हो गया है।

(२) इसी नाम का एक नाटक भूभट (दे) का लिखा भी पाया जाता है जिसकी रचना दूताङ्गद के आदर्श पर हुई थी।

छायानाटक साहित्य- (नास) यद्यपि इस विधा की पारिभाषिकता संस्कृत के नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं मिलती किन्तु इस विधा में समाविष्ट हो सकने योग्य साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। प्रतिष्ठित नाटकों में इस विधा का प्रासङ्गिक रूप में समावेश तो हुआ ही है जैसे सानुमती का राजा को विगोय व्यथा का अदृश्य रूप में अवलोकरण और उत्तररामचरित में सीता और तमसा का अदृश्य रूप में राम की मूर्छनाओं में उन्हें होश में लाने का प्रयत्न तथा मुद्राराक्षस में छायापट का विस्तारित करना। एक धारणा यह भी है कि पूर्व रगविधि में इस विधा का प्रयोग किया जाता था। इन प्रसंगों के अतिरिक्त इस विधा की पूर्ण कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं जिनमें प्रमुख हैं-

धर्माभ्युदय या छाया नाट्य प्रबन्ध ले मेघप्रभाचार्य, दूताङ्गद ले सुभट, दूताङ्गद ले भूभट, व्यासरामदेव लिखित तीन नाटक- सुभद्रा परिणय, रामाभ्युदय और पाण्डवाभ्युदय, सावित्रीचरित ले शङ्खलाल, हरिदूत ले अज्ञान, छायानाटक ले विद्वल, त्रैविक्रम नामक दो कृतियाँ (दे)।

छायानाट्य प्रबन्ध- (नाकू) दे धर्माभ्युदय

छायाशाकुन्तलम्- (नाकू) जीवन लाल पारेख लिखित एकाङ्की। इसमें परित्यक्ता शकुन्तला का तिरस्करिणी के प्रताप से कण्वाश्रम में आने का प्रकथन किया गया है। इसका प्रकाशन सूरत से १९५७ में हो गया था।

ज

जगज्ज्योतिर्मल्ल- (नाका) ये भटगाव नेपाल निवासी संगीतकार एवं नाटककार हैं। इनका समय १६१७ से १६३३ तक है। इनका लिखा हर गौरी विवाह (दे) प्रकाश में आया है।

जगदनिन्द- (नाकू) इस नाटक के लेखक का नाम हर्षदेव बताया गया है। सम्भवतः ये हर्षदेव प्रसिद्ध बर्नोअ राज से भिन्न थे।

जगदीश- (नाका) राध्याजीव प्रहसन के लेखक। यह एक अज्ञात कवि है जिसके

व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

जगदीश अथवा जगदीश्वर तर्कालकार- (नाका) इनका लिखा हात्पार्णव (दे) प्रकाश में आया है। इनकी लिखी एक दूसरी नाट्यकृति कुमतिप्रमथन भी बतलाई जाती है।

जगद्धर- (टीका) इनके पिता का नाम रत्नधर माता का नाम दमयन्ती और बाबा का नाम विद्याधर था। ये सभी लोग शास्त्रों के विद्वान् एवं अच्छे कवि थे जैसा कि इनकी टीकाओं के उपक्रमपद्यों से ज्ञात होता है। देवीमाहात्म्य, मेघदूत, मालतीमाधव, वासवदत्ता सरस्वती कम्पाभरण और वेणुसहस्र पर इनकी टीकाएँ प्राप्त होती हैं। अन्य कृतियाँ हैं- संगीतसर्वस्व और शिवस्तोत्र। इनका समय १५वीं शताब्दी है।

(१) **जगन्नाथ-** (नाका) ये तीर्थभक्ति परिवार के मैथिलब्राह्मण पीताम्बर के पुत्र थे। फतेरशाह (१६८४-१७१६) के दरबार में जो सामन्तगण उपस्थित हुये थे उनके मनोरञ्जन के लिये इन्होंने १७वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में अतन्द्रचन्द्रिका (दे) नामक एक नाटक प्रस्तुत किया था।

(२) **जगन्नाथ-** (नाका) ये तजौर के महाराज सफौजी (१७११-१७२२) के मन्त्री चालकृष्ण के पुत्र और कामेश्वर के शिष्य थे। ये स्वयं भी सफौजी महाराज के दरबार में रहे थे। इनके दो नाटक प्राप्त होते हैं- रतिमन्मथ (दे) और वसुमतीपरिणय (दे)।

(३) **जगन्नाथ-** (नाका) ये भावनगर के राजा वज्रसिंह के राजकवि थे। बड़ौदा नरेश ने भी इनका सम्मान किया था। ये मूर्तिकला, संगीत कला, चित्रकला, तथा नृत्य में प्रवीण थे। इनकी कतिपय अन्य कृतियों में भाग्यमहोदय (दे) एक नाटक भी पाया जाता है। ये आरु कवि थे। इनका समय १८वीं शताब्दी का मध्यकाल है। माडर्नरिब्यू के १६वें अंक से ज्ञात होता है कि ये १७वीं शताब्दी में नाना फडनवीस के समय गाजियाबाद में रहते थे।

(४) **जगन्नाथ-** (नाका) ये कावलवशीय श्रीनिवास के पुत्र तथा शाहजी शरभोजी के दरबारी कवि थे। इनके लिखे दो भाण प्राप्त होते हैं- अनगविजय (दे) और शृङ्गार तरंगिणी (दे)। इन्होंने शरभराज विलास की भी रचना की थी। इनका रचनाकाल १८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

जगन्नाथ वल्लभ- (नाक) रामानन्द राय (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक। राया को मनाना इसका मुख्य विषय है। मुर्शिदाबाद से इसका प्रकाशन हो चुका है। संस्कृत पाण्डुलिपि सूचनासमूह (नोटिसेज ऑफ़ संस्कृत मैन्सक्रिप्ट्स) ४१५६७ तथा कैटेलागस कैटेलागोरम १९१६ में भी इसका उल्लेख किया गया है।

जगन्मोहन भाण- (नाक) इस भाण की रचना श्री रघुनाथ शास्त्री वेलण्वर ने २०वीं शताब्दी में की थी। इसका प्रकाशन हो चुका है।

जगू आलवार आयर- (नाका) इन्हें कविवर जगू के नाम से भी याद किया जाता है। ये मैसूर के निवासी थे। इनकी कादम्बरी जैसी एक कल्पित अद्भुतकथा जवनिका प्रसिद्ध है। इनके लिखे दो नाटक भी बतलाये जाते हैं स्यमन्तक (दे) और अद्भुताशुक (दे) इनका समय २०वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। सम्भवतः जगू वकुलभूषण (दे) भी इन्हीं का नाम है जिनकी लिखी प्रतिज्ञाचाणक्य (दे) इत्यादि अनेक कृतियाँ बतलाई जाती हैं।

जगू श्रीवकुल भूषण- (नाका) ये कौशिक गोत्र में उत्पन्न जगू शिंगरार्य (शिग्रैया) के पौत्र तथा श्री नारायणार्य के पुत्र थे। ये यदुगिरि (मैसूर) की संस्कृत महापाठशाला में संस्कृत साहित्य के अध्यापक थे। इन्होंने १७वें वर्ष की आयु में रचना प्रारम्भ कर दी थी। इन्होंने अनेक महाकाव्य गद्य काव्य एवं चम्पू काव्य लिखे थे जिनमें कुछ प्रकाशित हैं कुछ अप्रकाशित। इनका नाट्य साहित्य भी अत्यन्त विस्तृत है। इनके लिखे नाटक हैं- अद्भुताशुक मञ्जुलमञ्जोर, प्रतिज्ञाकौटिल्य, सयुक्ता प्रसन्नकारण्य स्यमन्तक, बलि विजय अमृत्यमाल्य अप्रतिमप्रतिम, मणिहरण, प्रतिज्ञा शान्तनव, नवजीमूत, यौवराज्य वीर-सौभद्र और अनङ्गदा। नाटकों का परिचय यथा स्थान देखिये।

जगू शिंगरार्य- (सिंगरैया) (नाका) ये यदुशैल (मेरकोटे) के निवासी थे। अन्य रचनाओं के अतिरिक्त इनके दो नाटक भी प्राप्त होते हैं- युवचरित और शिविवैभवम्। इनका समय २०वीं शताब्दी (१९०२-१९६०) है।

जङ्गम- (नापा) शारदा तिलक में शैवों और वैष्णवों को यह अभिधा दी गई है और उनकी मजाक उड़ाई गई है।

जटदेव- (नाका) ये १८०० ई के आसपास मालावार में रहते थे। ये विश्वामित्र गोत्रीय थे तथा सोमयाग कर सन्यासी हो गये थे। इन्होंने पूर्ण पुरुषार्थ चन्द्रोदय (दे) नाटक की रचना की थी जो एक प्रतीक नाटक है। इनको जातवेदस नाम से भी याद किया जाता है।

जटायु- (नापा) रामायण का एक प्रमुख पात्र जिसने सीता हरण के अवसर पर रावण के प्रतिरोध की चेष्टा की थी और युद्ध करते हुए मारा गया। इसका राम विषयक नाटकों में प्रायः उपादान हुआ है-

(१) प्रतिष्ठा नाटक- में भास ने इसका पात्र के रूप में समावेश किया है। जब परिव्राजक रूप में रावण पित्र श्राद्ध निमित्त कचनमृग लाने के लिये राम की भेज देता है और अवेली पाकर सीता का अपहरण करता है तब जटायु उसे रोक्ता है और युद्ध करने हुए मारा जाता है।

(२) महावीर चरित- में सूच्य भाग में जटायु और सम्पाति का वार्तालाप होता है। जिसमें राम के वनगमन और उनके वन के क्रिया कलापों पर प्रकाश पड़ जाता है।

सम्पत्ति वन्य जीवन में राम की कुशलता के लिये चिन्तित है। वह जटायु को रक्षा के लिये सावधान रहने का आदेश देता है। जटायु जब रावण द्वारा हरी गई सीता को देखता है तब कर्तव्य पालन के लिये तैयार हो जाता है और युद्ध करते हुये मारा जाता है। एक अन्य सवाद भी है जो जटायु और जाम्बवन्त के मध्य होता है।

(३) अनर्घराघव- में जाम्बवन्त के साथ जटायु भी रावण की उपस्थिति से चिन्तित है। जटायु ही जाम्बवन्त को सूचना देता है कि उसने रावण और मारीच को वन में देखा है तथा उससे समाचार पाकर ही जाम्बवन्त रावण की उपस्थिति की सूचना सूभीव को देने जाता है। सीता के अपहरण को देखकर जटायु रावण का पीछा करता है।

(४) प्रसन्नराघव- में गोदावरी और समुद्र की बातचीत में जटायु के क्रियाकलाप पर प्रकाश पड़ता है।

जनुकणी- (नास) भवभूति की माता का नाम।

जनक- (नापा) (१) महावीर चरित (दे) में सीता के पिता। इनकी पुत्रियों सीता और उर्मिला ने विश्वामित्र के आश्रम में राम और लक्ष्मण का व्रण कर लिया जिसे जनक ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। यह तथ्य उनकी उदार दृष्टि का परिचायक है।

(२) उत्तररामचरित- (दे) में उनका चरित्र सक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है। पहले अंक में ही उल्लेख किया गया है कि जनक सीता से मिलकर लौटे हैं और सीता इस कारण दुखी है।

जनक राजधर्म का परित्याग कर आश्रम में रह रहे हैं। कौशल्या उन्हें मिलने आती है। परिस्थिति बड़ी विषम है। उनकी पुत्री और कौशल्या की पुत्रवधू का परित्याग किया जा चुका है। परित्याग भी ऐसे अवसर पर हुआ जब कि गर्भ के दिन पूरे होने की आये हैं। दो परिवार नवागत शिशु के स्वागत में हर्षोल्लास के वातावरण से वंचित हो चुके हैं। सीता का परित्याग भी कलक लगाकर किया गया है। परिस्थिति का प्रभाव भी दोनों की मनोवृत्ति पर पड़ा है। दोनों एक दूसरे को आश्वस्त करते हैं। दोनों की भावनायें स्वभाविक हैं जिनमें बनावट का अंश नहीं। इनका चित्रण हृदय स्पर्शी है। जनक की दारानिष्कता का भी यहाँ अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

(३) अनर्घराघव- में एक भावुक पिता के रूप में इनका चित्रण किया गया है। पहले ही जनकपुर की चतने के प्रस्ताव के अवसर पर विश्वामित्र राम को जनकपुर और जनक का परिचय देते हैं। रावण का प्रस्ताव दुखाने में उनके साहस की अभिव्यक्ति होती है और धनुष चढ़ाकर राम ने जो प्रतिज्ञा पूर्ति की है उसके प्रति वे सन्वे सिद्ध होते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति हैं फिर भी भावुकता से रहित नहीं हैं। जब वे राम के निर्वासन का समाचार सुनते हैं तब भावुकता वश आध्यात्मिकता को भूलकर भावना प्रवाह में वह जाते हैं।

(४) प्रसन्नराघव- में बहुत ही छोड़े रूप में चरित्र चित्रण हुआ है। इस वर्णन- प्रधान नाटक में अन्यो के साथ जनक की प्रशस्ति भी वर्णित की गई है। जब परशुराम के साथ राम और लक्ष्मण का विवाद स्तूर्ध्व की सीमा पर पहुच जाता है तब शतानन्द और विश्वामित्र के साथ वे दोनों पक्षों को युद्ध से विरत करने का असफल प्रयास करते हैं। सघर्ष में अन्त राम विजयी होते हैं।

(५) महानाटक- (तनुमनाटक) में इनका चरित्र बहुत ही स्वल्पमात्रा में आया है। केवल जनक पुर की घटनाओं में ही इनका समावेश किया गया है।

जनकजानन्दन- (नाट्) यह नृसिंह (कल्पलक्ष्मीनृसिंह) का राम विषयक नाटक है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी। ओरियण्टल लायब्रेरी मैसूर के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग स २७६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(२) राम कथा विषयक इस नाटक की रचना कल्पलक्ष्मीनारायणसिंह ने १८वीं शताब्दी में की थी। नरसिंह के वार्षिक उत्सव के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था। एक ही नाम के ये दोनों नाटक वस्तुतः एक ही हैं या पृथक् पृथक्? क्या ऐसा तो नहीं है कि इसके असली लेखक लक्ष्मीनारायणसिंह हों और उन्होंने अपने आश्रयदाता नरसिंह को यह समर्पित कर दिया हो।

जनमनोवृत्ति- (नाम) मोहराज पराजय में काल्पनिक आरोपित प्रदेश जिस पर आक्रमण कर मोहराज ने अधिकार कर लिया है। अन्त में मोहराज को पराजित कर कुमार पाल ने धर्म का उस पर अधिकार स्थापित करा दिया है।

जन्तुकेतु- (नापा) सटकमेलक प्रहसन का एक पात्र, वह वैद्य है किन्तु चिकित्सा के विषय में कुछ जानता नहीं। जब मदन मञ्जरीवेश्या के गले में मछली का काटा फस जाता है तब निवारण के लिये उसे बुलाया जाता है। वह ऐसी बातें करता है कि उपस्थित लोग हसते हसते सोट पोट हो जाते हैं और जोर जोर से हसने में वेश्या के गले से काटा भी निकल जाता है।

जयदेव- (नाका) प्रसन्नराघव (दे) नाटक के लेखक, इनके पिता का नाम महादेव, माता का नाम सुमित्रा और गुरु का नाम हरिमिश्र था। ये सम्भवतः विदर्भ के निवासी थे। कवित्वमौर्ध्य के कारण इन्हें पीयूषवर्ष की उपाधि दी गई थी। इन्होंने चौर, मयूर, भास बालिदाम हर्ष बाण, इन कवियों का उल्लेख किया है और जल्दन की सूक्तिमुक्तावली में इनस उद्धरण दिया गया है। भोजराज ने इनका उल्लेख नहीं किया है। इन सब बातों पर विचार करने में इनका समय १२वीं शताब्दी ठहरता है। प्रसन्न राघव के अतिरिक्त इनकी दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं- चन्द्रालोक और सीताविहार।

गोकर्णोर्विन्दकार जयदेव से ये भिन्न हैं। इसमें प्रमाण यही है कि इनमें माता पिता गोकर्णोर्विन्दकार व माता पिता में भिन्न थे। किन्तु बगल की परम्परा इन्हें तार्किक जयदेव

से अभिन्न मानती है। जिनकी टीका भगेश की दत्तचिन्तामणि पर पाई जाती है। भगेश का समय ११२० ई के आस पास है। अत इनका समय भगेश के समय से मेल खा जाता है। अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये तार्किक जयदेव से अभिन्न थे।

(२) जयदेव- (नाका) गीतगोविन्द के प्रतिष्ठित लेखक। इनका जन्म वीरभूम जिला में अजयानदी के तट पर स्थित केन्दुविल्ल (केन्दुली) स्थान पर १२वीं शताब्दी में हुआ था। इनके माता-पिता वामादेवी और भोजदेव थे। बचपन में इन्होंने यायावर वृत्ति अपना ली थी और इसी प्रसंग में ये मधुरा और वृन्दावन में वैष्णव सम्प्रदाय के सम्पर्क में आये। इसके बाद जगन्नाथ के दर्शन किये और वही से इनका जीवन पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया। इनका विवाह पद्मावती नामक सुन्दरी से हुआ था। इस विषय में एक मनोरञ्जक घटना प्रसिद्ध है- पद्मावती एक ब्राह्मण की एक मात्र सन्तान थीं। पिता ने देखा कि कोई देवता उसे स्वप्न में आदेश दे रहा है कि अपनी पुत्री जयदेव को दान कर दो जो इस समय एक आश्रम के निकट वृक्ष के नीचे डेरा डाले हुए हैं। ब्राह्मण अपनी पुत्री को जयदेव के निकट ले आया। किन्तु जयदेव ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब वह पुत्री को जयदेव के पास छोड़कर चला गया। अब जयदेव के पास विवाह करने के अतिरिक्त और कोई चारा न था। पद्मावती एक अच्छी सहधर्मिणी सिद्ध हुई। वह जयदेव की साधना की सहायिका थी और उनकी संगीत साधना में नृत्य द्वारा सहयोग देती थी। गीत गोविन्द में उसका गौरव के साथ उल्लेख किया गया है। कहा जाता है कि गीत गोविन्द की रचना करते समय जयदेव को कुछ अनौचित्य प्रतीत हुआ और वे गीत की पूर्ति किये बना ही दुखी होकर लौट गये। प्रात उठकर देखा वह पद्य उन्हें पूरा किया हुआ मिला। कल्पना की गई कि उस गीत की पूर्ति साक्षात् भगवान् कृष्ण ने की।

जयदेव की साधना बहुत उच्चकोटि की मानी जाती है। साहित्य समाज और धर्म में सभी दृष्टियों में इन्हें अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ है। इनकी कविता अन्तःप्रेरणायन्त्र स्वाभाविक उच्छलन मानी जाती है जिसमें ईश्वर-प्रेरणा भी सन्निहित रहती है। इनकी साधना की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इन्होंने साहित्यधारा ही बदल दी। गीत पद्धति का प्रचलन इन्हीं के समय से तेजी से चल निकला जिसको आगे चलकर चण्डीदास, विद्यापति, सूरदास प्रभृति वरिष्ठ कवियों ने अपनाया। शैली में तुकबन्दी और काव्यविषय में राधा कृष्ण की प्रेमलीला इन्हीं के समय से साहित्य जगत् में प्रसार पा सकी। जिस नगर में इन्होंने गीतगोविन्द की रचना की थी उस नगर का नाम ही जयदेवपुर पड़ गया। सैकड़ों लोग इनके चारों ओर आध्यात्मिक प्रेरणा के लिये एकत्र होते थे। ये बहुत समय तक लक्ष्मणसेन के दरबार में रहे। पौष कृष्ण सप्तमी के दिन सन् ११२० में केन्दुली में इनका देहावसान हो गया। इसी दिन इनके अनुयायी आज भी इनका दिन मानते हैं।

जयद्रथ- (नापा) महाभारत का एक प्रसिद्ध पात्र। यह सिन्धु प्रदेश का अधिपति

और दुर्योधन का बहनोंई है। इसने अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के वध में प्रमुख भूमिका निभाई थी। जिसके प्रतिशोध में अर्जुन ने इसका वध किया था। महाभारत विषयक नाटकों में कहीं कहीं इसका उल्लेख आ जाता है।

जयन्त- (नाका) ये चिगलपुट के नजदीक श्रीपेरम्बुदूर में रहते थे। इनके लिखे भाण रसरत्नाकर की प्रति ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग स V ६२०१ में प्राप्त की जा सकती है।

जयन्तु कुमाउनीया - (नाक) लीलाराव दयाल लिखित ३ दृश्यों की नाट्यकृति। इसमें युद्ध का वास्तविक चित्रण है। भारतीय सैनिक रोग ग्रस्त हथियार पुराने एवं अपर्याप्त, फिर भी कर्नल शेखर के नेतृत्व में विजय प्राप्त होती है और जनरल हरीश्वर दयाल (संभवतः लेखिका का पति) झड़ा फहराते हैं। किन्तु विदेश मन्त्री वर्मा के आदेश पर जीता हुआ इलाका अमेरिका को दे दिया जाता है। इसमें भावुकतापूर्ण कुमाउनी गीतों का समावेश है।

जयप्रभसूरि- (नाकास) प्रबुद्ध रौहिण्येय के रचयिता रामभद्र मुनि (दे.) के गुरु थे।

जयराम मल्लदेव- (नाका) विजयमल्ल के पुत्र नेपाल राज्य की गद्दी की उत्तराधिकारिणी नाथुलादेवी के पति। इनके पाण्डव विजय में महाभारत के सभापर्व को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक को सभापर्व नाटक की भी संज्ञा दी जाती है। बेण्डल के प्रीफेस १९११५ पर इसका उल्लेख है। इन्हें जयराम महादेव और जयराम मल्लदेव भी कहा जाता है।

जयरत्नाकरम्- (नाक) इसकी रचना नेपाली कवि शक्तिवल्लभ अजमाल ने की थी। इससे नेपाल के सामाजिक जीवन का अच्छा परिचय प्राप्त हो जाता है। इसकी नाट्यशैली भारतीय शास्त्रीय पद्धति से भिन्न है। इसमें अकों को कस्तूरल कहा गया है। इसका अभिनय के लिये रंगमञ्च की आवश्यकता नहीं पड़ती। दर्शक घेरे में चारों ओर बैठ जाते हैं, बीच में अभिनेता बैठते हैं। सबसे अधिक महत्ता सूत्रधार और नटी की होती है। बरी कथामुत्र को सञ्चालित करता है। बालणों और कुलाङ्गनाओं का चरित्र प्रशंसाप्रतिशोभ विवाह से उत्पन्न वर्ण शकर जातियां फिरगी इत्यादि इस नाटक का विषय हैं। कहीं कहीं वक्तव्य लम्बे हो गये हैं जिससे कथा सूत्र छूट जाता है। कहीं कहीं अश्लीलता भी आ गई है।

इसका प्रथम अभिनय रणबहादुर के सामने किया गया था। नेपाल संस्कृत परिषद् द्वारा सन् १९६५ में इसका प्रकाशन करा दिया गया था।

जयराम मल्लदेव- (नाका) दे. जयराम मल्लदेव।

जयराम महादेव- (नाका) मल्ल (दे.) जयराममल्लदेव।

जयशंकर द्विवेदी- (नाका) ये १८वीं शताब्दी के गुजराती कवि थे। इनके नवनन्दनन्दनरति नाटक का उल्लेख किया जाता है।

जयसिंह वर्मा- (नाका) १४वीं शताब्दी के नेपाली कवि। ये प्रधानमन्त्री थे तथा साहित्य में रुचि लेते थे। इनके लिखे दो नाटक प्राप्त हुये हैं- महिरावणवधोपाख्यान और हरिश्चन्द्रोपाख्यान। इनके कविकमल भास्कर की उपाधि प्राप्त थी।

जयसिंह सूरि- (नाका) हम्मीरमदमर्दन के रचयिता। ये भडौच में मुनि सुव्रत मन्दिर के पुजारी थे। कहा जाता है कि तेजपाल ने एक बार इनकी प्रार्थना पर देवकुलियों के लिये २५ स्वर्णध्वजदण्ड प्रदान किये थे। तेजपाल गुजरात के राजा वीरधवल के मन्त्री वास्तुपाल के भाई थे। अतएव कृतज्ञता में जयसिंह सूरि ने दोनों भाइयों की प्रशस्ति की रचना की और हम्मीरमदमर्दन (दे.) नाटक लिखा। यह नाटक वास्तुपाल के पुत्र जयन्त सिंह को प्रसन्न करने के लिये लिखा गया था। भीमेश्वर देव की यात्रा के अवसर पर इस नाटक का अभिनय किया गया था।

जयापीड- (नाकास) काश्मीर के राजा जिसके शासनकाल ७७१-८१३ के मध्य कुट्टिनीमत के लेखक दामोदर गुप्त ने किसी राजा द्वारा लिखे रत्नावली नाटक का उल्लेख किया है। यह भी एक प्रमाण है कि रत्नावली का रचना महाराज हर्ष ने की थी।

जरासन्धवध- (नाकृ) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना कुञ्जिकुट्टमन्त्रिरान ने की थी। इसमें महाभारत की एतद्विषयक कथा का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन सद्दय सस्कृत जर्नल मद्रास से हो चुका है।

जाङ्गली देवी- (नापा) कौमुदी मित्रानन्द में एक देवी जिसने सर्पदश से रक्षा का एक मन्त्र मित्रानन्द को दिया था जिससे युवराज लक्ष्मीपति की सर्पदश से रक्षा कर ली गई।

जातवेदस- (नाका) दे जटदेव।

(१) **जानकी परिणय-** (नाकृ) यह राम भद्र दीक्षित का लिखा नाटक है। इसका प्रकाशन मद्रास और बम्बई से हुआ है। इसमें चरित्र की दो श्रेणियाँ हैं- वास्तविक और छलपूर्ण। जब वे दोनों एक दूसरे के सामने आते हैं तब भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। विष्णुजिह्व, रावण और सारण क्रमशः विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का रूप धारण कर विश्वामित्र के आश्रम में आते हैं और उसी प्रकार सीता और उसका रूप धारण कर ढाडका आती है। राम और सीता का विवाह मिथिला में नहीं विश्वामित्र के आश्रम में होता है। सबसे अधिक ध्यान देने वाली बात यह है कि नाटक के अन्दर नाटक दिखलाया गया है। गौणकथानक का प्रारम्भ राम द्वारा सीता की खोज से होता है और उसकी समाप्ति वालिवध के साथ होती है। छल की पराकाष्ठा उस समय आ जाती है जब अन्तिम अर्कों में राक्षसों की शरारत सामने आती है। शूर्पणखा एक तपस्विनी के वेष में

भरत के सामने आती है और भरत को राम की मृत्यु की सूचना देती है। भरत शोक में आत्मदाह करने को उद्यत हो जाते हैं। उसी समय राम के आने की सूचना दी जाती है और सभी कुछ सुखान्तना में समाप्त हो जाता है।

यह रामभद्र का उच्चकोटि का नाटक है। इसकी शैली विद्वत्पूर्ण और मनोरञ्जक है। कविता सरल और प्रसादगुणपूर्ण एवं कथानक सर्वाङ्गपूर्ण है जिसमें कोई भी महत्वपूर्ण प्रकरण छूटा नहीं है। रामायण का सारा कथानक तीव्रता के साथ आगे बढ़ता जाता है। राक्षसी माया के राम को रोकने के प्रयास में हात्थरस और सीनाहरण के बाद राम के विलाप से लेकर वलिग्रन्थ तक के कथानक में अद्भुत रस का परिपाक हुआ है। इसके कथानक में बाल्मीकि से पर्यन्त भेद कर दिया गया है।

इसका सम्पादन काव्यमाला के बन्धे सस्कृष्ण में १८१४ में किया गया था। तबौर से लक्ष्मण सूरि ने १९०८ में, गम्बई से १८६६ में मद्रास से १८८१ १८८३ और १८९२ में इसका प्रकाशन कर दिया गया था। बम्बई के १८६६ के संस्कृत में मराठी अनुवाद भी सम्मिलित है।

(२) जानकीपरिणय- (नाकू) मधुसूदन द्वारा लिखित विवाहविषयक नाटक प्रकाश में आया है। इसमें चार अंक हैं। इसका रचनाकाल १७वीं शताब्दी माना जाता है। इसका प्रकाशन दरभंगा से १८९४ में हो गया था।

(३) जानकीपरिणय- (नाकू) यह नारायण भट्ट का लिखा एक नाटक है। कैटेलागम कैटेलागोम खण्ड १ स २०६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(४) जानकीपरिणय- (नाकू) यह सीताराम लिखित नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागम कैटेलागोम खण्ड १ स २०६ पर किया गया है।

(५) जानकीपरिणय- (नाका) यह भट्टनारायण (२) लिखित नाटक है।

(१) जानकीराघव- (नाकू) रामविषयक नाटक। इसका उद्घाटन साहित्यदर्पण में दिया गया है। सम्भवतः यह जयसिंह (लगभग १६२५ई) के पुत्र रामसिंह का लिखा हुआ नाटक था। इसका परिचय नेपाल पुस्तकालय से प्राप्त होता है।

(२) जानकीराघव- (नाकू) इस नाम का एक नाटक सागरनन्दी (८) का लिखा भी बतलाया जाता है। इस विषय में और कुछ ज्ञान नहीं है।

जानकी विक्रम- (नाकू) हरिदास सिद्धान्त सागौरा (८) लिखित नाटक। इसकी रचना कवि ने २० वर्ष की आयु में की थी। इसका प्रकाशन बलबन्ना से हुआ है।

जामदग्न्य विजय- (नाकू) भरतप्रणीत व्याघ्राण जिसका उल्लेख नाट्यशास्त्र में उदाहरण के रूप में किया गया है अब यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

(१) जाम्बवती कल्याण- (नाकू) यह कृष्णदत्ताराय (८) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें महाभारत श्रामदभागवत इत्यादि में आई हुई जाम्बवती कथा का नाटक

रूप में प्रस्तुत किया गया है। जाम्बवती पटाल के राजा अश्वराज जाम्बवत की पुत्री थी। कृष्ण ने अश्वराज को स्मन्त्रक मणि प्राप्त की और उसकी पुत्री से विवाह कर लिया। यह नटक इष्टकुलदेवग विरुपक्ष के चैत्रनाराय उल्मव के अक्षर पर अभिनय के लिये लिखा गया था।

इस कथनक को लेकर एक रचना प्रसिद्ध वैदकरण? पर्णिनि के नाम से भी प्रसिद्ध है तथा दो एक और भी काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं। पर्णिनि के नाम पर प्रसिद्ध काव्य को पटाल विजय की सूत्र भी दी जाती है और उनका अनेक पद्य भोज्याव क सरम्भतीकण्ठाभाज में उद्धृत किये गये हैं।

(२) जाम्बवतीकल्याण- (नाट्य) श्रीनिवासाचार्य लिखित नटक। बालर के लेखिसाधन द्वारा सकलित और मैमूर एव कुर्गे के सम्कृतन-हुनिनि मूर्वीपत्र में म ३५६ पर उल्लिखित।

(३) जाम्बवतीकल्याण- (नाट्य) इस नाम का एक नटक रुद्रदेव द्वारा लिखा गया माना जाता है। तजौर की पैनेन लाम्बेरी में पम्पुलिनि क मूर्वीपत्र में खण्ड २ म ३६४ पर इसका उल्लेख किया गया है। निरा नोटिमात्र स III १९३ में इसका विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है।

जाम्बवत- (नाट्य) राम कथा का एक प्रसिद्ध पत्र जिसका उपादान अनन्तराध्व में किया गया है। मुख्य कथा रामगो में सर्वग्रन्थ इनका पवित्र विरमानि के शायों गुनशेष और परुनेदर के मन्त्र में प्रान होता है। उसके बाद श्रमा के साथ इसका स्वद होता है जिसमें राम के वन पटुवन इत्यादि का वर्णन किया गया है। जब राजा परिशिजक वेरा में वन में अता है तब यह छिपकर लम्बा के साथ उसके स्वद सुनता है। जब अश्वसु से उसे मनचर मिलता है कि एवम नन्द के साथ वन में देख गया है तब वह यह खबर सुनते तब पटुवाता है। यह एक योग्य रात्रनैति पत्र है।

जायाजीव- (नाट्य) दे स्पेजवत।

जिन- (नाट्य) जैनधर्म के प्रधान उग्रमय देव। महोग्र पात्रय (दे) में जिन देव की अभ्यर्चना पात्र वक्ष्य में की गई है और आगमा की गई है कि कृष्ण और विवेक चन्द्र का योग सर्वश कल्याणकारि बना रहे।

जिनपडल- (नाट्य) कुनसलत्रव्य के लेखक। इसमें महोग्र पात्रय में प्रदर्शित कृष्णमुद्रा और कुनसल के विवाह की ऐतिहासिक मित्र हो जाता है। इस लेखक के अनुसार यह विवाह ११५९ में सम्पन्न हुआ था।

जाम्बवतीकल्याण- (नाट्य) नामक का नाटक। वह कई रूप में हमारे सम्मने आता है। वह लगी, विज्ञा एव माने अर्थ में पात्रव बुद्ध का अनुदान है तथा बध्मन्त्र का पदार्थ प्रत्य कर चुका है। साथ ही वह सद्गुरु और पटुव है। वह पटल के

दृष्टि में फलपवती के सौन्दर्य पर रीझ जाता है और उसे छोड़कर वह किसी के प्रणय बन्धन में बधना नहीं चाहता। उसकी आकांक्षा फलपवती होती है और उसे अपनी प्रेयसी मिल जाती है। उसकी विरक्ति का यह हाल है कि जब उसे ज्ञात होता है कि शत्रुसेना देश पर आक्रमण करने वाली है तब वह निस्वड्डोच भाव से कहता है कि मेरा केवल एक शत्रु है पाप, मैं किसी सौख्यिक शत्रु से नहीं डरता। उसे राज्य से भी मोह नहीं है।

उसका सबसे बड़ा त्याग है नाग की रक्षा के लिये स्वयं को गरुड के भोजन के रूप में समर्पित करना। बाध्य शिला पर जब गरुड आता है और भोजन के मध्य में जब गरुड यह देखता है कि जीमूत वाहन छाया जाता हुआ भी अत्यन्त प्रसन्न है तब स्वयं गरुड को आश्चर्य हो जाता है। गरुड भोजन करने से रुक जाता है तब स्वयं जीमूत वाहन ही उसे भोजन जारी रखने के लिये प्रोत्साहन देता है। मृत्युपर्यन्त भी उसकी मुखमुद्रा मलिन नहीं पड़ती। उसकी मृत्यु हो जाती है किन्तु भगवती गौरी उसे पुनरुज्जीवित कर देती है। गरुड अमृतवर्षा कर नागों को पुनरुज्जीवित कर देता है जिससे नागों को जीवनदान की उसकी आकांक्षा पूरी हो जाती है। जुड़ी हुई तीनों कथाओं के अंगीरसों का वह आश्रय है। उसे अपनी सद्भावना का पूरा फल मिल जाता है। वह पूर्ण रूप से सफल है।

जीवदेव- (नाका) इनका लिखा भक्ति वैभव एक प्रतीक नाटक है। इनका समय १५०० ई के आसपास है। उड़ीसा के राजा गजपति के ये दरबारी कवि थे। इनकी एक अन्य रचना है भक्तिभागवत जो कि कृष्णभक्तिरसायन नामक नाटक है। इसका उल्लेख गायकबाड ओरियण्टल सीरीज बडौदा की कलौद्र सूची में १९६७ सख्या पर किया गया है।

जीवनलाल पारेख- (नाका) दे पारेख जीवनलाल।

जीवन्यरत्नरितम्- (नाक) टी एस कुप्पुस्वामी शास्त्री के अनुसार हरिश्चन्द्र जैन (दे) का लिखा यह एक नाटक है जिसमें जीवन्यर नामक जैन राजकुमार के चरित्र को नाट्य विषय बनाया गया है। जीवन्यर के विषय में कई अनेक अन्य रचनायें मिलती हैं जिनका अनुसन्धान तजौर के कुप्पु स्वामी ने किया था। सम्भवत ये रचनायें तजौर के राजमुस्तवालय में मुद्राक्षित हैं।

जीवन्मुक्तिकल्याण- (नाक) इस नाटक का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम। २०७ पर किया गया है जिसका रचनाकार भूमिनाथ नल्ला दीक्षित (दे) को बतलाया जाता है।

यह एक प्रतीक नाटक है। इसका नायक जीव है इसका विचार अज्ञान वर्मा की पुनर्पुनर् में हुआ है। जीव पत्नी के रष्ट होकर जीवन्मुक्ति की ओर आग्रह हो जाता

है तथा उसे प्राप्त करने की चेष्टा में जुट जाता है। तब बुद्धि का पिता अज्ञान वर्मा काम क्रोध, लोभ मोह मद और मत्सर इन छ सेवकों को नियुक्त कर देता है कि वे जीव की जीवन्मुक्ति की ओर प्रवृत्ति न बढ़ने दें। जीव के दया इत्यादि ८ गुण जीव के छ शत्रुओं से उसकी रक्षा करते हैं। भक्ति जीवन्मुक्ति को बुद्धि के पास लाती है और बुद्धि समझ जाती है कि जीवन्मुक्ति उसकी निकट वर्तिनी सहेली है। वह स्वयं जीवन्मुक्ति का विवाह अपने पति से करा देती है।

मद्रास और कुर्ग में लीविसरायस द्वारा की गई पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में भी सख्या २५६ पर मल्लासोमयाजी के नाम पर इसी नाम की एक कृति का उल्लेख किया गया है। क्या ये दोनों कृतियाँ एक ही हैं। मल्ला के स्थान पर मल्ला हो गया है या ये दोनों पृथक् पृथक् हैं यह विषय अनुसन्धेय है।

जीवन्यायतीर्थ- (नाका) इनका जन्म बंगाल के २४ पण्ना जिला के भट्टपल्ली (भटपाडा) ग्राम में १८९४ में हुआ था। ये पचानन तर्कशास्त्र के पुत्र एव काशीनिवासी गुरु राखालदास के शिष्य थे। ये कलकत्ता विश्वविद्यालय में सस्कृत के प्रोफेसर थे और बाद में अपने गृहग्राम भट्टपल्ली में सस्कृत के प्राचार्य बन गये थे। इन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन किया और अनवरत साहित्य साधना में निमग्न रहे तथा विशाल साहित्य शशि साहित्य जगत को प्रदान की। इन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनकी साहित्य साधना में सटीक महाभारत का प्रणयन भी सम्मिलित है। इनकी लिखी निम्नाङ्कित नाट्य कृतियों का उल्लेख किया जाता है-

कैलासनाथविजय, क्षुत्क्षेमोद्यम, गिरिसवर्धनम्, चण्डताण्डवम्, चिपिटकवर्णनम्, चोचतुरोद्यम, तैलमर्दनम्, दक्षिणदुर्देवम्, नष्टहास्यम्, नाग विस्तारम्, निगमानन्दचरितम्, पुरषरमणीयम्, महाकविकालिदास, रघुवश रागविराग, रामनामदातव्यचिकित्सालय, विधि विपर्यास शतवार्षिकम्

इन कृतियों का परिचय यथास्थान प्राप्त कीजिये।

जीवबुध- (नाका) ये कोनेरो राजा के पुत्र थे। इनका जन्म पण्डितराज जगन्नाथ के कोनेरी वंश में १७वीं शताब्दी के आस पास हुआ था। ये शासक बन गये थे। इन्होंने नतानन्द नाटक की रचना की थी।

जीविराम याजनिक- (नाका) इनका समय १५वीं शताब्दी के अन्त के आसपास है। इनका लिखा मुरारि विजय नाटक पाया जाता है जिसमें श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्ध में वर्णित कृष्ण लीला का उपादान कथानक के रूप में किया गया है। इसकी प्रति सस्कृत कालेज कलकत्ता के पाण्डुलिपि अनुभाग से प्राप्त की जा सकती है।

जीवसञ्जीवनी- (नाका) यह वेङ्कटरमणाचार्य लिखित एक प्रतीक नाटक है जिसका नायक जीव और नायिका सञ्जीवनी हैं। इस नाटक के दूसरे पात्र आयुर्वेदिक तत्व हैं तथा

इसमें नाट्यकला के माध्यम से आयुर्वेद की व्याख्या की गई है। इसका प्रकाशन सन् १९४५ में हुआ था।

जीवसिद्धि- (नापा) मुद्राराक्षस में चाणक्य का गुप्तचर, यह चाणक्य के विरोधी के रूप में प्रसिद्ध है और राक्षस के अनुयायी के रूप में रहता है। यह मलयकेतु के मन में शका उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है कि पर्वतक का वध विषकन्या के द्वारा राक्षस ने ही किया है चाणक्य ने नहीं। वस्तुतः विष कन्या राक्षस ने ही जीवसिद्धि के साथ चन्द्रगुप्त को मारने के लिये भेजी थी। चाणक्य का गुप्तचर होने के नाते जीवसिद्धि ने चाणक्य को सारा रहस्य बतला दिया जिससे चाणक्य ने विषकन्या भेजकर पर्वतक का वध कर दिया। परन्तु प्रसिद्ध यह किया गया कि राक्षस ने ही विष कन्या भेजकर पर्वतक को मारा है।

जीवसिद्धि एक निपुण गुप्तचर है। वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति सज्ज्या है। यद्यपि उसे विरोधी पक्ष से दगा करनी पड़ती है पर यह उसके कर्तव्य का ही एक अंश है।

जीवानन्द- (नाकृ) ७ अंकों का यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना वेदकवि (दे.) ने १८वीं शताब्दी में आनन्दराय के आश्रय में की थी। कवि ने यह अपने आश्रयदाता के लिये समर्पित कर दी और उस आश्रय दाता आनन्दराय माकिन के नाम से ही प्रसिद्ध हुई। जिसमें जीवात्मा का अध्यात्मविद्या से विवाह दिखलाया गया है। इस नाटक का दूसरा नाम विद्यापरिणय भी है। एक विचार यह भी है कि ये दो पृथक् नाटक हैं जिनका कथानक मिलता जुलता है। दोनों नाटकों की रचना वेदकवि ने कर इन्हें अपने आश्रयदाता को समर्पित कर दिया। इस नाटक के विभिन्न पात्रों में पाण्डुरोग, उन्माद, कुष्ठ, गुल्म, कर्णमूल आदि रोग हैं। इस नाटक का सन्देश यह है कि नीरोग शरीर में ही सुदृढ़ मन का वास रहता है जो आत्म कल्याण का साधन है।

इस नाटक का नायक जीव है जो अपनी राजधानी शरीर में निवास करता है। उसे रोगों की सेना में यक्ष्मा के सेनापतित्व में घेर रक्खा है। किन्तु देवकृपा से उसे विजय प्राप्त हो जाती है। इसका सम्पादन काव्यमाला (१७-१८९१) में हुआ है। यह प्रतीक नाटक होने के साथ ही भैषज्य की पाठ्य पुस्तक भी है।

जीवानन्द ज्योतिर्विद- (नाका) इनका लिखा ९ अंकों का मंगल नाटक (दे.) बनारस से प्रकाशित हुआ है। इसमें देवी की मरता का प्रदर्शन किया गया है।

जैत्रजैवित्रिकम्- (नाकृ) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें सूर्य की चन्द्र पर विजय दिखलाई गई है। और अन्त में दिखलाया गया है कि दोनों समान रूप से रात्रि के प्रणयी हैं। इसका प्रकाशन पुननूर से हुआ है।

जैनयत- (नापा) प्रतीक नाटकों में जैनपरम को पात्र या विषय के रूप में प्रस्तुत

किया गया है। जैन धर्म का प्रतिपादक सर्वोत्कृष्ट नाटक मोहराज पराजय (दे) है। कतिपय ब्राह्मण धर्मावलम्बी नाटकों ने चार्वाक और बौद्धमत के साथ इसे प्रतिद्वन्द्वी भी बनाया है।

जोगी पटनायक-(नाका) ये उड़ीसा के कवि हैं इनके लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं अघट घटम् और वजराजनन्दनम्। इनके रचनाकाल या स्थितिकाल इत्यादि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

ज्ञानचन्द्रोदय-(नाकृ) यह एक प्रतीक नाटक है। इसके लेखक हैं पद्मसुन्दर। यह १६वीं शताब्दी की रचना है।

ज्ञानदर्पण-(नापा) यह मोहराजपराजय (दे) नामक प्रतीक नाटक का एक पात्र है। यह गुप्तचर है जो कुमारपाल को मोहराज की गतिविधि की सूचनायें देने के लिये नियुक्त किया गया है।

ज्ञानराशि-(नापा) यह हास्य चूडामणि (दे) का नायक और भागवत सम्प्रदाय का आचार्य है। इसे इस बात का अभिमान है कि केवली विद्या का वह विद्वान है और उसके आधार पर अनेक चमत्कार कर सकता है। वह गड़े धन का पता लगा सकता है। तथा और भी बहुत कुछ कर सकता है। उसके व्यवसाय में छल कपट अधिक है और भूर्खतापूर्ण कार्यों के कारण वह हास्य सृष्टि करने वाला बनता है।

ज्ञानसूर्योदय-(नाकृ) चादिचन्द्र (दे) लिखित प्रतीक नाटक। इसमें दिगम्बर जैन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इसकी रचना स १६४८ माघशुदी अष्टमी के दिन हुई थी। यह नाटक वस्तुतः प्रबोध चन्द्रोदय के अनुकरण पर लिखा गया था। प्रबोध चन्द्रोदय से इसका कथानक भी मिलता है, पात्रों के नाम भी मिलते हैं और इसमें प्रबोधचन्द्रोदय का उल्लेख भी किया गया है। इसका प्रकाशन शिवदत्त और कैप्री परब ने निर्णय सागर प्रेस बम्बई से सन् १८९३ में कराया था। इसमें बौद्धों और दिगम्बर जैनों का मजाक उड़ाया गया है। इसमें प्रस्तावना के स्थान पर उत्पानिका शब्द का प्रयोग किया गया है।

ज्योतिरीश्वर-(नाका) प्रसिद्ध प्ररसन धूर्तसमागम के लेखक। इन्होंने अपना परिचय स्वयं इस प्रकार दिया है- 'रामेश्वरस्य पौत्रेण तत्रभवतः पवित्रकीर्तिर्धरीश्वरस्यात्मजेन कविशेखराचार्यज्योतिरीश्वरेण विरचिते धूर्तसमागमे' इसका आशय यह है कि ये रामेश्वर के पौत्र और धीरेश्वर के पुत्र थे तथा इन्होंने कविशेखराचार्य की उपाधि प्राप्त थी। कीथ और एसके डे ने इनके पिता का नाम धनेश्वर लिखा है जो कि धीरेश्वर के वंशज थे। एम रामकृष्णमाचार्य के अनुसार ये विद्यापति के परवावा थे। एक नेपाली सस्वरण में इनके पिता का नाम धीरसिंह लिखा है, तथा हरिसिंह को उनका आश्रयदाता बतलाया है और सिमराव के हरसिंह से उन्हें अभिन्न माना है। विद्यापति का जन्म १३६८ ई और

सिमराव का समय १३२४ ई माना जाता है। परवावा के कार्यकाल और प्रपौत्र के जन्म में ४४ वर्ष का अन्तर पड़ता है जो अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। किन्तु विजय नगर के नरसिंह (सन् १४८७ से १५०७) के आश्रय में ज्योतिरीश्वर के होने से उक्त तिथियाँ मेल नहीं खाती। सम्भवतः इसीलिये विण्टरनिज एच बीय ने नैपाली मान्यता को अविश्वनीय कहा है हो सकता है ये दूसरे ज्योतिरीश्वर हों। कहा जाता है सिमराव के हरिसिंह ने मुहम्मद सुल्तान के साथ युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में जिस उत्सव का आयोजन किया था उसमें प्रस्तुत करने के लिये धूर्तसमागम की रचना की गई थी।

झ

झझावृत्त- (नाक) वीन्द्रकुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक। यह सेक्सपियर के टेम्पेस्ट पर आधारित है।

ड

डमरूक- (नाक) इसके लेखक तजौर के महामन्त्री (१७०० से १७५०) घनरयाम (दे) हैं। इसमें समाज की आत्मप्रवर्धनात्मकी प्रवृत्ति पर व्यङ्ग्य किया गया है तथा सत्यवृत्ति की प्रशंसा की गई है। इसका प्रकाशन मद्रास से हुआ है। यह एक विचित्र प्रकार की रचना है। यह रचना १० अलंकारों में है और इसमें १० विषय आये हैं। यह रचना कुछ इस प्रकार की है कि ज्ञात होता है विभिन्न चुने हुये दृश्यों में इसकी रचना की गई है। इस पर लेखक के पुत्र चन्द्रशेखर की टीका भी है।

मद्रास में हुल्लज की १९०५ की संस्कृत पाण्डुलिपियों की रिपोर्ट स १९७४ पर इसका उल्लेख किया गया है।

ढ

दुडिराज- (नाम) दे शङ्कर तथा विश्वनाथ।

दुडिराज व्यासयज्वन्- (नाटीका) ये लक्ष्मण के पुत्र एवं शरभोजी के दादाजी वदि ये और उन्हीं की आश्रा से मन् १७१३ में मुद्राराधम की टीका लिखी थी। शरभोजी ने स्वयं इस पुस्तक की शब्दसूची तैयार की थी। तजौर लायब्रेरी के कैटेलाग स ४४७४ पर इसका उल्लेख है।

त

तत्त्वमसि- (नाकू) श्रीराम वेलप्पर (दे) लिखित रूपक। यह एकाङ्की रूपक है जिसमें छान्दोग्योपनिषद् की श्वेतकेतु और आरुणि की तत्त्वमसि शिक्षा को नाटकीकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें गीतों का भी प्रयोग हुआ है। पात्रों की संख्या ८ है। सुरभारती में १९७२ में इसका प्रकाशन हुआ था।

तनयो राजा भवति मे- (नाकू) श्रीराम वेलप्पर लिखित एकाङ्की जिसका प्रकाशन सुरभारती में १९७२ में हुआ था और जिसे भोपाल रेडिओ से प्रकाशित किया गया था। इसमें एक जातक कथा की धनवरा नामक धनपरायण महिला का चित्रण किया गया है। इसमें गीतों का प्रयोग भी हुआ है।

तपतीसवरण- (नाकू) यह ११वीं १२वीं शताब्दी के केरल के एक कवि कुलशेखर का लिखा नाटक है। इसमें कुरुवंश के राजा सवरण का कथानक चित्रित किया गया है जो सूर्य पुत्री तनवी से प्रेम करने लगा था। तपती ने वशिष्ठ ऋषि की कृपा से अपने प्रियतम के साथ १२ वर्ष आनन्दोपभोग में बिताये। यह ६ अंकों का नाटक है जिसमें प्रेम के लक्षणानुगत स्वरूप का उपादान किया गया है। सुन्दरी के स्वप्न में दर्शन होते हैं। राजकीय भ्रमरा के प्रसंग में प्रेमियों का मिलन होता है, अनिवार्य परिणाम होता है गैर वियोग वेदना और भावना का प्रवाह, फिर सम्मिलन, अपह्राण, पुनः सम्मिलन जिसमें अनेक लोकोत्तर दैवी शक्तियों का आश्रय लिया गया है। ये सारी घटनाएँ ढीले रूप में नाटकीय स्वरूप में संकलित कर दी गई हैं।

इस नाटक का उल्लेख एसकेड्डे के संस्कृत इतिहास में किया गया है।

तपोवैभवम्- (नाकू) यह नित्यानन्द द्वारा लिखित एवं साहित्य परिषद् पत्रिका में प्रकाशित एक नाटक है जिसमें लेखक ने अपने माता पिता के उदात्त चरित्र को व्यापित किया है। लेखक के पिता रामगोपाल स्मृतिाल के गम्भीर अध्ययन, उनके सच्चिदानन्द का शिष्य बनने और अन्त में देवी का साक्षात्कार प्राप्त करने का अंकन किया गया है। साथ ही माता की प्रतिपरायणता और पति सेवाभाव का भी चित्रण किया गया है।

तमसा- (नापा) उत्तररामचरित में इसे पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम अयोध्याक्षेपक में मुरली के साथ संवाद में हमें इसके दर्शन होते हैं। उस संवाद में ही हमें ज्ञान होता है कि जब लक्ष्मण सीता का परित्याग कर वापस चले गये तब सीता ने आत्महत्या के मन्तव्य से गंगा में छलांग लगा दी। वहा गंगा और पृथ्वी ने उनकी रक्षा की। वहीं सीता ने युधिष्ठिर शिशुओं को जन्म दिया और दुःखस्था दस सीता के पुत्रों को पालन पोषण एवं शिक्षा दीक्षा के लिये वाल्मीकि को सौंप दिया। दूसरी बार हमें उसका तब दर्शन होते हैं जब राम शम्बूक को मारने दण्डक वन में आने वाले हैं

जहाँ पहले उपभुक्त प्रदेशों को देख देखकर सीता वियोग की उनकी वेदना के अत्यधिक बढ़ जाने और बार बार मूर्छित होने की सम्भावना है। गंगा उसके उपचार स्वरूप में सीता को अदृश्य रूप में राम के साथ उन स्थलों पर घूमने की अनुमति देती है और सीता को तमसा की देख रेख में उन स्थानों पर भ्रमण के लिये भेजती है। तमसा अपना उत्तरदायित्व पूरी निपुणता के साथ निभाती है।

तरंगदत्त- (नाक) यह एक प्रकरण है जिसका उल्लेख धनिक, रामचन्द्रगुणवन्द, शारदातनय तथा बहुरूपमिश्र ने किया है। धनिक ने प्रकरण के उपविभाग किये हैं जिनमें एक प्रकार ऐसा होता है कि उसमें वेश्या नायिका होती है। उसके उदाहरण के रूप में तरंगदत्त का उल्लेख किया गया है। यह प्रकरण अब उपलब्ध नहीं होता। इसके कर्ता का भी पता नहीं है। शारदातनय ने इसका उल्लेख भावप्रकाशन में किया है।

तरंगिणी- (नाक) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ३ अकों का नाटक।

तरुणभूषण- (नाक) शठकोप (२) लिखित भाग, यह मैसूर की ओरिण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित की गई है। (पाण्डुलिपियों का संकलन स २२५ से २२७, ६३७)

तर्क- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय का एक पात्र। महामोह ने आदिपिता पुरुष को भ्रान्त करने के लिये मधुमती को भेजा था और उसकी सहचरी माया ने भी भ्रान्त करने में उसकी सहायता की। पुरुष महामोह की मृत्यु के बाद भी उसके मोह में था। किन्तु तर्क पुरुष का मित्र है उसने मधुमती इत्यादि के जाल में फसने से पुरुष को सचेत किया है और इसीलिये पुरुष ने महामोह के वर्ग को भगा दिया है। तर्क विद्या ने अम्यों के साथ पुरुष को समझाने में सहायता की है कि वह परमात्मा का स्वरूप है।

ताडका- (नापा) रामायण का एक पात्र जिसे राम ने विश्वामित्र के यज्ञ में मारा था। (१) महावीरचरित (दे) में इस घटना का प्रस्तुतीकरण किया गया है। (२) अनर्घराक्षस में विश्वामित्र के शिष्य शुनशेप और पशुमेद्ध परस्पर बातचीत में अनेक अन्य व्यक्तियों के साथ ताडका के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

(१) **ताताचार्य-** (नाका) इन्हें सामान्य रूप से कुमार ताताचार्य कहा जाता है। ये वाघी के एक सम्मानित प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम वेङ्कटाचार्य था। तजौर के नायक परिवार के महान शासक, वेदान्त एव कला द्रोणी ग्युनाय के ये विद्यागुरु थे। इन्होंने पारिजातनाटक (पारिजातहरण) (दे) की रचना की थी जिसमें पत्नी सत्यभामा की प्रसन्नता के लिये इन्द्रोद्यान (नन्दनवन) से वृष्ण द्वारा पारिजात लाये जाने का कथानक चित्रित किया गया है। इनका समय ई की १७वीं शताब्दी है।

(२) **ताताचार्य-** (नाका) इनका लिखा मीनानन्द (दे) नाटक प्राग होता है जो

राम विषयक नाटकों की श्रेणी में आता है।

तापसवत्सराजचरित-(नाका) अनङ्गहर्ष मात्राज (दे) लिखित नाटक। यह नाटक वत्साज उदयन से सम्बन्धित है। इसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- पूर्वार्ध वासवदत्ताविषयक है और उत्तरार्ध पद्मावतीविषयक। उत्तरार्ध का आधार कथा सरित्सागर का द्वितीय और तृतीय लम्पक है। बृहत्कथा में भी उदयन की दूसरी पत्नी का नाम पद्मावती ही है। इसी परम्परा में प्रस्तुत नाटक भी आता है। इससे ज्ञात होता है यह रचना रत्नावली से पहले की है। दूसरी ओर कीथ ने अनुमान लगाया है कि यह रचना रत्नावली के बाद की है, क्योंकि इसमें आत्महत्या के प्रयत्न का उपादान किया गया है जिसपर सम्भवतः रत्नावली के आत्महत्या प्रयत्नों का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है।

इस नाटक के कथानक की विशेषता यह है कि उदयन वासवदत्ता की विपत्ति का कल्पित समाचार सुनकर तपस्वी बन जाते हैं। उधर यौगन्धरायण द्वारा प्रेषित चित्र पर मुग्ध होकर पद्मावती उदयन को अपना हृदय दे बैठती है। वियोग वेदना सहने में असमर्थ वासवदत्ता और उदयन दोनों आत्महत्या करना ही चाहते थे कि अकस्मात् दोनों का मिलन हो जाता है। उसी समय रुमण्वान विजय का समाचार देता है और नाटक सुखान्तता में समाप्त हो जाता है। इसको अभिनवभारती में उद्धृत किया गया है तथा दूसरे अनेक आचार्यों ने इसका उल्लेख किया है।

ताम्युरान्-(नाका) १९वीं शताब्दी के केरल वासी कवि। इनकी चार कृतियां प्रकाश में आई हैं- किरातार्जुनीयव्यायोग, सुभद्राहरण, दशकुमारचरित और जरासन्धवध व्यायोग। ये चारों नाट्य कृतियां हैं। (यथास्थान देखिये)

तारकोद्धरण-(नाक) इस नाटक का उल्लेख शारदातनय ने भावप्रकाशन में किया है। कृति के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। अब यह कृति लुप्त हो गई है।

तारा चन्द्र-(नाका) १९वीं शताब्दी में वाराणसी नरेश के राजपण्डित थे। इनका लिखा रामचन्द्रभाग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई वर्णनात्मक काव्य ग्रन्थ भी लिखे थे जिनमें कनकलता, शृङ्गाररत्नाकर, काननशतकम् प्राप्त होते हैं।

तारावतीस्वयंवर-(नाक) यह एक नाटिका है जो गंगाधर कविराज (दे) की रचना बतलाई जाती है। इसका रचनाकाल सम्भवतः १९वीं शताब्दी है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

तार्किकसिंह-(नाका) ये दक्षिण अर्काट जिले की गुप्त कुटी स्थान पर रहते थे। ये श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका लिखा रुक्मिणी परिणय (दे स २ रुक्मिणी परिणय) का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में प्राप्त होता है।

ताक्षर्य-(नापा) रुक्मिणी हरण का एक पात्र। विजय प्राप्त करने के लिये कृष्ण

इसका सारा लेते हैं और इसके आह्वान के लिये रगमञ्च पर समाधिस्य हो जाते हैं।

तिरुमलनाथ-(नाका) कुहनाभैशव प्रहसन के लेखक। इन्हें त्रिमलनाथ, अय्यलुनाथ नामों से भी याद किया जाता है। ये चोम्पकण्ठी परिवार के गंगाधर के पुत्र थे। १८वीं शताब्दी का मध्य इनका रचनाकाल है।

तिरुमलाचार्य-(नाका) ये शठमर्षण गोत्र में पोलेपल्ली परिवार में उत्पन्न हुये थे और निजाम राज्य के अन्तर्गत गुडवल के दरबारी कवि थे। इनका समय १७वीं शताब्दी है। इन्होंने कल्याण पुरज्जन (दे) नाटक की रचना की थी जिसका सकलन मैसूर को ओरियण्टल लायब्रेरी में किया गया है।

तिरुवेङ्कटाचार्य-(नाका) इनका लिखा अमर्षमाहमा (दे) रूपक अमर वाणी मैसूर से १९५१ में प्रकाशित हुआ था। इसमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि अमर्ष एक ऐसा रोग है जो एक से दूसरे को लगता चला जाता है और दूसरा व्यक्ति उससे तत्काल प्रभावित हो जाता है।

तिलकायनम्-(नाक) श्रीराम वेलण्कर लिखित तीन अकों का नाटक। यह कोर्टसेन प्रधान मनोरञ्जक नाटक है। इसमें महात्मा तिलक पर १८१७ से १९०८ तक लगाये गये अभियोगों का समाहार किया गया है। उनके परीक्षण को आधार बनाकर नाटक की रचना की गई है। इसमें न्यायालय की प्रक्रिया का प्रस्तुतीकरण मनोरम है।

तुकारामचरितम्-(नाक) यह ११ अकों का एक नाटक है जिसकी रचना लीलाराव दयाल (दे) ने की थी। तुकाराम महाराष्ट्र के एक महान सन्त (सन्त शिरोमणी) थे। उनके महान चरित्र को लेकर लेखिका की मा क्षमादेवी राव ने तुकारामचरितम् की रचना की थी। उसी को आधार बनाकर लेखिका ने इस नाटक की रचना की। इसमें सभी सवाद पद्यात्मक हैं।

तुगभद्रा-(नापा) प्रसन्नराघव में एक पात्र। यह एक नदी है। जिस समय गोदावरी और समुद्र परस्पर सीताहरण के विषय में बातचीत में सल्लग्न हैं- यह भी बहा पटुच जाती है और ऋष्यमूक पर्वत पर सीता द्वारा आभूषण गिराये जाने के बाद की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करती है।

तृणजातकम्-(नाक) यह दुर्गादत्त शास्त्री विद्यालकार (दे) का लिखा नाटक है जिसमें जातिभेद बहुआ मजदूरी, अस्पृष्टता इत्यादि सामाजिक मुद्दों का अकन किया गया है। १९८३ में हिन्दी अनुवाद सहित इसका प्रकाशन हुआ था।

तेजपाल-(नापा) हम्मोस्मदमर्दन (दे) का एक पात्र। वस्तुतः उस नाटक के प्रवर्तन में इसी पात्र का विशेष हाथ है। इसने अपने भाई मन्त्री वास्तुपाल की आज्ञा के अनुसार भडोघ के मुनि सुव्रत मन्दिर के देवकुलियों के लिये २५ स्तंभजट्टों का निर्माण कराया था जिसके पुरस्कार के रूप में उस मन्दिर के पुजारी ज्योतिष ने दोनों भाइयों को

प्रशस्तिकी और साथ ही उक्त नाटक की रचना की। अपने अभियोग में दोनों भाइयों ने छोटी-छोटी अनेक सफलतायें प्राप्त की, किन्तु कीथ के अनुसार उन भाइयों की वह प्रशस्ति ठीक रूप में अभिव्यक्त नहीं हो पाई जिसके लिये उक्त नाटक की रचना की गई थी। किन्तु फिर भी उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता और कर्मण्यता की झलक मिलती अवश्य है।

तैलमर्दनम्- (नाकू) जीवन्यायनीर्य (दे) लिखित एक प्रहसन।

त्रितन्त्री- (नाकू) यह पूर्ण नाटक तो नहीं नाटक जैसी रचना अवश्य है। कृष्णमाचार्य ने लिखा है कि उन्होंने इसकी प्रति राजमुन्दरी में देखी थी। किन्तु बाद में वहा से उनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। प्रथम तन्त्र में नारद रगमञ्ज पर आकर तीनों लोकों में युद्ध करा देने की घोषणा करते हैं। दूसरे तन्त्र में दिल्ली सम्राट रत्नाकर की पुत्री के विवाह का वर्णन है। सम्राट घोषणा करते हैं कि जो व्यक्ति आमले के बराबर का रत्न लायेगा उसी के साथ वे अपनी पुत्री का विवाह कर देंगे। ऐसा आमला वरुण देव की कृपा से एक पागल व्यक्ति के हाथ में पड जाता है जिसे वह राजा को दे देता है और विवाह बिना किये दरवाजे पर एक पद्य लिखकर चला जाता है। तीसरे तन्त्र में प्रभावती की कथा आती है।

(कृष्णमाचार्य ने यह विवरण दिया है और साथ ही लिखा है कि यह विवरण अपूर्ण है, एक मात्र स्मरण के आधार पर लिखा गया है।)

त्रिपुरदाह- (नाकू) नाटयशास्त्र में इस नाम के एक डिम का उल्लेख किया गया है। उसी का अनुकरण कर वत्सराज (दे) ने इस कृति की रचना की जिसमें त्रिपुरासुर की राजधानी त्रिपुर के दहन का वर्णन किया गया है। इसमें असुरों को पराजित करने वाले दिव्यास्त्रों का अंकन किया गया है जो कीथ के मत में स्वाभाविक नहीं हैं। इस नाटक में पात्रों में शालीनता और शिष्टाचार की मर्यादा पालन के प्रति प्रवृत्ति अवलोकनीय है। जब कुमार विजय को वाढ में व्यस्त हैं उन्हे शङ्कर जो स्वयं रोक देते हैं। इस शालीनता को शुक्राचार्य जो भी सराहते हैं जो दैत्यों के गुह के नाते विरोधी पक्ष में हैं। नाटक का उपसहार ऋषियों और देवताओं द्वारा की गई महेश स्तुति से होता है। भरत वाक्य नायक के स्थान पर इन्द्र द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

इसका प्रकाशन गायकबाड ओरियण्टल सोरीज बडौदा से नाटक शतक के अन्तर्गत कर दिया गया है।

त्रिपुरमर्दन- (नाकू) प्रेङ्गुण उपरूपक का उदाहरण। इसका उल्लेख शांदावनयन ने भाव प्रकाशन में किया है।

त्रिपुरविजयम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (१) लिखित १२ अंकों का नाटक।

त्रिपुरविजय व्यायोग- (नाकू) पद्मनाभ (दे) का लिखा व्यायोग है। इसमें भगवान् शिव की त्रिपुरासुर पर विजय दिखलाई गई है। यह नाटक कोटिपल्ली में सोमेश्वर के

महोत्सव में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखा गया था। इसका अभिनय रामेश्वर के वसन्त कल्याण महोत्सव में भी किया गया था। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी।

मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी ट्रान्स्मिशन केन्द्रालय में स. III ३८७० पर इसका पूरा विवरण दिया हुआ है।

त्रिपुरारि- (नाटिका) मालती माधव के टीकाकार, ये पारदाज गोत्रीय पर्वदनाय के पुत्र थे। इन्होंने केवल ७ अंकों तक टीका लिखी थी। शेष भाग को इनके शिष्य नारायणदेव ने पूरा किया। नारायण ने पूरे मालतीमाधव की भी टीका लिखी।

त्रिपुरासुर- (नापा) यह एक राक्षस है जिसका वध भगवान शंकर ने किया था और इसके आवास त्रिपुर को जला दिया था। इस कथानक को लेकर संस्कृत साहित्य में कई नाटक लिखे गये।

त्रिमलनाथ- (नाका) दे अम्यलुनाथ।

त्रिलोचन- (नाका) राजशेखर ने इनके पार्ष्वविजय नाटक की प्रशंसा की है जिसका उल्लेख जल्हन ने किया था। यह नाटक प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः इस नाटक में अर्जुन के वीरता पूर्ण कार्यों का कथन किया गया है। राजशेखर के शब्दों में-

कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्ष्वविजयश्चम।

तदर्थं शक्यते दृष्टुं लोचनद्विभिधि कथम् ॥

(पार्ष्व विजय की रचना करने में त्रिलोचन के अतिरिक्त और कौन समर्थ हो सकता है ? हम लोग तो केवल दो नेत्रों वाले हैं, भला हम उसके अर्थ को कैसे देख सकते हैं ?)

शार्ङ्गधर ने त्रिलोचन के पद्यों को उद्धृत किया है जिनमें एक में वाण की और एक में मयूर की प्रशंसा गई गई है। त्रिलोचन ने वाण और मयूर का उल्लेख किया है और त्रिलोचन का उल्लेख राजशेखर ने किया है। इससे सिद्ध होता है कि त्रिलोचन का समय वाण-मयूर और राजशेखर के मध्य में अर्थात् ८वीं ९वीं शताब्दी है। हो सकता है ये वाचस्पति मिश्र के गुरु त्रिलोचन ही हों।

ज्ञात होता है त्रिलोचन ने नाटक के अतिरिक्त श्रव्य काव्य की रचना भी की थी। जल्हन की सूक्ति मुक्तावली और शार्ङ्गधर पद्धति में त्रिलोचन के कतिपय पद्य प्राप्त होते हैं। जिनमें सूक्तिषा, अन्यापदेश, सभोगवर्णन इत्यादि विषयों पर कविता का समावेश है। इसी प्रकार उनमें वसन्त वर्णन और बुद्ध की प्रशंसा भी पाई जाती है। इससे प्रकट होता है कि ये पद्य त्रिलोचन की अन्य रचनाओं से उद्धृत किये गये होंगे।

त्रिवदरम्- (नाक) नारायणशास्त्री निरुद्ध ५ अंकों का नाटक।

त्रिविक्रम- (नाका) ये चिद्धानन्द के पुत्र एवं श्रम्यक के छोटे भाई थे। इनका समय १९वीं शताब्दी है। इनका लिखा पञ्चायुधप्रपञ्च भाग (दे) प्राप्त होता है।

(१) त्रैविक्रम- (नाकू) यह एक सवाद नाटक है। सूत्रधार, नटी, नान्दी, प्रवेश इत्यादि शब्दों से ही इसके नाटक होने का प्रमाण मिलता है। इसमें कतिपय ऐसे संकेत किये गये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सूत्रधार और नटी परदे पर चित्रों को देखकर उनका वर्णन कर रहे हैं। राजा वलि अश्वमेध यज्ञ के अन्त में याचक को उसको सभी याचनायें प्रदान करने के लिये उद्यत है। मन्त्री सह्याद के यह कहने पर भी कि ये तुम्हारे पिता हिरण्यकशिपु के मारने वाले हैं, ये वामन तीन कदमों की याचना कर तीन लोक नाप लेगे। वलि याचक को भूमि दान करने से पीछे नहीं हटते। उन्हें ऐसे प्रतिष्ठित अतिथि का सम्मान करने में गौरव का अनुभव होता है। धन की देवी लक्ष्मी वलि को छोड़कर वामन के पास चली जाती है।

इस कथानक का मञ्चन इस प्रकार किया गया है कि विभिन्न चित्रपटों पर चित्र आते जाते हैं नटी पूछती जाती है और सूत्रधार उस चित्र की व्याख्या करता जाता है।

इस नाटक के लेखक का पता नहीं है। कुछ लोग इसे भास कृत मानते हैं, दूसरे लोग किसी पल्लव नरेश की रचना स्वीकार करते हैं जो महेन्द्र विक्रम या नरसिंह विष्णु में कोई हो सकता है। मद्रास पुस्तकालय में सुरक्षित चर्चन नामक शकुन्तला की टीका में भास के अन्य नाटकों के साथ इस नाटक की भी समीक्षा की गई है।

(२) त्रैविक्रम- (नाकू) भास (दे) का एक नाटक जो १३ नाटकों के अतिरिक्त है। इसकी प्रविधि एवं रचना शैली भास से मिलती जुलती है। एम आर कवि ने मद्रास की ओरियण्टल कॉन्फ़रेंस में सन् १९२४ में इसका परिचय दिया था। और भासकृत बतलाया था।

(३) त्रैविक्रम- (नाकू) इस नाम के एक ऐसे नाटक का उल्लेख पाया जाता है जिसमें वर्णन करने वाले (नटी और सूत्रधार) उपस्थित नहीं हैं। नाटक के पात्र स्वयं छाया रूप में सवाद बोलते हैं।

द

दक्षमखरक्षण- (नाकू) यह एक डिम है। जिसकी रचना रामानुजाचार्य ही (दे) ने की थी।

दधित्य- (नापा) बालरामायण में एक वानर जो कपित्थ के साथ समुद्र पर सेतु रचना का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है।

दन्तुरा- (नापा) लटकमेलक (दे) में एक कुट्टिनी मदनमञ्जरी वेश्या के लिये कार्य करती है। वह सौदेबाजी में सहयोग देती है। हास्य के लिये दिगम्बर जैन के साथ मदन मञ्जरी के विवाह का आयोजन किया गया है, किन्तु वह मदनमञ्जरी के स्थान पर स्वयं

दिखलाये गये हैं जब विश्वामित्र राम की याचना करने आ पहुचते हैं। ये यज्ञविध्वंसक राक्षसों के नाश के लिये राम को मागने आये हैं। इतने छोटे बालक को देने के लिये दशरथ राजी नहीं होते। जब विश्वामित्र उनसे कर्तव्य पालन का विरोध आग्रह करते हैं तब दशरथ राम और लक्ष्मण को उनके सुपुर्द कर देते हैं।

दूसरी बार जनकपुरी में दशरथ के दर्शन होते हैं वहा उनके पुत्रों का विवाह जनक की कन्याओं से होता है और परशुराम बाद विवाद में राम से पराजित होते हैं। दशरथ राम के लिये राज्य त्याग करना चाहते हैं किन्तु मन्या के वेष में आई हुई शूर्पनखा के पत्र से राम के वन गमन की तैयारी हो जाती है और दशरथ मूर्छित हो जाते हैं।

(४) दशरथ- (नापा) बालरामायण (दे) में राम के वन गमन पर दशरथ को शोक सन्तप्त दिखलाया गया है। उसके बाद उसी शोक में उनका देहावसान हो जाता है।

(५) दशरथ- (नापा) प्रसन्नराघव (दे) में हमें इनके दर्शन जनकपुर में होते हैं जहा ये स्तुति वचनों के लक्ष्य बने हुये हैं।

दस्युत्ताकर- (नाक) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित चार दृश्यों का एकाकी जिसमें दस्युत्ताकर के दाल्भीक वन्ने का कथानक आया है। १९५७ में मञ्जूषा में इसका प्रकाशन हो गया था।

(१) दानकेलिकौमुदी- (नाक) रूपगोस्वामी (दे) लिखित एक भाण। इसमें कृष्ण नायक हैं उन्हीं का चरित्र इस भाण का विषय है।

इसका प्रकाशन मुर्शिदाबाद से १८८१ में हुआ था।

(२) दानकेलिकौमुदी- (नाक) मह महादेव कवीशाचार्य लिखित भाणिका है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १२५४ पर किया गया है।

(१) दामोदर- (नाका) महानाटक (दे) के लेखक या सम्पादक इन्हें मिश्र भी कहा जाता है। कसबध (दे) के लेखक दामोदर भिन्न व्यक्ति हैं। कक्सेरी दामोदर पट्टेरी (इन्दुमती के लेखक) भी एक अन्य व्यक्ति हैं। इस नाम के कई अन्य लेखक भी हुये हैं। किन्तु इनकी रचनायें नाटकेतर विषयों में ही हैं। उनमें सम्भवत नाटककार कोई नहीं है।

(२) दामोदर (कक्सेरी दामोदर पट्टेरी) - (नाका) पट्टेरी वंशज दामोदर का मय्यन्थ केरल के कक्सेरी नम्बूद्रिवंश से था। ये मल्लिकार्जुन के लेखक उदण्ड क प्रतिद्वन्दी थे। इनका लिखा नाटक इन्दुमती राघव (दे) प्रकाश में आया है। इनका समय १५वीं शताब्दी का प्रारम्भ है।

(३) दामोदर- (नाका) पाण्डुधर्मखण्डनम् (दे) के लेखक। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

(१) दामोदरनृनम्बूद्रि- (नाका) ये १९वीं शताब्दी के लेखक हैं। इनकी एक नाट्यकृति अधयपत्र का उल्लेख किया जाता है।

(२) दामोदरन् नम्बूद्रि- (नाका) मन्दारमालिका के लेखक। रचनाकाल १९वीं शताब्दी।

दासी- (नापा) अश्वघोष (दे) के गणिका विषयक (दे) रूपक में एक निम्न कोटि का पात्र।

दिगम्बर- (नापा) लटकमेलक में एक पात्र। वह मदनमजरी नामक वेश्या से सौदेबाजी और विवाह करने जाता है। किन्तु वह विवाह तो कुट्टिनी के साथ होता है जो हास्यरस के अधिक अनुकूल है।

दिङ्नाग या धीरनाग- (नाका) इनकी लिखी कुन्दमाला (दे) एक प्रसिद्ध रचना है। इनके व्यक्तित्व के विषय में विशेष रूप से कुछ ज्ञात नहीं है। कुछ लोग दिङ्नाग और धीरनाग ये दो पृथक् व्यक्तित्व मानते हैं जबकि कुछ लोगों के विचार में दोनों एक ही व्यक्ति हैं। मल्लिनाथ ने 'दिङ्नागाना पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्' मेघदूत के इस पद्य खण्ड के आधार पर इन्हें कालिदास का समकालीन और उनका प्रतिद्वन्द्वी कवि माना है जिसे अधिकांश विद्वान् स्वीकार नहीं करते। (दे) धीरनाग।)

दिल्ली साम्राज्यम्- (नाक) लक्ष्मण सूरि लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें १९११ में जार्जपञ्चम के दिल्ली में रज्यारोहण को रुपकायित किया गया है। इसका आगीभाव दया है। भाषा सुबोध एव प्रसादगुण पूर्ण तथा नाट्योपयोगी है। अंग्रेजी के पर्याय सुसंवेद्य संस्कृत में प्रयुक्त किये गये हैं। सम्भ्रान्त महिलायें भी प्राकृत का प्रयोग करती हैं। इसका प्रकाशन मद्रास से १९१२ में हो गया था।

(१) दिवाकर कवीन्द्राचार्य- (नाका) ये भद्राज गोत्रीय वैद्येश्वर एव मुक्ताम्बा के पुत्र तथा विजयनगर के कृष्णदेव राय के सभा पण्डित थे। इस प्रकार इनका समय १६वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इनका लिखा पारिजातहरण प्रकाश में आया है। इसके अतिरिक्त रसमजरी, देवीस्तुति इत्यादि कई रचनायें पाई जाती हैं। इनका भारतामृत नामक ४० सर्गों का एक महाकाव्य भी है जिसमें महाभारत को पूरे कथा वर्णित की गई है। इन्होंने स्वयं कहा है कि इन्हें राजा रुद्र की ओर से कवि चन्द्राय की उपाधि प्राप्त हुई थी।

(२) दिवाकर- (नाका) ये उद्वाहसुन्दर के पुत्र थे। इन्होंने लक्ष्मी मानवेद नामक नाटक की रचना की थी। ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में स १८३५१ पर इस नाटक का उल्लेख किया गया है।

दिवाकर कविचन्द्र- (नाका) दे कविचन्द्र दिवाकर।

दीनदास रघुनाथ- (नाक) यतीन्द्रविमलचौधरी (दे) का लिखा १२ अंकों का नाटक। इसमें वैष्णव भक्त रघुनाथ का चरित्र चित्रण किया गया है। चैतन्य महाप्रभु के ४७४वें जन्मदिन पर अभिनय के लिये इसकी रचना की गई थी। इसका प्रकाशन प्राच्यवाणी

से १९६२ में किया गया।

दीनद्विज- (नाक) इनका लिखा शखचूडवधम् नाटक प्राप्त होता है। रचनाकाल १९वीं शताब्दी का प्रारम्भ।

दीपक- (नाक) धेमेन्द्र ने औचित्यविचारवर्चा में किन्ही नाट्यकार दीपक का उल्लेख किया है और उनकी कृति का उद्धरण किया है। इससे ज्ञात होता है कि दीपक नामक किसी कवि ने कोई शृङ्गार प्रधान रचना की थी जिसमें विनयवती एक पात्र थी। इसके अतिरिक्त लेखक, कृति और पात्र किसी भी विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। हो सकता है विनयवती वह हो जिसके विषय में कुछ विचारकों का कहना है कि वह शूद्रक की प्रेमिका थी और वत्सराज चरित में शूद्रक ने वासवदत्ता के रूप में उसी का उपादान किया हो। (दे वत्सराजचरित) यह भी सम्भव है शूद्रक के चरित्र को लेकर कोई नाटक लिखा गया हो जिसकी नायिका विनयवती हो और उसका लेखक कोई दीपक रहा हो।

दुराचार- (नापा) धूर्तसमागम का एक पात्र। वह साधु विश्वनगर नामक गुरु का शिष्य है और अनग सेना नामक सुन्दरी पर अनुरक्त हो जाता है तथा गुरु से उसकी सुन्दरता का वर्णन करता है। गुरु उसे स्वयं चाहने लगता है जिस पर विवाद बढ़ जाता है। इसी प्रकार यह कथानक आगे बढ़ता हुआ हास्य की सृष्टि करता है।

दुर्गादत्त शास्त्री- (नाक) हिमाचल प्रदेश में कागडे जिले के कलेटी गांव के निवासी थे। इनको विद्यालकार और साहित्यरत्न उपाधिया प्राप्त थी। इन्होंने सस्कृत साहित्य की सेवा कर अच्छा यश कमाया था जिसके लिये इन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनकी रचनाओं में तीन काव्य- राष्ट्रपथप्रदर्शन, तर्जनी और मधुवर्षणम्, १ गद्यकाव्य- विद्योगवल्लरी, के अतिरिक्त दो नाटक भी प्राप्त होते हैं- वत्सला (दे) और तृणजानकम् (दे)।

दुर्येश्वर- (नाक) ये १८वीं शताब्दी के गुजरातनिवासी कवि हैं। इनके द्वारा प्रणीत धर्मोदयम् (दे) नाटक का उल्लेख किया जाता है।

दुर्बलबलम्- (नाक) विद्याधर शास्त्री लिखित चार अंकों का नाटक। इसमें चीन के दिव्यत पर आक्रमण को रूपान्वित किया गया है। इसकी रचना १९६२ में हुई थी। इसका नायक आनन्द कारयण नामक बौद्ध है।

दुर्मुख- (नापा) उत्तर रामचरित में राम का गुप्तचर। इसे राम ने प्रजा के भावों और विचारों को जानने के लिये नियुक्त किया था। उमन आकर सूचना दी है कि रावण के घर कुछ समय रहने के कारण प्रजा सोना के चरित्र पर सन्देह कर रही है। उसकी यह सूचना ही शीतनिर्वाणन में कारण बनी।

(१) **दुर्योधन-** (नापा) वेणोमरार में यह घमडी, उद्धत, आत्मपशु, रसार्थी, दम्भी के रूप में चित्रित किया गया है। उमराव रानी ने स्वप्न देखा है कि एन नकुत (नेवले)

ने १०० सौ को मार डाला है। रानी विचलित है, क्षणिक अवसाद उसे भी होता है। किन्तु क्षण भर में ही उसकी अभिमानी प्रकृति वापस आती है। और वह उस स्वप्न की मजाक उड़ाने लगता है। वह द्रौपदी के अपमान पर गर्वित है और पाण्डवों की बदला लेने की शोखी पर हसता है। वह कानों का कच्चा भी है जिसके कारण उसे हानि भी उठानी पड़ती है। जब कर्ण उसे समझाता है कि द्रोण केवल इसलिये युद्ध कर रहे थे कि वे अपने पुत्र को राजा बनाना चाहते थे और इसीलिये पुत्र की मृत्यु का समाचार मुनकर उन्होंने शस्त्र त्याग दिया। वह कर्ण को इस बात पर विश्वास कर लेता है और अश्वत्थामा को सेनापति बनाने से इन्कार कर देता है। वस्तुतः इससे उसकी बहुत बड़ी हानि हुई है। अश्वत्थामा जैसे वीर को सहायता से वंचित हो जाना कोई साधारण बात नहीं थी। अश्वत्थामा उस पर पक्षपात का आरोप लगाता है क्योंकि कर्ण के साथ अश्वत्थामा के विवाद में वह कर्ण का साथ देता है। इसीलिये अश्वत्थामा कर्ण के जीवनकाल में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर डालता है। यह निस्सन्देह दुर्योधन की बहुत बड़ी हानि है।

दुःशासन की मृत्यु के बाद स्वयं धृतराष्ट्र और गान्धारी आते हैं और माता पिता के लिये ही युद्ध से विरत हो जाने का परामर्श देते हैं। वह इस विषय में कोई भी राय मानने से इन्कार कर देता है। वह साफ कहता है— 'माता जी सुधत्रिया होते हुये भी ऐसी राय देती हो। तुम १०० पुत्रों की विपत्ति को नहीं मोच रही हो।' मुझे एकाकी को बचाना चाहती हो।'।'

युद्ध के अन्तिम अवसर पर भी उसके अवलेप में किसी प्रकार की बर्नी नहीं आनी—

कृष्टा केशोपु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोवौ ।

प्रत्यश्च भूपतीना मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी ॥

तस्मिन् वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा ।

वाहो वीर्यातिभारद्विणगुस्मद मामजित्वैव दर्प ॥

(तुम पशु हो, और तुम भी (दोनों भीम और अर्जुन) तुम्हारी वह पत्नी, उस राजा की पत्नी और उन दोनों की पत्नी जुड़े में जीती हुई मेरी दासी है, मैं भुवन पति हूँ मेरी आज्ञा से उसे केश पकड़कर घसीटा गया। हम लोगों का इसीलिये वैर पथा हुआ है। बतला उन राजा लोगों ने तेरा क्या बिगाड़ा था जिन्हें युद्ध में मार डाला। मैं बाहों के अतिशय पराक्रम रूपी धन का बहुत बड़ा अभिमानी हूँ। मुझे बिना जिते ही तेरा यह अभिमान। आश्चर्य है।)

दुर्योधन में उच्चकोटि के दर्प के साथ सहृदयता भी विद्यमान है। जब भीमसेन धृतराष्ट्र को अशिष्टता के साथ प्रणाम करते हैं तब वह उन्हें गुस्जनों के प्रति शिष्टता का उपदेश देने से नहीं चूकना। यद्यपि अर्जुन उसको उचित उत्तर भी देते हैं। स्वप्न के प्रसंग

और भानुमती के साथ व्यवहार में उसकी रसिक प्रवृत्ति भी अभिव्यक्त होती है। वह सच्चा मित्र है। जब कर्ण की मृत्यु के बाद अश्वत्थामा उससे बदला लेने का वादा करता है तब वह स्पष्ट कह देता है कि भुझमें और कर्ण में कोई अन्तर नहीं। तुमने कर्ण के मरने के बाद युद्ध करने की प्रतिज्ञा की थी अब मेरे मरने के बाद युद्ध करना।

(२) दुर्योधन- (नापा) भास के दूतवाक्य का एक पात्र। वह जिद्दी और अविवेकी व्यक्ति है। जब कृष्ण के रूप में स्वयं विष्णु शान्ति स्थापना के मन्तव्य से उसकी सभा में आते हैं तब वह उन्हें अपमानित करना चाहता है और न केवल उनकी हितकारक सम्मति स्वीकार नहीं करता अपितु उन्हें बाधना भी चाहता है। किन्तु विष्णु की लोकोत्तर शक्ति के सामने उसे पराजित हो जाना पड़ता है। वह सर्वथा हास्य का पात्र बनता है। उसे छुटकारा दिलाने के लिये उसके पिता को कृष्ण से क्षमा प्रार्थना करनी पड़ती है।

वह अविवेकी और निर्लज्ज भी है। द्रौपदी का केशाम्बराकर्षण उसका सबसे घृणित कार्य है। सभा में उसी चित्र को देखना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। कृष्ण ने ठीक ही कहा कि- ऐसा कौन निर्लज्ज होगा जो अपना ही दोष सभा में स्वयं ही उजागर करे। (को नाम लोके स्वयमात्मदोषयुद्धाटयेन्नष्टृष्ण सभासु) उससे आत्मबल की भी कमी है। स्वयं कृष्ण के आने पर सभा में खड़े होकर स्वागत करने की दण्डनीय अपराध घोषित करता है और स्वयं भी विवश के समान वही अपराध करने को बाध्य हो जाता है। उत्तर प्रत्युत्तर में वह कृष्ण से प्रतिपद पराजित होता है किन्तु न्याय्य बात को फिर भी स्वीकार नहीं करता।

(३) दुर्योधन- (नापा) दूतघटोत्कच में कौरवों ने अन्धाय से अभिमन्यु का वध किया है। धृतराष्ट्र गान्धारी दुःशास्ला सभी को भविष्य में तैरती हुई विपत्ति दिखलाई देती है। किन्तु दुर्योधन हर्षित है उसे किसी प्रकार का भय नहीं। जब कृष्ण का सन्देश लेकर घटोत्कच उपस्थित होता है वह पूरी निश्चिन्तता के साथ उससे वाद विवाद करता है और स्पष्ट करता है कि उसकी घमकियों का उत्तर युद्धभूमि में दिया जायेगा।

(४) दुर्योधन- (नापा) भास के उरुभाग (दे) का प्रधान पात्र। महाभारत में दुर्योधन बहुत ही जिद्दी और दुष्ट चित्रित किया गया है। किन्तु भास के नाटकों में उनके प्रति सदाशयता की भावना व्यक्त की गई है। वह अपने स्वभाव के प्रतिकूल सान्त्वना को हा बात करता है। किन्तु कौश के अनुसार उसे नायक नहीं माना जा सकता क्योंकि उसे जा दण्ड मिला है वह उचित ही है। दर्शक उसके अन्न पर दुःखी नहीं हैं। जिसने अपने उर खात कर भी सभा में एक अवला को नगा कर उसमें पर पैठाने की बात कही हा उमका यह परिणाम अप्रत्याशित नहीं है।

अन्न कितना कारणिक है- जिन अरुओं पर उसका छोटी आयु का मलज बँटने के लिये मदा आतुर रहता था आज भी वह उसी प्रकार आतुर है किन्तु भगा दिया जाता है। आज उमर भाग्य म पुत्र के सुखद स्पर्श का आनन्द भी नहीं है। उसके माना पिता

और पत्नी उसकी दयनीय दशा पर कितने दुःखी है किन्तु वह वीर मरते समय भी वीर ही है। उसकी मृत्यु भी जीवन के समान वीरता के दर्प से खाली नहीं है। वह माता पिता को सान्त्वना देता है समझता है बुझाता है।

अश्वत्थामा भी आ जाता है। उसे तो पाण्डवों से अपने पिता की मृत्यु का हिसाब चुकाना है। वह दुर्योधन से वादा करता है कि वह उसके पराभव का बदला लेगा। 'क्या भीम ने उसको जघाओं के साथ उसके स्वाभिमान को भी तोड़ डाला है ?'

अन्त में उसके माता पिता और पत्निया उसे घेरे हुये हैं। उसकी आँखों के सामने उसके भाइयों और अप्सराओं की छायायें तैरने लगती हैं और वह इस ससार से विदा ले लेता है। मृत्यु काल में भी उसका चरित्र दृढ़ है किन्तु वह गुणों से विरहित नहीं है। जिसके कारण महाविनाश हुआ है वह आत्मरक्षा की तो कल्पना भी नहीं कर सकता किन्तु वह अन्त में बदला लेने की नहीं कुल को सुरक्षित रखने की बात सोचता है और वह पहले बलराम को और फिर अश्वत्थामा को युद्ध से रोकता है।

दुर्वासस्तुतिस्वीकार- (नाकृ.) शिवदत्त त्रिपाठी (दे.) लिखित एक नाटक।

(१) दुर्वासा - (नापा.) अभिज्ञान शकुन्तल में महान् क्रोधी और अभिज्ञानी ऋषि। वस्तुतः शकुन्तला का कोई भयानक अपराध नहीं था। एक बालिकोचित असावधानी थी। किन्तु उसके लिये दुर्वासा ने इतना भयानक शाप दे दिया कि वे बेचारी शकुन्तला को बहुत समय तक दुःख भोगना पड़ा। किन्तु उसमें इतना दुराग्रह भी नहीं था। सखी की मामूली प्रार्थना पर ही उनका क्रोध नियन्त्रित हो गया और उन्होंने स्वयं ही शाप की सीमा भी नियन्त्रित कर दी।

(२) दुर्वासा - (नानि.) उन्नत राघव में जब लक्ष्मण और राम स्वर्णमृग का शिकार करने चले जाते हैं तब सीता दुर्वासा के शाप से स्वयं हरिणी बन जाती है। राम उन्हें रहस्यज्ञ की कृपा से प्राप्त कर लेते हैं।

दुर्विनीत- (नापा.) हास्य चूड़ामणि (दे.) म नायक ज्ञान राशि (दे.) का शिष्य। वह गुरु से श्रद्धा वित्कुल नहीं रखता और अपने गुरु के वचनों का शाब्दिक अर्थ कर आनन्द का अनुभव करता है तथा उससे हास्य की मृष्टि होती है।

दुश्शला- (नापा.) यह दुर्योधन की बहन और जयद्रथ की पत्नी है। जब युद्ध में अभिमन्यु का वध हो जाता है और उनका सारा उत्तरदायित्व जयद्रथ पर डाल दिया जाता है तब वह घबराई हुई दुर्योधन के पास आती है। दुर्योधन उसके भय को मज्जाक में उड़ा देते हैं। उन पाण्डवों से प्रतिजिज्ञासा का क्या भय जो सभा में द्रौपदी के अपमान को चुपचाप सह लेते हैं और वह वन भटकते फिरते हैं।

दुश्शासन- (नापा.) महाभारत के प्रतिनिधि पात्रों में एक। यह दुर्योधन का कनिष्ठ भ्राता है। धेनोमहार की रचना इसी के क्रियाकलाप का परिणाम है। महाभारत की मुख्य

घटना द्रौपदी का अपमान और दुरशासन द्वारा केशाम्बरकर्षण है। उस समय द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक दुरशासन का रक्त वालों में नहीं लगेगा तब तक मैं चोटी नहीं बाधूंगी। द्रौपदी की चोटी १३ वर्ष खुली रही। जब दुरशासन की बाहें उखाड़ कर भीमसेन ने द्रौपदी के वालों पर उसका रक्त डाला तब द्रौपदी ने समेट कर चोटी बांधी (वेणीसहार किया)। भीमसेन ने भी उसी समय प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं दुरशासन की छाती का खून पी जाऊंगा' और ऐसी ही यथार्थ रूप में भीम ने करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। निस्सन्देह दुरशासन का कार्य निन्दनीय था, किन्तु प्रतिशोध उससे भी अधिक भयानक था।

दुष्ट- (नापा) अश्वघोष (दे) के गणिकाविषयक रूपक का एक पात्र। इसकी यह सजा है। इसकी मागधी भाषा है जो तत्कालीन परम्परा के अनुसार निम्न कोटि के पात्रों की भाषा होती है। इसमें कही कही अर्धमागधी और शौरसेनी का भी पुट पाया जाता है।

दुष्यन्त- (नापा) कालिदास के विश्वप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम का प्रधान नायक। यह चक्रवर्ती सम्राट् है जिसकी राजधानी हस्तिनापुर है। यह एक महान वीर व्यक्ति है- जिसे वाण छोड़ने की नहीं वाण सपान की भी कहीं कोई आवश्यकता नहीं पड़ती प्रजावर्ग के सारे सकट धनुष की डोरी की टकरा से ही दूर हो जाते हैं। बिना देखे केवल शब्द के सहारे ही इसका वाण अपने लक्ष्य को दूर से ही वेध देता है। दैत्यों से त्रस्त होने पर इन्द्र को भी इसकी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। भगवान् वश्यप के शब्दों में 'यह धुवनों का पालक है, युद्ध में आगे बढ़कर शत्रुओं का नाश कर देता है। अपने धनुष से इसने बर्म करके दिखलाया कि इन्द्र का वज्र आभूषण बन कर रह गया उसकी प्रहारक शक्ति की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। स्वर्ग में इसके विषय में गीतों की रचना होती है, वे गाये जाते हैं तथा भित्तिओं पर अंकित किये जाते हैं। इन्द्र अपने पुत्र जयन्त की अपेक्षा भी इनका अधिक सम्मान करते हैं।

इतने अधिक शक्तिशाली होते हुये भी इन्हें मर्यादा का सदा ध्यान रहता है। तपोवन में प्रवेश से पहले राजकीय साज समान उतार कर ही साधारण व्यक्ति के रूप में प्रवेश करते हैं और इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि उनके प्रवेश में तपोवन व वार्यकलाप में किसी प्रकार का व्याघात उत्पन्न न हो। उनका स्वरूप, चाल ढाल हाव भाव सभी कुछ प्रभावशाली है जिससे आश्रम वासियों के मन में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। प्रियम्बदा उनके मधुर भाषण की प्रशंसा करती है तथा कहती है कि इस प्रकार की आकर्षक आकृति वाले गुणरहित नहीं होने। वह प्रजापालक भी बहुत अधिक हैं, वह धोषणा करना है कि उनके राज्य में जो भी व्यक्ति अपने बन्धुतान्धव से वियुक्त हो वह दुष्यन्त को ही अपना बन्धु बान्धव समझ ले- केवल उममें पाप की भावना नहीं होनी चाहिए।

यह उदार भी बहुत है अर्थात् सानुद ता है छो नही। उमें मन्त्री के पर म गुपना

मिलती है कि अयोध्या का धनमित्र सेठ नाव दुर्पटना में मर गया है उसके कोई सन्तान नहीं है अतः उसकी सम्पत्ति राजकोश में मिलाने की सूचना दी जाय। राजा इसे स्वीकार नहीं करता और पता लगता है कि उस सेठ की एक पत्नी गर्भवती है और उसका पुसवद सत्कार हो चुका है। राजा उस सम्पत्ति को गर्भ के नाम छोड़ देता है।

दुष्यन्त के चरित्र का एक दूसरा भी पक्ष है— वह एक अच्छा शिकारी है। वन में वह कोमल हरिणों का शिकार करने ही आया है। शकुन्तला एक भोली भाली हरिणी है। वह उसके अनन्य सौन्दर्य पर लट्टू हो जाता है। वह डरता भी है वह भट भी जान चुका है कि शकुन्तला का भविष्य उसके पिता के हाथ में है। इस विषय में शकुन्तला स्वतन्त्र नहीं है फिर भी वह मौके से लाभ उठाने में नहीं चूकता। सयोग वंश कुलपति कई महानों के लिये तीर्थयात्रा पर गये हैं। शकुन्तला को सहेलियों को उमने विश्वास में ले लिया और विवाह का लालच देकर (गन्धर्व विवाह कर) वह यथेष्ट उपभोग करता रहा। उसने बहाना बनाकर विदूषक इत्यादि सभी निकटवर्तियों को राजधानी को लौटा दिया, स्वयं तपस्वियों की रक्षा के बहाने वहाँ ठहर गया। जैसे ही जानना है कि कुलपति के लौटने का समय हो गया है वह अपने स्वेच्छाचार के लिये भयभीत होकर शकुन्तला से तीन दिन में बुला लेने का वादा कर वहाँ से चला जाता है। वह लोकपवाद से भी भयभीत है। वह जानता है कि जनता इस चरित्र को कभी सहन नहीं करेगी। अतः उसे बुलाना नहीं था और नही बुलाया। सीता को जैसी स्थिति बन सकती थी। जननिन्दा से पराहत होकर जिस प्रकार राम को सीता का परित्याग करना पड़ा था उसी प्रकार दुष्यन्त लोकनिन्दा सह नहीं सकते थे उन्हें शकुन्तला का परित्याग करना ही पड़ता। अतः उसने न पहिचान कर स्वयं को उस विपत्ति से बचा लिया। किन्तु कार्य तो निश्चित रूप से धोखेबाजी का था। शार्ङ्गरथ का यह आक्षेप ठीक ही था कि 'यदि कोई व्यक्ति धर्म से विमुख होकर अनुचित कार्य कर बैठे तो साहस के साथ उसे स्वीकार कर लेने में वह दोष अपनी प्रबलता खो देता है। यदा राजा ने शकुन्तला के साथ मनमानी कर अधार्मिक कार्य तो किया ही है ऐश्वर्य मत होकर शकुन्तला के बन्धुबान्धवों का अपमान भी किया है। 'इस प्रकार की घञ्जलता जो सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण कर की जाती है कष्टदायक ही होती है।' यह कथन केवल शकुन्तला के विषय में नहीं दुष्यन्त के विषय में भी लागू होता है।

इस प्रसंग में दुर्वासा के शाप की जबर्दस्त कल्पना कालिदास की एक बहुत बड़ी विशेषता है। वस्तुतः इसमें समाज के दो प्रकार के व्यक्तियों का एक ही व्यक्ति के चित्रण में समावेश कर दिया गया है— एक तो वे व्यक्ति होते हैं जो इन्द्रियवश होकर किसी कुमारिका के जीवन को अभिशाप बना देते हैं, दूसरे वे लोग होते हैं जो धार्मिक आचरण में विश्वास रखते हैं और जो भी कार्य करते हैं सोच समझ कर धार्मिक दृष्टि में निर्दोष समझ कर ही करते हैं तथा डके की चोट पर समाज के सामने उसे स्वीकार करते हैं।

कालिदास ने दुष्यन्त की अनेक उक्तियों में दूसरे प्रकार के व्यक्ति का चित्रण किया है जिसमें वे पूर्ण रूप से उपभोग की धार्मिकता पर विचार कर शकुन्तला को ग्रहण करते हैं तथा दूसरी ओर प्रत्याख्यान से पहले प्रकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। बीच में दुर्वासा के शाप की कल्पना डालकर दर्शकों को अनौचित्य का प्रतिभास नहीं होने दिया है। शकुन्तला को अश्वपथ के आश्रम में भेजकर उस दुर्दैव के प्रभाव से बचा लिया है जो एक सामान्य कुमारी इस प्रकार की परिस्थिति में पड़कर लोगों की करुणा का आश्रय बनती है।

जिस प्रकार शकुन्तला के चरित्र में कवि ने एक अल्हड बालिका एक प्रेमिका, एक विषयोपभोग परायण युवती, एक परित्यक्ता एक घर्मशील महिला इत्यादि समाज के अनेक चित्रों का समावेश किया है उसी प्रकार राजा के चरित्र में भी दो विरोधी व्यक्तियों के समावेश में पूर्ण सफलता प्राप्त की है इसमें सन्देह नहीं।

दूत घटोत्कच- (नाट्य भास (दे) रचित एकाङ्की नाटक। यह एक व्यायोग है। इसकी पृष्ठभूमि और पात्र महाभारत से लिये गये हैं। किन्तु कथानक लेखक का अपना है। अभिमन्यु की अनेक हत्या के बाद कौरवदल आमोदप्रमोद मना रहा है। किन्तु धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुःशला इस कार्य का अनुमोदन नहीं करते और विशेष रूप से धृतराष्ट्र भविष्य के लिये चिन्तित हैं। कृष्ण के दूत बनकर घटोत्कच धृतराष्ट्र के पास जाते हैं और भविष्य में आने वाली अधिक भयानक स्थिति के लिये उन्हें आगाह करते हैं। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच क्रोध पूर्ण वाद विवाद चलता है। धृतराष्ट्र शान्ति स्थापना का प्रयत्न करते हैं। अन्त में घटोत्कच अर्जुन की बदला लेने की धमकी का सन्देश देकर और धृतराष्ट्र को प्रणाम कर वापस आता है। इसमें भरत वाक्य के स्थान पर दामोदर कृष्ण का आदेश सुनाया जाता है। नाटक में कौरवों की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। कौरवों के आनन्द और धृतराष्ट्र की आशंका के साथ घटोत्कच द्वारा अभिव्यक्त अर्जुन की बदला लेने की धमकी घमत्कार पूर्ण है।

दूतवाक्यम्- (नाट्य भास (दे) लिखित एक व्यायोग। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। कृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन की सभा में सन्धि कराने के मन्तव्य से जाते हैं। दुर्योधन पहले से ही कृष्ण को अपमानित करने का मन बनाये बैठा है और सभासदों को आदेश देता है कि जो भी उठकर कृष्ण का स्वागत करेगा उसे दण्ड मिलेगा। स्वयं अपने को चित्र दिखाने में व्यस्त रह लेता है जिसमें द्रौपदी के केशाम्बरार्यपण को चित्रित किया गया है। किन्तु जब कृष्ण सभा में प्रवेश करते हैं तब सभी सभासद खड़े हो जाते हैं और स्वयं दुर्योधन भी बैठा नहीं रह पाता। कृष्ण पैतृक सम्पत्ति को विभाजित करने का प्रस्ताव रखते हैं जिस पर विवाद छिड़ जाता है और कृष्ण सभी आपत्तियों का युक्ति युक्त उत्तर देते हैं। तब दुर्योधन सम्पत्ति के बंटवारे में साफ़ इन्कार कर देता है और शक्ति के प्रयोग द्वारा कृष्ण को बन्दी बनाना चाहता है। कृष्ण विश्वरूप

दिखलाते हैं जिसमें वे सभी आकृतियों और परिमाणों में सर्वत्र दिखलाई देने लगते हैं। उसी समय कृष्ण सुदर्शन चक्र का आह्वान करते हैं और सुदर्शन इत्यादि सभी अस्त्र मूर्त रूप में उपस्थित हो जाते हैं। दुर्योधन घबरा जाता है। धृतराष्ट्र कृष्ण के चरणों पर गिर जाते हैं तथा दुर्योधन के अपराध की क्षमा मांगते हैं। कृष्ण शान्त हो जाते हैं और क्षमा कर देते हैं।

यह नाटक पूर्ण रूप से संस्कृत में लिखा हुआ है। इसमें प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें कवि की कृष्णभक्ति और कृष्ण महिमा की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है वे विष्णु के अवतार रूप में सामने आते हैं विश्व रूप दर्शन और अस्त्रों के उपस्थापन में चमत्कार के द्वारा स्वयं को लोकोत्तर परम पुरुष सिद्ध कर देते हैं।

इस नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना और अन्त में भरत वाक्य दिया हुआ है। कृष्ण का दौत्यकर्म महाभारत में वर्णित है, किन्तु कवि ने कल्पना द्वारा उसमें नया चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। वीर रस के अभिव्यजन में कवि की शक्ति का पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। कथावस्तु का उपादान महाभारत से हुआ है, किन्तु कवि ने कल्पना से इसे नया रूप दे दिया है। कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न और कृष्ण का विश्वरूप दिखलाना कवि की अपनी कल्पना है। रंगमञ्च पर कृष्ण के अस्त्रों के आगमन में अद्भुत रस की सृष्टि हुई है। नाट्य में सभी पात्र और कैशिकी वृत्ति का अभाव है। इसमें आरभटी वृत्ति का अच्छा परिपाक हुआ है।

दूताङ्गद— (नाट्य) सुभट (दे) लिखित एक नाटक जिसे कुछ विद्वानों ने छाया नाटक (दे) के रूप में स्वीकार किया है। इसकी समता महानाटक (दे) से बहुत अधिक पाई जाती है। इसमें रामायण के युद्धारम्भ से पहले रावण के दरबार में अगद के दौत्यकर्म की केवल एक घटना का चित्रण किया गया है। अगद सीता की वापसी के लिये प्रयत्न करते हैं किन्तु रावण समझाना चाहता है कि सीता स्वयं रावण से प्रेम करती है। अगद स्वीकार नहीं करते, युद्ध होता है और रावण का नाश हो जाता है।

इस पुस्तक के दो संस्करण पाये जाते हैं— एक छोटा और एक बड़ा। छोटा संस्करण बम्बई से प्रकाशित हुआ है और बड़ा लन्दन में इण्डिया लायब्रेरी में सुरक्षित रक्खा गया था। दोनों में प्रारम्भ से ही पाठभेद पाया जाता है। पिरोल का कहना है जितनी दूताङ्गद की प्रतियाँ पाई जाती हैं उतने ही दूताङ्गद हैं। कोई प्रति एक जैसी नहीं मिलती। एक प्रति तो ऐसी है कि उसमें केवल सवाद में ही पद्यों का प्रयोग नहीं हुआ है रंग निर्देश तक पद्यों में ही हैं। कहीं कहीं वर्णनात्मक और कथात्मक पद्य भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। इससे यह नाटक और काव्य के मध्य की वस्तु बन गई है। यह नाटक की नई विधा ही ज्ञात होती है। इसमें दूसरी पुस्तकों से स्वतन्त्रता पूर्वक पद्य लिये गये हैं। सुभट ने स्वयं लिखा है कि इस रचना में दूसरी रचनाओं के पद्यों का उपादान किया गया है। अनेक पद्य महानाटक से भी लिये गये हैं। बृहत्तर संस्करण में ३९ पद्यों की प्रस्तावना

दी गई है जो राम और हनुमन्त के मुख से प्रस्तुत की गई है। इस नाटक का प्रस्तुतीकरण गुजरात के चालुक्य नरेश त्रिभुवन पाल के आदेश से किया गया था। प्रस्तुतीकरण का समय ७ मार्च १२८३ पड़ता है। उस समय होली का त्योहार था और पिछली शताब्दी में कुमारपाल ने जिस शिवमूर्ति का जीर्णोद्धार किया था उसके स्मरणोत्सव के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था।

कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि यह दो अंकों के मध्यान्तर के रूप में लिखा गया था। छाया का एक अर्थ यह भी है कि अत्यन्त सक्षेप में कथानक का परिचय देना। इस अर्थ में भी छाया नाटक के रूप में इसे स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि इसमें कही भी इसे छाया नाटक नहीं कहा गया है किन्तु इस विद्या की इसमें सभी विशेषतायें विद्यमान हैं। इसलिये इसे छाया नाटक की मान्यता प्राप्त हुई है।

काव्यमाला सौरीज से इसका प्रकाशन हुआ है। विन्सन ने थियेटर II ३९० में इसका विश्लेषण किया है। एलप्रे ने 'जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी' में इसका अंग्रेजी अनुवाद किया जिसमें छाया नाटक पर पूर्ण विचार किया गया।

इण्डिया आफिस लायब्रेरी में इसकी एक प्रति सुरक्षित रखी गई थी। उसमें एग्लिंग ने लिखा है कि इसके सवादों में केवल सवाद पाक पद्यों का ही समावेश नहीं है किन्तु वर्णनात्मक पद्य भी सम्मिलित कर दिये गये हैं जिससे यह नाट्यकृति और श्रव्यकाव्य की मिली चुली वस्तु बन गई है। कुछ लोग इसे अगद (दे) नाम से भी अभिहित करते हैं और मानते हैं कि जिस अगद नामक पुस्तक का उल्लेख किया जाता है वह वस्तुतः यही है।

दृष्टवत्—(नाका) इनके नाम पर नीला परिणय (दे) नामक एक नाट्यकृति का उल्लेख किया गया है जो वेङ्कटेश्वर लिखित नीला परिणय से भिन्न है। इसका कोई विवरण प्राप्त नहीं होता।

दृढवर्मा—(नापा) त्रियदर्शिका (दे) नाटक का एक पात्र। ये अगदेश के राजा और त्रिपदर्शिका (दे) के पिता हैं और अपनी पुत्री का विवाह वत्सराज से कराने का निश्चय कर लेते हैं। अनेक विघ्नों के बाद उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिलती है।

दृष्टरोहितम्—(नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित नाटक।

देवकी—(नापा) भास (दे) के बालचरित में एक पात्र। यह कृष्ण की माँ है। इसके बच्चों को कस ने निर्ममता पूर्वक मारा है। इसने कृष्ण को अपने हृदय के दुकड़े की भाँति निवालकर पर गृह में पालन के लिये भेज दिया है। यह उसकी वार्ष्णिज स्थिति है।

देवचन्द्र—(नाका) हेमचन्द्र (दे) के शिष्य, ये कुमारपाल के दरबारी कवि थे। इनके लिखे श्रवण चन्द्रलेखा विजय का उल्लेख जैसलमेर के पुस्तकालय के पाण्डुलिपि

सूचीपत्र (कैटेलाग) में किया गया है। इस प्रकरण में ५ अंक हैं और इसका अभिनय अजितनाथ के वसन्तोत्सव में किया गया था। प्रकरण के अन्त में कुमारपाल की प्रशस्ति है जिसमें अर्णोराज पर कुमारपाल की विजय दिखलाई गई है।

देवदुर्गति- (नाकू) यह एक प्रहसन है जिसका प्रकाशन कलकत्ते से हुआ है।

देवनाथ उपाध्याय- (गका) ये १८वीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने ६ अकों के गीतबहुल उपाहरण नाटक (दे) की रचना की थी।

देवराज- (नाका) ये शेषाद्रि के पुत्र थे। इनका परिवार तेल्लिचेरी जिलाके पट्टमदई ग्राम में रहता था। वहां से स्थानान्तरित होकर ट्रावन्कोर में सुचोन्द्रम के निकट एक आश्रम में निवास करने लगा था जोकि १२ ब्राह्मणों को दान में दिया गया था। ये ट्रावन्कोर के मार्तण्डवर्मा (१७२९-१७५८) के दरवारी कवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में 'बालमार्तण्डविजयम्' (दे) नामक ५ अकों का नाटक लिखा था जिसमें आश्रयदाता की विजय यात्राओं और सम्पत्तियों के अधिग्रहणों के साथ ट्रावन्कोर के श्री पद्मनाभ तीर्थ के जीर्णोद्धार का विवेचन भी किया गया है। किरातार्जुनीय की इनकी एक टीका भी बतलाई जाती है।

देवरात- (नापा) मालतीमाधव में माधव का पिता और विदर्भराज का मन्त्री। छात्र जीवन में भूरिवसु इसका निकटवर्ती मित्र था। दोनों ने मिलकर एक दूसरे से वादा कर रक्खा था कि यदि एक के पुत्र और दूसरे के पुत्री हुईं तो दोनों का विवाह कर दिया जायेगा। संयोग से देवरात के यहाँ माधव और भूरिवसु के यहाँ मालती का जन्म हुआ। दोनों मित्रों ने छात्र जीवन के वायदे का पूरा सम्मान किया। समय आने पर मालती और माधव का विवाह सम्पन्न हो गया।

देवसूरि- (नापा) मुद्रित कुमुदचन्द्र (दे) का एक पात्र जैन आचार्य। यह श्वेताम्बर जैन है इसने शास्त्रार्थ में दिगम्बर जैन कुमुदचन्द्र का मुखबन्द कर दिया। इसीलिये इस रचना का नाम मुद्रितकुमुदचन्द्र पड़ गया। यह शास्त्रार्थ ११२८ ई में हुआ था।

देवसेना- (नापा) मत्त विलास (दे) प्रहसन में शैव कापालिक की पत्नी।

देवानन्द- (नाका) विहारी कवि। इनका समय अज्ञात है। इनका लिखा उपाहरण नाटक बतलाया जाता है।

देवीचन्द्रगुप्तम्- (नाकू) विशाखदत्त (विशाखदेव) लिखित नाटक। यह नाटक लुप्त हो चुका है। किन्तु भोज के शङ्करा प्रकाश और रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में लम्बे लम्बे एवं बाणभट्ट तथा राजरोखर के निर्देशों से ज्ञात होता है कि यह एक बहुत ही उच्च कोटि का नाटक था और उसमें सम्भवतः ५ अंक थे। उद्धरणों और निर्देशों के आधार पर कथानक का जो रूप बनता है वह इस प्रकार है- चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बड़ा भाई रामगुप्त जो उस समय राजा था एक छोटी सी सेना लेकर पत्नी ध्रुवदेवी के

साथ सीमा प्रान्त में हिमालय की उपत्यकाओं में ग्रीष्म ऋतु बिताने गया था। वहा एक सिद्धान्त हीन दुराचारी शक्रराज ध्रुवदेवी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। रामगुप्त एक कायर राजा था। वह अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सका था। और अमर्यादित शक्रराज उसकी पत्नी को भगा ले गया। ध्रुवदेवी परेशान थी और शक्रराज का हाथ धामने को तैयार नहीं हो रही थी। चन्द्रगुप्त ने वेश्या के रूप में एक नाटक मण्डली बनाई और शक्रराज के यहा पहुच गया। अनेक राजनैतिक दावपेचों के बाद वह ध्रुवदेवी को वहा से निकालने में सफल हो गया और स्वयं ध्रुवदेवी का स्थान ले लिया। जिस समय शक्रराज कामवासना से भरा था उसने एकान्त में उसे मिलने की आज्ञा दे दी। शक्रराज अपनी प्रियतमा को मिलने की उत्कण्ठा लिये अपने गुप्त कक्ष में पहचा और उसे उसकी दुष्टताओं और मूर्खताओं का उचित पुरस्कार मिल गया। चन्द्रगुप्त के हाथों वह वही मारा गया।

नाटक के प्राप्य उद्धरणों को देखते हुये कहा जा सकता है कि गद्य, पद्य वा काव्य सौन्दर्य किसी भी प्रकार कालिदास आदि महाकवियों की कृतियों से घट कर नहीं है। कथानक की रचना और चरित्रचित्रण भी इस नाटक को उच्चकोटि का सिद्ध करते हैं।

यह नाटक भी एक प्रमाण है जो यह सिद्ध करता है कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में ही हुये थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता के विषय में यह नाटक लिखा और नामसाम्य होने से मुद्राराक्षस का नायक भी चन्द्रगुप्त को ही बनाया।

उक्त कथानक को आधार बनाकर आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित नाटककार जयशंकर प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी की रचना की।

देवीपरिणय- (नाट्) एक परिणय। इसका उल्लेख शारदातनय के भावप्रकाशन में किया गया है।

देवीप्रसाद शुक्ल- (नाट्) बविचक्रवर्ती उपाधि से विभूषित थे। ये बनारस के विद्वान थे जिन्हें विद्वत्ता के लिये प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। इन्होंने सधमी नारायण नामक एक काव्य और नलचरित (दे) नामक एक नाटक लिखा था।

देवीमहोत्सव- (नाट्) साहित्य दर्पण और भाव प्रकाशन में यह उल्लास्य उपरूपक का उदाहरण दिया गया है। ग्रन्थ अप्राप्य है।

देशदीपम्- (नाट्) इसकी लेखिका हैं रमावतीशरी, इन्होंने अपने पति के जन्मोत्सव पर अभिनय के लिये इस नाटक की रचना की थी। इसका विभाजन अर्कों के स्थान पर नवीन शैली में दूरियों में किया गया है। कुल दूर्य नौ हैं। चम्पक वदन एक देशभक्त व्यक्ति है जो बह्वल पिता और आराधना माता से उत्पन्न हुआ है। वह अपने मित्र अश्रित के साथ देश सेवा की प्रतिज्ञा करता है। दोनों सेना में हैं। चम्पकवदन पदाति सेना में है और अश्रित वायु सेना में। चम्पकवदन की बहन पक्कनयना भी धायल सैनिकों का सेवा में युद्ध भंड में ही कार्यरत है। चम्पकवदन घायल हो जाता है तब उसे

बचाने की पूरी चेष्टा की जाती है। पक्कनयना और अग्रिम के सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। पन्तु वह बचता नहीं— देश पर वलिदान हो जाता है। इसमें देशरक्षा पर प्रागोत्सर्ग करने वाले वीरों का अच्छा चरित्र चित्रण किया गया है।

देशबन्धु देशप्रिय— (नाकृ) यह यतीन्द्रमोहन चौधरी का लिखा ९ अंकों का नाटक है जिसमें देशबन्धु चित्तरंजन दास का जीवनवृत्त चित्रित किया है।

देशश्री— (नापा) मोहराज पराजय का एक पात्र। इसमें नगरश्री इसे समझा बुझाकर जैन धर्म में दीक्षित करने का प्रयत्न करती है।

देशस्वातन्त्र्यसमरकाले राष्ट्रधर्म— (नाकृ) यह वैशम्पायन का लिखा दो दृश्यों का एक नाटक है जिसका प्रकाशन १९७० में शारदा में हुआ था। एक ब्राह्मण देवालय जा रहा है। वह धोखे से एक काप्रेसी का स्पर्श का लेता है। वह काप्रेसी को अछूत समझता है। अतः अत्यन्त क्रोधित हो जाता है। काप्रेसी उसे समझाबुझाकर साथ चलने को मजबूर कर लेता है। इसके बाद गोभक्त, वायविरोधी भाषा शुद्धि प्रचारक, समाज सुधारक, साम्यवादी सभी एकत्र होकर कोलाहल करते हैं। देवालय से ब्राह्मण और देश सेवक आकर सभी को समझाते हैं और सभी को देश सेवा में साथ लेते हैं।

देहली साम्राज्य— (नाकृ) यह लक्ष्मण सूरि (दे) का लिखा एक नाटक है जिसमें जर्जर पञ्चम के देहली दरबार का वर्णन किया गया है।

दोला पञ्चीयकम्— (नाकृ) इस हास्य प्रधान नाटक के लेखक हैं— रमानाथ शास्त्री इसके।

द्यूत— (नापा) मोहराज पराजय (प्रतीक नाटक) का एक पात्र। यह मोहराज के अधिकारियों में एक है और मोहराज के दूसरे अधिकारियों के साथ जनमनोवृत्ति (प्रदेश) पर अधिकार जमाये हुए है। जब कृपासुन्दरी की शर्त के अनुसार मोहराज के वर्ग को निष्कासित कर देता है तब उनके साथ उसे भी निष्कासित कर दिया जाता है।

दुतवीर— (नाकृ) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक।

द्रोण— (नापा) वेणीसंहार (दे) महासमर के अन्तर्गत जब ये सेनापति पद पर अभिषिक्त होकर युद्ध कर रहे थे पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु की झूठी सूचना पर विश्वास कर इन्होंने अस्त्र त्याग दिये और साधना मूलक मृत्यु की कामना से समाधि लगा कर बैठ गये। उस समय द्रुपद कुमार दृष्टधुम्न ने उनका सर काट लिया जब तक अश्वत्थामा लौटकर आये उनके प्राण पखेरु उड़ चुके थे। इस बीच कर्ण ने दुर्योधन के कान पर दिये थे कि द्रोणाचार्य इसलिये युद्ध कर रहे थे कि सभी वीरों और पाण्डवों के समाप्त कर अपने पुत्र अश्वत्थामा को राजा बनाया जाय। इसीलिये जब उन्हें मालूम पड़ा कि अश्वत्थामा मारे गये हैं तब उन्होंने स्वयं ही युद्ध छोड़कर मरण का वरण कर लेना ही उचित समझा। दुर्योधन इस बात से सहमत हो गया और इससे एक बहुत बड़ी शक्ति

से वंचित हो गया। वह पहले भी द्रोणाचार्य पर विश्वास नहीं करता था। यह सच है कि द्रोणाचार्य का पथपात अर्जुन के प्रति था। किन्तु उनमें इतनी सच्चाई भी थी कि अपने कर्तव्य को स्नेह के ऊपर रखते थे। शासन का नमक खाते थे अतः पूरे हृदय से शासन के पक्ष में युद्ध कर रहे थे। उन्हीं के सेनापतित्व में अर्जुन का प्रियपुत्र अभिमन्यु मारा गया था। क्या यह उनकी शासन और कर्तव्य के प्रति निष्ठा का एक प्रमाण नहीं था? किन्तु उन पर अविश्वास किया गया जिसका दुष्परिणाम दुर्योधन को भोगना पड़ा।

(२) द्रोण- (रापा) भास (दे) के पञ्चाशत् (दे) का एक पात्र। द्रोण युद्ध में महाविनाश की सम्भावना से चिन्तित हैं और जैसे भी सम्भव हो युद्ध को टालना चाहते हैं। उनके परामर्श से दुर्योधन यज्ञ करता है और गुरु दक्षिणा में उनकी मनचाही वस्तु दे देना चाहता है। वे गुरु दक्षिणा में पाण्डवों को आधा राज्य देने की वाचना करते हैं। दुर्योधन अपने वचन का इस शर्त पर पालन करना चाहता है कि ५ दिनों में पाण्डवों का पता चल जाय। इससे भी दुर्योधन की एक चाल है- सच्चाई पर आरुढ़ पाण्डव अज्ञातवास में पड़ा चल जाने पर द्यूत की शर्त के अनुसार पुनः १२ वर्ष के लिये वन को चले जायेंगे। उसके हिसाब से अज्ञातवास के केवल ५ दिन ही शेष हैं। अब भीष्म और द्रोण दोनों दुर्योधन के वचन में आबद्ध करने के लिये कीचक वध के आधार पर विराटपुर पर आक्रमण कर देते हैं। पर उस युद्ध में अकेले अर्जुन ही सभी को पराजित कर देते हैं और इसी बीच अज्ञातवास का समय बीत जाता है। यह घटना द्रोणाचार्य की सच्चाई और भारतकुल की कल्याण कामना का एक अच्छा उदाहरण है।

द्रौपदी- (नापा) महाभारत की एक नायिका। पाण्डवों की सामान्य पत्नी जिसे अर्जुन ने स्वयंवर में जीता था और माता कुन्ती की आज्ञा से पाचों पाण्डवों की सामान्य पत्नी बन गई थी। पाण्डव विषयक नाटकों में इसका उपादान हुआ है। इसके दो चरित्रों को नाटककारों ने विशेष महत्व दिया है- सभा में केशाम्बरकर्षण और कीचकवध। निम्नलिखित नाटकों में इसका विशेष उपादान हुआ है-

(१) खेणीसहार- राजसभा में द्रौपदी का अपमान लगभग समस्त नाटक में छाया हुआ है। सन्धि का प्रस्ताव लेकर पगवान कृष्ण दुर्योधन की सभा में जाने वाले हैं। द्रौपदी का अपमान आड़े आ जाता है और भीमसेन घोषणा करते हैं कि द्रौपदी के अपमान का बदला लिये जिना यदि युधिष्ठिर सन्धि करते हैं तो भी भीमसेन उससे वाध्य नहीं होंगे। द्रौपदी अब्रमर पाकर यह बरकर भीमसेन के क्रोध को और अधिक बढ़ा देती है कि दुर्योधन की पत्नी ने उस पर कटाक्ष किया है- 'द्रौपदी अभी तक तुम्हारे बाल बंधे नहीं। इस पर द्रौपदी की दाम्नी की ओर से उतर दिया गया- 'जब तक तुम्हारे केश खुलने नहीं तब तक हमारे कैसे बंधेंगे?'

सन्धि प्रस्ताव के अमरुत हो जाने के बाद जब युद्ध लगभग तप हो जाता है तब वह पतियों की कुशल कामना से चिन्तित है और युद्ध में सावधानी में विचारण का परामर्श

देती है। वह स्वाभिमानीनी है- बदला लेने के लिये १३ वर्ष से उसने केश खोल रखे हैं फिर भी स्त्री सुलभ चिन्ता से वह परेशान है और उनकी कल्याण कामना करती है। स्वाभिमानीनी होने के साथ ही वह सहृदय भी है और प्रत्येक स्थिति में पतिया की सहगामिनी है।

जब चार्वाक के रूप में एक राक्षस आकर गलत सूचना दे देता है कि दुर्योधन ने भीम और अर्जुन दोनों को मार डाला है तब वह प्राण त्यागने के लिये उद्यत हो जाती है। किन्तु कुछ ही समय में भीम आकर दुश्शासन के रक्त से हाथों से उसके केशों का सम्पर्क करते हैं। उसके पति भी उसे हृदय से चाहते हैं और उसके अपमान का बदला इतने भयानक रूप में लेते हैं कि उसकी तुलना नहीं मिलती।

(२) दालभात- में स्वयंवर और विवाह, द्यूत और उसमें उनके प्रति किये गये दुर्व्यवहार का कथानक लिया गया है। यह नाटक पूरा प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः अप्राप्त भाग में प्रतिशोध लेने का कथानक भी आ गया है।

(३) धर्म पराक्रम- में द्रौपदी का कोई सम्बन्ध नहीं है। युद्ध भी उसके कारण नहीं होता। फिर भी नारी पात्रों में द्रौपदी और उत्तराकुमारी पृष्ठभूमि में विद्यमान हैं।

(४) सांगन्धिकाहरण म- द्रौपदी के आग्रह पर भीमसेन कमलिनी लाने के लिये कुवेर सरोवर की यात्रा करते हैं। मार्ग में हनुमान जो से सघर्ष इत्यादि का सामना करते हुये अन्त में सफलता प्राप्त करते हैं और द्रौपदी को उनकी चारी माता मिल जाती है।

(५) पाण्डवाभ्युदय- नामक तथाकथिक छायानाटक में द्रौपदी के जन्म और पाण्डवों के साथ विवाह का वर्णन है।

(१) द्रौपदी परिणय- (नाकू) विजय नगर के पेरीक्वाशी नाथ द्वारा लिखित नाटक है। इसका रचनाकाल २० वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

(२) द्रौपदी परिणय- (नाकू) नृसिंह के पुत्र कृष्ण का लिखा नाटक। इसका विवरण मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में विवरणात्मक कैटेलाग स ११८४६ पर दिया हुआ है।

(३) द्रौपदी स्वयंवर- (नाकू) सम्भवतः यह एक नाटक है जिसका उल्लेख अभिनवभारती के छठे अध्याय में किया गया है। इसके रचनाकार का पता नहीं चलता।

(४) द्रौपदी स्वयंवर- (नाकू) यह दो अंकों का एक नाटक है जिसकी रचना विजयपाल ने चालुक्य वंशीय राजा सिद्धराज भीमदेव के निर्देश पर सम्भवतः १३वां शताब्दी में की थी। इसमें द्रौपदी के स्वयंवर और विवाह का चित्रण किया गया है।

द्वारावती- (नाकू) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

ध

धनञ्जय- (नामा) अश्वघोष के बौद्ध रूपक का एक पात्र। इसके लिये भट्टिदालक शब्द का प्रयोग किया गया है। नाट्य शास्त्र के अनुसार राजकुमार के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। पता नहीं चलता कि अश्वघोष की कृतियाँ भारत के विधानों का पालन करती चली हैं या नहीं। यदि उन्होंने भारत की मान्यताओं का अनुसरण किया है तो धनञ्जय सम्भवतः कोई राजकुमार रहा होगा।

धनञ्जयपुरजयम्- (नाट्) निष्पुण्ड भट्टाचार्य का लिखा ७ अंकों का नाटक। धनञ्जय एक वृद्ध बाढण है। उसका पुत्र पुरजय पिता की अवहेलना करता रहता है। धनञ्जय की मृत्यु हो जाती है। फिर एक दिन पुरजय स्वप्न में देखता है कि उसका पिता नरक में असंमित वृष्टि पा रहा है। स्वप्न में उसे शिवजी के दर्शन होते हैं। शिवजी उन्हें बतलाने हैं कि पिता के वृष्टों का कारण उसका (पुत्र का) पापाचार है। यदि तुम अपने पिता का वृष्टों के झुटकारा दिलाना चाहत हो तो तुम माहिष्मती के राजा से एक दिन का पुण्य माग लो। पुरजय माहिष्मती की ओर चल देता है। मार्ग में उसे निषाद आश्रय देता है जो जीवन दान करके भी उसकी रक्षा करता है। पुरजय उसका सस्वार कर पुनः माहिष्मती की ओर चल देता है। वहाँ राजा उसे एक दिन का पुण्य प्रदान कर देता है जिससे उसके पिता की सद्गति हो जाती है। राजा को उसी दिन पुत्र प्राप्ति होती है जो पूर्व जन्म का वही पुण्यात्मा निषाद है।

इस नाटक का प्रथम अभिनय शिव चतुर्दशी के मेले में किया गया था। इसमें रंग नर्देश बहुत अच्छे हैं।

धनञ्जय विजय- (नाट्) नारायण के पुत्र कञ्जनाचार्य लिखित व्यायाग। इसमें विराटपुर में कारवों के साथ अर्जुन के युद्ध का वर्णन है जबकि अज्ञातवास की अवधि में पाण्डवों का पता लगाने के लिये कौरवों ने विराट की गायों का खदेड़ दिया था। इस युद्ध में अबसे अर्जुन ने वीरव पक्ष के सभी महासयियों का पराजित कर दिया था। इसमें प्रत्यक्ष युद्ध के स्थान पर इन्द्र और उनके अनुचर की बातचीत के द्वारा युद्ध का परिचय दिया गया है।

कहा जाता है इस नाटक का अभिनय विद्वन्मण्डनो में किया गया था जिसका अध्ययन महान् गदाधर मिश्र ने की थी। इसका प्रकाशन बम्बई में हो गया था। इस पर रामकृष्ण की एक टाका भी प्राप्त होता है। जिसका उल्लेख वैट्नागम कल्याणारम ॥ ५४ पर किया गया है। विल्सन के विक्टर ॥ ३७४ में इसका सशित परिचय दिया गया है १४वाँ शतक के रमार्णवमुद्राकर में इसका उद्धरण दिया गया है।

(२) धनञ्जयविजयम्- (नाट्) इसका लेखक यशोधर है। इसका उल्लेख वैट्नागम कल्याणारम में ॥ २६६ पर किया गया है।

धनञ्जयव्यायोग- (नाक) काञ्चनपंडित का लिखा एक व्यायोग जिसमें बिरात वेषधारी शङ्कर और अर्जुन के युद्ध का चित्रा किया गया है। इसका रचना काल १२वीं शताब्दी है।

धन्योह धन्योहम्- (नाक) डा गवानन बाल कृष्ण पलसुते लिखित नाटक जिसमें स्वतन्त्रता सेनानी सावरकर का चित्रा किया गया है। शारदा प्रकाशन पुणे से इसका प्रकाशन हो गया है।

धन्त्रीपतिनिर्वाचनम्- (नाक) सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय लिखित नाटक। यह एक प्रताकात्मक व्यङ्ग्य नाटिका है। इसमें भगवान की पुत्री धन्त्री के स्वयंवर का अंकन किया गया है। बरगर्षियों में कलह होता है, धन्त्री का अपहरण करने की चेष्टा का जाती है। भयानक मारपीट होती है, सभी घायल हो जाते हैं तब भगवान सभी को अर्धचन्द्र देकर निष्कासित कर देते हैं।

इसकी रचना १९६७ में और संस्कृत परिषद् द्वारा प्रकाशन १९७१ में किया गया। इसका प्रथम अभिनय १९६९ में सम्पन्न हुआ था।

धर्म- (नापा) प्रबोधचन्द्रादय का यह एक पात्र है जो विवेक के सैन्यदल का व्यवस्थापन करता है और महामोह को पराजित करने में विवेक का सहायता करता है। वह और श्रद्धा मिलकर ऐसा आयोजन करते हैं कि उपनिषद् (ला) और विवेक पुरुष का मिल हो जाता है जिससे प्रबोध नानक पुत्र का जन्म होता है। अन्त में वहाँ महामोह का नष्ट करने में कारण बनता है।

धर्मगुप्त- (ताका) ये १४वीं शताब्दी के नेपाली कवि हैं। इन्हें बालवर्गाश्वर का उपाधि प्राप्त थी। इनके लिखे राम विषयक तीन नाटक प्राप्त होते हैं। रामाङ्क शार्ङ्ग ४ अंकों की नाटिका, (दे) रामायण नाटकम् (दे) और रामाभियंक्त नाटकम् (दे)

धर्मदेव गोस्वामी- (नाक) १८वीं शताब्दी के कवि। ये कहातीसत्र अक्षर के निवासी थे। इनके लिखे दो काव्य ग्रन्थ नरकासुरविजय एवं धर्मोदय काव्य बतलाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इनका लिखा धर्मोदय (दे) नामक एक नाटक भी कहा जाता है।

धर्मराज्यम्- (नाक) अमियनाथ चक्रवर्ती लिखित नाटक। यह नाटक पाण्डवों के राजसूय यज्ञ से द्यूतक्रोडा में पराजय पर्यन्त कथाभाग का लेकर लिखा गया है। यह २०वीं शताब्दी की रचना है जिसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य पत्रिका में किया गया। परिचयबर्णाल संस्कृतसाहित्यपरिषद् द्वारा इसका प्रथम अभिनय किया गया।

धर्मविजय- (नाक) भूदेव शुक्ल (दे) लिखित ५ अंकों का प्रतीक नाटक। इसमें आध्यात्मिकता से निर्द्वन्द्व जीवन का चित्रा किया गया है और औरंगजेब के शासन का उच्छृङ्खलताओं तथा आनन्दव्रत प्रवृत्तियों के सुधर का व्यञ्जन का गर्त है। इसमें अधम व्यभिचार पराधी परस्पर प्रति अनाचार, कविता, हिंसा अहिंसा इत्यादि सभी पात्र

भावात्मक एवं प्रतीक रूप हैं। अना में धर्म की विजय होती है और राजा धर्म की पूजा करता है। सामाजिक विकृतिका अच्छा चित्र खींचा गया है और पाखण्ड का भण्डाफोड करने वाली यह एक अच्छी रचना है। इस पर भवानीशंकर की टीका भी है।

कैटेलागस कैटेलागोरम I ४९६, II ११६ और III १०६ में इसका उल्लेख किया गया है।

धर्मस्य सूक्ष्मागति—(नाकू) कण्ठन तम्पो (दे) लिखित ३ अंकों का नाटक। इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम से सन् १९२८ में किया गया।

धर्मभ्युदय—(नाकू) यह मेघप्रभाचार्य का लिखा छाया नाटक है। यह सम्भवतः सभी छाया नाटकों में सबसे प्राचीन छाया नाटक है और साथ ही यही एकमात्र ऐसा नाटक है जो स्वयं को छायानाटक (छायानाटकप्रबन्ध) कहता है। केवल इतना ही नहीं अपितु छायानाटक में पुत्तलिका के प्रयोग की जो आवश्यकता होती है उसका निर्देश भी केवल इसी नाट्य रचना में है। इसमें रंग मञ्चीय निर्देश में स्पष्ट रूप से पुत्तलिका को यवनि का के अन्दर रख देने का निर्देश दिया गया है।

इसके छायानाटक होने में तो कोई सन्देह नहीं किन्तु कहा नहीं जा सकता कि इसके पहले छायानाटक की कोई परम्परा प्रचलित थी या नहीं। क्या इसके पहले कोई और छायानाटक लिखा गया था? कुछ विद्वान् दूताङ्गद (दे) को छाया नाटक की मान्यता प्रदान करते हैं। क्या वह दूताङ्गद नाटक इस नाट्य रचना से पहले लिखा गया था या बाद में? क्या इस नाटक को छाया नाट्य विधा का प्रवर्तक माना जा सकता है? इन सब प्रश्नों का वर्तमान समय में कोई निश्चयात्मक उत्तर देना सम्भव नहीं है। केवल इतना निश्चित है कि यह प्राचीनतम छाया नाटकों में एक है।

धर्मोदयम्—(नाकू) असम निवासी धर्मदेव गोस्वामी लिखित नाटक। इसमें अहोम राजा लक्ष्मीसिंह की मडिया ग्राम के विद्रोह को दबाने की चेष्टाओं को नाटक के बथानक के रूप में स्वीकार किया गया है। यह कृति संस्कृतसजीवनी सभा नालबाड़ी आसाम से प्राप्त की जा सकती है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी का अन्तिम चरण।

धर्मोद्धरण—(नाकू) यह एक नाट्यकृति बतलाई जाती है। कहा जाता है कि इसकी रचना दुर्गेश्वर (दे) ने की थी।

धारिणी—(नापा) मालविकाग्निमित्र में अग्निमित्र की पटरानी। यह विनीत एवं उदार चित्त है और बड़े धारणों में जिम गरिमा की सम्भावना की जाती है वह इसमें पूर्ण रूप से विद्यमान है। इरावती (छोट्टी रानी) जैसी उपमा इसमें नहीं है। न यह उस प्रकार छिप छिप कर बाते सुनती है और न अपने गौरव को झुलाकर झगड़े के लिये तैयार रहती है। उसके अमर्ष का कारण विद्यमान है— घर में एक नई माँत पल रही है और राजा का उसकी ओर ध्यान भी अत्यधिक है। उसे मुलभ मीनियाडाहवशर्गिनी वह भी

है और उसे बन्दी भी बना लेती है। किन्तु इस दिशा में भी सीमा का अतिक्रमण नहीं करती और जब अवसर आता है वह एक बहाना लेकर मालविका और अग्निमित्र को विवाह की अनुमति दे देती है। मालविका ने उसके कहने पर पाद प्रहार के द्वारा अशोक को प्रफुल्लित किया था। इसलिये वह मालविका को कुछ पुरस्कार देना चाहती है। उसके पुत्र ने सिन्धु तट पर यवनों को पराजित किया है। इस प्रसन्नता के कारण वह राजा को भी उपहार देना चाहती है। विवाह की स्वीकृति से ये दोनों कर्तव्य पूरे हो जाते हैं। यह उसकी बुद्धिमानी है। विदूषक सर्पदश का बहाना कर उसकी सहानुभूति अर्जित कर लेता है और उसकी अगूठी लेकर मालविका को कैद से छुड़ाता है। किन्तु यह उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती है। यह उसकी उदारता है।

घोरनाग- (नाका) ये सम्भवतः बौद्ध आचार्य भदन्त दिङ्नाग से अभिन है। इनकी लिखी कुन्दमाला ६ अकों का एक नाटक है। ये ५वीं शताब्दी में अरालपुर के निवासी थे। भोजराज एवं कई अन्य काव्यशास्त्रियों ने इनका उल्लेख किया है। मेघदूत के एक पद्य खण्ड 'दिङ्नागाना पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान्' को व्याख्या करते हुये मल्लिनाथ ने लिखा है कि दिङ्नाग कालिदाम के विरोधी कवि थे और इसलिये कालिदास ने इस पद्य में दिङ्नाग पर आक्षेप किया है। यद्यपि मल्लिनाथ बहुत परवर्ती हैं। अतः उनकी मान्यता पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता, फिर भी पद्य में कुछ ऐसे शब्द हैं कि उनकी इस प्रकार की व्याख्या सम्भव अवश्य है। इनका समय भी विवेचक लोग ईसा की ५वीं शताब्दी से पहले मानते हैं। अतः असम्भव नहीं है कि कालिदास ने इनका उल्लेख किया हो।

घोरनाग और दिङ्नाग की एकता का प्रश्न भी सन्देह के घेरे में है। कुछ लोग दोनों को एक मानते हैं किन्तु अधिकांश लोग इस एक रूपता के स्वीकार नहीं करते। इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

घोरनैषधम्- (नाकृ) यह महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा की विद्यार्थी जीवनकाल की एक रचना है और विहारराष्ट्रभाषा परिषद् में रामावतार शर्मा ग्रन्थावली में इसका प्रकाशन किया गया है। इसके ७ अकों में नलदमयन्ती की कथा को नया रूप देने की चेष्टा की गई है।

धूतश्वजम्- (नाकृ) नारायणशास्त्री लिखित ५ अकों का नाटक।

धूता- (नापा) मृच्छकटिक (दि) नाटक के नायक चारुदन की पत्नी। इसके चरित्र का बहुत बड़ा विकास हुआ है। किन्तु जितना कुछ हुआ है उतने से ही इसके लोकोत्तर गुणों पर प्रकाश पड़ जाता है। यह योग्य पति की अनुगामिनी योग्य पत्नी है। इसने पति के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया है। पति की इच्छा ही इसकी इच्छा है। पति के बिना कहे ही यह उनकी प्रवृत्ति और परिस्थिति जन्म इच्छा का ध्यान रखती है। इतना ही नहीं वह उसे यथाशक्ति पूरा करने का भी प्रयास करती है। उसे मालूम है कि उसके

पति का सम्बन्ध एक वेश्या से चल रहा है। किन्तु उसे इसका मलाल नहीं है। न केवल वह इसे सहन ही करती है अपितु वह उसे प्रोत्साहन भी देती है। चारुदत्त के घर से वसन्तसेना के आभूषण चोरी हो जाते हैं। चारुदत्त इस सकोच में पड़ा है कि लोग क्या समझेंगे। धृता स्वयं पति के चरित्र के परिमार्जन के लिये उत्सुक है। अब उसके पास केवल एक रत्नावली शेष है जो उसकी माता से उसे प्राप्त हुई है। रत्नावली चतुर्भुज सारभूत है और वसन्तसेना के सभी आभूषणों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। किन्तु उसके सामने एक समस्या यह है कि आर्यपुत्र इसे स्वीकार करेंगे नहीं। अतः वह एक युक्ति निकालती है वह रत्नपत्नी वन के बहाने रत्नावली दे देती है। जब वसन्तसेना उस लौटायना चाहती है तब वह यह कर स्वीकार नहीं करती कि आर्यपुत्र ने प्रमनता पूर्वक तुम्हें दी है। अब इसका लौटाना मेरे लिये ठीक नहीं होगा। मेरा आभूषण तो आर्य पुत्र ही है। उसे पति की अपेक्षा पुत्र का भी मोह नहीं। वह चारुदत्त के साथ सहमरण के लिये तैयार हो जाती है। वह पति की चहेती वेश्या को अपनी बहन मानती है और प्रमनता पूर्वक उससे विवाह की अनुमति दे देती है। उस जैसी महिलायें दुर्लभ हैं वह धन्य है।

धूर्जटिप्रसाद- (नाट्) य बगालवासी बन्धु थे। इन्हें काब्यतोष की उपधि प्राप्त हुई थी। इनका पञ्चविजय (दे) नाटक कलकत्ता में प्रकाशित हुआ है।

धूर्तचरित- (नाट्) यह एक भाग है जिसकी रचना दिवकर (दे) कव्यान्धारायण के भाई मधुसूदन ने की थी। एक धूर्त चरित का उल्लेख साहित्यदर्पण में भी किया गया है किन्तु वह एक प्रहसन बनलाया गया है। अतः प्रस्तुत धूर्तचरित साहित्यदर्पणातिशय धूर्तचरित में निश्चय हो भिल है।

धूर्तचरित (नाट्) यह एक प्रहसन है जिसका उल्लेख साहित्यदर्पण में सूक्तो प्रहसन के उदाहरण के रूप में किया गया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती। सम्भवतः यही रचना धूर्तविडम्बित नाम में भी जानी जाती है।

धूर्तनरक- (नाट्) सामराज विरचित प्रहसन। इसमें शत्रुसमूहों को हरा उड़ाई गई है। एक शत्रुमाधु मुरश्वर एक नरकी का भक्त है। जब वह वहाँ जान लगता है तब वह उस नरकी का अपन शिष्या को भेंट करता है। वे उस नरकी पर स्वयं डग डालने लगते हैं जब वह वहाँ से जाता आती तब शिष्य राजा पञ्चाचार के पास जाकर मुरश्वर की निन्दा करता है और माधु की निन्दा करता है। राजा उस निन्दाकार को एक महिलायें बन समझता है और निन्दा करता है कि नरकी उस माधु का हाथ है और वह गधा के घास खाता है।

यह प्रहसन यद्यपि उच्चकोट का नहीं है तथापि विचित्रता के मत्त में इसमें अन्य प्रहसनों की अपेक्षा प्राम्यता कम है। वरिष्ठ न इन्द्रो नृपति गज मार म का है विचित्र बन नहीं है किन्तु कुछ भी नहीं है।

धूर्तनर्तन-(नाकू) सामराज लिखित प्रहसन । कैटेलागस कैटेलागोरम स १२७२ पर इसका उल्लेख किया गया है । इसका विश्लेषण विल्सन ने थियेटर ११४०७ में किया है ।

धूर्तनाटकम्-(नाकू) सामराज दीक्षित लिखित नाटक जो एक प्रहसन है । इसका नायक मूडेश्वर वसन्ततिलक नामक सुन्दरी से प्रेम करता है । वह अपने शिष्य जगद्विषय को अपने आगमन की सूचना देने प्रेमिका के पास पहले ही भेज देता है । शिष्य स्वयं ही प्रेमिका के प्रणय जाल में फस जाता है । जब गुरु वहा पहुँचता है तब शिष्य भागकर पुलिस को बुला लाता है । पुलिस उस सुन्दरी से प्रेम करते हुये गुरु को रो हाथों पकड़ लेती है । गुरु मूडेश्वर अपनी सिद्धियों को बड़ा चढ़ाकर इतना वर्णन करता है कि राजा प्रभावित हो जाता है । इस प्रकार मूडेश्वर गुरु राजा को मूर्ख बनाकर उस सुन्दरी पर अधिकार कर लेता है । यह सम्भवतः धूर्तनर्तक का ही नामान्तर है ।

धूर्तविटसवाद-(नाकू) दे चतुर्भाणो आर ईश्वरदत्त ।

धूर्त विडम्बन-(नाकू) एक प्रहसन जोकि महेश्वर (दे) का लिखा है । कैटेलागस कैटेलागोरम १२७२ पर इसका उल्लेख किया गया है । कहा जाता है इसके लेखक का नाम महादेव नहीं महेश्वर था ।

धूर्तविडम्बित भाण-(नाकू) दे धूर्तवरित ।

धूर्तसमागम-(नाकू) ज्योतिरीश्वर (दे) लिखित प्रहसन । इसका कथासार इस प्रकार है- 'भिक्षुनगर (वही वही विश्वनगर) नाम का एक भिक्षु है । उसका शिष्य दुराचार गुरु के सामने अनग सेना से प्रेम होने की बात स्वीकार करता है । यह सुनकर गुरु क मन में भी भावना जागृत होती है कि उसका भी रुपवती सुराग्रिया से प्रेम है । दोनों ही प्रेम की भिक्षा मागने चल देते हैं और दोनों अनगसेना के घर पहुँच जाते हैं । गुरु उसके रूप को देखकर इतना अधिक पागल हो जाता है कि वह उसे 'आपने अधिकार में लेने की इच्छा करने लगता है और इस प्रकार अपने शिष्य को नाराज कर लेता है । वे भयानक झगड़े पर अभादा हो जाते हैं । इन दोनों से पीछा छुड़ाने के लिये वह उनके साथ पचायत की एक अदालत में जाना चाहती है । इसके लिये वे दोनों एक ऐसे असज्जानि नामक ब्राह्मण के घर पहुँचते हैं जो अपने शिष्य विदूषक के साथ विवाद में उलझा हुआ है कि जीवन का सारा प्रेम का आनन्द लेने में हो है । शिष्य कहता है कि दूसरे की स्त्री के साथ आनन्द लेने जैसा घोर पाप दूसरे का पैसा चुराने में भी नहीं है । इसी समय गुरु और शिष्य पचायत के लिये उनके पास आते हैं । वे परस्पर विरोधी पक्ष प्रस्तुत करते हैं । असज्जानि वेश्या के रूप से प्रभावित हो जाता है और आदेश देता है कि 'जब तक निर्णय नहीं हो जाता वह मेरे पास ही रहेगी । जब वह उस पक्ष के साथ रह रही है विदूषक स्वयं उसे अपने पास रखना चाहता है । इसी समय मूल नाशक नाम का एक नाई आता है जो अनगसेना से अपना कर्ज वसूल करना चाहता है । वेश्या असज्जानि का आर सक्न कर देती है । वह अपने शिष्य की धनपेटी लेकर उसका कर्ज चुका देता

है। वह नाई से बाल काटने और नाखून ठीक करने को कहता है। नाई उसके हाथ पाव बाध कर डाल देता है और भाग जाता है। तब विदूषक आकर उसे छुड़ाता है।

इस प्रहसन का सम्पादन लैसेन (CHR LASSEN) द्वारा अन्थोलोजिया संस्कृतिका (बोन १८३८) पृ ६६-९६ और पृ ११६-१३० में किया गया। सी कैप्लर जेन द्वारा १८८३ में भी इसका सम्पादन किया गया। विल्सन के थियेटर स II ४०४ में इसका विश्लेषण सामने आया। फ्रांस और इटैली में इसके अनुवाद प्रकाशित हुये जिनका उल्लेख स्किस्तर ने विब्लिओथेका में किया।

धृतराष्ट्र-(नापा) महाभारतमूलक नाटकों में इन्हें पात्र के रूप में अपनाया गया है

(१) भारत के दूतषटोत्कच में अभिमन्यु के वध पर सभी कौरव प्रसन्न हैं और आनन्द मना रहे हैं, किन्तु धृतराष्ट्र शकाकुल है और कौरवों को सर पर मडराती विपत्ति के लिये सावधान करते हैं। उन में सहृदयता भी है और पुरोहित वीरता भी। अभिमन्यु वध का समाचार सुनकर उनकी प्रतिक्रिया अत्यन्त मार्मिक होती है-

‘बहुत से एक्कर हुये निर्दय लोगो ने एकाकी पुत्र पर जब प्रहार किया तब उन सबकी बाँहें कट कर गिर क्यों नहीं गई।’

(२) दूत वाक्य में दुर्योधन के दुर्व्यवहार का उतार देने के लिये जब कृष्ण अपने आयुधों का आह्वान करते हैं तब उनके क्रोध को शान्त करने के लिये धृतराष्ट्र आगे आते हैं और उनका अभिवादन कृष्ण को शान्त कर देता है।

(३) वेणोसहार में धृतराष्ट्र स्वयं युद्धभूमि में दुर्योधन को समझाने आते हैं। भीम अभिवादन में उनके प्रति जहर पोल देते हैं। फिर भी उन्हें क्रोध नहीं आता। उनके १९ पुत्र मारे जा चुके हैं फिर भी वे अन्त तक दुर्योधन को युद्धविरत करने के अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटते। भीम उनका अभिवादन इन शब्दों में करते हैं-

‘यह भीम तुम्हें सर झुकाकर प्रणाम कर रहा है जिसने सभी कौरवों का वध किया है जो दुरशासन का खून पीकर मदमत्त हो गया है और जो कुछ ही दिनों में दुर्योधन की जघायें तोड़ने वाला है।’

जब दुर्योधन भीमसेन से गुरुजनों के प्रति शालीन होने के लिये कहता है तब अर्जुन भी भीम का समर्थन यह कह कर कर देते हैं कि द्रौपदी के प्रति व्यवहार की मौन स्वीकृति देने वाले इनका प्रतिकार यही है।

धृतराष्ट्र अन्त तक दुर्योधन को समझाने और युद्ध रोकने का आग्रह करते रहते हैं। पर दुर्योधन मानता ही नहीं। अन्त में रोनी होकर रहता है।

धृति-(नापा) (१) अश्वमेध (दे) के प्रतीक रूपक (दे) का एक पात्र जो बुद्धि और बौद्धि के साथ बातचीत करता है। इसकी भाषा संस्कृत है।

(२) प्रबोधचन्द्रोदय में इसे बुद्धि और बौद्धि के साथ वनालाप में मसमन दिखलाया

गाय है। बाद में बुद्ध का आगमन होता है। ये सब रूपकमय पात्र हैं।

(३) समुद्र मन्थन समवकार में यह लक्ष्मी की सहेली है और नाटक के प्रारम्भ में ही लज्जा और लक्ष्मी के साथ दिखलाई देती है।

धृतिसीतम्- (नाक) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित नाटक।

धृष्टद्युम्न- (नापा) वेणीसहार (दे) का एक पात्र। इसने शसत्याग से पीड़ित द्रोणाचार्य का वध किया है।

धृष्टद्यौरेयम्- (नाक) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक।

धेनुक- (नापा) बालरित (दे) में एक राक्षस जिसका वध कृष्ण ने बाललोला के अवसर पर किया था।

ध्यानेशनारायण चक्रवर्ती- (ना अनुका) ये २०वीं शताब्दी के बंगाल के रहने वाले हैं। इन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लिखी दो पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद किया था- वार्तागृहनाटक (दे) और मुक्तधारा।

ध्रुव- (नाक) दे रामकिशोर मिश्र।

ध्रुवनाटक- (नाक) यह (६) श्री निवासाचार्य (दे) लिखित नाटक है। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी। इस नाटक की पाण्डुलिपि लेखक के पुत्र आरएस कृष्णमाचार्य के महा राजमंडल में प्राप्त की जा सकती है।

ध्रुवतापस- (नाक) पद्मनाभाचार्य (दे) लिखित नाटक। इसकी रचना पार्श्वनाथ शैली के अनुकरण पर की गई है। इसमें अंकों के स्थान पर दृश्यों में विभाजन किया गया है। इसका प्रकाशन कोयम्बटूर से हो गया था।

ध्रुवाभ्युदय- (नाक) शङ्करलाल लिखित ११ अंकों का नाटक। इसमें ध्रुव की प्रसिद्ध पौराणिक कथा का कथानक के रूप में उपादान किया गया है तथा रचना में छाया तत्व की प्रधानता है।

इसका रचनाकाल १८८६ ई है। इसका प्रकाशन यशवन्तसिंह स्टीम मुद्रणालय लोवडीपुर जामनगर से १९११ में हो गया था।

ध्रुवावतारम्- (नाक) यह एक कल्पित कथानकपरक नाटक है। इसके लेखक हैं खोद स्कन्द शर्कर। इस नाटक का नायक सुधीर नामक एक छात्र है जिसे ध्रुव का नूतन अवतार बतलाया गया है। इसका प्रकाशन नागपुर से हुआ है।

नकुल- (नापा) वेणी सहार नाटक (दे) का एक पात्र। पहले तो दुर्योधन की पत्नी भानुमती के स्वप्न के प्रसंग में उसका उल्लेख हुआ है। भानुमती ने स्वप्न में देखा

है कि एक नकुल (नेवले) ने १०० सर्पों को मार डाला है। यह एक अपशकुन है जो नकुल (सामान्य पाण्डवों) द्वारा १०० कौरवों के वध की भविष्यवाणी है। दूसरी बार हमें उसके दर्शन भीमसेन के साथ वार्तालाप में होते हैं जब भीमसेन सन्धि की बात सुनकर उत्तजित है और नकुल उनके क्रोध को कुछ शान्त करने की चेष्टा करते हैं।

जब अन्त में दुर्योधन के ठरपण के बाद दुर्योधन का पक्षपाती एक राक्षस चार्वाक वेष में यह गलत सूचना देता है कि दुर्योधन ने भीम और अर्जुन दोनों को मार डाला है तब युधिष्ठिर के स्कन्धावार में महान शोक छा जाता है। बाद में जब सच्चाई का पता चलता है तब नकुल उस राक्षस का वध कर देते हैं।

नगरनूपुरम्- (नाकृ) डा रमा चौधरी (दे) लिखित १० अंकों का नाटक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

नगरश्री - (नापा) मोहराजपराज्य के प्रासङ्गिक कथानक की नायिका। यह देशश्री को जैन धर्म का उपदेश देती है और उसे उस धर्म को स्वीकार कर लेने के लिये प्रेरित करती है। इसने पहले ही जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली थी।

नटेश्वर विलास- (नाकृ) यह तजौर के राजा शिवजी का लिखा नाटक है। इसमें चिदम्बरम् में देव भगवान् शिव से सम्बन्धित कथानक का नाटकीकरण किया गया है।

नदीपूजा- (नाकृ) वेङ्कटायम राघवन का एक अनूदित नाटक।

नना विताडनम्- (नाकृ) डा सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय का लिखा एक प्रहसन। इसकी रचना २०वीं शताब्दी के दूसरे दशक में की गई थी और इसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य परिषद् द्वारा १९७४ में किया गया था। सूत्रधार रगमञ्च पर आकर सूचना देता है कि नना मरणासन्न अवस्था में है— अतः अधिनय नहीं किया जायेगा। दर्शकों में तीन लोग रगमञ्च पर आते हैं एक शिक्षक, एक तरुण, एक पण्डित। तीनों परिस्थिति पर विचार कर निर्णय करते हैं कि नना को बचाने के लिये वैद्य को बुलाया जाना चाहिये। वैद्य आता है किन्तु सूचना मिलती है कि नना मर गई है। थोड़ी देर में नना उठ खड़ी होती है तब वैद्य उसे प्रेत समझकर भाग खड़ा होता है। ठधर मृत्यु की सूचना देने वाली उतरा भयभीत हो जाती है कि नना उसी की गर्दन ठमेरेगी क्योंकि नना को विष देने की याचना उसी ने बनाई थी।

नन्दगोप- (नापा) बालर्हीत (दे) में एक पात्र। यह कृष्ण का पालन पिता है। इनके यहाँ मृत बालिका का जन्म हुआ है जिससे इन्होंने वसुदेव व जीवित पुत्र कृष्ण को बदल लिया है और उसका निष्ठापूर्वक कलन पोषण किया है।

नन्दन- (नापा) धानन्तों माधव (दे) का एक पात्र यह राजा का नर्म सचिव है। राजा इसका विवाह मालता से करना चाहता है और मन्त्र को सफल भा समझता है।

किन्तु विवाह के अवसर पर मालती भाग जाती है। माधव का मित्र मकरन्द मालती का रूप धारण कर विवाह कर लेता है। बाद में धोखे का पता चलता है।

नन्दलाल विद्या विनोद- (नाका) ये १९वीं शताब्दी में बंगाल के निवासी थे। इनका लिखा गर्व परिणति (दे) नाटक १८८५ में प्रकाशित हुआ था।

नन्दिघोष विजयम्- (नाकृ) शिव नारायण दास लिखित ५ अकों का नाटक जिसमें कमला और पुरुषोत्तम के पारस्परिक क्रियाकलाप का चित्रण किया गया है। इसका रचनाकाल १६वीं शताब्दी है। इस नाटक का दूसरा नाम कमला विलास भी है।

नन्दिमती- (नाकृ) इसका उपरूपक भाणिका के उदाहरण के रूप में उल्लेख किया गया है। अब यह रचना नाम शेष है। इसके विषय में नामोल्लेख के अतिरिक्त और कुछ ज्ञात नहीं है।

नन्दिपति- (नाका) ये १८वीं शताब्दी में पुर्णौली (मिथिला) के निवासी थे। इनकी लिखी ४ अकों की कृष्णकेलिमालानाटिका (दे) प्रकाश में आई है। इनके दो अन्य अज्ञात नाटक भी बनलाये जाते हैं- कदम्बकेलिमाला और रुक्मणीस्वयवर।

नरसिंह- (नाका) ये १४वीं शताब्दी के आन्ध्र प्रदेश के कवि थे। वेमभूपाल ने इनका उल्लेख साहित्य चिन्तामणि में किया है और उससे एक पद्य भी उद्धृत किया है। इससे सिद्ध होता है कि इनका समय वेमभूपाल (१५वीं शताब्दी) से पहले है। इनकी चार पुस्तकों का पता चलता है जिनमें कादम्बरीकल्याण (दे) नामक नाटक भी है। शेष तीन पुस्तकें हैं- ऋग्वेद भाष्य, काकतीय और मलयवती (गद्य रचनाएँ)। कादम्बरीकल्याण का प्रथम पद्य वामनभट्टवाण की कनकलेखा (दे) के प्रथम पद्य से मिलता है। अतः कुम्पूस्वामी शास्त्री ने अनुमान लगाया है कि ये वामनभट्टवाण से अभिन्न थे। शिवनारायण महोत्तम (दे) के लेखक नरसिंह से ये भिन्न थे।

(१) **नरसिंह-** (नाका) इनका लिखा शिवनारायणमहोदय (दे) एक प्रतीक नाटक है जिसमें दार्शनिक तत्वों का नाटकीकरण किया गया है। यह रचना क्योझर के राजकुमार के लिये की गई थी। कादम्बरी कथा का नाटकीकरण करने वाले नरसिंह (दे) से ये भिन्न हैं।

(३) **नरसिंह-** (नाका) दक्षिण कनारा के एक ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म १९०२ में हुआ था। इनका प्रतिज्ञाभार्गव नामक एक व्यायोग प्रकाश में आया है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियाँ भी प्रसिद्ध हैं जिनमें ८ अध्यायों के सौदामनी उपन्यास, भारतकथा इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।

नरसिंह उपनाम राजराज- (नाटीका) प्रसन्नराधव पर इनकी टीका प्राप्त होती है। ये भद्राज गोत्र में उत्पन्न हुए थे। सम्भवतः यह टीका रत्नपुरी में लिखी गई थी।

नरसिंह कवि- (नाका) इनका जन्म गादावरी जिले के वणुगुमहल नामक गाव

में हुआ था। विजयानगर के महाराज आनन्दगजपति के साथ कुछ समय बिताकर ये सन्यासी हो गये थे। गणित में ये विलक्षण प्रतिभाशाली थे। इन्होंने चित्तूर्यासोक (दे) नामक एक प्रतीक नाटक की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने कालमानोपपत्ति और तिथिमञ्जरी ये पुस्तकें भी गणित से सम्बन्धित ही लिखी थी। जिससे इनकी गणित विषयक प्रौढ़ता सिद्ध होती है। इसी शताब्दी के प्रारम्भ में विजयवाड़ा में इनका देहान्त हो गया।

नरसिंह कवि- (नाका) इन्हें नरसिंह मिश्र भी कहा जाता है। ये उत्कल प्रदेश के निवासी थे और उत्कल के मयूरभञ्ज के निकट क्योङ्गार के राजा ने इनकी सम्मान किया था। उनकी प्रशस्ति में इन्होंने शिवनारायणभङ्गमहोदय नामक नाटक की रचना की थी।

नरसिंह दीक्षित- (नाका) इनकी लिखी श्रीनिवास रथ विजय नाटिका (दे) का उल्लेख त्रैवार्यिक खोज रिपोर्ट मद्रास में किया गया है। इनका समय १७वीं शताब्दी का मध्यभाग है।

नरसिंहाचार्य- (नाका) दे महुम्बई वेङ्कटराम नरसिंह आचार्य।

नरसिंहाचार्य स्वामी- (नाका) विजयानगरम् के निकट सिंहाचलम् में इनका जन्म १९वीं शताब्दी के मध्य में हुआ था। इनके पिता वीरराघव और पितामह नृसिंहार्य थे। विजयानगर के राजदरबार में इन्हें आश्रय प्राप्त हो गया था। इनके लिखे चार नाटक बतलाये जाते हैं- वासवी पाराशरीय, (दे) राजहसीय प्रकाण (दे) गजेन्द्र व्यायोग (दे) और शीतसूर्य (दे)। नाटकों के अतिरिक्त उपन्यास अलंकार शास्त्र नीतिसूक्ति इत्यादि पर भी इनकी रचनाएँ पाई जाती हैं।

नराणा नापितो धूर्त- (नाक) जयपुर निवासी नारायण शास्त्री लिखित चार दूरियों का एकाङ्की। इसका प्रकाशन मधुर वाणी पत्रिका में १९५७ में हुआ था। एक आलसी और बेकार नाई राम किशोर पत्नी के आग्रह पर धन कमाने चलता है। मार्ग में उसकी दानव से भेट हो जाती है। वह धैर्य से शीशु निकाल कर दानव के सामने कर देता है और बहता है मेरे धैर्य में न जाने कितने दानव विद्यमान हैं। दानव डर कर नाई को स्वर्ण मुद्रापे देकर पीछा छुड़ता है। नाई धन लेकर घर लौट आता है। दानव का मामा घदला लेने आता है तब नाई उसके सामने छ शीशे कर देता है। तब मामा भी यह समझकर कि उसके पास तो दानवों की सेना है डर जाता है और राम किशोर को प्रभूत धन देकर पीछा छुड़ता है।

नरेन्द्रश्रीवत्साङ्क- (नाका) दे गोविन्द श्रीवत्साङ्क।

नर्मजती- (नाक) साहित्यदर्पण में नाटयत्सक का उदाहरण। इसके दो अंक बतलाये गये हैं। यह रचना अभी तक उपलब्ध नहीं की जा सकी है।

नल- (नापा) महाभारत के वन पर्व में इनकी कथा विस्तार पूर्वक आई है। महाभारत की उच्छ्वकोटि की उपकथाओं में इसका अन्यतम स्थान है। इनकी कथा को लेकर कई

नाटकों की रचना की गई है। इनको पुण्यश्लोक कहा है। पार्श्वार्थ जगत् में इनके कथानक की अन्यतम प्रतिष्ठा है।

(१) नलचरित नाटक- (नाकृ) नोलक्ण्ठलिखित नाटक। यह बालमनोरम प्रेस मद्रास से प्रकाशित हो चुका है। इस नाटक की व्याख्या लेखक के भाई अच्चा दीक्षित ने लिखी थी। यह १० अकों का शृङ्गारस एव वैदभीरीति प्रवण नाटक है। किन्तु यह ६ अक तक हो उपलब्ध होता है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी में की गई थी। प्रथम अभिनय काञ्ची के कामाक्षी परिणय के अवसर पर किया गया था।

(२) नलचरित- (नाकृ) इसकी रचना देवीप्रसाद शुक्ल ने की थी। सुप्रभात पत्रिका में इसका प्रकाशन किया गया था।

नलदमयन्तीयम्- (नाकृ) कलकत्ता के कालीपद तर्काचार्य द्वारा प्रणीत नाटक। इसमें ७ अक हैं। रचना सन् १९१७ में की गई थी। इसका प्रकाशनसंस्कृतसाहित्य परिषद् कलकत्ता से हो गया था।

नलभूमिपालरूपकम्- (नाकृ) अज्ञातनामा कवि का लिखा नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम् II ६० में इसका उल्लेख किया गया है। कुछ लोग इसे वेंकट रमनाथ की रचना मानते हैं।

नलविक्रम- (नाकृ) इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। यह अप्राप्त रचना है।

नलविजयम्- (नाकृ) मण्डिकलराम शाली लिखित नाटक। इसमें १० अक हैं, अतः इसे महानाटक की श्रेणी में रखा गया है। इसमें नलदमयन्ती के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन का कथानक स्वीकृत किया गया है। इसका प्रथम अभिनय नवरात्र के महोत्सव के अवसर पर महाराज कृष्णराज के आदेश पर किया गया था। इसका प्रकाशन मैसूर से १९१४ में किया गया था। इसका दूसरा नाम भैमी परिणय भी है।

(१) नलविलासम्- (नाकृ) पर्वणीकर सीताराम द्वारा १८वीं १९वीं शताब्दी में लिखित नाटक।

(२) नालविलासम्- (नाकृ) अहोबिल नृसिंह का लिखा ६ अकों का नाटक इसकी रचना १७६० में हुई थी।

(३) नलविलास- (नाकृ) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र द्वारा लिखित नाटक। गण्यकवाड ओरियण्टल सोरीज बडौदा का संस्करण।

नलविषयक नाटक- (नासा) महाभारत की आनुषङ्गिक कथाओं में पार्श्वार्थ विद्वानों ने नलकथा को सर्वाधिक महत्व दिया है और यूरोप में इस कथा की सर्वाधिक प्रशंसा की गई है। यह कथा असाम्प्रदायिक है और इसमें व्यवहार की सर्वजनमान्यता को सुगंधित रखा गया है। संस्कृत साहित्य में भी नलोपाख्यान को लेकर पर्याप्त

संख्या में नाटक रचना की गई है। एतद्विषयक कतिपय प्रतिष्ठित नाटककार निम्नलिखित हैं—

अनर्घनलचरित (सुदर्शननाचार्य); दमयन्तीकल्याणम् (रगनाथ); दमयन्तीपरिणय (नल्लन चक्रवर्ती); नलचरित (१ नीलकण्ठ, २ देवी प्रसाद शुक्ल); नलदमयन्तीयम् (काशी प्रसादतर्काचार्य) नलभूमिपालरूपक (अज्ञातनामा कवि) नलविक्रम (अज्ञातनामा कवि) नलविजयम् (मण्डिकलराम शास्त्री); नलविलासम् (१ पर्वणीकर सौताराम, २ अहोवाल, ३ रामचन्द्र) नलानन्द (जीवबुध); नलाभ्युदय (१ रघुनाथ, २ अज्ञातनामा कवि) भैमीनैषधीयम् (सौताराम आचार्य) भैमीपरिणय (१ रामशास्त्री २ श्रीनिवास दीक्षित, ३ वेङ्कटाचार्य, ४ गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य ५ मण्डिकलराम शास्त्री) मञ्जुल नैषधीयम् (वेङ्कटरगनाथ), भैमी परिणय (श्रीनिवास रत्नछेट) नलभूमिपालरूपकम् ।

नलानन्द— (नाकू) यह जीवबुध का लिखा ७ अर्कों का नाटक है। इसमें नल के द्यूतब्रीडा में पराजित होने से लेकर पुनर्मिलन की कथा निबद्ध की गई है। लन्दन के एसो बरनेस द्वारा संस्कृत पाण्डुलिपियों पर किये गये अनुसन्धान की ग्रन्थ सूची १६८ पर १०६३५, ५२१४ में इसका उल्लेख है। यह ग्रन्थसूची तजौर की पैलेस लायब्रेरी में प्राप्त की जा सकती है।

(१) नलाभ्युदय— (नाकू) नल के कथानक पर आधारित इस नाम का एक नाटक मद्रास के प्राच्यपुस्तकालय की पाण्डुलिपिपत्रक विवरणात्मक सूची में स XX ७८४८ एव XXI ८३७० संख्याओं पर उल्लिखित किया गया है। राजचूडामणि के नाटक की प्रस्तावना में इसका उल्लेख किया गया है और इसके रचनाकार का नाम रघुनाथ (दे.) बतलगाया गया है। ये रघुनाथ प्रसिद्ध साहित्यकार राजचूडामणि (दे.) के आश्रयदाता थे।

(२) नलाभ्युदय— (नाकू) प्राच्यपुस्तकालय मद्रास के त्रैवार्षिक पाण्डुलिपि अनुभाग में चौथे खण्ड की संख्या ४७८७ पर इस नाम के एक नाटक का उल्लेख किया गया है किन्तु इसमें नाटककार के नाम का पता नहीं दिया गया है। यह पता नहीं चलता कि राजचूडामणि ने अपने नाटकों की प्रस्तावना में रघुनाथ (दे.) कृत जिस नलाभ्युदय नाटक का उल्लेख किया है क्या यह उमकी ही एक प्रति है या यह कोई दूसरी रचना है।

नल्लन चक्रवर्ती— (नाका) इनका लिखा दमयन्तीपरिणय नामक नाटक प्राप्त होता है। इनका समय १८वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

नल्लदुष्ट— (बौशिक) (नाका) इनका लिखा राज्ञार सर्वस्व (दे.) प्राप्त होता है। ये बालचन्द्र के पुत्र रामभद्र दीक्षित के सम्बन्धी थे।

नल्लाकवि— (नाका) दे भूमिनाथ।

नवकृष्णदाम— (नाका) इनको कृष्णदाम इस मशहूर नाम से भी मशहूर किया

जाता है। ये क्लावतीकामरूपम् के लेखक हैं। इनका समय १८वीं शताब्दी है। ये मालावार (केरल) के निवासी थे।

नवग्रहचरित- (नाकू) धनश्याम लिखित सट्टक। यह प्राकृत में लिखा हुआ प्रतीक सट्टक है। ई. हुत्ज द्वारा मद्रास में १९०५ में दक्षिण भारत में सस्कृतपाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में इसका उल्लेख III १५७१ पर किया गया है। यह एक विचित्र प्रकार की रचना है जिसमें नाट्यशालीय शब्दावली को एक दम बदल दिया गया है जैसे प्रस्तावना को सूच्यार्थ, विष्कम्भ को काल, अकों को प्रपञ्च इत्यादि। इसमें ५ प्रपञ्च हैं। इसका नायक सूर्य और प्रतिनायक राहु है जो केतु को साथ लेकर राशि की स्वतन्त्र प्रतिष्ठा करना चाहता है और उसकी चेष्टा है कि उसके नाम पर एक दिन का भी नामकरण कर दिया जाय। सूर्य का सेनापति मंगल है। राहु प्रयत्नशील है कि किसी प्रकार ग्रहचक्र से शनि को दो पाठ कर लिया जाय। सघर्ष छिड़ता है। अन्त में देवताओं और दैत्यों के गुण बृहस्पति और शुक्र मध्यस्थता करते हैं। शुक्र राहु को स्वर्णानु की सज्ञा देकर सन्तुष्ट कर देता है।

नवजीमूत- (नाकू) जगन्नी श्री बकुल भूषण (दे.) लिखित नाटक।

नवमालिका- (नाकू) विरवेश्वर लिखित नाटक। इसमें अवन्ती के विजयसेन की नवमालिका के साथ प्रेमलोलाओं का चित्रण किया गया है। इसमें प्रचलित कथानक को कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसकी नायिका नवमालिका है जिसका अपहरण एक राक्षस द्वारा हो जाता है। एक तपस्वी उसे मुक्त कराकर अवन्ति के राजपराने में विजयसेन के पास भेज देता है। दोनों का प्रेम बढ चलता है। रानी उसे और उसकी सहेली चन्द्रिका को बन्दी बना लेती है। किन्तु बाद में पता चलता है कि यह अनगराज विजयवर्मा की अपहृत राजकुमारी है और ज्योतिषियों के अनुसार उसका पति सार्वभौम होगा तब रानी स्वयं उसका विवाह राजा से करा देती है।

ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के सस्कृत पाण्डुलिपियों के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग स XXI ८४११ पर इसका उल्लेख किया गया है।

नवमालिका- (नापा) यह नागानन्द की एक हास्य पात्र है। यह शेखरक (विट) की प्रेयसी है। जब उसका प्रेमी (शेखरक) विदूषक को अपनी प्रयसी समझ कर उससे छेड़छाड़ करने लगता है तब वह नाराज हो जाती है। उसे मनाने के लिये विदूषक ब्राह्मण को उसके पैरों पर गिरने और मदिरा पिलाने के लिये बाध्य होना पड़ता है। बाद में वह भी उन दोनों की हसी उड़ाती है।

नष्टहास्यम्- (नाकू) एक प्रहसन जिसके लेखक हैं जीवन्मायतीर्थ (दे.) रचना काल १९वीं शताब्दी।

नहुपाभिलाष- (नाकू) यह एक इहामृग है जिसकी रचना रामानुजन्नी ने की थी।

नागनाथ- (नाक) ये मदनविलास भाण (दे) के लेखक हैं।

नागराज विजयम्- (नाक) यह हरिहर द्विवेदी (दे) का लिखा नाटक है जिसका नायक नागराज है। इसमें नागराज की शक्तों और कुषाणों पर विजय दिखलाई गई है। इसका प्रकाशन संस्कृत प्रतिभा में १९६० में हुआ था और इसका प्रथम अभिनय उज्जैन में किया गया था।

नागविस्तारम्- (नाक) जनमेजय के नागयज्ञ के विषय में जीवन्त्यायतीर्थ (दे) का लिखा ६ अंकों का नाटक। इसमें सूर्य, काल, ब्रह्मा इत्यादि दिव्यपात्रों का भी उपादान किया गया है। इसमें गीतों की अधिकता है और गीतों द्वारा भावी घटनाओं की सूचना दी गई है। इसका आगीरस अद्भुत है। अगरस के रूप में वीर और शूद्रा का भी उपादान किया गया है।

नागानन्द- (नाक) महाराज हर्ष (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक इसका कथानक भिन्न प्रकार का है यह एक कथानक को लेकर नहीं चलता। इसमें तीन कथानकों को एक में जोड़ने का प्रयास किया गया है- जौमूतवाहन की शासनसत्ता से विरक्ति, जौमूतवाहन की प्रणय लीला और जौमूतवाहन का त्याग। तीनों कथानकों को एक में जोड़ने वाला तन्त्र है जौमूतवाहन का चरित्रचित्रण।

जौमूतवाहन विद्यापराजकुमार है। वह भगवान् बुद्ध का अनुयायी है तथा बोधिसत्व की पदवी प्राप्त कर चुका है। उसके मित्र मित्रावसु की बहन मलयवती उससे प्रेम करती है क्योंकि स्वप्न में भगवती गौरी ने उसे उसके भावी पति का परिचय दे दिया है। जब वह स्वप्न की बात अपनी निकटचरिणी परिचारिका से कह रही होती है तब जौमूतवाहन उसे छिपकर सुन लेता है। मलयवती संगीत में ही निपुण नहीं है वह सुन्दरी भी है और प्रथम दर्शन में ही जौमूतवाहन उस पर आसक्त हो जाता है। दूसरी ओर मलयवती भी हृदय में सप्रर्पित हो जाती है। परन्तु दोनों को इस बात का विश्वास नहीं है कि दूसरा भी प्रेमाभिभूत है। दोनों वियोग वेदना से पीड़ित हैं। किन्तु जब मलयवती का भाई मित्रावसु बहन मलयवती के विवाह का प्रस्ताव लेकर आता है तब जौमूतवाहन उसे स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसे पता नहीं है कि उक्त प्रस्ताव उसकी प्रेमिका के लिये ही है। मलयवती स्वयं को अपमानित समझकर आत्महत्या करना चाहती है। समय पर जौमूतवाहन पहुँच कर उसे बचाता है और वास्तविकता ज्ञानकर दोनों प्रणयबन्धन में बंध जाते हैं।

जब जौमूतवाहन और मलयवती उद्यान में दाम्पत्य जीवन के आनन्द में मग्न हैं उन्हें सूचना मिलती है कि मत्तग की शत्रु सेना निकट आ गई है। जौमूतवाहन का त्यागभाव मुखर हो जाता है और वह कहता है कि हमारा केवल एक शत्रु है और वह है पाप। उस आक्रान्ता शत्रु की परवा नहीं है।

समुद्रतट पर जीमूतवाहन की दृष्टि उन हड्डियों की राशि पर पड़ती है जो गरुड द्वारा खाये हुये नागों की हैं। नागराज और गरुड में एक समझौता हुआ है जिसके अनुसार एक नाग नित्य गरुड के भोजन के लिये जाता है। आज राखचूड़ नाग की बारी है उसकी ऐसी हुई मा की जीमूतवाहन यह कहकर दाढ़स बधाता है कि आज स्वयं वह उसके पुत्र के स्थान पर गरुड के भोज्य के रूप में जायेगा। वध्यशिला पर गरुड आता है और भोजन के मध्य अर्धमृतवस्था में भी जब जीमूतवाहन को प्रसन्न चित्र देखना है तब अपनी गलती समझ जाता है। समय पर राखचूड़ पहुचकर वास्तविकता का परिचय देता है। तब तक देर हो चुकी होती है। नायक की मृत्यु हो जाती है, नायक के माता पिता और पत्नी आ जाते हैं और शोक मनाने लगते हैं। तभी गौरी प्रकट होकर नायक को जीवित कर देती है। और गरुड हड्डियों पर अमृत वर्षा कर सभी नागों को पुनरुत्थानवित कर देता है।

नाटक वसन्तोत्सव में खेलने के लिये लिखा गया था। इसमें तीनों विभिन्न कथाये नायक की एकता से जुड़ी हैं। तीनों में अङ्गोरस अलग अलग है। मुख्य कथा जीमूतवाहन द्वारा सभी को त्रास देना है, नागानन्द नाम का भी यही आशय है। इस कथा का उपादान बृहत्कथा से किया गया है। इसमें गौरी का भी महत्व बताया गया है, अब यह बौद्ध नाटक नहीं हो सकता। इसकी शैली प्रसादगुणयुक्त एवं प्रवाहपूर्ण है।

कथानक का मूल स्वर बौद्धमत जीमूतवाहन के आत्मबलिदान को लोकविश्रुत बनाने का प्रयत्न है। किन्तु कथानक की विभिन्न शाखाओं के मध्य बौद्धधर्म प्रचार की भावना प्रमुखता नहीं प्राप्त कर सकी है।

इस नाटक का प्रकाशन कई क्षेत्रों से हो चुका है। इस पर कई टोकामें हैं जिनमें प्रमुख हैं— आत्माराम, एन सी कवित्त, शिवराम और श्रीनिवासाचार्य की टोकामें। इसके कथानक को लेकर इसी नाम का एक लघु काव्य भी लिखा गया है।

नाटकाट— (नाक) वासुदेवायनानुव यदुनन्दम लिखित एक प्रहसन जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

नाटिका साहित्य— (नास) महायज हर्ष लिखित दो नाटिकायें— निपदरिका और रत्नावली, विहग की कर्ममुन्दरी, मदनकालसरस्वती की विजयप्री (उपनान पारिवातनञ्जरी); मयुरादास की वृषभानुजा, भवनुतचूडलिखित कौरवेलिका, रामचन्द्र लिखित वासनीका, कृष्णविरोधलिखित कुवलयवती, धर्मगुप्त का रणङ्क नाट्यम और विश्वनाथ कवियज इन दो कवियों द्वारा लिखित चन्द्रकला नाम की दो पृथक् पृथक् नाटिकायें, विश्वनाथ भट्ट लिखित शृङ्गारवाटिका।

कवियज अन्य रचनायें अनङ्गवर्णा, इन्दुलेखा, इन्दुपती, चन्द्रलेखा, पद्मावती, चन्द्रमहा (यह रत्निका पूरी नहीं है)।

नाट्यदर्पण में उल्लिखित नाटक- (नासा) रामचन्द्रगुणचन्द्र लिखित नाट्यदर्पण में निम्नलिखित नाट्य कृतियों का उल्लेख किया गया है- अनङ्गवती नाटिका अनङ्गशेखर, (शक्तिवामकुमार) अभिनवराघवम् (क्षीरस्वामी) इन्दुलेखानाटिका उदात्तराघवम्, कृत्यारावणम्, कोशलिकानाटिका कौमुदीमित्रानन्दम्, चित्रोत्पलावलम्बितम् (अमात्यशकुल) छलितरामम्, तरंगदत्तम्, तापसवत्सराजम्, दरिद्रचारुदत्तम्, देवीचन्द्रगुप्तम्, धर्मपालम्, पाण्डवानन्दम्, पार्थविजयम्, पुष्पदूषितम्, प्रतिभानाटकम्, प्रयोगाम्पुदयम्, बालिकावञ्चिकम्, भीमपराक्रमम्, मनोरमावत्सराजम् (भीमट) मल्लिकामकरन्दम्, माधवपुष्पम्, राधाविप्रलम्भम् (भेज्जल) रोहिणामृगाङ्गम्, नवभालिका विलक्षदुर्योधनम्, सत्यहरिश्चन्द्रम्, स्वप्नदशाननम्, स्वप्नवासवदत्तम् ।

नाट्यपरिशिष्ट- (नाक) कृष्णानन्दवाचस्पति (दे) लिखित एक प्रतीकनाटक । इसे अन्वर्थीकरण नाट्यपरिशिष्ट भी कहा जाता है । इसमें नाटकीय मनोरजन के द्वारा व्याकरण के सिद्धान्तों की शिक्षा दी गई है । इसका प्रकाशन कलकत्ता से हुआ है ।

नाभागच्छरित- (नाक) गुरप्रसन्न भट्टाचार्य (दे) लिखित ६ अंकों का नाटक ।

नायक- (नापा) अश्वघोष (दे) के गणिका विषयक (दे) रूपक का एक पात्र । यह उस नायक का नायक है और इसकी सजा नायक ही है । इसके साथ मागधवती (दे) गणिका का शूद्रार प्रथित किया गया है । सम्भवत इसका नाम सोमदत्त है ।

नायर- (बके) ये त्रिवेन्द्रम के रहने वाले थे और इन्होंने आनन्दकर्मोपम (दे) शीर्षक प्रहसन लिखा था । इनका समय २०वीं शताब्दी है ।

नारद- (नापा) (१) पुराणों क दक्खिणि । यायावरा इनका विशेष गुण है । अवसर के अनुकूल किसी घटना में योगदान करना इनका व्यसन है । नाट्य के प्रसंग में हरिवंश पुराण जहा अन्ध्र की मृत्यु के बाद कृष्ण की प्रेरणा से नृत्य गीतादि मनोरजन का आयोजन किया गया जिसमें कृष्ण का पराक्रमविषयक अभिनय भी सम्मिलित था नारद का भी योगदान दिखलाया गया है जहा नारद ने शस्योत्पादकचेष्टाओं के द्वारा मनोरजन किया था ।

(२) भाम रचित कलचरित म एक पात्र । नाटक की प्रस्तावना के बाद मूत्रधार की मृचना क अनुसार नारद रगमञ्ज पर आकर कृष्ण क रूप में विष्णु भगवान के अवतार की भूयसा देते हैं और कम विनाश का उसका उद्देश्य बतलाते हैं तथा कृष्ण के दर्शन कर स्वर्ग लोक की चल् आते हैं । कमवध क बाद भी व पुन आते हैं और गम्भवी तथा अम्माआ के साथ कृष्ण का स्तुति कर पुन दव लोक का चल् जाते हैं ।

(३) त्रिभोवन्शा- के अन्तिम भाग में आकर त्रिभुव शो सूचना देते हैं कि दैत्यों का पराजित करन बलिय उनकी आश्वरता है और उसके पुरस्कार क रूप में उर्गशी मदा क लिये तुम्हें प्रदान कर दी गई है ।

(४) अविमारक- में जब कुरंगी का विवाह करी और होने को होता है तब नारद आकर कुरंगी के पिता को अविमारक की वास्तविकता बतलाते हैं जिससे कुरंगी का विवाह अपने प्रियतम सो हो जाता है ।

नारायण- (नापा.) (१) द्रुतवाक्यम् (दे.) में कृष्ण के लिये प्रयुक्त । सभाभवन में जब कृष्ण ने अपना लोकोत्तर रूप प्रकट किया है नारायण के अस्त्र, वाहन इत्यादि मानवीकृत रूप में उपस्थित होते हैं ।

(२) बालचरित (दे.) में कृष्ण के लोकोत्तर कृत्यों का चित्रण किया गया है । वहा कृष्ण को नारायण कहा गया है और कृष्ण की सेवा में नारायण के आयुध गोपवेष में उपस्थित होते हैं ।

(३) कामुदीमित्रानन्द- (दे.) में एक पात्र । ये मकरन्द के कारका को अपना बतलाकर उस पर अपना अधिकार करना चाहता है किन्तु मित्रानन्द और वज्रवर्मा के आगमन से वह विवाद समाप्त हो जाता है ।

(१) नारायण- (नाका.) इनकी दो नाट्य कृतिया प्राप्त होती हैं- कैतवकलाचन्द्र और शृङ्गार विलसित । दोनों नाट्यकृतिया मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्त की जा सकती है ।

(२) नारायण- (नाटीका.) इन्होंने भगवदज्जुका (दे.) की टीका लिखी थी और उस टीका के उपक्रम में जो पद्य लिखा था उससे ज्ञात होता है कि इन्होंने भवभूति के नाटकों की भी टीका लिखी थी-

यश्चमौ भवभूतिसूक्तिजलधेर्यौधयादोगण

प्रक्षोभोत्थितभूतिभजनकरी व्याख्यातरी निर्ममे ।

तेनेम विषमेतिवृत्तगहने बौधायनीये पुन

नाटये गर्भितशास्त्रजृम्मितवचोगम्भीरगुम्फे कृता ॥

नारायण तीर्थ- (नाका.) कृष्ण लीलातरंगिणी के लेखक ।

(१) नारायण दीक्षित- (नाका.) मुकुटाभिषेकम् नाटक के लेखक । इनका समय २०वीं शताब्दी है ।

(२) नारायण दीक्षित- (नाका.) इनका लिखा अद्भुत पञ्जर (दे.) नामक नाटक प्रकाश में आया है । ये १८वीं शताब्दी के नाटककार हैं ।

नारायणदेव- (नाटीका.) ये मालतीमाधव के टीकाकार हैं । पहले इन्होंने अपने गुरु त्रिपुरारी द्वारा ७व अंक तक लिखी हुई टीका को पूरा किया । फिर पूरे नाटक की भी टीका लिखी । इनकी दूसरी टीका का उल्लेख मद्राम लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट ॥ ४२२० में किया गया है । सम्भवत १२वीं शताब्दी के तिरहुत के राजा नारायण ही टीकाकार नारायणदेव हैं ।

नारायणनन्द- (नाका) ये १५वीं शताब्दी में ठडीसा के निवासी थे। इनका लिखा रामचन्द्रानन्दम् नाम का नाटक बतलाया जाता है।

नारायणभट्ट- (नाका) इनका लिखा जानकीपरिणय (दे) रूपक प्राप्त होता है जो कि विवाहविषयक रूपक है।

नारायणराव चिलुकुरी- (नाका) इनका लिखा विक्रमाश्वत्थामीयम् (दे) शौर्यक व्यायोग प्रकाश में आया है। इसका रचनाकाल है २०वीं शताब्दी।

नारायण विलास- (नाक) यह विरपाध (दे) का लिखा ५ अकों का नाटक है। इसका उल्लेख सोमेश आफ विजयानगर हिष्ट्री स ५३ पर किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोस III ६३ और शेष गिरि शास्त्री रिपोर्ट १०६९० में भी उल्लेख हुआ है।

(१) **नारायणशास्त्री-** (नाका) ये तजौर जिले के नदु कावेरी (नादुकर्णी) स्थान के रहने वाले थे। ये जन्म-जात कवि कहे जाने के अधिकारी हैं। भट्टश्री और मात सरस्वती की उपाधिया इन्हें प्राप्त थी। कवि होने के अतिरिक्त ये एक प्रतिष्ठित वक्ता थे और मद्रास की अनेक मभाओं में इनके गीता प्रवचनों ने एक अच्छी छाप छोड़ी थी। इनके भाई श्रीनिवास दर्शन शास्त्र के उद्भट विद्वान थे और ब्रह्मविद्या नाम की एक पत्रिका का सम्पादन भी करते थे।

इनका साहित्य अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। आश्चर्यजनक विस्तार में ये विश्व के किसी भी कवि की प्रतिद्वन्दिता में खड़े हो सकते हैं। फिर भी आश्चर्यजनक बात यह है कि इनकी कोई रचना चलते हुये साहित्याभास की कोटि में नहीं आती। इनके साहित्य में काव्यगुणों और प्रतिभावमत्त्व की भी कमी नहीं है। इनके लिखे विशाल गद्य ग्रन्थों में किसी किसी में १८ खण्ड तक हैं। २४ सर्गों के विशाल महाकाव्य है, १२ भागों में नाट्यदीपिका नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा था, इनके साहित्य में आज्ञायिकार्य हैं, सारांश यह कि इनकी रचनाओं की साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में पुष्कलराशि विद्यमान है।

इनकी रचनाओं में ९२ नाटक भी हैं जिनमें १० छप चुके हैं। इनकी रचनाओं की प्रतिलिपिया इनके पुत्र के पास कोलेनगुडा के निकट अलपल्लम में बतलाई जाती हैं। किन्तु उन पुस्तकों की प्राप्ति और मृत्था बहुत कठिन प्रतीत होती है। कृष्णमाचार्य ने अपने हिष्ट्री आफ क्लासिकल सम्मृत लिटरेचर में लिखा है कि उन्होंने तथा मैन्सफ़िष्ट लायनेरी के बयौटर ने उन पाण्डुलिपियों का प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया। उस बयौटर से ही उन्हें उन ग्रन्थों के उनके लेखक के पुत्र के पास होने की सूचना मिली थी। किन्तु उन ग्रन्थों को देखने के प्रयत्न में उन्हें सफलता नहीं मिली। उन ग्रन्थों में कुछ तिरुचिवायल्लु के नागावाम् राजप्पा अप्पर के पास भी हैं। अब उनकी कृतिश नाम रेण रर गई प्रतीत होता है। उनसे पुत्र में उन पुनरा के प्राप्त करने की कोई आशा

नहीं। उनके नाटकों में लगभग १० नाटक मद्रास और चिदम्बारम् से प्रकाशित हुये हैं जिनमें कतिपय हैं— मैथलीयम्, शर्मिष्ठाविजयम्, कलिविधूननम्, जैत्रजैवक्तुक और शूरमापूरम् (परिचय पयास्यान देखिये)

नारायणशास्त्री के नाटक— अमृतमन्थनम्, अयश्चणकम्, अवकीर्णकौशिकम्, कनकहो, कलिविजयम्, कञ्चनमाला, कान्तिमती, काममञ्जरी, कृतकयौवतम्, क्रूरसापलम्, क्रान्तकौन्तेयम्, क्लिष्टकीचकम्, गूढकौशिकम्, चित्तिनिग्रहम्, विजयीपम्, तरङ्गिणी, त्रिपुरविजयम्, त्रिवदम्, दृष्टोदितम्, द्रुतवीरम्, धृतध्वजम्, घृष्टधैर्यम्, निरुद्धानिरुद्धम्, पुष्करायवम्, प्रसन्नपार्श्वम्, प्राज्ञसामन्तम्, प्रौढपरन्तपम्, प्लुष्टखण्डवम्, बद्धवाडवम्, बहुलवालिशम्, बालचन्द्रिका, बलिपाहुणिकम्, विल्हणीयम्, ब्रह्मविद्या, भगनाशोकम्, भट्टपासीयम्, भामाभिषेकम्, भीमरथी, मञ्जुलमन्दिरम्, मणिमेखला, मदालसा, मधुमाधवीयम्, मधुविधूननम्, मनोरमा, मन्दारमाला, मन्दारिकाविलासम्, मरिलाविलासम्, महिषासुरवधम्, माकन्दमकरन्दम्, मारुतिमैरावणम्, मुक्तकेशी, मुक्तमन्दरम्, मुक्तमन्दारम्, मुक्ताप्रवालम्, मुक्ताबली, मुग्धबोधनम्, मुग्धमन्थरम्, मुष्टपाथेयम्, मूढकौशिकम्, मृकण्डुमोदम्, मैथिलीयम्, मैथिलीविजयम्, रक्तसारसम्, रत्नमाला, राजीविनी, लवणलक्ष्मणम्, वरगुणोदयम्, विजययादवम्, विद्ववेधनम्, विद्राणमाधवम्, विश्ववीरव्रतम्, विष्टव्यचापलम्, वीरवैश्वानरम्, व्यत्यस्तवक्त्रम्, शरभविजयम्, शर्मिष्ठाविजयम्, शशिशारदीयम्, शिवदूतम्, शिशुविनिमयम्, शोभावती, श्येनदूतम्, सामन्तसौविदलम्, सीताहरणम्, सुदतीसमितिञ्जयम्, सुभद्राहरणम्, स्तव्यपौगण्डम्, स्वैरचार और हारहैमवतम्।

(२) नारायणशास्त्री— (नाका) राधामङ्गलम् के निवासी वैद्यनाथ के पुत्र थे। ये तजौर के निकट एक कालेज में सस्कृत के प्रोफेसर थे। १९३२ में इनकी मृत्यु हो गई थी। इन्होंने स्वयं कहा है कि इनकी लिखी १०८ पुस्तकें हैं जिनमें २४ नाटक हैं। उनमें तीन का उल्लेख प्राप्त होता है— महेश्वरोल्लास, उदारराघव और मुकुन्दमनोरथ। इनमें केवल अन्तिम सस्कृत कामधेनु में प्रकाशित हुआ है। अन्यो का पता नहीं चलता।

नारायण शास्त्री (काकर) — (नाका) स्वातन्त्र्यमञ्चाहुति नाटक के लेखक। इनका समय २०वीं शताब्दी का मध्य भाग है। ये जयपुर के निवासी थे। इनका लिखा एक अन्य एकाङ्की 'नराणानाभिधोर्ध्व' भी प्रकाश में आया है। इसका प्रकाशन १९५७ में मधुरवाणी पत्रिका में हुआ था।

नारायण स्वामी— (नाका) कैतवकलाचन्द्र भाण के लेखक।

नारायणाध्वरि— (नाका) कम्लाकण्ठीरव (दे) नाटक के लेखक। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था और ये काञ्चीवरम के निकट ब्रह्मदेशम् के निवासी थे।

निगमानन्द चरितम्— (नाका) जीवन्याय तीर्थ लिखित ७ अकों का नाटक। इसका प्रकाशन १९५२ में किया गया। इसका प्रथम अभिनय राममोहन लायबेरी कनकता के

हाल में किया गया था।

नित्यानन्द- स्मृतितीर्थ- (नाका) ये बंगाल के निवासी २० वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके पिता स्मृतिरत्न रामगोपाल और पितामह मधुसूदन थे। ये गवर्नमेण्ट सस्कृत कालेज कलकत्ता के भारती भवन में प्राध्यापक थे। इनके दो बार नाटक प्रकाश में आये हैं- ब्रह्मादविनोदनम् तपोवैभवम् मेघदूतम् और सीतारामाविर्भावम्।

नित्यानन्द भट्टाचार्य- (नाका) ये १९वीं २० वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनकी कालिदासनाटकम् नामक एक नाट्यकृति प्रकाश में आई है।

निपुणक- (नापा) (१) मुद्राराक्षस में चाणक्य का गुप्तचर। इसने चन्दनदास के यहाँ राक्षस की अगूठी पाई थी और चाणक्य को सूचना दी थी कि राक्षस चन्दन दास के यहाँ अपना परिवार छोड़ गया है। इसकी दी हुई अगूठी से ही राक्षस को पकड़ने में चाणक्य सफल हुआ था।

(२) हम्पीरमन्दपदन (दे) में एक गुप्तचर जिसकी सूचनाओं ने वस्तुपाल की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निपुणिका- (नाक) मद्रास निवासी एत बी शास्त्री (दे) लिखित एक हास्यप्रधान नाटिका।

निपुणिका- (नापा) (१) पालविकाक्लिप्ति की एक दासी। वह शास्त्र में निपुण है और विदूषक को दण्ड देने के लिये उस पर टेढ़ा मेढ़ा डंडा इस रूप में फेंक देती है कि वह उसे साप समझने लगता है।

(२) विक्रमोर्वशीय (दे) में एक पात्र। यह एक निपुण दासी है और बातचीत की निपुणता से ही विदूषक से अनेक रहस्य उगलवा लेती है।

निरुद्धानिरुद्धम्- (नाक) (१) नागयण शास्त्री लिखित ५ अकों का नाटक।

निर्दोष दशरथ- (नाक) यह राम विषयक सुप्रसिद्ध नाटकों में एक है। भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में अनेकश इसका उल्लेख किया है जैसे- प्रबन्ध में दोषों का निराकरण कर रस की रक्षा किस प्रकार की जाती है इसके उदाहरण के रूप में बतलाया है कि जैसे निर्दोष दशरथ में माया के बँकेयों और दशरथ राम को वनवास देते हैं- माता पिता नहीं। भोजराज ने इसका दो रूपों में उल्लेख किया है- स्वतन्त्रनाटक के रूप में और राम रामायण के एक भाग के रूप में। ज्ञात नहीं होता कि इस नाटक की वास्तविक स्थिति क्या थी।

निर्भय धीम- (नाक) जैनाचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र लिखित एक अनुपलब्ध व्यायोग। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोस III १०९ में किया गया है।

निवेदितनिवेदितम्- (नाक) पण्डित निवेदिता के चरित्र को लेकर रमा चौधरी द्वारा लिखा नाटक। इसका विभाजन अंकों के स्थान पर दृश्यों में किया गया है। इसमें

कुल मिलाकर वारह दृश्य हैं।

निष्किञ्चन यशोधरम्- (नाक) यतोन्द्र विमल (दे) लिखित ७ अकों का नाटक। इसमें गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा का चित्रण किया गया है। वह दण्डपाणि की पुत्री है जिसे गौतम बुद्ध स्वयंवर में जीतते हैं। १३ वर्ष के दाम्पत्य जीवन के बाद उनके राहुल पुत्र का जन्म होता है। उसी वर्ष गौतम आत्मशान्ति की खोज में घर से निकल पड़ते हैं। यशोधरा स्वयं भी साधना में लीन हो जाती है। सात वर्ष की साधनामय खोज के बाद जब सिद्धार्थ बनकर गौतम आते हैं तब वह गौतम से भिक्षुणी संघ बनाने की प्रार्थना करती है और उनके इस प्रकार के संघ बनाने पर वह भिक्षुणी रूप में उसमें शामिल हो जाती है। शुद्धोदन के राज्यग्रहण के आग्रह को वह यह कहकर दुकरा देती है कि सन्यासी की पत्नी का इस प्रकार राज्य ग्रहण करना उचित नहीं है। ७८ वर्ष की आयु में स्वामी में ही विलीन होने की कामना से वह अलौकिक सत्ता में विराम लेती है।

नीतिदेवी- (नापा) यह मोहराज पराजय (दे) की एक पात्र है। यह सच्चरित्र की पत्नी और कर्तिमञ्जरी की माँ है। नाटक के कथानक में इसका भी यत्किञ्चित् योगदान है।

नीराजिभीम भट्ट- (नाका) ये दक्षिण कर्णाटक के निवासी थे। इनका जन्म २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। इनके लिखे दो नाटक वर्तमान राजनैतिक घटनाओं पर आधारित हैं- काश्मीरसन्धानसमुद्यमम् में काश्मीर समस्या और हैदराबादविजयम् (दे) में हैदराबाद के भारत में विलय की समस्या का चित्रण किया गया है।

(१) **नीलकण्ठ-** (नाका) एक प्रसिद्धि के अनुसार इन्होंने मृच्छकटिक में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये थे। अन्तिम दृश्य में जहा चारुदत्त को मृत्यु दण्ड दिया जाना है मूल नाटक में चारुदत्त की पत्नी पुत्र और विदूषक को उपस्थित नहीं किया गया है। यह एक कमी है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि नाटक के अत्यधिक विस्तार में इससे कुछ कमी आई है। नीलकण्ठ ने इनको प्रस्तुत कर इस कमी को पूर्ती की है। ये सब आत्महत्या करने के लिये प्रस्तुत है जबकि चारुदत्त उन्हें बचाता है।

इस परिवर्तन का उल्लेख स्टेज़ाहा के सस्करण में पृष्ठ ३२३ पर किया गया है और विल्सन ने १९७१ पर इसका उल्लेख किया है। कौथ ने इस परिवर्तन के विषय में अपने इतिहास में लिखा है।

(२) **नीलकण्ठ-** केरल के मम्बूट्टि घराने में इनका जन्म १७वीं शताब्दी में हुआ था। इनका लिखा कमलिनी कलहस शीर्षक नाटक पाया जाता है।

(३) **नीलकण्ठ-** (नाका) भजमहोदय के लेखक। समय १८वीं शताब्दी। कर्णोद्धार (उडोसा) के राजा बलभद्रभय एव भजमहोदय ने इसका सम्मान किया था।

नीलकण्ठ दीक्षित- (नाका) प्रसिद्ध अप्पय दीक्षित के वंश में नारायण और भूमि देवी के पुत्र नीलकण्ठ दीक्षित के नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी शिक्षा गोविन्द दीक्षित के पुत्र वेङ्कटेश्वर मणि के अन्नेवासित्व में हुई थी। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और इन्होंने चम्पू, महाकाव्य और अनेक छोटे काव्य लिखे थे तथा इनके पूर्वज अप्पय दीक्षित लिखित चित्रमोमासा का णण्डितराज ने जो खण्डन किया था उसका उत्तर देने के लिये इन्होंने चित्रमोमासादोषाधिकार की रचना की थी। इनका ७ अर्कों का नलचरित (दे) नाटक भी प्रसिद्ध है जिसमें नलकथा का चित्रण किया गया है। इस नाटक की व्याख्या अच्चा दीक्षित ने लिखी थी जो इन्हीं के चार भाइयों में एक थे। इनका लिखा ८ अर्कों का एक दूसरा नाटक गंगावतरण भी प्रसिद्ध है।

कवि के रूप में नीलकण्ठ दीक्षित का अत्यधिक सम्मान किया गया है, इनकी कल्पनाशक्ति, भावाभिव्यक्ति और प्रसादगुणपूर्ण स्वाभाविक भाषा इनकी कविता की अन्यतम विशेषताएँ हैं। इनका समय १७वीं शताब्दी का मध्य भाग है।

(२) नीलकण्ठ दीक्षित के नाम पर कतिपय अन्य रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। कल्याण सौगन्धिक नाटक (दे) प्राप्त हुआ है जो नीलकण्ठ का बतलाया जाता है। ये नीलकण्ठ अप्पय दीक्षित के वंश में उत्पन्न नीलकण्ठ से भिन्न थे। कल्याणसौगन्धिक के लेखक नीलकण्ठ का लिखा काव्योल्नास नामक एक अलंकार ग्रन्थ भी पाया जाता है।

नीलकण्ठ पन्नसेरी- (नाका) दे पन्नसेरी नीलकण्ठ।

नीलाद्रिचन्द्रोदय- (नाक) इसकी रचना पुषी के राघवाचार्य ने की थी। इसका प्रकारान काञ्चीवाम में हुआ। इसके आमुख में उडीसा के मुकुलदेव का उल्लेख किया गया है।

नीलापरिणय- (नाक) (१) इसके लेखक धर्माज के पुत्र वेङ्कटेश्वर हैं। इसका उल्लेख तर्जूर पुस्तकालय के कैटेलाग खण्ड ८ स ३४१५ में किया गया है। इसका कथानक काल्पनिक है। नायक हैं- राजगोपाल नाम से झारका में रहने वाले कृष्ण और प्रतिनायक है स्थूलाश। नायक के महायज्ञ है महर्षि गोप्रलय और प्रतिनायक का सहायक है मायाधर राक्षस। गरुड की कृपा से गोप्रलय को एक मणि एव एक दर्पण मिलता है जिसे वह सौराष्ट्र नोरा के उद्यान में स्थापित कर देता है। किन्तु मायाधर राक्षस स्थूलाश के लिये उसे ले उड़ता है। बोल राजकुमारी चम्पकमञ्जरी राजगोपाल पर अनुक्त है जिसे स्थूलाश क निय गधम एक अन्न के माध्यम से अदृश्य कर देता है। समझा जाता है कि राक्षस उसे खा गया है। किन्तु अदृश्य रूप में ही वह नायक का आलिङ्गन कर लेती है जिसमें नायक वाग्वानरका मन्त्र पर उगरे मन्त्र पर अन्न मन्त्र कर उसे पुन स्वरूप में लाता है और दोनों का विवाह हो जाता है।

(२) उग्रा नाम का एक अन्य नाटक कैटेलागम कैटेलागोम स १३०२ में भी

उल्लिखित है जिसका रचनाकार द्रोघवत् को बतलाया गया है। विवाह विषयक नाट्यकृतियों में इसका उल्लेख है, किन्तु इसका कुछ अन्य परिचय प्राप्त नहीं होता।

नृत्यगोपालकविरल- (नाका) ये बीसवीं शताब्दी के बंगाली नाटककार हैं। इनका लिखा माघवसाधनम् नाटक बतलाया जाता है। रामावदान और दर्पशासन नाम के इनके दो और नाटक प्राप्त होते हैं।

नृत्याचार्य- (नापा) मालविकाग्निमित्र में नृत्य कला का शिक्षक। इसने मालविका को नृत्यकला की शिक्षा दी जिससे वह प्रतियोगिता में प्रथम स्थान की अधिकारिणी सिद्ध हुई। इसी प्रतियोगिता में मालविका को राजा अग्निमित्र के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया गया। इस नृत्याचार्य ने कई अन्यो को भी नृत्य में प्रवीण बनाया।

(१) **नृसिंह-** (नाका) इनका उल्लेख कैटेलागास कैटेलागोरम् खण्ड ३ स ३८ पर किया गया है। ये नजराज यशोभूषण के लेखक हैं। इनका चन्द्रकला परिणय नाम का एक नाटक भी है। इन्होंने प्रस्तावना में काशीपति की प्रशंसा की है। सम्भवतः ये वही काशीपति हैं जिन्होंने मुकुन्दानन्द भाण की रचना की थी।

(२) **नृसिंह-** (नाका) भरद्वाज गोत्र के वेङ्कटकृष्ण के पुत्र थे तथा इन्होंने १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनुमितिपरिणय (दे) नामक नाटक लिखा था।

(३) **नृसिंह-** (नाका) इनका लिखा जनकजाननन्दन प्रकाश में आया है जो ओरियण्टल लायब्रेरी मैसूर के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग स २७६ पर संकलित किया गया है।

नृसिंहकवि- (नाका) ये मैसूर निवासी १८वीं शताब्दी के नाटककार हैं। इन्होंने अनेक गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की थी। इनके पिता सुधी मणि ने स्वयं इन्हें ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी थी। मैसूर के राजाधिकाती नजराज का इन्हें आश्रय प्राप्त था। ये अधिनव कालिदास के नाम से प्रसिद्ध थे। इनका लिखा चन्द्रकला कल्याण नाटक प्राप्त होता है।

नृसिंहराज- (नाका) ये समुद्रबन्ध यज्वन् के पुत्र थे। इनकी लिखी दो टीकायें प्राप्त होती हैं- सेतुबन्ध की टीका और कर्पूरमञ्जरी की टीका।

(१) **नृसिंहविजय-** (नाक) इस अप्राप्य रचना का उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। यह प्रेङ्गुण नामक उपरूपक का उदाहरण दिया गया है।

नृसिंहविजय- (नाक) अज्ञातनामा कवि लिखित व्यायोग। इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। इसकी प्रति मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय में सुरक्षित है और पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक ग्रन्थ सूची (XXI ८४१०) तथा दृग्येनियल ग्रन्थ सूची (I ८९१) में इसका उल्लेख किया गया है।

नृसिंहसूरि- (नाका) इनका वसन्तभूषण भाण प्रकाश में आया है। ये बगीपुर के निवासी थे और पद्माकुशपुर इनका मूल निवास था जो चिंगलपुर में अवस्थित है।

नृसिंह हारित- (नाका) शृङ्गारस्तवक (दे) भाण के लेखक।

नेमभार्गव- (नापा) ऋग्वेद ७११० सूक्त नेमभार्गव इन्द्र सवाद विषयक है। नेमभार्गव इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं और स्तुति का उत्तर देते हैं। यह भी ऋग्वेद के सवाद सूक्तों का एक नमूना है।

नैधुय व्यङ्कटेश- (नाका) ये मसूर के धर्मराज के पुत्र थे। तबौर नरेश सरफोजी भोंसले ने इनका सम्मान किया था। इन्होंने एक चम्पू की रचना की थी। इनके लिखे नाटक हैं- राघवानन्दम् (दे), नीलापरिणय (दे), सभापतिविलासम् (दे)।

नैयथानन्द- (नाकू) यह क्षेमीश्वर लिखित नाटक है। इसमें राजादल की प्रसिद्ध कथा नाट्यवृत्त के रूप में प्रस्तुत की गई है। कौथ के अनुसार इसको साहित्य जगत में सम्मान प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि इसमें काव्यसौन्दर्य का अभाव है। किन्तु इसके कुछ पद्य अच्छे बन पड़े हैं। पेटर्सन ने चम्पई में संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो खोज की थी उसकी रिपोर्ट स III २१३४० पर इसका उल्लेख किया गया है।

न्यायसभा- (नाकू) यह रगनाथ ताताचार्य (दे) लिखित नाट्यकृति है। इसका रचनाकाल २० वीं शताब्दी का प्रथम भाग है। सम्भवतः इसका प्रकाशन इसके लेखक की अन्य कृतियों के साथ आन्ध्रपरिपत्तिका कलकत्ता से हुआ है।

प

पञ्चकन्या- (नाकू) एक लघु प्रतीक नाटक। बीसवीं शताब्दी के सुरेन्द्रमोहन (दे) ने इसकी रचना की। इसमें शिक्षा, भक्ति, सेवा, प्रीति ये पांच कन्याएँ हैं जो परस्पर प्रगडती रहती हैं और अपनी महत्ता एवं वरिष्ठता प्रतिपादित करती रहती हैं। अन्त में निर्णय हो जाता है कि सभी का अपना महत्व है, कोई किसी से कम नहीं। इसका प्रकाशन मञ्जूषा में हो गया था।

पञ्चरात्र- (नाकू) भास (दे) लिखित ३ अकों का नाटक जिसे समवकार की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है। किन्तु कवि कम्पना का भी आश्रय लिया गया है। पाण्डव १२ वर्ष का कार्यकाल पूरा करके १३वें वर्ष विराट के यहाँ अज्ञातवास कर रहे हैं। दुर्योधन पाण्डवों को कुछ भी देने को तैयार नहीं है। द्रोण को महायुद्ध और महाविनारा की सम्भावना दिखलाई देती है जिससे वे चिन्तित हैं और उस परिस्थिति को टालना चाहते हैं। उनके पराभार पर दुर्योधन यत्न करता है और द्रोण को गुरुदधिष्ठा देना चाहता है। द्रोण गुरुदधिष्ठा में पाण्डवों को अपना राज्य देने को कहते हैं। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार हो जाता है कि पाण्डवों का पता ५ दिन में ही (पाच रात्रियों तक) चल जाना चाहिये। (सम्भवतः इसमें भी दुर्योधन की दुरधि गन्धि है। उमड़े हिमाचल में अज्ञातवास व सम्भवन ५ दिन रोग रह गये हैं और इन

दिनों के अन्दर पता चल जाने पर वे द्यूत की शर्तों के अनुसार पाण्डवों को पुन वनवास के लिये बाध्य कर सकेंगे। अब द्रोण और भीष्म चिन्तित हैं कि किसी प्रकार ५ दिन में पाण्डवों का पता चल जाना चाहिए जिससे गुरुदक्षिणा के रूप में पाण्डवों को आधा राज्य दिलवाने की शर्त पूरी की जा सके क्योंकि उनके मत में ज्योतिष की गणना के अनुसार अज्ञातवास का समय पूरा हो चुका है।

यज्ञ में विराट नहीं आये हैं क्योंकि वे उस समय कीचकवध का शोक मना रहे हैं। कीचकवध से यह अनुमान लगा लिया जाता है कि भीम ने ही कीचक का वध किया होगा। इससे समझ आता है कि पाण्डव लोग वहीं कहीं आस पास ही होंगे। यज्ञ में अनुपस्थित रहने के अपराध का दण्ड देने का बहाना लेकर भीष्म के परामर्श से कौरवगण विराट के पशुओं को खदेड़ लेते हैं। किन्तु युद्ध व्यर्थ जाता है। अभिमन्यु का विवाह विराट की पुत्री से हो जाता है। अन्त में साराथि से समाचार मिलता है कि उस युद्ध में भीम और अर्जुन ने भाग लिया था। फिर द्रौ दुर्योधन वन पर दृढ़ रहता है।

इस नाटक में यज्ञदक्षिणा के रूप में आधा राज्य देने की और ५ रात्रियों की कल्पना सर्वथा नवीन है। नाटक में नृत्य की भी योजना की गई है। गुरु के प्रति श्रद्धा और गुरु की कर्तव्यपरायणता का अच्छा निदर्शन प्राप्त होता है। अनेक प्रमुख पात्रों में प्रत्येक को कुछ न कुछ फल प्राप्ति हो जाती है। भासनाटकचक्र में इसका प्रकाशन हो चुका है। इस नाटक में नायक जैसे एक से अधिक पात्र हैं जो न्यूनाधिक रूप में सभी पुरुषार्थ लाभ करते हैं।

इन्क्यूडी ऊर्म्मरेशो द्वारा इसका सानुवाद प्रकाशन १९२० ई में इन्दौर से हो गया था।

(१) पञ्चवाणविजय- (नाक) यह युवराज (दे) लिखित एक नाट्य रचना है। इसकी प्रति विजयगापट्टम की आर्ष लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती है।

(२) पञ्चवाणविजय- (नाक) रगाचार्य लिखित भाण। कैटेलागस कैटेलागोरम १.३१५ में इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रकाशन मद्रास से हो गया है। इसको पचवाण विलास की भी सहा दो गई है।

(३) पचवाणविजय- (नाक) यह एक भाण है जिसके रचनाकार रगराय (दे) हैं। इसका प्रकाशन मद्रास और कलकत्ता से हो चुका है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि कैटेलाग में इसका स II २०६८ पर उल्लेख किया गया है।

पञ्चवाण विलास- (नाक) यह एक भाण है जिसके कर्ता का पता नहीं। इसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम स I ३१५ पर किया गया है।

पचानन- (नाक) अमरमङ्गलम् एव कलकमोचन (दे) नाटकों के लेखक। इनका जन्म मटपुरा (२४ परगना जिला) में गौतम गोत्र में हुआ था। इनके पिता नन्दलाल विद्यारथ

थे। इन्हें तर्क वागीश और महामहोपाध्याय की उपाधिया प्राप्त थीं। अन्त में ये बनारस में रहने लगे थे। इन्हें प्रूफीडिंग और सम्पादन का अच्छा अनुभव था क्योंकि ये बगवासी प्रेस में कार्यरत रहे थे। शिधा और सस्कृत साहित्य प्रचार की दिशा में भी इनका कार्य स्तुत्य रहा था। कुछ दिनों राजनीति के बन्दी भी रहे थे। उक्त नाटक के अतिरिक्त इन्होंने पार्थाश्वमेध एव सर्वमंगलोदय नामक एक-दो काव्य भी लिखे थे इन्होंने कई दार्शनिक कृतियों की व्याख्या भी लिखी थी। इनका समय बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनके प्रसिद्ध पूर्वजों में कान्यकुब्ज अल्लभट्ट का नाम लिया जाता है।

पञ्चायुधप्रपञ्च- (नाक) त्रिविक्रम लिखित भाण। कैटेलागस कैटेलागोरम। ३१७ और ॥ २६१ में उल्लिखित। इसकी रचना शक सवत् १७२७ (सन् १७९५) में की गई थी।

पञ्चालिकारक्षणम्- (नाक) पेरीकाशोनाथ शास्त्री लिखित नाटक।

पण्डितचरितप्रहसनम्- (नाक) मधुसूदन बाब्यरत्न लिखित प्रहसन।

पद्मक- (नापा) वत्सराज (दे) लिखित समुद्रमन्थन (दे) का एक पात्र।

(१) **पद्मनाभ-** (नाका) चन्द्रिका जनमेजय (दे) नामक पौराणिक कथानक पर आधारित नाटक के लेखक। इनका जीवन वृत्त सर्वथा अज्ञात है। जार्जपञ्चम के जीवन के विषय में जाजदेवचरित काव्य एव पवनदूत नामक काव्य लिखने वाले जो भी पद्मनाभन से सम्भवत ये भिन्न थे।

(२) **पद्मनाभ-** (नाका) कोटिपल्ली के तेलुगु ब्राह्मण भरद्वाज गोत्रीय लक्ष्मण दीक्षित और वेङ्कटराम्बा दीक्षित के पुत्र थे। इनकी दो नाटयकृतिया प्राप्त होती हैं- त्रिपुरविजय व्यायोग (दे) और लीलादर्पण भाण (दे) उपनाम मदनलीलादर्पण। इनका समय १९वीं शताब्दी है।

पद्मनाभाचार्य- (नाका) ध्रुवतापस (दे) एव गोवर्धन विलास (दे) के लेखक। इनका समय १९वीं और २०वीं शताब्दी है। ये कोयम्बटूर में एडवोकेट थे। वहाँ से इनके नाटक प्रकाशित हुये थे।

पद्मप्राभूतक- (नाक) शूद्रक (दे) लिखित भाण जिसका सक्लन चतुर्भाणी में किया गया है। यह नाटक काव्य कला का एक अच्छा नमूना है और सस्कृत की सर्वोत्तम रचनाओं में इसकी गणना की जा सकती है। सखी सुरतसमय में मसले हुये पद्म को प्रथित करने का उपदेश देती है। इसी आधार पर इस भाण का नामकरण हुआ है।

पद्मसुन्दर- (नाका) १६वीं शताब्दी के नाटककार। अक्बर बादशाह ने इन्हें सम्मानित किया था। ये उनके दरबार के पण्डित थे। इनका कार्ष्ण्यल मुजप्फरनगर का परभाव (वाघावन) था, किन्तु इन्हें जोधपुर के महाराजा मालदेव से सम्मान प्राप्त हुआ था। इनकी रचनाओं में बाल्य, महाबाल्य, बौध्म्य, ज्योतिष के अतिरिक्त ज्ञानचन्द्रोदय

(दे) नामक नाटक भी था।

(१) पद्मावती- (नापा) भास (दे) लिखित स्वप्नवासवदत्तम् (दे) की एक प्रमुख पात्र। यह मगध की राजकुमारी है। इसके पास वासवदत्ता को घोरोहर के रूप में रखवा जाता है और यह अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह करती है। यह शीलवती सुन्दरी है। तपस्वियों को जो भी अपीष्ट हो वह सब प्रदान करने की घोषणा करती है और जब ब्राह्मण अपनी बहन को घोरोहर के रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना करता है तब उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती है। वह अपनी सौत के प्रति भी उदार है और मृत सौत के श्रुति यति की वियोग व्याधा देखकर वह उसकी सच्चाई की प्रशंसा ही करती है तथा समय आने पर उस सौत को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है।

(२) पद्मावती- (नापा) अनङ्गहर्षमात्रराज (दे) के नाटक तापसवत्सराज की प्रमुख पात्र। यह एक प्रेमिका है, सौन्दर्य की लोभिनी है और उदयन (दे) के चित्र को देखकर उसे हृदय दे देती है। यह प्रेम के लिये अपना सर्वस्व त्याग देती है।

पद्मावती- (नाकृ) अज्ञातनामा कवि की लिखी एक नाटिका। इसका उल्लेख सिंगभूपाल के रसार्णवसुधाकर में किया गया है।

पद्मावती- (नास्य) यह एक प्रादेशिक नगर है जहा मालतीमाधव की घटना घटित हुई थी।

पद्मावती परिणय- (नाकृ) अज्ञातनामा कवि लिखित प्रकरण जिसका उल्लेख शारदाहनय के भाव प्रकाशन में किया गया है।

पद्मिनीपरिणय- (नाकृ) सुन्दर राजाचार्य (दे) लिखित एक नाटयकृति।

पयोधिमन्थन- (नाकृ) एक प्रहसन। सिंगभूपाल के रसार्णव सुधाकर में इसका उल्लेख किया गया है।

परमानन्दसेन- (नाका) दे कवि कर्णपूर, ये बगवासी थे।

परमानन्ददादम्भट- (नाका) लिंगादुर्गभेदन (दे) नाटक के लेखक।

परमार्थतत्त्व- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे) प्रतीक नाटक का एक पात्र। इनके वंशज ही इस प्रतीक नाटक के प्रतिनिधि कथानक पात्र हैं जिनका परस्पर सर्वांग कथानक का मूलाधार है।

(१) परशुराम- (नापा) भास (दे) कृत कर्णभार (दे) में कर्ण शल्य को अस्त्र प्राप्ति की कथा सुनाता है कि किस प्रकार परशुराम से छल पूर्वक उन्होंने अस्त्र विद्या प्राप्त की थी और छल के प्रकट होने पर परशुराम ने उन्हें शाप दे दिया था कि समय आने पर वे अस्त्र उसका साथ नहीं दे सकेंगे। समय आने पर परशुराम का शाप सत्य सिद्ध हुआ।

(२) परशुराम- (नापा) भवभूति (दे) रचित महावीरचरित (दे) में परशुराम एक उद्धत वीर ब्राह्मण है। वे रावण के मन्त्री माल्यवान के वरकावे पर धनुर्भंग का बदला

लेने के लिये जनकपुर आते हैं। वे राम को दूध के लिये सलकारते हैं। वशिष्ठ, शतानन्द विश्वामित्र जनक इत्यादि इन्हें शान्त करने की चेष्टा करते हैं; पर वे नहीं मानते। राम के साथ उनका सघर्ष होता है। और वे पराजित होकर राम की विजय स्वीकार कर लेते हैं। तथा राम की बन्दना करते हैं।

(३) परशुराम- (नापा) अनर्घराघव (दे) में धनुर्भाग एव राम विवाह के बाद परशुराम जनकपुरी आते हैं। राम के साथ पहले उनका बाग्युद्ध चलता है। राम में नम्रता है। किन्तु राम के हितैषी उस विरोध को बढ़ाने के लिये पर्दे के पीछे से सहयोग देते हैं। राम के मत में परशुराम की क्षत्रिय विनाश की यशोगाथा का युग समाप्त हो गया है। अन्त में दोनों का सङ्घर्ष होता है और उसकी आवाज सुनाई पड़ती है। इसके बाद दोनों योद्धाओं का मधुर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

(४) परशुराम- (नापा) राजशेखर के बालरामायण में पहले रावण परशुराम से सीता प्राप्ति में सहायता प्राप्त करने की प्रार्थना करता है किन्तु उसे निराश होना पड़ता है। राम विवाह के बाद परशुराम स्वयं मिथिला आते हैं। वहाँ राम से उनका द्वन्द्व होता है और अन्त में राम को सफलता मिलती है।

(५) परशुराम- (नापा) प्रसन्नराघव में परशुराम द्वारा विपरीत सन्देश भेजे जाने पर भी विश्वामित्र की आज्ञा से राम शिव धनुष चढ़ा कर तोड़ देते हैं। तब राम का सीता से विवाह हो जाता है। उसके तत्काल बाद परशुराम मिथिला में आ जाते हैं। राम और लक्ष्मण से उनका बहुत बहनों का आदान प्रदान होता है। जनक, विश्वामित्र इत्यादि चण्डोद्बुद्ध इस सघर्ष को रोकना चाहते हैं। परशुराम द्वारा विश्वामित्र का अपमान राम को सह्य नहीं होता और उनका युद्ध होता है। राम विजयी होते हैं। किन्तु परशुराम के घरणों पर फिर का क्षमा एव आशीर्वाद मांगते हैं।

(६) परशुराम- (नापा) महानाटक में परशुराम का चरित्र विवाह से परसे आता है। राम लक्ष्मण और परशुराम का संवाद विशेष कथोपकथन और सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत किया गया है। अन्य नाटकों की भांति इसमें भी परशुराम धीरोद्धत नायक है जो आत्मश्लाघी, प्रचण्ड, घबल और अहंकारी है।

परशुराम नारायण पाटणकर- (नाका) इनका समय १९वीं शताब्दी का अन्त एव २०वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इन्होंने भीष्म द्वारा शरशय्या ग्रहण करने के बाद से लेकर जयद्रथ वध तक के महाभारत के कथाभाग को लेकर 'वीरधर्म दर्पणम्' (दे) शीर्षक नाटक की रचना की थी जो १९०७ में बनारस से प्रकाशित हुई थी।

परशुरामविजयम्- (नाक) यह उड़ीसा के कपिलेश्वर महाराज की रचना बतलाई जाती है। इसका रचनाकाल १४वीं शताब्दी है।

पराशरभट्ट- (नाका) समी मयका के लेखक (दे समी मयका ६)।

परिणाम- (नाकू) घूडामणि भट्टाचार्य लिखित ७ अकों का नाटक । इसमें यूरोपीय सभ्यता के अन्धानुकरण से उत्पन्न दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है । इसका रचनाकाल २० वीं शताब्दी है । इसका प्रकाशन काठमाडू १९५६ में कर दिया गया था ।

परिवर्तनम्- (नाकू) कपिलदेव द्विवेदी लिखित नाटक । इसमें एक कन्या के पिता की दमनीय स्थिति बतलाई गई है । शङ्कर कन्या के विवाह के लिये अपना मकान बेच देता है और कुयें तथा सीढ़ी की आय पर निर्वाह करने के लिये पत्नी को निर्देश देकर स्वयं बम्बई चला जाता है । वहाँ से लौटने पर देखता है कि उसके कुयें पर भी अधिकार का लिया गया है । मामला न्यायालय में जाता है जहाँ न्यायाधीश सेठ के पक्ष में फैसला देना चाहता है किन्तु आकाशवाणी के निर्देश पर मामला पचायत को भेजा जाता है जहाँ शकर को न्याय मिल जाता है । इसकी रचना १९५० में की गई थी और प्रकाशन लखनऊ में १९६६ में किया गया ।

पर्वणीकर सीताराम- (नाका) इनका वास्तविक नाम सीताराम है । निवास स्थान (नासिक के निकट पर्वणी) के आधार पर इन्हें पर्वणीकर सीताराम कहा जाता है । इनके पूर्वज जयपुर में रहते थे । ज्ञात हुआ है कि इनकी विपुल साहित्य राशि जयपुर में मौजूद है । इनके साहित्य में नलविलास (दे) नाम का एक नाटक भी सम्मिलित है ।

पर्वतक- (नापा) मुद्राराक्षस (दे) में नन्दवरा के उन्नीलम् के लिये चाणक्य ने कुलूत, मलय, काश्मीर इत्यादि के जिन राजाओं की सहायता ली थी उनमें प्रमुख पर्वतक या पर्वतेश था । उसे आधा राज्य देने का वादा कर सहायता के लिये लाया गया था । उसका प्रवेश नाटक में नहीं होता किन्तु नाटक की पृष्ठभूमि में वह विद्यमान है । अपना स्वार्थ साधन कर जब चाणक्य बिना वादा पूरा किये उससे छुटकारा पाना चाहता है तब भी वह अपना अधिकार प्राप्त करने के लिये वही डटा रहता है और अपना स्वार्थ साधन करने के लिये राक्षस से गुप्त समझौता कर लेता है । इधर चाणक्य ने राक्षस के सभी गुप्तचरों को अपने अधिकार में ले रखा है । इसलिये जब राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिये विषकन्या का प्रयोग करता है तब चाणक्य को वास्तविकता मालूम पड़ जाती है और वह विषकन्या के प्रयोग से पर्वतक को मार डालता है । लोग यही समझते हैं कि पर्वतक चाणक्य के साथ था इसलिये राक्षस ने पर्वतक को मार डाला । किन्तु चाणक्य इस रहस्य को अन्य राजाओं पर प्रकट कर देता है कि चाणक्य ने ही पर्वतक को मारा है । अतः वे सब राजा जिनमें पर्वतक का पुत्र मलयकेतु भी है चाणक्य को छोड़कर भाग जाते हैं और इस प्रकार चाणक्य राज्य के सभी दावेदारों से छुटकारा पा लेता है ।

पर्वतक स्वयं पात्र नहीं है किन्तु पृष्ठभूमि में रहकर समस्त नीति और कार्यों का प्रेरक है । उसकी पृष्ठ भूमि के बिना नाटक की वस्तु पूरी नहीं हो सकती थी ।

पर्वतेश- (नापा) दे पर्वतक ।

पलाण्डुमण्डन- (नाकू) एक प्रहसन। कैटेलागस कैटेलागोरम। ३३० में इसका उल्लेख किया गया है। यह हरिजीवन मिश्र (द.) की रचना है। इसमें लिङ्गोजी भट्ट की दूसरी पत्नी चिंचा के गर्भाधान सस्कार में आये हुये पलाण्डुमण्डन और लसुनपन्न इत्यादि का कथानक था। यह रचना १७वीं शताब्दी की है।

पत्नीकमल- (नाकू) डा रमाचौधरी लिखित ६ दृश्यों का नाटक। इसमें परदे का बदलना पूर्वदृश्य इत्यादि नवीन शैली का प्रयोग किया गया है। नायिका कमलकलिका रूपकुमार पर आसक्त है। किन्तु नायिका का पिता मार्तण्ड से विवाह करना चाहता है। जब मार्तण्ड को कमलकलिका और रूपकुमार के मिलने जुलने का पता चलता है तब वह बदला लेने के लिये नायिका के पिता पर भूमिकर न देने का आरोप लगाता है। तब नायिका का पिता रत्नमाला बेचने के लिये मार्तण्ड के पिता प्रभञ्जन के पास जाता है जहां यह रहस्य खुलता है कि कमल कलिका वास्तव में मार्तण्ड की खोई हुई बहन है। अन्त में नायिका का रूपकुमार से विवाह हो जाता है।

रचना २०वीं शताब्दी की है और प्राच्यवाणी ने इसका प्रथम अभिनय किया था।

पशुमेढू- (नापा) मुखरि (दे.) के अनर्घराषव (दे.) पशुमेढू और शुनशेष ये दो विश्वामित्र के शिष्य हैं आ रामायण के विभिन्न पात्रों के विषय में बातचीत करते हैं उस सवाद से वाली रावण जामवन्त ताडका इन पात्रों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

पाण्डुधर्मखण्डनम्- (नाकू) दामोदर कृत तीन अकों का रूपक। यह पूर्ण रूप से नाटक नहीं कहा जा सकता किन्तु इसकी रचना नाटक सदृश है। इसमें सामान्यतः नाटकतत्वों का अभाव है सभी सवाद पद्यात्मक हैं इसमें जैन बौद्ध ब्रह्मण्व सम्प्रदाय वल्लभमार्ग श्रुति इत्यादि के स्वकीय प्रशंसा पाक ब्यक्त है। अन्त में कलि का दूत आता है। पाण्डु की गर्हणा के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। इसकी रचना १६३६ में हुई थी। ऋषि आश्रम सारहपुर अरमदाबाद से इसका प्रकाशन १९३१ में हुआ था।

पाञ्चालीपरिणय- (नाकू) यह बालमूरि (अदकि) (दे.) लिखित एक नाट्य कृति है। मद्रास के प्राच्य पाण्डुलिपि पुस्तकालय में ट्रायेनिवेल कैटलाग खण्ड ३ स ३१२३ पर इसका उल्लेख किया गया है। लेखक का कहना है कि उसने यह रचना राजा राजशेखर के निर्देश पर की थी।

पाञ्चाली रक्षणम्- (नाकू) इसकी रचना परी काशीनाथ शास्त्री (द.) ने की थी। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी का अन्त अथवा २०वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इसकी रचना विजयनगर के आरदगजपति के आश्रय में की गई थी।

पाण्डव- (नापा) महाभारत में पाण्डुपुत्रों की सामान्य अभिधा। इनका सामान्य रूप में कई नाटकों में उपादान किया गया है। उदाहरण के लिये-

(१) वणा गतर- में वरकों और पाण्डवों की दूत ब्रीडा में पाण्डवों की सामान्य

पत्नी द्रौपदी का केशाम्बरकर्षणद्वारा घोर अपमान किया गया जिसका बदला लेने के लिये द्रौपदी ने दुःशासन के रक्त से वेणी गूथने और भीमसेन ने दुःशासन को छाती का खून पीने तथा दुर्योधन की जघाघे तोड़ने की प्रतिज्ञा की। इन प्रतिज्ञाओं की पूर्ति दिखलाने के लिये ही वेणी सहार की रचना की गई है। कृष्ण ने यहा विनाश से बचने के लिये सन्धि बनाने की भासक चेष्टा की। किन्तु उन्हें समाधान नहीं मिला। पाण्डवों की और विशेष रूप से भीमसेन की वीरता का इसमें यथेष्ट चित्रण किया गया है।

(२) सांगथिका हाण- (दे) में द्रौपदी के अपहर पर उसके वाञ्छित पुष्प पारिजात को प्राप्त करने पाण्डव भीमसेन उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं। मार्ग में हनुमान से युद्ध प्रारम्भ हो होने वाला है कि कुबेर आकर दोनों को दोनों को वास्तविकता बतलाकर युद्ध रोक देते हैं और पारिजात पुष्पों का एक गुच्छ देकर भीम की आवश्यकता पूर्ण करने हैं।

पाण्डव विजय- (नाकू) जयराम महादेव लिखित महाभारत पर आधारित नाटक। इसको सभापर्व नाटक भी कहा जाता है। इसका उल्लेख १९०४ के आस पास मिलता है। (दे जय रणमल्लदेव)

पाण्डवानन्द- (नाकू) इस नाटक का उल्लेख नाट्य दर्पण, अभिनवभारती और धनिक की वृत्ति में किया गया है। इसका एक उद्धरण भी प्राप्त होता है जो सम्भवतः प्रस्तावना का है। इससे ज्ञात होता है कि इस नाटक में पाण्डवों के अज्ञातवास का कथानक आया है। यह पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है।

पाण्डवाभ्युदय- (नाकू) व्यास श्रीरामदेव लिखित नाटक। इसे छाया नाटक (दे) के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। इसकी रचना रणमल्लदेव के शासनकाल में हुई थी। इसमें द्रौपदी के जन्म और उनके पात्रों पाण्डवों के साथ विवाह का चित्रण किया गया है। इस विषय में कुछ कटा नहीं जा सकता कि क्या यह वास्तव में छाया नाटक था।

पाण्डित्यताण्डवितम्- (नाकू) यह बटुकनाथ शर्मा का लिखा प्रहसन है। हलधर का शिष्य दण्डधर सभी प्रतिद्वन्दियों को पराजित करता है। प्रतिद्वन्दियों के नामों में हास्यजनकता है- नामों के नमूने हैं- कैयटकैरव, साहित्यसैरिभ, वृन्दन्दत, तद्वितदत प्रचण्डस्फोट इत्यादि। इसका प्रकाशन काशी से पहले वल्लरी में और बाद में अगस्त १८७२ में सूर्योदय के अंक में किया गया।

पादताडितक- (नाकू) यह श्यामिलक (दे) लिखित एवं अनुभाषी (दे) में सङ्कलित एक भाग है। दृष्य सौसाष्ट की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है और इसमें अभिजात वर्ग की हसी उड़ाई गई है। नायक एक रुढ़िवादी ब्राह्मण विष्णुनाग है जो राजकीय अभिलेखागार में रजिष्टर के रूप में नियुक्त है। उसके सर में वेश्या पाद प्रहार कर देनी है। यह एक बहुत बड़ा पाप है और वह अपवित्रता का प्रायश्चित्त करना चाहता है।

इसके लिये वह स्त्रीलोलुप कामुकसमान से पाद प्रहार कराता है और निश्चय किया जाता है वही वेश्या शरान पीकर मतवाले नेत्रों को इधर उधर घुमाती हुई तगड़ी से शोभित नितम्ब पर हाथ जमाये हुये, नूपुरों से सजे महावर से शोभित अपने पैरों से उन कामुकों के सों को कृतार्थ करे और इस प्रकार उसकी कृपा को यह लम्बाई आखों से देखता रहे तभी इसका प्रायश्चित्त होगा।

इस भाण का उल्लेख अभिनव गुप्त, क्षेमेन्द्र, बल्लभदेव प्रभृति अनेक शास्त्रकारों ने किया है।

पाददण्ड- (नाकृ०) डा बनमाला लिखित नाटक।

धातुका विजयम्- (नाकृ०) यह प सुदर्शनपति का लिखा उडोसा के इतिहास पर आधारित नाटक है।

पापाचार- (नापा०) धूर्तवर्तन प्रहसन (दे०) का एक पात्र, यह राजा है और स्वयं पाप कर्मों में रुचि लेता है तथा पापियों को राह देता है। जब मुरेश्वर की शिष्यायत उसके पास आती है तब वह उसके तर्कों से स्वच्छन्द विहार की आज्ञा देता है।

पारदारिकत्व- (नापा०) प्रताप रूपक मोहराजपराजय (दे०) का एक पात्र। पूर्ववर्ती राजा के राज्य में जिन सात पात्रों के रहने की अनुज्ञा प्राप्त थी उनमें पारदारिकत्व भी एक था। वे सब अपना अधिकार जमाये हुये थे और राजकर देते थे। जब शान्तिदेवी का विवाह कुमार पाल से हुआ तब शान्ति देवी ने उन स्वच्छन्द अधिकारियों को निर्वासित करने की शर्त लगा दी थी जिसके अनुसार धूतादि के साथ पारदारिकत्व को भी निर्वासित कर दिया गया था।

पारिजात नाटक- (नाकृ०) कुमार ताताचार्य लिखित नाटक। पारिजात राज के प्रसिद्ध बचानक को लेकर इसकी रचना की गई है। (दे०) (१ पारिजात राज) इसमें ५ अंक हैं।

(ट्रायेनिवल कैटेलाग आफ सन्स्कृत मैन्सुक्रिप्टस इन ओरिएण्टल लायब्रेरी मद्रास II २३७४ और सोर्सेज आफ विजयानगरम् हिंदी मद्रास २५४)

पारिजातमञ्जरी- (नाकृ०) मदनमालसरस्वती लिखित ४ अंकों की नाटिका। यह अर्जुनवर्मा की प्रशस्ति के रूप में लिखी गई थी। इसको दो शिलापट्टों पर खोदा गया था और प्रत्येक शिलापट्ट पर दो दो अंक सुरक्षित किये गये थे। दूसरा शिलापट्ट वहीं ग़ुम हो गया और अब केवल दो अंक ही प्राप्त होते हैं। इस पुस्तक की रचना १२१३ में हुई थी। अर्जुन वर्मा के शिलालेख धारा नगरी में १२११ से १२१५ तक पाये जाते हैं जिनमें यह नाटक भी है। इसका सम्पादन और प्रकाशन २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पारिजातमञ्जरी या विजयश्री नाम से किया गया।

यदि मदनमाल सरस्वती परमार वंश के राजा अर्जुनवर्मा के गुरु थे। इस नाटिका

में कवि ने पारिजातमञ्जरी के साथ अर्जुन वर्मा की प्रणय लीला का चित्रण किया है। पारिजात मञ्जरी गुजरात के चालुक्यराज की कन्या थी। अर्जुनवर्मा ने चालुक्यराज भीमदेव द्वितीय पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। उस युद्ध में पारिजातमञ्जरी मृत्यु को प्राप्त हुई। इसके बाद उसका पुनर्जन्म पारिजातमञ्जरी के गुच्छे के रूप में हुआ। एक दिन अर्जुनवर्मा की अती पर पारिजातमञ्जरी का एक गुच्छा गिरता है जो तत्काल एक युवती के रूप में बदल जाता है। राजा उस युवती को रानी सर्वकला से छिपाने के लिये बहुत समय तक उसे कचुकी के सरक्षण में रखता है। बाद में रत्नावली (दे) नाटिका इत्यादि की प्रचलित परम्परा के अनुसार राजा का उससे विवाह हो जाता है।

विचारकों का कहना है यह नाटिका सीमातीत रूप में सुन्दर बन पड़ी है। इसमें ऐतिहासिकता के साथ कल्पना का मनोरम सम्मिश्रण हुआ है। यद्यपि यह प्रशस्ति के रूप में लिखी गई थी तथापि इसमें रस का परिपाक पर्याप्त मात्र में हुआ है।

इसका प्रकाशन ई. हुत्त्ज द्वारा लीपजग में १९०६ में किया गया था।

पारिजातमञ्जरी- (नापा) यह पारिजात मञ्जरी या विजयश्री नाटिका की नायिका है। सौन्दर्य के प्रभाव से नायक अर्जुनवर्मा को आकर्षित करती है। किन्तु युद्ध के अवसर पर उसकी मृत्यु हो जाती है। उसके सौन्दर्य का यह सबसे बड़ा प्रमाण है कि यह दूसरे जन्म में पारिजातमञ्जरी के रूप में बदल जाती है। यद्यपि कुछ समय तक अपने प्रेमी से मुक्त प्रेमलीला चलानी पड़ती है किन्तु अन्त में उसकी तपस्या सफल होती है और उसका प्रेमी उसे पति रूप में मिल जाता है।

(१) पारिजातहरण- (नाट्यकृति) उमापतिधर (दे) का लिखा यह एक छोटा सा नाटक है। नारद कृष्ण को पारिजात का एक पुष्प भेंट करते हैं, कृष्ण वह पुष्प शक्तिमणी को भेंट कर देते हैं। इससे सत्यभामा के मन में ईर्ष्या भाव जागृत होता है। कृष्ण इन्द्र से कुछ और पुष्प मागते हैं। किन्तु इन्द्र इन्कार कर देते हैं। अर्जुन के साथ कृष्ण इन्द्र पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर देते हैं और वहा से पुष्प ले आते हैं तथा सत्यभामा को प्रदान कर देते हैं। इस नाटक में संगीत के कतिपय खण्ड भी शामिल कर दिये गये हैं।

इसका प्रकाशन अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रियर्सन ने कराया। उनके अनुसार इस नाटक की रचना हिन्दुपति हरिहरिदेव के राज्यकाल में हुई।

(२) पारिजातहरण- (नाट्) यह गोपालदास (दे) का लिखा नाटक है। इसका सकलन कैटलागस कैटलागोम स १३३५ पर किया गया है।

(३) पारिजातहरण- (नाट्) रमानाथ शिरोमणि लिखित ७ अंकों का नाटक। पारिजात हरण की शक्तिधित कथा (दे १ पारिजात हरण) को लेकर इसकी रचना की गई है। सम्बे वर्णन, संगीत नृत्य का अधिक प्रयोग, चर्चरी का समावेश परिहासादिगुण इस

नाटक की विशेषतायें हैं। १९०४ में इसका प्रकाशन हो गया था।

(४) पारिजातहरण- (नाट्) कुमार ताताचार्य लिखित ५ अकों का नाटक। पारिजातहरण की प्रसिद्ध कथा (दे १ पारिजात हरण) को लेकर इसकी रचना की गई है। इसमें सत्यभामा के लिये पारिजात हरण के प्रसिद्ध कथानक के साथ नरकासुर वध का भी समावेश किया गया है।

इसकी रचना १७वीं शताब्दी में सम्पन्न हुई थी।

पार्यपराक्रम- (नाट्) ब्रह्मादन देव (दे) लिखित व्यायोग। इसमें अर्जुन द्वारा विराटपुर में गहनों की रक्षा का चित्रण किया गया है। यह कथा महाभारत के विराट पर्व से ली गई है। पाण्डव लोग १ वर्ष का अज्ञातवास विराटपुर में छद्मरूप और छद्मनामों से व्यतीत कर रहे थे। द्यूत की शर्त के अनुसार कौरवों द्वारा उनके जान लिये जाने पर उन्हें दुवारा १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास करना पड़ता। कौरव धृष्ट से कौरवों को शक हो गया और पाण्डवों को बाहर निकालने के लिये उन्होंने विराट की भाँटें छोड़ दीं। उस समय अज्ञे अर्जुन ने भीष्म द्रोण कर्ण इत्यादि सभी महारथियों पर विजय प्राप्त कर ली।

उस समय तब अज्ञातवास का समय समाप्त हो चुका था अतः शर्त लागू नहीं हुई। उस समय सभी महारथियों पर अकेल ही विजय प्राप्त कर लेना आश्चर्यजनक था। इसीलिये नाटक का नामकरण पार्यपराक्रम किया गया है।

इसका प्रथम अभिनय परमाविरा के विद्यादेव अवलेश्वर के आवुपर्वत पा मानाभिषेक उत्सव के अवसर पर किया गया था। गायक बाड ओरियण्टल सीरीज (न ४) स सीडी दलाल की भूमिका के साथ इसका प्रकाशन किया गया है।

पार्यपाययम्- (नाट्) यह बाराहाज प्रभुनारायण सिंह का लिखा तीन अकों का नाटक है। इसमें सुभद्रा और अर्जुन की प्रणय सीला को नाट्य विषय बताया गया है। पात्रों के नामकरण भावना के अनुसार किये गये हैं। शूद्रार रस प्रधान है किन्तु स्थान स्थान पर शिष्टहास्य के भी दर्शन होते हैं। ठकिया मराकत हैं। गीतों का समावेश अधिक है। कई कई गात प्राकृत भाषा में भी लिखे गये हैं। इसका प्रकाशन राम नगर स १९२२ में किया गया था।

पार्यविजय- (नाट्) यह विद्याचन (दे) लिखित नाटक है जो अत्र प्राप्त नहीं राना। किन्तु उद्धरणों से इस कृति की विषयवस्तु पर यत्किंचिद् प्रकाश पड़ता है। भाज के शूद्रात्मकाश और रामचन्द्रगुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में उद्धरणों से इस कथानक की स्फुरण कुछ कुछ व्यक्त होता है। इसमें महाभारत का कथा का उल्लेख किया गया है। उद्धरणों से यह भी पता चलता है कि नाटक के कथानक का विस्तार बड़ा तब है। कथा युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के बाद का कथानक का उपसंहार किया गया है या कथा

का कोई एक भाग लिया गया है ? नाट्यदर्पण के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इस नाटक के प्रथम अंक में द्यूतक्रीडा का चित्रण है जिसमें पाण्डव पराजित होते हैं और दुरशासन द्रौपदी को अपमानित करता है। शर्त के अनुसार पाण्डव वनवास को चले जाते हैं। दूसरा अंक पाण्डवों के वनवास के विषय में है। द्यूतक्रीडा की घटना को कुछ आधिक समय व्यतीत हो चुका है। पाण्डव लोग द्रौपदी के साथ शान्तिपूर्वक रह रहे हैं तब एक दिन दुर्योधन अपने वर्ग और अन्तपुर के साथ पाण्डवों का मञ्जाक ठडाने वन को जाता है जहां चित्रसेन गन्धर्व केवल दुर्योधन को ही पराजित और अपमानित नहीं करता किन्तु दुर्योधन के घाने की स्त्रियों को भी पराभूत और अपमानित काना चाहता है। पाण्डवों को पहले तो दुर्योधन के पराजय और अपमान की सूचना मिलती है। युधिष्ठिर भीमसेन को दुर्योधन की रक्षा के लिये आदेश देते हैं। किन्तु भीमसेन इससे सहमत नहीं है। यह विचार चल ही रहा था कि ध्वराया हुआ कञ्जुकी आकर सूचना देता है कि गन्धर्वों ने दुर्योधन की पत्नियों पर अतीचार करने की चेष्टा की है। इस समाचार से पाण्डव उत्तेजित हो जाते हैं और विशेष रूप से भीमसेन दुर्योधन की रक्षा के लिये चल पड़ता है। अर्जुन के पराक्रम से गन्धर्वों पर विजय प्राप्त हो जाती है। दुर्योधन लज्जित है, उस समय अर्जुन के वचन मार्मिक हैं- 'मैं आपको बड़े भाई युधिष्ठिर जैसा ही मानता हूँ। घरेलू मामलों में प्रेम या विरोध मूलक व्यवहार की अच्छाई बुराई आप लोग जानें, किन्तु जहां तक बाहर वालों से निपटने का सम्बन्ध है हम ५ नहीं १०५ हैं।' अर्जुन के इस कथन पर दुर्योधन बहुत लज्जित हो जाता है। अर्जुन के शब्द हैं-

स्वैरैः कुरुपाण्डवान्तरकृते यस्मिन् विशेषोस्ति न ।

तस्मिंस्तत्किमसाधु कथमित्यार्या विजानन्ति हि ॥

यत्रैकाभिजानान्वये त्वभिभव क्षत्रस्य तस्मिन् पुन ।

भ्रान्ण पुततोभियोगसमये पञ्चोदरं न शतम् ॥

शुद्धाप्रकाश में साम नामक सन्ध्यान्तर का उदाहरण पार्यविजय में ही दिया गया है जिसका प्रकरण है दुर्योधन के दरबार में कृष्ण द्वारा पाण्डवों का दूत्यकर्म। इसका आशय यही है कि युधिष्ठिर के राज्यरोहणपर्यन्त महाभारत की कथा इस नाटक में आ गई होगी। किन्तु इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

पार्यसारथि-(नाका) रोमिग्वर्ल भट्टार के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये कौटिल्याचार्य के पुत्र ये १९वीं शताब्दी में नुजविडवेङ्कटाद्रि के जमीन्दार अम्पाराव से इन्हे आश्रय प्राप्त हुआ था। व्याकरण की विशेषज्ञता के कारण इन्हे वैष्णवकरण पञ्चानन की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। इन्होंने आर्तिमन्त्र और व्यापप्रत्यय नामक नीतिवाक्यों की रचना की थी, साथ ही मदनमन्द (दे) नामक भाष्य भी लिखा था।

पार्वती-(नायो) (१) पौराणिक साहित्य में शिव की अर्धाङ्गिनी। इनके परिणय

स्थानों पर अधिक सूक्ष्म होता है जहाँ यह आरोप अचेतन वस्तुओं पर किया जाता है। प्राकृतिक तत्वों में मानव भावनाओं का प्रदर्शन इसी कोटि में आता है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म रूपता वहाँ अधिक होती है जहाँ ऐसे तत्वों पर आरोप किया जाता है जो चाक्षुष भी नहीं हो सकते जहाँ मानव भावनाएँ स्वयं अभिनय करती हुई दिखलाई जाती हैं।

मानव भावनाओं का अचेतन तत्वों के विषय में प्रयोग या भावनाओं का स्वयं अभिनेतृत्व प्रतीक (symble) रूप में ही प्रयोग होता है अतः इस प्रकार के काव्य को प्रतीक काव्य कहना अधिक सगत प्रतीत होता है। कतिपय विचारकों ने इस प्रकार के काव्य को साध्यवसानकाव्य और किसी ने लाक्षणिक काव्य कहना अधिक उचित समझा। किन्तु ये दोनों शब्द अर्थान्तर के बोधक हैं साध्यवसान रूपकातिशयोक्ति अलंकार का मूल है और लाक्षणिक शब्द विशिष्ट शब्द वृत्ति का परिचायक है। अतः इस अर्थ में प्रतीक शब्द अधिक सगत प्रतीत होता है।

इस शैली की प्रथम विशेषता प्राकृतिक तत्वों एवं मानवमन के सूक्ष्म भावों को पात्रों के रूप में प्रदर्शित कर अध्यात्म के दुर्बल रहस्यों को बोधगम्य बनाने के प्रयास में झलकती है। इस नाटक की तीन प्रमुख श्रेणियाँ हैं- (१) कथानक में रसात्मकता के साथ आदि से अन्त तक घमन्कृति का प्रदर्शन (२) प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत में चमत्कृति और (३) कुछ पात्र मानवीय और कुछ अमानवीय।

प्रतीक नाटक की परम्परा और साहित्य- भारतीय साहित्य में विरकाँल से यह प्रवृत्ति देखी जाती है। वैदिक सूक्तों में द्यावा पृथिवी को विश्व के माता पिता, उषा को द्यौ की पुत्री एवं मनोहर वस्त्रों से सजी नर्तकी तथा रात्रि को उषा की प्रभावशालिनी बहन बतलाना इसी के निदर्शन हैं। अभिनय के क्षेत्र में भी कृष्णयजुर्वेद में वाक् और मनस् का तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में प्राण और इन्द्रियों का विवाद तथा निर्णय के लिये उनका ब्रह्मा के पास जाना इसी के क्षेत्र में आते हैं। यह परम्परा लौकिक काव्य एवं साहित्य में भी अविकल रूप से प्रचलित रही। अश्वघोष के शारिपुत्र प्रकरण के साथ प्रतीक रूपक (दे.) के जो कतिपय प्रतीक परक पन्ने जुड़े हुये प्राप्त हुये हैं वे विद्या की शास्त्रीय कोटि की सर्व प्राचीन उपलब्ध रचना हैं। इस विधि की कतिपय अन्य प्रतिनिधि रचनाओं का नामालेख नीचे किया जा रहा है-

अनुमितिपरिणय (नृसिंह) अमृतोदय (पाकुलनाथ मैथिल), आनन्दचन्द्रोदय (रंगीलाल), मैवाणविक्रय (गाल कवि) चितवृत्तिकल्याण (भूमिनाथ) चित्सूर्यासोक (नरसिंह कवि एवं आचार्य) चैतन्यचन्द्रोदय (विक्रमेश्वर) (१) जीवन्मुक्तिकल्याण (भूमिनाथ उपनाम नन्नादीधिन) (२) जावन्मुक्ति कल्याण (मत्स्य सोमयाजी) जीवनन्दन (आनन्दराय) ज्ञानचन्द्रोदय (पद्ममुन्दर) ज्ञानसौन्दर्य (वादिचन्द्र) धर्मविक्रय (भूदेव शुक्ल) नाट्यपरिशिष्ट अष्टमः अन्तर्भावनानाट्यपरिशिष्ट (कृष्णानन्दवाचस्पति) पूर्णपुरणार्थ चन्द्रोदय (जाननेदम् उपनाम जटव) प्रवण्डारोदय (पद्मनाभ) प्रतीकचन्द्रोदय (कृष्णमिश्र) प्रमणादर्श

(शुक्लेश्वर), ब्रह्मविद्या (नारायण शास्त्री), भक्तिवैभव (जीवदेव), भर्तृहरिनिवेद (हरिहर), भावनापुरुषोत्तम (श्रीनिवासरात्नखेट), मिथ्याज्ञानदृष्टि (रविदास), मुक्तिपरिणय (सुन्दरदेव), मोहाजयराजय (यशपाल उपनाम यशोदेव), यतिराजविजय उपनाम वेदान्तविलास (वरदाचार्य), विद्यापरिणय (आनन्दराय), विद्वन्मोदतरंगिणी (रामदेव शतावधानी), विवेकचन्द्रोदय (शिव), विवेकविजय (रामानुज), शान्तिरस (वैकुण्ठपुरी), शिवनारायण महोदय (नरसिंह), शिवभक्तानन्द (बालकवि), शिवलिङ्गसूर्योदय (मल्लारिआराध्य), शुद्धसत्त्वम् (मदभूषिवेङ्कटाचार्य), श्रीदामचरित (सामराजदीक्षित), सङ्कल्पसूर्योदय (वेदान्त देशिक), सत्सङ्गविजय (वैद्यनाथ), समन्तनाटक (जयन्तभट्ट), सरलचित्सुखीसार (मेश चन्द्र), सौभाग्यमहोदय (जगन्नाथशोधकवि), स्वानुभूत्यमिषा (अनन्तराम)।

(यह सूची पूर्ण नहीं है। लेखकों के नाम कोष्ठकों में दिये गये हैं। विवरण यथा स्थान दिखिये।)

प्रतीक नाटक- (नाक) अश्वघोष कृत नाटक। प्रो लूडर्स ने तुफान के ताम्रपत्रों का अनुसन्धान करते हुये शारिपुत्रप्रकरण (दे.) के जो कतिपय पन्ने प्राप्त किये थे उनके साथ इस नाटक और वेश्या विषयक नाटक (दे.) के कुछ पन्ने लगे हुये थे। इससे प्रतीत होता है कि आगे चलकर १६वीं शताब्दी में कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय में जो नाट्य-प्रवृत्ति प्रवृत्त हुई थी उसी प्रकार के एक नाटक की रचना अश्वघोष ने भी की थी। यद्यपि यह पूरा नाटक प्राप्त नहीं होता है फिर भी जो अंश प्राप्त होता है उससे इस प्रवृत्ति की झलक तो मिल ही जाती है जिसमें अमूर्त तत्वों का मानवीकरण कर उन्हें रंगमञ्च पर पात्र के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें बुद्धि, प्रीति और कीर्ति रंगमञ्च पर अवतारों होकर बुद्ध की यशोगाथा गाते हुये उन्हें मानवनाम से विभूषित प्रकाश पुञ्ज बतलाते हैं। कीर्ति पूछती है- 'अब इस समय बुद्ध कहा रहते हैं?' बुद्धि उत्तर देती है- यह पूछो वे कहा नहीं रहते, क्योंकि उनकी लोकोत्तर शक्ति सीमित नहीं है। वे पथी के समान वायु में विवरण करते हैं पानी के समान भूमि में समा जाते हैं, अपने स्वरूप को अनेक रूपों में बदल लेते हैं, आकाश में बादल बनकर वर्षा में कारण होते हैं और शाम के समय सूर्य प्रभा से अनुजित मेघ का सौन्दर्य धारण करते हैं फिर उनके बीच प्रभा परिवेश से भण्डित भगवान् बुद्ध प्रविष्ट होते हैं उपलब्ध पन्नों से इस बात पता नहीं चल पाता कि बुद्ध भी उस वार्तालाप में भाग लेते हैं या नहीं। इस प्रवृत्ति के दूसरे नाटकों में काल्पनिक मानवीकृत पात्रों के साथ भौतिक जगत के मानव भी मिला दिये गये हैं। रो सकता है बाद में बुद्ध भी इस वार्तालाप में शामिल हो गये हों।

पुस्तक के अध्ययन के आधार पर निर्णय किया गया है कि इस नाटक की रचना कुषाण काल में हुई थी जिससे इस बात का निर्णय हो जाता है कि यह पुस्तक अश्वघोष की ही लिखी हुई है। किन्तु अपूर्ण होने के कारण इसके उद्देश्य और ब्रह्मचर्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रद्युम्न-(नापा) यह कृष्णपुत्र है जो कामदेव का अवतार माना जाता है। प्रद्युम्नानन्द नाटक में शम्बरराज की पुत्री से इसके विवाह का चित्रण किया गया है। विशेष रूप से हरिवंश पुराण में इसका वर्णन आया है।

(१) **प्रद्युम्नविजय-**(नाकू) इस नाटक के रचनाकार शङ्कर दीक्षित (दे.) हैं। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् १३५२ और विल्सन के थियेटर II ४०२ में किया गया है। ७ अकों के इस नाटक की रचना कुन्दलखण्ड के प्रसिद्ध राजा छत्रसाल के पौत्र पन्ना के राजा सभामुन्दर के राज्यारोहण के अवसर पर अभिनय के लिये की गई थी।

कश्यप और दिति का पुत्र वज्रनाभ आतनायी है। उसकी पुत्री प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह करने के लिये रुक्मिणी उत्सुक्त है। पन्नी के आग्रह पर कृष्ण प्रद्युम्न गद एवं साम्ब की नटवेष्ट में वज्रपुर भेज देते हैं। उधर इन्द्र द्वारा भेजे गये हंस हंसी के जोड़े से प्रद्युम्न की प्रशंसा सुनकर प्रभावती प्रद्युम्न पर अनुरक्त हो जाती है और दोनों का गन्धर्व विवाह हो जाता है। प्रभावती गर्भवती हो जाती है यह समाचार सुनकर वज्रनाभ प्रद्युम्न पर आक्रमण कर देता है। कृष्ण ठमे मार डालते हैं। गद और साम्ब का विवाह भी प्रभावती की बन्नों के साथ हो जाता है।

इस नाटक की शैली में अलंकार की प्रचुरता है। यह शृङ्गारप्रधान रचना है जिसमें एक अंक में सम्भोग का वर्णन किया गया है। लम्बे समासों का प्रयोग वहीं वही प्रवाह और अभिनेयता में व्याजान उत्पन्न करते हैं।

(२) **प्रद्युम्नविजय-**(नाकू) रामनारायण सितोमणि नामक बंगाली कवि का लिखा नाटक।

प्रद्युम्नानन्द-(नाकू) वेङ्कटाध्वरीण लिखित ६ अकों का नाटक। प्रद्युम्न का जन्म कामदेव के अवतार के रूप में हुआ और रति शम्बरामुर की पुत्री थी। इस नाटक में उन दोनों के विवाह का अंकन किया गया है। इसकी रचना प्रजोत्पति वर्ष में की गई थी जो १५७१ ई. सन् में पड़ता है। ओरिएण्टल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपि के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग की सं. XXI ८४२२ पर इसका उल्लेख है।

प्रद्युम्नाभ्युदय-(नाकू) रत्निकर्मा सभाषधीर (दे.) लिखित नाटक। इसमें ५ अंक हैं। इसका विषय है प्रद्युम्न की वज्रपुर के राजा दैत्यराज वज्रनाभ पर विजय और राजकुमारी प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह। इसमें रम्भाधिसरण नामक एक गर्भाङ्क भी है जिसमें रत्नमठ पर प्रेमी युगत की प्रणय लोला का मनोहर चित्रण किया गया है। इसका प्रकाशन विवेन्द्रम सम्बन्ध सीरीज में १९१० में हुआ था। प्रद्युम्नाभ्युदय नामक एक नाट्यकृति का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् १३६२ पर भी किया गया है। परन्तु नहीं यह रत्निकर्मा लिखित प्रद्युम्नाभ्युदय ही है या कोई अन्य कृति।

प्रद्योत-(नापा) यह उज्जैन का राजा है और इसकी उपाधि महासेन है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में इसने छलपूर्वक वत्सराज को बन्दी बनाया और पुत्री वासवदत्ता के लिये वीणा वादन के निमित्त नियुक्त कर प्रेम उत्पन्न कर विवाह की योजना बनाई। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में इनके दो पुत्रों गोपाल और पालक का भी उल्लेख किया गया है जिसका उपयोग मृच्छकटिक में हुआ है।

प्रधान वेङ्कय- (नाका) ये १८वीं शताब्दी में श्रीरामपुरी के निवासी थे। इनका लिखा महेन्द्र विजय नामक ड्रिम् प्राप्त होता है। श्रीरामपुरी में ही तिरुवैगल नाम के महोत्सव में इसका अभिनय हुआ था। इनका लिखा लक्ष्मीस्वयंवर (दे) (उपनाम विबुधानन्द) भी बतलाया जाता है।

प्रधान वेङ्कटभूपति- (नाका) ये १८वीं शताब्दी में मैसूर के निवासी थे। इन्होंने विभिन्न नाट्य विधाओं पर कई कृतियाँ प्रस्तुत की हैं— (१) वीरराघवीय एक व्यायोग है (२) कामकला विलास भाण (३) रुक्मिणीस्वयंवर अंक (४) कुक्षिम्भरि भैक्षव प्रहसन (५) उर्वशीसर्वभौष ईहामृग (६) विबुधदानव समवकार, (७) सीताकल्याण वीथी। इन नाट्य कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने अलंकारमणिदर्पण नामक एक अलंकार ग्रन्थ की भी रचना की थी। इनकी रचनायें मैसूर पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में स २७४ से २८७ तक और स २९६ पर देखी जा सकती हैं। इन्हें वेङ्कपा इस छोटे नाम से भी याद किया जाता है।

प्रपन्नविभीषण- (नाक) यह लक्ष्मणसूरि का लिखा नाटक है। इसका प्रकाशन मद्राससहृदयसंस्कृत जर्नल अंक २०, २२ और २३ में हुआ।

प्रपन्नसपिण्डीकरणनिरास- (नाका) यह घट्टशेषाचार्य लिखित एक प्रतीक नाटक है। इसमें सिद्ध किया गया है कि प्रपन्नो (शरणागतों) का सपिण्डीकरण नहीं होता। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की विवरणात्मक सूची में स ८४२४ पर इसका उल्लेख किया गया है।

प्रबुद्धरौहिणेय- (नाक) जैन मुनि एवं कवि रामभद्र (दे) लिखित ६ अंकों का प्रकरण। पार्श्वचन्द्र के पुत्रों यशोवर्ध और अजयपाल ने युगादिदेव तीर्थंकर ऋषभ का मन्दि बनवाया था जिसमें उत्सव का आयोजन किया गया था। उसी अवसर पर इस प्रकरण का प्रथम अभिनय किया गया था। रौहिण्य इस प्रकरण का मुख्य पात्र है। इसमें अपहरण, डाकैजनी अभियोग खोलनी मुकदमेवाजी और उसके बाद अपराध बाध एवं प्रवाचन नाट्य विषय हैं।

दस्यु का मित्र गृहस्वामी की बार्ती में डलझाय रहता है इसी बीच दस्यु गृहस्वामी की पत्नी मदनवती का अपहरण कर लेता है। इसके बाद वह युवक मनोरथ को मा का वप धारण कर एक बनावटी साप से आस पान के लोगों को भय दिखताकर मनोरथ को अभूषणों का लूट लेता है। मगध के श्रेणिक के यहां इन घटनाओं की शिकायत का

जाती है। प्रशासकीय स्तर पर खोजबीन होती है, मुकदमा चलता है। दस्यु स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की भावक चेष्टा करता है। इसी प्रसंग में नृत्य शिक्षक भरत के तत्वावधान में एक नृत्य गोष्ठी का आयोजन किया जाता है जिसमें कुछ ऐसा वातावरण बनाया जाता है कि डाकू के मन में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है कि वह स्वर्ग के देवताओं के सामने है, इसलिये उसका झूठ चल नहीं सकेगा। किन्तु तभी उसे ध्यान आता है कि देवताओं के लक्षण तो इन अभिनेताओं में मिलते ही नहीं। अतः वह निर्भय होकर असत्य पथ पर आरुढ़ रहने का निश्चय करता है। किन्तु जब मुकदमे का फैसला हो जाता है तब उसे अपराधबोध होता है और वह राजा और मन्त्री को वैभारपर्वत पर लेजाकर चुराई हुई धनराशि, गायब युवक और अपहृत स्त्री सभी कुछ वरामद करा देता है।

इस नाटक की रचना १२वीं शताब्दी में हुई थी। विस्तृतभूमिका के साथ १९१७ में भावनगर से इसका प्रकाशन कर दिया गया था।

प्रबुद्धहिमाचलम्—(नाकू) ६ अंकों के इस नाटक की रचना विश्वेश्वर विद्याभूषण ने २०वीं शताब्दी में की थी। विशालपुर का राष्ट्रपाल मठ मन्दिरों की सारी सम्पत्ति राज्यायत कर लेता है। राष्ट्रपति विजयवर्धन देवस्थान पर आक्रमण करने का निश्चय करता है। देवस्थान की जनता देवस्थान के राजा विजयवर्धन का साथ देती है। इसी बीच विजयवर्धन का विवाह गन्धर्व राजकन्या मधुच्छन्दा से हो जाता है। इससे विजयवर्धन को गन्धर्वराज की भी सहायता मिल जाती है। इससे भारत का गौरव बढ जाता है।

इसमें सांस्कृतिक आदर्शों का प्रतिफलन हुआ है। प्रणयपारिजात पत्रिका में इसका प्रकाशन हो गया था। आकाशविणी से इसका प्रसारण भी किया गया था।

प्रबोध—(नापा) प्रबोधचन्द्रोदय का प्रधान पात्र। मनस् से निवृत्ति में जो सन्तति परम्परा चली थी उसमें विवेक से उपनिषद् में इसका जन्म हुआ था। इसने महामोह को सन्तति परम्परा को समाप्त कर विवेक का राज्य पुनः स्थापित किया।

प्रबोधचन्द्रोदय—(नाकू) कृष्ण मिश्र (दे.) विरचित प्रतीक रूपक। इस नाटक में महाभारत के समान एक ही परिवार के अच्छे और बुरे दो प्रतिद्वन्द्वियों का संघर्ष दिखलाया गया है। अन्त में अच्छे पक्ष की विजय होती है।

पुरुष (परमवत्स ब्रह्म) का माया से मनस् नामक पुत्र उत्पन्न होता है जिसके दो पत्नियाँ हैं— प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति से महामोह का जन्म होता है। उससे बरा बिस्तार द्वाँरा काम, रति दम्भ अहंकार, क्रोध, लोभ, दृष्णा इत्यादि अनेक व्यक्तित्व सना में आते हैं। इसी प्रकार निवृत्ति से विवेक का जन्म होता है जिससे सद्गुणों सन्तोष, वस्तुविचार, धर्मा इत्यादि का जन्म होता है।

महामोह ने विश्व की सर्वोत्कृष्ट मुक्तिवर्गी वारसी पर दम्भ के नेतृत्व में विजय प्राप्त कर ली है जहाँ दम्भ का पितामह अहंकार भी पटुच गया है। विधर्मों, लोकायत,

चार्वाक इत्यादि महामोह के सहायक हैं और उसकी परिचारिकायें हैं— मिथ्यादृष्टि, विभ्रमव्रती इत्यादि। महामोह को अपने राज्यभ्रश की चिन्ता बनी रहती है क्योंकि भविष्य वाणी की गई है कि विवेक की जो सन्तान उपनिषद् (स्त्री) से उत्पन्न होगी वह महामोह का नाश कर देगी। कुशल इसी में है कि उपनिषद् और विवेक का मेल न हो पाये।

धर्म ने महामोह के शतिकूल विद्रोह का झड़ा उठा रक्खा है। वह और श्रद्धा अनेक कठिनाइयों के बाद विवेक को उपनिषद् से मिलाने में सफल हो जाते हैं। उनसे प्रबोध नाम का पुत्र और विद्या नामक पुत्री का जन्म होगा है। अन्त में महामोह और विवेक का युद्ध होता है। विद्या महामोह तथा उसके वर्ग को निगल जाती है और राज्य पर विवेक का अधिकार हो जाता है। श्रद्धा की पुत्री शान्ति भी उसे मिल जाती है। इस समस्त गति विधि में विष्णुभक्ति से सहायता मिलती है।

मर पुत्र महामोह और पत्नी प्रवृत्ति की मृत्यु से दुखी है। वेदान्तविद्या उसे समझाती है और वह निवृत्ति (दूसरी पत्नी) के साथ वानप्रस्थ में चले जाने का निश्चय करता है।

महामोह द्वारा नियुक्त मधुमती अब भी आदि पिता पुरुष (ब्रह्म) को अपने अधिकार में लिये हुए है। माया उसकी सहायता करती है। तर्क पुरुष को समझाता है जिससे पुत्र्य माया के बन्धन से छूट जाता है। विद्या पुरुष को तत्त्वज्ञान से मण्डित कर उसे मुक्त करती है। इस दिशा में श्रद्धा की पुत्री शान्ति का भी योगदान पर्याप्त है।

विष्णुभक्ति और वैष्णवसम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का महत्व बतलाना इस रचना का मुख्य उद्देश्य है। इसमें अधार्मिक तत्वों का निराकरण कर उन पर धर्मिकता की विजय दिखलाई गई है। इसमें जहाँ एक विद्वतापूर्ण कल्पना का चमत्कार है वहाँ वास्तविकता के तत्व भी चमत्कृत कर देने के लिये पर्याप्त हैं। धार्मिक आपह के साथ ही इसमें नाटकीयता के तत्व भी प्राप्त होते हैं। इसमें चरित्रचित्रण भी स्पष्टता के साथ किया गया है। प्रकट श्लाघारिक भावना के माध्यम से इसमें अद्वैतदृष्टि का प्रचार किया गया है तथा अन्य दार्शनिक मान्यताओं का मजाक उड़ाया गया है। विदूषक के न होते हुये भी इसमें विभिन्न विरोधी सम्प्रदायों की मजाक उड़ाने में हास्यरस का भी पर्याप्त परिष्कार हुआ है।

पूर्ण नाटक के रूप में यह पहला प्रतीक रूपक है। निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसकी रचना अश्वघोष के प्रतीक रूप की प्रेरणा से हुई या यह कृष्ण मित्र का नया प्रवर्तन था। किन्तु इस नाटक को प्रतिष्ठा बहुत अधिक मिली। अनेक अनुवाद प्रकाशित हुये। अनेक रचनायें इसके आदर्श पर हुईं। यह इसके महत्व का बहुत बड़ा मानदण्ड है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी शैली प्रसादगुणपूर्ण एवं नाटकीययोगी है। भले ही इसमें नाट्य तत्वों की कमी लक्षित की जाय किन्तु इससे इसके महत्व में कमी नहीं आती।

कहा जाता है कि चन्देल नरेश महाराज कीर्तिवर्मा (राज्यकाल १०४९ से १११६) चेदिराज कर्ण पर विजय प्राप्त करने में रक्तपात से दुखी हो गये थे उन्हीं वैराग्य के क्षणों में उनके राजकवि गुरुवर कृष्ण मिश्र ने प्रस्तुत नाटक की रचना की। इसकी लोकप्रियता के कारण ही इसके कई अनुवाद प्रकाशित हुये। इस नाटक का प्रकाशन बम्बई से हुआ था। इसके अनुवाद अमेजी जर्मनी इत्यादि अनेक भाषाओं में किये गये। अनुवाद एवं समीक्षा लिखने वालों में गोल्डस्ट्रकर, टेलर, मैक्डानल, वेवर, कीथ इत्यादि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

इस नाटक पर कई टीकायें लिखी गई जिनमें प्रमुख रूप से उल्लेख्य हैं- रुद्रदेव की टीका (बम्बई से प्रकाशित), गणेश की टीका (कैटेलागस कैटेलागोरम III ७५ पर उल्लिखित), सुब्रह्मण्य सुधी की टीका (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ४३२९ पर उल्लिखित) एवं तजौर पुस्तकालय VIII ३४३६ में प्राप्य) रामदास की टीका (द्रावन ७७ सस्वरण मद्रास लीपजिग और पूना पाण्डुलिपि वर्ष १५४५ A D) सदात्पामुनि की टीका (कैटेलागस कैटेलागोरम II ७८ और २११) घनश्याम की टीका (तजौर VIII ३४३२) मरादेव न्यायालकार की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित) आढ्यनाथ की टीका। (शिवपुर से प्रकाशित) और गोविन्द मिश्र की टीका (त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित)।

प्रभाकर श्रीनिवास- (नाका) (२) हरिश्चन्द्रचरित नाटक (दे) के लेखक जिसका उल्लेख भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में और रुद्रट ने काव्यालकार में किया है।

प्रभावत- (नाक) रघुनाथ लिखित नाटक। मैसूर पुस्तकालय में पाण्डुलिपि अनुभाग की प्रत्य सूची २७८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(१) प्रभावती- (नाक) यह नाटिका अनादिमिश्र (दे ३ अनादिमिश्र) लिखित मतलाई जाती है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

(२) प्रभावती- (नाक) १८वीं शताब्दी के अनादिमिश्र के पूर्वज बविचन्द्र दिवाकर (दे) का लिखा नाटक।

प्रभावती परिणय- (नाक) हरिहर (दे) लिखित ६ अकों का नाटक। इसका उल्लेख साहित्यदर्पण में किया गया है। कुछ विचारकों का मत है कि ये वेही हरिहर है जिनका लिखा पर्नुहरिनिर्वेद नामक प्रतीकनाटक प्रसिद्ध है। कतिपय अन्य विचारकों की मान्यता इससे भिन्न है।

कैटेलागस कैटेलागोरम १,३५४ पर इसका उल्लेख है। इस नाटक का प्रकाशन १९६९ में चौखम्भा संस्कृत सीरीज बनारस से हो गया था।

नायक प्रद्युम्न प्रभावती पर मोहित होकर वधनाथ पुरी पटुचता है। जरा वर एक नाटक में नायक का अभिनय करता है। उसको देखकर प्रभावती उस पर अनुसक्त हो जाती है। अन्त में वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट होता है जिनका अदृश्य है। वधनाथ

युद्ध करने आता है जिसे इन्द्र और कृष्ण की शक्ति से प्रद्युम्न मार डालते हैं। नायक और नायिका का विवाह हो जाता है।

इसमें शृङ्गार और वीर रसों का मिला जुला प्रवाह है। स्त्री पात्रों की प्रधानता है। कहा जाता है इस नाटक की रचना कवि ने अपने छोटे भाई नीलकण्ठ के पढ़ने के लिये की थी। इनका समय १७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

प्रभावतीप्रद्युम्न- (नाकू) यह पुराण कथा पर आधारित रामकृष्ण लिखित नाटक है। कैटेलागस कैटेलागोरम II ७९ में इसका उल्लेख किया गया है।

प्रभावतीहरणम्- (नाकू) भानुदत्त दैवत का १९वीं शती के मध्य का लिखा कीर्तनिया श्रेणी का रूपक। इसमें सवाद सस्कृत और प्राकृत में लिखे गये हैं और गीतों के लिये मैथिली भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें कृष्णपुत्र प्रद्युम्न और वज्रनाभ दैत्य की पुत्री प्रभावती के विवाह का अंकन किया गया है।

प्रभुदत्तशास्त्री- (नाका) ये दिल्ली के चौसवीं शताब्दी के कवि हैं। इनका लिखा सस्कृत वाग्विजयम् (उपनाम सस्कृत वाग्विभवम् या केवल सस्कृत विजयम् (दे)) नाटक दिल्ली से ही सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ था।

प्रभुनारायण सिंह- (नाका) ये काशी छोट के राजा थे। इनका शासनकाल १८८६ से १९२५ तक रहा। इनका लिखा पार्थपाथेयम् १९२८ में प्रकाशित हुआ था।

प्रमाणादर्श- (नाकू) शुक्लेश्वर (दे) का लिखा नाटक। यह अभी तक साहित्य जगत् को प्राप्त नहीं हुआ है। इसका उल्लेख दशरूपकम् की हाल लिखित भूमिका में किया गया है और कैटेलागस कैटेलागोरम स १६५८ पर इसका संकलन किया गया है।

प्रमुदितगोविन्दम्- (नाकू) सदाशिव लिखित रूपक। इसमें ७ अंकों में समुद्रमन्थन कथानक का अंकन किया गया है। शृङ्गार रस की प्रधानता है किन्तु इसमें यथास्थान वीर रस का भी समावेश किया गया है। कीर्तनियों नाटकों की शैली में इसकी रचना हुई है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। इसका प्रथम अभिनय धारकोटे नोश की राजसभा में किया गया था।

प्रयोगाभ्युदय- (नाकू) अज्ञातनामा कवि का लिखा प्रकरण जिसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है।

प्रवृत्ति- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे) में यह मनस् की पत्नी है जिसका पुत्र महामोह है जो काम रति दम्भ अहंकार इत्यादि परम्परा का वश विस्तार करने वाला है। इसकी सौष्ठव निवृत्ति है जिसका वश अलग से विस्तारित होता है। प्रवृत्ति का पुत्र महामोह उपता के साथ निवृत्ति की वश परंपरा को उसी प्रकार बिल्कुल दबा लेता है जैसे बौरवों ने पाण्डव पक्ष को बिल्कुल पराभूत कर दिया था। किन्तु परिणाम भी महाभारत का जैसा

ही होता है। निवृत्ति की सन्तान परम्परा में विवेक से उपनिषद् में प्रबोध नामक जो पुत्र उत्पन्न होता है वह प्रवृत्ति की सन्तति को समाप्त कर देता है, संघर्ष में प्रवृत्ति का भी वध कर दिया जाता है जो मनस् के दुःख का कारण बनता है।

प्रशान्तरत्नाकर- (नाकू) कालीपद का लिखा ९ अकों का नाटक। इस नाटक की रचना कृतिवास द्वारा बंगला में लिखित रामायण के वाल्मीकि चरित्र पर आधारित है। रत्नाकर एक पात्र है जो दरिद्रता से पराहत होकर आत्महत्या करना चाहता है, किन्तु उसी समय उसे डाकुओं द्वारा लूटी जाती हुई एक स्त्री दिखलाई पड़ती है। वह उस स्त्री को डाकुओं के चंगुल से छुड़ाता है, साथ ही वह डाकेजनी से धनोपार्जन की शिक्षा भी ले लेता है और डाकुओं के दल में शामिल हो जाता है। धीरे धीरे वह डाकुओं का सरगना बन जाता है। किन्तु डाकेजनी से प्राप्त धन को दोन दुखियों के हित में लगाता है। इसी व्यवसाय के प्रसंग में वह राजा कामेश्वर के कोश को लूटता है। राजा उसके पिता और पुत्र को पिटवाता है। रत्नाकर बदला लेना चाहता है। किन्तु उसका पिता च्यवन उसे सत्यय पर लाने के लिये आत्मघात करता है। रत्नाकर को मा शोक में मर जाती है। उसका पुत्र क्षप रोग में मारता है और पत्नी विष खाकर आत्महत्या करती है। रत्नाकर अकेला रह जाता है तथा नदी में डूब कर आत्महत्या करना चाहता है। इसी समय सुमीत आकर उसे शान्तिनिकेतन में भक्ति करने का उपदेश देती है। वहाँ नारद उसे राममन्त्र देते हैं जिसके प्रभाव से वह वाल्मीकि बनकर रामायण की रचना करता है।

इस नाटक में बंगाल का अकाल, लूटमार, अग्निदाह, दुर्मिश्र इत्यादि समसामयिक विषयों का अच्छा चित्रण किया गया है। इसका अभिनय सस्कृतपरिषद् के सदस्यों द्वारा किया गया था। यह बीसवीं शताब्दी की रचना है।

प्रसङ्गिका- (नाकू) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना हरिजीवन मिश्र ने १८वीं शताब्दी में की थी। हरिजीवन मिश्र का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १५७० में किया गया है।

प्रसन्नकाश्यपम्- (नाकू) तीन अकों के इस नाटक की रचना जगन् श्रीबकुलभूषण (दे) न की थी। इसमें शत्रुनालम के बाद की घटनाओं का चित्रण किया गया है। दुष्यन्त पत्नी और पुत्र सहित वनवाश्रम में आते हैं और कण्व ऋषि का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इसका प्रकाशन १९२९ में हो गया था।

प्रसन्नपार्थम्- (नाकू) (१) नागपण शास्त्री लिखित ५ अकों का नाटक।

प्रसन्नप्रसादम्- (नाकू) दस अकों के इस नाटक की रचना डा रमा चौधरी ने २० वीं शताब्दी में की थी। इसमें बंगाली गायक रामप्रसाद की जीवनगाथा को चित्रित किया गया है। उनके गीतों का सस्कृतोक्तिर्ण भी इस नाटक की एक विशेषता है।

प्रसन्नराघव- (नाकू) यह जयदेव लिखित ७ अकों का नाटक है जिसमें रामायण

की कथा को आधार बनाया गया है। नाटक को नवीनता और विचाररूपता प्रदान करने के लिये कवि ने अनेक नवीन उद्भावनायें की हैं। प्रथम अंक में सीतास्वयंवर में रावण और वाण एक ही समय पर आते हैं दोनों का कथोपकथन बहुत ही मनोरञ्जक बन पड़ा है। साथ ही उन का मजाक उड़ाया जाना भी मनोरञ्जक है। नाटक में नदियों और सागर की बातचीत से कथा सूत्र संयोजना और घटनाओं के विवरण की सूचना दी गई है। नाटक में दो विद्याधरों का प्रवेश भी अद्भुत है जो विद्योगविकल राम को मायाशक्ति से रावण के यहाँ बन्दिनी सीता के दर्शन करा देते हैं।

जब रावण सीता को माने के लिये तलवार उठाता है तब उसके हाथ पर हनुमान द्वारा मरे गये अश्व का सर आ गिरता है।

प्रस्तावना में एक विचित्र कथा दी हुई है— सूत्रधार के भाई गुणराम से प्रभावित होकर दक्षिण में एक नट ने स्वयं को गुणराम कहकर उसकी कौर्ति का अपहरण कर लिया था। तब गुणराम ने दक्षिण में जाकर सुकण्ठ की सहायता से उसको पराजित किया। यह कथा सीताहरण, सुग्रीव सहायता और रावण की पराजय की ओर संकेत करती है।

इस नाटक में सवादों द्वारा कथानक की सूचनायें अधिक हैं, वास्तविक दृश्य अंश उसी अनुपात में कम हो गया है। अनेक सवाद उबाऊ हैं। पंचम अंक में समुद्र और नदियों का एकत्र दृश्य मनोरञ्जक है यद्यपि उसका सम्बन्ध मूल कथानक से विलुप्त नहीं है। समुद्र के ऊपर से उठते हुए ज्योतिष्पिण्ड को देखने के लिये सभी नदियाँ और समुद्र डूबती ही जाती हैं जोकि वास्तव में समुद्र को पार करते हुये हनुमान हैं।

नाटक में हास्यरस की भी अच्छी सृष्टि हुई है। बड़े छन्दों को अधिक महत्व दिया गया है। नायामूलक घटनायें अद्भुतरस के क्षेत्र में आती हैं।

इस नाटक का प्रकाशन बम्बई से १८८४ में और पूना से उसी वर्ष हो गया था। इसका प्रकाशन मद्रास, कलकत्ता और बनारस से भी हो चुका है। गणानाथ झा द्वारा अनुवाद बनारस से प्रकाशित हुआ है।

इस पर टीकायें हैं— लक्ष्मीधर की टीका, वेङ्कटाचार्य की टीका (बम्बई से प्रकाशित), रघुनन्दन की टीका (कैटलागस कैटलागोम II ८१ और II २११ पर उल्लिखित), लक्ष्मण की टीका (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की संस्कृत पाण्डुलिपियों की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट III ३२२०), नरसिंह राव की टीका (त्रैवार्षिक रिपोर्ट III ३३९४)।

ग्रहसत्र साहित्य— (नाबि) अद्भुतरंग (हरिजीवन मिश्र), आनन्दकोश, कन्दर्प केलि, कालिकान्त कौतुक (रामकृष्ण), कालिकेलि, कालेयकौतूहल (भारद्वाज) कुक्षिम्भरि (वेङ्कटाचार्य), कुक्षिम्भरिभैरव (प्रधान वेङ्कटभूषति) कुहनाभैरव (तिस्मस नाथ), कुहनाभैरव (अप्यलुनाथ), कौतुकरत्नाकर (विविधार्थिक), कौतुकसर्वस्व (गोपीनाथ), चण्डानुरञ्जन (पनश्याम), देवदुर्गाति, धूर्तचरित धूर्तनर्तन (सामराज), धूर्तविडम्बन (महेश्वर), धूर्तसमागम (ज्योतिरेश्वर) नाटवाट

ही राता है। निवृत्ति की सन्तान परम्परा में विवेक से उपनिषद् में प्रबोध नामक जो पुत्र उत्पन्न होता है वह प्रवृत्ति की सन्तति को समाप्त कर देता है, सघर्ष में प्रवृत्ति का भी वध कर दिया जाता है जो मनस् के दुःख का कारण बनता है।

प्रशान्तरत्नाकर- (नाकू) कालीपद का लिखा ९ अकों का नाटक। इस नाटक की रचना कृतिवास द्वारा बंगाल में लिखित रामायण के वाल्मीकि चरित्र पर आधारित है। रत्नाकर एक पात्र है जो दण्डिता से पराहत होकर आत्महत्या करना चाहता है, किन्तु उसी समय उसे डाकुओं द्वारा लूटते जाते हुए एक स्त्री दिखलाई पड़ती है। वह उस स्त्री को डाकुओं के चंगुल से छुड़ाता है साथ ही वह डाकेजनों से धनोपार्जन की शिक्षा भी ले लेता है और डाकुओं के दल में शामिल हो जाता है। धीरे धीरे वह डाकुओं का सरगना बन जाता है। किन्तु डाकेजनी से प्राप्त धन को दोन दुखियों के हित में लगाता है। इसी व्यवसाय के प्रसंग में वह राजा कामेश्वर के कोश को लूटता है। राजा उसके पिता और पुत्र को पिटवाता है। रत्नाकर बदला लेना चाहता है। किन्तु उसका पिता च्यवन उसे सत्यथ पर लाने के लिये आत्मघात करता है। रत्नाकर की मा शोक में मर जाती है। उसका पुत्र क्षय रोग में मरता है और पत्नी विष खाकर आत्महत्या करती है। रत्नाकर अकेला रह जाता है तथा नदी में डूब कर आत्महत्या करना चाहता है। इसी समय 'सुमीत' आकर उसे शान्तिनिकेतन में भक्ति करने का उपदेश देती है। वहीं नारद उसे राममन्त्र देते हैं जिसके प्रभाव से वह वाल्मीकि बनेकर रामायण की रचना करता है।

इस नाटक में बंगाल का अकाल, लूटमार अग्निदाह, दुर्भिक्ष इत्यादि समसामयिक विषयों का अच्छा चित्रण किया गया है। इसका अभिनय संस्कृतपरिषद् के सदस्यों द्वारा किया गया था। यह बीसवीं शताब्दी की रचना है।

प्रसङ्गिका- (नाकू) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना हरिजीवन मिश्र ने १८वीं शताब्दी में की थी। हरिजीवन मिश्र का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोस १५७० में किया गया है।

प्रसन्नकाश्यपम्- (नाकू) तीन अकों के इस नाटक की रचना जगू श्रीवकुलभूषण (दे) ने की थी। इसमें शाकुन्तलम के बाद की घटनाओं का चित्रण किया गया है। दुष्यन्त पत्नी और पुत्र सहित कण्वाश्रम में आते हैं और कण्व ऋषि का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इसका प्रकाशन १९२१ में हो गया था।

प्रसन्नपार्यम्- (नाकू) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अकों का नाटक।

प्रसन्नप्रसादम्- (नाकू) दस अकों के इस नाटक की रचना डा रत्ना चौधरी ने २०वीं शताब्दी में की थी। इसमें बंगाली गायक रामप्रसाद की जीवनगाथा की चित्रित किया गया है। उनके गीतों का संस्कृतोक्तिपूर्ण भा इस नाटक की एक विशेषता है।

प्रसन्नराघव- (नाकू) यर जयदेव लिखित ७ अकों का नाटक है जिसमें रामायण

की कथा को आधार बनाया गया है। नाटक को नवीनता और विचाररूपता प्रदान करने के लिये कवि ने अनेक नवीन उद्भावनायें की हैं। प्रथम अंक में सीतास्वयंवर में रावण और बाण एक ही समय पर आते हैं दोनों का कथोपकथन बहुत ही मनोरंजक बन पड़ा है। साथ ही उन का भोजक उड़ाया जाना भी मनोरंजक है। नाटक में नदियों और सागर की बातचीत से कथा सूत्र संयोजना और घटनाओं के विवरण की सूचना दी गई है। नाटक में दो विद्याघटों का प्रवेश भी अद्भुत है जो वियोगविकल राम को मायाशक्ति से रावण के यहा बन्दिनी सीता के दर्शन करा देते हैं।

जब रावण सीता को मारने के लिये तलवार उठाता है तब उसके हाथ पर हनुमान द्वारा मारे गये अश्व का सर आ गिरता है।

प्रस्तावना में एक चित्र कथा दी हुई है— सूत्रधार के भाई गुणराम से प्रभावित होकर दक्षिण में एक नट ने स्वयं को गुणराम कहकर उसकी कीर्ति का अपहरण कर लिया था। तब गुणराम ने दक्षिण में जाकर सुकण्ठ की सहायता से उसको पराजित किया। यह कथा सीताहरण, सुग्रीव सहायता और रावण की पराजय की ओर संकेत करती है।

इस नाटक में संवादों द्वारा कथानक की सूचनायें अधिक हैं, वास्तविक दृश्य अश्व उसी अनुपात में कम हो गया है। अनेक संवाद उबाऊ हैं। पंचम अंक में समुद्र और नदियों का एकत्र दृश्य मनोरंजक है यद्यपि उसका सम्बन्ध मूल कथानक से विलकुल नहीं है। समुद्र के ऊपर से उठते हुए ज्योतिष्मिण्ड को देखने के लिये सभी नदियाँ और समुद्र उद्भीव हो जाते हैं जोकि वास्तव में समुद्र को पार करते हुये हनुमान हैं।

नाटक में हास्यरस की भी अच्छी सृष्टि हुई है। बड़े छन्दों को अधिक महत्व दिया गया है। मायामूलक घटनायें अद्भुतरस के क्षेत्र में आती हैं।

इस नाटक का प्रकाशन बम्बई से १८८४ में और पूना से उसी वर्ष हो गया था। इसका प्रकाशन मद्रास, कलकत्ता और बनारस से भी हो चुका है। गगानाथ झा द्वारा अनुवाद बनारस से प्रकाशित हुआ है।

इस पर टीकाये हे— लक्ष्मीधर की टीका, वेङ्कटाचार्य की टीका (बम्बई से प्रकाशित), रघुनन्दन की टीका (कैटलागस कैटलागोरप II ८१ और II २११ पर उल्लिखित), लक्ष्मण की टीका (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की संस्कृत पाण्डुलिपियों की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट III ३२२०), नरसिंह राव की टीका (त्रैवार्षिक रिपोर्ट III ३३९४)।

प्रहसन साहित्य- (नाट्य) अद्भुतराग (हरिजीवन मिश्र), आनन्दकोश, कन्दर्प केलि, कालिकान्त कौतुक (समकृष्ण), कालिकेलि, कालेयकौतूहल (भारद्वाज) कुक्षिम्परि (वेङ्कटाचार्य), कुक्षिम्परिभैषज्य (प्रधानि वेङ्कटभूषिणी), कुहनाभैषज्य (तिरुमल नाथ), कुहनाभैरव (अप्यलुनाथ), कैकुत्तरत्नाकर (कवितार्किक), कौतुकसर्वस्व (गोपीनाथ), चण्डानुरञ्जन (धनश्याम), देवदुर्गति, धूर्तचरित धूर्तनर्तन (सामराज), धूर्तविडम्बन (महेश्वर), धूर्तसमागम (ज्योतिरोश्वर) नाटकाट

(यदुनन्दन) पयोधिमन्थन, दलाण्डमुण्डन, पाण्ड विडम्बन, प्रासङ्गिका (हरिजीवन मिश्र) बृहत्सुभद्रक, भानुप्रबन्ध (वेङ्कटेश) मनवितास (महेन्द्र विष्णु वर्मा), मिथ्याचार (वैद्यनाथ) मुण्डित, लाटक मैलक अथवा दन्तुल परिणय (शङ्खधर), लोकरञ्जन (श्रीनिवासाचार्य) विनोदरग, विबुधमोहन (हरिजीवन मिश्र), वेङ्कटेशप्रहसन (वेङ्कटेश्वर), सहृदयानन्दन (हरिजीवन मिश्र), साण्डिल्य परिव्राजक, सान्द्रकुतूहल (कृष्णदत्त) सुभगानन्द (वासुदेव नोन्न उपनाम श्रीवत्साङ्ग), सोमवल्ली योगानन्द (अरणगिरिनाथ) हास्य रत्नाकर, हास्यार्णव (जगदीश), हृदयविनोद (कविपण्डित)।

(पर सूची पूर्ण नहीं है, लेखकों के नाम कोष्ठक में दिये गये हैं। विवरण यथास्थान देखिये।)

ग्रहस्त- (नापा) प्रसन्नपाषव में रावण का सहायक।

माल्यवान मन्त्री ने इसी के माध्यम से सेतुबन्ध और लंका पर राम के आक्रमण का चित्र रावण के पास भेजा है। किन्तु रावण उसे चित्रकार की कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता।

रावण दूषार्थक भविष्यवाणी की भी परवा नहीं करता, किन्तु मन्दोदरी के साथ ग्रहस्त भी वास्तविकता से भयभीत है। रावण उसकी आशंका को हसकर उड़ा देता है।

ग्रहानन्देव- (नाका) ये माण्डव्याव के परमारवशीय मरुधवल के पुत्र और धाराधवन के भाई थे, युवराज पद पर अभिषिक्त थे। इनकी राजधानी चन्द्रावती में थी। युद्ध कौशल और साहित्यसाधना दोनों में इनको प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। स्वतन्त्र युद्धों में इन्हें सफलता मिली ही थी, दिल्ली की सेना को खदेड़ने में वास्तुपाल की सहायता भी की थी। शस्त्र और शास्त्र एवं काव्य साधना इन सभी क्षेत्रों में प्रवीणता अपने भाई के तत्वावधान में प्राप्त की थी। इनका समय १२२० से १२६५ तक था।

इनका पार्यपराक्रम (दे.) नाम का एक व्यायोग प्राप्त होता है जिसमें विराट् पुर के युद्ध में अर्जुन के पात्रक्रम का चित्रण किया गया है। शैली को श्रौढता और स्पष्टता इनकी रचना के प्रमुख गुण हैं कौटिलीयमूर्ति में इनकी प्रशंसा की गई है और सूक्तिमुक्तावली में उद्धरण दिये गये हैं।

ग्रहाद्विनोदनम्- (नाक) नित्यानन्द लिखित ग्रहादचित्र विषयक पाच अंकों का नाटक। इसमें न तो अर्थोपशेपक है और न प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है।

प्राकृतमण्डिपी- (नाक) इस नाटक को रचना अम्पय दीक्षित ने १७वीं शताब्दी में की थी। इसके विषय में अन्य कुछ ज्ञात नहीं है।

प्राज्ञसामन्तम्- (नाक) (१) नारायण शास्त्री (२) का लिखा ५ अंकों का नाटक।

प्राधावतम्- (नाक) रघुनाथमूर्ति लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें प्रधावती और प्रद्युम्न की व्रणपत्नीता का चित्रण किया गया है। रचना शृङ्गार प्रधान है। रगाध

मात्रोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

प्रायश्चित्तम्- (नाट्) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अकों की नाट्यकृति। इसकी रचना काल्पनिक कथानक को लेकर हुई है। किसी किसान ने एक निराश्रित बालिका का पालन पोषण किया है। राजपुत्र उस कन्या पर अनुरक्त है। किन्तु राजा उस किसान से दुर्व्यवहार करता है और उसे दण्ड देता है। साथ ही वह राजकुमार को निर्वासित कर देता है। बाद में राजा पछताता है और राजकुमार का विवाह उस कन्या से तो कर ही देता है साथ ही प्रायश्चित्त रूप में अपनी कन्या का विवाह भी किसान के पुत्र से कर देता है।

यह नाटक नायिकाप्रधान है। इसकी रचना १९२१ में हुई थी और प्रकाशन सम्भवतः १९६१ में हो गया था।

प्रियदर्शिका- (नाट्) महाराज हर्य (दे) की लिखी नाटिका। इसकी विषय वस्तु उसी प्रकार की है जिस प्रकार की रत्नावली (दे) की है। इसमें चार अंक हैं।

अगराज दृढवर्मा ने पुत्री प्रियदर्शिका का विवाह वत्सराज उदयन से करने का निश्चय किया है। किन्तु कलिगराज उसे चाहता है, वह अगराज पर आक्रमण करता है और उसे बन्दी बना लेता है। इसके पहले ही बङ्गुकी विनयवसु प्रियदर्शिका को लेकर चल देता है। मार्ग में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अन्त में वह वत्सदेश में पहुँच जाता है और आरण्यका के नाम से प्रियदर्शिका को वासवदत्ता के पास दासी के रूप में रख देने में सफल हो जाता है। राजा मुखती को देखता है और उस पर आसक्त हो जाता है। प्रियदर्शिका भी आसक्त है और अपना प्रेम दासी को बतला देती है। दोनों का वार्तालाप राजा सुन लेता है। सखी चली जाती है और तब भीरे के सम्भ्रम से प्रियदर्शिका (आरण्यका) भागती है और सयोग से राजा के बाहुपाश में आ जाती है। दोनों का प्रणय सम्बन्ध चल निकलता है।

वासवदत्ता (रानी) अपनी वृद्धा सहेली साकृत्यायनी से अपने विवाह का दृश्य नाटक द्वारा प्रस्तुत करने को कहती है। नाटक का आयोजन किया जाता है जिसमें आरण्यका को रानी की और मनोरमा को राजा की भूमिका दी जाती है। मनोरमा और विदूषक के प्रयत्न से राजा स्वयं अपनी भूमिका निभाने को राजी हो जाता है। वासवदत्ता नाटक देखने आती है। राजा और आरण्यका का अभिनय बहुत सफल होता है जिसे देखकर रानी जल उठती है और वहाँ से उठकर चली जाती है। वह सोते हुये विदूषक को जगाती है और विदूषक राजा के प्रेम की सच्ची बातें वासवदत्ता को बतला देती है। रानी राजा की किसी महानेबाजी को सुनना नहीं चाहती। वह आरण्यका को घन्टीघर में डाल देती है। रानी को अपने माँसा दृढवर्मा के बन्दी बना लिये जाने का समाचार मिलता है। वह दुखी हो जाती है। इसी बीच उसे समाचार मिलता है कि कलिगराज मर गया है और

दृढवर्मा पुन राज्य में प्रतिष्ठित हो गया है। किन्तु उसे पुत्री के छो जाने का दुःख है। मनोरमा घबराई हुई आती है और आरण्यका के विष पी लेने का समाचार देती है। राजा को उसकी चिकित्सा करना है। अतः वह वहाँ लाई जाती है। राजा उसे होश में लाते हैं, वह पहिचान ली जाती है। जब वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि वह उसकी मौसेरी बहन है तब वह उमका हाथ प्रसन्नता पूर्वक राजा को दे देती है और दोनों का विवाह हो जाता है।

प्रियदर्शिका सम्भवतः पहला नाटक है जिसमें गर्भाङ्क का प्रयोग किया गया है। वैसे यह नाटक पूर्ण रूप से रत्नावली का उल्था ही कहा जा सकता है। इसमें मौलिकता नहीं है। इसका लक्ष्य नये रूप में पुरानी वस्तु का रसास्वादन कराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

प्रियदर्शिका- (नापा) इसी नाम के नाटक की नायिका। वह अमराज की बहन है, अभूतपूर्व सुन्दरी है जिसे कर्त्तविराज चाहता है। किन्तु उसका भाई उसे वत्सराज के लिये निश्चित कर चुका है और स्वयं उसे वत्सराज के पास भेज देता है। अनेक कठिनाइयों के बाद भाग्य उसे वत्स के राज्यघराने में पहुँचा देता है।

वह सुन्दरी तो है ही वत्सराज का स्नेह प्राप्त करने में उसे कुछ भी कठिनाई नहीं होती। साथ ही उसने भावुक हृदय पाया है। वह स्वयं राजा से प्रेम करती है, रानी की वह कोप भाजन है फिर भी अपने प्राप्य प्राप्त करने में जरा भी भयभीत नहीं है। वह कारागार का बन्धु भी भोगती है प्रेम के आवेश में विषपान भी कर लेती है। किन्तु यह विषपान ही उसे उसका अभीष्ट प्राप्त करने में सबसे बड़ा सहायक सिद्ध होता है। वह कलाभिन्न भी है और कलाकार भी। जब उसे वासवदत्ता का अभिनय राजा के साथ करने के लिये दिया जाता है तब उसमें सफलता उसकी कलाभिन्नता का एक बहुत बड़ा प्रमाण है।

प्रियम्बदा- (नापा) देखो अनसूया।

प्रीतिविष्णुप्रियम्- (नाकू) यतीन्द्र विमल चौधरी लिखित ११ अंकों का नाटक। इसमें चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णु प्रिया का चित्रण किया गया है। इसका प्रकाशन १९५८ में प्राच्यकाणी में और १९६१ में मञ्जूषा में हुआ था। इसी लेखक का लिखा भक्तिविष्णुप्रियम् (दे) नाटक इसका पूरक कहा जा सकता है।

प्रेमपीयूषम्- (नाकू) राघवल्लभ त्रिपाठी (दे) लिखित नाटक।

प्रेमविजयम्- (नाकू) मुन्दरेश शर्मा लिखित ७ अंकों का वक्त्रिय कथावस्तु की संस्करण लिखा गया शृङ्गारप्रधान नाटक। इसका अभिनय संस्कृत एकेडमी द्वारा किया गया था। सम्भवतः इस नाटक का प्रकाशन हो चुका है।

हेमचन्द्र मगधनगर प्रतापचन्द्र का रथक है और विदेह पर विजय के उपनश्य में

पुरस्कार प्राप्त करता है। यह बात सेनाध्यक्ष दुर्मति को अच्छी नहीं लगती और कपटप्रयोग से हेमचन्द्र के वध का असफल प्रयोग करता है। इसी बीच राजकुमारी का हेमचन्द्र से प्रणय सम्बन्ध हो जाता है जिससे हट होकर राजा उसे बन्दोगृह में डात देता है। किन्तु कुछ दिनों बाद युद्ध के निमित्त उसे मुक्त किया जाता है और वह शत्रुओं का नारा कर करता है। वह पहले ही सेनापति दुर्मति को मार चुका है। अतः विजय का श्रेय उसे ही प्राप्त होता है। वह विजय के पुरस्कार के रूप में राजकुमारी से विवाह का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। राजा स्वयं कन्यादान करता है।

इस नाटक में प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है।

प्रेमाभिरामम्—(नाक) खविपति त्रिपुरान्तक (दे) की रचना। इसका रचनाकाल १४वीं शताब्दी है।

प्रौढपरन्तपम्—(नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

प्रौढाभिरामम्—(नाक) यह वेङ्कटनाथ लिखित रामविषयक नाटक है। ओरियण्टल लायब्रेरी मैसूर के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग की संख्या २७८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

प्लुष्टखाण्डवम्—(नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

ख

बकुलभूषण—(नाका) देखो जग्गूबकुलभूषण।

बकुलमालिनीपरिणय—(नाक) यह श्रीनिवास (वीरवल्ली) (दे) लिखित १७वीं शताब्दी का नाटक है। इसका सकलत ओरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग ट्यूरेनियल कैटेलाग स ११०४७ पर किया गया है।

वंगीय प्रताप—(नाक) दे वंगीय प्रताप।

वटुकनाथ शर्मा—(नाका) ये भारद्वाज गोत्र के ईश्वरी प्रसाद मिश्र के पुत्र थे और बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर के पद पर अधीष्ठित थे। इन्होंने भारत के नाट्यशास्त्र और भाषा के काव्यालंकार का सम्पादन किया तथा कई अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया।

सहित साहित्य की दिशा में वल्लवदूतम्, शतकसप्तकम्, कालिकाष्टकम्, आत्मनिवेदन शतकम् इन लघु अथवा स्फुट काव्यों के अतिरिक्त सौतास्वयवरनामक एक महाकाव्य तथा पाण्डित्य ताण्डवितम् नामक एक प्रहसन भी इनके साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। इनके कई साहित्यनिबन्ध भी लिटरेरीजर्नल्स में प्रकाशित हुये हैं।

बद्धबाडवम्—(नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

बन्धुमती- (नाकू) (दे) बन्धुमतीशौनक ।

बन्धुमतीशौनक- (नाकू) अवन्ति सुन्दरी कथा में इनका उपाख्यान आया है । समझा जाता है यह एक नाटक रचना (प्रकरण) है । यह अनुमान कौमुदीमहोत्सव के निम्न लिखित पद्य के आधार पर लगाया गया है-

शौनकमिव बन्धुमती कुमारमविमारकं कुङ्क्षीव ।

अर्हन्ति कान्तमतीयं कान्तकुमारवर्माणम् ॥

इस रचना को बन्धुमती इस सक्षिप्त नाम से भी याद किया जाता है ।

इम्बका कक्षानक इस प्रकार है- 'बन्धुमती कोशल की राजकुमारी थी । एक बार जब शौनक गुरु होमव्रात के साथ कोशल दरवार देखने गया उसका राजकुमारी बन्धुमती से प्रेम हो गया । उनका गुप्त सम्बन्ध बहुत समय तक चलता रहा । बन्धुमती का विवाह त्रिगर्त के राजा के साथ तय हो गया था । जब त्रिगर्त का राजा बन्धुमती को लेने आया शौनक और बन्धुमती वहा से निकल गये और सरयू नदी में नाव पर धारा की ओर जल दिये । रास्ते में नावदुर्घटना हो गई और प्रेमी युगल बिछुड गये । शौनक बन्धुमती को तलाश करता हुआ इधर उधर भटकने लगा । उसे नदीतट पर एक सुन्दरी की लाश दिखलाई पड़ी । उसने उसे अपनी प्रेयसी बन्धुमती समझकर उसका शव बर्न कर दिया । उसके वियोग की वदवा जब असह्य हो गई तब शौनक ने आत्महत्या करने की सोची । उसी समय उसे एक तापसी दिखलाई पड़ी जिसके यहा बन्धुमती सुरक्षित थी । जब बन्धुमती ने अन्दर से शौनक की आवाज सुनी और पहिचान लिया तब वर बाहर आ गई और इस प्रकार प्रेमी युगल का पुनर्मिलन हो गया । बन्धुमती ने बतलाया कि उसको एक ग्वालिन ने बन्ध लिया था । किन्तु उस ग्वालिन को सर्प ने डस लिया और उसकी अञ्चाल मृत्यु हो गई । उसी की लाश का शौनक ने शव बर्न किया था । पुत्री को तलाश करते हुये कोशल नरेश भी वहा आ गये त्रिगर्त राजा ने उन पर आरोप लगाया था कि उन्होंने जानबुझ कर अपनी पुत्री को भाग जाने दिया । इसीलिये उसने कोशल नरेश पर विजय प्राप्त कर उसे विवाह दिया । अन्त में शौनक ने युद्ध कर त्रिगर्त को पराजित कर कोशल नरेश को उनका राज्य पुन दे दिया ।

बन्धुरा- (नापा) हास्यार्णव में एक कुट्टिनी जो वेश्यालय चलाती है । व्यक्तियों के चरित्र का अध्ययन करने के लिये राजा उसके यहा जाता है । वह राजा को अपनी लडकी मृगाङ्गलेखा से पिनाही है जिस पर धर्माध्यक्ष आदि जाने कितनों की निगाहे लगी हैं । विदूषक वैद्य को उसकी चिकित्सा के लिये बुलाया जाता है । किन्तु उसकी चिकित्सा राग स भी भयानक है । वैद्य को भागना पड़ता है । अनेक प्राहकों में बुढ़ों को मृगाङ्गलेखा मिलती है किन्तु नवयुवकों को बन्धुरा में सन्तोष करना पड़ता है ।

बलराम- (नापा) कृष्ण के भाई और ब्रीडा महरार । बड़ी नाटकों में उनका पात्र

के रूप में उपादान हुआ है। दो एक उदाहरण—

(१) बालचरित- में वे कृष्ण के झोड़ा सहचर तो हैं ही उनको भी कृष्ण के साथ कस के यहा बुलाया जाता है और वे भी कसवध के अवसर पर कृष्ण के सहयोगी हैं।

(२) उरुधग- में भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध के अवसर पर वे भी उपस्थित होते हैं और दुर्योधन की क्षणिक सफलताओं पर वे उसका अभिनन्दन भी करते हैं क्योंकि गदायुद्ध में वह बलराम का शिष्य है। जब गदायुद्ध में नियमों के प्रतिकूल भीमसेन दुर्योधन की जघायें तोड़ देते हैं तब वे भीम को दण्ड देने के लिये तैयार हो जाते हैं किन्तु दुर्योधन द्वारा वे रोक दिये जाते हैं।

(३) वेणीसहार- में युधिष्ठिर के बलराम के प्रति उपासम्भ से भी उनके दुर्योधन के प्रति पक्षपात भी अभिव्यक्ति होती है।

बलिविजय- (नाक) जगूबकुलभूषण (दे) लिखित वामनावतार परक नाटक। इसमें छाया तत्व की अधिकता और शिष्टहास्य की विशेषता है।

बहुरूपमिश्र- (नाशाका) इन्होंने दशरूपक पर रूपदीपिका टीका लिखी है। टीका में पुष्पिका (colophone) में इन्हे महामहोपाध्याय कहा गया है। स्वयं मुरारि और भोज के बाद किसी ग्रन्थकार का उल्लेख न मिलने और मम्मट जैसे आचार्य का नामोल्लेख न होने से ज्ञात होता है कि इनका समय ईसा की १२वीं शताब्दी है। इन्होंने उक्त टीका में कई लक्ष्य-लक्षण ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का उल्लेख किया है जिनमें निम्नलिखित नाटयकृतियां सम्मिलित हैं—

अमृतमन्थन, उदात्तराघव, कामदत्ता, कुसुमशेखरविजय, कृत्यारवण, छलितराम, तरगदत्त, तारकोद्धरण, देवी परिणय, पाण्डवानन्द, पुष्पभूषितक, प्रतिभाभीम, भगवदञ्जुका, भीमविक्रम, मदलोखा, मालतिका, मेनकानहुष, रामाभ्युदय, ललितनागर, स्तम्भितरम्भक, स्वप्नवासवदत्तम्।

बहुलवालिशम्- (नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित ८ अंको का नाटक।

बागलादेशोदयम्- (नाक) इस नाटक के लेखक हैं रामकृष्ण शर्मा। वर्ष (१९७१) की सबसे महत्वपूर्ण घटना बंगलादेश की स्थापना है। उसी को लेकर इसकी रचना की गई है। इसमें बंगलादेश के सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि प्रश्नों का स्पर्श किया गया है।

इसका प्रकाशन भारतीयविद्याप्रकाशन कचौड़ी गली से हुआ है। इसमें डा सत्यव्रत की विस्तृत महत्वपूर्ण अपेजी भूमिका दी हुई है।

बाण- (नाका) सम्भवत ये प्रसिद्ध बाण भट्ट ही हैं जिन्होंने अपनी कादम्बरी कथा का एक अंश लेकर शारदा चन्द्रिका नामक नाटक की रचना की थी।

बाण- (नापा) प्रसन्न राघव में एक पात्र। सीता के विवाहच्छुओं में वह भी एक है। वह रावण के साथ धनुष यज्ञ में आता है, धनुष चढ़ाने का असफल प्रयास करता है

और वहा इसका रावण के साथ लम्बा बाद विवाद होता है।

बाण- (नाका) देखो वामन भट्ट बाण।

बाणेश्वर विद्यालकार- (नाका) ये योग्य पिता तर्कवागीश नैयायिक के योग्य पुत्र थे। इन्हें पिता से ही शिक्षा प्राप्त हुई थी। ये बगाल के हुगली जिले के गुप्तपल्ली ग्राम के निवासी थे। इन्होंने कई आश्रयदाताओं के आश्रय में साहित्यसर्जना की थी। समय समय पर इनके आश्रय दाता थे नदिमा के कृष्णचन्द्र मुर्शिदाबाद के अलोवर्दी खा, वर्दवान के चित्रसेन और कलकता में शोभावाजार के महाराज नवकृष्णदेव।

इनकी साहित्य साधना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है २१ खण्डों में धर्मशास्त्र विषयक विवादार्णव सेतु की रचना। वारेनहेस्टिडज के आदेश पर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया गया था। यह धर्मशास्त्र की विश्वकोश जैसी रचना है। इसके अतिरिक्त भी इनका साहित्य अत्यन्त विस्तृत है जिसमें चम्पू, काव्य, स्तोत्र इत्यादि अनेक क्षेत्रों की रचनाओं का समावेश है। इन्होंने चन्द्रार्थवेक्यामक (दे) ९ अंकों का एक नाटक भी लिखा था।

बाभ्रव्य- (नापा) रत्नावली (दे) में बत्स का कञ्चुकी। यौगन्धरायण ने उसी के द्वारा यह खबर फैलाई कि वासवदत्ता मर गई है। वह रत्नावली को लेने लका को भेजा जाता है और वहा का राजा उसके तथा अपने मन्त्री के साथ पुत्री को उदयन के पास भेज देता है। मार्ग में प्रवहण भग्न हो जाता है जिससे बचते बचते किसी प्रकार सभी लोग बिनारे लग जाते हैं। वह भी बच जाता है। इन्द्रजालिक द्वारा आग की घटना के बाद वही रत्नावली को सागरिका के रूप में पहिचानता है। इस प्रकार कथानक की मूल घटनायें उसी के सहयोग से सम्पादित की जाती हैं।

बाल कवि- (नाकू) ये मुल्लनद्रुम जिला उत्तरी अर्काट के निवासी थे। ये भरद्वाज गोत्री बालहरी के पुत्र मल्लिकार्जुन के पौत्र एव उदण्ड के समसामयिक एव कोचीन के रामवर्मा के दरबारी कवि थे। इनका समय १६वीं शताब्दी का मध्य भाग है। रामवर्मा ने भाई गोदावर्मा के लिये राज्य का परित्याग कर दिया था और बनारस की तीर्थ यात्रा की थी। बालकवि ने राज्यत्याग पर्यन्त उनके जीवन का वर्णन रत्नकेतूदय नाटक में किया है। इनके दो प्रतीक नाटकों का उल्लेख पाया जाता है शिवभक्तानन्द (दे) और गैर्वाण विजय (दे) इन तीन नाटकों के अतिरिक्त रामवर्मदिलासम् (दे) नामक एक अन्य कृति भी इनके नाम पर पाई जाती है।

बालकृष्ण- (नाका) भुदितराघव नाटक के लेखक।

बालचन्द्रिका- (नाकू) (१) नारायण शास्त्री लिखित ९ अंकों का नाटक।

बालचरित- (नाकू) यर भास का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें कृष्ण की बाललीला का चित्रण किया गया है। इस कथन का स्रोत क्या है इसका कुछ पता नहीं चलता। महाभारत या किसी प्राचीन ग्रन्थ में बालचरित का वर्णन मिलता नहीं और

श्रीमद्भागवत इत्यादि जिन ग्रन्थों में बालचरित मिलता है भास के पहले के नहीं हैं। कृष्ण की प्रचलित बाललाला से भास के बालचरित की लीलायें अनेक अंशों में भिन्न हैं।

इस नाटक की कुछ लीलायें सूच्य हैं और कुछ दृश्य। सूच्य अंकों में पूतना शकट धेनुक प्रलम्ब यमलार्जुन आदि के वध का वर्णन किया गया है। दृश्य प्रसंगों में कृष्णजन्म, बच्चे को नन्द के यहां पहुंचाना कन्या का कस द्वारा वध और उसकी देवी रूपता प्राप्ति अरिष्टासुर एवं वृषासुर वध कृष्ण का वृन्दावन में गोपियों के साथ नृत्यगान आदि लीलायें सम्मिलित हैं। कस की सभा में कृष्ण के लोकोत्तर कर्म जिनमें हाथी का दमन, कुब्जा का कुब्जात्व से छुटकारा आदि घटनायें सूच्य हैं। कृष्ण चुने हुये मत्तों को पराजित कर कस पर सहसा आक्रमण कर यमलोक पहुंचा देते हैं और उपसेन को मन्दी घर से छुड़ाकर राजा बना देते हैं। नारद प्रारम्भ में भी आते हैं और अन्त में भी गन्धर्वों और अप्सराओं के साथ कृष्ण की स्तुति करने के लिये उपस्थित होते हैं।

कृष्ण के बालचरित के विषय में जो पैरागिक उपाख्यान प्रसिद्ध हैं उनके अतिरिक्त भी भास की कुछ कल्पनायें पाई जाती हैं। जब वसुदेव कृष्ण को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने ले जाते हैं तब अपेक्ष्य अन्यकार को दूर करने के लिये कृष्ण एक नई ज्योति उत्पन्न कर देते हैं। यशोदा के मृत लडकी पैदा हुई है जिसे दफनाने नन्द ले आते हैं। सयोग से या वृक्ष पर रहने वाले देवता की कृपा से उनकी भेंट वसुदेव से हो जाती है और वे कृष्ण की रक्षा के लिये राजी हो जाते हैं किन्तु मृत बालिका के स्पर्श से उत्पन्न अशुद्धि को दूर करने के बाद ही वे कृष्ण का स्पर्श करना चाहते हैं। कृष्ण की प्रेरणा से वही तत्काल नई धारा प्रवाहित हो जाती है। इसी समय गोपालों के वेप में निष्णु के आयुध प्रकट होते हैं। इसी प्रकार कस को दिया गया मधूक ऋषि का शाप चण्डालवेष में दलदल के साथ कस की शक्ति को घस लता है। इसी प्रकार की कई अन्य कल्पनायें भास को विष्णुभक्ति को प्रकट करती हैं।

प्रविधि की दृष्टि से यह नाटक महत्वपूर्ण परम्परा स्थापित करता है। इसमें वीर रस प्रधान है क्योंकि कृष्ण वीरता का रूप है। किन्तु वीर रस शृङ्गार और अद्भुत से मिश्रित है। अनेक वीरभक्त आकृतियां भयानक तथा वीरभक्त के निष्पादन में भी कवि की दक्षता सिद्ध करती हैं। इस नाटक में भास के अन्य नाटकों की अपेक्षा पात्रों की संख्या सबसे अधिक है। कवि ने आयुध राज्यश्री शाप इत्यादि का मानवीकरण किया है जिसमें प्रतीक (दे) की प्रविधि अपनाई गई है। सब मिलाकर यह एक सफल रचना है और इसमें नाट्य विधा को ही नहीं कृष्णचरित को नई दिशा दी गई है।

बालनाटकम्—(नाकृ) यह एक छोटा सा बच्चों के पढ़ने योग्य नाटक है। इसकी रचना वासुदेव द्विवेदी ने की है। संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला वाराणसी से इसका प्रकाशन हो चुका है।

बालप्राहुणिकम्- (नाट्) राजशेखर शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक ।

बालभारत- (नाट्) राजशेखर (दे) का अपूर्ण नाटक । अब तक इसके केवल दो अंक उपलब्ध हो सके हैं जिनमें प्रसाद गुणपूर्ण शैली में द्रौपदी स्वयंवर, द्यूत में राज्य का अपहरण, राजसभा में द्रौपदी का अपमान और पण्डवों के वनगमन को अङ्कित किया गया है । इसका दूसरा नाम 'चण्डपण्डव' भी है । इसका प्रकाशन स्टैसवर्ग और बम्बई से हुआ है । विन्सन के थियेटर ॥ ३६१ स पर इसका चित्रण किया गया है ।

बालमार्तण्डाजयम्- (नाट्) देवराज (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक । इसकी रचना १८वीं शताब्दी के मध्य में हुई थी । कवि ने अपने आश्रयदाता मार्तण्ड वर्मा की प्रशंसा में इस नाटक की रचना की थी जिसमें विजययात्राओं के साथ सम्पत्तियों के अधिग्रहण, मन्दिर के जीर्णोद्धार इत्यादि को नाट्य विषय बनाया गया है । इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रमसस्कृतमोरीज ट्रान्क्लेर से हुआ है जिसमें लेखक की भूमिका है । यह नाटक ऐतिहासिक घटनाओं से भरपूर है, परन्तु उनमें अनिरजना अधिक है । यह नाटक अभिनेय कम पठनीय अधिक है ।

बालरामायण- (नाट्) राजशेखर (दे) लिखित १० अंकों का विशाल नाटक (महानाटक) है । नाटक में ७४१ पद्य हैं जिनमें अधिकांश में बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है । इसमें रामायण की सम्पूर्ण कथा आ गई है । कवि ने केवल काल्पनिक का ही नहीं भवभूति का भी आश्रय लिया है । कवि प्रायः प्रतिष्ठित रामकथा से कुछ हट जाता है । इस नवीनता में नाटकीयता की वृद्धि ही होती है । रावण प्रारम्भ से ही सीता के विषय में राम का प्रतिद्वन्द्वी दिखलाया गया है । इसमें रावण की उपमा की उपेक्षा उसकी प्रेममयी कोमल भावनाओं को अधिक महत्व दिया गया है । राम के प्रेम चित्रण में राजशेखर स्वयं को काल्पनिक भर्तृप्रेष्ठ (दे) भवभूति (दे) का अवतार मानते हैं । हर्षदेव और भवभूति के समान राजशेखर ने भी इस नाटक में नाटक के अन्दर एक नाटक रक्खा है । इसके अब बहुत बड़े हैं । रावण (दे) के सीता प्रेम पर विशेष ध्यान दिया गया है । राजशेखर की सफल अभिव्यञ्जना पद्धति के इस नाटक में भी यथेष्ट दर्शन होते हैं । ललित और आकर्षक पद्य इसकी अन्यतम विशेषता है ।

इस नाटक में रामकथा के विषय में अनेक नई उद्भावनाएँ हैं । रावण सीता को चारदा है, किन्तु धनुष चढ़ाकर परीक्षा नहीं देता और धमकी देता है कि जो भी सीता से विवाह करेगा उसका वह अहित करेगा । रावण परशुराम से इस विषय में सहायता मांगता है, किन्तु इसे निराश होना पड़ता है । राम और सीता का विवाह रावण की उपस्थिति में होता है । सीता और उग्रसी महैलिया मजाक में धात्रीपुत्री की पुतलिकाएँ रावण को भेंट कर उसे मूर्ख बनाती हैं जिसमें रावण धोखा खा जाता है । सेतु का भार धरन करने के लिये समुद्र को मगधायक जाता है । सीता का कटा हुआ सर समुद्र के किनारे पड़ा जाता है जिसमें धम पड़ा जाता है किन्तु उस सर के बोलने में धम मिट जाता है । वस्तुतः

वर बोलने वाली पुतली है। राम विमान द्वारा चन्द्रलोक होते हुये अयोध्या को लौटते हैं। इसी प्रकार की नई कल्पनाओं से रामकथा का रूप नया ही हो गया है।

इसके टीकाकार हे- डा विद्यासागर (कलकत्ता से प्रकाशित), लक्ष्मणसूरि (तजौर से प्रकाशित), और एक अज्ञातनामा कवि की टीका।

बालवाल्मीकि- (नाका) मुरारि (दे) का उपनाम। मुरारि स्वयं को वाल्मीकि कहलाने पर गर्व का अनुभव करते थे और इस उपाधि पर अपना अधिकार जमाते थे।

बालविधवा- (नाकू) सीताछव दयाल की कृति। एक ऐसी बाल विधवा की मनोरंजक कहानी जो अनूप के प्रेमपाश में फस जाती है।

बालसूरि- (नाका) ये श्रीराम के निवासी थे। इन्होंने पाञ्चाली परिणय (दे) नाटक की रचना की थी। इन्होंने स्वयं कहा है कि इस नाटक की रचना राजशेखर के आदर्श पर की गई थी।

बालिकावञ्चितक- (नाकू) यह नाटक कृष्ण विषयक बतलाया जाता है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोस्म खण्ड १ स ११९ में किया गया है। सम्भवत यह रचना मधुसूदन की है। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में किया गया है।

बिन्दुमती- (नाकू) दुर्मल्लिका उपरूपक का विश्वनाथ द्वारा दिया गया उदाहरण। यह रचना अश्रुप्राप्त है।

बिल्हण- (नाका) कौशिकगोत्रीय मध्यदेशीवर्ग के काश्मीरी ब्राह्मण थे। इनका जन्म पिता ज्येष्ठवलरा और माता नागदेवी से १२वीं शताब्दी में हुआ था। इनका वरा विद्वानों का था जिनमें व्याकरण शास्त्र को प्रधानता थी। इनके पिता ने महाभाष्य पर टीका लिखी थी। इनके भाई भी कवि थे। शिक्षा समाप्त कर ये भारत भ्रमण के लिये निकल पड़े। मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, बनारस, उज्जैन, गुजरात (सोमनाथ), रामेश्वरम्, कर्णाटक प्रभृति स्थानों पर जीवन के कुछ वर्ष बिताये थे। छठे विक्रमादित्य त्रिभुवन मल्ल ने इनका विशेष सत्कार किया और इन्हें विद्यापति (शिक्षासञ्चालक) बना दिया जहाँ इन्होंने जीवन का कुछ अधिक भाग बिताया। वहाँ इन्होंने प्रसिद्ध विक्रमाङ्कदेव की रचना की जो अपूर्ण है, क्योंकि इसमें विक्रमदेव के नर्मदा पार की विजय यात्रा का इतिहास प्राप्त नहीं होता।

विक्रमाङ्कदेव चरित के अतिरिक्त इनके साहित्य में कर्णसुन्दरी (दे) नाटक भी प्राप्त हुआ है।

बिल्हणीयम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक।

बीभत्स- (नापा) मुद्राराक्षस का एक पात्र। चन्द्रगुप्त के रहने के लिये जो भवन तैयार किया गया था उसमें राक्षस ने गुप्त रूप से एक सुरंग बनवा दी थी जिसमें बीभत्स जैसे कई व्यक्ति छिपा दिये गये थे जिनका उद्देश्य रात में चन्द्रगुप्त का वध करना था। चाणक्य उस भवन का निरीक्षण करने गया। जब उसने चावल के बण लिये चौंटियों

को देखा तो अनुमान लगा लिया कि निश्चय ही इस भवन में कुछ लोग छिपे हैं। अतः उसने उस भवन को उड़ा देने की आज्ञा दे दी जिससे बीभत्स इत्यादि सभी राक्षसप्रतिनिधि मारे गये।

बुद्ध-(नापा) (१) अश्वघोष (दे) कृत शारिपुत्र प्रकरण में बुद्ध एक पात्र है। पहले शारिपुत्र का विदूषक से इस विषय में शास्त्रार्थ होता है कि श्रविय बुद्ध का एक ब्राह्मण को उपदेश देने का क्या अधिकार है। विदूषक पराजित होता है। तब मौद्गल्यायन और शारिपुत्र बुद्ध के पास जाते हैं। बुद्ध उनका स्वागत करते हैं। अन्त में एक नित्य आत्मा के विषय में शारिपुत्र से उनका शास्त्रार्थ होता है और शारिपुत्र उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लेते हैं। बुद्ध परम ज्ञानी होने के साथ ही एक उच्च मानव भी हैं। और गुण घाटक भी। उनमें व्यक्ति को पहिचानने की भी अपूर्व क्षमता है।

(२) अश्वघोष- (दे) के ही दूसरे (प्रतीक नाटक) में बुद्ध परम तत्व हैं। वे सब कहीं व्यापक हैं, आकाश में विचरण करते हैं, पृथ्वी में समये हुये हैं, बादलों से वर्षा करवाते हैं, समयकाल में सूर्य विरणों से अनुजित मेघ के रूप में दिखलाई देते हैं। वे अपने भक्तों के बीच में आते हैं और वार्तालाप में सम्मिलित होते हैं।

बुद्धि-(नापा) अश्वघोष (दे) के प्रतीक रूप में एक पात्र जो कीर्ति और धृति के साथ वार्तालाप करती है। इसकी भाषा संस्कृत है।

बृहत्सुभद्रक-(नाक) यह एक प्रहसन है। इसका उद्देश्य सिंह भूपाल के रसार्णव सुधाकर में किया गया है।

बृहन्नला-(नापा) यह पञ्चात्र (दे) का एक पात्र है। अर्जुन ने इसी नाम रूप में अपना अज्ञातवास बिताया था और इसी रूप में विराट पुर का युद्ध लड़ा था जिसमें कौरव सेना एकाकी अर्जुन से पूरी तरह पराजित हुई थी।

बोकील विनायक राव-(नाका) दे विनायकराव बोकील।

बोधायन-(नाका) प्रसिद्ध दार्शनिक वृत्तिकार। इनका लिखा भगवदज्जुका (दे) नामक प्रहसन बतलाया जाता है। सुकुमार ने अपने रघुवीरचरित नाटक में बोधायन की अत्यधिक प्रशंसा की है।

बौद्धनाट्यसाहित्य-(नासा) बौद्धधर्म की दृष्टि से सभी सगीत नाट्य इत्यादि अवगच्छनीय हैं (सर्व प्रलपित गीत सर्व नाट्य विडम्बितम्)। किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि बौद्ध साहित्य में नाट्यकला सर्वथा अज्ञान थी। बौद्धधर्मग्रन्थों में इसकी सत्ता का उल्लेख यत्र तत्र पाया जाता है। अवदानशतक में नर्तकी कुवलय का उल्लेख मिलता है जो अत्यन्त उपाति प्राप्त कर गई थी और अधिनय के प्रभाव से पिशुओं को सत्य से दृग्गती फिर रही थी। बुद्ध ने क्रुत्सित बूढ़ा के रूप में उसे परिणत कर उसकी वृत्ति का अन्त कर दिया। बाद में बुद्ध की शरण में आकर उसने सदति प्राप्त की। तत्तित

विस्तर में स्वयं बुद्ध द्वारा नाट्य शिक्षा लेने का उल्लेख पाया जाता है। अवदानशतक से नाटक की अति प्राचीनता सिद्ध होती है। दिव्यादान में मार और उपपुण्ड के विषय में जो कविता आती है वह किसी नाटक का खण्ड प्रतीत होती है। प्रथम नाटककार अश्वघोष (दे) सम्भवतः बौद्ध ही थे जिनकी नाट्य कृतियाँ तुर्फान के राजपत्रों में प्राप्त हुई हैं। उनकी शारिपुत्रप्रकरण (दे) इत्यादि कृतियाँ बौद्ध साहित्य के अन्तर्गत ही आती हैं। चन्द्रगोमिन (दे) का लिखा लोकानन्द (दे) बौद्ध साहित्य के अन्तर्गत ही माना जाता है। ईत्सिंग ने लिखा है कि बेस्सन्तर अथवा सुदानजातक (विश्वान्तर जातक) को पूर्वोक्त भारत के सन्त चन्द्र ने कविता में रूपान्तरित किया था जिसका अभिनय के साथ गायन ईत्सिंग के अनुसार प्रायः समस्त भारत में किया जाता था। बौद्धसाहित्य एवं रीतिरिवाजों में सवाद एवं अभिनय का रूप देखा जा सकता है। विण्टरनिट्ज ने लिखा है कि आज भी बेस्सन्तर जातक का नाट्य जातक के रूप में प्रयोग किया जाता है, किसी भी नवीन शिष्य की दीक्षा प्रारम्भ करने के अवसर पर इस प्रकार का अभिनय किया जाता है। चीन में बौद्ध कथानकों का मठों में नाट्यरूप में प्रस्तुतीकरण और तिब्बत में मठों में वसन्त और शारद में प्राचीन नाटकों के अवशेषों का प्रदर्शन बौद्ध साहित्य में नाट्य सत्ता को सिद्ध करता है।

केवल यही नहीं कि बौद्ध नाट्य साहित्य की कृतियाँ भारत से मध्य एशिया चीन और तिब्बत से जाई गईं और उनका अनुवाद वहाँ की भाषाओं में किया गया— वहाँ की भाषाओं में मौलिक साहित्य भी लिखा गया जिस पर भारतीय नाट्यप्रविधि का पर्याप्त प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। इस साहित्य में भगवान् बुद्ध की जीवन गाथा का नाट्यवस्तु के रूप में उपादान किया गया है। चीनी नाटकों से उन विधेदों पर भी प्रकाश पड़ जाता है जो दूरी कृत व्यवधान के कारण उस प्रविधि में आ गये हैं।

बौद्ध साहित्य में नाट्यकला को स्वीकार करते हुये भी कहना न होगा कि संस्कृत साहित्य में बौद्ध नाट्य साहित्य की एक भी पूर्णकृति उपलब्ध नहीं होती। हर्ष के नागार्जुनन्द नाटक को भी पूर्ण बौद्ध नाटक नहीं कहा जा सकता। वह एक सामान्य नाटक ही है बौद्ध नाटक नहीं। क्योंकि उसमें बौद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया गया है। कई भागों में बिखरे कथानक को जीमूत वाहन को नायक बनाकर और उसके चरित्र में सभी भागों को जोड़कर उसकी एक रूपता की रक्षा की गई है। जीमूत वाहन का त्याग बौद्ध विचारधारा का परिचायक है किन्तु उसमें पौराणिक पात्र गरुड का समावेश और भगवतो गौरी की चमत्कार पूर्ण दैवी शक्ति द्वारा कार्य का निर्वहण उसे पूर्ण बौद्ध नाटक की सीमा में नहीं आने देते और न उसकी तद्रूपता प्रमाणित की जा सकती है। अश्वघोष का शारिपुत्रप्रकरण भी आशिक रूप में ही उपलब्ध हुआ है। चन्द्रगोमिन का लोकानन्द केवल तिब्बती अनुवाद में उपलब्ध होता है। चीन में कतिपय बौद्धकथानकों को नाट्यरूप में दिखलाने की प्रथा है। तिब्बत में ऋतुओं के अवसर पर एवं छात्रों के नवदीक्षा समारोह

में इस प्रकार के समारोह होने हैं। बुद्ध के सिद्धार्थरूप एवं अनेक बौद्ध कथानक नाट्य की श्रेणी में आते हैं अवश्य किन्तु उसका सम्बन्ध साहित्य से कोई वास्ता नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि संस्कृत नाट्य परम्परा में बौद्ध साहित्य के कतिपय फुटकर खण्ड ही उपलब्ध हो सके हैं किसी पूर्ण नाटक का इस दिशा में सर्वथा अभाव है।

ब्रह्ममित्र वैद्यनाथ- (नाक) इनका लिखा भैरवविलासम् (दे) नाटक प्राप्त होता है जिसका कथानक विचित्र प्रकार का है।

ब्रह्मविद्या- (नाक) नारायणशास्त्री लिखित १० अंकों का प्रतीक नाटक।

भ

भक्तध्रुव- (नाक) डा बनपाला लिखित नाटक।

भक्त सुदर्शनम्- (नाक) मधुराप्रसाद दीक्षित (दे) लिखित ६ अंकों का नाटक। इसमें अयोध्या के उत्तराधिकारसम्बन्धी सङ्घर्ष का चित्रण किया गया है। राजा ध्रुवसन्धि की मृत्यु के बाद वास्तविक उत्तराधिकारी सुदर्शन है। किन्तु उसका सौतेला भाई शत्रुजित् भी अधिकार चाहता है जिसमें उसके नाना युधाजित् उसकी सहायता करते हैं। युद्ध होता है जिसमें सुदर्शन के नाना वीरसेन मारे जाते हैं। सुदर्शन की माता पुत्र को लेकर भरद्वाज आश्रम में चली जाती है। वहाँ सुदर्शन जगदम्बिका की उपासना करता है। वाराणसी की राजकुमारी सुदर्शन को स्वप्न में देखती है और काम पीडित हो जाती है। उसके स्वयंवर के समय युद्ध होता है और शत्रुजित् मारा जाता है। सुदर्शन और राशिकला का विवाह होता है और वह अयोध्या का राजसिंहासन प्राप्त करता है।

इसके सवाद छोटे छोटे एवं चटपटे हैं। तथा इसमें गीतों की अधिकता है।

भक्तिचन्द्रोदय- (नाक) यह वेङ्कटकृष्णाव की तीन अंकों की रचना है। पुरुषोत्तम नारायण नालन्दा में दुःखी है कि लोग शङ्कर, रामानुज इत्यादि को भूल गये हैं। मैसूर के वृन्दावन गाँव में शङ्कर, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य इत्यादि दुःखी हैं कि लोग उनके दर्शने परणों को भूल गये हैं। अन्त में 'य शैवा समुपासते शिव इति' इत्यादि पद्य को सर्वत्र प्रचारित कर और सौहार्द उत्पन्न करने का उपदेश देकर नाटक समाप्त हो जाता है।

यह नाटक भारतीयपरम्परा के अनुसार लिखा गया है। साथ ही इसमें रंग निर्देश भी प्रयुक्त किये गये हैं। सन् १९५७ में मञ्जूषा में इसका प्रकाशन हो गया था।

भक्तिभागवत- (नाक) यह जीवदेव (दे) लिखित एक नाट्यकृति है। इसे भक्ति रामायण की भी सन्ना दी जाती है। इसका उल्लेख गायकबाड ओरियण्टल सीरीज बर्होदा की कथोन्म सूची में १९६७ संख्या पर किया गया है।

भक्तिविजय- (नाक) यह भूर्जटिप्रसाद काव्यतीर्थ (दे) लिखित नाटक है जिसका

प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है।

भक्तिविष्णुप्रथम्- (नाक) यतीन्द्रविमलचौधरी (दे) लिखित नाटक। यह श्रोति विष्णुप्रियम् (दे) का पूरक अंश माना जा सकता है। पत्नी विष्णुप्रिया पर माता का भार सौंप कर चैतन्यमहाप्रभु परिव्राजक बन जाते हैं। विष्णुप्रिया जीवन भर वैष्णवधर्म का प्रचार करते हुये जी जीवन समाप्त करती है। इसकी रचना २०वीं शताब्दी में हुई। इसका प्रथम अभिनय पाण्डिचेरी के अरविन्दाश्रम में किया गया। १९६८ में राष्ट्रपति के सामने भी इसका अभिनय किया गया तथा प्राच्यवाणी द्वारा अनेकवार इसका अभिनय सम्पन्न हुआ।

भक्तिवैभव- (नाक) उड़ीसा के राजा गजपति क दरबारी कवि अंबदेवाचार्य का लिखा नाटक है। इसका रचनाकाल १५०० ई के आस पास है।

भगवदज्जुका- (नाक) एक प्रहसन। इसका उल्लेख ६१० ई के मामगुर के शिलालेख में किया गया है। कुछ लोग इसे ४थी शताब्दी से भी पहले की रचना मानने हैं। इसके लेखक के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस पर तीन टीकायें प्राप्त होती हैं तीनों में लेखक के विषय में मतभेद है। टीकाकार नारायण ने इसे प्रसिद्ध दार्शनिक वृत्तिकार बोधायन की रचना माना है। अच्युत के शिष्य टीकाकार राम ने इसे भारत लिखित बतलाया है। यह कम सम्भव प्रतीत होता है कि इन महान लेखकों ने यह प्रहसन लिखा हो। अज्ञातनाम लेखक की एक अन्य टीका भी प्राप्त होती है जिसका उल्लेख मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८४३७ संख्या पर किया गया है। इस टीकाकार ने प्रस्तुत प्रहसन के लेखक का नाम नहीं दिया है।

इस नाटक में प्रमुखतः तीन पात्र हैं- एक परिव्राजक, एक शिष्य और एक वेश्या। परिव्राजक और शिष्य में दार्शनिक विषय में विवाद हो रहा है। पास ही उद्यान में एक वेश्या विद्यमान है। शिष्य का पूरा ध्यान वेश्या की ओर है वह गुरु के धार्मिक वार्तालाप के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन है। इसी बीच वेश्या को साप डस लेता है और वह मर जाती है। योगी के लिये अपना प्रभाव दिखलाने का अच्छा अवसर मिल जाता है। वह योग के प्रभाव से अपनी आत्मा वेश्या के शरीर में सञ्चारित कर देता है और वेश्या जीवित होकर योगी जैसी बातें करने लगती है। लोग चकित हो जाते हैं। इसी बीच यमदूत को अपनी गलती मालूम पड़ जाती है कि वह और के स्थान पर और के प्राण लेकर चला गया है। वह लौटकर वेश्या के प्राण वापस करना चाहता है। किन्तु यह देखकर कि वेश्या जीवित है और योगी जैसी बातें कर रही है वह चकित हो जाता है और जब तक मरने वाले वास्तविक व्यक्ति के प्राण लेकर लौट तक तब तक के लिये योगी के शरीर में वेश्या की आत्मा सञ्चारित कर देता है। अब वेश्या योगियों जैसी और योगी वेश्या जैसी बातें करने लगते हैं। शिष्य परेशान है कि आखिर यह मामला क्या है।

जब यमदूत लौटकर आता है योगी जी वेश्या का शरीर छोड़ देते हैं। वेश्या और योगी दोनों अपने अपने शरीरों में आ जाते हैं।

यह नाटक है तो प्रहसन किन्तु ज्ञात होता है भावनात्मक आधार पर बौद्ध धर्म के अनात्मवाद का खण्डन करने के लिये इसकी रचना हुई है।

भगवन्तराय- (नाका) इनका 'खा राघवाम्युदय नाटक कैटेलागस कैटेलागोम II ११७ में उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी पता नहीं।

भगनाशोकम्- (नाक) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक।

भञ्जमहोदय- (नाक) नीलकण्ठ (दे) लिखित १० अंकों का नाटक। इसमें क्योझर के भजवशी राजाओं का वंशानुगत परिचय है। प्रधानरूप से बलभद्र भजदेव (१७६४-१७९२) का परिचय दिया गया है। रगमञ्ज पर केवल दो पात्र आते हैं- प्रियम्बदा और अकलेश्वर। उनके संवादों से समस्त इतिवृत्त का परिचय प्राप्त हो जाता है। युद्धों के वर्णन के कारण रचना में सजीवता आ गई है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

भट्टगोपाल- (नाकास) भवभूति (दे) के पितामह।

भट्टनारायण- (नाका) प्रसिद्ध नाटक वेणीसहार (दे) के लेखक। ये शाण्डिल्य गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्हें मृगराज उपनाम से भी याद किया जाता है। जल्हण ने इन्हें सूक्ति मुक्तावली में निशाननारायण २॥ कहा है, क्योंकि इन्होंने १. का बहुत अच्छा वर्णन किया है। इनको संक्षेप में केवल नारायण नाम से भी अभिहित किया गया है।

कहा जाता है ७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बंगाल के आदिसूर राजा के निमन्त्रण पर ये अन्य चार ब्राह्मणों के साथ बंगाल में रहने चले गये थे। उन्हीं से बंगाली ब्राह्मणों की पारम्परि चली। धर्मवीरि के रूपावतार की टीका नीची में लिखा है कि वाणभट्ट के कहने पर भट्टनारायण ने धर्मवीरि का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था और उनसे बौद्ध दर्शन पढ़ कर उन्हें पराजित कर दिया था। टीकाकार का कहना है कि रूपावतार कृति धर्मवीरि और भट्टनारायण की सम्मिलित रचना है। दण्डी ने अवन्तिमुन्दरी कथा में इनको तीन प्रबन्धों का कर्ता बतलाया है। किन्तु अब इनकी एक मात्र कृति वेणीसहार हो उपलब्ध होती है। सुभाषितावली में इनके नाम पर एक पद्य प्राप्त हुआ है जो किसी नाटक का नाट्यी पाठ ज्ञात होता है। अवन्तिमुन्दरी कथा में दण्डी ने इन्हें नाटकों का कर्ता बतलाया है।

इनके व्यक्तित्व के विषय में निश्चित रूप से केवल इतना ज्ञात है कि इन्होंने नाटक की प्रस्तावना में 'कवेर्मृगाजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिम् वेणीसहार नाम नाटकम्।' कहकर बतला दिया है कि इस नाटक का रचनाकार भट्टनारायण नामक कवि है जिसे

मृगराज का चिह्न प्राप्त था। मृगराज का अर्थ सिंह भी होता है और चन्द्र (मृगाङ्ग) भी। इससे कुछ लोगों ने अनुमान लगाया है कि ये क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुये थे और सम्भवतः इनका जन्म चन्द्रवंश में हुआ था। किन्तु यह अनुमान तर्क पर खरा नहीं ठहरता। क्षत्रिय कुल के लोग अपने नाम के अन्त में सिंह शब्द का प्रयोग करते हैं, उसका चिह्न धारण नहीं करते। नाम के साथ षट् शब्द का प्रयोग उन्हें क्षत्रिय की अपेक्षा ब्राह्मण अधिक सिद्ध करता है। किन्तु इस तर्क में भी कोई दम नहीं कि इन्होंने ब्राह्मणों के प्रति आदर भाव प्रकट किया है, अतः ये ब्राह्मण थे। ब्राह्मणों के प्रति आदरभाव अन्य जातियाँ भी प्रकट करती हैं। नाटकों की सामान्य परम्परा है कि भारतवाक्य में कवि अपने आश्रयदाता की शुभाशंसा करता है। किन्तु इस कवि ने भारत वाक्य में भी सामान्य जनता की या फिर अपनी रचना की शुभाशंसा की है।

बहिस्ताक्ष्य के आधार पर इनके समय के विषय में कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। मम्मट, भोजराज, क्षीरस्वामी, धनञ्जय, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, प्रभृति काव्यशास्त्राचार्यों ने तो इनके उद्धरण दिये ही हैं आठवीं शताब्दी के आचार्य वामन ने भी अलङ्कार सूत्र वृत्ति में इनके उद्धरण दिये हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इनका समय निश्चित रूप से आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ या उससे पहले का है। हर्ष और वाण द्वारा उद्धरण न दिया जाना या उल्लेख न किया जाना कोई पुष्कल प्रमाण नहीं माना जा सकता।

बंगाल की एक प्रसिद्ध परम्परा भट्टनारायण की याद करती है। इस परम्परा का उल्लेख क्षितीशवशावलीचरित, बगराजयटक इत्यादि कई ग्रन्थों में किया गया है। इसके अनुसार आदिसूर ने बंगाल के दक्षिण पश्चिम भाग में ११ राजाओं के राजवंश की स्थापना की थी और वे सूर तथा सेनवंश के संस्थापक थे। आदिसूर कौन थे इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। ८वीं शताब्दी के मध्य में पालवंश के शासनारूढ़ होने के पहले सूर और सेनवंश वालों का शासन था। अनुमान किया गया कि यह मगध का ही वंश था। मगध के माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने कान्यकुब्ज शासन से स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। सम्भवतः उसी ने सूर और सेनवंश की नींव डाली। उसी को आदिसूर की सज़ा दी गई। परम्परा के अनुसार अपने राज्य की कल्याणकामना और अनर्थनिवारण के निमित्त यह आदिसूर ही कन्नौज से ५ कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को वैदिकयज्ञ के लिये ले आया था जिसका प्रमुख था शाण्डिल्य गोत्रीय भट्टनारायण। आदि सूर ने दक्षिणा में उसे ५० गांव दिये थे। सम्भवतः कुछ समय बाद भट्टनारायण स्वयं भी कुछ क्षेत्र का शासक बन गया था।

इस लेखक के विषय में एक और उल्लेख पाया जाता है। दण्डी के नाम पर एक पद्य प्राप्त होता है—

व्याप्तु पादत्रयेणापि यशशक्तोभुवनत्रयम् ।

तस्य काव्यत्रयव्याप्तौ चित्र नारायणास्म किम् ॥

(जा नारायण तीन पदों में तीनों भुवनों को घेर लेने की शक्ति रखते हैं तीन काव्य (ग्रन्थों) की रचना करने में उनके लिये क्या आश्चर्य की बात है ?)

इससे ज्ञात होता है कि नारायण ने तीन काव्य लिखे थे। वाण के कहने पर भट्टनारायण द्वारा धर्मकीर्ति को शास्त्रार्थ में पराजित किये जाने की परम्परा तीनों लेखकों की सममामयिकता सिद्ध करती है। इनमें वाण सम्भवतः वरिष्ठ समसामयिक थे। यदि परम्परा पर विश्वास किया जाय और धर्मकीर्तिकालीन भट्टनायक को वेणीसहस्रकार भट्टनारायण से अभिन्न माना जाय तो इनका समय ७वीं शताब्दी का मध्य भाग ठहरता है। इस मान्यता का विरोधी कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है। किन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

इनके भाता पिता या परिवार के विषय में साहित्यजगत् को कोई ज्ञान नहीं है। किन्तु वेणीसहस्र देखने से ज्ञात होता है कि ये स्मार्त ब्राह्मण थे। विष्णु और शिव दोनों के प्रति समान रूप से भक्ति प्रदर्शित की है। एक ओर जहाँ ये हरिचरणयोरञ्जलिरियम् कहकर विष्णु भक्ति की अभिव्यक्ति करते हैं वहीं 'धूर्जटि पातु युष्मान्' से शङ्कर जी के प्रति भक्ति को भी अभिव्यक्त करते हैं। वे वैदिक यज्ञादिविधि में निष्णात तो थे ही अनेक शास्त्रों का भी उन्हें ज्ञान था। सुभाषित सग्रहों में इनके नाम पर जो पद्य मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि इन्होंने वेणीसहस्र के अतिरिक्त भी नाटकों की रचना की थी। दा एक पद्य तो इस प्रकार के प्रतीत होते हैं मानो वे किसी नाटक की प्रस्तावना से लिये गये हों। इन्हें नाट्यशास्त्र की मान्यताओं से अधिक लगाव था। इसीलिये कहीं कहीं शास्त्रीयमर्यादा के अनावश्यक पालन में भी रुचि दिखलाई है और शास्त्रीय समीक्षकों की आलोचना का भी विषय बने हैं।

(२) भट्टनारायण—(नाक) इनका लिखा ज्ञानवीपरिणय नाटक बतलाया जाता है। य वेणीसहस्र के लेखक से भिन्न है।

भट्टवाण—(नाक) दे वामन भट्टवाणः।

भट्टराजीयम्—(नाक) (१) नारायणशास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

भट्टसंकटम्—(नाक) जीवन्यापतीर्य (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक। इसका कथानक एक भट्टपरक है जो धार्मिक है और यज्ञों में लगा रहता है। उसकी पत्नी अत्यन्त कर्कशा है और वह उससे परेशान है। किन्तु यज्ञ में सहधर्मिणी के रूप में उसे चाहता अवश्य है। एक राधस यज्ञ से उद्दिग्ध है और यज्ञ में विघ्न डालने के लिये उसकी सहधर्मिणी का अपहरण कर लेता है। राजा भट्ट को समझाता है कि वह या तो दूसरा विवाह कर ले या पत्नी की स्वर्ण प्रतिमा बनवा ले। भट्ट दोनों बातों के लिये तैयार नहीं है। राजा राधस को मार कर भट्ट की पत्नी को छुड़ा लाने में सफल हो जाता है और भट्ट का यज्ञ यथाविधि समाप्त हो जाता है।

इसका अभिनय सरस्वती महोत्सव में किया गया था। इसका प्रकाशन कलकत्ता से साहित्य परिषद् पत्रिका में कर दिया गया था।

भद्राद्रिराम शास्त्री- (नाका) गोदावरी जिले में पांठापुर के गौतमगोत्रीय गंगा रामय्या के पुत्र एव वेलनति वैदिकी ब्राह्मण थे। इनका जन्म १८५६ में तथा मृत्यु १९१५ में हुई थी। ये संस्कृत के उत्कृष्टोक्ति के विद्वान् एव कवि थे। ये उर्लम् और लक्कवरम के जमीन्दारों के दरवार को सुशोभित करते थे। इन्होंने श्रीरामविजय काव्य और शम्भुरामसुनिजयचम्पू के अतिरिक्त मुक्तावली (दे) नाटक लिखा था।

भद्रायुर्विजय- (नाक) इस नाटक की रचना शङ्करलाल ने की थी।

भरत- (नापा) प्रतिमा नाटक (दे) में भरत एक महत्वपूर्ण पात्र है। रामायण में यही एक ऐसा पात्र है जिसके चरित्र में किसी प्रकार का दोष नहीं दिखलाया जा सकता। उसी का पालन इस नाटक में हुआ है। उनके पश्चात्ताप और आक्रोश में तथा क्रोधात्ताप में भ्रातृभक्ति तो है ही औचित्य और विपत्काल में तत्काल निर्णय लेने की क्षमता भी है। रूपरंग में वे राम के प्रतिरूप हैं। उनका व्यक्तित्व सङ्कल्पशक्ति पर आधारित है। उनके भावों में उदात्तता है। इस नाटक में उनका चरित्र राम से भी अधिक ऊँचा सिद्ध होता है और कुछ अलोचक तो राम के स्थान पर भरत को ही कथानायक मानते हैं।

भरतपिशरोटी- (नाका) ये केरल के निवासी थे। इनके लिखे एकभारतम् नाटक का उल्लेख केरल के नाट्यसाहित्य में किया जाता है। सम्भवत इसमें भारतविभाजन पर प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है और पुन भारत के एकीकरण पर बल दिया गया है। इनका समय है २०वीं शताब्दी।

भरतमेलनम्- (नाक) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित रूपक। इसका विभाजन अकों के स्थान पर दूरियों में हुआ है। इसमें भरत का चरित्रचित्रण महत्वपूर्ण है। भारत मिलाप की कथा को इसमें नाटकायित किया गया है।

भरतराज- (नाक) हस्तिमल्ल (दे) लिखित नाटक।

भरद्वाज- (नाका) इनका लिखा कालेयकौतूहल (दे) पूना से प्रकाशित हो चुका है।

भर्तृहरिनिवेद- हरिहर (दे) लिखित प्रतीकनाटक। इसमें भर्तृहरि का निवेद दिखलाया गया है। योगदर्शन की प्रशस्ति के साथ इसमें इसी दर्शन की शिक्षा दी गई है कि प्राकृतिक भौतिक तत्वों से आत्मा को किस प्रकार पृथक् किया जा सकता है और किस प्रकार सासारिकता का परित्याग कर एकान्त आत्मतत्त्वचिन्तन में प्रवृत्त हुआ जा सकता है। इसके कथानकनायक गोरखनाथ हैं जो शिव का अवतार माने जाते हैं। भर्तृहरि की मृत्यु की झूठी खबर से भर्तृहरि की पत्नी की मृत्यु हो गई। यह समाचार जब भर्तृहरि ने सुना तो उनको इस बात का बहुत बड़ा आघात लगा। बाद में एक योगी के उपदेश

से उनका मन शान्त हो गया और इतना विराग उत्पन्न हो गया कि जब उनकी मृत पत्नी को पुनः जीवन लाभ हुआ तब भी ससुर से उनकी विरक्ति दूर नहीं हुई। इसका प्रकाशन काव्यमालासौरीज बान्से से हो चुका है। एल.एन.प्रे ने इसका अमेजी में अनुवाद किया जिसका प्रकाशन जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी से हुआ।

भवनुतचूड- (नाका) कोसलिका नाटिका के लेखक जिसका उल्लेख नाट्यदर्पण में किया गया है।

भवभूति- (नाका) सस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम सबसे ऊपर लिया जाता है। भारतीय पण्डितों का यह प्रिय विषय रहा है कि कालिदास और भवभूति दोनों में कौन बड़ा कहा जाने का अधिकारी है। इनके लिखे राम विषयक दो नाटक प्रसिद्ध हैं- महावीरचरित (दे.) और उत्तररामचरित (दे.) इनके अतिरिक्त एक प्रकरण भी प्रसिद्ध है- भालहीमाधव (दे.)। काव्यप्रतिपादक के गौडवहो में भवभूति के काव्यरत्नाकर का उल्लेख किया गया है जो अब प्राप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त इनके नाम कुछ पद्य भी प्राप्त होते हैं जो इनके नाटकों में नहीं हैं। इससे ज्ञात होता है इन्होंने कतिपय अन्य पुस्तकें भी लिखी होंगी।

इनके नाटकों की प्रस्तावनाओं एवं पुष्पिकाओं में इनके व्यक्तिगत जीवन की कुछ सामग्री प्राप्त होती है। उनके अनुसार ये कश्यप गोत्रीय उदुम्बर वंशीय ब्राह्मणों के परिवार में पैदा हुये थे उनका परिवार कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी था। इनका ब्राह्मणों का शुद्ध परिवार था। ये पंडितपावन अर्थात् निकटता से दूसरों को पवित्र करने वाले और पञ्चाग्निपूजक थे। धार्मिक व्यवस्था के सच्चे अनुयायी, सोमपान करने वाले एवं धर्मशास्त्र के अध्येता थे। इनके बाबा का नाम भट्टनोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इनके वंश में महाकवि नाम के एक उच्चकोटि के विद्वान हुये थे। भवभूति का जन्म उनकी ५वीं पीढ़ी में हुआ था।

इन्होंने अपने नाम के साथ श्रीकण्ठपदलाञ्छन जोड़ दिया है। अतः यह शका उत्पन्न हो गई है कि इनका वास्तविक नाम क्या था। क्या भवभूति इनका वास्तविक नाम था और ये श्रीकण्ठ नाम से जाने जाते थे अथवा श्रीकण्ठ इनका असली नाम था और भवभूति इन्हें इसी कारण कहा जाते लगे था। इनमें यह निर्णय करना कठिन है कि कौन सा विशेषण है कौन सा विशेष्य। इसीलिये टीकाकारों को विभिन्न व्याख्यायें करने का मौका मिला है। कुछ लोगों का विचार है कि इन्होंने दो एक स्थानों पर भवभूति शब्द का नई भूमिका के साथ प्रयोग किया, इसीलिये इन्हें भवभूति कहा जाने लगा। वास्तव में इनका नाम श्रीकण्ठ ही था- 'श्रीकण्ठो नीलकण्ठ' किन्तु इनके परिवार में पिता के नाम से मिलना जुलता नाम रखने की प्रथा दिखलाई नहीं देती। स्वयं इनके पिता का नाम इनके बाबा के नाम के मिल में नहीं है। एक कल्पना यह भी की गई है कि इनके पिता न शङ्कर जी की उपासना कर इन्हें प्राप्त किया होगा जिसने इनका नाम भवभूति

रखी गयी— 'श्रीशङ्कर जी की कृपा से प्राप्त हुई विभूति।'

इनके नाम के विषय में एक और विवाद उठाया गया है— मालतीमाधव की एक प्रति प्राप्त हुई है जिसकी तीसरे अंक की पुष्पिका में लिखा है— 'इति श्री कुमारिलपट्ट शिष्यकृते मालतीमाधवे तृतीयोद्घ, तथा छठे अंक की पुष्पिका में लिखा है— इति श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादश्राप्यवाग्वैभवश्रीमदुम्बेकाचार्यविरचिते मालतीमाधवे षष्ठोद्घ, तो क्या इन नाटकों के कर्ता का नाम उम्बेक था ? उम्बेक मीमांसक थे और मीमांसा पर उन्होंने कुछ कार्य भी किया था। वे भवभूति नाम से काव्य रचना करते थे और मीमांसा पर रचनाये करने के लिये अपना नाम उम्बेक रखते थे। यह भी हो सकता है कि उम्बेक ने भवभूति के लिखे प्रकरण के दो अंकों को सशोधित कर इन्हें नया रूप दिया हो। किन्तु इन कल्पनाओं को अधिक खींचना ठीक नहीं। केवल एक प्रति में उम्बेक नाम आया है 'नैकमुदाहाण योगारम्भ प्रयोजयति।' इसे लेखक का प्रमाद कहना भी ठीक नहीं होगा। उम्बेक भवभूति का नामान्तर भी नहीं हो सकता है क्योंकि भवभूति ने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि बतलाया है कुमारिल नहीं। किसी लेखक की शरात मानकर इसकी उपेक्षा की जा सकती है। वास्तव में परम्परा भी महत्व रखती है। उद्धरणों में इन कृतियों का उल्लेख भवभूति नाम से ही किया जाता है। अतः भवभूति उनका वास्तविक नाम था और पिता के नीलकण्ठ के अनुकरण पर लोग इन्हें श्रीकण्ठ बड़ने लगे थे। यह उपाधि भी हो सकती है— 'इनके कण्ठ में श्री निवास करती है।'

नाम के विषय में जैसा विवाद है वैसा ही इनके निवास स्थान के विषय में भी है। इस विषय में उनके मालतीमाधव में 'दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरम् नाम नगरम्' यह पद्मपुर कहा है ? इस विषय में मतभेद है। मालतीमाधव का घटना स्थल पद्मावती बतलाया गया है। अतः कुछ लोगों का विचार है कि कवि ने अपने ही नगर का उल्लेख किया होगा। इससे कल्पना की जा सकती है पद्मावती वास्तव में पद्मपुर है। भवभूति ने अपने नाटकों में गोदावरी और विन्ध्याचल का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है। अतः कुछ लोगों को कल्पना है कि यह पद्मपुर कुछ ऐसा ही परिवेश में स्थित होगा। ग्वालियर स्टेट में नरवर के निकट पड़ाया या पोलपड़ाया गाव को पद्मावती माना गया है। इसीलिये नलपुर, अमरावती, कोल्हापुर, उज्जैन, काश्मीर में पाम्पुर इत्यादि अनेक स्थानों की कल्पना की गई है। भवभूति को आजीविका के लिये भटकना पड़ा था। अन हो सकता है ये पद्मावती और उज्जैन भी चले गये हो। उज्जैन से इनका सम्बन्ध इसलिये सिद्ध होता है कि इनके तीनों नाटकों का अभिनय कालप्रियानाथ के उत्सव में हुआ था। धारणा है कि कालप्रियानाथ वास्तव में उज्जैन के महाकालेश्वर ही है। पद्मपुर के विषय में युक्तियुक्त विचार यही मालूम पड़ता है कि यह स्थान विदर्भ (वर्तमान बरार) में नागपुर के आसपास कहीं होगा जहाँ कवि का जन्म हुआ था। जिस प्रकार के ब्राह्मणों का वर्णन भवभूति में किया है वैसे जातिवा उस प्रदेश में अब भी पाई जाती हैं।

कल्हण ने राजतरंगिणी में कन्नौज के यशोवर्मा के दरबारी कवि के रूप में भवभूति का उल्लेख किया है—

कविवाक्यतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवित ।

जितो ययौ यशोवर्मा नृपुणस्तुतिबन्दिनाम् ।

कन्नौज के राजा यशोवर्मा ने गौडराज का वध किया था जिसका वर्णन वाकपतिराज ने गौडवहो नामक प्राकृत काव्य में किया है। बाद में कल्हण के अनुसार यशोवर्मा को ललितादित्य ने पराजित किया। ललितादित्य का समय कनिष्क के अनुसार ६९३ ई से ७२९ ई तक माना जाता है। अतः यशोवर्मा का समय भी ७वीं शताब्दी का अन्त और ८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध होना चाहिये। गौडवहो में भवभूति की काव्यकला की प्रशंसा की गई है। अतः भवभूति का समय भी इसी के आस पास सिद्ध होता है। इसकी सप्रति इससे भी बैठ जाती है कि इनका प्रथम उल्लेख वामन ने किया है जिनका समय ७वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनका उल्लेख बाण ने नहीं किया है। इसका आशय यह है कि इनका समय बाण और वामन का अन्तरालवर्ती है जो यशोवर्मा के समय से मेल खा जाता है। यतः इसका जन्म ७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

भवभूति ने स्वयं को पदवाक्यप्रमाणज्ञ कहा है, जिसका आशय यह है कि ये व्याकरण मीमांसा और न्याय वैशेषिक दर्शन के विद्वान् थे। किन्तु इतना ही इनके ज्ञान का परिचय नहीं है। इनके ग्रन्थों को देखने से मालूम पड़ता है कि ये वेद, वेदान्त उपनिषद्, सांग सांख्य धर्म शास्त्र, राजनीति, नाट्यशास्त्र कामसूत्र, तन्त्र, जादूक इत्यादि अनेक विषयों के ज्ञाता थे तथा इनकी कृतक इनकी रचनाओं में दृष्टिगत होती है। अवलम्बित भावना की तीव्रता और अभिव्यञ्जन की निपुणता ने इन्हें कलाकारों की उच्चता तक पहुँचाया है और ये विश्वकवियों में स्थान पा सके हैं। इन्हें कालिदास की रचनाओं का ज्ञान था और इन्होंने उन का उपयोग भी किया है। किन्तु नाटकीय कला की निपुणता के कारण भवभूति को यश की इतनी अधिक प्राप्ति नहीं हुई जितनी भाषा के प्रयोग की दक्षता के कारण हुई है। भाषा के दृष्टिकोण से वे संस्कृत के मूर्धन्य कवियों में माने जाते हैं। स्वाभाविक महानुभूति की वाणी देने की उनकी शक्ति अद्भुत है। जबकि अन्य भारतीय कवि भवभूति की ललित एवं सुकुमार सुन्दरता का निरूपण करते हैं भवभूति उसके अत्युच्छ्रित स्वरूप का वर्णन करना पसन्द करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इसका कारण यह है कि इसके प्रतिष्ठित पर इनके जन्म स्थान के दक्षिण में स्थित भारतीय पर्वतों का प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त वे केवल ऐसे ही चरित्रों को चित्रित करने में सिद्ध हस्त नहीं हैं जो कामल शरीरमाना रईसी मनोवृत्तियों से प्रेरित हैं किन्तु सरम्भात्मक मनावृत्तियों की गहराई और शक्ति को प्रभावशाली अभिव्यक्ति देने में भी निपुण हैं। हास्य अभिनेता (विदूषक) की अनुपस्थिति उनका विशिष्ट लक्षण है। हास्यपरक एवं बुद्धिविलासजन्य (प्रत्युत्पन्नमति) तन्त्र का उन्मेष प्रवेश बहुत धाँदी सीमा तक हुआ है। वे नाट्यकला को 'तान्त्रिक गम्भीर

तत्व मानते हैं और हास्य के प्रयोग में लज्जा का अनुभव करते हैं। भाषा भी सम्वादों के अनुकूल नहीं है। लम्बे समास सिद्ध करते हैं कि उनकी रचनायें अध्ययन के अधिक अनुकूल हैं, रंगमञ्च के अनुकूल नहीं हैं। रामविषयक दोनों नाटक वो रंगमञ्च के अनुकूल हैं ही नहीं।

भवानीशङ्कर- (नाका) सन् १९८१ में पञ्चम विश्वसंस्कृतसम्मेलन में अभिनय के लिये इन्होंने मोक्षमूलरवैदुष्यम् (दे) नाटक की रचना की।

भवात्कर डाक्टर- (नाका) दे वनमाला।

भागवतकृष्ण- (नाका) ये मैसूर के निवासी थे। इनके नाम पर एक प्रेङ्खणक उद्धतवृकोदर (दे) है जिसकी प्रति मैसूरपुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में स २७४ पर सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त इसी नाम पर शर्मिष्ठायायति (दे) नामक एक नाटक और मिलता है। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों भागवतकृष्ण एक ही व्यक्ति थे। यह भी सम्भव है कि इनका व्यक्तित्व शेषकृष्ण से अभिन्न हो।

(१) **भागुरायण-** (नापा) मुद्राराक्षस (दे) में चाणक्य का गुप्तचर है जिसने मलयकेतु से मित्रता कर रखी है, प्रत्येक अवसर पर उसके मन में राक्षस के प्रति सन्देह एवं विरोध भावना को बढ़ाने की चेष्टा करता रहता है। यह कार्य उसकी अन्तरात्मा का विरोधी है, किन्तु वह अपना उत्तरदायित्व पूरी तत्परता से निभाता है। उसका विचार है कि सेवक का कर्तव्य सर्वदा उसके स्वामी के आधीन होता है, वह स्वयं निर्णय करने का अधिकारी नहीं है। उसकी प्रशंसा इसी में है कि वह अपना कार्य अत्यन्त निपुणता के साथ करता है जिससे मलयकेतु कभी सन्देह नहीं कर पाता। चाणक्य की सफलता में उसका योगदान स्तुत्य है।

(२) **भागुरायण-** (नापा) विद्वदशाल भञ्जिका (दे) में विद्याधर मल्ल का मन्त्री। यह परम स्वामिभक्त है। राजा ने सारा राज्यकार्य इसे सौंप रक्खा है और स्वयं शृङ्गारमय जीवन बिता रहा है। जब भागुरायण को ज्ञात होता है कि लटेश्वर चन्द्रवर्मा की पुत्री मृगाङ्गवली भुवनसुन्दरी है और भविष्य वक्ताओं द्वारा बतलाया गया है- उसका विवाह जिससे होगा वह सम्राट बन जायेगा। इसके लिये वह उस लड़की को मृगाङ्गवर्मा बनाकर ले आता है और अपनी योजनाओं द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देता है कि उसका राजा से विवाह हो जाता है। यह उसकी स्वामिभक्ति और कार्यकुशलता का प्रमाण है।

भाग्यमहोदय- (नाक) जगन्नाथलिखित नाटक। यह एक प्रतीक पद्धति पर लिखा गया नाटक है। राजा वखत्रसिंह की प्रशंसा करने के लिये छन्द शास्त्रीय शब्द यमण इत्यादि और काव्यशास्त्रीय अलंकार इत्यादि रंगमञ्च पर पात्र रूप में आते हैं तथा प्रशंसा गाते हैं।

भाषा-साहित्य- (नाव) चतुर्भाषी नामक चार भाषों का एक संग्रह प्राचीन काल

का बतलाया जाता है। भाण की यह विधा अत्यन्त जनप्रिय रही है और इसकी बहुत बड़ी परम्परा बतलाई जाती है। उनमें कुछ रचनायें इस प्रकार हैं— अनगजोवन अनगलितक (रगनाथ) अनगनगल (सुन्दर कवि) अनगलतिका (लक्ष्मीनृसिंह) अनगविजय (१ शिव रामकृष्ण, २ जगन्नाथ) अनगसर्वस्व (लक्ष्मीनृसिंह) कन्दर्पदर्प या कन्दर्पदर्पण (१ श्रीकृष्ण २ श्रीकृष्ण, ३ राम रायवेल्लमकोण्ड) कन्दर्प विजय (कौशिक गोत्रीय धनगुर) कामकला विलास (प्रधानिवेङ्कट भूपति) कामविलास (वेङ्कप्पा) कामिनिकामुकोल्लास कालिकेलि यात्रा (श्रीकृष्ण उपनाम तङ्गुण्ड) कुसुमवाण विलास, कैतवकलाचन्द्र (नारायण) गोपाल लीलार्णव (गोविन्द) चतुरीवन्दिका (वेङ्कटार्य) चन्द्रनेखा विलास पञ्चवाण विजय (रगाचार्य) पञ्चवाणविलास पञ्चायुधप्रपञ्च (त्रिविक्रम) बल्लवीपल्लवोल्लास (मञ्जुलाचार्य उपनाम कृष्णमूर्ति कुमार) मदन गोपाल विलास (गुटराम) मदन गोपाल (स्वयम्भूनाथ) मदनलीला दर्पण (पटनाथ) मदनविजय (शेषाचार्य) मदनविलास (नागनाथ) मदनसाम्राज्य (भुजा) मदनान्मुदय (कृष्णमूर्ति) ममथमोदन (सुब्रह्मण्य शास्त्री) मन्मथान्मुदय (वेङ्कटेश) महिषमर्गल (पुरुवन् मालावर के एक नम्बूद्रि ब्राह्मण) मुकुन्दानन्द (काशीपति) रसरत्नाकर (जयन्त) रसविलास (कोक्कनाथ), रसिध्वजममानसोल्लास रसिकजनरसोल्लास (वेङ्कट) रसिकरञ्जन (श्रीनिवास) रसिकामृत (शङ्करनाथयण) रसोदय (सुपुरम् अण्णराय) रसोल्लाम (श्रीनिवास वेदान्ताचार्य) वसन्तभूषण (नृसिंह सूरि) वसन्तभूषण (वरदराय) विलासभूषण (वेङ्कटकृष्ण) शास्त्रातिलक (१ तिनक २ शेषागिरि) शास्त्रानन्दन (श्रीनिवासाचार्य) शृङ्गारकोश (गोवर्णेश्वर) शृङ्गारचन्द्रिका (श्रीवल्लभगोत्रीय श्रीनिवास) शृङ्गारजीवन (कौशिकगोत्रीय बरट) शृङ्गार तरंगिणी (१ रामभद्र २ श्रीनिवास ईन्चमवडि ३ वेङ्कटाचार्य) शृङ्गारतिलक (अविनाश स्वामी) शृङ्गारदीपक (१ विज्ञानमूर्ति रायवाचार्य २, वेङ्कटाध्वरी) शृङ्गारमञ्जरी (१ गोपालराय २ अवदानसारस्वती ३ अज्ञातनामा कवि ४ एतिका ५ केरलवर्मा) शृङ्गार रत्नाकर (सुन्दर ताताचार्य) शृङ्गारमभङ्गार (इन्द्रगन्धि कोण्डसूरि) शृङ्गाररसोदय (राम कवि) शृङ्गारराज (गोपाल राय) शृङ्गारलीलातिलक (भास्कर), शृङ्गार वापिका (विश्वनाथ) शृङ्गार विलासित (नारायण) शृङ्गार विलास (साम्बशिव) शृङ्गार शृङ्गाटक (रगनाथ) शृङ्गार सजीवन (शठजिन्कवि) शृङ्गारसर्वस्व (१ स्वामीशास्त्री २ कौशिकनल्लबुध ३ वेदान्ताचार्य, ४ भूमिनाथ ५ राजचूडामणि दीक्षित ६ अज्ञातनामा कवि), शृङ्गार सुन्दर (ईश्वर शर्मा) शृङ्गार स्तवक (नरसिंह) श्रीरगनाथ (श्रीनिवास) सरसकवि कुलानन्द (रामचन्द्र) सारस्वनाल्लास (वेङ्कटराम) हरिविलास (हरिदास)।

(यह सूची पूर्ण नहीं है। लेखकों के नाम कोष्ठक में दिये गये हैं। विवरण यथास्थान देखिये।)

भानुदत्तदेवत— (नाका) प्रभावतीहरणम् नाटक के लेखक। इनका समय १९वीं शताब्दी (दे.) का मध्य भाग है।

भानुप्रबन्धप्रहसन— (नाक) वेङ्कटरव (दे.) लिखित एक प्रहसन। इसका आधार

एक ऐसा कामुककथानक है जो नायिका विषयक कामुकता के कारण दण्डित किया जाता है और राजपुरुषों द्वारा पत्नी के पास पहुँचाया जाता है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। कैटेलागस कैटेलागोरम स १४०५ पर इसका उल्लेख किया गया है।

भानुमती- (नापा) वेणीसहार में दुर्योधन की पत्नी। उसने स्वप्न में देखा है नकुल (नेवले) ने १०० सर्प मार डाले हैं। युद्धारम्भ में इस दुस्स्वप्न से वह चिन्तित है और कुछ पूजन इत्यादि के द्वारा अनर्थशमन का प्रयत्न करती है। किन्तु उसके स्वभाव में अभिमान की भावना अधिक है। वह द्रौपदी के खुले केशों का मजाक उड़ाती है जिसका उसे उचित उत्तर मिल जाता है। वह द्रौपदी से कहती है 'क्यों अब भी तुम्हारे बाल नहीं बंधे?' तब द्रौपदी की चेटी ही उसे उत्तर देती है- जब तक तुम्हारे बाल खुलेंगे नहीं तब तक इसके बंधेंगे कैसे? जब तक दुर्योधन की मृत्यु के बाद भीम सन्देश देते हैं कि अब भानुमती को द्रौपदी के खुले केशों को मजाक उड़ानी चाहिये तब उसे उचित उत्तर मिल जाता है।

भानुमती परिणय- (नाकू) अज्ञातनामा कवि की विवाह विषयक रचना।

भामाभिषङ्गम्- (नाकू) नारायण शास्त्री लिखित ७ अकों का नाटक।

भामिनी विलास- (नाकू) गुरुप्रसन्नभट्टाचार्य (दे) लिखित ६ अकों का नाटक।

भारतचन्द्राय- (नाका) इनका लिखा नाटक 'चण्डीनाटकम्' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इनका समय है १८वीं शताब्दी।

भारततातम्- (नाकू) डा रमा चौधरी लिखित ६ अकों का नाटक। यह महात्मा गान्धी के विषय में लिखा गया नाटक है। जिसका अभिनय गान्धी जन्म शताब्दी के अवसर पर शिक्षा मन्त्रालय के तत्वावधान में किया गया था।

भारतपथिक- (नाकू) डा रमा चौधरी लिखित रूपक। इसका विभाजन दूर्यों में हुआ है जिनकी सङ्ख्या ५ है। इसमें राजा राममोहन राय का चरित्रचित्रण किया गया है। प्रमुख घटनायें हैं- सतीप्रथा उन्मूलन, अंग्रेजीशिक्षा प्रसार, ब्रह्मसमाज की स्थापना, विदेशीयश्रा, बिटल में देहावसान।

भारतराजेन्द्र- (नाकू) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित राजेन्द्र प्रसाद जीवनगाथा विषयक रूपक। राजेन्द्र प्रसाद की कलकत्ता विश्व विद्यालय से प्रथम श्रेणी, नमक सत्याग्रह, हिन्दू मुस्लिमएकता, भगलपुर आन्दोलन, छपरा जेल की घटनायें, राष्ट्रपतिपद पर निर्वाचन इत्यादि घटनाओं को अंकित किया गया है।

भारतलक्ष्मी- (नाकू) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित शास्त्री की रानी लक्ष्मीबाई के चित्रण से सम्बन्धित रूपक इसमें १० अंक हैं।

भारतविजयम्- (नाकू) मधुरा प्रसाद दीक्षित लिखित ७ अकों का नाटक। इसकी रचना अंग्रेजी राज्य में हुई थी और १९३६ में सोलन में इसका अभिनय किया गया था।

अप्रेजों ने इसे जप्त कर लिया था। फिर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसे मुक्त किया गया। यह एक ऐतिहासिक नाटक है। इसके कथानक का आधार अत्यन्त व्यापक है— ग़ोरे लोग व्यापार के लिये भारत आते हैं और यहाँ की राजनीति में दखल देने लगते हैं। नवाब सिराजुद्दौला के खिलाफ उनके सेनापति मीर जाफर से एक सन्धिपत्र लिखवाया जाता है। मीरकासिम सन्धिपत्र का विरोध करता है, तब युद्ध होता है जिसमें मीर कासिम पराजित होता है। नन्दकुमार के पत्र को छिपाकर उसे फासी दिलवाई जाती है। इसी प्रकार सन् ५७ का स्वतन्त्रता आन्दोलन, कायेस का आन्दोलन और भारत स्वतन्त्रता ये सब नाटक के विषय हैं। इसमें विष्वम्भक और घूलिका का भी प्रयोग किया गया है। इसका प्रकाशन हो चुका है।

भारतविवेक— (नाकू) यतीन्द्र विमल चौधरी लिखित विवेकानन्द विषयक १२ दृश्यों का नाटक। इसमें विवेकानन्द की सम्पूर्ण जीवन गाथा ऐतिहासिक परिवेश में चित्रित की गई है। विवेकानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर अभिनय के लिये इस नाटक की रचना की गई थी। २ नव १९६२ को विश्वरूप थियेटर में इसका अभिनय किया गया था। प्राच्यवाणी में इसका प्रकाशन सन् १९६३ में हो गया था बंगाल, दिल्ली, पाण्डिचेरी में इसका कई बार अभिनय हो चुका है।

भारतहृदयारविन्दम्— (नाकू) अरविन्दघोष के जीवन पर यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित नाटक। इसकी रचना १९५९ में एव प्रथम-अभिनय पाण्डिचेरी के अरविन्दाश्रम में हुआ था। यह ५ अंकों का नाटक है।

भारताचार्य— (नाकू) डा राधाकृष्णचरित्र परक डा रमा चौधरी लिखित नाटक। राष्ट्रपति भवन में १९६६ में अभिनीत। राष्ट्रपति द्वारा १५०० रूपयों से पुरस्कृत। अभिनय निर्देशन लेखिका ने ही किया था।

भावनापुरुषोत्तम— (नाकू) यह श्रीनिवास दीक्षित रत्नखेट (दे) लिखित एक प्रतीक नाटक है। दक्षिण के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में सुरक्षित सस्कृत पाण्डुलिपियों की जो सूची गुम्नव ओपर्ट ने मद्रास से दो खण्डों ने प्रकाशित की थी उसकी स ३४२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

सन्दन के एसो वरनेल द्वारा तैयार किये गये सस्कृत पाण्डुलिपियों के क्लासिकल कैटेगोरी के अनुसार तजौर की पैलेस लायब्रेरी में यह स १७० पर उपलब्ध होती है। इसका अभिनय वासुदेव महोत्सव में हुआ था।

भावना जीव देव की पुत्री है। उसने सिद्धाश्रम में भगवान के चतुर्भुज रूप के दर्शन किये हैं और पूर्ण प्रेमिका बन गई है। उधर पुरुषोत्तम भगवान भी भावना को चाहते हैं। सच्ची योगविद्या एसे साधन जुटाती है कि दोनों का मिलन हो सके। स्वप्नचर रागा है सभी देवता आते हैं भावना सभी का परित्याग कर देती है। तब पुरुषोत्तम आते

हैं, भावना उनको जयमाला पहिनाकर वरण कर लेती है।

इसका प्रधान रस शृङ्गा है। बीच बीच में अन्य रसों का भी समावेश हुआ है।

भाष्यकार- (नाका) आङ्गनेयविजय (दे.) के लेखक। इनका उल्लेख श्रीधर दास के सदुक्तिकर्णामृत में भी किया गया है।

भास- (नाका) उपलब्ध नाटक साहित्य में भास संस्कृत के प्रथम नाटककार या प्रथम नाटककारों में एक माने जाते हैं। इनके व्यक्तित्व के विषय में साहित्य जगत् को कोई विशेष ज्ञान नहीं है। कुछ लोग इन्हें मौर्यकाल या उससे भी पहले का मानते हैं तथा तीसरी शताब्दी ई पू तक ले जाते हैं जबकि दूसरे लोग इनकी परवर्ती मौर्य ई की तीसरी शताब्दी मानते हैं। उदयन विषयक नाटक लिखने के कारण कुछ लोग इनका निवास स्यात्र उज्जैन मानते हैं। इनके प्रायः प्रत्येक नाटक में राजसिंह को आशीर्वाद दिया गया है। क्या राजसिंह नामक कोई प्रतिष्ठित राजा इनका आश्रयदाता था या सामान्य रूप से किसी भी आश्रयदाता के लिये इस विशेषण का प्रयोग कर दिया गया है इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

सन् १९०९ के पहले भास की प्रशस्ति और कतिपय उद्धरणों के अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं था। कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित नाटककारों में इनका पहले नम्बर पर स्मरण किया है। बाणभट्ट ने इनके नाटकों की तुलना महान राजकीय प्रासादों से की है। राजशेखर का कहना है कि उनके स्वप्नवासवदत्ता नाटक को आग भी नहीं जला सकी। दण्डी उनके नाटकों को उनका यश शरीर बतलाते हैं। जयदेव ने इन्हें कविताकामिनी का हास कहा है। इनके कुछ पद्य अभिनवगुप्त, सोमदेव इत्यादि की कृतियों और सग्रहों से प्राप्त होते हैं। इन प्रशस्तियों के अतिरिक्त वर्तमान साहित्य जगत् को १९०९ तक कोई कृति उपलब्ध नहीं हो सकी थी।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री (दे.) ने त्रिवेन्द्रम् के राजपुस्तकालय से कुछ प्रतिया प्राप्त की जिनमें किसी लेखक का नाम नहीं था। किन्तु विशेष अनुसन्धान करने पर स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि ये कृतिया भास की हैं। ये सब मिलकर १३ नाटक हैं जिनमें नाट्यतत्त्व की अनेक विधाओं का समावेश हो जाता है। कुछ एकाङ्की नाटक हैं और कुछ पूर्ण नाटक। इन नाटकों में ७ की कथावस्तु महाभारत या कृष्ण साहित्य पर आधारित हैं, दो रामायण पर, दो प्रचलित कथासाहित्य पर आधारित हैं और दो की कथा वस्तु इतिहास से ली गई है। प्रथम वर्ग के नाटकों के नाम हैं- बालचरित (दे.) दूतघटोत्कच (दे.) दूतवाक्यम् (दे.) पञ्चरात्रम् (दे.) वर्णभार (दे.) मध्यमव्यायोग (दे.) और उरुभग (दे.)।

राम विषयक नाटक हैं- प्रतिमा (दे.) और अभिषेक (दे.) लोक साहित्य से अविमारक (दे.) और चारुदत्त (दे.) लिये गये हैं। ऐतिहासिक नाटक हैं- प्रतिज्ञायौगन्धरायण (दे.) और

स्वप्नवासवदत्तम् (दे)। अन्तिम नाटक सर्वोत्तम है। इनकी दो और नाट्यकृतियाँ दम्ब (दे) और त्रैविक्रम (दे) बतलाई जाती हैं। शकुन्तला की चर्चना (दे) नामक टीका में वीणावासवदत्ता (दे) और चाण्डाल रामायण (दे) का भी उल्लेख किया गया है तथा उनको समीक्षा की गई है। इन नाटकों में अंक, नाटक, प्रकरण, व्यायोग इत्यादि कई नाट्य विधाओं पर रचनायें प्रस्तुत की गई हैं।

भास एक महान नाटकार ही नहीं महान नाटककारों का पथ प्रदर्शन करने वाले एक महान कलाकार हैं। भाषा, शैली प्रविधि, तकनीक इत्यादि अनेक दृष्टियों से वे सभी कलाकारों से पृथक् अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुये हैं। वस्तु विन्यास में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण के साथ रसात्मकता का उनमें पूर्ण सामञ्जस्य पाया जाता है। कठोर और कोमल दोनों प्रकार के रसों के निष्पादन में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली है और हास्य रस के क्षेत्र में भी वे दूसरों के लिये आदर्श सिद्ध हुये हैं। कल्पनाशक्ति अभिव्यक्तिचानुर्य, नाट्यकलाभिज्ञता इत्यादि गुणों में वे बेजोड़ हैं। इन नाटकों में घटना प्रधानता, अन्तर्द्वन्द्व और रसात्मकता का मणिकान्धनसंयोग उन्हें नाटककारों की प्रथम श्रेणी में स्थान देने के लिये सर्वथा पर्याप्त है। इन्होंने अभिनय की दृष्टि से नाटक लिखे थे। इनके नाटकों में नाट्यशास्त्रीय प्रविधि का पर्याप्त निर्वाह हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि इनके समय तक नाट्यकला बहुत कुछ परिनिष्ठित रूप ले चुकी थी।

भासोऽहास - (नाकृ) यह तीन अंकों की रचना गजाननबालकृष्णपलसुले द्वारा भास नाटकों में हास्य की कमी को लेकर प्रस्तुत की गई है। भास कविता काभिनी के हास बतलाये जाते हैं जैसा कि उनके लिये 'भासो हास' कहा गया था। यहा पलसुले दोनों शब्दों के बीच अ (अवग्रह) मानकर और भास में हास्यरस नहीं है इस बात को लेकर प्रस्तुत नाटक की रचना की है। यह गद्य नाटक है जिसका प्रकाशन १९८० में कर दिया गया था। प्रकाशक है शास्त्राचार्यप्रबन्धमाला के सञ्चालक अनन्तगाडगिल।

(१) **भास्कर - (नाका)** ये श्रीवत्सगोश्रीय शिवसूर्य के पुत्र एव राजा हलधट्टि के धर्माचार्य थे। इनका लिखा वल्लीपरिणय नाटक प्रसिद्ध होता है। (दे १ वल्ली परिणय)

(२) **भास्कर - (नाका)** इनका लिखा लीलातिलक नामक भाण प्राप्त होता है। ये उन्मत्तराघव एकाङ्की नाटक के लेखक भास्कर से भिन्न हैं तथा ये केरल के निवासी थे और विन्नमदेव के दावारी कवि थे।

भास्कर कवि - (नाका) यदि ये विजय नगर के विद्यारण्य ही हैं जैसा कि इन्होंने स्वयं कहा है तो इनका समय १४वीं शताब्दी है। इनका लिखा उन्मत्तराघव कालिदास व विन्नमार्वशी के चतुर्थ अंक का अनुकरण है। उन्मत्तराघव के आमुख में कहा गया है कि विद्यारण्य के अभिनन्दन समारोह में एकत्र विद्वानों के मनोरंजन के निम्न नाट्य की रचना की गई थी।

भास्करकेशवढोक- (नाका) श्रीकृष्णदौत्यम् (दे) नाटक के लेखक ।

भास्करयज्वा- (नाका) ये १६वीं शताब्दी के कवि हैं । इनके पिता वत्सगोत्रीय ईश्वरसूर्य थे । इनके लिखे कुमार विजय (दे कुमार विजय २) का प्रकाशन मुसलीमद्वय से हो गया था ।

भास्करोदयम्- (नाक) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित १५ अंकों का महा नाटक । इस नाटक में रवीन्द्रनाथठाकुर के जीवन वृत्त से सबद्ध घटनाओं का चित्रण किया गया है । यह नई शैली की रचना है जिसमें विषमभक्त प्रवेशक इत्यादि का प्रयोग नहीं किया गया है । प्राकृत का भी अभाव है । इसमें गीतों की अधिकता है । इसकी रचना तथा प्रथम अभिनय १९६० में हुआ था ।

(१) भिक्षु- (नापा) मृच्छकटिक का एक पात्र । यह पाटलिपुत्र का निवासी है । इसने बचपन में देह दवाने और मालिश करने की कला सीख रखी थी । यह देश विदेश में घूमने का शौकीन है और इसी प्रसंग में उज्जैन आया है । यहाँ कुछ आमदनी के लिये चारदत्त के यहाँ सवाहक (हाथ पैर दवाने वाले) की नौकरी कर लेता है । जब चारदत्त के पास वेतन देने के लिये पैसा नहीं रह जाता तब जुआ खेल कर पेट पालता है । एक दिन जुए में १० मोहरें हार जाता है । जुआरी अपना पैसा बसूल करने के लिये इसे मारपीट रहा है । वह भाग कर वसन्त सेना के घर में घुस जाता है । वसन्तसेना उस पर कृपाकर उसका देय निर्यातित कर देती है । इस घटना से खिन्न होकर वह सवाहक का काम छोड़कर बौद्धसन्त्यासी बन जाता है । किन्तु उसे एक बात टीसती रहती है कि उसने वसन्तसेना का आधार स्वीकार किया है । वह अपने सन्यस्त जीवन को तब तक सफल नहीं मानता जब तक वसन्तसेना का बदला न चुका दे । ऐसा अवसर उसे मिल जाता है । पतोंढके वसन्त सेना के शरीर को वह निवालता है । मृत्यु से बचाता है और उसे उसके प्रेमी से मिला देता है तथा उसके प्रेमी को भी जीवन दान देने में कारण बनता है । वह सन्ने अर्थ में विरागी है और जब शासन सत्ता के बदल जाने के बाद उससे उसका अभीष्ट पूजा जाता है तब वह सन्त्यास को ही वरण करता है ।

(२) भिक्षु- (नापा) प्रयोधवन्दोदय (दे) का एक पात्र । शानि अपनी मा श्रद्धा से बिछुड गई है । वह अपनी सखी कण्ठा के साथ उसकी खोज में निकलती है । श्रद्धा नामधारिणी अनेक महिलायें विभिन्न धर्मावलम्बियों के साथ दिखलाई पड़ती हैं । भिक्षु भी उनमें एक है जो बौद्धमत का प्रतीक है, उसके साथ एक श्रद्धा है । किन्तु वह शानि को मा नहीं है । ऐसी कोई विकृत श्रद्धा शानि की मा नहीं हो सकती । भिक्षु (बौद्धमत) का जैनमत से झगडा भी हो जाता है ।

(१) भीम- (नापा) भास (दे) के मध्यम व्यायोग (दे) का एक पात्र । इसमें भीम सत्ता की कारणात्मकता, उदारता, धीरता, त्याग और सदाशयता का चित्रण किया गया है । एक दाय्यग आत्मक को जीवन रक्षा के लिये वह आत्म समर्पण कर देता है । और जब

बालक की प्राण रक्षा हो जाती है तब भी सभी को लेकर उस बालक के घर तक जाने की उदारता भीम की सदाशयता का एक प्रमाण है। उनकी सदाशयता, लोकोपकार की भावना और निर्भीकता जग जाहिर है और इन्हीं गुणों पर विश्वास कर हिडिम्बा अपने पुत्र को किसी मनुष्य को लाने के लिये नियुक्त करती है क्योंकि उसे विश्वास है कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि भीमसेन किसी मनुष्य की प्राणरक्षा के लिये आगे न आये और अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र घटोत्कच को जीत न ले। उनकी मानवता और विवेक का भी उन्हें विश्वास है। वह समझती है कि सघर्ष में भी उसके पुत्र का कोई अनर्थ नहीं होगा। भीम त्यागी है, दक्ष है। हिडिम्बा ने उस पर जो विश्वास किया उसमें उसे निराश नहीं होना पड़ा।

(२) भीम- (नापा) उरुभंग में दुर्योधन और भीमसेन के गदा युद्ध में महाभारत के महासमर का पटाक्षेप होता है। भीम द्वारा दुर्योधन की जघायें तोड़कर उसके सभी अंगों का बदला ले लिया जाता है। यद्यपि गदामुद्ध में जघाओं पर प्रहार करना युद्ध नीति के प्रतिकूल है जिसके लिये बलराम भीम को दण्ड देने के लिये भी उद्यत हो जाते हैं किन्तु भीम के इन कार्यों का समर्थन दुर्योधन के वक्त्रों से भी हो जाता है। जब दुर्योधन अश्वत्थामा से कहता है कि राजन् मालूम पड़ता है कि भीमसेन ने गदा युद्ध में जघाओं के साथ तुम्हारे स्वाभिमान को भी तोड़ दिया है तब दुर्योधन उत्तर देता है— जिसने सभाभवन में द्रौपदी की वह दशा की उसने अभिमन्यु जैसे पुत्र का उस प्रकार वध किया जिसने १२ वर्ष के लिये उन्हें मृगों के साथ रहने के लिये बाध्य कर दिया उसके प्रति उनका यह कोई अन्याय या दर्पपूर्ण कार्य नहीं है। 'सर्वदा अन्याय का व्यवहार करने वाले के प्रति यदि न्यायमार्ग से हटकर भीम ने बदला लिया भी तो यह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

(३) भीम- (नापा) पञ्चांग में जब पाण्डवों की तलाश हो रही है कीचकवध की सूचना से ही कौरव वर्ग अनुमान लगा लेता है कि यह कार्य भीम के अतिरिक्त किसी और का नहीं हो सकता क्योंकि कीचकवध की शक्ति भीम के अतिरिक्त और किसी में नहीं। भीम विराटपुर में भी युद्ध में अभिमन्यु को पकड़ ले जाने में कौरव वर्ष पर वीरता की छाप लगा देता है।

(४) भीम- (नापा) सौगन्धिकारण में भीम के पराक्रम की पुष्टि होती है। द्रौपदी के अपहरण पर भीमसेन स्वर्णाय कमल (पारिजात) को लेने के लिये चम देते हैं। हनुमान और यक्षों का शांति करते हुये भी वे पुष्प प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं और द्रौपदी की मनचढ़े पुत्र प्राप्त करने की आकांक्षा पूरी हो जाती है।

(५) भीम- (नापा) देवी सहाय में नाटक का नायक है। नायक की सभी अपेक्षित विशेषतायें उस में विद्यमान हैं। नाटक के प्रस्तावना भाग के समाप्त होने ही सर्वप्रथम गमक पर भीम का प्रवेश होता है। नाटक के किसी भाग में वह बहुत समय तक अदृश्य

या उपेक्षित नहीं रहना और अन्त में द्रौपदी के वेणीसिंहार के बाद ही उसकी भूमिका समाप्त होती है। वह फल भोक्ता भी है क्योंकि प्रतिज्ञा पूरी कर लेने का फल उसे ही मिलना है। वह बोर है और किसी भी भयानक से भयानक परिस्थिति में किसी भी सांभा तक जाने के लिये उद्यत है। प्रथम दृष्टि में देखने पर प्रतीत होने लगता है कि वह बहुत ही घमण्डी, बड़बोला और रक्त पिपासु है। वह युधिष्ठिर को आज्ञा और कृष्ण के समझौता प्रयासों को भी ठुकरा देने को तैयार है। उसके दृढ़ स्वभाव की पराकाष्ठा उस समय दृष्टिगत होती है जब वह अर्जुन के साथ माता पिता (गन्धारी और धृतराष्ट्र) का अभिवादन करने जाता है, वह इन शब्दों में अपना परिचय देता है— 'समन्त कौरव-कुमारों को चूर चूर करने वाला, दुःशासन के रक्त की मदिरा पीकर मदहोश और कुछ ही दिनों में दुर्योधन को जघाये तोड़ देने के लिये तैयार यह भीम आपको सर से प्रमाण कर रहा है।' केवल धृतराष्ट्र के प्रति ही नहीं अपने बड़े भाई के प्रति भी उनका आक्रोश व्यक्त होता है। वे स्पष्ट रूप से सहदेव से कहते हैं— 'आज एक रोज के लिये न मैं उनका अनुच हूँ और न वे मेरे गुरु। वे आपके बड़े भाई होंगे मेरे नहीं। वे तो अपना धात्र तेज भी जुये में हार गये हैं।

भीम के एक एक वाक्य से उनका औद्धत्य और अभिमान प्राकट होता है। किन्तु यह अकारण नहीं है। वे ठीक ही कहते हैं कि 'कुरुओं के साथ मेरा वैर वचन से चल रहा है, उसमें कोई दूसरा कारण नहीं है।' दुर्योधन इत्यादि सभी कौरव भाई सामान्य रूप से सभी पाण्डवों से द्रोह करते थे, किन्तु भीमसेन से उनका विशेष वैर था। भीम को ही उन लोगों ने विष देकर मार डालने की चेष्टा की थी। द्रौपदी के धुते केश जितना भीम को पीड़ित करते थे उतना किसी दूसरे को नहीं। द्रौपदी भी अपने प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये भीमसेन पर ही आस्था जमाये बैठी थी।

वैसे भीमसेन में सद्गुणों का अभाव नहीं है— वे कृष्ण के स्वरूप से भली भाँति परिचित हैं। जब उन्हें बतलाया जाता है कि द्रौपदी गुरुजनों का अभिवादन करने गई थीं तब वे उसकी प्रशंसा ही करते हैं। परिस्थिति ने उन्हें क्रूर बना दिया है, वास्तव में वे क्रूर नहीं हैं। भाई की आज्ञा में वे वन वन पटकते रहे। अज्ञानवास के कष्टों को भी निर्लिप्त भाव से सहा है। क्या ये सब व्यवहार उनको क्रूरता की न्यायोजित सिद्ध करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं?

भीमकौचकीयम्— (नाट्) विनायकराव बोकोल (दे.) लिखित नाटक। रचनाकाल २० वीं शताब्दी।

भीमट— (नाक) इन्हें भीमदेव नाम से भी याद किया जाता है। राजशेखर का निम्नलिखित पद्य इनके व्यक्तित्व और कार्य पर कुछ प्रकारा डालता है—

कलिञ्जरपतिञ्जरे भीमट पञ्चनाटकोम्।

प्राप प्रबन्धराजत्वं तपु म्वनदशानन ॥

इस पद्य में ज्ञान होता है कि ये कालिञ्जर के राजा थे जोकि त्रयाग से १०० मील उत्तर पश्चिम में है। इसमें यह भी ज्ञान होता है कि उनका सम्बन्ध जैजाकभुक्ति के चन्दल राजा हुए से था। इनका उल्लेख गजराजपुर में किया है जो कान्यकुब्ज नरेश महिपाल के आश्रय में रहने के कारण हुए के सममार्ग्य थे। राजशेखरद्वारा उल्लेख किया जाना ही प्रमाणित करता है कि इनका सम्बन्ध हुए से था। पद्य के अनुसार इन्होंने ५ नाटकों का रचना की थी जिनमें स्वप्नदशानन (६) इनका सर्वोत्तम नाटक था। अभिनवगुप्त ने इनके एक नाटक का उल्लेख किया है प्रतिभाचाणक्य (६) या प्रतिज्ञाचाणक्य। इनके एक अन्य नाटक मनोरमावन्धराज (६) का भी उल्लेख पाया जाता है। अभी तक इनका कोई नाटक उपलब्ध नहीं हो सका है।

भौमदेव- (६ भौम)

भौमदेवद्वितीय- (नापा) पारिजातमञ्जरी (६) में गुजरात चालुक्य राजा जिन पर नाटक के नायक अर्जुन वर्मा ने विजय प्राप्त की थी। पारिजातमञ्जरी इन्हीं की पुत्री थी जिसका युद्ध काल में दहान हो गया था और जो दूसरे जन्म में पारिजात मञ्जरी के रूप में उत्पन्न होकर बाद में कन्या रूप में परिणत हुई थी।

(१) **भौमपराक्रम-** (नाकू) यह नाटक शतानन्द के पुत्र अभिनन्द (६) का लिखा हुआ है। इसमें भाम और जयाम्ब्य के युद्ध का अंकन किया गया है। मद्रास आरियण्टल लायब्ररी में संस्कृत पाण्डुलिपियों के श्रवणियल कैटेलाग IV ४४४० पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका उल्लेख रामचन्द्रगुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में भी हुआ है। अभिनवगुप्त ने भी इसका उल्लेख किया है।

(२) **भौमपराक्रम-** (नाकू) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना व्यासमाहादित्य ने की थी। वहीं जहाँ इसका नाम जयाम्ब्य तथा भी पाया जाता है। साथ ही इसका नाम भामविक्रम भी लिखा है। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में भी प्राप्त होता है। इसकी प्रति मद्रास की आरियण्टल लायब्ररी के श्रवणियल पाण्डुलिपि अनुभाग में विद्यमान है। इस व्यायोग की रचना प्रह्लाद के पार्थपराक्रम के अनुकरण पर स १३८५ गन् १३१८ में पारम्पर में हुई थी। इसका प्रति बहोदा पुस्तकालय में भी विद्यमान है।

भौमभट्ट- (नाका) ये नारायण भौमभट्ट मिथिला शिष्याण के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये दक्षिणवर्त्य थे इनका जन्म ११ अर्धशतक ११०३ का हुआ था। इन्होंने कारमार सन्धान गमुधम (६) नामक एकाङ्की का रचना की थी जिसमें रत्नान कारमार राजनीति का कश्मर समस्या का संस्कृत रामायण पर लान का कार्य किया था।

भौमरथी- (नाकू) (१) नारायण रत्नान लिखित ५ अंका का नाटक।

(१) **भौमविक्रम-** (नाकू) अष्टाश्रमा की लिखित व्यायोग। मंगम के प्रत्य

पुस्तकालय के ट्रायैनिंगल कैटेलाग (III ४४४०) में इसका उल्लेख है।

(२) भौमविक्रम व्यायोग- (नाकृ) यह मोक्षदित्य (दे) नामक कवि की रचना है। यह रचना सवत् १३८५ (सन् १३२८) की है। उसी सन की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध होती है। इसके लेखक मोक्षदित्यन का उल्लेख पोर बन्दर राज्य के सवत् १३२० (सन् १२७३) के प्रशस्तिपत्र में किया गया है।

भौमसेन- (नापा) दे भौम।

भौष्य- (नापा) महाभारत के कौरव पाण्डवों के प्रपितामह भास के पञ्चरात्रम् एव दूतवाक्यम् में इनका उपादान किया गया है। वेणोसहार में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।

भुजंग- (नाका) इनका लिखा मदनसाम्राज्य भाण मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों में संग्रहीत है।

(१) भुजंगशेखर- (नापा) यह मुकुन्दानन्द (दे) भाण का नायक है। यह साहसपूर्ण कार्यों का इस रूप में वर्णन करता है कि कृष्ण और गोपियों की लीला की ओर भी सकेत हो जाता है। इसके लिये द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग भी यत्र तत्र किया गया है।

(२) भुजंगशेखर- (नापा) वसन्ततिलक (दे) भाण का नायक। यह प्रियतमा हेमाङ्गी से वियुक्त है। किन्तु उसे आश्वासन दिया गया है उसका पुनर्मिलन होगा। वह गणिकाओं की गली में घूमता है, आकाशभाषित करता है, सपेयों, देवताओं और इन्द्रजाल का वर्णन करता है। अन्त में उसे उसकी प्रेमिका मिल जाती है।

भुवन पाल- (नापा) हम्भीरमदमर्दन (दे) का एक पात्र। यह सिंहन के सेनानायक का मन्त्री है। वह वीरधवल के साथ समझौता करने में वास्तुपाल की सहायता करता है जिससे वास्तुपाल और वीरधवल शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं।

भुवनेश्वरब्रह्मपडा- (नाका) ये उड़ीसा के कवि हैं। इनके लिखे नाटक लक्ष्मणपरिणयम् का उल्लेख किया जाता है। इनके लिखे अन्य ग्रन्थ हैं- आनन्ददामोदरचम्पू, वमदराजवशचम्पू, महानदीचम्पू।

भूजीवदेवाचार्य- (नाका) उड़ीसा के राजा गजपति के दरबारी कवि। इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १६वीं शताब्दी प्रथम चरण है। इनकी लिखी दो नाट्य कृतिया प्रकाश में आई हैं- भक्तिवैषम्य (दे) और उत्सावती (दे)।

भूतारोद्धरणम्- (नाकृ) मथुराप्रसाद दीक्षित लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें अन्त समय में यादवों की परस्पर विनाश लीला को नाट्य का विषय बनाया गया है। कृष्ण का अन्तिम समय निकट है। अतः बलराम भी बल समाधि ले लेते हैं।

भूदेव शुक्ल- (नाका) ये १६वीं शताब्दी अथवा १७वीं शताब्दी के कवि हैं।

कुछ लोग इन्हें जम्पू का निवासी मानते हैं और कुछ अन्य लोग इनका जन्म स्थान गुजरात को स्वीकार करते हैं। इनके पिता का नाम शुक्देव पण्डित एवं गुरु का नाम श्रीकृष्ण था। इन्होंने धर्म विजय नाटक (दे.) की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इनकी रसकलश नामक काव्य शास्त्रीय रचना भी बनलाई जाती है। इनकी अन्य कृतियाँ हैं— आत्मरत्नप्रदीप, इश्वरविलासदीपिका और सिद्धान्तमुक्तावली की न्यायदीपा— मञ्जरी मकरन्द।

भूभट्ट—(ना.का.) इनका एक छाया नाटक प्राप्त होता है जिसका उल्लेख कैटलागस कैटलागोरम १४ पर किया गया है। इन्होंने अपने नाटक की रचना दूताङ्गद के आदर्श पर की थी।

भूमिनाथ—(ना.का.) ये नल्ला दीक्षित उपनाम से प्रसिद्ध हैं। ये कौशिकगोत्रीय बालचन्द्र दीक्षित के पुत्र और रामचन्द्र दीक्षित के गण्य थे। इनका समय १६वीं १७वीं शताब्दी है। इनके लिखे धर्मविजय चम्पू में तजौर के राजा शाहजी के जीवनवृत्त का वर्णन किया गया है। इससे ज्ञान होता है कि ये ही इनके आश्रयदाता थे। इन्होंने अपना निवास स्थान कन्दरमाणिक्य बतलाया है जहाँ १५वीं शताब्दी में उदण्ड रहते थे।

इनके नाट्य साहित्य में सुभद्रापरिणय (नाटक) (दे.) शङ्करसर्वस्व (भाग) (दे.) और दा प्रतीक नाटक— चितवृत्तिकल्याण (दे.) और जीवमुक्ति कल्याण (दे.) साहित्य जगत् के सामने आ चुके हैं।

भूरिवसु—(ना.पा.) मालती माधव (दे.) का एक पात्र। यह मालती का पिता है। हमने अपने छात्रजीवन में अपने मित्र देवराज के साथ एक समझौता कर रखा था कि यदि दोनों मित्रों में एक के पुत्र का और दूसरे की पुत्री का जन्म हो तो उन दोनों का विवाह कर दिया जाएगा। संयोग से भूरिवसु की पुत्री की प्राप्ति हुई जिसका नाम मालती रखा गया और देवराज को पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम माधव रखा गया। यह भी संयोग ही था दोनों मित्रों को मन्त्री पद प्राप्त हुआ। भूरिवसु पञ्चावती के राजा का मन्त्री बना और देवराज विदर्भराज का मन्त्री बना। दोनों मित्रों को अपने समझौते का ध्यान था। इसलिये दोनों ने उस दिशा में कदम बढ़ाये। भूरिवसु ने अपनी पूर्वपरीचिता कामन्दकी का मालती का विवाह माधव से करा देने का उत्तर दायित्व सौंपा और देवराज ने माधव की पद्मावती भेज दिया जिसमें दोनों का विवाह सम्पन्न हो सके। विवाह में अनेक बाधाएँ आईं और अनेक विघ्न लग। किन्तु सहयोगियों के उद्योग से अन्त में दोनों मित्रों की छात्रजीवन की आकाङ्क्षा पूर्ण हुई और मालती तथा माधव का विवाह हो गया।

भैमीनैपथीयम्—(ना.कृ.) यह चार दूरियों वाला एकाङ्की नाटक है। भीताराम आचार्य (दे.) ने मन् १९३६ में नाट्यप्रतियोगिता में प्रस्तुत करने के लिए इसकी रचना की थी। इसमें नन्दमयन्ती की प्रणय लीला का नाटक के रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन भारता पत्रिका में जयपुर में हो गया था।

(१) भैमीपरिणय- (नाकू) रामशास्त्री लिखित १० अकों का नाटक। कथानक के रूप में इसमें समस्त नलकथा चित्रित की गई है। कथानक के निर्वाह और घटनाओं के क्रम विन्यास के साथ चित्रण में कवि की मौलिकता तथा कथा निपुणता के दर्शन होते हैं। अन्तर्नाटिका का समावेश इसकी अपनी विशेषता है जिसमें दमयन्ती के परित्याग के बाद नल के भ्रमण का चित्रण किया गया है। यह अन्तर्नाटिका समस्त नाटक को पर्याप्त प्रभावशालिनी बना देती है। इसका प्रकाशन गवर्नमेन्ट प्रेस से हो गया है। इसका दूसरा नाम नलविजय भी है।

(२) भैमीपरिणय- (नाकू) श्रीनिवास दीक्षित (दे) रत्नखट लिखित नाटक। इसमें दमयन्ती स्वयंवर के कथानक का उपादान किया गया है। इसकी प्रति लेविसरायस द्वारा तैयार किये गये सम्स्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेलाग (स २३४ २३६) पर भैसूर और कुर्ग के राजपुस्तकालय में सुरक्षित है।

(३) भैमीपरिणय- (नाकू) इसकी रचना वेङ्कटचार्य ने की थी। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १४१६ में किया गया है।

(४) भैमीपरिणय- (नाकू) दखो नलविजयम्।

(५) भैमीपरिणय- (नाकू) गुम्प्रसन्न भट्टाचार्य (दे) ने भी इसी नाम के नाटक की रचना की थी। किन्तु इस विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं।

(६) भैमीपरिणय- (नाकू) शठकोपाचार्य लिखित नाटक। इसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम II ९५ पर किया गया है।

भैरवविलासम्- (नाकू) ब्रह्ममित्र वैद्यनाथ लिखित नाटक। यह एक विचित्र कथानक है जिसमें भैरव को भोजन कराने के लिये भैरव के कहने पर ही दध्नभक्त अपने पुत्र को मार कर उसके मांस से भैरव के लिये भोजन तैयार करता है। किन्तु जब भैरव को भोजन के लिये आमन्त्रित किया जाता है तब भैरव यह कह कर भोजन से इन्कार कर देता है कि वह पुत्रविहीन घरों में भोजन नहीं करता। तब दध्नभक्त बाहर जाकर पुत्र को आवाज देता है और पुत्र उठर देता हुआ तत्काल उपस्थित हो जाता है किन्तु भैरव अदृश्य हो जाता है। उनके अदर्शन से सभी लोग प्राण छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। उसी समय शिव विमान से आते हैं और सभी को स्वर्ग ले जाते हैं।

भैरवानन्द- (नाकू) नेपाली कवि माणिक (दे) का लिखा नाटक। इसका नायक भैरव और नायिका मदनवती है। जो एक अप्सरा थी और एक ऋषि के शाप से मृत्युलोक में अवतीर्ण हुई थी। इसमें साहसिक कार्यों को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। जयन्धित मल्ल और राजुल्ला देवी के पुत्र जयधर्म मल्लदेव के विवाहोपलक्ष्य में इस नाटक का अभिनय किया गया था।

भैरवानन्द- (नापा) कपूतमजरा नाटक (दे) का एक पात्र। यह एक योगी है।

यह लाट प्रदेश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी को राजा के सामने प्रस्तुत करता है। महल में रहते हुये धीरे धीरे राजा से उसका प्रेम बद्धमूल हो जाता है। किन्तु रानी द्वारा पैदा किया हुआ विघ्न विवाह का सबसे बड़ा व्याधानक है। भैरवानन्द योगी ही अन्त में आकर अपने चमत्कार के प्रभाव से रानी की स्वीकृति प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार राजा से कर्पूरमञ्जरी का विवाह हो जाता है।

भोजचरित- (नाक) वेदान्तवागीश लिखित दो अंकों का नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III ९८ पर किया गया है। इसमें एक घटना का वर्णन है कि एक व्यापारी ने समुद्र के किनारे कुछ शिलार्थें पाई थी जिन पर श्लोक खुदे हुये थे। वे श्लोक शब्दशः वर्तमान हनुमन्नाटक में मिलते हैं। भोजराज ने उन श्लोकों में एक को वहीं तत्काल पढ़ दिया था।

भोजराजद्वारा उल्लिखित नाट्यरचनायें- भोजराज के काव्यशास्त्र में कतिपय निम्नाङ्कित कृतियों को उद्धृत किया गया है- अनगवती, अधिमन्थन, अभिसारीकावञ्चितक, इन्दुलेखा, उद्गतराधव कुन्दमाला, कुबलियारवचरित चित्रलेखा छलितराधवम्, तापसवत्सराजम्, देवीचन्द्रगुप्तम्, पार्थविजय फुल्लसक्तम्, मन्थहसितम्, मलयवती मालतिका, मुकुटताडितकम्, रागवानन्दम्, राधाभ्युदयम्, लक्ष्मीस्वयंवरम्, लीलावती, विद्वान्शूद्रकम्, स्वप्नवासवदत्तम्, सुभद्राहरणम्, हयग्रीववधम्, हरिविलासम्, हरिचन्द्रचरितम्।

भोजराजसच्चरितम्- (नाक) वेदान्तवागीश भट्टाचार्य लिखित भोजराज प्रयत्नस्वरूप नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम स १४१८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

भोजराजाङ्क- (नाक) सुन्दरवीरपूद्गत (सुन्दरवीरराधव) लिखित (उत्सृष्टिकाक) जिसमें नियमानुसार अंक के लिये अनपेक्षित विष्कम्भक का भी प्रयोग किया गया है। भोजराज की प्रणय लाला और घरेलू प्रयत्न एवं छलकपट का मिनाजुला रूप इसके बथानक के लिये अपनाया गया है।

भाज एक मधारी छात्र था जो अल्पकाल में ही ममस्त शास्त्रों में अधिरात् निष्णात हो गया। पिता मिन्धुलराज ने उसका विवाह आदित्यवर्मा की पुत्री लीलावती के साथ कर दिया जबकि भोजराज का झुकाव प्रमिका विलासवती की ओर था। विवाहविधि सम्पन्न होने के पश्चात् ही पिता के महाप्रयाण का अवसर आ गया। अब भोजराज के यागधाम का उत्तरदायित्व पित्रव्य मुञ्जराज पर आ गया जो स्वयं राजा बनना चाहता था। किन्तु ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि भाज का राज्य ५५ वर्ष चलेगा। अतः मुञ्जराज ने छलकपट का महाराज लेकर भोज को नष्ट कर देने का निश्चय किया। पहले तो वह राजा युवती लीलावती या अपहरण करा दिया और फिर मेनारति कन्याराज को भोज की रत्न को अन्धकार में दिखाया। कन्याराज आत्मापानन हेतु भाज को वन में ले गया जहाँ भाज का छाड़ दिया और किमी जानवर का रक्त दिखाना कर भोज की मृत्यु

का विश्वास दिला दिया।

भोज जंगल में भटकने लगे वे माता शशिप्रभा और प्रेमिका विलासवती के वियाग की व्यथा से अत्यन्त पीड़ित थे। इधर मन्त्री बुद्धसागर मुञ्ज के अत्याचारों से परेशान था। उसने बाग्दत्ता लीलावती के पिता आदित्यवर्मा का मुञ्ज पर आक्रमण के लिये प्रेरित किया। सयोगवश वन में भटकने हुये भोजराज को अपहृता लीलावती ने देख लिया। प्रथम दृष्टि में ही वह भोजराज पर अनुरक्त हो गई और वरगद के पते पर पान से प्रेमपत्र लिख कर भोज के पाम भेज दिया। अब भोज उसे तताश करन लगे। अपहृता लीलावती का पिता जयपाल मुञ्ज पर आक्रमण करता है जिससे भोजराज की मित्रता पहल ही हा चुका है। अन्त में भोजराज माता शशिप्रभा और प्रेमिका विलासवती से मिलता है, उसका राज्यरोहण होता है और बाग्दत्ता लीलावती से उसका विवाह हो जाता है। मुञ्ज विरक्त होकर जंगल को चले जाने हैं।

यह १९वीं शताब्दी की रचना है। इसमें शृङ्गार और करुणा का समन्वय देखा जा सकता है।

ट्रायेनियलकैटेलाग आफ सस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट इन आरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में म ॥ २४१३ पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रकाशन मनमनारत्न पत्रिका के दूसरे अंक में कर दिया गया है।

भोजराज्ये सस्कृतसाम्राज्यम्— (नाट्) यह एकाङ्का नाटक है। इसकी रचना २०वीं शताब्दी के वानुदेवद्विवेदी (दे) ने का था। प्रकाशन संस्कृतप्रचारपुस्तकालय की ओर से किया गया था। इसमें मध्यकालीन भारतीयसंस्कृति का चित्रण किया गया है।

भोलानाथ शुक्ल— (नाट्) १८वीं शताब्दी के राजस्थानी कवि, इनका लिखा कंकुतूहलम् नाटक बनलाया जाता है।

भ्रमभञ्जनम्— (नाट्) पञ्जाबवासियों सत्यव्रत शर्मा का लिखा नाटक।

भ्रान्तभारत— (नाट्) २०वीं शताब्दी के बम्बई निवासी शक्तिप्रान्द्विवेदी लिखित नाटक।

भ्रान्तिविलास— शैलदाक्षिण लिखित (६) कमेडा आन एर्स का अनुवाद।

म

(१) मकरन्द— (नाट्) मानलिंगाधर का एक महत्वपूर्ण पात्र। ये नन्दक माधव के सहयोगी मित्र एवं उपनायक है। माधव का अपना अभाष्ट प्राप्त करने में उसने भानूर सहयोग मिलती है और उस उदार सहयोग का उस पुरस्कार भी मिल जाता है। वह एक सहज वार व्यक्ति है। साथ ही कदा पञ्चना भी उसकी विशेषता है। एक वध न

जंगल के एक शून्य मन्दिर में एक युवती पर आक्रमण कर दिया है। उस युवती की वरुण पुकार सुनकर वह अचल हो बाध से भिड़ जाता है और उस युवती की रक्षा कर लेता है। युवती उसके इस साहस पूर्ण कार्य से प्रभावित होकर पूर्ण ममर्पित हो जाती है। उसने मालती और माधव में प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के लिये अपना मित्रधर्म निवाहा है और उसे सफलता भी मिली है। किन्तु उन दोनों के प्रेम सम्बन्ध में विदग्ध का राजा एक बहुत बड़ा बिघ्न है। राजा मालती का विवाह अपने मित्र नन्दन से कराने के लिये राजशक्ति का प्रयोग करता है और विवाह निश्चित कर देता है। मकरन्द इस बिघ्न से बड़ी कुशलता से छुटकारा पा लेता है। स्वयं वह खूबमूरत है वह स्वयं मालती के स्थान पर युवती का वेप धारण कर नन्दन से विवाह कर लेता है और मालती को माधव के साथ भाग जाने का उचित अवसर दे देता है। वह नैसर्गिक सुन्दरता के कारण युवती के रूप में छन भी जाता है। किन्तु जब प्रथम सम्मिलन में वह नन्दन के वश में नहीं आता तब नन्दन अपनी यहन मदयनिवा से सहायता चाहता है। मदयनिवा भाभी की डाट डपट कर उसे पत्थर का ठाक व्यवहार करने के लिये बाध्य करने के निमित्त जब भाभी के पास जाती है तब यह देखकर वह चकित हो जाती है कि भाभी के वेप में मकरन्द ही विद्यमान है जिसने वारं वार मन्दिर में उसकी रक्षा की थी और उस समय सत्ता उसका हृदय देवता बन गया था। अबमर पाकर दोनों भाग निकलते हैं। उनकी पोछा पिया जाता है जिसका वह माधव के सहयोग से वीरता के साथ सामना करता है। राजा उनकी वीरता से प्रसन्न होकर उन्हें विवाह की आज्ञा दे देता है और इस प्रकार माधव की सहायता करने का पुरस्कार उसे परले ही मिल जाता है।

(२) मकरन्द- (नापा) कौमुदी मित्रानन्द (दे) में मित्रानन्द का मित्र। वह मित्रानन्द का सहायता ता करता ही है स्वयं भी कौमुदी की सहायता से युवती सुमित्रा से विवाह करने में मग्न हो जाता है और मित्रानन्द की सहायता से अपन करवा की रक्षा भी कर लेता है।

मकलिंग शास्त्री- (नाका) य मद्रास हाईकोर्ट में एडवोकेट थे। य अप्पय दीक्षित के वश में जुलाई १८९७ में पैदा हुए थे। इनके लिखे कई छोटे छोटे काव्य प्रसिद्ध हैं जिनमें धनलता नदापूट व्याजकि रत्नावली अर्षान्तरन्यासपन्याशत भारता विषाद प्रमामन्दरा दुर्जनहृदय लघुपाण्डवचरित श्रविडार्य और मुधापिनमप्लति सम्मिलित हैं। इन्होंने कलियादुभाव जैसी कुछ कहानियाँ भी लिखी और भासकथाम्भार नाम से भास नाटकों का ब्रह्माचार भी लिखा जिसका विश्वविद्यालयों में अत्यधिक सम्मान हुआ। इसका वर्तमान मौलिक नाटक हैं उद्गान् दशानन (२) प्रतिपन्नमय (२) और कौण्डिन्यग्रहसन (२)।

इनकी कुछ पुस्तकें उद्यानत्रिफा में प्रकाशित हो गई थी और कतिपय अन्य छोटी छोटी पुस्तकें का किट्टिणा नाम से मढ़लन कर दिया गया था।

मगलगिरिकृष्ण द्वैपायन- (नाका) य आन्ध्रप्रदेश में विजययात्रन के निवासी

वेङ्कटरमणाचार्य के पुत्र थे। इनकी सस्कृत और तेलुगु में कई रचनाये प्रसिद्ध हैं जिनमें दो नाटक भी बतलाये जाते हैं— वसन्तमित्रभाग (दे) और श्रीकृष्णादानामृत (दे)।

मंगलनाटक- (नाकू) जीवानन्द ज्योतीर्विद (दे) का लिखा नाटक, यह देवीमहता पर ९ अकों का नाटक है। इसका प्रकाशन बनारस से हो गया था।

मञ्जुलनैषधम्- (नाकू) वेङ्कटरमणाथ (दे) लिखित ७ अकों का नाटक। इसमें निषधराज नल की कथा का वस्तुरूप में उपादान किया गया है। वेङ्कट रमणाथ शर्मा ने १८८६ में इसका प्रकाशन विशाखापट्टनम् से कराया था।

मङ्गलोत्सवम्- (नाकू) रजनीकान्त साहित्याचार्य (दे) लिखित नाटक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

मञ्जुलमञ्जीरम्- (नाकू) जगू श्री वकुल भूषण लिखित नाट्य कृति।

मञ्जुलमन्दिरम्- (नाकू) (१) नारायण शास्त्री लिखित ६ अकों का नाटक।

मञ्जुलाचार्य- (नाका) वशिष्ठगोत्रीय कवि एव नाटककार। इनकी कृष्णामूर्ति कुमार की भी सज़ा दी जाती है। इनका लिखा वल्लवीपल्लवोल्लास (दे) भाण मद्रास लायबेरी में प्राप्य है।

मणिक- (नाका) १४वीं शताब्दी के नेपाली कवि। इनका लिखा भैरवानन्द (दे) नाटक प्राण होता है। इनके लिखे एक अन्य नाटक अभिरामराघव (दे) का भी (लेवी २६८ पर) उल्लेख किया गया है।

मणिकाञ्जनसमन्वय- (नाकू) विष्णुपद भट्टाचार्य लिखित दो अकों का नाटक। इसमें बंगाल में प्रसिद्ध एक लोककथा का अंकन किया गया है। गुड और मधु वेचने वाले दो व्यक्तियों के झगड़े में धनपाल दोनों वस्तुओं को चखकर उन्हें बनावटी सिद्ध कर देता है और दोनों को गुड और मधु विक्रय के व्यवसाय को छुड़ाकर गाय चराने और आम का वृक्ष सौंचने की नौकरी पर लगा देता है। आम वृक्ष के तले एक सुवर्ण पूरित घट मिलता है। दोनों उस घट को बराबर बाट लेने का निश्चय कर भाग जाते हैं। घट मधुविक्रेता शर्शरीक के घर में रक्खा जाता है। शर्शरीक पुत्र से यह कह कर कि यदि गुडविक्रेता दर्दुरक आये तब उससे कह देना कि पिताजी मर गये हैं और कलश के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। दर्दुरक अविश्वास कर श्मशान तक जाता है। किन्तु वहा डाकुओं के आ जाने से एक झाड़ी में छिप जाता है। डाकू देखते हैं कि शव तो पिता में कबूटे बदल रहा है तथा झाड़ी से दर्दुरक शोर मचाने लगता है। तब डाकू पिशाचों को आशवा कर लूटा धन छोटकर भाग जाते हैं और दोनों मिलकर कलश के धन के साथ डाकुओं द्वारा छोड़ा गया धान भी बाट लेते हैं।

इस नाटक में सी पात्रों का सर्वथा अभाव है। इसमें जनसामान्य की जीवनस्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसका प्रकाशन मञ्जुपा में हो गया था।

मणिचूड- (नाट्य) लोकानन्द (दे) नाटक का नायक ।

(१) मणिमञ्जूषा- (नाट्य) रामान्द्र शास्त्री (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक । इसमें उच्चकोटि की वांछना के साथ गाना था भी बीच बीच में सप्तावश किया गया है ।

(२) मणिमञ्जूषा- (नाट्य) रामनाथ शास्त्री इसके लिखित १८ दृश्यों की नाट्यकृति । इसमें दशकुमार चरित के अपहरण वर्ण का चरित्र चित्रित किया गया है । इसमें गीतों की अधिकता है । प्रकाशन १९४१ में संस्कृत साहित्य परिषद पत्रिका में हो गया था ।

मणिमाला- (नाट्य) अनन्दि मिश्र लिखित चार अंकों की कल्पित कथा वस्तुपरक नाटिका । मणिमाला पुष्कर द्वीप की एक राजकुमारी है । वही इस नाटिका की नायिका है । उज्जयिनी के महाराज उस स्वप्न में देखकर अनुरक्त हो जाते हैं । वे अपना स्वप्न महाराजा की मुसलत हैं और वस्तुतः हैं कि उन्होंने स्वप्न में देखा है कि जो उस राजकुमारी में शरीर करण वह मघाट में जायगा । गानों को यह बात अच्छी नहीं लगती । उपर पुष्कर द्वीप में मन्धर्वराज की मणिमाला के साथ विवाह की तैयारी चल रही है । किन्तु मणिमाला अभाट कर पकड़ खिन्न है । इतने में मुसिद्धिसागिनी एक रात्र तैयार कर उपर मणिमाला को बैठाकर उज्जयिनी की ओर प्रेषित कर देती है । नायक को मणिमाला के आगमन का सूचना मिल गई है । इसी बीच में द्वन्द्वदृष्ट नामक राक्षस उसका अपहरण कर लेता है । नायक विषाग ध्वना में तड़पने लगता है । सप्ताग में अद्भुतभूति नामक राक्षस वहा आ जाता है उसमें राजा का ज्ञान हो जाना है कि द्वन्द्वदृष्ट के प्राण मणि सम्पुट में रहने वाले एक बाट के अन्दर विद्यमान हैं । वह मणिसम्पुट पौष्पपर्वत पर एक स्वर्णवृक्ष में स्थित है । वहीं मणिमाला प्राण की जा सकती है । यह सूचना पाकर उज्जयिनी के महाराज राजारक्षक वहा जाकर उस राक्षस का मार डालते हैं और मणिमाला से विवाह कर लेते हैं ।

इस नाटक की रचना १८वीं शताब्दी के मध्य में उन्कल के राजा नारायण मागवार का प्रयाग पर की गई थी । इसका प्रथम अभिनय उज्जयिनी में दुर्गा देवी के शास्त्रीय उन्कल के अवसर पर किया गया था । इसमें संस्कृत के साथ प्राकृतभाषा का भी प्रयोग किया गया है । इसकी बहुत बड़ी विशिष्टता है इसमें अलवारों की भरमार तथा बड़े छन्दों और कतिपय अशर्चित छन्दों का प्रयोग ।

मणिमेखला- (नाट्य) (१) नारायण शास्त्री लिखित एकाङ्की नाटक ।

मणिहरण- (नाट्य) जगू श्री वकुलभूषण लिखित एकाङ्की रूप । इसका कथानक भगवत् उद्धार के भाग का है । दुर्योधन मारा गया है और सांत्विक पर्व में द्रौपदी के पांच पुत्रों का वध कर दिया गया है । द्रापदी खिन्न है और उस गान्धर्व दान के नियम प्रवचनान्तर में मन्त्र का धार कर मणि की अपहरण कर लिया जाता है ।

चरित चित्रण की सशक्तता, कार्यव्यवहार का सातत्य तथा प्रतिक्रियात्मक एवोलुटियो का समावेश इसकी विशेषतायें हैं। इसका प्रकाशन संस्कृत प्रतिभा में हो गया था।

मण्डूक सूक्त- (ऋ ७१०३) ऋग्वेद का एक सूक्त। यह एक प्रहसन कोटि का सूक्त है। इसमें कर्मकाण्डियों और वेदपाठी छात्रों की मजाक उड़ाई गई है। किन्तु कतिपय पाश्चात्य विद्वान इस व्याख्या से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि ब्राह्मणों द्वारा संकलित ग्रन्थ में ब्राह्मणों का उपहास आ ही नहीं सकता। कौंध ने वर्ग के टोटके के रूप में इसकी नृत्यपरक व्याख्या को अधिक समर्थ बतलाया है। यदि ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मणों की उपहासपरक व्याख्या की जाय तो भी कुछ अनौचित्य नहीं है। आपस में इस प्रकार का परिहास अनुभव सिद्ध है। यह भी मनोरञ्जन की एक प्रवृत्ति है। इस प्रकार के मनोरञ्जन से किसी वर्ग की निन्दा नहीं उसके प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक होती है। आजकल विवाहोत्सवों में औरों द्वारा गाली गाई जाना इस प्रवृत्ति का एक अच्छा उदाहरण है।

भर्तृग- (नाकृ) नागानन्द (दे) में जैनूतवाहन का शत्रु। यह नेना लेकर जैनूतवाहन के राज्य पर आक्रमण करने वाला है, किन्तु जैनूतवाहन उसे शत्रु नहीं मानते। वे कहते हैं मेरा केवल एक शत्रु है और वह है पाप।

भर्ति- (नापा) प्रबोध चन्द्रोदय (दे) में विवेक की पत्नी। वह विवेक और उपनिषद् को मिलाने का प्रयत्न करती है। इनके लिये उनके मन में संविषाडह विलकुल नहीं है, क्योंकि भविष्यवाणी की गई है कि विवेक का जो पुत्र उपनिषद् (पत्नी) के गर्भ से उत्पन्न होगा वह महामोह का नाश करेगा। पति की विजय कामना से वह सौत को भी सहन करने को तैयार है। विवेक पत्नी की इस उदारता पर प्रसन्न है।

मत्तविलास- (नाकृ) महेन्द्र विजयदेव वर्मा (दे) का लिखा हुआ प्रहसन। सम्भवत यह संस्कृत साहित्य का प्रकाश में आया पहला प्रहसन है जो दक्षिण से प्राप्त हुआ है। लेखक ने भास की शैली पूर्णरूप से अपनाई है। नाट्यप्रविधि, आमुख (स्यापना) पात्रप्रवेश इत्यादि अनेक दिशाओं में भास का अनुसरण किया गया है।

इस प्रहसन में शैव, कापालिक, बौद्ध, आर्हत, पार्श्वपुत्र इत्यादि की मजाक उड़ाई गई है। लेखक को बौद्ध धर्म का विशेष ज्ञान प्रगट होता है। भाषा प्रवाहपूर्ण है, गद्य कहीं कहीं जटिल हो गया है।

इसमें काष्ठी का विशेष वर्णन किया गया है। इसका क्यातक ऐसे दम्पति पर आधारित है जो दोनों शराधी हैं। पति शैव कापालिक है। उनकी पत्नी देवसोमा पति के साथ रगमञ्च पर आती है। पत्नी नशे की झोक में जब गिरने लगती है तब पति से सहारा मांगती है। पति स्वयं नशे में डूबा उन्मत्त है कि उसने नहाय देने की शक्ति नहीं है। पति को ग्वांति होती है और वह सारा छोड़ देने की प्रयत्न करता है। किन्तु तब उसे अपनी जंजीर साधना करने से रोकती है। वह अपनी भूल मुझा लेता है और

सुरापान की प्रशंसा करने लगता है। मदिरालय का यज्ञस्थल सादृश्य के साथ वर्णन, मदिरा को शिवनेत्र ज्वाला से दाघ कामदेव का स्वरूप कहना, कापालिक का मदिरा पात्र खो जाना, उसकी खोज, शान्तिभिक्षु पर कपाल के अपहरण का सन्देह, सुरा और मुन्दरी के योग का निषेध करने के कारण धर्मनिन्दा इत्यादि अनेक तत्व हास्य रस के अच्छे साधन हैं। कापालिक को प्रसन्नता है कि गुरु की कृपा से उसने मुण्डन कर लिया है जिससे उसकी प्रियतमा उसके बाल खींच नहीं पाती। इसी प्रकार देवसोमा का बाल पकड़ने की असफल चेष्टा में भूमि पर गिर जाना, बौद्ध द्वारा उसके उठाये जाने के कारण विवाद, न्यायाधिकरण में जाना, कपाल की चोरी में कुत्ते का पकड़ा जाना इत्यादि वर्णन मनोरंजन के अच्छे साधन हैं।

कीथ ने संस्कृत ड्रामा में इसका विशेष परिचय दिया है। साहित्य दर्पण में मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग (परिशिष्ट) में और मद्रास के जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च में कुछ लेखों में इसका परिचय दिया गया है।

मत्तविलास- (नाकाउप) यह मत्तविलास प्रहसन के लेखक महेन्द्रविक्रमवर्मा की उपाधि है। इसका उल्लेख स्वयं महेन्द्रविक्रमवर्मा ने दूसरी उपाधियों के साथ किया है। दूसरी उपाधियाँ हैं- अवनिभाजन आर गुणभर। ज्ञात होता है कि यह प्रहसन जनना को इतना अधिक पसन्द आ गया था कि लोग इसके लेखक को ही इस नाम से पुकारने लगे।

मत्स्यहसित- (नाक) यह एक प्रकरण है। इसका उल्लेख भोजराज के शृङ्गार प्रकाश में किया गया है जिसके आधार पर विचारका ने इसे प्रकरण माना है। इसका उल्लेख मणिकुल्या के उदाहरण के रूप में किया गया है। मणिकुल्या एक ऐसी कहानी को कहते हैं जिसमें मणि के वर्तन में जल के समान कहानी का स्वरूप पहले प्रकट नहीं होता किन्तु अन्त में उसका रहस्य खुलता है। इस प्रकरण की कोई प्रति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। कथासारित्सागर तन्त्रक १ तरंग ५ में बाजार में मरी मछली के हमने की एक उपकथा श्लो १६ २८ दी हुई है। इसी प्रकार शुक्लपदाति में मछली के हसने की कथा आई है। ये कथाएँ सम्भवतः मत्स्यहसित प्रकरण से ली गई हैं।

मथुरादास- (नाका) ये कृष्णदास के शिष्य थे यमुना के तट पर सुवर्णशेखर नाम का नगर में वायस्य परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनोंने कृष्णभानुजा (दे) नामक एक नाटिका लिखी थी।

मथुरानिरुद्ध- (नाक) यह चन्द्रशेखर (चयनी) का लिखा कृष्णविषयक एक नाटक है। इसके अन्तर्गत है जिनमें उषा और अनिरुद्ध के गुप्त जीवन का चित्रण किया गया है। उषा की उषा चन्द्रशेखर ने अनिरुद्ध का अपहरण किया था। इस नाटक का विस्तारण चित्पवन २ फेब्रुअरी (॥ ३१६) में किया है। इसका उल्लेख कैटेलागम कैटेलागोरम (॥ ४२६) में किया गया है।

मयुराप्रसाददीक्षित- (नाक) हरदोई (उत्तर प्रदेश) के भगवन्तनगर के निवासी थे। इन्होंने काव्यकोश, व्याकरण आयुर्वेद पर पुस्तकें लिखीं। इनके ६ नाटक वीरप्रताप (लाहौर १९३६) शङ्करविजय पृथ्वीराज, भक्तसुदर्शन गान्धीविजय, भारतविजय भूतरोद्धरणम् प्रकाश में आये हैं। (इन नाटकों का परिचय यथास्थान देखिये।)

मदनकेतुचरितम्- (नाक) रामपाणिवाद (दे) लिखित प्रहसन। सिंहल के राजा मदनकेतु और भिक्षु विष्णुत्रात वेश्यागामी हैं। युवराज मदनवर्मा शिवराज नामक कापालिक योगी की सहायता से उनकी यह लत छुड़ा देते हैं। इसका प्रथम अभिनय भगवान् रघुनाथ के यात्रोत्सव में किया गया था। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

मदनगोपाल- (नाक) यह एक भाण है। इसकी रचना स्वयंभूनाथ ने की थी (मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग स २२५ से २८७ और ६३७ में जो पाण्डुलिपियां संकलित हैं उनमें इसका भी समावेश किया गया है।) राधाकृष्ण की प्रेम लीला का चित्रण इसका विषय है।

मदनगोपालविलास- (नाक) यह गुरुग्राम (दे) का लिखा एक भाण है जिसमें कृष्ण और राधा की प्रेम लीला का चित्रण किया गया है। मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग की विवरणात्मक ग्रन्थसूची (XXI ८४४०) तथा कैटेलोगस कैटेलोगोरम १४२५ और II ९७) में इसका उल्लेख है।

मदनबालसरस्वती- (नाक) ये बंगाल के १३वां शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। ये परमारवंशीय अर्जुनवर्मा के गुरु थे। इन्होंने पारिजातमञ्जरी की रचना की थी। (विवरण के लिये देखिये पारिजातमञ्जरी।)

मदनभूषण- (नाक) यह अम्मा दीक्षित का लिखा एक भाण है। तबौर की पैलेस लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग के (VIII ३५८२) में इसका उल्लेख है। इसका प्रथम अभिनय कावेरीटट पर गौरीमयूरनाथ मन्दिर की नाट्यशाला में वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। मदनभूषण नाम का विट अनेक अनुभव करता है और अनेक प्रकार के लोगों से मिलता है। उन्हीं अनुभवों का इसमें उपादान किया गया है। इन मिलन वालों में वाराङ्गनाथें ब्रह्मचारी, शैलूष वैद्य पौराणिक विद्वान् इत्यादि सभा प्रकार के लोग सम्मिलित हैं। नीति की शिक्षा दकर समाज को सन्मार्ग पर लाना इनका उद्देश्य है।

मदनमञ्जरी- (नाक) यह एक नाट्यकृति है। जिसका रचना युवराज ने की थी। इसकी प्रति आर्य लायब्रेरी विजयापट्टम से प्राप्त की जा सकती है।

मदन मञ्जरी- (नापा) लटकमेलक (दे) प्रहसन का नायिका। यह वर्या कुट्टिनी दनुज के यहा रहकर रूप का व्यवसाय करती है। सभा प्रकार के व्यक्ति आते हैं जा माल ताल करत है जिसस हास्य का वातावरण बनता है।

मदनमञ्जरीमहोत्सव- (नाक) विलिनाथ लिखित नाटक। इसमें पाण्डाल क राजा

पराक्रमभास्कर की रुद्रभक्ति का प्रभाव दिखलाया गया है। पाटलिपुत्र के राजा चन्द्रवर्मन के साथ पाञ्चालराज के युद्ध में रुद्र ने मानव रूप में अपने भक्त की सहायता की जिससे पाञ्चालराज को विजय प्राप्त हो गई। ५वें अंक पर इस नाटक की समाप्ति एक दम हो जाती है।)

(तजौर की पैलेस लायब्रेरी स VIII ३४४७ पर इसका उल्लेख है और मद्रास से इसका प्रकाशन हो चुका है।)

मदन महोत्सव- (नाकू) श्रीकृष्णमञ्जुण्ड (दे.) लिखित एक भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आप सस्कृत मैन्सुक्रिप्ट स XXI ४३९६ पर इसका विवरण दिया गया है।

मदन लीलादर्पणभाण- (नाकू) दे लीलादर्पण।

मदनवती- (नापा) प्रबुद्धरौहिणेय (दे.) का एक पात्र वह गृहस्वामी की पत्नी है। दस्यु उसका अपहरण कर उसे ले जाकर वैभार पर्वत पर रखते हैं। जब अपराधियों को अपराध बोध होता है वे राजा इत्यादि को ले जाकर अपहृत धन और एक युवक के साथ उसे भी लौटा देते हैं।

मदनविजय- (नाकू) एक भाण। इसकी रचना कालहस्ती के विक्किराल परिवार में उत्पन्न शेषाचार्य ने की थी। इसका प्रकाशन मद्रास से हो चुका है।

मदनविलास- (नाकू) नागनाथ लिखित भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के सस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनियल कैटेलाग में स II २६१९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

मदनसञ्जीवन- (नाकू) घनश्याम (दे.) लिखित एक भाण। मद्रास में १९०५ में प्रकाशित सस्कृत मैन्सुक्रिप्टस की एक रिपोर्ट में इसका परिचय दिया गया है। इस नाटक में वेश्यागामियों के अनेक पतन दिखलाये गये हैं। तथा विविध सम्प्रदायों की सम्पत्ता का चित्रण किया गया है। इसका प्रथम अभिनय चिदम्बरम् में हुआ था। इसका रचना काल १८वीं शताब्दी है।

मदन साम्राज्य- (नाकू) भुजंग लिखित भाण। यह मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों में संगृहीत है।

मदन सुभट- (नाका) दे सुभट।

मधुसूदनशास्त्री- (नाका) इनका लिखा एक महाकाव्य 'हिन्दूविश्वविद्यालय चौखम्बा सस्कृत पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। काशी हिन्दू विश्व विद्यालय (दे.) शीर्षक एक एकाङ्की भी प्राप्त होता है। ये काशी निवासी थे और १९३६ से १९६८ तक विश्वविद्यालय में सस्कृत विभागाध्यक्ष रहे।

मधुसूदनकाव्यरत्न- (नाका) ये १९वीं शताब्दी के बंगालनिवासी कवि एवं

नाटककार थे। इनके लिखे 'पण्डितचरितप्रहसनम्' का उल्लेख किया गया है।

मदनानन्द- (नाक) यह एक भाण है जिसकी रचना पार्यसारथि (दे) ने की थी। नुजविद से इसका प्रकाशन हो चुका है।

(१) **मदनाभ्युदय-** (नाका) वेङ्कटेश लिखित नाटक। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के ग्रानियल पाण्डुलिपि अनुभाग (III ३२०२) में प्राप्य। इसका नामान्तर है मन्मथाम्युदय।

(२) **मदनाभ्युदय-** (नाक) अभिनव कालिदास लिखित नाटक। कुछ लोगों का विचार है कि कृष्णमूर्ति ही इस भाण के लेखक हैं जिनको अभिनव कालिदास के नाम से याद किया जाता है और जो स्वयं को इस उपाधि से पुकारा जाना पसन्द करते थे।

मदनिका- (नापा) शूद्रक (दे) लिखित मृच्छकटिक (दे) में वसन्तसेना की दासी। वसन्तसेना ने उसे मूल्य देकर क्रय किया है, किन्तु यह शर्त भी स्वीकार कर ली है कि उसको वह तभी तक अपने दास्य कर्म में नियुक्त रखेगी जब तक उसके प्रदत्त मूल्य का निर्यातन न कर दिया जाय। वह भी अत्यन्त रूपवती है, वह शर्विलक की प्रेयसी है। शर्विलक उसके रूप का दीवाना है, वह ब्राह्मण होते हुये भी और धर्म अधर्म को समझते हुये भी उसके लिये चोरी जैसा अधर्म का कार्य करता है। वह गुणवती, विवेकशील और न्यायप्रिय महिला है। वह भी शर्विलक से प्रेम करती है किन्तु चोरी से प्राप्त धन के निर्यातन से छुटकारा प्राप्त करना और प्रेमी के पास जाना स्वीकार नहीं करती। वह उस धन के स्वामी को धन वापस कर देना अपना परम कर्तव्य समझती है।

अपने प्रेमी को चोर सिद्ध हो जाने के अपराध से बचाते हुये वसन्तसेना के धन को वापस करने की मुक्ति भी निकाल लेती है। वह कर्तव्य परायण भी है, जब उसका प्रेमी उसे छोड़कर कर्तव्यपालन के लिये जाना चाहता है तब अपने सुख की परवा न कर उसे ऐसा करने की अनुमति दे देती है। यह उसके चरित्र की महत्ता है।

मदभूसिवेङ्कटाचार्य- (नाका) नैधुवकरयपगोत्रीय अनन्ताचार्य के पुत्र थे। ये पूर्वगोदावरी जिला के सागल कोट के निवासी थे। इनका शुद्धभक्तम् नामक एक प्रतीक नाटक प्रकाश में आया है जिसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि ये विशिष्टाद्वैत के अनुयायी थे।

मदनान्तिका- (नापा) यह मालती माधव प्रकरण की पताकानायिका है जो वाघ से प्राण रक्षा करने वाले के प्रति समर्पित हो जाती है। जब वह सुनती है कि उसके भाई नन्दन के प्रति उसकी भाभी का व्यवहार अच्छा नहीं है तब वह भाभी की भर्त्सा करने जाती है वहा उसे मालती के वेष में अपना प्रेमी मिल जाता है। वह प्रेम की इतनी दीवाना है कि प्रेमी के इस दुर्व्यवहार के लिये भर्त्सा करने के स्थान पर अवसर का लाभ उठाकर प्रेमी के साथ भाग जाती है। उसका पीछा किया जाता है, संघर्ष होता है जिसमें उसे माधव की सहायता भी मिलती है। अन्त में उस प्रेमीयुगल को राजा की

ओर से क्षमा मिल जाती है और उसे अपना मनमाना प्रेमी पति रूप में प्राप्त हो जाता है।

मदलेखा- (नाक) यह आठ अकों का एक उपरूपक त्रोटक है। शारदातनय के भावप्रकाशन में इसका उल्लेख किया गया है। अब यह रचना प्राप्त नहीं होती।

(१) **मदालसा-** (नाक) नारायणशास्त्री लिखित ७ अकों का नाटक।

(२) **मदालसा-** (नाक) गोकुलनाथ (दे) लिखित सात अकों का नाटक। इसका नाम मुदितमदालसा अथवा मदालसापरिणय भी है। इसमें कुवलयारव के साथ मदालसा के विवाह का अंकन किया गया है। मदालसा विश्वावसु की पुत्री थी।

(डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ मैन्सुक्रिप्ट्स, ओरियण्टल मैन्सुक्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास XXI ८४४४ तथा ८४४६ में इसका उल्लेख है। इस पाण्डुलिपि में किसी अज्ञातनामा लेखक की टीका है।)

(३) **मदालसा-** (नाक) रामभट्ट लिखित नाटक। इसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम में स १५० पर किया गया है। इसको उज्जीवितमदालसा नाम से भी याद किया जाता है।

मदालसाकुवलयारव- (नाक) यह गुरुप्रसन्नभट्टाचार्य (दे) लिखित नाटक है। इसमें मदालसा और कुवलयारव के प्रणय सम्बन्ध का चित्रण किया गया है। यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं होती। कुछ समय तक इसकी पाण्डुलिपि लेखक के पास ढाका में था उनके घर पर रामकृष्णदास लेन में सुरक्षित रही। अब पता नहीं चला है।

मदालसापरिणय- (नाक) यह शेषाद्रि (दे) लिखित नाटक है। इसमें मदालसा और कुवलयारव के परिणय का वृथानक के रूप में उपादान किया गया है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १४२६ पर किया गया है।

मदालसापरिणय- (नाक) दे मदालसा (२)

मद्ययान- (नापा) मोहराजपराजय का एक पात्र। यह मोहराज के शासन में जनता पर अधिकार जमाये हुये व्यसन वर्ग में एक है। कृपा सुन्दरी ने कुमारपाल से विवाह करने की शर्त लगा दी थी कि राज्य से व्यसन वर्ग को निकाल देने पर ही वह विवाह करेगी। इस शर्त के अनुसार जिन व्यवसनों को निर्वासित किया गया उन अपने सहयोगियों के साथ इसे भी देना निकाला दिया गया।

मधुमती- (नापा) प्रबोध च- ' का एक पात्र। यह मरामोर द्वारा आदि पिता पुरुष को म्हामोर के अधिकार में बनाये रखने के लिये नियुक्त की गई है। इसमें इसे अपनी सहेली माया से भी सहायता मिल जाती है। तर्क आदि पुरुष को समझाता है और तब माया से उम्मा मध्यम और सहायता छुट जाता है। तभी मधुमती से भी उसे रुतवारा मिलता है।

मधुमाधवीयम्- (नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित १० अकों का नाटक ।

मधुविधूननम्- (नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित ३ अकों का नाटक ।

(१) मधुसूदन- (नाका) इनका लिखा जानकी परिणय नामक नाटक प्रकाश में आया है जिसमें चार अंक हैं । इनका समय १७वीं शताब्दी का प्रथम चरण है ।

(२) मधुसूदन- (नाका) ये भरद्वाजगोत्रीय वैद्येश्वर और गुणवती के पुत्र थे एवं विजयनगर के राजा कृष्ण राय के आश्रय में रहने वाले कवीन्द्राचार्य दिवाकर के भाई थे जिसका परिचय मद्रास प्राच्यपुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग स IV ५६६४ में दिया हुआ है । इनके लिखे धूर्त विडम्बित भाण का उल्लेख प्राप्त होता है ।

(३) मधुसूदन- (नाका) शाण्डिल्यगोत्रीय नारायण के पुत्र । ये मधुसूदन सरस्वती से भिन्न हैं । इनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोस १११९ पर किया गया है । इनके लिखे कृष्णकुनूहलम् का भी उल्लेख वही किया गया है ।

मधुसूदनकाव्यतीर्थ- (नाका) इनकी लिखी पण्डितचरितप्रहसन शीर्षक रचना प्राप्त होती है । इसके अतिरिक्त इनकी कई अन्य रचनायें भी बतलाई जाती हैं । इनकी रचनायें अब तक अप्रकाशित हैं ।

मधुसूदन सरस्वती- (नाका) प्रतिष्ठित दार्शनिक और भक्ति एवं वेदान्त दोनों के अन्यतम प्रस्तोता मधुसूदन सरस्वती का जन्म १६वीं शताब्दी में हुआ था और १७वीं शताब्दी के प्रथम दशक के मध्य तक जीवित रहे । दर्शन के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान है । इनका वास्तविक नाम कमलनारायण था और ये गौड़, कनौजिया कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे । कहा जाता है स्वयं के अतिरिक्त अपने पिता पुरन्दर और भाई यादवानन्द के प्रति बारीसाल जिला के माधव पाशा के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर इन्होंने सन्यास ले लिया और बनारस में रहने लगे । प्रसिद्ध अद्वैतसिद्धि इन्हीं की रचना है । गोस्वामीतुलसीदाम इनके मित्र थे और इन्होंने उनके काव्य की प्रशंसा की थी । कुछ लोगों का कहना है कि पुरन्दर इनके पिता नहीं भाई थे । अकबर ने इन्हें अपने दरबार में बुलाया और इनके साथ दरबार के प्रतिष्ठित विद्वानों से शास्त्रार्थ करा कर उसमें पर्याप्त आनन्द लिया तथा इनका विशेष सम्मान किया ।

इनके नाम पर एक नाटक कुसुमावचय (दे) का भी उल्लेख किया जाता है । हो सकता है नाटकवार मधुसूदन सरस्वती दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती से भिन्न हों । मधुसूदन के नाम पर जानकीपरिणय नामक एक और नाटक भी प्रकाश में आया है । सम्भवतः यह उन्हीं की रचना है ।

मध्यम- (नापा) भास के मध्यमव्यायोग (दे) में भीमसेन (दे) के लिये प्रयुक्त । घटोत्कच मा की मनुष्य भास खाने की इच्छा पूरी करने के लिये एक परिवार को अधिकार में लेकर उसमें किसी एक को राजाभन्दी से ले जाने का समझौता करता है और उसके

अनुसार मध्यम पुत्र को ले जाने का निश्चय होता है। वह उसका नाम न पूछ कर उसे मध्यम कह कर पुकारता है। भीम भी अपने भाइयों में मध्यम ही है, वे स्वयं को पुकारा जाता समझकर उपस्थित हो जाते हैं। इसीलिये इस व्यायोग में उनको मध्यम नाम दिया गया है।

इसमें भीमसेन का मानवता के प्रति प्रेम एवं उनकी करुण भावना सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करती है। हिडिम्बा को विश्वास है कि भीमसेन कभी भी किसी मानव की हत्या होते हुये देख नहीं सकते और वे इस अन्याय को दूर करने के लिये अवश्य आयेगे। वीरता तो उनमें है ही- वे युद्ध में एक दानव को पराजित कर देते हैं। मन्त्रशक्ति की निपुणता एक अन्य विशेषता है। जब घटोत्कच उन्हें माया द्वारा बाध सेता है तब वे मन्त्र के प्रभाव से स्वयं को मुक्त कर लेते हैं। इसमें उनके पारिवारिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। भीम का उस ब्राह्मण परिवार के साथ जाना भी उनकी सदाशयता को सिद्ध करता है।

मध्यम व्यायोग-(साकृ) पास (दे) का लिखा व्यायोग। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है। किन्तु महाभारत से केवल इसके पात्रों का उपादान किया गया है। कथानक सर्वथा नवीन एवं कल्पनाप्रसूत है। वनवास के प्रसंग में कभी भीमसेन का हिडिम्बा से सम्पर्क हो गया था जिसका फल हुआ घटोत्कच का जन्म। हिडिम्बा पति को मिलने के लिये उत्कण्ठित है। उसने सुना है कि भीमसेन यहीं कहीं आस पास ही है। अब वह एक युक्ति निकालती है- भोजन के लिय मनुष्य मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। उसे विश्वास है जब पुत्र किसी मनुष्य की इस कार्य के लिये लाने का प्रयत्न करेगा तब भीमसेन उसकी रक्षा के लिये अवश्य आयेगे। पुत्र घटोत्कच एक ब्राह्मण परिवार का पीछा करता है और उसके सामने प्रस्ताव रखता है कि यदि परिवार का एक व्यक्ति प्रसन्नना पूर्वक साथ में चलने को राजी हो जाय तो वह और सबको छोड़ देगा। परस्पर कुछ परामर्श के बाद ब्राह्मणपरिवार के मध्यम पुत्र का जाना निश्चित हो जाता है। घटोत्कच दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये उसे कुछ समय दे देता है। जब कुछ अधिक देर लगती है तब वह उसे मध्यम कहकर पुकारता है। भीम भी मध्यम ही है, अतः वे भी बराबर पहुँच जाते हैं और घटोत्कच को ब्राह्मणपुत्र को छोड़ देने का आदेश देते हैं। उसके इन्कार करने पर स्वयं को इस शर्त पर प्रदान करते हैं कि शक्ति के द्वारा उन्हें ले जाया जाय। दोनों का युद्ध होता है, इस तथ्य से दोनों अवगत नहीं हैं कि उनका पिता पुत्र का सम्बन्ध है। अन्त में पुत्र पराजित होता है किन्तु भीमसेन फिर भी चल जाते हैं। हिडिम्बा भीमसेन को देखकर प्रसन्न होती है तथा पुत्र को छेद प्रकट करने तथा भीम के सामने प्रणत होने का आदेश देती है।

नाटक के प्रारम्भ में नाट्यी पाठ है और अन्त में विष्णु स्तुति। इसमें भारत वक्ष्य नहीं है। यह नाटक भावु भक्ति का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। हिडिम्बा की कोमल

भावनायें भी दर्शनीय हैं। कवि युद्धोत्साह के वर्णन में तो सिद्ध हस्त है ही हिडिम्बा के पास भीमसेन को ले जाने में शिष्ट हास्य की भी अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार घटोत्कच द्रुपद शिला से जल प्रवाहित करने, भीम को माया से बाधने और भीम के द्वारा मन्त्र शक्ति से मुक्त होने में माया शक्ति का चमत्कार दिखलाया गया है जो अद्भुत रस का पर्यवसायी है। नाटक में श्लोकों की भरमार से सिद्ध होता है कि यह नाटक पास की प्रारम्भिक रचना है। इसमें भीमसेन के उज्ज्वल त्यागमय चरित्र, हिडिम्बा की कोमल भावना तथा उसकी योजना निपुणता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। घटोत्कच की मातृभक्ति भी प्रशंसनीय है।

मनस्- (नापा) कृष्णमिश्र (दे.) लिखित प्रतीकनाटक प्रबोधवन्दोदय (दे.) का एक पात्र। यह पुरुष (परमत्व ब्रह्म) पिता और माया (माता) का पुत्र है। इसके दो पलिया हैं- प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति से महामोह का जन्म होता है और निवृत्ति से विवेक का। दोनों के पृथक् पृथक् वर्ग हैं जिनमें सहस्रों होता है महामोह और उसका वर्ग समाप्त हो जाता है। मनस् प्रियपुत्र महामोह और प्रियतमा प्रवृत्ति की मृत्यु से दुखी है। वेदान्तविद्या अकर उसे समझाती है तब वह अपनी दूसरी पत्नी निवृत्ति को साथ लेकर वानप्रस्थ आश्रम में चला जाता है।

मनोनुरञ्जनम्- (नाकृ.) (२) अनन्तदेव लिखितहरिभक्ति परक ५ अकों का नाटक। इस नाटक में कृष्ण की लीलाओं का अकन किया गया है। अङ्गीरस भक्ति है जिसका पोषण शृङ्गार से होता है। नाटक में प्रमुख रूप से गोवर्धनोद्धरण, चौरहण, और रासलीला का उपादान किया गया है। प्राकृत का सर्वथा अभाव है। कहीं कहीं सङ्गीतत्मकता दृष्टिगत् होती है।

मनोभवपराभव- (नाकृ.) शंकर मिश्र लिखित नाटक।

मनोरमा- (नापा) यह प्रियदर्शिका (दे.) की एक पात्र है। कथानक विकास में इसका योगदान महत्वपूर्ण है। यह राजघराने की एक महत्वपूर्ण सेविका है। राजा और आरण्यका (प्रियदर्शिका) के परस्पर प्रणयविकास में योगदान देती है। जब रानी की इच्छा से महल में रानी (वासवदत्ता) और राजा के प्रणय व्यापार को नाट्यकला के माध्यम से दिखलाने की बात आती है तब आरण्यका को वासवदत्ता की भूमिका दी जाती है और राजा का अभिनय इसे (मनोरमा को) ही करना है। वह बड़ी निपुणता से विदूषक से मिलकर राजा की भूमिका स्वयं राजा को देने में सफलता प्राप्त कर लेती है जिससे अभिनय में ही सही राजा और प्रियदर्शिका को परस्पर निकट आने का अवसर मिल जाता है। अन्त में भी बन्दीगृह में पड़ी हुई प्रियदर्शिका के विष पी लेने का समाचार लाकर वही निर्वहण की सूत्रधार बनती है।

मनोरमा- (नाकृ.) (१) नारयणशास्त्री लिखित ५ अकों का नाटक।

मनोरमावत्सराज- (नाक) यह प्रीमट (दे) का लिखा नाटक है। अभी तक इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है। वत्सराज का चरित्र तो साहित्य जगत् में प्रतिष्ठित है किन्तु मनोरमा से क्या अभिप्रेत है कुछ ज्ञात नहीं होता, हो सकता है इस नाम से वासवदत्ता ही अभिप्रेत हो और इस नाटक में वासवदत्ता और उदयन की प्रणयलीला को ही नाट्य विषय बनाया गया हो।

मन्थरा- (नापा) यह रामायण का प्रसिद्ध पात्र है। राम की वन भेजने में यही माध्यम रही है। राम काव्यों में इसका इसी रूप में उपादान किया गया है। किन्तु महावीर चरित (दे) और अनर्घसाधव (दे) में उसके और कैकेयी के चरित्र का परिमार्जन करने के लिये इन नाटकों के लेखकों ने कल्पना की है कि यह वस्तुतः मन्थरा का दोष नहीं था अपितु रावण के मन्त्री माल्यवान की यह चाल थी जिसने मन्थरा के वेष में शूर्पनखा को भेजकर यह कार्य करवाया था।

मन्दकिनी- (नापा) मल्लिकामारुत (दे) की एक पात्र। वह योगिनी है और उसी के उद्योग से मल्लिका और मारुत का परस्पर सम्बन्ध जुड़ता है तथा अन्त में वे दोनों प्रणय सम्बन्ध में जुड़ जाते हैं। उसी के प्रयत्न से मल्लिका और मारुत तथा रमयन्तिका और कलक्ण्ठ दोनों युग्मों का प्रणय बन्धन सम्भव होता है।

मन्दारिक- (नापा) यह गोदावर्मा युवराज लिखित रससदन भाण (दे) का एक पात्र है। यह अपनी प्रेमिका की देखभाल और सदाचार रक्षा का भार अपने मित्र विट पर डाल कर कहीं चला जाता है। विट उसकी प्रेमिका से खूब बातें करता है और उसे खूब भ्रमण कराता है। किन्तु वह सुन्दरी अवसर पाकर उस विट को छोड़कर पुनः अपने प्रेमी मकरन्द के पास आ जाती है।

मन्दारमाला- (नाक) (१) नारायण शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

मन्दारमालिका- (नाक) दामोदरन नम्पूद्रि (दे) लिखित बीसवीं। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

मन्दारिकाविलासम्- (नाक) (१) नारायणशास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

मन्दोदरी- (नापा) प्रसन्नसाधव (दे) की एक पात्र। यह रावण की रानी है और द्विपर्यंक वाणी सुनकर भ्रमण रहती है कि लका पर आक्रमण हो गया है। रावण को वह समझाती है पर रावण उसके मन को मजाक में उड़ा देता है। किन्तु कुछ ही समय बाद उसे ज्ञान हो जाता है कि वास्तव में युद्ध प्राप्त हो चुका है।

मन्मथनाथ भट्टाचार्य- (नाका) ये बंगाल के निवासी २०वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। इनके लिखे नाटक सावित्री चरित्रम् का उल्लेख किया गया है। सम्भवतः यह नाटक अब तक अप्रकाशित है।

मन्मथमन्थन- (नाक) दे. मन्मथमोदन।

मन्मथमोदन- (नाकू) सुब्रह्मण्य सूरि शास्त्री (दे) लिखित एक भाण। सम्भवतः मन्मथमन्थन भी इसका दूसरा नाम है जिसका परिचय मद्रास के सहृदयसंस्कृतजर्नल VII में दिया गया है।

मन्मथमन्थन नाम के एक डिम का भी उल्लेख पाया जाता है जिसके लेखक रामकवि बतलाये जाते हैं। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

सुब्रह्मण्य सूरि के नाम पर इस नाम के एक काव्यग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। सम्भव है रामकवि का लिखा इस नाम का डिम हो और सुब्रह्मण्यसूरि का लिखा काव्य हो। यह भी सम्भव है कि सुब्रह्मण्य सूरि ने इस नाम का एक काव्य और एक भाण लिखा हो।

मन्मथ विजय- (नाकू) वेङ्कटराघव लिखित नाटक। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। रचनाकाल १९वीं शती।

मन्मथाभ्युदय- (नाकू) दे (१) मदनभ्युदय।

मन्मथोन्मथन- (नाकू) यह एक नाट्य कृति है। इसे विद्वानों ने डिम के अन्तर्गत माना है। यह रामनामक किसी नाट्यकार की रचना बतलाई गई है। कौथ के अनुसार विष्कम्भक और प्रवेशक का समावेश किया गया है जो नियमानुसार डिम में नहीं होना चाहिये।

मयूरमार्जारिका- (नाकू) एक प्रकरण जिसका उल्लेख भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश के ११वें अध्याय में किया है। इस रचना की प्राप्ति अब तक नहीं हुई है।

मय्यान रामार्य- (नाका) ये त्रिवेन्द्रम के निवासी थे। इनके लिखे ययाति विजय की प्रति मैसूर के पुस्तकालय में प्राप्त की जा सकती है।

मरकतवल्ली परिणय- (नाकू) इस विवाहविषयक नाटक के लेखक देवराज के पुत्र श्रीनिवास (दे) हैं। इसका उल्लेख तजौर के राजपुस्तकालय खण्ड C स ३४५० पर किया गया है।

मरुत्- (नापा) ऋग्वेद के सवाद सूक्त ११६५, १७० का एक पात्र। मरुत् शब्द देवता वाचक है। जिन देवताओं ने वृत्रासुर के साथ युद्ध में इन्द्र का साथ छोड़ दिया था उन पर इन्द्र कुपित हैं। देवता उन्हें शान्त करना चाहते हैं। अन्त में इन्द्र का क्रोध शान्त हो जाता है।

मर्कटमार्दलिकम्- (नाकू) महालिंग शास्त्री लिखित एक भाण। इसमें डार्विन के विकासवाद की भजाक उठाई गई है जिसके अनुसार मनुष्य का ठोक पूर्वज बन्दर है। बन्दर की पूछ धिस गई और वह आदमी बन गया। नाटक का कथानक इस प्रकार है— एक बन्दर की पूछ में काटा चुभ गया। एक नाई से उसने अपना काटा निकवाया। थोखे से उसकी पूछ कट गई। दण्डस्वरूप बन्दर ने नाई से अस्तुरा ले लिया और कूदते हुये

उसके बदले में एक बुढ़िया से एक टोकरा ले आया। टोकरे के बदले गाड़ीवान से बैल, फिर बैल के बदले घड़े भर तेल लेता है। बुढ़िया को तेल देकर पुये बनवाता है। कुछ पुये स्वयं खाता है और कुछ मर्दलिक (द्विदोरची) को देकर उससे मर्दल लेकर बजाता है और घोषणा करता है कि पूछ कट जाने से अब वह आदमी बन गया है। फिर घोषणा करता है कि अब मैं नेता बन गया हू।

इसका प्रकाशन कलकत्ता से मञ्जूषा पत्रिका में सन् १९५१ में हो गया था।

मर्जिनाचतुर्थम्- (नाटक) यह वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक है।

मलयकेतु- (नापा) मुद्राराक्षस (दे) का प्रमुख पात्र। उत्तर पश्चिम राज्यों से चाणक्य की सहायता के लिये जो राजा लोग आये थे उनमें सर्वप्रमुख पर्वतक का यह पुत्र था। विषकन्या के प्रयोग से पर्वतक के मार दिये जाने पर स्वभावतः यह उनका उत्तराधिकारी बन गया। इसी को नेता बनाकर राक्षस ने नन्दवंश के विनाश का बदला लेने का प्रयत्न किया। यह प्रमुख पात्र अवश्य है किन्तु इसे नायक या प्रतिनायक का महत्वपूर्ण पद नहीं दिया जा सकता। चाणक्य और राक्षस के दाब पैचों में केवल यह एक मोहरा है। इसका चरित्र भी सम्पन्न नाटक व्यापी नहीं है। ७ अंकों के नाटक में केवल दो अंकों में इसके कार्य-क्षेत्र के दर्शन होते हैं। वैसे चन्द्रगुप्त की अपेक्षा इसके चरित्र का विकास अधिक हुआ है, क्योंकि इसे अधिक विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा है। वह पराजित हुआ है, फिर भी उसे हम गुणहीन या अविवेकी अथवा निर्णय न कर सकने वाला व्यक्ति नहीं कह सकते। राक्षस ने चाणक्य से बदला लेने के लिये उसी का आश्रय लिया है। यही इस बात का प्रमाण है कि वह समर्थ व्यक्ति है। चाणक्य भी उसी को मुकाबला करने में समर्थ मानता है। इसलिये भागुरायण इत्यादि अनेक व्यक्तियों द्वारा घेरने की चेष्टा करता है। यह सच है कि वह ऐसे व्यक्तियों के चक्कर में फँस गया है कि जो उसे धोखा देना चाहते हैं। वह राक्षस इत्यादि अपने हितैषियों की वास्तविकता को नहीं पहचान सका न उसने वास्तविकता को जांचने के चेष्टा की। वह उन सब बातों को मानना गया जो उसके साथी उसे सुझाते रहे। गर्हणा इस बात की थी कि उसने अपने ही साथियों को मृत्यु के घाट उतार दिया। किन्तु इसमें न तो उसका दोष है न विवेकशीलता का अभाव। जाल ऐसा बुना गया था कि विवेकशील से भी विवेकशील व्यक्ति चूक जाता। सेख सबसे बड़ा प्रमाण होता है, वह मौजूद ही है, कापड़े से उस पर मोहर लगी हुई है। जेवरों की सीलबन्द पेटी उसके सामने है जिसका उल्लेख उस सीलबन्द पत्र में भी है। चन्द्रगुप्त द्वारा भेंट में दिये गये जेवरों का जो उल्लेख पत्र में किया गया है उसका प्रमाण सामने है राक्षस ने वे ही जेवर पहन रखे हैं। कुशल अभिनेता सिद्धार्थ को गंवारों विश्वास करने के लिये पर्याप्त है। भागुरायण पहले से ही उसके बान भरते रहते थे। उन वचनों पर विश्वास करने के सारे प्रमाण मौजूद हैं। और उसे विश्वास करने के लिये क्या चारित्र्य? यह सच है कि उत्तेजना में आकर उसने अनर्थ कर डाला

और पकड़ा गया। इसके लिये परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं, वह नहीं। यह भी सच है कि यदि वह भावना पर नियन्त्रण रख कर जाच पड़ताल करता और शकटदास को बुलाकर उससे पत्र की वास्तविकता जानना चाहता तो उस छत तक पहुँच सकता था। किन्तु इतनी सौ चूक उसे विवेक शून्य सिद्ध नहीं कर सकती। चाणक्य ने उसे उसका अपना राज्य लौटाकर उचित ही किया जिसका वह अधिकारी था। चाणक्य की यह उदारता नहीं न्यायप्रियता थी।

मलयजा कल्याण- (नाकू) (३) वीरराघव (दे.) लिखित चार अकों की नाटिका। नायक देवराज शिकार खेलने मलय पर्वत पर जाता है, वहाँ उसकी दृष्टि मलयजा पर पड़ती है जो वस्तुतः उस प्रदेश (मलय प्रदेश) की राजकुमारी है। वह उस समय वीणा वादन में निरत है। देवराज उसके सौन्दर्य तथा स्वर लहरी पर मुग्ध हो जाते हैं। रानी (देवराज की पत्नी) को जब यह समाचार मिलता है वह मलय कन्या का रूप धारण कर वहाँ पहुँच जाती है और दोनों का वार्तालाप सुनकर कुपित होती है। इसी बीच नगर को रक्षक शून्य जानकर यवन उस पर आक्रमण कर देते हैं। अन्त में जामदग्न्य की मध्यस्थता से मलयजा और देवराज का विवाह हो जाता है तथा यवन पराजित होते हैं।

इस नाटक का पहला अभिनय तेलगाना में सत्यवतक्षेत्र में भगवान् देवराज के फाल्गुनोत्सव पर किया गया था। इसकी रचना १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई थी। जबलपुर से इसका प्रकाशन किया गया।

मलयजापरिणय- (नाकू) (३) वीरराघवलिखित नाटक। इन्हीं के नाम पर एक दूसरी कृति मलयजाकल्याण का भी उल्लेख किया जाता है जिसका प्रकाशन बाबूलाल शुक्ल ने जबलपुर से करा दिया है। सम्भवतः यह उसी रचना का नामान्तर है। यदि यह कोई दूसरी रचना है, तो अभी तक यह उपलब्ध हो नहीं सकी है।

मलयवती- (नापा) नारायणन्द की नायिका। यह नायक जीमूतवाहन की प्रेयसी एवं उनके मित्र मित्रावसु की बहन है। गौरी ने स्वप्न में दर्शन देकर उसे उसके जिस भावो पति के विषय में बतलाया वह जीमूतवाहन ही है और कोई नहीं। स्वप्न की बात सखी को सुनाने के अवसर पर जीमूतवाहन छिपकर सुन लेता है। वह भी मलयवती का प्रेमी बन जाता है।

यह अत्यन्त भावुक है। जब मित्रावसु अपनी बहन के विवाह का प्रस्ताव लेकर जीमूतवाहन के पास आता है और जीमूतवाहन अनजान में ही उस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं तब मलयवती फाँसी लगाने को तत्पर हो जाती है। जीमूतवाहन उसे बचाता है और अपने प्रेम का विश्वास दिलाकर उससे विवाह कर लेता है।

मल्लदेव- (नाका) अश्वमेध (दे.) नाटक के लेखक इस नाम के साथ 'सुमति जितामित्र' भी जुड़ा हुआ है। पता नहीं चलता यह उनकी उपाधि है या नाम का ही एक

भाग है। ये भलगाव के राजा थे।

मल्लिकारि आराध्य- (नाका) कृष्णा जिला के सर्वण आराध्य के पुत्र थे। इनका सम्पन्न १८वीं शताब्दी है। इन्होंने शिवलिंगमूर्त्योदय (दे) नाटक की रचना की थी।

मल्ला सोमयाजी- (नाका) मैसूर और कुर्ग की संस्कृतपाण्डुलिपियों की तीविस रायस ने खोजकर जो कैटेलाग तैयार किया था उसमें २५६ सख्या पर जीवन्मुक्तिवल्याण नामक प्रतीकनाटक का उल्लेख किया गया है जिसके रचयिता के रूप में मल्लासोमयाजी का नाम लिखा है। भूमिनाथ का नाम भी मल्लासोमयाजी (दे) है जिनके नाम पर कैटेलागस कैटेलागोरम में १२०७ पर इसी प्रतीक नाटक का उल्लेख है। क्या ये दोनों रचनाएँ एक ही हैं? क्या मल्ला ही मल्ला हो गया है?

मल्लिका- (नापा) यह मल्लिकामाहत (दे) की नायिका है। यह विद्याधर राज के अमात्य की पुत्री है। इसका विवाह भारत से निश्चित है, किन्तु सिंहलनरेश का इसके प्रति झुकाव होने के कारण विघ्न लगता है। सिंहल नरेश भारत के मित्र कलकण्ठ का झूठा समाचार फैलाकर भारत को आत्महत्या की ओर प्रेरित कर देता है, किन्तु आत्महत्या के अवसर पर ही कलकण्ठ आकर उसे बचाता है। एक बार राधियों की जद से उसका और उसकी सहेली रमयन्तिका का जीवन संदेह में पड़ जाता है, किन्तु वहाँ भी रक्षा हो जाती है। उसका प्रेमी भारत उसे प्राप्त करने के लिये प्रेत साधना करता है। एक राक्षस मल्लिका का अपहरण कर लेता है जिसे भारत मारता है। इस प्रकार की अनेक विघ्न बाधाओं को झेलने के बाद उसे अपना प्रेमी भारत मिल जाता है। इस कार्य में उसे योगिनी मन्दाकिनी से सहायता मिलती है।

मल्लिकामकरन्द- (नाकू) यह अज्ञात नामा कवि की कृति है। इसका उल्लेख रामचन्द्रगुणवन्द के नाट्यदर्पण में किया गया है। इसकी प्रति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है।

मल्लिका भारत- (नाकू) उद्दण्डी (दे) लिखित १० अंकों का नाटक। यह एक प्रकरण है जिसमें भवभूति (दे) के मालतीमाधव (दे) का अनुकरण किया गया है। इसमें दो प्रेमीयुग्मों की प्रेमलीला का नाट्यवस्तु के रूप में उपादान किया गया है— मल्लिकामाहत और रमयन्तिकावलयकण्ठ। मल्लिका विद्याधर राज के अमात्य की कन्या है और भारत कुन्त्य नरेश के अमात्य का पुत्र है। योगिनी मन्दाकिनी दोनों का विवाह करना चाहती है। किन्तु सिंहलनरेश भी मल्लिका से विवाह करना चाहता है। इससे दोनों के विवाह में विघ्न लग जाता है। कलकण्ठ भारत का मित्र है। उनकी प्रेमिका रमयन्तिका है। मन्दिर में दोनों जोड़े उन्मत्त हैं। दो राक्षी बन्धनमुक्त होकर दोनों युवतियों को पक्षपीत कर देने हैं जिनसे उनकी रक्षा कर ली जाती है। सिंहल नरेश के घर से कलकण्ठ की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर भारत आत्महत्या के लिये उद्यत हो जाता है, उसी समय कलकण्ठ आकर उसे बचा लेता है। प्रेतसाधना में लगा भारत किसी राक्षस द्वारा मल्लिका

के हरे जाने की बात सुनता है, वह उसे बचाने जाता है और राक्षसों को मार कर विवाह के लिये मल्लिका को लेकर भाग जाता है। मदनिका भी कलकण्ठ के साथ भाग जाती है। मल्लिका को दुबारा अपहरण किया जाता है। अन्त में मन्दाकिनी के सरक्षण में दोनों युग्मों का विवाह हो जाता है और राजा तथा माता पिता को भी अनुमति मिल जाती है।

यद्यपि प्रकरण अनुकरण पर आधारित है तथापि इसमें स्थान स्थान पर लेखक की मौलिकता भी दृष्टिगत होती है। कवि ने इसमें कड़ी कड़ी विशेषता तथा सुन्दरता का आधान किया है। भाषा सुन्दर है तथा पद्य सगीतात्मक। वक्तव्यों में दृष्टान्तों का उपादान किया गया है और सामान्य सूक्तियों का भी समावेश प्राप्त होता है।

इसका प्रकाशन जीवानन्द विद्यासागर ने करा दिया था।

मल्लिकार्जुन- (नाका) सत्यभामापरिणय (दे) के लेखक विजय नगर डिण्डिमवर्ग से इनका सम्बन्ध था। ये भरद्वाज गोत्रीय लक्ष्मण और सावित्री के पुत्र एवं सभापति देशिक के शिष्य थे। प्रतिष्ठित साहित्यकार सोमनाथ इनके बाबा थे और इनका विवाह कुमार डिण्डिम की पुत्री के साथ हुआ था। इस प्रकार इनका परिवेश पूर्ण रूप से साहित्यमय था। इन्हें स्फूर्तिग कवि भी कहा जाता है।

महर्षिचरितामृत- (नाकू) सत्यव्रत (दे) लिखित ५ अकों का नाटक इसमें महर्षि दयानन्द के कार्य कलापों का चित्रण किया गया है। शिवरात्रि के व्रत में उनका प्रबोध, गृहत्याग, गुरदक्षिणा, पाखण्डखण्डन एवं मृत्युञ्जय इस नाटक के विभिन्न अकों में प्रतिपाद्य हैं। इसका प्रकाशन १९६५ में बम्बई से हो चुका है।

महाकविकालिदास- (नाकू) जीवन्त्यायतीर्थ (दे) लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें कालिदास की मूर्खता पर उनकी पत्नी विद्यावती की प्रतारणा, काली की उपासना और उनके फलस्वरूप महाकवित्वलाभ का कथानक के रूप में उपादान किया गया है। १९७२ में लेखक द्वारा नाटक चक्र में इसका प्रकाशन एवं १९६२ में उज्जयिनी में कालिदास समारोह के अन्तर्गत प्रथम अभिनय सम्पन्न हुआ।

महादेव- (नाका) अद्भुतदर्पण नामक नाटक के लेखक। ये १७वीं शताब्दी के नीलकण्ठ के समसामयिक एवं मद्रास प्रेसोडेसी में पाल्नेरनिवासी कौण्डिल्य गोत्रीय नृसिंह के पुत्र थे। इनका लिखा १० अकों का नाटक अद्भुत दर्पण राम की लका पर विजय का वर्णन करता है। इस नाम के कई कवि हुये हैं। दानकेलि कौमुदी माणिक्य के लेखक महादेव कवि शेखर सरस्वती, धूर्त विडम्बन प्रहसन के लेखक महादेव, ठग्नतराधव के लेखक महोदय ये सब भिन्न व्यक्तित्व हैं।

महादेव- (नाका) इनका लिखा धूर्तविडम्बन (दे) नामक प्रहसन प्रकाश में आया है।

महादेव कवीशाचार्य सरस्वती- (नाका) इनकी लिखी दानकेलिकौमुदी (दे)

भागिका प्रकाश में आई है।

महादेव शास्त्री- (नाक) उम्मत राघव (दे) नामक नाटक के लेखक। ये अद्भुत दर्पण लेखक महादेव तथा दानकैलिकौमुदी के लेखक महादेव से भिन्न हैं।

महादेशिकचरित- (नाक) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना रामानुजाचार्य द्वी न की थी।

महानाटक- (नाक) राम विषयक नाटकों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित नाटक। इस नाटक में रामविषयक नाटकों की विशेषता साहित्यिकता ऐतिहासिकता सर्वाधिक मात्रा में प्रतिफलित हुई है। इसकी महत्ता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका लेखक हनुमान को माना गया है। इसीलिये इसे हनुमन्नाटक भी कहा जाता है। इस नाटक के दो संस्करण काश में आये हैं- दामोदर मिश्र द्वारा सम्पादित गुजराती संस्करण जिसमें १४ अकों में ५८६ छन्द हैं और मधुसूदन द्वारा सम्पादित बंगाली संस्करण जिसके ९ अकों में ७२० छन्द हैं। प्रथम संस्करण की टीका के अनुसार हनुमान ने इसे पत्थरों पर लिखा था। वाचस्पति ने जब देखा कि इस रचना के सामने हमारी रामायण को कौन पड़ेगा तब हनुमान को प्रसन्न किया और हनुमान ने अपनी रचना समुद्र में डाल दी। राजा भोज ने दामोदर मिश्र द्वारा उसका उद्धार कराया। किन्तु दूसरे संस्करण में स्वीकार किया गया है कि इसका उद्धार विक्रमादित्य ने कराया। आनन्दवर्धन ने इसका उल्लेख किया है। अतः इसका समय ८५० ई के बाद का नहीं हो सकता। किन्तु इसका कलेवर बढ़ता रहा है तथा इसमें भवभूति (दे) राज शेखर (दे) मुरारि (दे) इत्यादि राम विषयक नाटककारों के पद्य स्वतन्त्रता पूर्वक समाविष्ट किये गये हैं।

इस नाटक में राम विषयक कथानक का अधिकांश भाग आ जाता है। किन्तु समस्त कथानक पद्यों में या सवाद के माध्यम से व्यक्त किया गया है वस्तुतः इसे पूर्ण नाटक कहना ठीक नहीं यह महाकाव्य और नाटक के मध्य की एक नई ही विधा है। इसमें गद्य का प्रयोग बहुत ही कम है और जहाँ है भी वहाँ उचित स्थान पर नहीं है। पद्यों में ही कथानक और सवाद सभी कुछ है। रंगमंचीय निर्देश भी काव्य शैली में लिखे पद्यों में ही दिये गये हैं। न प्राकृत का प्रयोग है न विदूषक का। इसमें ठीक रूप से प्रस्तावना भी नहीं है। बिण्टरफ़िल्ड के अनुसार यह नाटक अभिनय के महत्व से लिखा गया प्रतीत नहीं होता। ज्ञात होता है इसका पाठ कोई एक व्यक्ति करता था और दूसरे अभिनेता पाठ के अनुसार अभिनय किया करते थे। प्रो लुडर्स ने इसे छया नाटक के रूप में स्वीकृत किया है। इस नाटक का महत्व अभिनय की दृष्टि से कम काव्य की दृष्टि से अधिक है। काव्यात्मकता कल्पनाशीलता कलात्मकता और रसात्मकता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। इसके लेखक का पता नहीं है और इसके अथ अनुमान इसकी अप्रत्यक्षता भी नहीं है क्योंकि यह एक सग्राह्यमात्र प्रतीत होता है।

महानाटक में प्रायः समस्त राम कथा आवाहित है किन्तु कतिपय वर्णनों को अधिक

महत्व दिया गया है। उनमें प्रमुख हैं— जनकपुरी में धनुर्भङ्ग, परशुरामसवाद, रामविवाह, सीताराम विहार, राम का वियोग, हनुमान द्वारा सीता की खोज, अगद रावण सवाद इत्यादि।

दामदोर संपादित संस्करण १४ अकों में मोहनदास लिखित टीका के साथ बम्बई से और आर शिरोमणि लिखित टीका के साथ कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

९ अकों का दूसरा संस्करण मधुसूदन द्वारा संपादित है। इसमें वर्णन कुछ सशुद्ध है। इसका मोहनदास की टीका के साथ बम्बई से प्रकाशन हुआ है। इसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम १४३८, II १००, २१६ पर किया गया है। रामतरण शिरोमणि और चन्द्रशेखर ने तथा कलकत्ता से जे विद्यासागर ने इसका प्रकाशन कराया है।

महानाटक सुधानिधि एक चयनिका प्रकार की रचना है जिसे विजयनगर के इम्मादि देवराय ने तैयार किया था। इसमें रामायण की पूरी कथा संकलित की गई है।

महाप्रभु हरिदास— (नाकू) यतीन्द्र विमल चौधरी (दे) की नाट्यकृति। इसमें हरिदास भक्त की महत्ता बतलाई गई है। उनके निन्दक गुप्पाज की दुर्दशा, साधना डिगाने के लिये भेजी गई वेश्या का सन्यासिनी बन जाना, कीर्तन पर प्रतिबन्ध लगाने वाले हुसेन शाह का दुःखद अन्त और महाप्रभु चैतन्य के चरणों में देह त्याग उनकी उज्ज्वलकटि के साधना के कुछ निदर्शन हैं। इस नाटक का कई स्थानों पर अभिनय किया गया।

महाभूसि वेङ्कटचार्प— (नाका) ये कश्यपगोत्रीय अनन्ताचार्य के पुत्र थे। इनका समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनकी रचना 'शुद्ध सत्व' एक प्रतीक नाटक है। इसमें विशिष्टाद्वैत का नाटकीकरण किया गया है।

महाभैरवी— (नापात्र) प्रबोधचन्द्रोदय में एक पात्र। यह श्रद्धा और धर्म पर अधिकार कर लेती है और उन दोनों को लगभग खा जाने को तैयार है। उस समय उनकी रक्षा के लिये विष्णुभक्ति आ जाती है और उन्हें बचा लेती है। अन्यथा वह धर्म और श्रद्धा दोनों को चट कर गई होती।

महामोद— (नाकू) गणपति (दे) की एक रचना जिसकी प्रशंसा राज शेखर ने की है। उनका कहना है कि गणपति की पूजा तो विद्याधर भी करते हैं। क्या यह रचना एक नाट्यकृति है इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि अब यह रचना लुप्त हो गई है।

महामोह— (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे) का एक पात्र। यह मनस् पिता और मूर्ति माता का पुत्र है। इसने मुक्तिस्थल काशी पर अधिकार जमा रक्खा है। श्रद्धा की पुत्री शान्ति को कैद में डाल रखने का आदेश दे दिया है। उसका वर्ण बहुत बड़ा है और चारों ओर इत्यादि उसके बहुत बड़े सहायक हैं। एक भविष्यवाणी से वह भयभीत है कि उसके सौतेले भाई एवं प्रतिद्वन्दी विवेक की जो सन्तान उपनिषद् में उत्पन्न होगी वह उसका नाश कर देगी। अतः मिथ्यादृष्टि की सहायता से वह प्रयत्नशील है कि विवेक

और उपनिषद् का सयोग न हो पाये। किन्तु अन्त में वह पराजित हो जाता है और मारा जाता है तथा विवेक राज्य की स्थापना हो जाती है।

महायात्रिक- (नापा) हास्यार्णव (दे) का एक पात्र। यह एक ज्योतिषी है। यह ऐसे योग बतलाना है जो हास्य की सृष्टि करते हैं। जैसे जब वह कोई ऐसा यात्रा मुहूर्त बतला देता है जो मृत्युसूचक होता है।

महालिंग शास्त्री- (नाका) मर्कटमार्दलिकम् आदि नाटकों (दे) के लेखक। समय २०वीं शताब्दी। ये प्रसिद्ध आचार्य अप्पय दोक्षित के वंशज थे। इनका जन्म तंजावूर जिले में १८९७ ई में हुआ था। ये मद्रास हाईकोर्ट में वकालत करते थे। इनकी अनेक प्रकाशित अप्रकाशित रचनायें साहित्य जगत् को ज्ञात हैं जिनमें निम्न लिखित नाटक भी शामिल हैं- बौण्डिन्यप्रहसन, प्रतिराजसूय, मर्कटमार्दलिकम् भाण शङ्करानारदीय, उभय रूपक कलिप्रादुर्भाव आदिकाव्योदय उद्गातृदशानन और अयोध्या काण्ड। ये नाटक मद्रास संस्कृत अकादमी की अखिल भारतीय नाटक प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुये थे।

महावीर चरित- (नाकू) भवभूति का लिखा रामकथा विषयक ७ अंकों का नाटक। इसमें रामायण के प्रथम ६ काण्डों का समारोह किया गया है। किन्तु कवि ने रामकथा को तदवस्थ रूप में स्वीकार नहीं किया है, किन्तु उसे कल्पना द्वारा नया रूप दे दिया है जिसमें रामायण के कुछ प्रसंग दृश्य हैं एक मूल्य। राम और रावण का स्पर्ध ब्रह्म यात्रा और सीता हरण के बाद नहीं पहले ही आ जाता है। वह और उस का मन्त्री माल्यवान् शूर्पणखा की सहायता से राम को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। कारण यह है कि रावण सीता पर आसक्त है और उससे विवाह करना चाहता है। किन्तु सीता और उसकी बहने विश्वामित्र के आश्रम में अकस्मात् राम और लक्ष्मण से मिलती हैं और उनमें एक आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। विश्वामित्र के दिये अभोध अस्त्रों से राम दुर्धर्ष हो गये हैं। इस बीच रावण दूत भेजकर विवाह का प्रस्ताव करता है किन्तु उसकी प्रतिज्ञा टुकरा दी जाती है। विश्वामित्र की प्रेरणा से राम की शक्ति परीक्षा के लिये शिव धनुष षण्णया जाता है जो राम व रावणों टूट जाता है। राम अपनी शक्ति से सभी को प्रभावित करते हैं और राम सीता का विवाह हो जाता है। इस विवाह के हो जाने और अपनी प्रार्थना टुकरा हुये जाने से रावण राम का भयानक शत्रु बन जाता है और उन्हें जैसे भी हो नष्ट करने की चेष्टा करता है। उसका मन्त्री माल्यवान् बदला लेने के लिये अनेक प्रयत्न करता है। वह धनुर्धरा की मूचना देकर उपनिषद् परशुराम को उकसाता है और परशुराम बदला लेने जङ्गल पटुच जाने हैं जहाँ विचार के सम्मोह में दशरथ का वर्ग भी विद्यमान है। परशुराम युद्ध के लिये राम को ललकाते हैं। दोनों का आशेष प्रत्याशेष चलता है। दशरथ और जनक, दोनों ओर के लोग एवं विश्वामित्र सधर्ष डालने का भासक प्रयत्न करते हैं किन्तु युद्ध टलता नहीं। युद्ध नियमानुसार रणमञ्च पर नहीं दिखलाया जाता किन्तु हमें मूचना द दी जाती है कि युद्ध में राम विजयी हुये हैं और परशुराम उनकी बन्दना

कर चले गये हैं।

अब राम से बदला लेने के लिये माल्यवान दूसरा उपाय निकालता है— वह रावण की बहन शूर्पणखा को कैकेयी की दासी मन्यरा का रूप देकर उसके हाथ एक जाली पत्र राम के पास भेजता है जो कैकेयी की ओर से है, जिसमें लिखा है कि दशरथ ने कभी उन्हें दो वरदान देने का वादा किया था। कैकेयी ने एक वरदान में भरत का राज्याभिषेक और दूसरे में राम का १४ वर्ष का वनवास माग लिया है। यह पत्र राम को जनकपुर में मिलता है। भरत और उनके मामा युधाजित् तत्काल राम का राज्याभिषेक करने का आग्रह करते हैं। किन्तु राम पिता के दिये हुये वचन पर दृढ़ है और सीता तथा लक्ष्मण को लेकर वन को चले जाते हैं। भरत केवल राम के प्रतिनिधि के रूप में राज्य चलाने के लिये इस शर्त पर अयोध्या में रुक जाते हैं कि राम १४ वर्ष बाद लौट कर राज्य स्वीकार कर लेंगे। सीता हरण तक की मध्यवर्ती घटनायें सूच्य हैं जो जटायु और सम्पाति के परस्पर वार्तालाप से ज्ञात हो जाती हैं। सीता हरण के बाद रावण रुष्ट होकर विभीषण को निकाल देता है। वह राम से ऋष्यमूक पर्वत पर मिलना चाहता है। तब माल्यवान् उन्हें न मिलने देने के लिये वालि को उकसाता है। सष्षर्ष में राम वालि को मार देते हैं। मृत्युकाल में वालि छोटे भाई सुग्रीव को सीता खोज में राम की सहायता करने का आदेश देता है तब दहन सूच्य प्रसंग है जो माल्यवान सुनाता है। अगद का दूत्यकर्म असफल हो जाता है। रावण अगद को बन्दी बनाने का प्रयत्न करता है किन्तु अगद बच निकलता है। युद्ध सूच्य है जिसकी सूचना इन्द्र और विब्रथ गन्धर्व की बातचीत से मिलती है। रावण युद्ध में आश्चर्य जनक शौर्य दिखलाने पर भी पराजित हो जाता है क्योंकि हनुमान अमृतवर्षा से राम पक्ष के मृत वीरों को भी जिला देते हैं। राम और मेघनाद जैसे वीरों के आहत हो जाने के बाद राम को सीता मिल जाती है, उनकी अग्निपरीक्षा हो चुकी है। राम आकाश मार्ग से उत्तर दिशा की यात्रा करते हैं, अयोध्या में सारावर्ग उनका अभिनन्दन करता है और विश्वामित्र राम का अभिषेक करते हैं, यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक में रामकथा के अन्दर रावण के मन्त्री की कूटनीति से नया चमत्कार उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। इसके साथ ही उनके चरित्रों का परिमार्जन और दोष निराकरण भी इसकी विशेषता है। राम कैकेयी की दुःप्रसिद्धि से नहीं माल्यवान की कूटनीति से निर्वासित होते हैं। इस विषय में कैकेयी निर्दोष है। रामायण में वालि वध बन्धुविरोध के कारण किया गया है और उसके लिये राम युद्ध के नियमों की भी परवा नहीं करते, वालि के इस प्रश्न का भी राम कोई उत्तर नहीं दे पाते कि 'आपने हमें क्यों मारा है? यदि आप शिकार की बात कहें तो मेरा मांस तो खाया नहीं जाता, यदि सीता की खोज में सुग्रीव की सहायता की बात कहें तो सुग्रीव त्रिकाल में भी यह कार्य नहीं कर पायेगा जबकि यदि आप मुझसे सहायता लेते तो मैं रावण से मिलकर तत्काल पूरा कर देता।' इस नाटक में न तो बन्धुविरोध है, न राम का युद्ध न मर्यादा का उल्लङ्घन,

न बालि के सामने राम का निरुत्तर हो जाना। यहा तो माल्यवान के वहकावे में स्वयं बालि विरोध में आ जाता है और राम का मुकाबला करता है। इसीलिए मारा जाता है।

हनुमान सजीवनी द्वारा लक्ष्मण को ही जीवन दान नहीं देते अपितु अमृतवर्षा करके अपने पक्ष के समस्त सैनिकों को जिला देते हैं। रामायण के अनुसार दशरथ भरत को नन्साल घेड़ कर छलपूर्वक अपने वचन से मुह मोड़ना चाहते हैं जिस अपराध का उन्हें राम के निर्वासन और अपनी मृत्यु के रूप में दण्ड भोगना पडता है। किन्तु भवभूति के दशरथ छल पूर्वक नहीं भरत की उपस्थिति में ही बल्कि भरत और उनके मामा युधाजित के आग्रह पर ही राम को राज्य देना चाहते हैं।

उक्त विशेषताओं के होते हुये भी इसमें दोष भी पर्याप्त रूप में विद्यमान है। एक तो सूच्य सवादों की भरमार नाटकीयता के प्रतिकूल है। कुछ घटनायें बहुत बड़ा दी गई हैं और कुछ की सर्वथा उपेक्षा की गई है। राम और परशुराम का सहर्ष दो अर्कों तक चला जाता है।

बहुत समय तक यह नाटक केवल पाचवें अंक तक ही प्राप्त होता रहा। तजौर में स १०७०३ और VIII ३४५४ पर जो प्रति प्राप्त होती है उनके अनुसार राजशेखर के पास पूरी पुस्तक विद्यमान थी। उसका अन्तिम भाग राजशेखर ने जला दिया तब उसका ५वें अंक तक का भाग ही शेष रह गया। शेष भाग की पूर्ति सुब्रह्मण्य ने की। बाद में शेष भाग भी प्राप्त हो गया। उसमें सुब्रह्मण्य द्वारा जोड़ा गया एव अनुसन्धान में प्राप्त भाग इन दोनों के पाठ एक में मिला दिये गये। उसमें वीराधव की टीका भी सम्मिलित है। इसको टोडरमल ने लाहौर से, एफ एच ब्रेन ने लन्दन से और जे पलैक फोर्ड ने अमेजी अनुवाद के साथ लन्दन से प्रकाशित कराया। बम्बई से प्रकाशित इस रचना पर वीर राघव की टीका ५वें अंक के ४६ वें पद्य तक है। शेष भाग में सुब्रह्मण्य द्वारा पूरे किये गये भाग की व्याख्या है। सुब्रह्मण्य नाम से तो इनका दाधिणात्य होना सिद्ध ही होता है। वीर राघव भी दाधिणात्य ही थे, उनके द्वारा सुब्रह्मण्य कृति के साथ इसकी व्याख्या करना भी सुब्रह्मण्य को दाधिणात्य सिद्ध करता है।

महाश्मशान- (नाकू) यह एक दुखान्तिका है जो हैदराबाद की वामुदो पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

महाश्वेता- (नाकू) वेङ्कटराम राघवन् लिखित प्रेक्षणक। इसमें कादम्बरी के महाश्वेतावृत्तान्त को रूपायित किया गया है। शिवविषयक संगीत में सलग्न महाश्वेता पूछने पर अपना वृत्तान्त चन्द्रापोड की सुनाती है। इसका प्रसारण आकाश वाणी मद्रास से किया गया था।

महासेन- (नाटका) उम्मेन के राजा प्रचोत की उपाधि। ये यासवदत्ता के पिता थे। दे स्वन्वासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण।

महिमामय भारतम्- (नाकृ) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित ५ अकों का नाटक । इसमें कार्य व्यापार तो कम है, मानस व्यापार और भावुकता इसको विशेषतायें हैं । इसका परिवेष अत्यन्त व्यापक है । स्वर्ग से भारत भूमि तक विष्णु से परिशीलक जनता तक इसके नियोजन का विस्तार है । इसमें भारत को अनेक रूपों में देखा गया है- वैदिक, पौराणिक, इस्लामी, इत्यादि तथा आधुनिक भारत इसके विस्तार में समाहित हुये हैं । दामोदर घाटी, माइथन बाघ, भाखरा नगल, चम्बल, नागार्जुन सागर, मुचुकुन्द योजनायें, विद्युत् उत्पादन, मत्स्य पालन आदि नवीन योजनाओं के समावेश के साथ भारत के नव निर्माण के प्रति आशावाद प्रकट किया गया है और इसी के साथ नाटक की समाप्ति हुई है ।

इसकी रचना १९५८ में हुई थी और प्रथम अभिनय प्राच्यवाणी द्वार २० अप्रैल १९५९ को दिल्ली में हुआ था ।

महिलाविलासम्- (नाकृ) (१) नारायण शास्त्री लिखित ७ अकों का नाटक ।

महिशमङ्गलम्- (नाकृ) एक भाण जिसकी रचना नारायण नामक एक नम्बूद्रि ब्राह्मण ने की थी जो कि कोचीन में मालाबार के पुरवन स्थान का निवासी था । इस भाण की रचना कोचीन के राजराजवर्मा के निर्देश पर की गई थी । इसमें अनगकेतु और अनगपताका की प्रणय लीला का चित्रण किया गया है । इसकी प्रति मद्रास की ओरियण्टल सायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव पाण्डुलिपि अनुभाग में XXI ८४५५ स पर सुरक्षित है । इसका प्रकाशन १८८० में पालघाट और त्रिवूर से हो गया था ।

महिषासुरवधम्- (नाकृ) (१) नारायण शास्त्री लिखित एकाङ्की नाटक ।

महेन्द्रपाल- (नास) ये नवीं दसवीं शताब्दी में महोदय या कन्नौज के राजा थे जिनके अभिलेख ८९३ से ९०७ के मध्य पाये जाते हैं । यह राजशेखर (दे) का समय था । इनके आदेश पर बाल रामायण का अभिनय किया गया था ।

महेन्द्र विक्रमवर्मा- (नाका) ये काञ्चीनरेशसिन्धविष्णु वर्मा के पुत्र थे । अपनी कुमार अवस्था में इन्हें कुछ समय तक प्रसिद्ध कवि भारवि के साथ रहने का सुयोग प्राप्त हुआ था । बाद में ये काञ्ची के राजा बन गये थे । ये सम्भवत महाराज हर्ष के समसामयिक थे । इनका लिखा मत्तविलास नामक प्रहसन प्राप्त हुआ है । जिसके अनुसार इन्हें अवनिभाजन, गुणभार और मत्तविलास उपाधिया प्राप्त हुई थीं । ज्ञात होता है अन्तिम उपाधि अपनी रचना की सफलता के कारण इन्हें प्राप्त हुई थी । इन्हें मत्तविलास का कर्ता इसीलिये माना जाता है कि इनके एक शिलालेख में मत्तविलास का उल्लेख किया गया है ।

महेन्द्रविजयम्- (नाकृ) यह एक डिम है जिसकी रचना प्रधानवेङ्कप्प ने १८वीं शताब्दी में की थी । इसमें समुद्रमन्थन के बाद अमृत के लिये देवासुरसंग्राम में देवताओं (महेन्द्र) की विजय दिखलाई गई है । श्रीरामपुर के तिरुवेङ्गलनाथ के महोत्सव में इसका

प्रथम अभिनय किया गया था।

महेश- (नापा) त्रिपुरदाह के नायक। वत्सराज लिखित इस नाटक में शिव की शालीनता और औचित्य पालन की उनकी प्रवृत्ति की विशेष रूप से अभिव्यक्ति की गई है। वे कुमार को भी सीमा में रहकर विजय लाभ का निर्देश देते हैं जिसकी प्रशंसा उनके विरोधी शुक्राचार्य भी करते हैं। जब उनकी स्तुति महर्षि और देवताओं द्वारा की जाती है तब उन्हें सकोच का अनुभव होता है।

महेश्वर- (नाका) इनके लिखे दो नाटक प्राप्त हुये हैं- सधानाटक और घूर्तविडम्बन प्रहसन इन कृतियों का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम क्रमशः (१ ३९६ और १ २७१) में किया गया है।

महेश्वर पण्डित- (नाका) ये गुजरात के बरादुर शाह १५२६ १५३७ ई के दरबारी बरि थे। 'स्वर्णमुक्ताविवाद' नामक नाटक में इन्होंने स्वर्ण और मुक्ता का विवाद दिखलाया है जिसमें निर्णायक की भूमिका श्रीनगरी के वलभद्र ने निभाई।

इसका सकलन कैटेलागस आफ सस्कृत मैन्सक्रिप्ट्स इन द इण्डिया आफिस एगलिड सख्या १६२३ में किया गया है।

महेश्वरानन्द- (नाक) यह एक अप्राप्त प्रकरण रचना है। जिसका उल्लेख रसार्णव सुधाकर में किया गया है।

महेश्वरोल्लास- (नाक) (२) नारायण शास्त्री लिखित २४ नाटकों में एक। इसका अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ है।

महामहक्षण- (नापा) मोहाराजपराजय (दे) कृपामुन्दरी से विवाह की शर्त के अनुसार कुमार पाल ने राज्य से जिन व्यसनों को निर्वासित किया था उनमें यह भी एक था। पहले मोहाराज के राज्य में इन व्यसनों की तूती बोलती थी, फिर इन सबको राज्याज्ञा से निर्वासित कर दिया गया।

माकन्दमकरन्द- (नाक) (१) नारायण शास्त्री (दे) लिखित १० अंकों का नाटक।

मागधवती- (नापा) अश्वघोष (दे) की कृति गणिका विषयक रूपक (दे) की नायिका। पर एक गणिका है जिसका चितार नामक सोमदेव के साथ दिखलाया गया है। कृति के खण्डित रूप में ज्ञान होने के कारण इसका धरित्र चित्रण सम्भव नहीं है। यह भी ज्ञान नहीं होता कि अन्य बौद्ध नायिकाओं के समान क्या इसकी भी परिणति मायना , हो होती है। बीच का कहना है कि इसके नामकरण में सेना सिद्धा या दत्ता लगाने का वैश्याविषयक परम्परा का पालन नहीं किया गया है। यह भी सम्भव है कि यद्यपि न किसी पुरानी परम्परा से यह नाम ग्रहण किया हो। जितना अंश प्राप्त है उससे गणिकाओं के आमोद प्रमोद का चित्रण हो ही गया है। उसका , विहार स्पष्ट है ही, वह उद्यान की भी विहार के लिये चुनवी है और पर्वत शिखर पर जाकर भी उत्सव मनाती

है।

माणवकगौरवम्- (नाकू) यह कालीपद (दे) का लिखा ७ अकों का रूपक है। इसमें धौम्य ऋषि और उनके शिष्यों के चरित्र को चित्रित किया गया है। धौम्य ऋषि शिष्यों की कड़ी परीक्षा लेते हैं जिसका हारित नामक शिष्य विरोध करता है और आश्रम से निकाल दिया जाता है। इसके प्रतिकूल उपमन्यु सभी परीक्षाओं में पास होता है। धौम्य को प्रधान मन्त्रित्व का पद प्रदान किया जाता है किन्तु उसे आस्वीकार कर वह पद अपने शिष्य को दिलवा देते हैं। उपमन्यु सफल होकर उदालक मुनि के नाम से प्रसिद्ध होता है किन्तु हरीत पश्चात्ताप की आग में जलकर गुरु कृपा का अधिकारी बनता है।

यह एक सस्कृतप्रधान नाटक है जिसका परिवेश आश्रम जीवन है। राजतन्त्र, सविधान, नीति इत्यादि का निदर्शन एवं गुरुभक्ति की स्तुति इसकी विशेषतायें हैं। इनका प्रकाशन प्रणयपारिजात एवं सस्कृत परिषद् पत्रिका में हुआ है। प्रथम अभिनय सस्कृत परिषद् की ओर से किया गया था।

माणिक- (नाका) ये राजवर्धन के पुत्र एवं नटेश्वर के शिष्य चौदहवीं शताब्दी के एक नेपाली कवि तथा नाटककार थे। इनके लिखे तीन नाटक प्रकाश में आये हैं- भैरवानन्द (दे) राघवानन्द (दे) और अभिराम रागव (दे) इन नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने मानव न्यायशास्त्र की न्याय विकासिनी टीका भी लिखी थी।

माणिक्य चन्द्रदेव- (नाका) १६वीं शताब्दी के नोआखाली के राजा थे। इन्हें लक्ष्मणमाणिक्य देव नाम से भी याद किया जाता है। इनका लिखा कुवलधारवचरित (दे) प्रकाश में आया है। इनके नाम पर विख्यातविजयम् (दे) नाटक भी बतलाया जाता है। सत्काव्यरत्नाकर भी इनकी एक काव्यात्मक रचना बतलाई जाती है।

माणिक्यवल्लिका- (नाकू) शारदातनय ने कल्पवल्ली उपरूपक के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती।

माणिक्यसूरि- (नाका) ये वातगच्छ के निवसी थे। इन्होंने सेतुनाटक (दे) की रचना की। इसके अतिरिक्त इनका लिखा १० स्कन्धों में विभाजित १०० सर्गों का नलायन अथवा कुबेरपुराण भी प्राप्त होता है जिसकी १६५८ की लिखी हुई एक प्रति जैसलमेर भण्डार में प्राप्त होती है। इनका साहित्यसार नामक एक अलंकार ग्रन्थ भी बतलाया जाता है। इनका उल्लेख पेटर्सन ने खोज रिपोर्ट स ११३५७ पर किया है जो कि जैसलमेर के राज पुस्तकालय से प्राप्त की जा सकती है।

मातलि- (नापा) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में इन्द्र का सारथि। असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिये दुष्यन्त को बुलाने के निमित्त उसे भेजा है। राजा उस समय शकुन्तला के वियोग की तीव्र वेदना से पराहत है। मातलि विवेक के साथ अपना कर्तव्य निश्चित कर

लेता है और विदूषक को दबोच लेता है जिससे वह चौख पड़ता है और राजा को पुकार कर रक्षा की याचना करने लगता है। मातलि की इस क्रिया से राजा प्रबुद्ध हो जाते हैं। उसे ज्ञात हो जाता है कि व्यक्तिगत सुख दुःख के ऊपर भी कुछ कर्तव्य हैं। इस प्रकार भावान्तर को उत्पन्न कर वह राजा को इस अवस्था में ले आता है कि शकुन्तला विषयक वियोग वेदना से ऊपर उठकर इन्द्र के द्वारा निर्दिष्ट अपने कर्म को समझ जाते हैं। कर्तव्यपालन कर लौटने के अवसर पर भी वह राजा को कश्यप के आश्रम में ले जाता है जहाँ राजा को प्रियतमा शकुन्तला और पुत्र भरत दोनों मिल जाते हैं। इस प्रकार शकुन्तला के पुनर्मिलन में मातलि का बहुत बड़ा योगदान है।

मातृपूजनम्- (नाक) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

मात्रराज- (नाका) दे अनङ्गहर्ष।

माधुर- (नापा) मृच्छकटिक के दूतकार। वह अत्यन्त कठोर स्वभाव वाला जुआरी है। दया का उसमें लेश भी नहीं। वह अपने पैसे वसूल करने के लिये सवाहक पर किसी प्रकार का अत्याचार करने को तैयार है और तब तक नहीं छोड़ता जब तक उस का पैसा वसूल नहीं हो जाता।

माधव- (नाका) सुप्रद्राहरण के लेखक। ये विजय नगर के दरबारी कवि माधव से भिन्न थे।

माधव- (नापा) मालती माधव (दे) का नायक। उसकी प्रेमिका का निर्णय और निर्देश उसके पुरखों ने ही कर दिया है। सम्बन्ध जोड़ने में उसे अपने मित्र भकरन्द की सहायता भी उपलब्ध है। साथ ही उसके पिता ने इस कार्य के लिये कामन्दकी भिक्षुणी को भी नियुक्त कर रक्खा है किन्तु राजा द्वारा विघ्न डालने के कारण उनका सम्मिलन इतना सरल नहीं है। माधव सच्चा प्रेमी है। जब मालती अपनी हृदय वेदना को अभिव्यक्त कर रही होती है माधव संयोग वश सुन लेता है कि ये वचनमृत मलिनजीवनकुसुम को खिलने वाला हैं दृष्टिदायक हैं, समस्त इन्द्रियों को मोहित करने वाले हैं, आनन्द दायक हैं और हृदय के लिये रसायन हैं।

उसकी वियोग वेदना सीमातीत है, वाणी से सर्वथा घरे है, उसकी वह अनुभूति न पूर्वजन्म में और न इस जन्म में सम्भव हुई है। विवेक नष्ट हो गया है जिससे गहन मत्तमोह चारों ओर से घेरे हुए हैं, कोई अभूतपूर्व विकार अन्दकरण को जड़ बना रहा है और सन्ताप भी प्रदान करता है। वह वियोग में मेघों से सन्देश भेजता है, प्रेमिका के चित्र बनाकर मनोरञ्जन करता है।

वह कबल प्रेमी ही नहीं है और न वियोग वेदना में केवल पीड़ित रहने की उसकी प्रवृत्ति है। वह उद्योगशील है और जब उसे मालूम पड़ने लगता है कि केवल कामन्दकी के सहारे मालती को प्राप्त करना सम्भव नहीं है तब वह पिशाचों का सहयोग लेने के

लिये महामास विक्रय का धन्य भी प्रारम्भ कर देता है। वह वीर है, अघोरघण्ट की तत्काल हत्या कर देता है। वह एक सच्चा मित्र भी है, मकरन्द को मदयन्तिका के प्राप्त करने में पूरी सहायता प्रदान करता है। उसका दृढ़ निश्चय और वीरता पूर्ण कार्य अन्त में राजा को भी झुका देता है और उसे मालती से विवाह करने की अनुमति दे देता है।

माधव भट्ट- (नाक) ये मण्डलेश्वर भट्ट और इन्दुमती के पुत्र तथा हरिहर के भाई थे। विजय नगर के राजा विरूपाक्ष के दरबारी कवि थे उन्हीं महाराज के मन्त्री से इन्हे आश्रय प्राप्त हुआ था। इनका लिखा श्रीगदित 'सुभद्रा हर्ष' (दे) प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इनका ९ सगों का एक काव्य नरवासुर विजय और सङ्गीतचन्द्रिका नामक एक संगीत शास्त्रीय ग्रन्थ भी प्राप्त होता है। इनका समय १५वीं शताब्दी १६वीं शताब्दी माना जाता है।

माधव साधना- (नाक) नृत्यगोपाल कवि रत्न (दे) लिखित नाटक। इनके नाम के अतिरिक्त केवल इतना ज्ञात है कि ये २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि थे।

माधवसेन- (नापा) मालविकाग्निमित्र में यह मालविका का भाई है। इसे इसका चचेरा भाई बन्दी बना लेता है और जैसे तैसे मालविका निकलकर भाग जाती है।

माधवस्वातन्त्र्यम्- (नाक) यह गोपीनाथ दधीच का लिखा ७ अकों का नाटक है जिसकी रचना १८८३ में हुई थी। इसमें उस समय की जयपुर राज घराने की मन्त्रियों की नियुक्ति के विषय में जोड़ तौड़ का चित्रण किया गया है। यह वह समय था जब ब्रिटिश भारत में १८५७ के विद्रोह के बाद कम्पनी का राज्य समाप्त हो चुका था और ब्रिटेन ने शासन अपने हाथ में ले लिया था। सन् १८८० में जयपुर के राजा रामसिंह का देहावसान हो गया और जयपुर की गद्दी पर सवाई माधोसिंह आसीन हुये। रामसिंह ने कान्तिचन्द्र को अमात्य नियुक्त कर दिया था जो पुराने अमात्य फतेहसिंह को पसन्द नहीं आया। अब कई ओर से संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस नाटक में महाराणी की अपनी नीति है, उसने सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के लिये अंग्रेज क्रॉसफोर्ड को बुला लिया है। कान्तिचन्द्र के विरोधियों में फतेहसिंह के अतिरिक्त रघुनाथ सिंह भी है, अनेक जाली आरोप लगाये जाते हैं। क्रॉसफोर्ड और माधवसिंह का सहारा लिया जाता है। किन्तु अन्त में कान्तिचन्द्र की विजय होती है। महाराणी ब्रिटेन के शासनादेश से माधवसिंह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र घोषित कर दिये जाते हैं।

इस नाटक का प्रथम अभिनय जयपुर के रामलीला मैदान में राम प्रकाश नाट्यशाला में हुआ था। इसमें प्राकृत के स्थान पर हिन्दी और वज्रभाषा का प्रयोग किया गया है तथा अकों का विभाजन दृश्यों में है। भाषा पात्रानुसारी है और अंग्रेजी शब्दों के लिये संस्कृत शब्द निर्मित कर लिये गये हैं।

माधवानल- (नाक) इसमें विक्रमादित्य का मित्र मधवानल दरबार की एक कुमारी

कामन्दला से प्रश्नोत्तर करता है जिसमें विक्रमादित्य आनन्द लेते हैं। सुन्दरी कुमारी पराजित हो जाती है तब विक्रमादित्य विजेता माधवानल को वह कन्या पुरस्कार में देते हैं। इस विषय को लेकर लिखे गये इसी नाम के दो नाटक प्रकारा में आये हैं-

(१) आनन्दधर लिखित नाटक- कैटेलागस कैटेलागोरम स १११८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(२) कवीश्वर लिखित- कैटेलागस कैटेलागोरम १४५० और पेटर्सन द्वारा बम्बई में संस्कृत खोज रिपोर्ट १११८ पर इस रचना का उल्लेख किया गया है।

माधवानल कामन्दकला- (नाक) इसमें माधवानल नाटक (दे) के ही कथानक का उपादान किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं चलता। कैटेलागस कैटेलागोरम III ९७ और पेटर्सन रिपोर्ट में इसका उल्लेख है।

माधवी वसन्तो- (नाक) गणपति शास्त्री (दे) लिखित नाटक। लेखक ने इस नाटक की रचना केवल १७ वर्ष की आयु में की थी। ट्रावन्कोर पुस्तकालय में स १८० पर यह कुनि प्राप्त की जा सकती है।

मान विक्रम- (जमोरिन) (साटीका) १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में केरल के राजा थे। ये स्वयं विद्वान् एव कवि थे और इनका दरबार कवियों और कलाकारों को आश्रय देने के लिये प्रसिद्ध था। इनके दरबार में साढ़े १८ कवि प्रसिद्ध हैं जिनमें १८ पूर्ण कवि और एक आधा कवि जो संस्कृत और मलयालम दोनों में रचना करता था अत आधा माना जाता है।

मान विक्रम- (नाका) दे लक्ष्मी कल्याण (२)

मानवेद- (नाका) ये केरल के परम वैष्णव कवि थे और विष्णुमन्दिर में ही निवास करते थे। इनके धार्मिक गुरु विश्वमगल थे। इन्होंने व्याकरण की शिक्षा कृष्ण पिशरोटी से पाई थी। इनकी लाज्जी दो पुत्रों के प्राप्त होती हैं- कृष्णगोत्रि (नृत्यनाटक) और पूर्वभारत चम्पू। इनका उपनाम एलाट्टिरीराज बतलाया जाता है। ये १७वीं शताब्दी में कालोक्त के अधिकारी थे। इन्हें नारायण की रचनायें अत्यधिक प्रिय थीं और उन्होंने अपनी शैली को उनकी शैली से बिल्कुल मिना दिया था। कहा जाता है इन्होंने चम्पू रामायण की टीका भी लिखी थी। रुद्रदाम नामक कवि ने चन्द्रलैला या मानवेदचरित नामक सट्टक लिख कर चन्द्रलैला के साथ इनके विवाह का वर्णन किया है।

मामन भट्टवाण- (नाका) दे वामन भट्टवाण।

माया- (नाका) प्रमोदचन्द्रोदय (दे) का एक पात्र। यह पुण्य (परम तन्त्र ब्रह्म) की पत्नी है जिसमें मनम् नाम का पुत्र और उससे महामोह और विवेक नामक दो बुरे और अच्छे बशों का जन्म होता है।

भाषाकापालिक- (नाक) साहित्यदर्पण में संस्कारक उपरूपक का उदाहरण जो

अब अप्राप्य है।

मायाकुरङ्गिका- (नाकू) यह एक नाट्य रचना है जिसका उल्लेख शिंगभूपाल के रसार्णव सुधाकर में किया गया है। कीथ के अनुसार यह एक ईहामुग है।

मायाजातम्- (नाकू) लीलाराव दयाल लिखित रूपक। इसमें न तो एक्शन है न नाटकीकरण, केवल धूर्तों के चगुल में पसी चार कन्याओं मुग्धा, मध्या, मोहिनी और दया की कथन कथा इसमें अंकित है। माता की लिखी एक कहानी की सेखिका ने रूपक का रूप देने का असफल प्रयास किया है।

मायापुष्पक- (नाकू) राम विषयक नाटक। अभिनवभारती में कथ्या विभाग के प्रकरण (अ १३) में इसका उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार साहित्यदर्पण, भोजराज के सरस्वती कण्ठाभरण, नाट्यदर्पण, भावप्रकाशन और दशरूपक में भी इसका उल्लेख किया गया है। न तो इसके लेखक का पता है और न यह अब तक साहित्य जगत् को प्राप्त हो सका है।

मायुराज- (नाका) दे अनगर्हर्ष मात्रराज।

मार- (नापा) दिव्यावदान (बौद्धसाहित्य) में इनके नाम पर जो कवितायें दी हुई हैं वे किसी नाटक का अंग मालूम पड़ती हैं। इससे प्रतीत होता है कि ये किसी नाटक के पात्र थे। इनके साथी उपगुप्त (दे) का इनके साथ ही उल्लेख किया जाता है।

मारि- (नापा) मोहराज पराजय (दे) का एक पात्र। कुमारपाल ने कृपा सुन्दरी की शर्त के अनुसार जिन व्यसनों का राज्य से निर्वासन किया था उनमें यह भी एक था।

मारीच- (नापा) रामकथा का एक राक्षस पात्र जिसने हरिण वेष धारण कर सीता हरण में रावण को सहायता प्रदान की।

मारीच ऋषि- (नापा) अभिज्ञान शाकुन्तलम् में महान ऋषि कश्यप जिनका पैत्रिक नाम मारीच है क्योंकि इनका जन्म मरीच से हुआ। सृष्टि को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी से केवल एक के व्यवधान से ही इनका जन्म हुआ— ब्रह्मा जी से मरीच और मरीच से कश्यप। देवकार्य समाप्त कर लौटते हुये मार्ग में दुष्यन्त इनके आश्रय में कुछ समय के लिये रके जहा परित्यक्ता शकुन्तला पुत्र भरत के साथ रह रही थीं। वहा दुष्यन्त और शकुन्तला का पुनर्मिलन हुआ। कश्यप की महिमा अपार है। जहा वे तपस्या कर रहे हैं वहा सुख सुविधाओं के साथ वह सब ऐश्वर्य सामग्री विद्यमान है जो चिरकाल तपस्या करके प्राप्त की जा सकती है। सपत्नीक रहते हुये भी उनमें विषय वासनाओं का लेश मात्र भी शेष नहीं रह गया है। इस जीवन में भी उन्हें मोक्ष सुख का पूरा अनुभव प्राप्त हो रहा है। फिर भी लोक के हित चिन्तन एवं व्यवस्थापन से वे सर्वथा उदासीन नहीं हैं। व्यवस्था प्रदान करने में वे अनासक्त भाव से सर्वदा तत्पर रहते हैं। अकारण परित्यक्ता शकुन्तला को उनके यहा आश्रय प्राप्त होता है और अन्त में चिर विमुक्त दम्पति का

उन्हों के आश्रय में पुनर्मिलन होता है। साथ ही दम्पति को आशीर्वाद भी प्राप्त हो जाता है।

मारीच वञ्छितक- (नाट्य) राम विषयक लुप्त नाटकों में एक। शारदावनय ने भाव प्रकाशन में इसका उल्लेख किया है।

मालती- (नाट्य) मल्लिकामास्त (दे) का नाटक। यह मल्लिका का प्रेमी है और अनेक माहसिक प्रयत्नों और विघ्नों के बाद उसे प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

मालतिमैरावणम्- (नाट्य) नारायण शास्त्री (१) (८) लिखित ७ अंकों का नाटक।

मार्कण्डेय मिश्र- (नाट्य) ये उड़ीसा निवासी थे। इन्होंने विलासवती सट्टक (दे) की रचना की थी। इनकी दूसरी रचनायें हैं- दो महाकाव्य- प्राकृतसर्वेश्वर और दशमावध।

मार्कण्डेय विजयम्- (नाट्य) सुन्दरय्य (दे) लिखित नाटक। इसकी रचना काङ्गोकरामकोटि पीठाधिपति राङ्गाचार्य के आदेश पर हुई थी। सम्स्कृत साहित्य परिषद् के वार्षिक उत्सव में इसका अभिनय हुआ था। इसका प्रधान रस भक्ति है।

मालतिका- (नाट्य) एक बीघी। भोजराज ने इसका बीघी के उद्धारण के रूप में उल्लेख किया है। इसका कथानक इन्दुलेखा (दे) से मिनदा जुलता प्रतीत होता है। इन दोनों रचनाओं के विषय में राजा विदूषक और नायिका के अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञान नहीं है। यह एक हल्की फुल्की कमेडी (हर्ष एव विनोद पूर्ण रचना) ज्ञात होती है। कुछ लोगों का विचार है कि मालतिका और इन्दुलेखा दोनों एक ही हैं केवल एक कृति को दोनों नामों से जाना जाता है।

मालती- (नाट्य) मालतीमधव (दे) नाटक की नायिका। प्रायः देखा जाता है कि कन्या भाव में उत्पन्न प्रेम में विघ्न माता पिता की ओर से आता है अथवा प्रसपात्र की पूर्व विव्रहिता पत्नी उम प्रेम में व्यथित उत्पन्न करती है। किन्तु मालती के मार्ग में ये दोनों अवरोध नहीं हैं। उसका अवरोध राजा की ओर से है जो वलान् अपने नर्म सचिव नन्दन के साथ उसका विवाह उसका इच्छा के प्रतिकूल कराना चाहता है। किन्तु मालती का सहायक अच्छ मिले हैं। उसके प्रेम सम्बन्ध के झड़ने में दोनों के पिता और पिता द्वारा नियुक्त सहायक कामन्दकी तथा मकरन्द सहायता करते हैं यहा तक की मकरन्द मानना की वश धारण कर स्वयं नन्दन से विवाह कर मालती की नन्दन के चणुल से बचा लता है। मालती के प्रेम में विघ्न डाने वालों का आर से ही विघ्न नहीं आता उसे दूसरी विपत्तियों का भी सामना करना पड़ता है। उसका दो बार अपहरण किया जाता है- पहले अपहरण और बालकुण्डला मिलकर उसकी बलि चढ़ाना चाहत हैं। उस समय उसका प्रेमी मधव अपहरण का मरकर उसकी रक्षा करता है। दूसरी बार बदला लाने के लिये बालन कुण्डला उसका अपहरण करती है जब कामन्दकी की शिष्या मौदाग्निनी

उसकी रक्षा करती है। अन्त में राजा उन प्रेमियों की दृढ़ता के सामने झुक जाता है और प्रेमियों को अपना अभोष्ट प्राप्त हो जाता है।

मालतीमाधव- (नाकृ) भवभूति (दे) लिखित १० अंकों का प्रकरण। नियमानुसार प्रकरण की कथा कविकल्पित होनी चाहिए। किन्तु कीथ के अनुसार इसके कथानवसमता के सूत्र खोजे जा सकते हैं, सयोग्न मात्र कवि का अपना है। यह शृङ्गार प्रधान नाटक है जिसमें प्रेम तत्व की अभिव्यक्ति होती है।

भूरिवसु और देवरात इन दो मित्रों ने विद्यार्थी जीवन में एक समझौता कर रखा था कि यदि एक के पुत्र और दूसरे के पुत्री हुईं तो दोनों को विवाह कर दिया जायेगा। सयोग वश भूरिवसु के कन्या मालती हुई और देवरात का पुत्र माधव हुआ। दोनों को अपने निर्णय का ज्ञान था। भूरिवसु पद्मावती के राजा का और देवरात विदर्भ के राजा का मन्त्री बना। भूरिवसु ने अपनी पूर्व परिचिता कामन्दकी को जो अब भिक्षुणी हो गई थी मालती का विवाह माधव से करा देने का उत्तर दायित्व सौंपा। उधर देवरात ने अपने चायदे के अनुसार माधव को पद्मावती भेज दिया जिससे उसका प्रेम सम्बन्ध और विवाह मालती से हो सके। किन्तु पद्मावती का राजा मालती का विवाह अपने मित्र नन्दन से कराना चाहता था। नन्दन की बहन मदन्यन्तिका मालती की सहेली है। माधव का मित्र मकरन्द भी उसके साथ आया है। कामन्दकी और मकरन्द के उद्योग और प्रबन्ध से मालती और माधव में परस्पर अनुराग बढ्मूल हो जाता है। दोनों प्रेमी शिव मन्दिर में मिलते हैं। वहा एक बाघ है जो मदन्यन्तिका पर आक्रमण कर देता है। मकरन्द उसकी रक्षा करता है और इस प्रकार मदन्यन्तिका तथा मकरन्द में भी प्रेम उत्पन्न हो जाता है। माधव स्वयं भी मालती को प्राप्त करने का उद्योग करता है और राजा के निर्णय का विरोध करने के लिये श्मशान वासी पिराचों की सहायता प्राप्त करना चाहता है। वह महामास विक्रय का व्यवसाय अपनाता है। इसी प्रसंग में उसे मन्दिर से रोने की आवाज सुनाई देती है, वह दौड़ पड़ता है और देखता है कि अघोरघण्ट अपनी शिष्या कपालकुण्डला के साथ चामुण्डा पर मालती की बलि चढ़ाना चाहता है। माधव अघोरघण्ट को मारकर मालती की रक्षा करता है। कपालकुण्डला बदला लेना चाहती है।

राजा के आदेश से मालती का विवाह नन्दन से तय हो जाता है। किन्तु मकरन्द मालती का वेष बनाकर अपना विवाह नन्दन से कर लेता है और मालती माधव के साथ भाग जाती है। जब नन्दन की बहन मदन्यन्तिका को पता चलता है कि उसकी भाभी का उसके भाई से व्यवहार ठीक नहीं है तब वह भाभी की भर्त्सना करने जाती है जहा उसे अपना प्रेमी मकरन्द मिल जाता है। वह उसके साथ भाग जाती है। किन्तु उनका पीछा किया जाता है। उस समय उसकी सहायता माधव करता है। मकरन्द के शत्रु पराजित होते हैं। और राजा उनकी वारता के पुरस्कार के रूप में उन्हें क्षमा कर देता है। इस प्रकार मकरन्द और मदन्यन्तिका का प्रणय बन्धन हो जाता है।

माधव के उस ओर व्यस्त होने से अवसर पाकर कपालकुण्डला मालती को उड़ा ले जाती है और उसका बलिदान करना चाहती है किन्तु ठीक समय पर कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी पटुचकर उनकी रक्षा कर लेती है। अन्त में राजा अपनी स्वीकृति दे देता है। मालती और माधव का विवाह ठीक समय हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हो जाता है।

पद्मभूति की प्रकृति भयानक तथा करुण दृश्यों के विधान की ओर है और इस प्रकरण में भी उनकी इस गम्भीर प्रकृति के दर्शन होते हैं। किन्तु प्रस्तुत रचना में प्रेम प्रसंगों को आबद्ध करने में भी लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। इस नाटक में कामन्दकी के शानदार व्यक्तित्व के चित्रण में कवि पूर्ण रूप से सफल हुआ है। वस्तुतः नाटक की वही नायिका है और उसी के उद्योग से प्रेमी सयुक्त होते हैं तथा उनका विवाह बन्धन सम्भव होता है। इस नाटक में कवि ने गहराई से शृङ्गाररस और प्रेम सम्बन्ध का चित्रण किया है। इस दिशा में यह नाटक सभी अन्य नाटकों से बढ़कर है। कहीं कहीं तो ऐसा ज्ञात होने लगता है कि पात्रों कवि चात्स्यायन के कामसूत्र का उदाहरण पेश करना चाहता है। इस नाटक के कतिपय संक्षेप प्रस्तुत किये गये हैं।

इस नाटक का एक पद्य बद्ध संक्षेप ऋजुलब्धी नाम से मैथिल शर्मा द्वारा लिखा गया जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स १४५३ पर किया गया है। इस पर कई टीकाएँ भी लिखी गई हैं जिनमें प्रमुख हैं— धर्मानन्द की टीका (जिसका उल्लेख पेटर्सन की रिपोर्ट में किया गया है), जगद्धर की टीका (जिसका प्रकाशन बाबू सस्कृत सीरीज स हुआ है), त्रिपुरारी की टीका (मद्रास से प्रकाशित) नान्यदेव की टीका (मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट में II १२२० पर उल्लिखित) विद्यासागर की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), पूर्ण सरस्वती की टीका (मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट में III ४१९८ पर प्रकाशित) और कुञ्ज बिहारी की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित)।

मालविका—(नाया) मालविकाग्निमित्र (दे) की नायिका। नायक के अन्तपुर में नायिका के रहने और प्रेम सम्बन्ध जोड़ने के कई कथानक सस्कृत नाटकों में अपनाये गए हैं। उनमें मालविकाग्निमित्र सर्वाधिक स्पर्ध शील हैं। पहले तो भाई का बन्दी बना लिया जाने के बाद मालविका को धा से भागना पड़ता है और जैसे तैसे उसे अग्निमित्र के राज घराने में स्थान मिल जाता है। संयोग से कौशिकी और विदूषक जैसे सहयोगी भी उसे मिल जाते हैं जिससे वह दो दो रानियों धारिणी और इरावती के प्रतिरोध का सामना करने में समर्थ हो जाती है। उसमें कलात्मक निपुणता की भी कमी नहीं है जब वह प्रतियोगिता में उतरती है तब सत्तना से प्रथम स्थान प्राप्त कर लेती है। यह उसकी साधना में सलत्तना का परिचय देने के लिये पर्याप्त है। वह वादक भी है। एवान्त के क्षणों में वह राजा पर कटाक्ष भी करती है। उसे बन्दी जीवन भी मिनाना पड़ता है। अन्त में उसे रानियों का प्रतिरोध दूर करने में सफलता मिल जाती है।

मालविकाग्निमित्र—(नाट्य) महाकवि कालिदास की सम्भवतः पहली रचना। इसमें महान नाटककारों के होते हुये भी नया नाटक प्रस्तुत करने की श्रुता के लिये क्षमा प्रार्थना की गई है। कतिपय विचारकों ने इसके कालिदास कृत होने में सन्देह व्यक्त किया है। इसमें विनोद परिहास और शालीनता का पुट पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। रचना में गम्भीरता और गुरुता की कमी नहीं जो कालिदास की अपनी विशेषता है। यह नाटक ५ अंकों में विभाजित है।

विदर्भ की राजकुमारी मालविका के लिये भविष्यवाणी की गई है कि उसका विवाह विदिशा के राजा अग्निमित्र के साथ होगा। उसका चचेरा भाई यज्ञसेन उसके भाई माधवसेन को बन्दी बना लेता है। मालविका जैसे तैसे भाग निकलती है और वनचरों से बचती बचाती विदिशा पहुँच जाती है जहाँ पटरानी धारिणी के सेवाकार्य में नियुक्त हो जाती है। धारिणी के ही मरक्षण में रहते हुये नृत्यगीत कलाओं की शिक्षा लेती है। राजा उसके चित्र को देखकर उस पर मुग्ध हो जाते हैं। किन्तु धारिणी निरन्तर नियन्त्रण रखती है। अतः राजा मालविका को देख नहीं पाते। विदूषक गौतम उसके लिये योजना बनाता है और दो नृत्य शिक्षकों में होड़ उत्पन्न कर देता है। निर्णय राजा को करना है। राजा यह कार्य कौशिकी को सौंप देते हैं जो वस्तुतः मालविका की संरक्षिका बनकर विदर्भ से आई है। गणदास अपनी ओर से प्रतियोगिता में मालविका को प्रस्तुत करता है जो विजयिनी होती है। इस अवसर पर राजा मालविका के रूप सौन्दर्य का आनन्द लेते हैं और उस पर अनुरक्त हो जाते हैं।

राजा छिपकर मालविका और उसकी सहेली का वार्तालाप सुनते हैं और अनुभव करते हैं कि मालविका भी हृदय से उसे चाहती है। राजा बाहर आ जाते हैं और उसका आलिंगन कर लेते हैं। इसी समय छोटी रानी इरावती जो गुप्तरूप से सारी घटनायें देख रही थी बाहर निकलकर उनका अपमान करती है। धारिणी मालविका को बन्दी बना लेती है। तब उसको छुड़ाने के लिये विदूषक सर्पदश का बहाना बनाता है और दवा के लिये धारिणी से अगूठी प्राप्त कर लेता है तथा उसी मोहर से मालविका को छुड़ा लेता है। इसी अवसर पर विदर्भ पर विजय का समाचार मिलता है तथा साथ ही समाचार आता है पिता पुण्यमित्र को उत्तर पर विजय प्राप्त हो गई है। विजय के उपलक्ष्य में एक उत्सव मनाया जाता है जिसमें दो नर्तकियाँ भाग लेने विदर्भ से आती हैं और मालविका को पहिचान लेती हैं। कौशिकी भी इस तथ्य को स्वीकार करती है। धारिणी अग्निमित्र का मालविका से विवाह कर देती है। सब कुछ आनन्द में समाप्त हो जाता है।

इस नाटक से प्राचीन भारतीय राजघरानों की चहल पहल पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। राजा के दाक्षिण्य और रानियों की ईर्ष्या के कारण अनेक जटिलतायें उत्पन्न होती हैं। मालविका को राजकुमारी के रूप में पहिचान लेने पर ही रानियों की ईर्ष्या समाप्त होती है क्योंकि तब वे उसे रानी बनने योग्य मान लेती हैं।

पाच अकों का यह नाटक प्रसाद गुण पूर्ण सरस शैली में लिखा गया है। इसमें कला के महत्व पर प्रकाश पड़ता है और कला के प्रायोगिक पक्ष को भी दिखलाया गया है। निस्सन्देह कालिदास की वैदर्भी शैली के सर्वथा अनुकूल इसकी रचना हुई है। इस पहली रचना ने ही इसके कर्ता को यश क शिखर पर पहुँचा दिया होगा और हो सकता है इसकी रचना ने ही इसके कर्ता को विक्रम के दरबार में पहुँचा दिया हो।

सानुवाद और व्याख्या सहित इसका प्रकाशन एएस कृष्णाराव ने मद्रास से और अम्भाशास्त्री ने व्याख्या सहित कोल्हापुर में करा दिया था। इस पर कई टीकायें भी लिखी गईं जिनमें कतिपय टीकाओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है— कल्पवेम की टीका (बम्बई और पूना से प्रकाशित) नीलकण्ठ की टीका (व्योमकेश पुरम् निवामी बालकृष्ण के पुत्र नीलकण्ठ द्वारा १७१२ सवत् में रचित एक बम्बई से प्रकाशित), बीराधव की टीका (केटेलगस केटेलगोम् ॥ १०४ और २१७) मृत्युञ्जय निराङ्क की टीका (मद्रास से प्रकाशित) तर्क बन्धमति की टीका (करारता में प्रकाशित) परीक्षित कुञ्जुनिराज की टीका।

माला भविष्यम्— (नाट्) स्कन्दरामर द्वारा लिखित लघु नाटक। इसमें बम्बई के जीवन का चित्रण किया गया है जा परिणाम पूर्ण है। इसका प्रकाशन नागपुर से हुआ है।

माल्यवन्त— (नापा) यह रामायण का प्रसिद्ध पात्र है। यह रावण का मन्त्री है किन्तु रामायण में इसके चरित्र का विकास नहीं हुआ है। कतिपय नाटक कारों ने कल्पना के आधार पर इसके चरित्र पर विशेष प्रकाश डाला है जिनमें अधिकतर उसकी मन्त्रित्व की योग्यता और कर्तव्यपरायणता व्यक्त होती है। कतिपय उदाहरण—

(१) महावीरचरित— में यह रावण का सच्चा हितैषी है। इसे ज्ञात है कि रावण सीता को चाहता है। अतः रावण की सीता विषयक कामना को जैसे भी हो पूरा करने का प्रयत्न करता है। यह राजनिति में कुशल है और दाव पेंच से राम के पक्ष को पराजित करना चाहता है। अब इस ज्ञात हो जाता है कि सीता का विवाह राम से तय हो चुका है तब परशुराम को उन्नेजित कर और जनकपुर भेजकर राम के विवाह में विघ्न डालने का प्रयास करता है किन्तु इस उद्योग में उसे सफलता नहीं मिलती। तब वह दूसरी चाल धनता है। शूर्पणखा को वैक्येयी की दासी मन्थरा का रूप देकर और एक जाली पत्र बनाकर उसे राम के पास भेज देता है जिसमें लिखा है कि वैक्येयी को दशरथ ने दो वरदान दिये हैं जिनमें एक के द्वारा भारत को राज्य और दूसरे के द्वारा राम को १४ वर्ष व वनवास की आज्ञा हुई है। राम इस पिता की आज्ञा मानकर राज्य सभार छोड़कर वन को चले जाते हैं। उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी जाते हैं।

सीता हरण के बाद मुट्ठ लगभग तय हो जाता है तब विभीषण ऋष्यमूक पर्वत पर मुषीष में मिलने जाने वाला है। माल्यवान् वालि भी कहकर उसके ऋष्यमूक पर्वत

पर जाने पर प्रतिबन्ध लगा देता है। वह कर्तव्य परायण मन्त्री है। अपने उत्तरदायित्व का पालन करने की सर्वत्र चेष्टा करता है। यह भाग्य की बात है कि उसे अपने उद्योग में सफलता नहीं मिलती। किन्तु शत्रु को वह अपनी योजना से परेशान करता है इसमें सन्देह नहीं।

(२) बाल रामायण- में माल्यवान की कूटनीति के हमें यत्किंचित् दर्शन होते हैं। राम ने सेतु बाध कर समुद्रपार करने की समस्या सुलझा ली है किन्तु माल्यवान की कूटनीति से समुद्र के किनारे सीता का कटा हुआ सर दिखलाई देता है, वह वन्तुत एक बोलने वाली पुतली का सर है जो बोलने लगती है। इससे रहस्य खुल जाता है और माल्यवान का योजनाकृत कार्य नहीं हो पाता।

(३) अनङ्गाश्व- में महावीर चरित के आदर्श पर माल्यवान द्वारा शूर्पणखा के माध्यम से राम के वनवास की योजना बनाई जाती है और उसमें उसे सफलता भी मिलती है। उसकी योजना का महत्वपूर्ण भाग यह है कि वन में अकेले में घेर कर राम और सीता को अलग करने में आसानी होगी। इस योजना में भी उसे सफलता मिलती है। वह गुप्तचरों के माध्यम से राम की गतिविधियों का पूरा पता लगाये रहता है तथा अन्त तक रावण के युद्ध में उसका साथ देता है।

(४) प्रसन्नराघव- में माल्यवान् गुप्तचरों के माध्यम से राम सीता की गतिविधि की सूचना रावण को देता रहता है। राम के सेतुबन्ध का चित्र भी वह रावण के पास भेजता है जिसे रावण अविश्वास के साथ टुकरा देता है।

मित्रानन्द- (नापा) कौमुदीमित्रानन्द (दे) का चरित्र नायक। उसने वरुण को प्रसन्न कर उससे मोहन मन्त्र प्राप्त किया है और उससे अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये तथा अनेक स्थानों पर सफलता प्राप्त की। उसने अपने मन्त्र का प्रयोग सर्वदा अच्छे कार्यों के लिये ही किया। उसका सर्वाधिक महत्व पूर्ण कार्य है एक घूर्त के चगुल से युवती कौमुदी को मुक्त कराना। इस प्रकार प्राप्त सिद्धि का लोकोपकार में ही प्रयोग उसके चरित्र की उज्ज्वलता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

मित्रावसु- (नापा) नागानन्द (दे) में जीमूतवाहन का अभिन्न मित्र। वह अपनी बहन मलयवती का विवाह जीमूतवाहन से करवाता है। वह वीर है और सिद्ध गणों का नायक है। वह अन्त तक जीमूतवाहन का साथ देता रहता है।

मिथ्याग्रहणम्- (नाक) लीलाराव दयाल लिखित दो दूरियों में विभाजित एकाङ्की जिसमें मुहम्मद की पत्नी अमीना मुहम्मद के बहुपत्नीत्व से दुखी दिखलाई गई है।

मिथ्याचार- (नाक) वैद्यनाथ लिखित एक प्रहसन कैटेलागस कैटेलागोरम। ४५५ में इसका उल्लेख किया गया है।

मिथ्याज्ञान खण्डनम्- (नाक) यह रविदास (दे) का लिखा प्रतीक नटक है।

इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है। इस नाम के एक अन्य नाटक का भी उल्लेख पाया जाता है। जो इससे भिन्न है। किन्तु उसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

मिथ्याज्ञान प्रहसन- (नाकृ) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना वैद्यनाथ (दे) ने की थी। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में १०३ पर किया गया है।

मिथ्याज्ञान विडम्बन- (नाकृ) रविदास लिखित एकाङ्की नाटक। यह एक सामान्य रूपक है। जिसमें नाटक के सामान्य नियमों का पालन किया गया है। यह एक प्रतीक नाटक ज्ञात होता है।

मिथ्या दृष्टि- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे) में महामोह की परिचारिका।

मिथ्याप्रताप- (नाकृ) हरिदास सिद्धान्त वागीश लिखित ६ अकों का रूपक। कतिपय अंक दृश्यों में विभाजित किये गये हैं। इसमें महाराणा प्रताप के जीवन का चित्रण किया गया है। नृत्य गीत का प्रचुर प्रयोग इसकी विशेषता है। लोकोक्तियों और अन्योक्तियों का भी प्रयोग इस नाटक में प्रचुर रूप में पाया जाता है। यह नाटक देश भक्ति की भावना से ओत प्रोत है। इसका प्रथम अभिनय कलकत्ता से स्टार गमरु पर प्राच्यवाणी प्रतिष्ठान की ओर से किया गया। इसका प्रकाशन कलकत्ता से १९४६ में किया गया।

मीनाक्षी परिणय- (नाकृ) यह नाटक अण्णाशास्त्री का लिखा हुआ है। मैसूर की प्राइवेट लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेलाग में स. २७९ पर इसका उल्लेख है।

मीमांसा- (नापा) प्रबोध चन्द्रोदय का एक पात्र। श्रद्धा की पुरी शान्ति जिनसे पोरशान है उनमें मीमांसा भी एक है। दूसरे पोरशान करने वाले पात्र हैं यज्ञविद्या, तर्कशास्त्र, साध्यदर्शन आदि। ये शान्ति को अपने आश्रित रखना चाहते हैं किन्तु शान्ति उनके पास रहती नहीं।

मीराधरितम्- (नाकृ) मीरा के जीवन पर आधारित १३ दृश्यों में विभाजित लीलासाव दयान (दे) लिखित रूपक। कतिपय संवादों और रंग निर्देशों को छोड़कर यह पद्यमयी रचना है। क्षमासाव कृत मीरा लहरी नामक काव्य के आधार पर इसकी रचना की गई है।

मुकुटाभिषेकम्- (नाकृ) जार्ज पञ्चम के राज्यारोहण की घटना को लेकर नारायण दीक्षित द्वारा लिखा गया ५ अकों का रूपक। इसका प्रकाशन १९१२ में मद्रास से हो गया था।

मुकुन्दमनोरथ- (नाकृ) यह नारायण (२) की कृति है। इसमें कृष्ण की गोपियों व माधव प्रेम्सीता और उनके खेन्नों का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन संस्कृत नामधनु में हुआ है।

मुकुन्द लीलामृतम्- (नाक) विश्वेश्वर दयाल चिकित्सक लिखित ७ अकों का कृष्णलीला परक नाटक। इसमें कृष्ण की बाललीलाओं का चित्रण है। इसमें कृष्ण को गान्धी रूप और कंस को ब्रिटिश सरकार परक चित्रित कर आधुनिकता की अभिव्यक्ति की गई है। १९४५ में इसका इटावा से प्रकाशन हुआ था। इसका प्रथम अभिनय श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर किया गया था।

मुकुन्दानन्द- (नाक) यह एक भाण है जिसका प्रकाशन मद्रास और बम्बई से हुआ है। इसका अभिनय नूतनपुरम् के निकट भद्रागिरि (भद्राचलम्) के उत्सव के अवसर पर किया गया था। यह कौण्डिन्य गोत्रीय रमापति के पुत्र काशीनाथ का लिखा हुआ है। इसका नायक भुजगशेखर है जो साहस कार्य का इस रूप में वर्णन करता है और ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है कि उससे कृष्ण और गोपियों की लीला की ओर भी सकेत हो जाता है। द्वयर्थक शब्द प्रयोग में लेखक ने संस्कृत शब्दावली के ज्ञानप्रदर्शन में रस लिया है। इसका रचनाकाल १३वीं शताब्दी या उसके बाद का है।

मुक्तकेशी- (नाक) नारायण शास्त्री (१) लिखित एकाङ्की नाटक।

मुक्तधारा- (नाक) यह २०वीं शताब्दी की बगीय रचना बतलाई जाती है। इसके विषय में नाम के अतिरिक्त और कुछ ज्ञात नहीं है।

मुक्तमन्दारम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित १० अकों का नाटक।

मुक्तमरन्दम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ५ अकों का नाटक।

मुक्ताचरित- (नाक) शेषकृष्ण या कृष्णकवि का लिखा नाटक अल्वर स्टेट के पाण्डुलिपि पुस्तकालय (स १०१७) में प्राप्य। इसकी रचना सम्भवतः १६वीं शताब्दी में की गई। इसकी प्रस्तावना में उड़ीसा के मुकुन्ददेव का उल्लेख किया गया है। इसका पता पेटर्सन की खोज रिपोर्ट में स IV एव XXI पर दिया गया है।

मुक्ताप्रवालम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ७ अकों का नाटक।

(१) **मुक्तावली-** (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ४ अकों की नाटिका।

(२) **मुक्तावली-** (नाक) भद्राद्रिराम शास्त्री (दे) लिखित नाटक। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

(३) **मुक्तावली-** (नाक) यह रामनाथ (दे) का लिखा २०वीं शताब्दी का नाटक है। यह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। इसकी प्रति सिटीप्रेस कोकनद में इनके पुत्र गंगाधर के पास सुरक्षित है।

मुक्ति परिणय- (नाक) यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना सुन्दर देव (दे) ने की थी। यह तजौर की पैलेस लायब्रेरी के मैन्सक्रिप्ट कैटेलाग में VIII ३४५६ पर संकलित किया गया है।

मुक्तिशारदम्- (नाक) यतीन्द्र विमल चौधरी लिखित १२ अकों का नाटक।

इसमें राम कृष्ण परम हंस की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी शारदा मणि की साधना को नाट्य विषय बनाया गया है।

मुग्धबोधनम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित, ९ अंकों का नाटक।

मुग्धमन्थरम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ६ अंकों का नाटक।

मुडुम्बई वेङ्कटराम नरसिंह आचार्य- (नाका) ये रामानुज सम्प्रदाय के मुडुम्बई आचार्य के गोत्र में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम वीररायव और माता का नाम रत्नाम्बा था। इनका समय १८४२ से १९२८ ई तक माना जाता है। इन्होंने ११४ पुस्तकें लिखीं थीं जिनमें गद्य, पद्य, चम्पू नाटक सभी कुछ था। इनके चार नाटकों का उल्लेख मिलता है- गजेन्द्रव्यायोग, राजहंसीय नाटक, वासवोपाराशरीय प्रकरण और चित्सूर्यालोक। अन्तिमरचना प्रतीक नाटक है। इनको वेङ्कटराम इस छोटे नाम से भी याद किया जाता है।

मुण्डित- (नाक) अज्ञात नामा कवि लिखित प्रहसन इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोम् १८ पर किया गया है।

मुदितकुमुदचन्द्र- (नाक) दे मुद्रित कुमुदचन्द्र।

मुदित मदालसा- (नाक) दे मदालसा।

मुदितमाधवम्- (नाक) शत जीव मिश्र (दे) का लिखा गौतिनाट्य।

मुदितराघव- (नाक) यह सलकृष्ण लिखित रामकथा विषयक एक नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोम खण्ड २ स १०६ पर किया गया है। कुछ लोग यह रचना राम कृष्ण की बतलाते हैं।

मुहुवेङ्कटार्य- (नाक) साहिती समुल्लास (दे) के लेखक मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग स २६६ पर इनका उल्लेख किया गया है।

मुद्रदुराम- (नाका) इनका लिखा रसिकतिलक भाग प्रकाश में आया है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

मुद्राराक्षस- (नाक) विशाखदत्त (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक। संस्कृत साहित्य के प्रथम कोटि के नाटकों में इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। नाटक रचना के लिये प्रेम शृङ्गार पौराणिक आख्यान इत्यादि जिन विषयों का प्रायः उपादान होता है उससे हटकर कवि ने उत्कृष्टपूर्ण कृतीति को नाटक का विषय बनाया है जो एक ऐसा विषय है कि उस पर बड़े से बड़ा कलाकार भी सफल कलाकृति प्रस्तुत करने का सामान्यतः माहस नही कर सकता। इस नाटक में कवि को जैसी सफलता मिली है उस पर आश्चर्य होना है। घाणक्य ने नन्द वरा के नारा की प्रतिज्ञा पूरी कर ली और कुलून मलय, वासुदेव सिन्धु और पारसोक्त के पर्वतक इत्यादि राजाओं को आधा राज्य देने का वादा कर उनकी सैनिक सहायता से चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र की गद्दी पर बैठा दिया। महानन्द

का परम भक्त महामन्त्री राक्षस बच कर निकल गया और स्वामी का बदला लेने के लिये प्रयत्न करता रहा। उसने पर्वतक इत्यादि को पूरा राज्य देने का वाद कर गुप्त समझौता कर लिया।

अब चाणक्य के सामने दो समस्याये हैं— राज्य की सुरक्षा के निमित्त राक्षस को मुख्यमन्त्री पद स्वीकार करने के लिये वाध्य करना और पर्वतक इत्यादि से पीछा छुड़ाना। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिये जीवसिद्धि के साथ विषकन्या भेजी। जीवसिद्धि चाणक्य का भी गुप्तचर है। अतः सारा रहस्य चाणक्य को मालूम पड़ जाता है और वह विषकन्या को पर्वतक के पास भेजकर उसे मार डालता है। यह प्रसिद्धि हो जाती है कि राक्षस ने विषकन्या के प्रयोग से राक्षस को मार डाला है। अतः पर्वतक का पुत्र मलयकेतु राज्य के अन्य दावेदारों के साथ भाग निकलता है और राक्षस से मिलकर राज्य प्राप्त करने के लिये युद्ध की तैयारी में जुट जाता है। सारा काम इतनी निपुणता से किया गया है कि आम तौर पर लोगों को यही ज्ञात होता रहता है कि पर्वतक चाणक्य का आदमी है, अतः राक्षस ने पर्वतक को मारने का धृणित कार्य किया है जबकि मलयकेतु जो कि पर्वतक का पुत्र है पर्वतक और राक्षस के गुप्त समझौते को जनता है। अतः उस पर यह प्रभाव जमाना आसान है कि चाणक्य ने विषकन्या के प्रयोग से पर्वतक का वध कर दिया है। उसे समझा दिया जाता है कि वह भी चाणक्य के लक्ष्य में है अतः वह भागने में ही अपनी कुशल समझता है। इस प्रकार राज्य के एक और दावेदार से चाणक्य को छुटकारा मिल जाता है। साथ ही विरोधियों में मलयकेतु के प्रमुख स्थान पर आ जाने से राक्षस का स्थान गौण हो जाता है और चाणक्य के लिये दो विरोधियों को लड़ाकर सफलता प्राप्त करने का रास्ता साफ हो जाता है।

चन्द्रगुप्त को मारने के लिये राक्षस जितनी भी योजनायें बनाता है चाणक्य की नीति से वे सब विपरीत पड़ती हैं और उनसे राक्षस के पक्षधर ही मारे जाते हैं। राक्षस का ध्यान केवल इस ओर लगा है कि किसी न किसी प्रकार चन्द्रगुप्त की हत्या कर दी जाय। इसी दिशा में वह प्रयत्नशील है, किन्तु चाणक्य का जागरूकता से उसके सभी प्रयत्न व्यर्थ हो नहीं होते अपितु चन्द्रगुप्त के राज्य के सभी कष्टों का शोधन होता जाता है।

दूसरी ओर चाणक्य चन्द्रगुप्त के कष्टों को शोधित करने के साथ राक्षस को फासने के चक्कर में है। उसे गुप्तचर से पता चल जाता है कि राक्षस अपना परिवार चन्दनदास के यहाँ छोड़ गया है। अतः चन्दनदास को सपरिवार बन्दी बना लिया जाता है। इसी बीच राक्षस की मुद्रा (साल) भी चाणक्य के हाथ लग जाती है। चाणक्य एक जानी पत्र तैयार करता है और राक्षस क अन्तरंग लिपिक शकटदास से उसे लिखवा लेता है साथ ही राक्षस के हस्ताक्षरों वाला मोहर भा उस पर लगा देता है। राजद्रोह के अभियोग में शकटदास को मृत्यु दण्ड देने की घोषणा की जाती है। किन्तु उसे वध्यस्थान तक ले

जाते समय चाणक्य के सकेत पर उसका गुप्तचर सिद्धार्थक शकटदास को ले भागता है। सिद्धार्थक के पास लिखाया हुआ जाली पत्र सील इत्यादि सभी उपयोगी सम्पत्ति विद्यमान है। उसके पास जेवरों की एक पेटी भी है, उस पर भी राक्षस के नाम की सील लगी है। उस पेटी में पर्वतक के आभूषण हैं जो चाणक्य के शिष्यों को दान में मिले थे।

शकटदास के मृत्युदण्ड की सूचना से राक्षस अत्यन्त दुःखित है। उसी समय सिद्धार्थक शकटदास को लेकर राक्षस के पास पहुँच जाता है। राक्षस प्रसन्न होकर अपने शरीर का आभूषण उतार कर सिद्धार्थक को पुरस्कार में दे देता है। यह आभूषण उसे मलयकेतु से मिला था। सिद्धार्थक अगुठी दे देता है जो राक्षस की पुरानी सील है। राक्षस अपनी सील प्राप्त कर प्रसन्न होता है और पुनः उसी को कार्यान्वित कर देता है। शकटदास पुनः राक्षस के लिपिक का काम करने लगता है और पुरानी सील भी काम में लाई जाने लगती है।

एक साधारण सी बात को लेकर योजनानुसार चाणक्य और चन्द्रगुप्त में बनावटी कलह हो जाता है और चन्द्रगुप्त चाणक्य को मन्त्री पद से हटा देता है। अवसर पाकर विना आज्ञा पत्र लिये सिद्धार्थक सेना कैम्प से निकलने का प्रयत्न करता है और पकड़ा जाता है। उसके पास से चाणक्य द्वारा तैयार किया गया पत्र मिल जाता है जिससे सिद्ध हो जाता है कि राक्षस धीरे धीरे चन्द्रगुप्त से भेल बढ़ा रहा है और मलयकेतु की धोखा देना चाहता है। पत्र शकटदास का लिखा है और राक्षस की सील उस पर लगी है। सिद्धार्थक के पास राक्षस का दिया आभूषण भी है जिसे वह चन्द्रगुप्त के लिये राक्षस की भेंट बतलाना है। सिद्धार्थक अपने बयानों से इसकी पुष्टि कर देता है। फलतः मलयकेतु राक्षस की मन्त्रित्व पद से हटा देता है। उस पत्र में कुछ ऐसे वाक्य लिखे हैं जिनसे सिद्ध हो जाता है कि मलयकेतु के प्रतिकूल परिचय से आये हुये सभी राजा राक्षस के सहयोगी हैं, और उनका समझौता चन्द्रगुप्त से हो रहा है। अतः मलयकेतु अपने सभी सहयोगियों को मृत्यु के मुख में ढकेल देता है। एक ही झटके में चाणक्य के सभी विरोधी मृत्यु के घाट उतार दिये जाते हैं। मलयकेतु के सभी सहयोगी जो उसे घेरे हुये हैं चाणक्य के गुप्तचर हैं। वे अवसर पाकर मलयकेतु को बन्दी बना लेते हैं।

राक्षस दुःखी होकर कुसुमपुर आता है जहाँ उसके मित्र एवं परिवार के सरभक्क चन्दनदास को फाँसी दी जाने वाली है। चाणक्य सामने आता है और प्रस्ताव रखता है कि वह या तो चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार कर ले और सबको छोड़ने की आज्ञा दे या उसके सामने उसके सभी मित्रों की मृत्यु दण्ड दिया जायेगा। राक्षस मन्त्री बन जाता है और चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी हो जाती है।

कार्यव्यापार की आघोषानुष्ठान व्यवस्था, विरिष्टपदरचना राक्षसपक्षा, सुस्पष्टता, प्रमादगुणपूर्ण भाषा अन्तर्वाहों की स्वाभाविक नियोजना, चरित्रचित्रण की सत्यता और उदात्तता वगैरह की अतिशायी बलाकार का महत्त्व देने के लिये पर्याप्त है।

इस नाटक की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें कार्यान्विति का ठीक रूप में निर्वाह किया गया है। समस्त कथानक एक सूत्र में बधा है। जिसमें कालसकलन, स्थलसकलन और कार्य सकलन में कोई अन्तर नहीं पड़ता, साथ ही शास्त्रीय मान्यताओं का भी यथोचित सन्निवेश किया गया है। सारा कथानक एक इकाई के रूप में सामने आता है और परिशोधक की बुद्धि का कहीं व्यवच्छेद नहीं होता।

इस नाटक पर अनेक टीकायें और अनेक भाषान्तर प्रकाशित हुये हैं। इस नाटक पर लिखे गये साहित्य के अन्तर्गत कतिपय कृतियों का नामोल्लेख पर्याप्त होगा—

हिल ब्राण्ड (ब्रेस्ला) ने इसका प्रकाशन कराया। छोन कोनो की इसकी समीक्षा प्रकाशित हुई (इण्डियन एण्टीकैरी XLIII ६४), लक्ष्मण के पुत्र दुदिराज की टीका बम्बई से प्रकाशित हुई जिसकी भूमिका में कथानक और समवर्ती विवरण दिये गये थे। विल्सन द्वारा अंग्रेजी अनुवाद (थियेटर II पृ १२५-२५४) काले द्वारा बम्बई से प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद। अन्य भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुये हैं।

टीका ग्रन्थ—स्वामी शास्त्री की टीका (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास का विवरणात्मक सूची पत्र XXI ८४६४), टी तर्क वाचस्पति की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित) महेश्वर, वटेश्वर, केशव उपाध्याय और अभिराम की टीकायें (कैटेलागस कैटेलागोम I ४६१, II १०६ और २१८, III ९९) प्रहेश्वर की टीका (मद्रास का विवरणात्मक सूची पत्र XXI ८४७२) विद्या सागर की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), शरभभूष की टीका (तत्तलूर पुस्तकालय VIII ३४७४), अनन्तपण्डित लिखित गद्य में कथानक (कैटे १४६१) रविकर्तन लिखित पद्यात्मक कथासार (कलकत्ता से प्रकाशित), मिथिला के गौरीपति मिश्र के पुत्र वटेश्वर मिश्र की टीका (कैटेलागस कैटेलागोम में संकलित II १६०, २१८) एवं कई अन्य टीकायें, समीक्षाएँ परिचय एवं परिचयात्मक विवरण।

मुद्रासुवेद—(नाकृ) यह एक प्रकरण है जिसका उल्लेख शङ्कर प्रकाश में किया गया है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

मुद्रितकुमुदचन्द्र—(नाकृ) यशहन्द्र (दे) का लिखा नाटक। इस नाटक में श्वेताम्बा जैन देवसूरी के साथ दिगम्बर कुमुदचन्द्र का शास्त्रार्थ होता है जिसमें दिगम्बर की पराजय होती है। दिगम्बर कुमुदचन्द्र के पराजित होने के कारण ही इस नाटक का नाम मुद्रित कुमुदचन्द्र पड़ा है। यह शास्त्रार्थ ११२४ में हुआ था। इसका प्रकाशन बनारस से हुआ। कृष्णमाचार्य ने इस कृति का नाम मुद्रितकुमुदचन्द्र लिखा है और इसका प्रकाशन भावनगर से बनलाया है। लेखक दोनों में एक ही यशश्चन्द्र ही बतालाये गये हैं। या तो यह छापे की भूल है या लेखक प्रमाद है अथवा दिगम्बर सम्प्रदाय वालों ने कुछ हेर फेर के साथ उसी कृति को भावनगर से प्रकाशित करा दिया जिसमें दिगम्बर सम्प्रदाय वालों को विजेता दिखलाया गया। यह रचना ११वीं १२वीं शताब्दी की है। अतः इस प्रकार का पाठ भेद सम्भव ही है।

मुनित्रय विजय- (नाक) यह रामानुजाचार्य (दे) हो लिखित वीथी है। यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है।

मुरला- (नापा) उत्तररामचरित के मुरला नदी का मानवीकृत रूप। इसका तमसा के साथ सवाद होता है जिससे इस बात की सूचना दी जाती है कि यदि गंगा आश्रय न देती तो परित्यक्ता सीता आत्महत्या कर लेती। उन्हीं से यह भी ज्ञात होता है कि गङ्गा ने सीता की रक्षा तो की ही दुस्वस्था में उत्पन्न दो पुत्रों की शिक्षा के लिये वाल्मीकि आश्रम में भेज दिया। वही दोनों बालकों की शिक्षा चला रही है।

मुरारि- (नाका) अनर्घराघव (दे) के प्रणेता। इनके समय के विषय में विद्वानों के में पर्याप्त मतभेद है। रत्नाकर के हर्षविजय (कव्य) के एक पद्य की दूर्यर्थकता के आधार पर इन्हें रत्नाकर का पूर्ववर्ती माना गया है। अतः इनका समय ९वीं शताब्दी का मध्य भाग ठहरता है। भट्टनाथ स्वामी ने इनका समय १०५० से ११३५ के मध्य माना है। दुर्गा प्रसाद इन्हें ९वीं शताब्दी के मध्य में वर्तमान मानते हैं। मल्ल और हय्यक को इनका ज्ञान था। विंटरनिट्ज ने इनका समय ९वीं शताब्दी का अन्त और १०वीं शताब्दी का प्रारम्भ मानना अधिक उचित ठहराया है। माहिम्नती के वर्णन के कारण कुछ लोगों ने इन्हें ८वीं शताब्दी के अन्त का कवि माना है।

इनके पिता का नाम वर्धमान भट्ट और माता का नाम हनुमती था। ये स्वयं को महाकवि एवं बाल वाल्मीकि बतलाते हैं। इनका अनर्घराघव नामक केवल एक नाटक उपलब्ध होता है।

पारचात्य विद्वानों ने इनका ठीक रूप से मूल्याङ्कन नहीं कर पाया है। और वे इनको सर्वथा महत्वहीन मानते हैं। परन्तु भारतीय विद्वानों की दृष्टि में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। पारचात्य विद्वानों के मन में उज्ज्वलाकार होने के लिये विचारों की शुद्धता, भावनाओं की कोमलता और कल्पना की स्पष्टता इत्यादि जो गुण अपेक्षित होते हैं वे इनमें नहीं हैं। किन्तु भारतीय विद्वान इन गुणों की अतिशयता इनमें देखते हैं। यदि ये गुण इनमें न भी माने जायें तो भी पद रचना की दिशा में इनकी अद्वितीय शक्ति इन्हें बहुत ऊँचा उठाने में सर्वथा समर्थ है। व्याकरण के दुर्बोध प्रयोगों को इन्होंने पूरी कुरालता और सफ़लता के साथ प्रमुक्त किया है। सिद्धान्त बौद्धों में अप्रसिद्ध रूपों के उदाहरण के लिये आचार्य ने इन्हीं का आश्रय लिया है। पद प्रयोग की दिशा में इन्हें भवभूति से बढ़ कर पाया गया है। इन पर सूक्तिया भी लिखी गई हैं। वतिपद्य सूक्तिया इस प्रकार हैं-

‘मुरारिपदविन्ना चेतदा माये रति कुरु।

मुरारि पद विन्नाया भवभूतेस्तु वा कया।

भवभूति परित्यज्य मुरारिमुरारीकुरु।’

‘भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना भया

मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मन ॥’

मुरारि विजय- (नाक) इस नाम के निम्नलिखित तीन नाटक प्रकाश में आये हैं-

(१) कृष्णकवि- (उपनाम शेष कृष्ण) का लिखा नाटक कैटेलागस कैटेलागगोरम I ४६२ और II १०६ तथा संस्कृत पाण्डुलिपियों की पेटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट (बाम्बे III २१) में इसका उल्लेख किया गया है।

(२) जीवराम याज्ञिक- ने ५ अकों के नाटक में भागवत दशमस्कन्ध में आये कृष्ण चरित का चित्रण किया है। इसकी रचना सम्भवतः सन् १५४१ (सन् १४८४) में हुई थी। संस्कृत कालेज कलकत्ता में स १४८ सन् १९०३ में इसे प्राप्त किया जा सकता है।

(३) नृसिंह के पुत्र विष्णुरूप कृष्ण भट्ट का नाटक। बम्बई पाण्डुलिपियों की पेटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट स III २१, ३४२ में इसका उल्लेख किया गया है।

मुरेश्वर- (नापा) धूर्तनर्तक (दे) एक शैव साधु है जो एक नर्तकी पर आसक्त है। उस नर्तकी पर मुरेश्वर की अनुपस्थिति में उसके शिष्य डोरे डालते हैं और राजा से मुरेश्वर की निन्दा करते हैं। किन्तु राजा की भी पापाचार की वैसी ही प्रवृत्ति है और मुरेश्वर को नर्तकी से स्वच्छन्द विहार की आज्ञा मिल जाती है।

मुष्टपाथेयम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ५ अकों का नाटक।

मूढकौशिकम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ५ अकों का नाटक।

मूलनाशक- (नापा) धूर्तसमागम (दे) प्रहसन में नाई जो अनगसेना से अपना कर्ज बसूलने आता है और अनेक हास्यजनक चेष्टायें करता है।

मूलशकर माणिकलाल याज्ञिक- (नाका) ३१ जनवरी सन् १८८६ के दिन नडियाड में गुजरात के बडनगर में ब्राह्मण के ऐसे परिवार में इनका जन्म हुआ था जिसने गुजराती साहित्य को उच्चकोटि के विद्वान लेखक और शासन की उच्चकोटि के दीवान प्रदान किये। शिक्षा समाप्त कर ये कुछ दिनों बैंक की सेवा के बाद राजकीय संस्कृत महाविद्यालय बड़ौदा में प्रिंसिपल के पद पर आसीन हो गये। १९१६ में श्री गङ्गापोठ के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द भारती ने इन्हें श्री विद्यासम्प्रदाय की दीक्षा दी। ऐतिहासिक अनुसन्धान की दिक्षा में इन्होंने सूर्य और चन्द्रवंशों की वशावलि तैयार की, विष्णु पुराण का गद्यात्मक सारांश लिखा। विजयलहरी की रचना की। इन्होंने ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित तीन नाटकों की रचना की छत्रपतिसाम्राज्य, प्रतापविजय और सयोगिता स्वयंवर। इनके नाटकों में भाषा में स्वरमैत्री अभिव्यक्ति में चारुता दृश्यों का चयन ये सभी तत्त्व अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। चाद्य यन्त्रों पर गाने योग्य गीतों का समावेश इनके

नाटकों को स्वाभाविकता प्रदान करता है।

मृकण्डुमोदम्- (नाक) नारायण शाली (१) (दे.) लिखित ९ अंकों का नाटक।

मृगाङ्गलेखा- (नाक) त्रिमलदेव के पुत्र विश्वनाथ द्वारा लिखित चार अंकों की नाटिका। इसमें कामरूप की राजकुमारी मृगाङ्गलेखा और कलिंग के राजा कर्पूर के विवाह का चित्रण किया गया है। कर्पूर तिलक शिकार खेलने के प्रसंग में मृगाङ्गलेखा को देखता है। प्रथम दृष्टि में ही दोनों का प्रेम हो जाता है। किन्तु उनके सम्मिलन में शखपाल दानव एक विघ्न है जिसकी अलौकिक शक्तियों का रहस्य केवल कलिंगराज के मन्त्री को ज्ञात है। वह एक दयालु जादूगर सिद्ध योगिनी को महल में बुलाता है और मृगाङ्गलेखा को रानी विलासवती की सखी के रूप में महल में रख देता है। सभी प्रबन्धों के होते हुये भी शखपाल उसे भगाकर काली के मन्दिर में ले जाता है। छिन्न और उद्धिग्न राजा घूमते हुये अपने उद्यान की सीमाओं के बाहर उस स्थान पर पहुँचता है, मृगाङ्गलेखा को रक्षा करता है और दानव को मार डालता है। तब राजा उस सुन्दरी के पिता और भाई को मिलता है और विवाह के लिये रानी की सहमति प्राप्त कर लेता है। सम्कार की समाप्ति के पूर्व ही शखपाल का भाई बदसा सेने आ जाता है जो मारा जाता है। वह एक बनेले हाथी के वेश में है। राजा मुकाबला करता है और उसे मार डालता है। दोनों का विवाह सुविधा पूर्वक सम्पन्न हो जाता है।

यद्यपि इस नाटक की रचना बहुत कुछ रत्नावली के आदर्श पर हुई थी फिर भी इसमें अपना बथानक सौन्दर्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

इस नाटक का प्रथम अधिनय १८वीं शताब्दी के अन्त में विश्वेश्वर के महोत्सव में हुआ था। इसकी प्रति सस्कृत कालेज कलकत्ता पाण्डुलिपि संग्रह (स. १५२ सन् १९०३) में संकलित की गई है। इसका प्रकाशन सरस्वती भवन सीरीज बनारस से हो चुका है। विल्सन के थियेटर II ३९१ में इसका परिचय दिया गया है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १४६५ में भी किया गया है।

मृगाङ्गलेखा- (नापा) हास्मार्णव (दे.) में कुट्टिनी बन्धुरा की पुत्री। वह एक वेश्या है और सभी प्रकार के लोग उससे प्रेम करने आते हैं। सभी के बापों में हास्यसृष्टि होती है। विशेष बात यह है कि युवकों को बन्धुरा से सन्तोष करना पड़ता है जबकि बुढ़ों को युवती मृगाङ्गलेखा मिलती है।

मृगाङ्गवली- (नापा) विद्वत्शालपञ्जिका की नायिका यह साटेश्वर की पुत्री है और मृगाङ्गवर्मा के नाम से इसका पालन पोषण पुत्र रूप में किया गया है। इसके विषय में भविष्यवाणी की गई थी कि इसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा। इसीलिये उज्जैन का मन्त्री उसे उज्जैन में से आया और अनेक प्रयत्नों से राजा का उसके साथ प्रेम सम्बन्ध

स्थापित किया। रानी उसे अपना ममेरा भाई ही समझती रही। उसके अभूतपूर्व सौन्दर्य के कारण रानी को एक मजाक सूझी कि यदि इसे लडकी के कपड़े पहनाकर और राजा को इसकी ओर आकृष्ट करा कर शादी करा दी जाय तो बहुत मजा आयेगा। यह मजाक रानी के लिये भारी पड़ा और उसे एक सौत और मिल गई।

मृच्छकटिक- (नाकू) शूद्रक (दे) लिखित १० अकों का प्रकरण। सस्कृत साहित्य की रसोन्मुख परम्परा से हटकर सामाजिक चित्रण करने वाली एकमात्र नाट्यकृति जिसमें रसात्मक परम्परा का भी यथोचित पालन किया गया है। सस्कृत के अधिकांश नाटक एक बघी बघाई लोक पर चलने के आदी हैं जिनमें बड़े लोगों और विशेष रूप से राजघरानों का चित्रण किया जाता है। इस नाटक में उक्त परम्परा से भिन्न सामान्य जन जीवन का उपादान है जिसमें चोर, जुआरी, गणिका, पुलिस, न्यायालय, धार्मिक व्यक्ति राजा इत्यादि समाज के अनेक वर्गों का चित्रण किया गया है।

कवि ने भास (दे) की वसन्तसेना और चारुदत्त की प्रणय कथा में तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक परिवेश जोड़कर एक महत्वपूर्ण प्रकरण की रचना कर दी है। इस नाटक के प्रथम चार अंक तो भास के चारुदत्त (दे) का उल्था मात्र हैं, केवल दो एक नामों में परिवर्तन किया गया है जैसे चारुदत्त का सज्जलक शार्विलक हो गया है।

नाटक का प्रारम्भिक भाग चारुदत्त के कथानक को लेकर चलता है। प्रारम्भिक कथा भाग के लिये देखिये 'चारुदत्त (नाकू)'। अप्रिम कथानक इस प्रकार है— वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुचकर रात वही बिताती है क्योंकि वर्षा के कारण वह लौट नहीं पाती। दूसरे दिन चारुदत्त का पुत्र दासी की दी हुई मिट्टी की गाड़ी से खेलना नहीं चाहता क्योंकि वह पड़ोसी लड़के की सोने की गाड़ी से खेल चुका है और सोने की गाड़ी की भाग कर रहा है। वसन्तसेना उसे गाड़ी बनवाने के लिये अपने जेवर उतार कर दे देती है। इसी आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है।

चारुदत्त ने सैर के लिये एक गाड़ी, (प्रवहण) तैयार कराई है जिस पर वसन्तसेना को जाना है। दूसरी ओर सस्थानक की गाड़ी निकल रही होती है। वसन्तसेना धोखे से उसकी गाड़ी पर चढ़ जाती है। उधर शार्विलक का मित्र आर्यक जो राजा पालक के प्रविकूल सघर्ष कर रहा है शार्विलक की सहायता से जेल छोड़कर भाग निकला है चारुदत्त की गाड़ी में बैठ जाता है। राजा के अधिकारी आर्यक की खोज करते हुये उस गाड़ी को पकड़ लेते हैं। उन्हें बतलाया जाता है कि गाड़ी में वसन्तसेना है। एक अधिकारी जाच के लिये गाड़ी के अन्दर जाता है किन्तु वहा वसन्तसेना के स्थान पर आर्यक को देखता है। वह आर्यक की रक्षा करने के लिये वसन्त सेना का होना प्रमाणित कर देता है और इस प्रकार आर्यक बच जाता है।

सस्थानक की गाड़ी वसन्तसेना को लेकर उद्यान में पहुचती है। वहा शक्य वसन्तसेना को अधिकार में लेना चाहता है। किन्तु वसन्तसेना के द्वारा उसके प्रणय को अस्वीकार

कर दिया जाता है इससे रुष्ट होकर वह उसका गला दबा देता है तथा उसे मरी हुई समझकर वहां से चला जाता है। वसन्त सेना की जीवन रक्षा के लिये सबाहक आ जाता है जिसे कभी वसन्तसेना ने ऋण से मुक्ति दिलाई थी और जो अब चौद पंधु के रूप में जीवन यापन कर रहा है।

सीहत्या का अभियोग न्यायालय में जाता है जहां सस्थानक चारुदत्त को वसन्तसेना का हत्या सिद्ध करता है। चारुदत्त के प्रतिकूल सभी प्रमाण मिल जाते हैं और उसे न्यायालय मृत्यु दण्ड देने का आदेश दे देता है। किन्तु मृत्युदण्ड दिये जाने के पहले ही वसन्तसेना आ जाती है और चारुदत्त को निरपराध सिद्ध कर उसे छुड़ा लेती है। इसी समय घोषणा की जाती है कि आर्यक का विद्रोह सफल हो गया है और पालक को गद्दी से उतार कर वह स्वयं राजा बन बैठा है। वह वसन्त सेना को वधूत्व प्रदान करता है तथा चारुदत्त के साथ उसका विवाह हो जाता है। चारुदत्त सस्थानक को भी माफ कर देता है सबाहक विहारों का कुलपति बना दिया जाता है।

इस नाटक का यूरोप में विशेष सम्मान हुआ है। इसके सभी पात्र जीवनी शक्ति लिये हुये हैं। हास्य का प्रयोग व्यञ्जक भी है और वाक्चातुर्य पूर्ण भी। चित्रण की प्रधानता होते हुये भी रस निष्पत्ति की दिशा में कोई कमी नहीं रह गई है। सभी पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रणय कथा के साथ राजनीति और समाज का इसमें आश्चर्यजनक मिश्रण है। चरित्र चित्रण का निपुण गुम्फन कथानक की स्पष्टता और सादगी तथा मध्यवर्ग की जीवन पद्धति का मनोरम रेखाङ्कन इस नाटक की अनन्य विशेषतायें हैं। हम इस नाटक के माध्यम से प्राचीन भारत के मध्यवर्गीय जीवन की स्पष्ट झांकी देख सकते हैं। कवि ने धारी जैसे दुष्कर्म को वैज्ञानिक और नियमबद्ध व्यवसाय कह कर हास्य की उत्तम सृष्टि की है। वेश्या वसन्तसेना के भवन का उच्चकोटि का वर्णन कर कवि ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि उस समय सम्पन्नता का मानदण्ड क्या माना जाता था।

इस नाटक के विषय में विल्सन की टिप्पणी इस प्रकार है- अनेक दृष्टियों से संस्कृत नाटकों में मृच्छकटिक सर्वाधिक मानव परक नाटक है। चरित्रों का निपुणता पूर्ण चित्रण नाटक में आय हुये अधिसाध्य पात्रों के जीवन और उनकी शक्ति तथा स्वयं नाटक की ही सौधी सादी एवं साफ सुथरी अभिव्यक्तियां इन सब दृष्टियों से नाटक में सेक्सपियर के नाटकों जैसी प्रतीति होने लगती है। १० अंकों के प्रकरण में मध्यवर्गीय जीवन और दृश्य उज्जैन नगर में प्रस्तुत किये गये हैं। इनका विषय प्रेम और विवाह विषयक कथानक है जिसमें अपनी उदारता के कारण दौड़ता तक पहुंचाये गये ब्राह्मण व्यापारी चारुदत्त का वसन्तसेना नामक एक वेश्या के साथ विवाह दिखलाया गया है। नाट्य अंक में जकब लगाने का लम्बा हास्यजनक चित्रण आता है जिसमें चोरी को एक चला या विज्ञान का राजा दिया गया है जिसके नियम और कानून बने हुए हैं। नाटकीय अभिरुचि व अतिरिक्त इसका मुख्य इम बात में है कि इसमें प्राचीन भारतीय दैनिक

जीवन के स्पष्ट चित्र बहुत ही रुचिकर रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। चतुर्थ अंक में नायिका के भवन का वैसा विस्तृत वर्णन किया गया है उससे हमें ज्ञात होता है कि उन दिनों विलासमय जीवन के क्या मानदण्ड थे। छठे अंक में चारुदत्त के पुत्र की खेल के लिये सोने की गाड़ी बनवाने के लिये नायिका द्वारा जेवर दिया जाने की घटना से नाटक का नामकरण हुआ है। यही घटना बाद में अदालत में प्रमाण का काम देती है। यह घटना कथानक को उलझा देती है और तब तक प्रभावशाली बनी रहती है जब तक पूर्व निर्णय को निरस्त करने का निर्णय नहीं कर लिया जाता।

इस नाटक पर अनेक टीकायें लिखी गईं जिनमें प्रमुख हैं- गणपति की टीका (कैरेलागस १४६५), पृथ्वीधर की टीका (बम्बई से प्रकाशित), राममयशर्मा की टीका (मजूमदार द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित), लल्लादीधित की टीका (एमवी गोडवोले द्वारा बम्बई से प्रकाशित), श्रीनिवासाचार्य की टीका (मद्रास से प्रकाशित), घटानन्द की टीका (१८१४ में लिखी गई मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूची XXI ८४७५)

इस नाटक का A W Rider द्वारा अंग्रेजी गद्य और पद्य में अनुवाद प्रकाशित किया गया। विल्सन के थियेटर १९८२ में इसका विवरण दिया गया। आंशिक रूप में इसका परिचय केवी पार्व द्वारा भी प्रस्तुत किया गया जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। अन्य यूरोपिय भाषाओं में जो अनुवाद और विवरण प्रस्तुत किये गये उनका परिचय स्किलर की बिब्लियोथेका में ८७ सख्या पर दिया गया है।

मेखला- (नापा) विद्वत्शालभञ्जिका में रानी की दासी जिसने विदूषक से डमरूक के विवाह की योजना के हसी मजाक में बह चढ़कर भाग लिया। जिसका बदला विदूषक ने मन्दिर में कल्पित आकाशवाणी के द्वारा ले लिया।

मेघदूत नाटकम्- (नाकृ) नित्यानन्द लिखित ५ अंकों का नाटक। गीतात्मकता, एकोक्ति एवं छाया तत्व का प्रयोग इसकी विशेषतायें हैं। इसमें मेघदूत की वस्तु की अभिनयरूपता प्रदान की गई है।

मेघदोत्यम्- (नाकृ) यह बरिन्द्र कुमार भट्टाचार्य का लिखित नाटक है।

मेघनाद- (नापा) रामायण का एक महत्वपूर्ण पात्र। यह रावण का पुत्र है, रावण की सेना का सर्वाधिक शक्तिशाली योद्धा है। इन्द्र पर विजय प्राप्त करने के कारण इसे इन्द्रजित् कहा जाता है। इसने राम रावण युद्ध में रावण को ओर से सबसे अधिक प्रशसनीय योगदान दिया था। अन्त में यह लक्ष्मण के हाथों मारा गया। राम विषयक नाटकों में अनेकश इसका उल्लेख किया गया है-

(१) महावीरचरित में लक्ष्मण द्वारा मेघनाद वध की बात कही गई है।

(२) अनुरागचरित में नेपथ्य से ही सूचना दी जाती है कि मेघनाद ने युद्ध के लिये

प्रस्थान किया है और उसके बध की सूचना भी नेपथ्य से ही दी जाती है।

(२) प्रमत्ताग्रव में उसके युद्ध में आने और मारे जाने की सूचना दी गई है।

मेघप्रभाचार्य- (नाका) धर्माभ्युदय (दे) नामक छाया नाटक के लेखक। इनके समय और व्यक्तित्व का कुछ पता नहीं है। इनका लिखा धर्माभ्युदय ही एक ऐसा नाटक है जिसको असन्दिग्ध रूप में छाया नाटक कहा जा सकता है। यह नाटक भी स्वयं को छाया नाटक प्रबन्ध कहता है और इसमें रामश्मदीय निर्देश में यवनिका के अन्दर पुत्रिका (पुतली) रख देने का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। कहा नहीं जा सकता यह पहला छाया नाटक है या इसके पहले भी कोई छाया नाटक लिखा गया था। यह भी निश्चित नहीं है कि छाया नाटक के रूप में कुछ विद्वानों द्वारा स्वीकृत दूताङ्गद (दे) क्या इसके पहले की रचना है। इस नाटक को छाया नाटक विधा के प्रवर्तन का श्रेय दिया जा सकता है या नहीं इस विषय में कुछ भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। इसे छाया नाट्यप्रबन्ध की भी सज़ा दी जाती है।

मेघमेदुरमेदनीयम्- (नाक) डा रमा चौधरी लिखित ९ दूरियों का नाटक। इसमें मेघदूत के पूर्वपर प्रसंगों का काल्पनिक चित्रण किया गया है। यक्षकन्या कमलकलिका को अरुणकिरण नदी में डूबने से बचाता है। दोनों का प्रेम हो जाता है और कलमकलिका कुचेर के निकटवर्ती प्रचण्डप्रताप को दुकरा कर अपने त्राता के साथ विवाह बन्धन में बध जाती है। कुचेर उसके पति को कमलवनरक्षण में त्रुटि के अपराध में निर्वासित कर देते हैं। यही मेघदूत का मूल है, १ वर्ष का निर्वासन समाप्त करने के बाद सम्मिलित होता है। इसका अभिनय कालिदास समारोह में किया गया था।

मेघविजय गणि- (नाका) युक्तिप्रबोध नामक नाटक के लेखक। ये कृपाविजय के शिष्य थे और हरिविजय की ५वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुये थे। व्याकरण गणित, तर्कशास्त्र पर इनका पूरा अधिकार था। इन विषयों में इनकी रचनाएँ अत्यन्त गौरव के साथ पढ़ी जाती हैं। कविता के विषय में इनकी प्रवीणता का पता इसी से चलता है कि इन्होंने सप्तसम्भान नामक काव्य में श्लेष के माध्यम से सात बधायें एक साथ बही हैं। इन्होंने शनिनाथगीति और देवान्दाभ्युदय काव्यों में नैषध और शिशुपाल बध की पवित्रता लेकर पद्यों की पूर्ति अत्यन्त निपुणता के साथ की है। इनकी भाषा प्रसादगुण पूर्ण एवं प्रवाहमयी है साथ ही श्लेषगर्भित भाषा का प्रयोग कर एवं सात बधाओं को एक साथ बहकर संस्कृत भाषा का शक्ति का परिचय दिया है। इनके अन्य दो महत्वपूर्ण काव्य हैं- मघदूतसमम्यालेख एवं दिग्विजय महाकाव्य।

मेघेश्वर- (नाक) हस्तिमत्त्व का लिखा नाटक। इसका उल्लेख पाण्डुलिपि पुस्तकालय मद्रास के II ३२६ सख्या पर पाया जाता है।

मेघावत शास्त्री- (नाका) गुजराती परिवार में २०वीं सताब्दी के अन्तिम चरण

में इनका जन्म हुआ था। इनकी शिक्षा आर्य समाजी वातावरण में हुई। कई विद्यालयों में इन्होंने अध्यापक एवं अध्यक्ष का कार्य किया जिनमें अधिकांश आर्यसमाजी विद्यालय ही थे। इनकी रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें अधिकांश पुस्तकें आर्य समाज के प्रचार के मन्तव्य से ही लिखी गई थीं। काव्यात्मक कृतियों में महाकाव्य खण्डकाव्य स्फुटकाव्य, स्तोत्र, गद्यकाव्य इत्यादि अनेक काव्यरूप सम्मिलित हैं। इनका लिखा प्रकृतिसौन्दर्य (दे) नामक नाटक भी प्रकाश में आया है।

मेनकानहुष- (नाकू) यह नौ अकों का त्रोटक है। इसका उल्लेख शारदातनय के भावप्रकाशन में किया गया है। यह कृति अब उपलब्ध नहीं होती।

मेनकाहित- (नाकू) यह रासक उपरूपक का उदाहरण है। साहित्यदर्पण में उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। अब यह प्राप्त नहीं होता।

मेननतीर्थ- (नाकू) यतीन्द्र विमल चौधरी (दे) लिखित नाटक।

मैत्रेय- (नापा) मृच्छकटिक में विदूषक। उसके चरित्र में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो अन्य विदूषकों में नहीं पाई जाती। सामान्य रूप से तो वह एक पेदू ब्राह्मण ही है और हसी मसखरी के द्वारा नाटक में मनोरंजन का सञ्चार करता है। किन्तु साथ ही वह कर्तव्य परायण व्यक्ति भी है। चारुदत्त की सम्पन्नता के दिनों में उसने सुख भोगा ही था किन्तु जब चारुदत्त दरिद्र हो जाता है तब भी वह उसका साथ नहीं छोड़ता। इधर उधर कुछ खा पी लेता है किन्तु निरन्तर चारुदत्त का साथ देता है। चारुदत्त उसे सर्वकालमित्र कहता है। वह विवेकशील भी है और चारुदत्त को सर्वदा लोक व्यवहार के अनुसार उचित ही राय देता है। आभूषणों की चोरी के बाद उसकी राय नहीं है कि इतनी कीमती रत्नमाला यों ही थोड़े से आभूषणों के एवज में दे दी जाय। वह सर्वदा चारुदत्त की हितकामना में ही लगा रहता है, कभी भी उसकी हानि देखना नहीं चाहता। वह एक डरने वाला ब्राह्मण है जो अंधेरी रात में कहीं जाने से घबराता है। किन्तु उचित अवसर पर उसे क्रोध भी आता है। शकार द्वारा झूठा मुकदमा चलाये जाने पर वह उसमें लड़ पड़ता है। चारुदत्त को मृत्युदण्ड का राजकीय निर्णय सुनाये जाने के बाद वह पहले ही प्राणोत्सर्ग के लिये तैयार हो जाता है। वह अपने व्यवहार के कारण चारुदत्त का परिवारी जैसा बन गया है। उसके चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

मैथिली कल्याणम्- (नाकू) दे मैथिली परिणय।

मैथिलीनाटक- (नाकू) एक जैन लेखक द्वारा लिखित नाटक। लीविस राइस द्वारा सम्पादित एव मैसूर और कुर्ग की पाण्डुलिपि सूची में स ०३०४ पर उल्लिखित।

मैथिलीपरिणय- (नाकू) यह हस्तिमल्ल (दे) का लिखा ५ अकों का नाटक है। इसका प्रकाशन बम्बई से हो चुका है। इसी लेखक का एक नाटक मैथिलीकल्याण नाम से भी प्रसिद्ध है। सम्भवतः ये दोनों कृतियाँ एक ही हैं एक ही कृति दो नामों से प्रसिद्ध।

है।

मैथिलीयम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित नाटक। इसमें १० अंक हैं। रामायण के कथानक को नाट्य विषय बनाया गया है। प्रसादगुण पूर्ण सरल भाषा, मनोरम चरित्र चित्रण, भावानुगत शैली और छायातत्व का समावेश इसकी अन्यतम विशेषताये हैं। इसका प्रथम अभिनय कुम्भेश्वर के वसन्तोत्सव में किया गया था। इसका प्रकाशन मैसूर और बिदम्बरम से हुआ है।

मैथिली विजयम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ८ अंकों का नाटक।

मोक्षमूलर सैटुष्यम्- (नाकू) तीन अंकों के इस नाटक के रचनाकार भवानीशकर हैं। जर्मनी के मर्कन विद्यालय और अनुसन्धानालों में मैकमूलर का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है वैदिक और नैतिक सम्बन्ध के क्षेत्र में इनका कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। वाराणसी में सम्पन्न विरवमस्कृत सम्मेलन में प्रस्तुत करने के लिये इस नाटक की रचना की गई थी। इसमें रामायण पर अवतारण देने वाले भारतीय विद्वानों विवेकानन्द इत्यादि के साथ मैकमूलर राजाराम इत्यादि पारचात्य विद्वान् भी आते हैं। इसका प्रकाशन १९८१ में काशीमें म हो गया है। इसका प्रसारण आकाशवाणी दिल्ली से भी हुआ था।

मोक्षोदित्य- (नाका) भीमविभ्रम व्यायोग के लेखक। य भीम क पुत्र और हरिहर के शिष्य थे। इन्होंने अपनी रचना सवत् १३८५ सन् १३२८ में की थी। उन्नी सन् की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध होनी है। इसका उल्लेख पोरबन्दर राज्य के सवत् १३२० सन् १२६३ के प्रशस्ति पत्र में किया गया है। इन्हें व्यास श्रीमोक्षोदित्य भी कहा जाता है।

मोडकवामन आवाजी- (नाका) ये १९वीं शताब्दी के महाराष्ट्रीय कवि थे। इनके लिखे उत्तरनेषधचरितम् का उल्लेख किया जाता है।

मोहम्मद द्वितीय- (नापा) गगनदास प्रताप किनाम (दे) नाटक का प्रतिद्वन्दी पात्र है। नाटक में चरित्र नायक का इनके साथ युद्ध हुआ था। यह घटना १५वीं शताब्दी के मध्य की है।

मोहराज- (नापा) यश देव के मोहराज पराजय (दे) में प्रतिनायक। जनमनावृत्ति पर इसका शासन स्थापित हो गया और इसमें इसका प्रभाव धीरे बढ गया। इसने प्राञ्जन शासक विवेक चन्द्र को निकाल बाहर किया। किन्तु अन्त में हेमचन्द्र से शक्ति प्राप्त कर विवेकचन्द्र इन्ने पराजित कर देता है और इनसे राज्य छीनकर पुन जनमनावृत्ति पर अपना शासन स्थापित कर लेता है।

मोहगजपराजय- (नाकू) यश देव (दे) लिखित ५ अंकों का प्रतीक नाटक। इसमें हेमचन्द्र के श्रयणों में चानुक्यास कुमारपाल क पत्र परिवर्तन का प्रतीक द्वारा

वर्णन किया गया है। कुमारपाल ने ब्राह्मण धर्म का परित्याग कर जैन धर्म की दीक्षा ले ली थी। इस राजा ने जीव हिंसा पर पाबन्दी लगाई थी और लावारिस सम्पत्ति के राज्याधीन करने की जो प्रथा चली आ रही थी उसे समाप्त किया। उसी घटना को लेकर इस नाटक की रचना की गई जिसमें राजा कुमारपाल, हेमचन्द्र और विदूषक को छोड़कर सभी पात्र भावनात्मक तत्वों के मानवीकृत रूप हैं।

जनमनोवृत्ति नामक एक प्रदेश है जिस पर विवेकचन्द्र का राज्य था। मोहराज ने विवेकचन्द्र से उसे छीनकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। अब जन मनोवृत्ति पूर्णरूप से मोहराज के आधीन हो गई। विवेकचन्द्र पत्नी शान्ति और पुत्री कृपासुन्दरी के साथ जैसे तैसे भाग निकला और साधु हेमचन्द्र के आश्रम में पहुँच गया। राजा कुमारपाल सयोगवश कृपासुन्दरी को देखता है और उस पर आसक्त हो जाता है। एक बार कृपासुन्दरी अपनी सखी सौम्यता से बातचीत कर रही थी कि राजा और विदूषक छिपकर उनकी बातचीत सुन लेता है और बाद में स्वयं बातचीत में शामिल हो जाता है।

रानी राज्यश्री की ओर से विघ्न उपस्थित होता है जिसमें रानी का साथ उसकी सखी रौद्रता भी देती है। रानी देवीमन्दिर में कृपासुन्दरी को त्रिरूप कर देने के लिये प्रार्थना करने जाती है। किन्तु मन्त्री पुण्यकेतु देवी की मूर्ति के पीछे एक सेविका को बैठाकर यह कहला देता है कि राजा कृपा सुन्दरी से विवाह करके ही मोहराज को जीत सकता है। रानी इसे देवी की आज्ञा समझती है और कृपासुन्दरी के साथ राजा के विवाह का प्रयत्न करती है। कृपासुन्दरी की शर्त के अनुसार राज्य से द्यूत, मासभक्षण, मद्यपान मारि (हत्या) चौर्य और पारदारिकत्व इन सात व्यसनो को निर्वासित कर देता है किन्तु वेश्याव्यसन रहने दिया जाता है। अन्त में विवेकचन्द्र को हेमचन्द्र के योग शास और कीदारागस्तुति की सहायता से मोहराज पर विजय प्राप्त हो जाती है। प्रासङ्गिक रूप में नगरश्री देशश्री को जैन धर्म स्वीकार करने के लिये समझाती है जिसमें वह सफल होती है।

सरल संस्कृत में लिखा गया यह नाटक ऐतिहासिकता से भी ओत प्रोत है। कुमारपाल ने जैनधर्म को बढावा देने के लिये जो कुछ किया उसका परिचय हमें इस नाटक में मिलता है। कृपासुन्दरी ऐतिहासिक पात्र है और कुमारपाल से उसका विवाह ११५९ में हुआ था। इस नाटक से अन्य विरोधी सम्प्रदायों का भी परिचय प्राप्त होता है। जैन धर्म में दीक्षा प्राप्त करने के अवसर का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि कुमारपाल ने अर्हत् के समक्ष कृपासुन्दरी (करुणा का मानवीकृत रूप) के साथ विवाह किया जिसमें हेमचन्द्र को पुरोहित बनाया गया है।

उस समय धारापद सम्भवतः मारवाड की राजधानी थी। वहाँ पर कुमारपाल ने महावीरविहार बनवाया था। उसमें मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा के अवसर पर अभिनय के लिये इस नाटक की रचना की गई थी। बाव्ये प्रेसोडेंसी में सन् १९८०-८१ में संस्कृत पाण्डुलिपियों

की खोज में इस नाटक की प्राप्ति हुई थी और कीलहोर्न की खोज रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है।

गायकवाह ओरियण्टल सोरीज ब्रडोदा से स ९ सन् १९१८ में इसका प्रकाशन हो गया था।

मौद्गल्यायन- (नापा) महाकवि अश्वघोष लिखित शारिपुत्र प्रकरण (दे) का एक महत्वपूर्ण पात्र। वह एक उच्चकोटि का ब्राह्मण युवक है जिसकी कुलीनता और सदाचार पर विदूषक को गर्व है। वह शारिपुत्र का मित्र है और जब शारिपुत्र उससे मिलने आता है तथा बुद्ध के पास चलने का आग्रह करता है तब विदूषक आपत्ति उठाता है कि उसका जैसा महनीय ब्राह्मण अपने से नीचे की जाति वाले बुद्ध से शिक्षा कैसे ले सकता है। जब विदूषक को शारिपुत्र उचित उत्तर दे देता है तब ये मित्र शारिपुत्र के साथ बुद्ध के पास जाते हैं। भगवान् बुद्ध उनका स्वागत करते हैं और उनके गुणों को देखकर भविष्यवाणी करते हैं कि 'मेरे सब शिष्यों में तुम अत्यन्त ज्ञानवृद्ध सिद्ध होगे और तुम लोगों की मन्त्रशक्ति अत्यन्त बड़ी चढ़ी होगी।

य

यज्ञनारायण- (नाका) रघुनाथ विलास (दे) नामक नाटक के लेखक। ये गोविन्द दीक्षित के पुत्र थे और तजौर के रघुनाथ दरवार में रहते थे। सर्वाङ्गीण प्रतिभा के धनी थे और कवि के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त हुई थी। इस नाटक के अतिरिक्त इनके कई काव्य ग्रन्थ हैं जिनमें अधिकतर रघुनाथ की प्रशस्ति गाई गई है इनका समय १७वीं शताब्दी है।

यज्ञसेन- (नापा) यह मालविकाग्निमित्र में मल्लिका का चचेरा भाई है। वह मालविका के भाई माधवसेन को बन्दी बना लेता है तब मालविका वहा से भाग निकलती है और जैसे जैसे विदिशा पहुँच जाती है। अन्त में उस पर (यज्ञसेन पर) विजय प्राप्त कर ली जाती है।

यज्ञोपवीत- (नाकृ) दे शशिकला परिणय।

यतिराजविजय- (नाकृ) दे वेदान्तविलास।

यतीन्द्रम्- (नाकृ) डा रमाचौधरी लिखित नाटक। लेखिका के पति यतीन्द्र विमल चौधरी की मृत्यु के बाद उनके जीवन पर आधारित इस नाटक की रचना १९६४ में की गई। उसी वर्ष उसका अभिनय भी उनके शिष्यों द्वारा किया गया।

यतीन्द्र मोहन चौधरी- (नाका) ये आधुनिक काल के बंगाली कवि एवं नाटककार हैं। इनके निम्न भी अनेक देशबन्धु देशप्रिय (दे) नामक नाटक का उल्लेख किया

जाता है जिसमें देशबन्धु चितरञ्जनदास का जीवनवृत्त चित्रित किया गया है।

यतीन्द्रविमल चौधरी- (नाका) बंगाल के एक उद्भट विद्वान और उच्चकोटि के ग्रन्थकार थे। इनका जन्म बंगाल (अब बंगलादेश) में रसिक चन्द्र चौधरी और नयनतारा देवी से सन् १९०८ में हुआ था। इन्होंने लन्दन से डाक्टरेट की उपाधि पाई थी। प्रेसीडेंसी कालेज में सस्कृत विभागाध्यक्ष पद पर आसीन रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में सस्कृत प्रवक्ता के रूप में कार्य किया। अनेक सस्थाओं में सक्रिय पदाधिकारी रहे। इन्स्टीट्यूट आफ ओरियण्टल लर्निंग की स्थापना की। प्राच्यवाणी नामक अप्रेजी त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन किया।

इनकी साहित्य सेवायें विस्तृत एवं बहुमुखी हैं। इन्होंने अनेक शोधकृतियां प्रदान कीं। अनेक अनुवाद प्रस्तुत किये। बंगला भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे। पाली भाषा में भी एक नाटक लिखा जो वर्मा में अभिनीत हुआ। इसके अतिरिक्त काव्य, चम्पू, नाटक इत्यादि रूप में ललितसाहित्य भी साहित्य जगत् को प्रदान किया। इनके लिखे प्रमुख नाटक हैं- महिमामयभारत, मेलनवीथं, भारतहृदयारविन्द, भास्करोदय, भारतविवेक, भारतराजेन्द्र, सुभाषसुभाषम्, रक्षक, गोराक्ष, निष्कञ्चन यशोधरम्, शक्तिसारदम्, आनन्दराध, श्रीविविष्णुप्रियम्, भक्तिविविष्णुप्रियम्, मुक्तिशारदम्, अमरमीशम्, भरतलक्ष्मी, महाप्रभुहरिदास, विमलयतीन्द्र, दीनदासरघुनाथ, धृतिसीतम् इत्यादि।

यथाभिमतम्- (नाकू) आर कृष्णामाचार्य द्वारा सेक्सपियर के नाटक 'ऐज यू लाइक इट' का सस्कृत में अनुवाद।

यदुनन्दन- (नाका) ये वासुदेव गयनी के पुत्र थे। इनका लिखा नाटक 'नाटवार्त' प्राप्त होता है। जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

यमयमी सवाद- (विसू) ऋग्वेद के दशमण्डल १०.१० में यह सवाद आया है। यह प्रजनन सबन्धी सवाद है। यमयमी भाई बहन हैं। यमी प्रणय निवेदन करती है और भाई से सहवास की प्रार्थना करती है। किन्तु यम इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते। विशेष रूप से उन्हें भय है कि गुप्तचर सर्वदा रोह लेते रहते हैं। अतः यह सम्बन्ध छिप नहीं सकेगा। वह किसी अन्य से कामशान्ति कराने कि लिये यमी को परामर्श देकर इस बात को समाप्त कर देता है। मैकडानल के अनुसार यह आदिम कालीन मानव की प्रवृत्ति मूलक परम्परा का अवशेष है। अवेस्ता में भी यिम की बहन यिमेह का इसी प्रकार वर्णन है। वहा यिम विवह्वन्त का पुत्र है जबकि वैदिक साहित्य में यम के पिता का नाम विवस्वत है। यह सादृश्य दोनों सवादों की एक रूपता तथा एक स्रोत की ओर संकेत करता है।

यमी- (नापा) ऋग्वेद के यमयमी सूक्त (दे) की सुन्दरी यम की बहन जो भाई से सहवास की प्रार्थना करती है और भाई द्वारा उसकी अभ्यर्थना को ठुकरा दिया जाता

है।

यमुना- (नास) कृष्ण के जीवन से अभिन और अविच्छेय रूप में सम्बद्ध। (१) बालचरित में जब वसुदेव उन्हें नन्द के यहाँ पहुँचाने चले तब भाद्रपद की उमड़ती नदी यमुना ने स्वयं मार्ग दे दिया। यमुना में ही कूदकर कृष्ण के कालिय दामन किया और इसी के किनारे सभी प्रकार की क्रोडायेँ चलती रहीं।

(२) प्रसन्नराधव- में सुग्रीव यमुना का भाई है और जब बालि उसका दमन करता है तब वह गंगा से बालि की शिकायत करने आती है।

(१) ययातिचरित- (नाक) यह ७ अकों का रुद्रदेव लिखित एक नाटक है जिसमें ययाति की शर्मिष्ठा के साथ प्रेम लीला का चित्रण किया गया है। शर्मिष्ठा दैत्यराज की पुत्री थी और दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी थी। इन दोनों कन्याओं में एक घटना को लेकर विवाद हो गया था जिससे देवयानी के पिता शुक्राचार्य भी रुठ हो गये थे। अतः दैत्यराज ने देवयानी की यह भाग स्वीकार कर ली कि शर्मिष्ठा उसकी दासी बनकर रहेगी। देवयानी का विवाह ययाति के साथ हुआ था विवाह के समय शुक्राचार्य ने ययाति से वचन ले लिया था कि वह कभी भी शर्मिष्ठा का साथ नहीं करेगा। कुछ समय बाद ययाति ने वचन भंग कर गुण रूप से शर्मिष्ठा से मिलना शरम्भ कर दिया। परिणामतः देवयानी के दो पुत्र हुये और शर्मिष्ठा के तीन। यह रहस्य कुछ समय तो बना रहा किन्तु जब देवयानी को पता चला तो वह क्रोध में भर गई और शुक्राचार्य को भी राजा की वार्ताखिलाफी पर क्रोध आ गया। शुक्राचार्य ने ययाति को वृद्ध होने का शाप दे दिया। धर्मा प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने शाप को नियन्त्रित कर दिया कि यदि कोई पुत्र उन्हें अपनी जवानी दे देगा तो वे फिर जवान हो जायेंगे। ययाति ने सभी पुत्रों से याचना की किन्तु पुरु के अतिरिक्त अन्य कोई पुत्र अपनी जवानी पिता को देने के लिये तत्पर नहीं हुआ। पुरु से जवानी लेकर ययाति ने लम्बे समय तक यौवन का उपभोग किया। अन्त में भोगों की असरता समझ ली और पुत्र को उसका यौवन तो लौटा ही दिया पुरस्कार में सात राज्य भी उसे ही सौंपकर वन में तपस्या करने के लिये प्रस्थान किया। देवयानी के दो पुत्रों युदु और तुर्वसु से क्रमशः यादव और यवन वंश चले। शर्मिष्ठा के तीन पुत्रों द्रुह्य, अनु और पुरु से क्रमशः भोज म्लेच्छ और पौरव वंश प्रचलित हुये। महत्त्वशाली केवल पौरववंश ही था जिसमें शकुन्तला के पति दुष्यन्त और कौरव पाण्डवों का वंश चला महाभारत की इसी कथा को लेकर नाटक रचना की गई है।

साहित्यदर्पण में जिस शर्मिष्ठा-ययाति का उल्लेख किया गया है वह सम्भवतः यही रचना है। इसका उल्लेख कैटेलगस कैटेलगोतम १७१ पर किया गया है। विल्सन के थियेटर में ॥ ३८८ पर इसका विवरण प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत पाण्डुलिपियों के मित्राक्षरा प्रस्तुत नोटिसेज में इसका परिचय दिया गया है।

(२) ययातिचरित- (नाक) त्रिवेन्द्रम् के मय्यान रामाय का ययाति कथा (दे) (१)

ययातिचरित को लेकर लिखा गया नाटक। इसकी प्रति मैसूर के पुस्तकालय में स २८१ पर सुरक्षित है।

ययाति तरुणानन्द- (नाकू) बधूलगोत्रीय वल्लीसहाय (दे) लिखित यह नाटक ययाति की प्रेम कथा के विषय में है जिसमें शुक्राचार्य के शाप से पौरुष खो देने और पुत्र से पुनः जवानी प्राप्त करने की महाभारत की कथा वस्तु के रूप में उपादान किया गया है। (शर्मिष्ठा ययाति की कथा के लिये देखिये (१) ययातिचरित) इस नाटक का अभिनय विरश्चिपुरम् में मार्गसहाय देव की व्रातनिक पूजा के अवसर पर किया था। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की पाण्डुलिपि में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग स XXI ८४७७ पर किया गया है।

ययाति देवयानी चरित- (नाकू) इस नाटक के लेखक का ठीक रूप में पता नहीं चलता। यह वल्लीसहाय कवि का लिखा प्रतीत होता है। क्योंकि महाभारत के कथानक के उत्तर भाग पर ययातितरुणानन्द (दे) एक पृथक् नाटक इनके नाम पर प्राप्त होता है जिसका यह पूर्व भाग है। इस नाटक की रचना कुछ गीतों को लेकर हुई है। इसका विभाजन अकों में नहीं है इसका परिचय मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग स XXI ८४७९ पर दिया गया है।

ययाति विजय- (नाकू) इसका उल्लेख साहित्यदर्पण में किया गया है। इसके लेखक इत्यादि के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

ययातिविजयम्- (नाकू) मय्यानरामाय (दे) लिखित नाटक।

ययाति विषयक नाटक- (नास) राजा ययाति की एक अत्यन्त प्रसिद्ध कथा महाभारत में आई है (संक्षिप्त कथानक के लिये देखिये (१) ययातिचरित) इस कथानक को लेकर अनेक नाट्यरचनायें प्रकाश में आई हैं। नाटककारों में यह कथा अत्यन्त प्रसिद्ध रही है। इस कथानक को लेकर लिखी गई कतिपय रचनायें ये हैं— रुद्रदेव का ययातिचरित, वल्लीसहाय का ययातितरुणानन्द, ययातिदेवयानीचरित, शर्मिष्ठा ययाति, ययातिविजय, भागवतकृष्ण कवि का शर्मिष्ठा ययाति, नरायण शास्त्री का शर्मिष्ठाविजयम्, मय्यानरामाय का ययातिविजय।

यशश्चन्द्र- (नाका) मुद्रित कुमुदचन्द्र (दे) के लेखक। ये ११वीं १२वीं शताब्दी के कवि हैं। ये घर्कटवश में उत्पन्न हुये थे तथा घनदेव के पौत्र एवं पद्मचन्द्र के पुत्र थे। सम्भवतः सपादलक्ष में किसी शाकम्भरी राजा के मन्त्री थे।

यशपाल- (नाका) दे यशोदेव।

यशोदा- (नापा) बालचरित में नन्द की पत्नी एवं कृष्ण की पालक माता। उसने मृतवाल्मीकि की जन्म दिया है। प्रसववेदना से उसे मूर्छा आ गई जिससे वह यह नहीं जान भग्न कि प्रसूत बच्चा बालिक है या बालक। वह कृष्ण की पालन पोषण करने

चाली माता है और कृष्ण का बाल जीवन उसी के सरक्षण में व्यतीत हुआ है।

यशोदेव- (नाका) इनका उपनाम यशपाल भी है। इनके लिये कौथ ने यशदेव शब्द का ही प्रयोग किया है। एक ही नाम के अन्तर्गत सहिता नित्य होने के कारण यशोदेव रूप ही शुद्ध है। ये मोक्ष बनियाजाति के थे। इनके पिता का नाम धनदेव और माता का नाम रुक्मिणी था। उनके आश्रयदाता कुमारपाल एव अभयदेव या अभयपाल थे जिसका शासनकाल कुमारपाल के बाद १२२९ से १२३२ ई तक रहा। इन्होंने कुमारपाल द्वारा जैनधर्म स्वीकार करने को अपने प्रतीक रूपक का विषय बनाया। कुमारपाल द्वारा धारापट्ट में बनवाये गये जैन मन्दिर में प्राण प्रतिष्ठा के अवसर पर खेलने के लिये मोहराजपराज्य को रचना की थी। कौथ ने अनुमान लगया है कि सम्भवतः ये धारापट्ट के निवासी थे या इन्हें धारापट्ट में शासन का भार सौंपा गया था। ये उन प्रख्यात विद्वानों में एक थे जिन्हें पाटन में शान्तिनाथ के मन्दिर में मुनिरत्न के अमामस्वामिचरित के प्रथमवाचन को श्रवण कहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

यशोधर- (नाका) इनके लिखे धनञ्जय विजय का उल्लेख कैटलागस कैटलागोरम I २६६ में किया गया है। कामसूत्र की टीका जयमल्ला के लेखक यशोधर से सम्भवतः ये भिन्न थे।

यशोधरचरित- (नाक) १६वीं शताब्दी के वादिचन्द्र सूरि का लिखा नाटक। इसमें जैन महााज यशोधर का चरित्रचित्रण किया गया है। इस विषय में कई अन्य काव्य भी पाये जाते हैं जिनमें श्रुतसागर सूरि, सोमकीर्ति, सकलकीर्ति इन १६वीं शताब्दी के कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं। धमाकल्याण कवि १९वीं शताब्दी के हैं, उनकी भी इस विषय की रचना पाई जाती है।

यशोवर्मा- (नाका) ईसा की अष्टम शताब्दी के पूर्वार्ध में ये कन्नौज के राजा थे। महााज हर्ष देव की मृत्यु (सन् ६४७) के बाद कन्नौज की गद्दी पर राजाओं की परम्परा में यशोवर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। सन् ७३१ में इन्होंने चीन को राजदूत भेजा था। उनके नौ दस वर्ष बाद काश्मीर के सलितादित्य मुक्तापीड ने इन्हें पराजित कर अपदस्थ कर दिया था।

ये साहित्य के आश्रयदाता थे। इनके दरबार में प्रसिद्ध नाटककार भवभूति और गोडवरो के लेखक वाक्पतिराज रहते थे। इनका उल्लेख कन्हन ने भी किया है। ये स्वयं भी कवि थे और इन्होंने रामाभ्युदय (६) नाटक की रचना की थी। इनके रचे हुये पुटकर पद्य भी समस्त ग्रन्थों में पाये जाते हैं। रामाभ्युदय का उल्लेख शाहदानन्द ने किया है। उनके अनुसार इस नाटक में ६ अंक थे जिनमें समस्त रामायण कथा इतिवृत्त के रूप में स्वीकार की गई थी। भोजराज के राह्यार प्रकाश में इनका एक पद्य उद्धृत किया गया है। ठमका एक छन्द आनन्दवर्धन ने धन्यालोक में उद्धृत किया है और अभिनव गुप्त ने लिखा है कि यह छन्द यशोवर्मा के रामाभ्युदय में लिया गया है। अभिनव गुप्त का

यह कथन यशोवर्मा द्वारा यमाभ्युदय की रचना को प्रमाणित कर देता है। किन्तु यह रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। उस समय की एक परम्परा थी कि अपनी रचना का आदर्श नाटककार प्रस्तावना में व्यक्त कर दिया करते थे। भवभूति की रचनाओं में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। ज्ञात होता है कि उद्धत पद्य भी प्रस्तावना का ही है और इससे उक्त रचना का आदर्श प्रकट हो जाता है कि पञ्चानुकूल कथोपकथन का औचित्य, यथावसर रसपरिभोग, कथानक का निर्वाह, सविधानक में शब्द और अर्थ की प्रौढ़ता इस नाटक में अपनाये गये दृष्टिकोण हैं।

यादवाभ्युदय- (नाकू) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (दे) लिखित नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम III १०७ में इसका उल्लेख किया गया है।

यादवेन्द्रराय- (नाका) २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि, इनका लिखा स्वर्णप्रहसनम् नाटक उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त इनके दो खण्डकाव्य भी हैं- आरण्यकविलास और मङ्गलोत्सव।

यादवोदय- (नाकू) काव्य नामक एकाङ्की उपरूपक का उदाहरण। इसका उल्लेख साहित्य दर्पण में किया गया है। अब यह उपलब्ध नहीं होता।

यामिनीपूर्णतिलक- (नाकू) यह पेरी काशीनाथ शास्त्री (१) (दे) की कृति है। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

युक्तिप्रबोध- (नाकू) यह मेघप्रभ गणि (दे) लिखित प्रतीक नाटक है। इसका उद्देश्य जैनधर्म की दृष्टि से इतर दार्शनिक तत्वों का प्रतिषेध करना है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी में की गई थी। ऋषभदेव केसरीमल श्वेताम्बर सन्या द्वारा रत्नलाम से इसका प्रकाशन किया गया था।

युगजीवनम्- (नाकू) डा रमाचौधरी लिखित रामकृष्ण परमहंस जीवन विषयक नाटक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी। रामकृष्णमठ कलकत्ता में १९६७ में इसका प्रथम अभिनय किया गया था।

युगलाङ्गुलीयम्- (नाकू) (१) दे श्रीशैलदासचार्य। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

(२) इसी नाम का एक नाटक काशीपदार्थचार्य (दे) का लिखा भी बतलाया जाता है।

युधाजित्- (नापा) महावीरचरित में भरत के मामा। इन्होंने पाम की शीघ्र राज्य देने के लिये भरत के प्रयत्न में सहायता की थी।

युधिष्ठिर- (नापा) वेणोसहार का प्रमुख पात्र। किन्तु नाटक में उनका उपादान बहुत कम हुआ है। सन्धि का प्रस्ताव लेकर कृष्ण उन्हीं के परामर्श से हस्तिनापुर जाते हैं जो बात भीमसेन को पसन्द नहीं है। भीमसेन इस प्रस्ताव से इतना विचलित है कि

युधिष्ठिर को राजा मानने से भी इन्कार कर देते हैं। युधिष्ठिर शान्तिप्रिय व्यक्ति है, धर्मराज हैं और अनुचित कार्य को पसन्द नहीं करते। जब धृतराष्ट्र और गान्धारी युद्ध भूमि को देखने आते हैं तब उनके सामने ही भीम और दुर्योधन का विवाद छिड़ जाता है। इस अवाञ्छनीय घटना को युधिष्ठिर तो टालते हैं। वे भीम को बुला लते हैं जिससे उस समय का संघर्ष टल जाता है। वे ठहरे युद्धयज्ञ के यजमान फिर भला वे ऐसा अनुचित कार्य कैसे सहन कर सकत थे। वे भाइयों को प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। जब दुर्योधन का पक्षपाती एक राक्षस चार्वाक के वेष में छलपूर्ण सूचना देता है कि दुर्योधन के हाथों भीम का वध हो गया है तब वे प्राण त्यागने को उद्यत हो जाते हैं और जब स्कन्धाज्ञित भीमसेन द्रौपदी के केशमयमन के लिये आते हैं तब उन्हें दुर्योधन समझकर युधिष्ठिर उनसे भिड़ जाते हैं। भ्रातृप्रेम के सामने वे दुर्योधन की गदा शक्ति की भी परवा नहीं करते। यह घटना सिद्ध करती है कि वे कायर नहीं हैं और अवसर आन पर शक्ति का प्रदर्शन भी कर सकते हैं यद्यपि वे मूलरूप से शान्ति प्रिय ही हैं।

युधिष्ठिर- (नाकू) ठाकुर ओमप्रकाश शास्त्री लिखित तीन दूरियों का एक नाटक। उसमें युधिष्ठिर के छात्र जीवन के तीन प्रसंग प्रस्तुत किये गये हैं। इस नाटक को क्षमाशाली युधिष्ठिर इस नाम से भी याद किया जाना है।

युवचरितम्- (नाकू) जगू शिप्रैया लिखित नाटक इसकी रचना बीसवीं शताब्दी में की गई।

(१) युवराज- (नाका) इनको लिखी कई नाट्य कृतियां विजयापट्टम की आर्य लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती हैं जिनमें प्रमुख हैं- वसन्ताभरण अनङ्गतिलक मदनमञ्जरी रसोत्थास, और पञ्चवाणविलास।

(२) युवराज- (नाका) दे गादावर्ष युवराज।

योगन्यायण- (नापा) उदयन के मन्त्री के रूप में योगन्यायण का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। उदयन कथा को लेकर अनेक पुस्तकें लिखीं गईं जिनमें सुमधु की कामवदना सोमदेव का कथासाहित्यागर क्षेमन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी अधिक प्रसिद्ध है। योगन्यायण मन्त्री के रूप में प्रसिद्ध हैं और अनेक नाटकों में इन्हें इसी रूप में अपनाया गया है-

(१) प्रतिज्ञा योगन्यायण (२) में यह नाटक है। उज्जैन के महामन प्रद्युम्न न अपनी पुत्री कामवदना से प्रेम सम्बन्ध और विवाह का अवसर दान के लिये जब छत्र वषट्क में उदयन का बन्दो बना लिया तब योगन्यायण ने अपने स्वामी का चुड़ाने के लिये प्रतिज्ञा की और तीनों मन्त्री वष बदल कर उज्जैन में रहन चल गये। मन्त्र योगन्यायण उम्मानक का वेष बनाकर वहां पहुँच गया। जिन्नु बड़ा जाबर उस ज्ञान हुआ कि राजा कामवदना के प्रेमपारा में फँस गया है और उनके बिना निरुत्तर जाना पड़ा चारुन। तब

उसने वासवदत्ता के साथ उदयन को निकाल लेने के प्रतिज्ञा की और नलगिरि हाथी को उन्मत्त कर ऐसा वातावरण तैयार कर दिया कि राजा घोषवती वीणा और वासवदत्ता के साथ निकल भागने में सफल हो गये। किन्तु योगन्यायण गिरफ्तार कर लिये गये। प्रद्योत ने चित्रों में वासवदत्ता और उदयन का विवाह सपन्न किया तथा योगन्यायण को स्वर्णपात्र देकर ससम्मान विदा किया।

(२) स्वप्नवासवदत्तम्- मैं यह वत्सराज उदयन का मन्त्री है। किसी भविष्यवक्ता ने भविष्यवाणी की है कि उदयन पर आपत्ति आयेगी और राजा का विवाह मगध राजकुमारी पद्मावती से होगा तब मगध की सहायता से राजा विपत्ति से छुटकारा पायेंगे। सयोगवश आरुणि के नियन्त्रण में शत्रु सेना उठ खड़ी होती है और भविष्यवक्ता की पहली वाणी सही सिद्ध हो जाती है। अतः पूरी भविष्यवाणी पर विश्वास कर योगन्यायण ऐसी योजना बनाता है कि राजा का पद्मावती के साथ विवाह भी हो जाता है और विपत्ति भी टल जाती है तथा राजा पूर्ण रूप से विजयी हो जाता है। इसके लिये पहले तो वह अपने और वासवदत्ता के जल मरने की खबर उड़ाता है फिर पद्मावती की एक घोषणा का चटपट लाभ उठाकर वासवदत्ता को अपनी बहन बतलाकर पद्मावती के पास धोहर के रूप में रख देता है। पहली पत्नी के मर जाने के कारण राजा पद्मावती से विवाह कर लेता है और मगध की सहायता से उसे शत्रु पर विजय भी मिल जाती है।

योगन्यायण का सबसे बड़ा गुण है उसकी स्वामिभक्ति। वह राजा की रक्षा करने, उन्हे बन्दीभाव से छुड़ाने और उनकी विपत्तियों का निराकरण करने में निरन्तर तत्पर रहता है। वह कूट नीति में निपुण है, कार्य कुशल है समय को समझता है और जो भी अवसर के अनुकूल होता है उसे कर गुजरने में उसे जरा भी सकोच नहीं होता। वासवदत्ता के जल जाने की खबर उड़ाना कोई मामूली अपराध नहीं था। किन्तु उसके बिना न तो राजा का पद्मावती से विवाह होता, न मगध की सहायता मिलती और न राजा को विजय लाभ हो पाता। अतः एव बिना किसी प्रकार का आगा पीछा किये उसने उस कार्य को तत्काल कर उठाया। यह उसके साहस का बहुत बड़ा प्रमाण है। वह प्रभावशाली भी इतना अधिक है कि रानी भी उसके आदेश की वशवर्तिनी बन जाती है। सभी मन्त्री और राजा का पूरा अनुचर वर्ग उसके अनुशासन में बंधा हुआ है जो उसकी सफलता का एक बहुत बड़ा राज है।

(३) रत्नावली- मैं योगन्यायण स्वामिभक्त मन्त्री है। यहाँ भी वासवदत्ता के मरण की खबर उठाकर वह सिंहलेश्वर की पुत्री रत्नावली से राजा उदयन का विवाह कराना चाहता है क्योंकि उसके लिये भविष्य वाणी की गई है कि उसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा। वह प्रवहणभग में लापता राजकुमारी के लौटने पर रानी वासवदत्ता के सेवाकार्य में उसे लगा देता है और उसे सागरिका नाम दे देता है। इसके साथ ही बड़ी कुशलता से ऐन्द्रजातिक की विभीषिका उत्पन्न कर राजा का विवाह रत्नावली से करा देता है।

यहा यौगन्धरायण का चरित्र स्वप्नवासवदत्तम् में चित्रित चरित्र से बहुत मेल खाता है। यहा उसे अपनी योजना में वासवदत्ता को विश्वास में लेने और उसे घरोहर के रूप में कही निशेप में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(४) तापसवत्सराज- में यौगन्धरायण की कार्यशैली बहुत कुछ स्वप्नवासवदत्तम् की कार्यशैली से मेल खाती है यहा भी आरुणि के आक्रमण और वासवदत्ता के जल मरने की खबर उड़ाई जाती है और वासवदत्ता को पद्मावती के पास प्रेषितप्रतिका बतलाकर घरोहर के रूप में रक्खा जाता है। किन्तु अन्तर यह पड जाता है कि यौगन्धरायण पद्मावती के पास उदयन का चित्र भेजकर उसके मन में राजा के प्रति प्रेम जागृत करता है। उधर राजा वासवदत्ता के वियोग से दुखी होकर तपस्वी बन जाता है। पद्मावती भी निराश होकर तपस्विनी बन जाती है। राजा तापसवेष में राजगृह में तपस्विनी पद्मावती को देखता है और उसे ज्ञात होता है कि पद्मावती उसी के वियोग में दुखी होकर कष्टमयी साधना कर रही है तब वह सहानुभूति में उससे विवाह कर लेता है। वासवदत्ता असह्य वियोगवेदना से पीडित होकर प्रयाग में आत्मदाह करने के लिये तैयार है वही योजनानुसार रुमण्वान् विजय की खबर लाता है। राजा भी पहुच जाता है और जलती चिता को देखकर स्वयं आत्मदाह करना चाहता है। किन्तु वहा पद्मावती वासवदत्ता को पहिचान लेती है और राजा यौगन्धरायण को पहिचान लेता है। सभी लोग आनन्द में एक दूसरे से मिल जाते हैं। बर सब यौगन्धरायण की योजना का चमत्कार है।

यौवराज्यम्- (नाक) जगू वकुलभूषण (दे) लिखित एकाङ्की नाटक जिसमें भरत के यौवराज्य प्रसंग का कथन किया गया है। इसमें छोटे छोटे चंचलता पूर्ण सवादों की विशेषता है इसका प्रकाशन संस्कृत प्रतिभा में हो गया था।

२

रक्तसारसम्- (नाक) नाटायण शास्त्री (दे) लिखित ८ अंकों का नाटक।

रक्षक - (नाक) यतीन्द्रविमल चौधरी (दे) लिखित नाटक। इसमें गोरखनाथ का चरित्र चित्रित किया गया है। इस नाटक को श्रीगोरख नाम से भी याद किया जाता है।

रघुनाथ विष्णु वेलण्कर- (नाका) ये मध्यप्रदेश के निवासी थे। इनका लिखा जगन्मोहन भाग (दे) प्रकाश में आया है।

रघुनाथ- (नाका) ये तमोर के राजा थे तथा कवि और कलाकारों के आश्रयदाता होने के अतिरिक्त स्वयं भी कवि थे। नाटककार राजवृद्धामणि दीधित ने अपने नाटकों की प्रस्तावना में इनके लिखे नयाप्युदय (दे) नाटक का उल्लेख किया है। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

रघुनाथ- (नाका) प्रभावत (दे) नाटक के लेखक। ये रामानुज महादेशिक की परम्परा से संबद्ध थे, इनके पिता मैसूर निवासी शैलनाथसूरि थे। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग की ग्रन्थ सूची २७८ पर इनका उल्लेख किया गया है।

रघुनाथ विलास- (नाकू) यज्ञनारायण (दे) लिखित नाटक। इसमें ५ अंक हैं। यह तजौर के पुस्तकालय में स VIII ३४८६ पर प्राप्त किया जा सकता है। इसका प्रकाशन मद्रास से सहृदय संस्कृत जर्नल में हो चुका है। रघुनाथ १७वीं शताब्दी में तजौर के लब्धप्रतिष्ठ राजा थे जो स्वयं कवि थे और कवियों को आश्रय देते थे। नृत्य और संगीत कलाओं में भी निष्ठावान् थे और उनके नाम पर एक वीणा का भी नामकरण किया गया था। इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये थे और अनेक अपहरणों को दान दिये थे।

रघुनाथ कवि के आश्रयदाता थे और कवि को रघुनाथ से पर्याप्त पुरस्कार मिले थे। कवि ने उनकी प्रशस्ति में इस नाटक की रचना की थी। नाटक शृङ्गार प्रधान है, तीर्थयात्रा में एक मकर से रघुनाथ ने एक ब्राह्मण की रक्षा की थी। उस मकर से पेट में एक नयुनी प्राप्त हुई थी। राजा उस नयुनी से उसकी स्वामिनी को दूढ़ निकालता है जो लकाधिप विजयकेतु की पुत्री चन्द्रकला है। राजा कापालिक की प्रतिभावती से कतिपय योग सिद्ध वस्तुयें प्राप्त कर लेता है— जिनकी सहायता से वह चन्द्रकला तक पहुँच जाता है। इस समय चन्द्रकला का विवाह रघुनाथक से चल रहा था किन्तु कापालिकी के प्रभाव से रघुनाथ उसे प्राप्त कर लेता है और दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

यह ऐतिहासिक कथानक है किन्तु कल्पना से इसे अतिरञ्जित कर दिया गया है। शैली समास बहुला है और इसमें लम्बी एकोक्तियों का समावेश है। यत्र तत्र देशी शब्दों का भी समावेश किया गया है।

रघुनाथ विष्णु वेलण्कर- (नाका) ये मध्यप्रदेश के निवासी थे। इनका लिखा जगमोहन भाण (दे) प्रकाश में आया है।

रघुनाथचार्य- (नाका) ये सुभद्रापरिणय के लेखक हैं। इनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ स ७२८ पर किया गया है।

रघुवंशम्- (नाकू) जीवन्त्याय तीर्थ (दे) लिखित ६ अंकों का नाटक है। यह कालिदास के लिखे महाकाव्य रघुवंश का दृश्य रूप है। उज्जैन के कालिदास समारोह में इसका अभिनय किया गया था। प्रणवपारिजात में इसका प्रकाशन किया गया।

रघुविलास- (नाकू) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (दे) का लिखा नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम तृतीय भाग में इसका उल्लेख किया गया है।

रघुवीर चरित- (नाकू) यह सुकुमार (दे) लिखित नाटक है। ट्रावनकोर पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेलाग में इसका उल्लेख किया गया है।

रघुवीर विजय- (नाकू) यह कस्तूरी रगनाथ (दे) लिखित संभवकार है। यह

राम विषयक नाट्यकृति है जिसमें सीता स्वयंवर से लेकर कथानक प्रवृत्त हुआ है। किन्तु स्वतन्त्र कल्पनाओं के द्वारा प्रतिष्ठित वस्तु में कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं। सीताहरण स्वयंवर के अवसर पर हो होता है और बाद में अग्नि परिक्षा दिखलाई जाती है तब राम विवाह होता है। विद्युज्जिह्व राम का और शूर्पणखा सीता का रूप धारण कर आते हैं। छाया दृश्यों का समावेश किया गया है। पद्यों की अधिकता है समवकार की शास्त्रीय विधि के प्रतिकूल विष्कम्भक और प्रवेशक की योजना द्वितीय और तृतीय अंकों के साथ की गई है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है और प्रथम अभिनय शेषाद्रि महोत्सव में किया गया। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में स II २४४४ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(१) रङ्गनाथ- (नाका) ये शृङ्गार शृङ्गाक (दे) शोषक भाण के लेखक हैं। इनका उल्लेख कैटेलगस कैटेलगोम १११५८ पर किया गया है।

(२) रगनाथ- (नाका) ये श्रीनिवास के पुत्र थे। इन्होंने अनगतिरक (दे) भाण की रचना की थी जिसका उल्लेख ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुभाग में स III ८१७३ पर प्राप्य है।

(३) रगनाथ- (नाका) ये दमयन्ती कल्याण (दे) नामक ५ अंकों के नाटक के लेखक हैं जिसका अब केवल कुछ भाग प्राप्त होता है।

रगनाथ ताताचार्य- (नाका) शठमर्षण गोत्र के रघुनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म १८९४ में राम दुर्ग में हुआ था। सरस्वती महल लायब्रेरी तम्रौर के ये वरिष्ठ पण्डित थे। शुकसन्देश और हनुमत्सदाशतक के अतिरिक्त इन्होंने वाक्यार्थावली नामक एक पुस्तक संस्कृत महावर्णों पर भी लिखी थी। कतिपय गद्य ग्रन्थ भी इनकी कृतियों में सम्मिलित हैं। न्यायसभा और बुत्तिनकुसीद नाटक भी इन्होंने लिखे थे। इनकी पुस्तकें आन्य साहित्य परिपत्यत्रिका से प्रकाशित हुई हैं।

रगनाथ- (नाका) पञ्चवाणविजय (दे) के लेखक। इन्होंने रमानुजचम्पू और एक स्तोत्र की भी रचना की थी। इनके पिता का नाम भावनाचार्य था और ये वधूल गोत्र में उत्पन्न हुये थे।

रगाचार्य- (नाका) पञ्चवाण विजय (२) के लेखक जिसका उपनाम पञ्चवाण चित्तास भी है।

रङ्गिलाल- (नाका) इनका लिखा आनन्द चन्द्रोदय (दे) नाटक बड़ीदा से १९४९ में प्रकाशित हुआ था।

रजनीकान्त- (नाका) ये साहित्याचार्य की उपाधि से विभूषित थे। इनका जन्म १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था तथा ये चिन्तागढ़ बंगाल के निवासी थे। ये बागवती शताब्दी तक विद्यमान रहे। इनके लिखे दो नाटक बननाये जाते हैं- मद्रलोत्पन्नम् (दे)

और विबुधविनोद (दे) इनके अतिरिक्त इनकी रचनायें हैं- दशमहाविद्यारातकम्, चतलविलाप और सस्कृतबोधव्याकरण।

रणजम्बुक- (नापा) हास्यार्णव (दे) में भाण्ड नायक जो बन्धुरा कुट्टिनी के यहा रहता है और रगमञ्च पर आकर हास्य सृष्टि करता है। यह भी मृगाङ्गलोखा का प्रेमी है।

रणेन्द्रनाथ गुप्त- (नाका) इनका लिखा हरिरपन्द्र चरितम् (दे) शीर्षक ५ अकों का नाटक प्राप्त होता है। ये बंगाल के निवासी थे। इनका समय २०वीं शताब्दी है।

रति- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे) में कामदेव की पत्नी। कामदेव उसे अपने क्रिया कलाप को सूचनायें देता है कि उसने पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली है।

रतिमन्मथ- (नाकू) जगन्नाथ (दे) लिखित नाटक। इसमें रति और कामदेव की प्रणयलीला का नाटकीकरण किया गया है। पैलेसलायबेरी तञ्जौर के अनुभाग VIII ३४९० पर इसका उल्लेख किया गया है।

रतिविजय- (नाकू) रामस्वामी शास्त्री लिखित ५ अकों का नाटक। कुमार सम्भव की रति से प्रेरणा लेकर इस नाटक की रचना हुई है। इसमें कथानक को नया रूप और नई दृष्टि प्रदान की गई है। इसका लक्ष्य यह दिखलाना है कि धर्म और भगवान के प्रति सच्चाई में प्रेम के नये स्वरूप का आविर्भाव होता है जैसा कि गीता में कहा गया है- 'धर्माविरुद्ध काम वस्तुतः भगवान का ही स्वरूप है।'

रत्नकेतूदय- (नाकू) बालकवि लिखित नाटक। रामवर्मा ने अपने भाई गोदावर्मा के हक में राज्य का परित्याग कर दिया था। इस नाटक में कवि द्वारा राज्यत्याग पर्यन्त घटनाओं का उपादान किया गया है। इस नाटक का उल्लेख मद्रास के जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च (स V १४१) में किया गया है। इसका प्रकाशन श्रीविद्या प्रेस कुम्भकोणम् से हुआ है। रचनाकाल १६वीं शताब्दी।

रत्नखेट श्रीनिवास- (नाका) दे श्रीनिवास (रत्नखेट)

रत्नचूड- (नापा) अनर्घराघव (दे) में एक विद्याधर जो दूसरे विद्याधर हेमाङ्गद से वार्तालाप में लकामुद्ध के अन्तिम भाग का परिचय देता है और उसके साथ ही नाटक की समाप्ति हो जाती है।

रत्नपाञ्चालिका- (नाकू) दे कुवलयवती।

रत्नपाञ्चालिका- (नापा) कुवलयवती नाटिका (दे) में नायिका कुवलयवती का नामान्तर। कुवलयवती को इसी नाम से नारद ने रुक्मिणी को सौंपा था। नामकरण का कारण यह था कि नारद की दी हुई अगूठी से यह रत्नजटित मूर्ति के रूप में परिणत हो जाती थी।

रत्नमञ्जरी- (नाकू) सम्भवतः राजशेखर (दे) लिखित यह एक नाटक है जो अब लुप्त हो गया है। आन्ध्रपत्रिका के १९३० के ७८वें अंक में योराधवाचार्य ने इस कृति

का उल्लेख किया है।

रत्नमाला— (नाट्) नाट्यशास्त्री (दे) (१) लिखित ७ अंकों का नाटक।

रत्नावली— (नाट्) महाराज हर्ष (दे) कृत या उनके नाम से प्रसिद्ध चार अंकों की नाटिका। इस नाटिका का साहित्य जगत् में बहुत आदर हुआ है। यह नाट्यकृति शास्त्रीय नियमों से बंधी हुई है इसमें यही प्रमाण है कि नाट्यशास्त्रकारों ने इस नाटिका से बहुत अधिक उदाहरण दिये हैं। इसका कथानक मृत्कथा में प्रतिष्ठित उदयन कथा ही है। किन्तु यह भास (दे) के स्वप्नवासवदत्तम् (दे) नाटक की कथावस्तु से मेल नहीं खाती। इसकी संरचना कालिदास के भालविकाग्निमित्र के नमून पर हुई है। यद्यपि ये दोनों नाटक प्रथम कोटि के नाटक नहीं हैं फिर भी इनमें मौलिक सौन्दर्य के यथेष्ट दर्शन होते हैं।

मुख्य कथानक का प्रारम्भ चर्चनीय स होता है जो वनौज में आजकल भी होली के अवसर पर चाँचर नृत्य के नाम से प्रचलित है। मुख्य कथानक प्रारम्भ होने से पहले पृष्ठभूमि के रूप में यौगन्धरायण के त्रियाकलाप का पता चल जाता है। दर्शक जान जाते हैं कि सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री रत्नावली अनुपलब्ध सौन्दर्य शालिनी है। किसी सिद्ध ने भविष्यवाणी कर रखी है कि उसका विवाह जिससे होगा वह चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। यौगन्धरायण ऐसे अवसरों की तलाश में रहते ही थे अतः अपने स्वामी उदयन को चक्रवर्ती सम्राट बनाने के प्रयत्न से सिंहलेश्वर के पास रत्नावली के उदयन से विवाह का प्रस्ताव पेश दिया। किन्तु उदयन का विवाह वासवदत्ता से हो चुका था जो सिंहलेश्वर की भाँजी थी अतः सिंहलेश्वर यह प्रस्ताव मानने को तैयार नहीं थे। पर यौगन्धरायण बल मानने वाला था। उन्होंने कञ्चुकी बाधक्य का भेज कर सिंहलद्वीप में यह खबर उडवा दी कि वासवदत्ता लावण्य नगर में आग में जलमयी है। अतः सिंहलेश्वर को कोई आपत्ति नहीं थी। अतः उन्होंने अपने मन्त्री वसुधूति और कञ्चुकी बाधक्य के साथ अपनी पुत्री रत्नावली का उदयन के पास भेज दिया। किन्तु मार्ग में जहाज टूट गया जिस दुर्घटना में सभी बह गये। सयाग से रत्नावली जहाज के एक तख्त का सहारा लेकर किनारे लग गई। उसी जहाज में कौशाग्र्यी का एक व्यापारी भी यात्रा कर रहा था। वह भी जैसे तैम किनारे लग गया। ठमने रत्नावली का उसकी मणिमाला देखकर पहिचान लिया। अतः उस मन्त्री यौगन्धरायण का मौप दिया। यौगन्धरायण ने यह कहकर कि यह लक्ष्मी सागर में फिली है उसका नाम मागटिका रख दिया और रानी वासवदत्ता की सेवा में समर्पित कर दिया। रानी ने मन्त्री के कहन से उस अपनी सेवा में रख ले लिया किन्तु ठमने मन में यह भावना भी पैदा हो गई कि इनका अविच्छिन्न सुन्दरी राजा की निगाह में नहीं पड़ना चाहिये। अतः वह प्रयत्नपूर्वक राजा की निगाह से बचाना रहा। जो पृष्ठभूमि में नाटक का प्रारम्भ होता है।

समस्तमय (हर्षिकामय) भारतीय समाज का आदर्श प्रसादमय एवं आनन्दमय

समय होता है। वही उत्सव मनाया जा रहा है। लड़कियाँ गा रही हैं, नाच रही हैं। अवीर उड़ रहा है, पिचकारियों से रंग विरगी जल धारियाँ निकल रही हैं। कामदेव का पूजन होना है। मूर्ति अशोकवृक्ष के नीचे स्थापित की गई है। रानी ने राजा को उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया है। रानी वासवदत्ता स्वयं समारोह स्थल पर आती है। उसके पूजन की सामग्री लेकर सागरिका भी अन्य दासियों के साथ आती है। रानी उसे देखकर आशङ्कित हो जाती है कि कहीं राजा उसे देख न ले। अतः दूर रखने के लिये उसे आदेश देती है कि सागरिका को अकेले मन छोड़ना— महल में ही रहना। सागरिका 'जो आज्ञा कह कर वहाँ से चल दी, किन्तु सोचने लगी— सागरिका का उत्तरदायित्व तो सुसगता को दे आई हूँ। यहाँ रुक कर देख लूँ कि यहाँ कामदेव का पूजन कैसे किया जाता है। इसके लिये वह एक ओर जाकर कुछ फूल चुनने लगती है। इधर वासवदत्ता कामदेव का पूजन कर पास ही एक चौकी पर राजा को बैठाकर उसका भी पूजन प्रारम्भ कर देती है। सागरिका फूल लेकर आती है और कञ्चुकी की ओट से राजा की पूजा देखने लगती है तथा सोचती है कि हमारे यहाँ तो मूर्ति बनाकर कामदेव की पूजा की जाती है। यहाँ कामदेव के समान रूपवान् पुरुष को बैठाकर पूजा की जाती है। वह भी छिपकर फूल चढ़ा देती है। उत्सव मनाते मनाते शाम हो जाती है। वैतालिक यशोगान करने लगते हैं जिससे सागरिका जान लेती है कि यह तो उदयन है जिनके लिये मैं भेजी गई हूँ। वह रूपासक्त हो जाती है और अपना दिल दे बैठती है। यहाँ पर प्रथम अक समाप्त हो जाता है।

दूसरे अक में अपने पीडित मन के विनोद के लिये सागरिका ने राजा का चित्र बनाया है जिसे वह कदलीमण्डप में एकान्त में बैठकर देख रही है। सुसगता पीछे से आकर चुपके से देख लेती है। सागरिका के यह बहाना बनाने पर कि मैंने तो कामदेवार्चन के अवसर पर कामदेव का चित्र बनाया है सुसगता उस चित्र के पास ही सागरिका का चित्र बना देती है और कहती है कि मैंने इस मूने चित्र में रति का भी चित्र शामिल कर दिया है। फिर उसके आग्रह करने पर सागरिका अपनी समस्त प्रेम वेदना उससे कह देती है। उसकी प्रेम वेदना को शान्त करने के लिये सुसगता नलिनी दल लाकर शीतोपचार करती है। इतने में ही एक बन्दर का उपद्रव प्रारम्भ होता है। बन्दर उधर से ही आ रहा है अतः दोनों लड़कियाँ भयभीत होकर भाग खड़ी होती हैं और चित्र फलक वहीं पड़ा रह जाता है। बन्दर कदली गृह में आकर दही भात के लोभ में मैना का पिंजड़ा खोल देता है और मैना उड़ जाती है। उधर श्री खण्डदास नामक एक साधु ने राजा को एक ऐसा मन्त्र दिया है जिसके प्रभाव से लत्रायें वे सौसम ही फूल खिलाने लगती हैं। राजा अपने मन्त्र के प्रभाव को देखने के लिये विदूषक के साथ जा रहा है कि मैना उन लड़कियों का सारा सवाद दोहराने लगती है। राजा इस प्रेम कथा को सुनकर प्रभावित हो जाता है। विदूषक जोर से हसता है तब मैना उड़कर कदली गृह की ओर जाती है। राजा और

विदूषक उसका पीछा करते हुये कदली गृह की ओर ही जाते हैं जहा उन्हें पडा हुआ चित्र फलक मिल जाता है। अब राजा सारी बातें समझ जाता है और उस सुन्दरी के प्रेमजाल में फस जाता है तथा विद्योग दश का अभिनय करने लगता है। दोनों लडकियां चित्र फलक लेने लौटती हैं तब राजा और सागरिका का मिलन हो जाता है किन्तु बात जागे नहीं बढ पाती। इसी बीच वासवदत्ता काञ्चनमाला के साथ अकालकुसुम देखने आती है तब लडकियां छिपकर एक ओर हट जाती हैं। विदूषक चित्र फलक को बगल में छिपा लेता है। राजा वासवदत्ता से बात करने लगते हैं। इसी बीच चित्रफलक विदूषक को बगल से गिर जाता है जिसे रानी और काञ्चनमाला देख लेती हैं और सात रहस्य जान लेती हैं। वह क्रुद्ध होकर सारदर्द का बहाना कर चली जाती है, राजा उसके पैरों पर गिरकर माफी मांगते हैं। रानी मानती नहीं और चली ही जाती है। यहां पर दूसरा अंक समाप्त होता है।

तीसरा अंक राजा और सागरिका को मिलाने के लिये विदूषक और सुसगता की चेष्टा एवं वासवदत्ता द्वारा उरमें विष डालने की लेकर चल रहा है। इसे सक्केत का नाम दिया गया है। विदूषक और सुसगता ने मिलकर योजना बनाई है कि वासवदत्ता ने राजा और सागरिका को दूर रखने के लिये जो अपना परिधान सुसगता को भेंट में दिया है उसे सागरिका को पहनाकर तथा स्वयं काञ्चनमाला का रूप धारण कर रात के कुछ अंधेरे में चित्रशाला में दोनों को मिला दिया जाय। इस विषय में विदूषक और सुसगता जब गुप्त बान कर रहे थे तब छिपकर काञ्चनमाला सुन लेती है और निश्चित सक्केत स्थान पर समय से कुछ पहले वास्तविक रानी और काञ्चन माला दोनों पहुंच जाती हैं। राजा और विदूषक उन्हें सागरिका समझकर प्रेम प्रदर्शन करना और वासवदत्ता को निन्दा करना प्रारम्भ कर देते हैं। रानी क्रुद्ध होकर लौट पडती है। राजा की सभी क्षमाप्रार्थनायें ठुकरा देती है। सागरिका और सुसगता देर से आती हैं और जान लिये जाने के कारण सागरिका हड कर फासी लगाने का उपक्रम करने लगती है। उधर राजा वासवदत्ता द्वारा आत्महत्या की सम्भावना से शक्ति होकर उसे बचाने विदूषक के साथ चल पडने हैं। मार्ग में उन्हें सागरिका फासी लगाने की चेष्टा करते हुये मिलती है। राजा उसे वासवदत्ता समझकर मनाने लगने हैं और सागरिका को पहिचान कर पुन उससे प्रणय निवेदन करना प्रारम्भ कर देते हैं। उधर देवी वासवदत्ता कठोर व्यवहार के लिये परघाताप कर पुन सौट पडती है। मार्ग में यह दृश्य देखकर छिपकर दोनों की बातें सुनती है और एकदम आगे बढ़कर स्वयं को प्रकट कर देती है। राजा यह कहकर बचना चाहते हैं कि तुम्हारे जैसे वेश को दण्डक में छोड़ा खा गया। किन्तु राजा की बात चसती नहीं क्योंकि वासवदत्ता ने उनकी मर बातें सुन ली थीं। अतः क्रुद्ध होकर रानी विदूषक और सागरिका दोनों को पकड़ ले जाता है तथा बन्द कर देती है। यहां तीसरा अंक समाप्त हो जाता है।

चौथा अंक इन्द्र जान विषय है। प्रारम्भ में जान हा जाता है कि रानी न सत्यार

पूर्वक विदूषक को छोड़ दिया है और खबर उठा दोहै कि सागरिका उज्जैन (वासवदत्ता के पीहण) भेज दो गई है। सागरिका रत्नमाला सुसमता को देकर उसे किसी बाह्य को दान देने के लिये कह देती है और सुसमता उसे विदूषक को दे देती है।

राजा को युद्ध में विजय मिल जाती है जिससे रुमन्वान के साथ वसुभूति और वासव्य ने भी योगदान दिया था। ये प्रवहनमग से बचकर निकल आये थे। उसी समय उज्जैन से एक जादूगर आता है। वह पीहण का जादूगर है, अब वामनदत्त राजा के साथ बड़े प्रेम से जादू का खेल देखती है। जादूगर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और अश्वत्थ इत्यादि सभी को आकार में दिखला देती है। विदूषक कहता है— इनको दिखना कर क्या करोगे सागरिका को दिखलाओ अब जाने। इसी समय वासवदत्ता के मामा सिंहलेश्वर के मन्त्री वसुभूति के आने का समाचार मिलता है। राजा उनके स्वागत के लिये इन्द्रजाल को फिर कभी देखने का वादा कर उठ खड़े होते हैं। जब राजा वसुभूति से बात कर ही रहे होते हैं भवन में आग लग जाती है। वासवदत्ता धक्का उठती है और भवन में कैद सागरिका को बचा लेने की राजा से प्रार्थना करती है। राजा आग में कूद पड़ते हैं और सागरिका को बचाकर लाते हैं। सागरिका (रत्नावली) और वसुभूति एक दूसरे को पहिचान लेते हैं जिसमें प्रमाण विदूषक के गले में पड़ी रत्नमाला भी हो जाती है। यौगन्धराया आकर सब रहस्य खोलता है क्योंकि यह सब उसी की योजना थी। वासवदत्ता यह जानकर अत्यन्त शर्मिन्दा होती है कि उसने अपनी ममेरी बहन से ऐसा बुरा व्यवहार किया और राजा तथा रत्नावली का विवाह स्वयं ही करा देती है। नाटक सुखान्तता में समाप्त हो जाता है।

नाटक पर एक दृष्टि— सस्कृत में उच्चकोटि के नाटकों में इसकी गणना की जाती है। यह उदयन की चरित्र परम्परा में ही आता है। स्वयं हर्ष के शब्दों में उदयन के लोक प्रसिद्ध चरित्र में एक आकर्षण है 'लोक के हारी च वत्सराजचरित्रम्' इसमें भास के स्वप्नवासवदत्तम् से उदयन, वासवदत्ता, यौगन्धराया, रुमन्वान, वसुन्धरा जैसे पात्रों का ही उपादान नहीं किया गया है— लावार्क में वासवदत्ता के जलकर मर जाने जैसे घटनाओं का भी अश्रय लिया गया है किन्तु उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर लिये गये हैं। वासवदत्ता के जलकर मरने का प्रचार केवल सिंहल में ही किया गया है राजा को इसका पता नहीं। यह परिवर्तन राजा के विलासिन्य जीवन के चित्र के लिये आवश्यक है। यद्यपि उदयन और वासवदत्ता दोनों के चरित्रों का अवमूल्यन हुआ है फिर भी तत्कालीन राजपरानों के वातावरण के चित्र में उल्लेख स्वाभाविकता अधिक है। स्वप्नवासवदत्तम् के चरित्र आदर्शप्रवण हैं जबकि इस नाटक में सौदिनडाह का अच्छा चित्रण किया गया है।

इस नाटक की रचना में शुद्धरस, धौलतलितनयक और वैशिकी वृत्ति की प्रधानता है। युद्ध का वर्णन सूक्ष्म है और एक दो पद्यों में ही इसे समाहित कर दिया गया है।

रचना में धारावाहिकता, प्रवाहसौष्ठव और कल्पनाशीलता के साथ घमत्कार का उचित उपादान काव्य को मनोरम बनाने में पूर्ण सक्षम है। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का परिनिष्ठित प्रयोग इसकी अन्यतम विशेषता है। नाटक में कहीं भी नीरसता उत्पन्न नहीं होती। समग्ररूप में यह एक अच्छा नाटक बन पड़ा है।

इस नाटक का प्रकाशन अनेक स्थानों से हुआ है और इसपर स्वतन्त्र लेख भी लिखे गये हैं। अनेक टीकायें लिखी गईं जिनमें कतिपय प्रमुख टीकाकारों के नाम हैं— भीमसेन मुद्रल देव (कैटेलाग १४९२), गोविन्द (बम्बई से प्रकाशित), प्राकृताचार्य (कैटेलाग II ११५), विद्यासागर (कलकत्ता से प्रकाशित), के.एन. न्याय पञ्चानन (कलकत्ता से प्रकाशित), एस.सी. चक्रवर्ती (ढाका से प्रकाशित), शिव (हुल्जिन की रिपोर्ट पाण्डुलिपि सम्राट मद्रास II ३४, ११७), लक्ष्मण सूरि (कलकत्ता से प्रकाशित), आर.वी. कृष्णमाचार्य (मद्रास से प्रकाशित), एस.राय (श्रीरंगम् से प्रकाशित), बी.एस. अय्यर (कुम्बकोणम् से प्रकाशित), नारायण शास्त्री निगुधर (बम्बई से प्रकाशित जिसे अंग्रेजी प्रस्तावना के साथ जे.एम. जोगेल्कर ने प्रकाशित कराया) उक्त टीकाओं में अनेक में परिचय देने वाली अच्छी प्रस्तावनायें भी हैं। कई स्वतन्त्र पुस्तकें एवं भाषान्तर भी प्रकाशित हुये हैं।

रत्नावली- (नायक) महाराज हर्ष लिखित रत्नावली नाटक की नायिका। यह सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री और प्रसिद्ध सुन्दरी प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता की ममेरी बहन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसका अदृष्टपूर्व सौन्दर्य। विदूषक के शब्दों में वह अपूर्वाश्री है। उसका निर्माण कर ब्रह्मा भी आश्चर्यचकित रह गया होगा। उसके सौन्दर्य का इससे अधिक प्रमाण क्या हो सकता है कि जिस वासवदत्ता को साहित्य जगत् में इतनी प्रतिष्ठा मिली है वह भी इसके अभूतपूर्व सौन्दर्य को देखकर हतप्रभ रह जाती है उसे भी उसके सामने अपनी उपेक्षा की आशङ्का हो जाती है। सुसगता और विदूषक उसे प्रकृति का सर्वोत्तम तोहफा समझकर राजा को उससे मिलाने को आतुर है। प्रेमी स्वभाव भी उसकी एक विशेषता है। वह उन रूपवती मुग्धाओं में है जो निरन्तर किसी सुन्दर तथा विशिष्ट स्थिति वाले पुरुष की प्रेयसी बनने को आतुर रहती है। स्वयं भी उसमें भावना की तीव्रता हिलोमें मारती है। एक दृष्टि से ही पहली ही बार उदयन को देख कर वह उन्हे प्राप्त करने के लिये आतुर हो जाती है और जब अपने प्रेमी को प्राप्त करने में निराश हो जाती है तब अपना जीवन समाप्त करने की चेष्टा करने लगती है, यहातक कि जब भवन में आग लग जाती है तब वह उसे अपना सौभाग्य ही समझती है। उसे वह अपने वियोग दुख की समाप्ति का एक साधन मानती है।

लक्षणज्ञों के अनुसार वह जिसकी पत्नी बनेगी वह चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। विन्नु दुर्भाग्य उसे रत्नावली से सागरिका बना देता है। वह दास्य जीवन बिताने के लिये बाध्य हो जाती है। वह इतनी गम्भीर भी है और कुलाभिमानिनी भी कि अनेक कष्ट और पीड़ा सहन कर भी वह अपनी वास्तविकता अपनी प्रिय माँ की मुसगता पर भी प्रकट नहीं होने

देती। उसे भय है कि कोई उसका विश्वास नहीं करेगा। कलाभिज्ञता भी उसकी अन्यतम विशेषता है। राजा को एक बार ही देख कर वह उनका ऐसा सच्चा चित्र बना देती है कि जो भी देखता है राजा को पहिचान लेता है।

स्त्रीसुलभ कमजोरियाँ उसके अन्दर भी हैं। अवसर आते ही वह अपनी स्वामिनी वासवदत्ता को धोखा देने के लिये तैयार हो जाती है। उसके अन्दर ईर्ष्याभाव भी कम नहीं है। वह राजा को उपालम्भ देते हुये कहती है- 'भर्तृ किमेतेनालीकदाक्षिप्येन जीवितादपि चल्लभाया देव्या आत्मानमपराधिन करोषि।' (स्वामी इस झूठे दिखावे से क्या लाभ? महाराणी को तो तुम जीवन से भी अधिक प्यार करते हो, फिर मुझसे प्रेम का दिखावा कर तुम उसके अपराधी क्यों बनते हो?) सागर से प्राप्त होने के कारण वह सागरिका कहलाई। इसी प्रकार उसका नाम रत्नावली है तो धोलू ही किन्तु इस तथ्य पर भी प्रकारा डालता है कि उसके पास जो रत्नावली (रत्नों की माला) है प्रवहण भग के बाद व्यापारों द्वारा वह उसी माध्यम से पहिचानी गई है।

रत्नेश्वरप्रसादन- (नाकू) गुरुग्राम (दे.) लिखित नाटक। इसमें ५ अंक हैं। इसमें रत्नचूड़ के रत्नावली से विवाह का चित्रण किया गया है। रत्नावली गन्धर्व वसुभूति की पुत्री थी और बनारस के देवता रत्नेश्वर की कृपा से उसका पालनपोषण हुआ था। उसने देवता को अपनी भक्ति से प्रसन्न कर लिया था। इसकी प्रति मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक पाण्डुलिपि अनुभाग में स. XXI ८४८२ पर सकलित की गई है। इसका प्रकाशन १९३८ में हो गया था।

रदनिका- (नाकू) मृच्छकटिक में चारुदत्त की दासी जो शौरसेनी बोलती है।

रमयन्तिका- (नापा) मल्लिकामारुत (दे.) में पताकानायक कलकठ की प्रेयसी जो अनेक कठिनाइयों के बाद प्रियतम को प्राप्त करने में सफल होती है। इसका चरित्र मालतीमाधव की मदयन्तिका की अनुकृति मात्र है।

रमाचौधरी- (डा.) ये २०वीं शताब्दी (आधुनिक काल) की प्रतिष्ठित बंगाली लेखिका हैं। इनका परिवार और सम्बन्धियों का वर्ग शिक्षितों का समाज था। व्यातनामा प्रतिष्ठित लेखक डा. यतीन्द्र विमल चौधरी इनके पति थे। वैरिष्टर सुधाशुमोहन बोस पिता, कामेसाध्यक्ष आनन्दमोहन बोस पितामह, और प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु इनके पिता के भाषा थे। इन्होंने स्वयं आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से डॉक्ट्रिल की उपाधि प्राप्त की थी। रवीन्द्रभारती विश्वविद्यालय में कुलपति तथा अनेक समस्याओं की अध्यक्षा रहीं। जर्मन शासन ने १९७० में इनका सम्मान किया। इन्होंने १९७१ में रूस यात्रा भी की। संस्कृत, बंगला और अपेक्षी तीनों भाषाओं में पर्याप्त साहित्य लिखा जिसमें संस्कृत के २१ नाटकों का उल्लेख किया जाता है वे हैं- अग्निवीणा, अभेदानन्द, धविकुलकमल, वविकुलकोकिल, गणदेवता, चैतन्यचैतन्यम्, देशदीपम्, नगरनूपुरम्, निवेदितनिवेदितम्, पत्नीकमलम्, प्रसन्नप्रसाद, भारततातम्, भारतपथिक, भारताचार्य, मेघमेदुरमेदनीयम्,

यतीन्द्रम्, युगजीवनम्, रसमयरासमणि, रामचरितमानस, लेनिन विजयम्, शङ्करशङ्करम् और ससारामृतम् ।

रमानाथ मिश्र- (नाका) ये उड़ीसा निवासी यदुनाथ मिश्र के पुत्र थे। इनका जन्म १९०४ में हुआ था। बालेश्वर नगर के श्री रामचन्द्र सस्कृत विद्यालय में अध्यापक थे। इनके लिखे निम्नलिखित नाटक बनलाये जाते हैं- आत्मविक्रय, कर्मफल, सागव्यविजय, पुरातनबालेश्वर, प्रायश्चित्त, श्रीरामविजय और समाधान ।

रमानाथ शिरोमणि- (नाका) ये मेदिनीपुर बंगाल के निवासी थे। इनका समय १९वीं २०वीं शताब्दी है। इनका लिखा पारिजातहरण (दे) नाटक १९०४ में प्रकाशित हुआ था।

रमानाथ शास्त्री एसके- (नाका) दोलानझीककम् नामक हास्यप्रधान नाटक एवं भणिमञ्जूषा (१) के लेखक ।

रमामाधव- (नाक) यह विनायकराववोकील की लिखी नाट्यकृति है। यह माधवराव पेशवा और रमाबाई के चरित्रचित्रण के उद्देश्य से लिखा गया नाटक है। इसका रचनाकाल २०वीं शताब्दी है।

रमेशचन्द्र- (नाका) इनका लिखा प्रतीकनाटक 'सरलचिन्मुखीसार' प्राप्त होता है जिसमें शास्त्रीय तर्कों का नाटकीकरण किया गया है। मद्रास सस्कृत जर्नल में इसका प्रकाशन कर दिया गया था।

रम्भारावणीयम्- (नाक) यह सुन्दर वीर रावण (दे) का लिखा चार अंकों का नाटक है। इसमें रावण द्वारा रम्भा के साथ वलान् सभोग का वर्णन किया गया है जिस पर क्रुद्ध होकर रम्भा के प्रेमी नलकूबर ने शाप दे दिया था कि यदि रावण किसी स्त्री से वलान् सम्भोग करेगा तो उसके सर के हवार्ते टुकड़े हो जायेंगे। (इसीलिये रावण सीता के साथ वलात्कार से दूर रहा।)

इस नाटक की रचना श्रीराम के चैत्रोत्सव में अभिनय के लिये हुई थी। मद्रास की आरियण्टल सायन्सेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में II २३४६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

इस नाटक में मानवपात्रों के नाम पशुपक्षिओं के नाम पर रखे गये हैं। रावण वामन और सहस्रार्जुन समसामयिक दिखलाये गये हैं। कई पात्र रूप बदलकर आते हैं। थोड़ा पट्टी की अधिकता है। कथनक में एक सूत्रता का अभाव है।

रविदास- (नाका) इनका लिखा मिथ्याज्ञानखण्डनम् (दे) एक प्रतीक नाटक है। इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है। इनके नाम पर एक दूसरे नाटक मिथ्याज्ञानविडम्बनम् (दे) का भी उल्लेख पाया जाता है।

रविपति त्रिपुरान्तक- (नाका) ये १४वीं शताब्दी के आन्ध्र क कवि हैं। इनके

‘प्रेमाभिषामम्’ शीर्षक का उल्लेख किया जाता है।

रविवर्मा- (नाक) प्रद्युम्नाभ्युदय (दे) के लेखक रविवर्मा का जन्म जयतुगनाडु में १२६६ ६७ सन् में हुआ था। इनकी उपाधि सप्रामधीर थी। इनके पिता का नाम राजा जयसिंहवीरकेरल और माता का नाम उमादेवी था। इनका विवाह पाण्ड्य राजकुमारी से हुआ था। ३३ वर्ष की आयु में इन्होंने केरल का राज्य प्राप्त किया था। अनेक पाण्ड्य, चोल वीरों को पराजित कर इन्होंने अपने राज्य का विस्तार कर लिया और ४६ वर्ष की आयु में वाञ्छी के तट पर इनका राजविलक सम्पन्न हुआ। ये बहुत ही दानशील थे। अनेक मन्दिरों को उदार दान दिये और धर्म को बढ़ाने का प्रयत्न किया। ये कवि तो थे ही गायक भी थे और कला को सब प्रकार का संरक्षण देते थे। इनकी मभा को कलाकार शोभित करते थे।

रसमयरासमणि- (नाक) डा रमाचौधरी (दे) लिखित १२ दृश्यों का नाटक। इसमें रासमणि नामक विधवा का चरित्रचित्रण किया गया है जिसने अप्रेमियों द्वारा सताई गई प्रजा की साहस के साथ रक्षा की।

रसरत्नाकर- (नाक) यह एक भाण है जिसकी रचना जयन्त (दे) ने की थी।

रसविलास- (नाक) चोक्कनाय विरचित भाण जिसका उल्लेख कैटलागस कैटलागोरम खण्ड स ११६ में किया गया है। यह १७वीं शताब्दी की रचना है।

रससदनभाण- (नाक) यह गोदावर्म युवराज (उपनाम रामवर्मा) का लिखा एक भाण है। इसका प्रकाशन काव्य माला सौरीज बम्बई से हो चुका है। इसमें लोकोक्तिओं का प्रयोग अधिक हुआ है। इसका नायक विट है जो अनेक वारवनिताओं के साथ कैलिन्नीडायें करते हुये लोगों को बुराईयों से सावधान करने का प्रयत्न करता है।

नायक विट ने अपने मित्र मकरन्द की प्रेमिका की देखभाल करने का वचन दिया है। वह उस प्रेमिका को इधर उधर खूब घुमाता है। कभी मन्दिर में, कभी गलियों में, कभी अपने घर लेजाकर खूब बातें करता है। इसी बीच समीपवर्ती नगर की एक महिला उसे निमन्त्रण देती है जिसके लिये वह बहा चला जाता है। जब वह लौटकर आता है तब देखता है कि वह सुन्दरी तो अपने प्रेमी के पास चली गई।

(२) **रससदनभाण-** (नाक) यह राजकुमार का लिखा भाण बतलाया जाता है।

रसार्णवतरंग- (नाक) यह एक भाण है जिसके रचनाकार हैं- रत्नाचार्य के पुत्र कृष्णमाचार्य।

रसिकजनमानसोत्थास- (नाक) यह एक भाण है जो मैसूर पुस्तकालय स २८१ पर सबलित किया गया है। इसके लेखक हैं श्रीवेङ्कट। इस भाण में विरुपति के देवता श्रीनिवास के वास्तविक महोत्सव का चित्रण किया गया है। विराचार्य कोदरेकोपाध्याय द्वारा विट तथा वेश्याओं को प्रशिक्षण देने का चित्रण इसमें किया गया है।

रसिकजन रसोत्सास- (नाकू) यह १८वीं शताब्दी के वेङ्कटकौण्डिन्य (दे) द्वारा लिखित एक भाण है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में खण्ड ३ स १०६ पर किया गया है।

रसिक तिलकम्- (नाकू) यह मुद्रदुराम (दे) लिखित एक भाण है जिसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। कमलापुरी तञ्जौर में त्पागराज के वसन्तोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसमें विट और नायिका क्रमशः रसिकशेखर और कनकमञ्जरी हैं।

रसिक भूषण- (नाकू) उदयवर्मा लिखित भाण। इनका समय है १९वीं शताब्दी।

(१) **रसिकरञ्जन-** (नाकू) सुन्दरराज (दे) लिखित नाटक। इसकी रचना १९वीं शताब्दी के मध्य में की गई थी।

(२) **रसिकरजन-** (नाकू) यह एक भाण है जिसकी रचना श्रीनिवास (दे श्रीनिवास ६) ने की थी। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

रसिक विनोद- (नाकू) यह कमलाकर भट्ट (दे) का लिखा नाटक है। इसमें गोकुलेश (वत्सभकेपौत्र) के जीवन के अनेक प्रसंगों का चित्रण किया गया है तथा उनकी वैष्णवी विचारधारा का प्रतिपादन करना इसका उद्देश्य है। गोकुलेश की गुर्जरयात्रा तथा सर्वभेद विरहित वृत्ति का इसमें अच्छा परिचय प्राप्त होता है। गीता, भागवत एवं गोकुलेश का सूक्ष्म परिचय इस रूपक में मिलता है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी में हुई थी।

रसिकामृत- (नाकू) यह शाङ्कर नारायण (दे) का लिखा एक भाण है। ई हुल्टज द्वारा की गई दक्षिण भारतीय पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट (II III) में इसका उल्लेख किया गया है।

रसोदर- (नाकू) यह एक भाण है जो मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित किया गया है। इसके लेखक हैं सुरपुरम् अण्णराय (दे)।

रसोत्सास- (नाकू) यह एक भाण है जिसकी रचना श्रीनिवास वेदान्ताचार्य (दे) ने की थी। इसका संकलन तञ्जौर की पैलेस लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग स VIII ३५४९ और मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट स ११०१३ पर किया गया है।

रसोत्सास- (नाकू) दे युवराज।

राक्षस- (नापा) मुद्राघस (दे) में प्रतिनायक। यह परम स्वामिभक्त है। अपने पुराने महाराज की पराजय और उनके अन्त का उसे अत्यन्त दुःख है और वह प्राणपण से अपने पुराने स्वामी का बदला लेना चाहता है। वह उन अतीत स्वामियों के कार्य स्मृतियों को देखकर भाव विभोर हो जाता है। वह नीतिनिपुण और कार्य कुशल है तथा साथ ही विश्वसनीय व्यक्ति भी है। धातव्य उसके गुणों पर मुग्ध है और समझता है

कि वही एक व्यक्ति राज्यरासन को स्थायित्व दे सकता है। अतः चाणक्य उसे मन्त्रीपद प्रदान करने के लिये उत्सुक है। किन्तु राक्षस की यह निपुणता उसे सफलता नहीं दे सकी। दुर्भाग्य से उसका सामना एक ऐसे व्यक्ति से है जो अपनी कूट नीति के लिये भारतीय इतिहास में मूर्धन्य माना जाता है। वह अपनी योजनाओं में बुरी तरह पराजित होता है और अन्त में ऐसी स्थिति बन जाती है जब उसे अपनी, अपने परिवार की और अपने मित्रों की रक्षा के लिये चाणक्य की योजना स्वीकार करनी पड़ती है। यह उसकी पराजय है किन्तु पराजय में भी विजय है क्योंकि कूटनीति और राजनीति का अन्वर्थावतार चाणक्य उसे योग्य मन्त्री मानता है और उसे मन्त्रीपद प्रदान करने के प्रयत्न में कोई कसर नहीं उठा रखता। यह उसकी योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने उसे नायक की मान्यता देने का प्रयास किया है। किन्तु उसका चित्रण प्रतिनायक के रूप में ही हुआ है। परिशोतक उसकी विजय नहीं चाहते किन्तु उससे सहानुभूति अवश्य रखते हैं। वह अपने उद्देश्य में पराजित अवश्य होता है। स्वभाव, आवेश, जल्दवाजी या महत्वाकांक्षा जैसे दुर्गुण उसे पराजय की ओर नहीं ले जाते। वह सारे कार्य ऐसे ही करता है जैसे एक कूटनीतिज्ञ से सम्भावित है। उसके पराजय का कारण एक मूर्धन्य कूटनीतिज्ञ के जाल में फस जाना है जो स्वयं उसकी प्रशंसा करते नहीं सकता।

राक्षसी—(नापा) वेणोसहार (दे) में एक पात्र। उसे हिडिम्बा ने अपने पुत्र घटोत्कच के वीरगति को प्राप्त हो जाने के बाद भोम के साथ रहने के लिये भेजा है। वह अपने पति के साथ युद्ध भूमि में घूम फिर कर मृत योद्धाओं के मांस और रक्त का आहार करती है।

रागविराग प्रहसन—(नाकृ) जीवन्मयतीर्थ का लिखा प्रहसन। राजा सगीतद्वेषी है और उसने अपने प्रदेश में सगीत पर प्रतिबन्ध लगा रक्ख है। किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि राजकुमार पिता की हत्या करना चाहता था और राजकुमारी त्रियम्बर के साथ भाग जाना चाहती थी, तथा ये दोनों अनर्थ सगीत के प्रभाव से बच गये तब राजा इतना प्रभावित हुआ कि उसने सगीत का विरोध छोड़ दिया। और सगीत पर प्रतिबन्ध हटा दिया। इसकी रचना १९५९ में हुई थी।

राघवाचार्य—(विजयमूर्ति) (नाका) ये काशीवरम के रहने वाले बौद्धिक गोत्रीय थे। इनका लिखा शृङ्गारदीपक (दे) भाग प्रकाश में आया है। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग XX। ८५३४ पर इसका सक्तन किया गया है।

(१) **राघवानन्द—(नाकृ) नेपाली कवि माणिक की इस नाम की रचना का उल्लेख किया जाता है। यह राम कथा पत्रक रचना है।**

(२) **राघवानन्द—(नाकृ) यह ७ अंकों की नैधुव वेङ्कटेश्वर की रामकथापत्रक रचना**

है। तजौर पुस्तकालय के कैटेलाग में स ३४९६ पर इसका उल्लेख किया गया है। राम वनवास से लेकर अयोध्या लौटने तक श्रीराम कथा इसका विषय है। किन्तु कथानक में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। ऐसे पात्रों की भूमिका है जो बनावटी हैं और रूप बदल कर आते हैं। कुछ पात्र अदृश्य रूप में भी कार्य करते हैं। एकोक्तियों और वर्णनात्मक पद्यों का बाहुल्य है। चरित्रचित्रण का विकास उचित रूप में हुआ है। अद्भुत और भयानक रसों का सामग्रस्य इस कृति की विशेषता है। इसमें मागधी और अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग हुआ है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

(१) राघवाभ्युदय- (नाक) यह गंगाधर (दे) लिखित नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम ११३६ पर किया गया है। यह रामकथा परक नाटक है।

(२) राघवाभ्युदय- (नाक) यह रामकाव्यविषयक नाटक भगवन्तराय का लिखा हुआ है। कैटेलागस कैटेलागोरम ११११७ पर इसका उल्लेख किया गया है। रामकथा परक इस नाटक में विश्वामित्र के साथ राम के प्रयाण से प्रारम्भ कर रावणवध पर्यन्त कथानक का उपादान किया गया है। साथ ही कथानक में अनेक परिवर्तन भी किये गये हैं।

(३) राघवाभ्युदय- (नाक) हेमचन्द्र-शिष्य रामचन्द्र (दे) लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III १०७ पर किया गया है।

(४) राघवाभ्युदय- (नाक) यह वैष्णवेश्वर का लिखा नाटक बतलाया जाता है। इसका सवलन कैटेलागस कैटेलागोरम I ५०० पर किया गया है।

राघवेन्द्रकवि- (नाका) राघवनाथ (दे) नाटक के लेखक। १८वीं शताब्दी के कवि हैं।

राजकुमार- (नाका) ये कोटिलिंगपुर के निवासी थे। रससदन भाण इनकी रचना है।

राजचूडामणि दीक्षित- (नाका) ये तजौर के राजा रघुनाथ (दे) के आश्रित कवि थे जिनका समय ईसा की १७वीं शताब्दी है। इनके पिता का नाम रत्नखेट श्रीनिवास (दे) और माता का नाम कामाक्षी था। जिस प्रकार इनके पिता का साहित्य बटुक्षेत्रव्यापी था उसी प्रकार ये अपने योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। ये भीमासा के प्रकाण्ड पण्डित थे और इन्होंने जैमिनि के सूत्रों पर तन्त्रशिखामणि नामक एक महत्वपूर्ण टीका लिखी। इसके अनिर्वक्त बड़े अन्य शास्त्रों पर भी इनकी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। शास्त्रीय साहित्य के समान ही इनका लीनन साहित्य भी महत्वपूर्ण है। इनके कई काव्यग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें १० सर्गों का रत्नमयी चम्पक, ६ सर्गों का शङ्कराभ्युदय ये प्रन्थ प्राज्य होने हैं। इनके अनिर्वक्त कविरय अन्य रचनाएँ हैं- भारतचम्पू, कमरूप, चित्रमञ्जरी और कामवद्धा। अपने पिता के जीवन पर भी इन्होंने रत्नखेट विजय नामक एक काव्य लिखा जिसमें यमक का चमत्कार

दृष्टिगत होता है। चमत्कार पूर्व दो अन्य काव्य भी बतलाये जाते हैं- राघवदादवपाण्डवीय और मञ्जुभाषिणी प्रथम में प्रत्येक पद्य के तीन तीन अर्थ हैं जिनमें रामकृष्ण और पाण्डव दोनों की कथा कही गई है तथा दूसरे ग्रन्थ में प्रत्येक अक्षर में श्लेष का प्रयोग किया गया है। कहा जाता है भोज के रामायण चम्पू के युद्धकाण्ड की रचना इन्होंने एक ही दिन में पूरी कर दी थी। इन्होंने काव्यदर्पण नामक एक अलंकार ग्रन्थ भी लिखा जिसमें अपने लिखे एक अन्य अलंकार ग्रन्थ अलंकारचूडामणि का भी उल्लेख किया गया है।

इनके लिखे नाट्यग्रन्थ हैं- (१) शृङ्गारसर्वस्व नामक भाण, (दे) (२) आनन्दराघव नामक ५ अकों का नाटक (दे) (३) कमलिनीकलहम नामक चार अकों का नाटक। रुक्मिणीकल्याण नामक एक नाटक भी इनका लिखा बतलाया जाता है। कहा जाता है इन नाटकों का अभिनय तजौर के महाराजा के दरबार में उस समय किया गया था जब महाराज की चिदम्बर की यात्राये हुई थीं।

राजरजन विलास नाटक- (नाकू) मद्रास के अन्तर्गत तजौर राज्य के महाराजाओं के आश्रित कवियों और विचारकों ने जो ग्रन्थ तैयार किये थे उनमें इस नाटक का भी उल्लेख किया गया है। इस रचना के विषय में नाम के अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी साहित्य जगत को नहीं है।

(१) राजराजनाटक- (नाकू) यह एक प्रसिद्ध नाट्य रचना है। कवी ने संस्कृत द्रामा में इसका उल्लेख किया है। कहा जाता है ११वीं शताब्दी में तजौर के राजराजप्रथम के आदेश से शिव मन्दिर में राजराजनाटक प्रतिवर्ष खेला जाता था। यह एक प्रसिद्धि प्राप्त है। न तो इसके लेखक का पता है न इसकी विषय वस्तु ज्ञात है।

राजराज वर्मा ए.आर.- (नाका) इनका समय है १८६३ से १९१८ तक। इन्होंने मद्रास में विद्यालयों के अधीक्षक, संस्कृत शिक्षण के अधीक्षक विवेन्द्रम के महाविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक आदि अनेक सरकारी पदों पर कार्य किया एवं संस्कृत के अभ्युदय की अनेक योजनायें बनाई।

ये स्वयं भी एक अच्छे कवि थे। महाकाव्य, गीतिकाव्य, निबन्ध, समीक्षात्मक ग्रन्थ, ज्योतिष एवं व्याकरण पर रचनाओं के अतिरिक्त गैर्वाणी विजय (दे) नामक इनकी एक नाट्यरचना भी पाई जाती है। इन्होंने उद्दालकचरित नाम से सेक्सपियर के ओपेलो का संस्कृत गद्य में अनुवाद भी किया। मलयालम् में भी इनका कुछ कार्य प्राप्त होता है।

राजर्षिभरत - (नाकू) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

राजर्षि सुरथ - (नाकू) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

राजशेखर- (नाका) ये यायावर राजशेखर के नाम से प्रसिद्ध है। इनके समय के विषय में विद्वानों में पर्याप्तमतभेद है। भण्डारकर इन्हें महेंद्रपाल का अध्यात्मगुरु मानते हैं। इन्होंने नाटकों की प्रस्तावनाओं में स्वयं अपना परिचय दिया है और कन्नौज

के राजा महेन्द्रपाल का उल्लेख किया है तथा उनके पुत्र महीपाल को अपना आश्रयदाता माना है। यह इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि ८वीं शती के मध्यभाग में अमरकोश के व्याख्याकार कृष्णस्वामी ने इनकी कृति विद्वशासपञ्जिका से एक पद्य उद्धृत किया है। फ्लीट और कोतहोर्न इनका नवीं शताब्दी के अन्त और दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में होना मानते हैं। कतिपय विद्वान् इनका समय जयदेव से कुछ पहले होना स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार महेन्द्रपाल और शीरस्वामी का समय ११वीं शताब्दी है।

इनके पिता का नाम दुर्दुक और माता का नाम शीलवती था। दुर्दुक एक अच्छे पुरोहित और इनके बाबा अकालजलद एक अच्छे कवि थे। इनका विवाह पूर्ण विदुषी अवन्तिसुन्दरी के साथ हुआ था जो चौहान वंश में उत्पन्न हुई थी और काव्याशास्र में प्रवीण थी। राजशेखर का आवास स्थल विदर्भ और कुन्तल प्रदेश था। सम्भवत इन्होंने सारे देश का भ्रमण किया था और इनका दक्षिण का ज्ञान अत्यधिक बढ़ा चढ़ा था। प्रदेशों का केवल भौगोलिक परिचय ही नहीं वहाँ के रीति रिवाजों वहाँ के कलाकारों इत्यादि का एक एक वाक्य में अच्छा परिचय दिया है। इन्होंने स्वयं को महेन्द्रपाल का अध्यात्म गुरु और उनके पुत्र महिपाल को अपना आश्रयदाता बतलाया है जिनका समय नवीं शताब्दी सिद्ध होता है। अतः यही समय इनका भी होना चाहिए।

राजशेखर ने भवभूति (दे.) वाक्यतिपात्र, उद्धट और आनन्दवर्धन का उल्लेख किया है तथा सोमदेव एवं धनञ्जय द्वारा इनका उल्लेख किया गया है। अतः इनका समय ९०० ई के आस पास दृढ़ता है।

इनका परिवार विद्वानों का था इन्होंने अपनी विदुषी पत्नी का बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है जिसकी काव्यशास्त्रीय योग्यता प्रतिष्ठित थी। ये महरष्ट्र प्रदेश के रहने वाले थे किन्तु इन्होंने सारे देश का भ्रमण किया था।

ये प्रमुख नाटककारों में एक माने जाते हैं। इन्हें अपने पूर्वजों की योग्यता और अपने भाषाज्ञान पर गर्व था। इन्हें संस्कृत और प्राकृत पर ही पूरा अधिकार नहीं था अपितु इन्होंने अनेक भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। अप्रचलित एवं प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग इनकी अन्यतम विशेषता है। अलंकार युक्त शब्दों एवं मुहावरा प्रयोग में इन्हें विशेष कुशलता प्राप्त है।

इनके चार नाटक प्रसिद्ध हैं— कर्पूरमञ्जरी (दे.) विद्वशास्र पञ्जिका (दे.) बाल रामायण (दे.) और बालभारत (दे.) इनके अतिरिक्त इनके दो और नाटक रत्नमञ्जरी (दे.) तथा हर विलास (दे.) प्रकाश में आये हैं। इनकी समस्त नाट्यकृतियों पर विचार करने से पिरोल का यह कथन सत्य प्रतीत होता है ये भाषाओं के ज्ञान के प्रयोग में सिद्धरत्न हैं। संस्कृत और प्राकृत दोनों के लिये इनके नाटक अत्यधिक उपयोगी हैं। वैसे तो बाल रामायण व अनेक प्रकरण नीरस एवं उबाऊ हैं, फिर भी उसके ललित तथा प्रचार पूर्ण पद्या में एम प्रकार मिला जाने हैं जो रीतिरिवाज और व्यवहार परम्परा पर प्रकाश डालते हैं।

नाटककार के रूप में उनकी सफलता पर भले ही प्रश्नचिन्ह लगाया जा सके किन्तु भाषा के क्षेत्र में उनकी प्रयोग योग्यता में उनकी सफलता असन्दिग्ध है। उसमें मोहावरों का भली भाँति प्रयोग उनके लालित्य को अधिकाधिक बढ़ाने में सक्षम है।

परवर्ती विचारकों ने इनकी कृतियों से उद्धरण दिये हैं। उनमें कतिपय ऐसे उद्धरण हैं जो प्राप्त रचनाओं में नहीं मिलते। जल्हन ने सूक्ति मुक्तावली में कवियों की प्रशस्ति विषयक कतिपय ऐसे पद्य उद्धृत किये हैं जो वर्तमान कृतियों में उपलब्ध नहीं होते। इन पद्यों में त्रिलोक्यन, गणपति, प्रद्युम्न, भीमट, मायुराज, कादम्बरीराम की प्रशस्तिया आती हैं। हो सकता है ये उद्धरण राजशेखर की ऐसी कृतियों से दिये गये हों जो अब उपलब्ध नहीं होती। भोजराज ने इनकी अष्टदलपत्रलक्षण नामक कृति का उल्लेख किया है। राजशेखर के भौगोलिक ज्ञान के विषय में भी भुवनकोश नामक पुस्तक बतलाई जाती है। इनके वंश में सुरानन्द, ताल, कविराज, इत्यादि के होने का वर्णन किया गया है।

(२) राजशेखर—(नाका) माधवाचार्य ने शङ्करविजय में राजशेखर को केरल का महाराज बतलाया है और कहा है कि उन्होंने स्वयं तीन नाटकों की रचना कर महान शङ्कराचार्य को समर्पित कर दिया था। राजशेखर का एक शिलालेख भी पाया जाता है जो पुरातत्व विज्ञान के आधार पर ९वीं १०वीं शताब्दी का सिद्ध होता है। १६वीं शताब्दी के एक कवि ने लिखा है कि राजशेखर अन्धे थे। तथा उन्हें गंगाधर ने अन्धत्व से छुटकारा दिलाया था। विवेचन से निष्कर्ष निकाला गया है कि राजा राजशेखर प्रसिद्ध कवि राजशेखर से पहले हुये थे। कहा जाता है आत्मबोधेन्द्रसरस्वती की टीका में इनके नाटकों के नाम लिखे हुये हैं।

राज्यश्री—(नापा) बालबलिद में मानवोक्त पात्र। जब शाप (मानवोक्त) कस को प्रसने उसके महल पर आक्रमण करता है तब राज्यश्री उसे रोकती है। किन्तु जब शाप विष्णु की आज्ञा बतला कर अन्दर जाने की अनुमति चाहता है तब वह उसे जाने देती है।

राजसिंह—(नासपा) भास के नाटकों में भरत चाक्य में राजसिंह के एक छत्र शासन की कामना की गई है। इससे सिद्ध होता है ये भास के आश्रयदाता थे। इस नाम के एक राजा सातवीं शताब्दी में दक्षिण में हुये थे। किन्तु भास का समय उनसे बहुत पहले का है। अतः वे भास के आश्रयदाता नहीं हो सकते। कीथ महोदय ने भास के नाटकों के भरत चाक्यों पर गहराई से विचार किया है। कुछ नाटकों में राजसिंह के पृथ्वी पर शासन करते रहने की कामना की गई है। कुछ नाटकों में विपत्ति से पात पाने और शत्रुओं के नाश की कामना की गई है। राजसिंह के एकादश शासन की कामना भी विद्यमान है। इससे सिद्ध होता है कि भास ऐसे राजा के आश्रय में रहे थे जो प्रारम्भ में शासक था, फिर शत्रुओं के दबाव से राज्यव्युत्त हो गया और बाद में पुनः राज्य प्राप्त कर लिया। कीथ के अनुसार गुजरात के धर्म राजसिंह से यह स्थिति मेल खाती है।

रुद्रसिंह का समय और प्रदेश दोनों भास की परिस्थिति से मेल खा जाता है। हो सकता है भास का अभिप्राय इन्ही धरूप से हो।

राजहसीय प्रकरणम्- (नाट्) यह नरसिंहाचार्य (दे) (मुद्रुम्वई वेङ्कटराम नरसिंहाचार्य) लिखित प्रकरण है। नायक युववर्मा और नायिका कर्णाटराज कृष्ण की पुत्री राजहसी। इस शृङ्गारप्रधान रचना में कतिपय निषिद्ध तत्व भी सम्मिलित कर दिये गये हैं जैसे विवाह पूर्व पुत्रास्तति रागमञ्च पर भोजन इत्यादि। इसमें गीतों का बाहुल्य है। इसकी रचना १८८१ ई. के आस पास हुई थी तथा प्रथम अभिनय गोविन्द के कल्याण महात्म्य में सम्पन्न हुआ था।

राज्रीविनी- (नाट्) नारायण शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

राज्यश्री - (नापा) मोहराज परजय (द.) नामक प्रतीक नाटक के राजा विवकचन्द्र की रानी। राजा के कृपामुन्दरी के प्रति प्रेम में यह विघ्न डालती है जिसमें इस सखी रौद्रता का भी सहयोग प्राप्त होता है। किन्तु जब उसे ज्ञात होता है की मोहराज पर विजय प्राप्त करने के लिये राजा का कृपामुन्दरी से विवाह अत्यावश्यक है तब वह विवाह की सहर्ष आज्ञा दे देती है। यह उसकी उदारता का परिचायक है।

राधा- (नापा) पुराण में कृष्ण की सर्वाधिक निकटवर्तिनी प्रेमिका कृष्ण के प्रेम का आलम्बन। राम मण्डल और यात्राओं के अनुराल में झाकियों अभिनयों नृत्यों इत्यादि में सर्वाधिक मन्त्रवर्णी पात्र। राम परिहास आमोद प्रमोद मानलाला दानलाला विशाग शृङ्गार सयोग शृङ्गार का आलम्बन और आश्रय। कृष्णविषयक अनेक नाटकों में इन्हीं अपनाया गया है। कतिपय नाटकों का उत्सर्ग किया जा रहा है।

(१) विष्णुमाधव- (द.) और (२) ललित माधव (द.) में इनकी प्रेम खान्नाओं का चित्रण किया गया है जिनका आश्रय और आलम्बन कृष्ण है।

(३) कृष्णानुभा (द.) इसमें राधा के ईर्ष्या विप्लवमय शृङ्गार का जल्दा चित्रण किया गया है। कृष्ण के पास एक नगा चित्र था जिसमें राधा के मन में ईर्ष्या भाव प्रगट कर दिया। वह ईर्ष्या भाव तब मिटता है जब ज्ञात हो जाता है कि वह चित्र राधा का ही है।

(४) गान्धर्व- (द.) इस मन्त्रवर्णी कृति में राधा और कृष्ण एक दूसरे के मन्त्रवर्णों का भरपूर आनन्द लेते हैं प्रेमिका का परम्पर मनमुगध होता है विष्णु होता है राधा का जाना है मन्त्रिण की मध्यस्थता है वामनमन्त्र के दूर्य है। इसमें राधा के प्रेमिका रूप का अव्यक्त मनोरम रूपका प्रगट हो गई है। दोनों में मनमुगध और उमंग का सम्मिलन के दूर्य चञ्चल अनुभूत है।

(५) गान्धर्व कर्तव्य- (द.) राजा और कृष्ण रागमञ्च पर आते हैं राम परिहास होता है राधा का प्रारम्भ हो जाता है इसमें राजा और कृष्ण एक दूसरे में अटूट हैं।

कृष्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और राधा उनकी शक्ति।

राधाकृष्णविलास नाटकम्- (नाक) तमिलनाडू प्रान्त के अन्तर्गत तजौर के राज परिवार के आश्रित कवियों और विचारकों ने जो साहित्य तैयार किया था उसमें इसका भी नाम है। इसके अतिरिक्त इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

राधामाधवम्- (नाक) ७ अकों के इस नाटक की रचना राधवेन्द्र कवि (दे) ने १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण में की थी। इसमें राधा कृष्ण विलास को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। रसोल्लास महोत्सव के अवसर पर इसका प्रथम अभिनय सम्पन्न हुआ था।

राधावल्लभ त्रिपाठी- (नाका) ये मध्य प्रदेश के बीसवीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने प्रेमपीयूषम् (दे) नामक नाटक की रचना की थी। इनका वाल्मीकि विमर्श नामक एक नाटक और नाट्य मण्डपम् शीर्षक एक ग्रन्थ भी बतलाया जाता है।

राधाविप्रलम्ब- (नाक) यह हेज्जल लिखित कृष्ण विषयक नाटक है। इसका उल्लेख नाट्य दर्पण और अभिनव भारती में किया गया है।

रानी महाम्निचिन्नरसिंह कवि- (नाका) सामान्य रूप से इन्हें रानी चयनुलु भी कहा जाता है। इनका जन्म गोदावरी जिला के वेणुगुमहल नामक गाव में हुआ था। कुछ समय तक विजयानगरम् के आनन्द गजपतिराम के सरक्षण में रहकर ये सन्यासी हो गये थे। इसी शताब्दी में इनका विजय यादवा में देहान्त हो गया था। ये गणित के पूर्ण विद्वान् थे। इन्होंने कला मानोपपत्ति एव तिथिमञ्जरी नामक गणितज्योतिष विषयक दो ग्रन्थ लिखे थे। इनका चित्तूर्यालोक (दे) नामक एक प्रतीक नाटक भी पाया जाता है।

(१) राम- (नाका) दे गुरुराम।

(२) राम- (नाका) येमन्मथोन्मथन (दे) डिम के लेखक हैं। इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

राम- (नापा) रामायण के कथा नायक भगवान् राम भारतीय सस्कृति के अविच्छिन्न और अविच्छेद्य अंग बन गये हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, गुणवान् हैं, पराक्रमी हैं, धर्मज्ञ हैं, कृतज्ञ हैं, सत्यवादी हैं दृढनिश्चय वाले हैं, त्याग और कर्तव्य परायणता की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं, मित्रों के सर्वाधिक हित साधक हैं। जब युद्ध भूमि में क्रोध करते हैं तब देवता भी उनसे डरने लगते हैं। बिना विजय प्राप्त किये लौटते नहीं। प्रजावर्ग में सभी के कुशल धेम का ध्यान रखते हैं। कविवर वाल्मीकि ने उन्हें समस्त गुणों का आकार बना दिया है।

राम का चरित्र असामित काल से कवियों और कलाकारों का उपजीव्य रहा है। हिन्दी में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है कि राम का चरित्र स्वयं में एक महाकाव्य है जो कि किसी भी व्यक्ति का कवि बना देने की शक्ति रखता है-

राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

राम के चरित्र को लेकर निरन्तर काव्य और नाट्य रचनायें होती रही हैं। कतिपय नाट्य रचनाओं में राम के इन्हीं गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

राम—(नापा) भास के अभिषेक (दे) नाटक में एक पात्र। बहा पर वे पूर्ण ब्रह्म हैं विष्णु का अवतार हैं दत्ताओं के भी आराध्य हैं।

राम—(नापा) उत्तर राम चरित्र में नायक। इनका चरित्र समस्त नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक व्याप्त है। समस्त कथानक के यही सहायक हैं। फल के भोक्ता भी येही हैं। इस नाटक में राम के दश आदर्शों का चित्रण किया गया है वे आदर्श हैं— लोक रक्षण एवं आदर्श पति के रूप में उनका चित्रण। लोक रक्षण और लोक रक्षण के लिये उनकी दानवता है— लोकाराधन के लिये स्नेह दया सुख यत्ना तक की सीता को भी छोड़ना पड़े उसको छोड़ने में मुझे कुछ भी पौडा नहीं होगी। यह केवल प्रतिज्ञा नहीं है उसे उन्होंने पूर्णतया कार्य रूप में परिणत करके दिखला दिया। उन्हें जैसे ही यह समाचार मिला कि लाव में रावण के धर पर रही सीता को स्वीकार करने के कारण उनकी निन्दा हो रही है उन्हें सीता परिन्त्या में एक क्षण की भी देर नहीं लगी। उसके लिये उन्हें स्नेह दया सुख सभी कुछ त्यागना पड़ा। ऐसी पत्नी का त्याग कोई संधारण बात नहीं थी जो घर में लक्ष्मी थी नेत्रों के लिये अमृत की सलाई थी जिसके स्पर्श में बन्दन का अवतल रस था। कण्ठ में पड़ी उसकी बाहे मोती की माला थी जिसने राम ने सुख और दुःख में अथवा सम्बन्ध स्थापित कर रक्खा था। राम का दाम्पत्य मुख सभी अवस्थाओं में सहयोगी बन गया था वहाँ उनका हृदय विश्राम पाता था वन में साथ साथ रहने के अवसर पर राम जिसके विषय में कहा करते थे— कि यह मेरा जीवन है, यह मेरा दूसरा हृदय है यह नेत्रों के लिये अमृति और शरीर स्पर्श में अमृत है। राम ने वियोग व्यथा पत्नी की अदृष्टि राम का चिरह अक्षित देखकर पत्थर भी हो पड़ते थे, वक्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता था। उस अपने जीवनसार प्रियतमा के निरवधि वियोग को बिना किसी सकल्य विवलय के सह्य स्वीकार कर लिया। सबसे बड़ी बात यह थी कि राम ने इस विषय में जनता के प्रति कुल बिना आलोचना को सहन नहीं किया और जनता के अविश्वास का समर्थन ही किया।

इन्ना बड़ा त्याग वस्तुतः लाव में दुर्लभ है। अन्त में भी जब नाटक में माता को निर्णयता सिद्ध हो जाती है तब राम यही कहते हैं कि यह मुझ क्या दिखला रहा है— यह तो जनता का दिखलावा।

राम को एक अन्य बहुत बड़ा विश्रुत है उनका प्रती हृदय। परिन्त्या के बावजूद भी जब वे जनमन में शत्रु का वध करन जाते हैं उन्हें यह भी नहीं मन्मथ कि

सीता कहा है— जब जीवित है भी या नहीं। जनस्थान (दण्डक वन) में पूर्ण परिचित स्थाना और पशुपक्षियों को देखकर राम को बार बार मूर्छा आती है। सीता अदृश्य रूप में उन्हें पुनरुज्जीवित करती है। 'राम का हृदय विदीर्ण हो रहा है, शरीर के बन्धन ढोले पड़ते जा रहे हैं, ससार सूना सूना सा दिखलाई पड़ता है निरन्तर विरह ज्वाला से हृदय जल रहा है। अंधेरे अन्धकार में अन्तरात्मा डूबती चली जा रही है। राम इतने क्षीण हो गये हैं कि अपने घर वालों द्वारा भी अनुभाव के कारण ही पहिचान में आते हैं।

राम की वियोगजन्य पीड़ा के द्वारा, उनकी एक पत्नीव्रत साधना और आदर्श दाम्पत्य प्रेम को जितना मुखर रूप में इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है उसकी समता दुर्लभ है। इसीलिये यह नाटक करुण रस का अनुपम निदर्शन बन गया है—

करुणे क्यों रोती है ?

उत्तर में और अधिक रोई।

मेरी जो विभूति है

उसको क्यों भवभूति कहै कोई।

साहित्य में अनुकूल नायक का उदाहरण बहुत कम मिलता है, निस्सन्देह राम उसका निदर्शन है। जैसी परिस्थिति में राम पड़ गये हैं वैसी में कोई भी विचलित हो सकता था। किन्तु राम ने यज्ञ के लिये भी सीता की स्वर्णमयी मूर्ति बनवा ली है जो एकमात्र उनके विनोद का साधन है।

राम की इस भावुकता का क्षेत्र इतना व्यापक है कि पशु-पक्षी यहां तक की वृक्ष और पर्वत भी उसका आलम्बन बन जाते हैं। राम का प्रेम विषयक आदर्श बहुत ऊंचा है। इसमें उच्छृङ्खल वासना का नाम भी नहीं। यह हृदय की एक जन्मजात ग्रन्थि है जो जगन्निघन्ता से वरदान रूप में प्राप्त हुई है जिसमें बाहरी उपाधियों का तो कोई महत्व ही नहीं। इसमें पुट पाव के समान जलते रहने में भी एक आनन्द है।

अविकल्प्य होना राम के चरित्र की अन्यतम विशेषता है। वे अपनी प्रशंसा और दूसरों के दोष सुनने में एकदम कता जाते हैं और उस विषय में किसी को कुछ बहने का अवसर ही नहीं देते। जब कैकेयी का वृत्तान्त सामने आता है तब वे एकदम आगे बढ़कर दूसरे दृश्य देखने लगते हैं। लक्ष्मण के यह कहने पर 'इय मन्यता' वे एक दम शङ्खवेरपुर के दृश्य देखने लगते हैं। भवभूति राम के आदर्श रूप को सुस्थिर करने में सर्वथा पूर्ण सफल हुये हैं इसमें सन्देह नहीं। राम के चरित्र का भवभूति की दो पक्तियों में पूरा समाहार हो जाता है—

वज्रादपि कठोरणि मृदूनि कुसुमादपि।

लोकोत्तराणां चेतसि को हि विज्ञानुमर्हति॥

राम— (नाया) प्रतिमा नाटक में कथानायक। कवि ने वात्सीयिक के राम का चरित्र

कुछ अधिक परिमार्जित रूप में प्रस्तुत किया है। वन गमन के अवसर पर रामायण में राम के चरित्र में जो हल्की सी आक्रोश की छाया दृष्टिगत होती है वह इसमें नहीं है। वे प्रसन्नता के साथ पितृशासन को स्वीकार कर लेते हैं और उसके पूर्ण रूप से पालन करने की चेष्टा करते हैं। उन्हें इसमें कोई नई या आश्चर्यजनक बात मालूम नहीं पड़ती कि पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करता है।

राम- (नापा) मायराज (दे) लिखित अनुपलब्ध नाटक उदात्तपथव (दे) का चरित्र नायक पात्र। उद्धरणों से ज्ञात होता है कि कवि ने इस पात्र के चरित्र चित्रण में कहीं कहीं कुछ परिवर्तन किये हैं।

(१) **रामकवि-** (नाका) ये करयप गोत्रीय राम कृष्ण के पुत्र तथा गुप्तूर जिले के लिंगम गुप्त स्थान के निवासी थे। इनका समय १५५० के आस पास है। इनका लिखा शृङ्गार रसोदयभाण (दे) प्राप्त होता है।

(२) **रामकवि-** (नाका) ये मालावार के राजकुमार थे। इनका लिखा सुवाला वक्रनुण्ड (दे) नाटक प्राप्त होता है।

(३) **रामकवि-** (नाका) मन्मथमन्यत नामक एक डिम के लेखक बतलाये जाते हैं जिसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है। (दे मन्मथमोदन)

रामकिशोर- (नाका) ७ अकों के लक्ष्मीस्वयंवर के लेखक। इनका समय है १९वीं शताब्दी।

रामकिशोर मिश्र- (नाका) एटा जिला उत्तर प्रदेश में माता कल्यावती तथा पिता रौनीलाल से इनका जन्म सन् १९३८ में हुआ था इनकी दो नाट्य कृतियां प्राप्त होती हैं- अद्भुतदानम् और ध्रुव। इनके अतिरिक्त इनकी कतिपय अन्य रचनाये हैं- गीत जवाहर, किशोरकाव्यम्, अन्योक्तिशतकम्, बालचरितम्, विद्योत्तमा, अन्तर्दोह। ये सम्प्रति मेरठ विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर कार्य करते हैं।

रामकृष्ण- (नाका) इनका लिखा उत्तरचरित (दे) राम के उत्तरकालीन चरित्र पर आधारित नाटक है। इन्होंने इस नाटक की सम्पत्ति पर पुष्पिका में स्वयं अपने पूर्वजों का परिचय दिया है जिसके अनुसार ये वनसगोत्रीय जगन्नाथ भट्टारक के पुत्र थे। इन्होंने अपने पूर्वजों की विद्वता एव दानशीलता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इन्होंने भवभूति उपनाम धारण किया था। सम्भवत इसलिये इन्होंने भवभूति के उत्तर रामचरित की स्पर्धा में उत्तरचरित की रचना की थी। ये रामेन्द्र सरस्वती के शिष्य थे। इनका समय १७वीं १८वीं शताब्दी बतलाया जाता है।

रामकृष्ण- (नाका) कालिकानन्दकौतुक (दे) प्रसन्न के लेखक।

रामकृष्ण- (नाका) भापालकेलिकान्द्रिका के लेखक। इनका समय अज्ञात है। इनका निश्चय है कि इनका समय महानाटक और भागवत के बाद का है।

रामकृष्ण- (नाका) प्रभावती प्रद्युम्न (दे) नाटक के लेखक ।

रामकृष्ण शर्मा- (नाका) ये २०वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं । इनका लिखा बंगलादेशोदयम् नाटक बनारस से प्रकाशित हो चुका है ।

(१) रामचन्द्र- (नाका) ये १६वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं । इनका लिखा वासन्तिका (दे) प्रकाश में आया है ।

(२) रामचन्द्र- (नाका) ये प्रसिद्ध जैनाचार्य हैमचन्द्र के शिष्य हैं । कहा जाता है ये एकाक्षी थे । कहा जाता है इन्होंने अपनी एक आँख बचपन की शरारतों में फोड़ ली थी । कुछ लोगों का कहना है कि दण्ड स्वरूप इनकी आँख फोड़ी गई थी । हैमचन्द्र का शिष्य होने से इनका समय १२वीं शताब्दी ठहरता है । इनको प्रबन्ध शतकार कहा जाता है । इसका आशय यह है कि इन्होंने १०० पुस्तकें लिखी थी जिनमें कुछ नाटक भी थे । इन्होंने अपने सहपाठी अथवा शिष्य गुणचन्द्र के साथ सम्मिलित रूप में नाट्य दर्पण की रचना की जिसमें अनेक रचनाओं और रचनाकारों के साथ स्वलिखित नाटकों का भी वल्लेख किया गया है । इन नाटकों की संख्या नौ दस है । इनका विवरण इस प्रकार है- नलविलास, रघुविलास, राघवाभ्युदय, यादवाभ्युदय, निर्भयभीम, वनमालिका, मल्लिकामकरन्द, सत्यहरिश्चन्द्र और कौमुदीमित्रानन्द (इन नाटकों का यथा स्थान परिचय दिया गया है ।)

रामचन्द्र- (नाका) १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुसलीपट्टम् के निकट आदि पल्ली में रहते थे । कौण्डिन्य गोत्रीय कोराडा परिवार के लक्षण पिता और सुवामा माता से उत्पन्न हुये थे । नोविलकालेज मुसलीपट्टम् में संस्कृत के अध्यापक थे । इनकी लिखी पुस्तकें हैं- कुमारोदयचम्पू, एक लम्बा काव्य देवीविजय और शृङ्गारसुधारणव (दे) नामक भाण ।

(४) रामचन्द्र- (नाका) ये १८वीं शताब्दी के बंगाल के कवि थे । इनका ८ अकों का घण्टा चित्र पाक ऐन्दवानन्दम् (दे) नामक नाटक बतलाया जाता है ।

रामचन्द्र वेल्ताल- (नाका) १८वीं शताब्दी के दक्षिण भारतीय कवि । इनकी दो नाट्य कृतियाँ प्राप्त होती हैं- श्रोकृष्णाविजय (दे) व्यायोग और सरसकविकुलानन्द (दे) भाण । मैसूर के कृष्णराज द्वितीय के सेनापति देवराज ने इनका सम्मान किया था । ये वरद देशिक के शिष्य थे ।

रामचन्द्रशास्त्री- (नाका) ये कौशिक गोत्रीय कृष्ण भट्टार के पुत्र थे । इनका जन्म पालघाट में हुआ था । ये सर्वशास्त्र निष्णात हो गये थे और मौमासा के विषय में इन्हें अनेक उपाधियाँ मिली थी । ये मद्रास विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे । इनका लिखा मणिमञ्जूषा (दे) नामक नाटक प्राप्त होता है ।

रामचन्द्रशेखर- (नाका) तम्रौर के तुलज (१७६५-९७) के समय के एक नाटककार । ये व्याकरण में निष्णात थे और इन्होंने पुण्डरीक याग किया था । इनका लिखा

७ अकों का कलानन्दक (दे) नाटक पाया जाता है।

रामचन्द्र सुमनसशमणि- (नाका) दे गीतदिगम्बर।

रामचन्द्रानन्दम्- (नाक) यह उड़ीसा निवासी १५वीं शताब्दी के नारायणानन्द (दे) का लिखा नाटक है।

रामचरितमानसम्- (नाक) तुलसीलिखित रामचरित मानस का डा रमाचौधरी द्वारा १२ दृश्यों में नाटकीकरण। तुलसीकृत छन्दों का संस्कृत छन्दों में भाषान्तरण।

रामजन्मभाषण- (नाक) यह रामचन्द्र (दे) का लिखा भाषण है। जिसकी रचना १८७५ में प्रभु नारायणसिंह के पुत्रजन्म के अवसर पर की गई थी।

रामजय, तर्करत्न- (नाका) ये बंगालनिवासी नाटककार हैं। इनके लिखे 'कालविलासम्' नाटक का उल्लेख किया गया है। इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

रामजीवनमिश्र- (नाका) ये मध्यप्रदेश के बीसवीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। इनके लिखे 'सारस्वतम्' नाटक का उल्लेख किया गया है।

रामतारण शिरोमणि- (नाका) ये बंगाल के कवि हैं। इनका लिखा प्रद्युम्न विजय (दे) नाटक बतलाया जाता है।

रामदत्तपन्त- (नाका) १९वीं शताब्दी के अन्त और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अल्मोड़ा में इनका मूल निवासस्थान था। ये बरेली कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। इनका लिखा अपरपञ्चरात्र (दे) नाटक प्राप्त होता है जो भास के पञ्चरात्र (दे) के आधार पर उसी विषय में लिखा गया है।

रामदासड़ा- (नाका) ये बिहारी कवि हैं। इनका आनन्दविजय नाटक बतलाया जाता है।

रामदेव- (नाका) इनको रामदेव तथा चिरजीव इन नामों से भी याद किया जाता है। ये शतावधानी राघवेन्द्र भट्टाचार्य के पुत्र और काशीनाथ के पौत्र थे। बंगाल में राधापुर इनका निवासस्थान था। झांझ के नायब दीवान घशवन्त सिंह इनके आश्रयदाता थे। इनका समय १८वीं शताब्दी का मध्य भाग है। इनके कई काव्य ग्रन्थ हैं। काव्यशास्त्र एवं छन्द शास्त्र पर भी इनकी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। नाटक के क्षेत्र में 'विद्वन्मोद तरंगिणी' (दे) इनकी एक रचना है। इनकी शतावधानी की वृत्ताधि प्राप्त थी।

रामदेव व्यासश्री- (नाका) १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में रामपुर के कल्चुरी राजाओं के आश्रय में रहने थे। इन्होंने तीन नाटकों की रचना की थी- रामाष्टुदय (दे) पाण्डवाष्टुदय (दे) और सुभद्रापरिणय (दे)।

रामनाथ- (नाका) इनका लिखा चन्द्रशेखर नामक एक चम्पू ग्रन्थ और मुक्तावली (दे) नामक एक नाटक प्रज्ञ होता है। इनकी मृत्यु १९१५ के आसपास हो गई थी।

इनकी रचनाओं की पाण्डुलिपियाँ इनके पुत्र गंगाधर के पास सिटी प्रेस गोरखपुर में विद्यमान हैं।

रामनाथ शास्त्री- (नाका) मणिमञ्जूषा (२) (दे) नाटक के लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

रामनाथ दातव्य चिकित्सालय- (नाकू) यह प्रहसन जैसी रचना १८९४ में जीवन्माय तीर्थ द्वारा प्रस्तुत की गई थी। कोई शरावी रामनाथ दातव्य चिकित्सालय खोलकर बैठ गया है और शय्यामूत्र, गुप्त रोग, राजयक्ष्मा, शर्करा की एक ही दवा बतलाता है— तुलसी वृक्षों के झुरमुट में बैठकर राम नाम का जाप करना।

रामपाणिवाद- (नाका) इनका वास्तविक नाम कुजुब्जिनम्बियार था। इन्हें संक्षिप्त रूप में राम भी कहा जाता है। इनका जन्म कोचीन स्टेट में कुनकुलम् के निकट मगत ग्राम में क्षत्रिय परिवार में १८वीं शताब्दी में हुआ था। ये नारायण भट्ट के शिष्य थे और मालाबार के उत्तम कवियों में माने जाते थे। संस्कृत के अतिरिक्त ये प्राकृत में भी काव्य रचना करते थे। इन्होंने नाट्य कृतियों के अतिरिक्त महाकाव्य, शास्त्रीय ग्रन्थ, सौंदर्य तथा टीका ग्रन्थ भी लिखे हैं। इनके नाट्यग्रन्थ हैं— ललित राघवीय, लीलावती, पादुका पद्मभिषेक, सौताण्यव इत्यादि। इन्होंने चन्द्रिका नामक एक चौपी और मदनकेतु चरित्र नामक एक प्रहसन भी लिखा था।

रामभट्ट- (नाका) मदालस (३) के लेखक।

(१) **रामभट्ट-** (नाका) इनको केवल राम या रामभट्टमुनि के नाम से भी जाना जाता है। ये देवसूरि के शिष्य थे जो स्वयं गुरुशिष्य की जैन परम्परा में जय प्रपसूरि के शिष्य थे। देवसूरि की मृत्यु ११६९ में हुई थी। इस प्रकार इनका समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध सिद्ध होता है। इनके लिखे नाटक प्रबुद्ध रौहिणेय (दे) का प्रथम अभिनय श्रीयुगादिदेव तीर्थंकर ऋषभदेव के उत्सव के अवसर पर हुआ था। पार्श्वचन्द्र के दो पुत्रों यशोवीर और अजयपाल के बनवाये मन्दिर में उक्त उत्सव का आयोजन किया गया था। इस मन्दिर का निर्माण १२वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। इससे भी इनका १२वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में होना सिद्ध होता है। सन् १२४२ और १२६२ (सन् ११८५ तथा सन् १२०५) के शिलालेखों में चौहान सरदारों की वदान्यता का वर्णन है जिससे सिद्ध होता है कि इनके लिखे नाटक का भी समय विक्रम की १३वीं शताब्दी हो है।

(२) **रामभट्ट-** (नाका) शृङ्गार तरंगिणी भाण के लेखक।

रामभद्र दीक्षित- (नाका) इनका जन्म कुम्भकोणम् के निकट कन्दमणिक्य में चतुर्वेदी ग्रन्थन लोगों के परिवार में १७वीं शताब्दी में हुआ था। ये १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक विद्यमान रहे। इनके पिता का नाम यज्ञराम था जो स्वयं प्रकाण्ड पण्डित

और साहित्य साधक थे। इनकी शिक्षा सन्यासी बालकृष्ण और कोक्कनाथ के अन्तेवासित्व में हुई थी। नीलकण्ठ की कविता ने इनके अन्दर साहित्य चेतना जागृत की थी। इनके सभी भाई बहन साहित्यकार थे। इन्हें तजौर के राजा शाहजी ने आश्रय प्रदान किया था। इनके शिष्य इनका विशेष आदर करते थे और इन्हें प्रेम में अध्या कहा करते थे।

इनकी रचनायें अनेक विधाओं में प्रवृत्त हुई थीं। जानकी परिणय (दे) से इन्हें ख्यति प्राप्त हुई थी। इसके इतिरिक्त इन्होंने शुक्लरतिलक (दे) नामक एक भाण की भी रचना की थी जिसे इनके शिष्य अध्याभाण कहा करते थे और इस नाम से यह भाण साहित्य जगत् में प्रसिद्ध हुआ। इनकी नाटकेतर रचनायें हैं- पतञ्जलि चरित, रामवाणस्तव, रामचापस्तव, रामाष्टाशस, प्रासस्तव, विष्णुगर्भस्तोत्र, पर्यायोक्त निम्बन्द, रामभद्रशतक और तुणीरस्तव, १६दर्शन सिद्धान्त, परिभाषावृत्तिव्याख्यान इत्यादि।

राम माणिक्य- (नाका) ये बंगाली कवि हैं। इन्होंने कृतार्थ माधव नामक नाटक की रचना की थी। इनको कविराज की उपाधि प्राप्त हुई थी।

रामराज्याभिषेक- (नाक) यह वीरराघव (दे) लिखित ७ अंकों का एक नाटक है। जिसमें वस्तु के रूप में रामायण कथा का उपादान किया गया है।

ओरियण्टल मैन्सुक्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ सस्कृत मैन्सुक्रिप्ट में इसका उल्लेख स. XXI ८४८४ पर किया गया है।

रामराय (वेल्समकोण्डा) - (नाका) ये मोहनदास और हनुमायम्मा के पुत्र थे। इनका जन्म गुप्पूर जिले में १८७५ में मद्राज गोत्र में हुआ था तथा १९१३ में इनका देहान्त हो गया। दर्शन पर इनकी कई पुस्तकें हैं। इन्होंने कई चम्पू काव्य तथा दूसरे पद्यकाव्य लिखे हैं, साथ ही कन्दर्प (दे) नामक एक भाण भी इनके नाम से प्रसिद्ध है।

रामवनगधनम्- (नाक) हा वनमाला लिखित नाटक।

रामवर्ममहाराज- (नाका) ये केरल के २०वीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने चन्द्रिकाकलापीड (दे) नामक एक नाटक लिखा था। इसके अतिरिक्त इन्होंने वेदान्त परिभाषासंग्रह नामक एक दार्शनिक ग्रन्थ भी लिखा था।

रामवर्म (युवराज) - (नाका) दे गोदावर्म युवराज।

रामवर्म वशिष्ठयुवराज- (नाका) १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ये द्रावन्कोर के युवराज थे। इनके लिखे दो नाटक और दो चम्पू प्राप्त होते हैं-

(१) रविविणी परिणय नाटक। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

(२) शङ्गा सुधाका नाटक- यह द्रावन्कोर के पुस्तकालय समर में ७९ स पर उल्लिखित है।

(३) कर्मेन्द्रेय विजय चम्पू- इस का प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

(४) सन्तानगोप्य चम्पू- यह द्रावन्कोर पुस्तकालय संग्रहालय स. ८१ पर सगृहीत

है।

रामवर्म विलासम्- (नाक) बालकवि लिखित ५ अकों का नाटक जिसमें कोचीन के राजाराम वर्मा का चरित्रचित्रित किया गया है। इसमें रामवर्मा के प्रणय और विजय का कथानक ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी में आता है। इसकी रचना १६वीं शताब्दी में हुई थी।

(१) **रामवर्मा-** (नाक) इन्हें महाकवि कुञ्जिकुट्टमम्बिरान के नाम से भी याद किया जाता है। युवराज रामवर्मा से इनका निकट का सम्बन्ध था तथा ये क्रैन्नोर के निवासी थे। इनका समय १८६५ से १९१३ तक था। इनके लिखे दो व्यायोग प्रकाश में आये हैं- किरातार्जुनोय (दे) और जरासन्धवध (दे)।

(२) **रामवर्मा-** (नाक) ये कोल्लम के राजा शिववर्मा और केरल वर्मा के पतीजे थे। इनका लिखा चन्द्रिकाकलापीड नामक नाटक प्रकाश में आया है।

(३) **रामवर्मा-** (युवराज) ये क्रैन्नोर राजपरिवार के एक युवा सदस्य थे। इनका समय १९वीं तथा २०वीं शताब्दी है। इनको कवि सार्वभौम कोञ्चुनितम्पुरान के रूप में याद किया जाता है। जब प्रिंस आफ वेल्स भारत आये थे तब उनसे इन्हें खिल्लत प्राप्त हुई थी। इनके काव्य त्रिपुरदहन में उच्चकोटि की कविता के दर्शन होते हैं इन्होंने दो नाट्यग्रन्थ भी लिखे थे- अनगविजय (व्यायोग) (दे) और विटराजविजय (भाण) (दे) इनकी कतिपय अन्य रचनाये ये हैं- वल्ल्युदभवम् विप्रसन्देश, देवदेवेश्वरशतकम्, उत्तररामचरितम् और वाणयुद्धचम्पू।

रामविलासभाग- (नाक) तमिलप्रदेश के राज्याध्यक्षों के आग्रह में सचिव साहित्य के अन्तर्गत इस रचना का भी उल्लेख किया गया है। इसका लेखक और रचनाकाल दोनों अज्ञात हैं।

रामविषयक नन्द्यकृतिया- (नासा) अद्भुतदर्पण (महादेव) अनर्घराघव (गुराणि) अभिनव राघव (श्रीरस्वामी), अभिरामणि (सुन्दरमिश्र) अभिरामराघव (अनपोतनायक) अभिषेक (भास) अमोघराघव, आज्ञनेयविजय (भाष्यकार) उत्तरचरित (रामकृष्ण भवभूति), उत्तररामचरित (भवभूति), उन्मत्तराघव (पास्कर भट्ट), कुशकुमुद्वीथम् (अतिरात्रयञ्जन), कुशलविविजय (वेङ्कटकृष्ण) कृत्याराघव, छलिताराम, जनकवानन्दन (नृसिंह) जानकीपरिणय (रामभद्र दीक्षित), जानकीराघव, निर्दोषदशरथ प्रणिमा (भास), प्रपन्नविभूषण (लक्ष्मण सूरि) प्रसन्नराघव (जयदेव) प्रौढाभिराम (वेङ्कटनाथ), बालरामायण (राजशेखर), महानाटक (हनुमान), मायापुष्पक, मारीचवञ्चितक, मुदितराघव (सलकृष्ण), रघुवीरचरित (चक्रवर्ती वेदान्त सूरि) रामराज्याभिषेक (वीरराघव) रामाभिनन्द, रामायणनाटक (सोमेश्वरदेव), वालिवध, सीतानन्द (राताचार्य), सीताराघव (रामप्राण्णिकार) हनुमन्नाटक (हनुमान) हर्षावसान (कन्हैयालाल पणनैर्य)

(१) रामशास्त्री- (नाका) सोण्ठीभद्रादि रामशास्त्री के नाम से प्रसिद्ध ये गोदावरी जिला के पीठापुर नामक स्थान के रहने वाले वैदिक ब्राह्मण थे। गौतमगोत्र के गगारामय्या इनके पिता थे। ये सस्कृत के एक बड़े विद्वान थे और उर्लम तथा नक्कवरम् के जमीन्दारों के आश्रय में रहते थे। इनका लिखा एक काव्य श्रीराम विजय और तथा सवरासुर विजय नामक चम्पू के अतिरिक्त मुक्तावली (दे) नामक एक नाटक भी बतलाया जाता है। इनका समय है १८५६ से १९१५ ई।

(२) रामशास्त्री (मण्डिकल) - (नाका) इनका लिखा भैमीपरिणय (दे) गवर्नमेण्ट प्रेस मैसूर से प्रकाशित हो चुका है। कृष्णराज के समय में ये मैसूर राज्य दरबार के प्रधान पण्डित श्रीराम शास्त्री के पुत्र थे और पिता के बाद स्वयं उसी पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे। इनकी लिखी दो और पुस्तकें प्रकाश में आई हैं- मेघप्रतिसन्देश जो मेघदूत के परिशिष्ट के रूप में लिखा गया है और कुम्भाभिषेक चम्पू। ये पुस्तकें मद्रास से निकलने वाले सहृदय सस्कृत जर्नल में प्रकाशित हुई हैं।

रामसिंह- (नाका) जन्मकी राघव (दे) नाटक का लेखक इन्हें बतलाया जाता है। इनका समय १७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है और इनके पिता का नाम जयसिंह था।

(१) रामस्वामी शास्त्री- (नाका) के सुन्दरम् और चम्पकालक्ष्मी के पुत्र थे। जि जज के रूप में कार्य करते थे। सस्कृत साहित्य की इनकी समीक्षा आनन्द से ओतप्रोत रहती थी। इन्होंने रतिविजय (दे) नामक एक छोटा सा नाटक लिखा था।

(२) रामस्वामी शास्त्री- (नाका) उषापरिणय (दे) नाटक के लेखक। इनकी एक दूसरी वृत्ति सीताचम्पू भी है। इनकी मृत्यु १९१८ में हो गई थी।

रामाङ्क- (नाका) धर्मगुप्त लिखित नाटिका। इसकी रचना १४वीं शताब्दी में हुई थी। कैटेसागस कैटेलागोम १२०८ पर इसका उल्लेख किया गया है। यह चार अकों का रामायण कथापरक नाटक है।

रामानन्द- (नाका) ये त्रिपाठी वरा के सरपूषातीण ब्राह्मण थे। इन्होंने दाराशिकोह से 'विविधविद्याचमत्कारपाणत' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इन्होंने सिद्धान्तकौमुदी पर तत्त्वदीपिका नामक टीका भी लिखी थी। इनका हास्यसागर (दे) शीर्षक ग्रहसन प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नाटकेतर कृतिया भी इनके नाम पर पाई जाती हैं।

रामानन्द- (नाका) एक अप्राप्त श्रीगदित उपरूपक। इसका उल्लेख राम काव्यों में किया गया है। शारदाजनय ने इसे श्रीगदित का उदाहरण माना है। कृष्णामाचार्य ने इसका समावेश प्रकरणों में किया है। शिगभूपाल के रसार्णवमुद्राकर में भी इसका उल्लेख किया गया है।

रामानन्दराय- (नाका) ये चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी थे। इन्होंने १४८० में उड़ीसा क राजा प्रतापरद्रदेव के आदेश से ५ अकों का बगन्नाथवल्लभ (दे) नामक नाटक

लिखा था। गोविन्दवल्लभ (दे) नाम का नाटक भी सम्भवत इन्ही का है।

(१) रामानुज- (नाक) त्रिवेल्गो जि विंगलपुट के निवासी वधूल गोत्रो शरणमाचार्य के पुत्र थे। इनका लिखा वसुलक्ष्मीकल्याण नामक नाटक प्रकाश में आया है। इनकी वार्धिकन्यापरिणय नामक एक नाट्यकृति भी बतलाई जाती है। इनके दूसरे ग्रन्थ हैं- वीरराघवकनकवल्लीविवह वेदपादरामायण और रामायणचम्पू। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

(२) रामानुज- (नाक) इनका लिखा विवेकविजय एक प्रतीक नाटक है। इस नाटक का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल मैन्स्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ सस्कृतमैन्स्युस्क्रिप्ट में ८५२१ सख्या पर किया गया है।

रामानुजाचार्य द्वी- (नाक) इनका जन्म मद्रास के छत्र नामक गाव में हुआ था। इनको सर्वशास्त्रपारङ्गत, सस्कृतमहाकवोश्वर, कविरत्न, साहित्यभास्कर आदि अनेक उपाधिया प्राप्त हुई थीं। इन्होंने रूपक के विभिन्न अनेक भेदों पर एक एक कृति प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। वे कृतिया इस प्रकार हैं- (१) नाटक- कलिकाकोलाहल, (२) प्रकरण- आत्मावली परिणय, (३) भाण- श्रीनिवास विलास, (४) व्यायोग- महादेशिका चरित, (५) समवकार- लक्ष्मीकल्याण, (६) डिम- दक्षमरवरधण, (७) ईहामृग- नहुषाभिलाष, (८) अक या ठत्सृष्टिकाङ्क- अन्यायराज्य प्रध्वसन (९) वीथी- मुनिद्वयजय, (१०) प्रतीक नाटक- वाणीपणिमहण।

इनका लिखा कोई ग्रहसन ज्ञात नहीं है। प्रतीक नाटक को जोड़कर १० की सख्या पूरी की जा सकती है। इन नाटकों के अतिरिक्त इनका लिखा रुक्माङ्गद चरित भी बतलाया जाता है। नाटकेतर साहित्य में इनका लक्ष्मीसहस्रनाम स्तोत्र भी बतलाया जाता है।

इनकी रचनाएँ प्रकाशित नहीं हुई हैं। कहा जाता है ये सब रचनाएँ अयोध्या में सरकृतम् पत्रिका के सम्पादक प बालीप्रसाद त्रिपाठी के यहाँ कुछ समय पहले तक सुरक्षित थीं। कहा नहीं जा सकता कि अब इनकी स्थिति क्या है।

रामाभिनन्द- (नाक) रामविषयक एक नाटक जिसका उल्लेख मात्र मिलता है।

रामाभिषेक- (नाक) चौदहवीं शताब्दी के नैपाली कवि धर्मगुप्त (दे) लिखित नाटक।

(१) रामाभ्युदय- (नाक) व्यास श्री रामदेव (दे) लिखित छान्दा नाटक। यह नाटक महाराणा मेर के शासनकाल में प्रकाश में आया। निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसकी रचना छान्दा रूप में ही हुई थी। इसमें लका पर राम की विजय सीता की अग्निपरीक्षा और उनके अयोध्या लौटने का अंकन किया गया है।

(२) रामाभ्युदय- (नाक) इस नाटक का उल्लेख दशरूपक की टीका में धनिक ने अवमर्श सन्धि के भेद छलन के उदाहरण में और अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती के

१९वें अध्याय में किया है।

(३) रामाभ्युदय—(नाक) यशोवर्मा (दे.) लिखित नाटक। इस नाटक से आनन्दवर्धन, धनिक और विश्वनाथ ने उद्धरण दिये हैं जिससे ज्ञात होता है कि यह एक उच्चकोटि का नाटक है। शारदाजनय के अनुसार इस नाटक में ६ अंक हैं। किन्तु अभीतक यह नाटक उपलब्ध नहीं हुआ है। आनन्दवर्धन ने नाटक की प्रस्तावना में एक पद्य उद्धृत किया है। पूरा पद्य भी प्राप्त होता है। इससे नाटक की विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। उस पद्य के अनुसार 'प्रकृतिषों की दृष्टि से वाणी का औचित्य, सर्वत्र पात्रानुकूलता, अपने अवसर पर रसकी पुष्टि, कथामार्ग का अतिक्रमण न करना, प्रस्तुत की सामग्री कल्पना में शुद्धि और शब्द तथा अर्थ की प्रौढ़ता इनके अतिरिक्त ध्यान देकर विद्वानों द्वारा परिभाषित की प्रेरणा— बस ये ही बातें हमें अभिष्ट हैं।' इससे ज्ञात होता है कि कवि ने रामचरित में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया है। प्रचलित रामचरित को लेकर ही नाटक की रचना की गई है।

रामायण नाटक—(नाक) यह सोमेश्वर (दे.) लिखित १३वीं शताब्दी का नाटक है। इसका उल्लेख बम्बई प्रदेश की संस्कृत पाण्डुलिपियों की पैटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट में खण्ड ३ स ८९६ पर किया गया है।

रामायण नाटकम्—(नाक) १४वीं शताब्दी के नेपाली कवि धर्मगुप्त (दे.) का लिखा नाटक।

रामाराधा—(नाक) यह कृष्णविषयक नाटक बतलाया जाता है। शारदाजनय के भावप्रदर्शन में इसका उल्लेख किया गया है। इसके लेखक तथा समय के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। निश्चय ही यह शारदाजनय (१२वीं १३वीं शताब्दी) के पदों की रचना होगी।

रामावतार शर्मा—(नाक) अपने समय के उद्भट विद्वान थे। इनका जन्म बिहार के छप्पा जिले में सन् १८७७ में हुआ था और ये १९२८ तक विद्यमान रहे। इनके पिता देव नारायण और माता गङ्गादेवी थी। इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त थी। पटना कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर और हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में प्राच्य विभागाध्यक्ष के पदों को इन्होंने अलंकृत किया था।

इनका साहित्य बहुमुखी था और साथ ही इनकी साहित्य सेवायें भी बहुश्रेष्ठ व्यापित थीं। ललित साहित्य की दिशा में इन्होंने नाटक, गीत, काव्य निबन्ध इत्यादि तो लिखे ही थे दर्शन के क्षेत्र में भी इनका लिखा परिभाष्यदर्शन अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने संस्कृत विश्वकोश की भी रचना की थी। इनका वाङ्मयांगव नामक एक संस्कृत ज्ञानकोश ज्ञानमण्डल स प्रकाशित हुआ था। भारत के इतिहास पर भी इन्होंने लिखा था और अनेक गोप्य प्रबन्धों की रचना का भी इन्हें श्रेय प्राप्त है। एक पत्रिका का भी इन्होंने सम्पादन

किया था। सस्कृत के छात्र और विद्वान गौरव के साथ इनका नाम लेते थे कहा जाता है इन्होंने केवल १५ वर्ष की आयु में धीरनैषध (दे.) नामक सस्कृत नाटक की रचना की थी। बिहारराष्ट्रभाषापरिषद् की ओर से रामावतार शर्मा ग्रन्थावली के नाम से इनकी कृतियों का प्रकाशन किया गया है। हर्षनैषधीयम् नाम का इनका एक अन्य नाटक भी बतलाया जाता है।

रामावदान- (नाकू) नृत्यगोपाल कविरत्न लिखित नाटक।

रामिल- (नाका) शूद्रककथा (दे.) के लेखक। इनका नाम सोमिल के साथ लिया जाता है। सम्भवतः ये दोनों सगे भाई थे इनकी कोई रचना अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। इनका उल्लेख कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में किया है और इन्हें कविपुत्र कहा है। राजशेखर ने इन्हें शूद्रक कथा का लेखक बतलाया है जो शृङ्गार, वीर दोनों रसों की प्रधानता लेकर चलने के कारण इस रचना को अर्धनारीश्वर को उपमा दी गई है। कृष्णामाचार्य ने लिखा है कि गुरुलमालिका पर आत्मबोधेन्द्र सारस्वती की टीका में रामिल के मणिप्रभा नाटक का उल्लेख किया गया है और उससे उद्धरण दिये गये हैं। इनके अनुसार रामिल और सोमिल आदि शङ्कराचार्य की २०वीं पीढ़ी में उत्पन्न अर्पक शङ्कर के समसामयिक थे।

रामेश्वर- (नाका) ये १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता रामदेव तर्कवागीश थे और आश्रयदाता मान के राजा चित्रसेन। इनका चन्द्राभिषेक नाटक प्राप्त होता है। जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण का कथानक अपनाया गया है। इसमें मुद्राराक्षस (दे.) की शैली अपनाने की चेष्टा की गई है किन्तु मुद्राराक्षस की कूटनीति के उस मात्रा में इसमें दर्शन नहीं होते और जो होते भी हैं उसमें वैसी मौलिकता नहीं है।

रामोदय- (नाकू) श्रीवत्सलाञ्छन भट्टाचार्य लिखित नाटक। रचनाकाल १६वीं शताब्दी।

रायस अहोवलम्बनी- (नाका) ये १६वीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने ५ अकों के कुवलयविलासम् (दे.) नाटक की रचना की थी।

रावण- (नापा) रामायण का प्रतिनायक। इनका जन्म पुलस्त्य ऋषि के उत्तव ब्राह्मण वंश में हुआ था। किन्तु कर्मों से यह राक्षस श्रेणी में पहुँच गया। प्रतिनायक की सारी विशेषताये इसके अन्दर विद्यमान हैं। यह धीरोद्धत नायक है, वह पापी है, वह दुराचारी है- दुष्टग्रही है, लोभी है, व्यसनी है, स्त्रीलोलुप है। सीता का अपहरण करने के कारण ही उसके वंश का नाश हुआ है। राम विषयक नाटकों में पात्र के रूप में उसका उपादान किया गया है। सायानन्दचरित्र के अतिरिक्त उसके चरित्रचित्रण में कवियों ने अनेक कल्पनाये भी की हैं। इस विषय में निम्नलिखित नाटकों का उल्लेख किया जा

सकता है—

(१) बालरामायण— में कवि ने इसके उपरूप की अपेक्षा कोमलभाव और स्नेहित प्रवृत्ति पर अधिक ध्यान दिया है। रावण प्रारम्भ से ही सीता को चाहता है और उससे विवाह करने का इच्छुक है। वह इस कार्य के लिये स्वयं जनकपुर आता है। किन्तु धनुष चढ़ाकर परीक्षा देना उसके स्वाभिमान के प्रतिकूल है। वह बिना परीक्षा दिये धमकी देकर चला जाता है कि सीता का जिससे विवाह होगा वह उसका अहित करेगा। परशुराम से सहायता की प्रार्थना भी व्यर्थ जाती है। सीता का विवाह उसकी उपस्थिति में सम्पन्न होता है जहाँ सीता की सखिया मजाक में सीता और उसकी धात्री पुत्री की पुतलिकायें रावण को भेंट कर देती हैं जिससे वह बड़ी देर तक भ्रम में रहता है कि उसे असली सीता मिल गयी है। वह राम और सीता के विवाह में विघ्न डालने का प्रयत्न करता है किन्तु उसमें भी उसे सफलता नहीं मिलती। सीता का हाथ न मिल पाने से वह विक्षिप्त सा हो जाता है और प्राकृतिक तत्वों से अपनी प्रेयसी का पता पूछने लगता है। उसकी इस विक्षिप्त अवस्था में उसकी बहन शूर्पणाखा होश में लाती है और उसके अन्दर पुरुषोचित भावना जागृत करती है। वह छल कपट में भी शामिल होता है और सीता के बनावटी कटे सर को समुद्र के किनारे फिकवा देता है जिससे कुछ समय तक आतंक छाया रहता है परन्तु अन्त में भेद खुल जाता है।

(२) प्रतिमा नाटक— में रावण द्वारा सीता हरण के कथानक में नई कल्पना का समावेश किया गया है। राम पिता का श्राद्ध करना चाहते हैं। रावण मन्यासी के वेष में आता है और श्राद्ध कराने के लिये पौरोहित्य कर्म स्वीकार कर लेता है। वह राम को बतलाता है कि श्राद्ध में विशेष प्रकार के कृष्णसार का प्रदान शास्त्रीय विधि है। किन्तु इस प्रकार का कृष्णसार तो केवल हिमालय पर मिलता है। उसी समय वहाँ एक कृष्णसार दिखलाई दे जाता है जो वस्तुतः रावण की माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। राम उस कृष्णसार को पकड़ने चल देते हैं। लक्ष्मण पहले ही अनुपस्थित हैं क्योंकि तीर्थ से लौटे कुलपति के स्वागतार्थ लक्ष्मण पहले ही चले गये हैं। अवसर पाकर रावण सीताहरण कर सेता है और विरोध करने वाले जटायु का वध कर देता है।

(३) अग्निप्रेत नाटक— इस नाटक में अधिकांश रूप में वात्सीकी का पदानुसारण किया गया है। किन्तु फिर भी कवि ने यत्र वत्र कल्पना का सहारा लिया है। इसमें रावण की मायिकता की कल्पना की गई है। रावण सीता को वश में लेने के लिये राम और लक्ष्मण के मायिक सर बनवाता है और सीता पर यह प्रभाव डालने का प्रयास करता है कि राम और लक्ष्मण मारे जा चुके हैं और अब सीता के सामने रावण को स्वीकार करने के अनिवार्य और कोई चारा नहीं है। किन्तु सीता पर रावण के प्रलोभनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उसका उद्योग व्यर्थ जाता है।

(४) पताग्रीवार्चन— में रावण का चरित्र रामायण से बहुत कम भिन्न है। रावण

प्रारम्भ से ही राम से विरोध मानता है और उन्हें नष्ट कर देने पर तुला हुआ है। इसमें रावण की इच्छा पूर्ति का सारा भार उनका मन्त्री माल्यवान वहन करता है। राम के वन गमन में उसी का हाथ है। उसने ही मन्थरा के वेष में शूर्पणखा को भेज कर राम को पत्र दिलवाया है जिसमें कैकेयी द्वारा राम को १४ वर्ष का वनवास भागने की कल्पित बात लिखी है। राम जनकपुर में उस पत्र को प्राप्त करते हैं और पिता की आज्ञा समझकर उसे मानने पर आहूत हो जाते हैं। वन में भी जब सीताहरण के बाद विभीषण अपने भाई रावण को छोड़कर ऋष्यमूक पर्वत पर राम से मैत्री करना चाहता है तब माल्यवन्त वाली को उकसाकर विभीषण के ऋष्यमूक पर्वत में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगवा देता है। यह सब रावण का ही क्रिया कलाप है।

(५) अनर्घराघव- में रावण का कोई विशेष योगदान नहीं है। महावीरचरित की भांति इसमें भी माल्यवान द्वारा शूर्पणखा को मन्थरा के वेष में भेजकर राम को वनवास दिलवाया गया है।

(६) प्रसन्नराघव- इसमें रामायण कथा वर्णनात्मक रूप में अधिक कही गई है और अभिनयात्मक कम है। सामान्य कथा के अतिरिक्त इसमें कल्पना का यत्र तत्र सहारा लिखा गया है। सीता के स्वयंवर में रावण और वाणासुर दोनों आते हैं, दोनों का वाग्युद्ध होता है। रावण बिना धनुष चढ़ाये सीतारूप पुरस्कार प्राप्त करना चाहता है। वाणद्वारा अपमानित होता है। रावण सीताहरण के बाद उस पर बलात् अधिकार करना चाहता है। वह तलवार लेकर सीता का वध भी करना चाहता है किन्तु उसी समय उसके हाथ पर उसके पुत्र अक्षयकुमार का सर आकर गिरता है। माल्यवान मन्त्री उसके पास एक चित्र भेजता है जिसमें रावण के आक्रमण की सूचना दी गई है। वह इतना अभिमानो है कि उस चित्र को कौरी कल्पना कह कर एक ओर रख देता है। मन्दोदरी के समझाने और दूरस्थक भविष्यवाणी का भी उस पर प्रभाव नहीं पड़ता।

(७) दूताद्भट- (नाक) अगद के दृत्यकर्म परक इस नाटक में अगद पर रावण प्रभाव डालना चाहता है कि सीता रावण से वास्तविक प्रेम करती है। किन्तु अगद इस धोखे में नहीं आता।

महानाटक इत्यादि दूसरे नाटकों में भी रावण का पात्र के रूप में उपादान किया गया है।

रासलीला- (नाक) इसके लेखक हैं वेङ्कटराघवन। भागवत में भगवान् कृष्ण ने गोपियों के साथ जो रासलीला की थी उसी को चार प्रेक्षकों में विभाजित कर नाटकायित किया गया है। यह एक प्रेक्षक ओपेरा है जिसका प्रसारण आकाशवाणी मद्रास से किया गया था। यह अमृत पत्रिका में १९४५ में प्रकाशित किया गया था।

राससगोष्ठी- (नाक) यह अनादि मिश्र का लिखा एक उपरूपक है। किन्तु इसमें

कई उपरूपकों के मिले जुले लक्षण पाये जाते हैं। अतः इसे किसी एक उपरूपक की विधा में समाहित करना सम्भव प्रतीत नहीं होता। यह एक रासक है किन्तु इसमें नियम के प्रतिकूल सूत्रधार का प्रयोग किया गया है। अतः इसे उस विधा में नहीं रक्खा जा सकता। इसे सगीतक भी कहा जा सकता है। इसमें चूलिका से कथानक अनुसन्धेय है।

रुक्माङ्गदम्- (नाट्) १८वीं शताब्दी के कणजयानन्द का लिखा नाटक। इसमें संस्कृत, प्राकृत और मैथिली भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इसमें गीतों का बाहुल्य है और यह वीरतन्त्रिया पद्धति पर लिखी गई नाट्यकृति है।

रुक्माङ्गदचरित- (नाट्) रामानन्द द्वी (दे) लिखित नाटक।

रुक्मिणी- (नापा) यह विदर्भ की राजकुमारी थी। इसके पिता ने इसका विवाह शिशुपाल से तय किया था। किन्तु इसका प्रेम भगवान् कृष्ण से था। विवाह के ऐन मौके से कुछ पहले रुक्मिणी ने कृष्ण को पत्र लिखकर अपने अपहरण का प्रस्ताव रक्खा और साथ ही यह भी लिखा कि यदि आप मेरा अपहरण कर मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे तो आत्महत्या के अतिरिक्त मेरे पास कोई धारा नहीं रह जायेगा। पत्र में रुक्मिणी ने अपने अपहरण का स्थान और उपाय भी लिख दिया। कृष्ण ने अपहरण की प्रार्थना स्वीकार कर भरी पूरी सेनाओं के बीच से रुक्मिणी का चलात् अपहरण कर लिया। रुक्मिणी अपहरण की इसी प्रकार की घटना को रुक्मिणीहरण विषयक नाटकों में कुछ हेर फेर के साथ अपनाया गया है।

रुक्मिणी कल्याणम्- (नाट्) विद्याचक्रवर्ती (दे) लिखित नाटक।

(१) **रुक्मिणीपरिणय-** (नाट्) यह विश्वेश्वर (दे) का लिखा नाटक है। नाटककार ने अपने काव्यशान्तीय ग्रन्थ अलंकार कौस्तुभ में इसका उल्लेख किया है। इसका उल्लेख कंटेलागस कंटेलागोरम II १:९ और काव्यमाला VIII ५२ में किया गया है।

(२) **रुक्मिणीपरिणय-** (नाट्) यह कवि तार्किकसिंह का लिखा एक नाटक है। ये श्रीवङ्गगोत्रीय थे और दक्षिण अर्काट जिले के गुप्तकुटी स्थान पर रहते थे। इस नाटक का उल्लेख मद्रास की ओरिएण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कंटेलाग में खण्ड २१ स ८४१० पर किया गया है।

(३) **रुक्मिणीपरिणय-** (नाट्) रामवर्म विश्व युवराज लिखित नाटक। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

(४) **रुक्मिणीपरिणय-** (नाट्) यह नाटक आश्वेय वार्द का लिखा है जिसकी पाण्डुरालिप तंजौर की पैलेम लायब्रेरी में सुरक्षित है। कंटेलागस कंटेलागोरम में ८वें खण्ड की स ३५०२ पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ था।

(१) **रुक्मिणीस्वयवर-** (नाट्) प्रफाति वट्टूर भुवनि लिखित एक (उत्पृष्टि काट्टु)।

(२) **रुक्मिणीस्वयवर-** (नाट्) यह अन्नान रचना नन्दोपनि (दे) लिखित चतुर्थाई

जाती है।

(३) रुक्मिणीस्वयंवर- (नाकू) रामकिशोर लिखित ७ अकों की नाट्यकृति। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

रुक्मिणीहरण- (नाकू) शेषनरसिंह के पुत्र शेषचिन्तामणि लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स १ से ५२७ पर किया गया है।

रुक्मिणीहरण- (नाकू) बत्सराज (दे) का लिखा चार अकों का ईहामृग। इसका प्रकाशन गायकवाड आरियण्टल सोरीज से हुआ है।

रुक्मी- (नापा) यह रुक्मिणी हरण विषयक नाट्यकृतियों का एक पात्र है। यह रुक्मिणी का भाई है जिसने रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करने का निश्चय किया था और अन्त तक उमका साथ दिया। इस प्रकार यह कृष्ण का विरोधी है।

रुचिपतिदत्त- (नाट्टीका) इन्होंने अनर्घराघव की टीका नरसिंहदेव के पुत्र भीरव उपनाम हरिनारायण के निर्देश पर लिखी जो सम्भवत १२२६ के आस पास उडोसा के शासक थे। ये कौकुल वंश में उत्पन्न हुये थे।

रुद्रदास- (नाका) मालावार के श्रीकण्ठ के शिष्य थे इन्होंने चन्द्रलेखा (दे) नामक चार अकों का एक सट्टक लिखा था जिसकी रचना कर्पूरमञ्जरी सट्टक जैसी है। इसमें चन्द्रलेखा और मानवेदराज के विवाह का वर्णन किया गया है। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

रुद्रदेव- (नाका) इनका लिखा उषापरिणय (दे) प्रकाश में आया है जिसकी खोज राजेन्द्र मिश्र ने की थी।

रुद्रदेव- (नाका) जाम्बवतीकल्याण (दे) नामक नाटक के लेखक। ये सम्भवत बारगल के शासक प्रतापरुद्रदेव से भिन्न थे।

रुद्रदेव- (नाका) इनका दूसरा नाम प्रताप रुद्रदेव भी था। ये एकशिला (बारगल) के शासक थे और इन्होंने १२६८ से १३१९ तक एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया था। ये स्वयं कवि थे और कवि तथा कलाकारों के बहुत बड़े आश्रय दाता थे। विद्यानाथ ने काव्यशास्त्र पर प्रतापरुद्र वशोभूषण लिखकर इनके नाम को अमर कर दिया। इनकी रचनाओं में उषा रागादय नामक नाटिका (दे) और ययातिचरित (दे) नाटक केवल ये दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। अगस्त्य विद्यानाथ के भतीजे इनके दरबार में रहते थे।

रुद्रशर्मा त्रिपाठिन्- (नाका) चन्द्रविलास (२) नाटक का लेखक। इनका लिखा चण्डीचरित (दे) नामक एक और नाटक बतलाया जाता है जिसका उल्लेख हाल ने दशरूपकम् की प्रस्तावना में किया है। काश्मीर पुस्तकालय की पाण्डुलिपियाँ की ग्रन्थ सूची में भी इसका उल्लेख किया गया है।

रुमण्वान- (नापा) वामवदता विषयक नाटकों का एक पात्र। विशय रूप से

निम्नलिखित नाटकों में इसका योगदान दिखलाया गया है—

(१) प्रतिज्ञायोगन्धरायण— में यह राजा का मन्त्री है और राजा को उज्जैन के बन्दीगृह से छुड़ाने के लिये यौगन्धरायण और वसन्तक के साथ वह भी प्रयत्नशील है तथा श्रमण का वेष बनाकर उज्जैन में निवास के लिये जाता है और राजा की निर्मुक्ति में सहायक होता है।

(२) तापसवत्सराज— में वत्सराज उदयन वासवदत्ता की कल्पित विपत्ति का समाचार सुनकर जब प्रयाग में आत्महत्या के लिये प्रस्तुत होता है और उधर वियोग वेदना न सह पाने के कारण वासवदत्ता भी आत्महत्या करना चाहती है उसी समय रुग्णवान दोनों को शत्रु पर विजय का समाचार देकर और दोनों प्रेमियों के मेल से उन्हें आत्महत्या से वधाकर इस नाटक को सुखान्त बना देता है।

(३) रत्नावली— में यह महाराज उदयन का सेनापति है। वह वीर है और अकेले ही कोशल नरेश को १०० वाणों से मार कर विजय लाभ प्राप्त करता है।

(४) स्वर्णवामवदत्तपू— में पात्र के रूप में रामचंद्र पर तो नहीं आता, किन्तु उसका उल्लेख किया गया है। जब यौगन्धरायण वासवदत्ता के जल कर मर जाने की खबर उठा देता है और वासवदत्ता का प्रबन्ध करने चला जाता है तब राजा की सभाल करने और राज्य कार्य का मन्त्री के रूप में सञ्चालन करने का ठहरदायित्व उसी पर आता है।

रूप गोस्वामी— (नाका) चैतन्य मतानुयायी वगैरह वैष्णव परम्परा के जाज्वल्यमान रथधर। इनके पूर्वज कर्णाटक से बंगाल में आकर रहने लगे थे। पिता श्रीकुमार और माता रेवती से इनका जन्म १४९२ में हुआ था। ये भक्तिशास्त्र और रस शास्त्र के लब्ध प्रतिष्ठ आचार्य थे। १६वीं शताब्दी की श्रृन्दावन की भक्ति मण्डली के ये अग्रगण्य आचार्य थे। कहा जाता है मोराबाई ने इन्हीं से दीक्षा ली थी। भक्ति रस के अगुणी ग्रन्थ भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि इन्हीं की रचनायें हैं। इनके ललितसाहित्य में काव्य स्फुट मुक्तक इत्यादि के अतिरिक्त तीन नाट्यकृतियाँ भी प्राप्त होती हैं— विदग्धमाधव (दे) ललितमाधव (दे) और दानकैलिकौमुदी (भाण) (दे) इन्होंने लगभग १०० वर्ष की आयु पाई थी।

रेडियो एव टेलीविजन— (नाप्रभा) इनसे नाट्य कृतियाँ या उनके छोटे छोटे छण्ड प्रसारित होने रहते हैं। कभी कभी ये सस्थान अपना ओर से भी नाटकों की रचना कराकर उनका प्रसारण करते हैं। इस प्रकार के नाटकोंय छण्डों के उदाहरण विज्जिका विमर्दिनम्पा अर्चनसुन्दरी इत्यादि।

रेवती हालाडू— (नाक) पुरातन दीक्षित (दे) लिखित नाटक। इस पुस्तक की प्राति तर्जो के पुस्तकालय III ३५०४ में सुरक्षित है।

रैवतमदनिका— (नाक) साहित्यदर्पण में गोस्वामी (उपस्थप) के उदाहरण के रूप

में इसका उल्लेख किया गया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती।

रोचनानन्द- (नाक) वधूलगोत्रीय वल्लीसहाय (दे) लिखित नाटक। यह सम्भवतः ५ अकों वाले किसी बड़े नाटक का एक खण्ड है। इसमें रुक्मवर्मा की पुत्री रोचना और अनिरुद्ध के प्रेम का चित्रण किया गया है। मद्रास ओरियण्टल मैन्सक्रिप्ट लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डित्यियों के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में XXI ८४८९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

राहसेन- (नापा) मृच्छकटिक में चारुदत्त का पुत्र। उसके बालहठ को पूरा करने के लिये ही वसन्तसेना अपने जेवर देकर उसके लिये सोने की गाड़ी बनवाती है, क्योंकि वह मिट्टी की गाड़ी से खेलना नहीं चाहता। चारुदत्त को मृत्युदण्ड घोषित हो जाने के बाद उसका पितृप्रेम और उसके प्रति पिता का वात्सल्य भली भाँति प्रस्फुटित हुआ है।

रोहिणीभृगाङ्गम्- (नाक) इसका उल्लेख नाट्य दर्पण में किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं चलता।

ल

लक्ष्मण व्यायोग- (नाक) वीरेन्द्रकुमारप्रसादचार्य (दे) लिखित व्यायोग। इसमें नक्सलवादी आन्दोलन की चर्चा की गई है। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

लक्ष्मण- (नापा) रामायण के प्रमुख पात्रों में एक। कथा पुरुष राम के साथ अविच्छिन्न और अविच्छेद्य सम्बन्ध। भ्रातृभक्ति का अभूतपूर्व उदाहरण। विश्वामित्र यज्ञ में, जनकपुर में, वनवास में, रावण के साथ युद्ध में प्रत्येक अवसर पर राम का दाहिना हाथ। राम विषयक नाटकों में इनका उपादान हुआ है और कई में स्वतन्त्र चरित्र का विकास हुआ है। क्षमा शीलता शान्ति और अवसर पर उतेजना वीरवृत्ति और क्रोध का विचित्र समन्वय दृष्टिगत होता है। कतिपय नाटकों में उनके चरित्र पर एक दृष्टि-

(१) प्रतिमा नष्टक- एक महत्वपूर्ण पात्र। यहाँ हमें इनके चरित्र में दो विरोधी रूप दिखलाई देते हैं- राम के वनवास की खबर सुनकर उन्हें इतना अधिक क्रोध आता है कि वे विश्व को स्थिर से रहित कर देना चाहते हैं क्योंकि एक स्त्री के आग्रह पर ही यह अनर्थ होने जा रहा है। राम की क्षमाशीलता पर वे आक्षेप करते हैं कि क्या क्षमा में स्वाभिमान और मनस्वी होने की भावना का सर्वथा लोप हो जाता है (कि क्षमा निर्मनस्विता) वे परप्रवीर हैं। उनके क्रोध को देखकर राम भी डर जाते हैं कि कहीं लक्ष्मण क्रोध में आकर सारे विश्व को न जला दें। वे सहृदय भी हैं जब सीता उनसे शान्त होन की बात कहती हैं तब वे उत्तर में यही कहते हैं 'तुम इतनी स्वार्थिनी क्यों हो?' यदि तुम्हारा राम के वारें पैर पर अधिकार है तो मेरा भी दाहिने पैर पर अधिकार है। वस्तुतः उनके क्रोध

का भी हेतु धातृ भक्ति ही है, धातृप्रेम के लिये उनका अभूतपूर्व त्याग सर्वथा महान एवं स्तुत्य है।

(२) अभिषेक नाटक- में लक्ष्मण की स्नेह प्रवृत्ति और ज्येष्ठ के प्रति अनुशासन की भावना इन दोनों की अभिव्यक्ति सीता की अग्नि परीक्षा के अवसर पर उनके इस कथन से हो जाती है-

विज्ञाय देव्या शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम् ।

धर्मस्नेहाग्रे न्यास्ता बुद्धिर्दोलायते मम ॥

(हम जानते हैं कि देवी सीता के चरित्र में पूर्ण सुद्धता और परित्रता विद्यमान है, दूसरी ओर आर्य राम का आदेश है। इस प्रकार एक ओर स्नेह और दूसरी ओर कर्तव्य भावना इन दोनों के मध्य में घड़ी हुई मेरी बुद्धि झूले पर झूल रही है।)

(३) महावीरचरित- में राम का सीता से और लक्ष्मण का उर्मिला से पहले ही प्रेम हो जाता है। जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में हैं दोनों बहने उस आश्रम में आती हैं वही दोनों युगों का प्रेम सम्बन्ध बद्धमूल हो जाता है जो बाद में विवाह में परिणत होता है।

(४) उत्तररामचरित- में चित्रशला की योजना लक्ष्मण ही करते हैं। चित्रशला के पूर्ण हो जाने पर वे राम और सीता को चित्रवीथी के चित्र दिखलाते हैं जिनमें देख देख कर राम भाव विभोर हो जाते हैं। उनके साथ ही लक्ष्मण की अपनी भावना भी चित्रित हो जाती है। इसमें देवर भाभी का एक मनोवृत्त परिहास है- लक्ष्मण विवाहकाल के चित्र दिखलाते हुये बधुओं का परिचय कराते हुये सीता से कहते हैं- 'ये आप हैं, ये आर्या माण्डवी हैं, ये घेटी श्रुतकीर्ति हैं' सीता पूछती है- 'यह एक और कौन?' लक्ष्मण शर्माकर उर्मिला के चित्र को राय से ढक लेते हैं। सीतापतित्याग का अवाञ्छनीय कार्य भी लक्ष्मण को ही करना पड़ता है।

(५) उदात्तराघव- में स्वर्णमृग को मारने राम नहीं लक्ष्मण जाते हैं और बाद में दीन मुनि की वाणी सुनकर उसकी रक्षा के लिये राम जाते हैं। इससे इस आरोप का समाधान हो जाता है कि लक्ष्मण के रहते हुये स्वयं राम को हिरण के पीछे जाने की क्या आवश्यकता थी। वहा पर राम के सक्लपविकल्प से लक्ष्मण के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है- राम मुनि की दीन वाणी सुनकर विचार कर रहे हैं- 'बेटा लक्ष्मण तो निर्भीकता का महासागर है यह कैसे समझूँ कि उसे राक्षस से कोई भय हो सकता है? किन्तु भयभीत मुनि भयानुर होकर खिन्ता रहा है इसलिये मेरा मन धर्म में पड़ गया है। स्नेह के कारण गुरुजनों ने गार गार करा है कि सीता को अकेली मत छोड़ना। इस स्थिति में मैं हतप्रभ हो गया हूँ मैं।, रक्षय नहीं कर पा रहा हूँ कि क्या करूँ' लक्ष्मण का पहले भेजकर चरित्र ने सीता व लक्ष्मण के प्रति अवाञ्छनीय कथनों का भी समाधान प्रस्तुत कर दिया है।

(६) अनर्घराघव- में कवच राक्षस से गुहनिषाद पीड़ित है। लक्ष्मण उससे अपने मित्र की रक्षा करते हैं। इसमें कवच का दमन राम नहीं लक्ष्मण करते हैं। दुन्दुभि के ककाल को राम नहीं लक्ष्मण उलटते हैं जिससे वालि वध का उपक्रम हो जाता है। वालिवध के कथानक का परिचय लक्ष्मण और गुह की बातचीत से ही मिलता है।

(७) प्रसन्नराघव- में जनकपुर में परशुराम के साथ सवाद में लक्ष्मण का भी योगदान है।

लक्ष्मण- (नाटिका) इनको लिखी टीकायें गीत गोविन्द और प्रसन्नराघव पर प्राप्त होती हैं।

लक्ष्मण माणिक्यदेव- (नाका) ये अकबर बादशाह के समय नोआखाली के राजा तथा प्रतिष्ठित नाटककार थे। कहा जाता है कि इन्होंने कई नाटकों की रचना की थी। किन्तु अब इनके केवल दो नाटक उपलब्ध होते हैं- कुवलयारवचरित और विद्यात विजय।

लक्ष्मण सूरि- (नाका) ये रामनद जिला में श्री वल्लिपुतूर के निकट पुनलवेली के निवासी मुत्तू सुब्बा अय्यर के पुत्र थे। इनका समय १८५६ से १९१९ तक था। ये सब शास्त्रों में निष्णात थे और इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि मिली थी। वे मद्रास के एक कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। इन्होंने कृष्णसीलामृत नामक एक बड़ा काव्य और कई छोटे छोटे काव्य लिखे। इनके नाटकों में दिल्ली साधारण (दे) (जार्ज पजुम के दिल्ली दरबार का वर्णन) पौलस्त्य वध (दे) और प्रसन्न विभक्ति (दे) (दोनों राम कथा पर आधारित) ये तीन नाटक प्राप्त होते हैं। इन्होंने कई महत्वपूर्ण टीकायें भी लिखी हैं जिनमें अनर्घराघव, उत्तर रामचरित, महावीर चरित, वेंणीसहार, बाल रामायण, और रत्नावली की टीकायें अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने साधारण गद्य का रूप भी प्रस्तुत किया और इस दिशा में कई ग्रन्थों की रचना की।

लक्ष्मणा स्वयंवर- (नाकू) सुकुमार पिल्ले द्वारा लिखित नाटक। इसमें दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा और कृष्ण के पुत्र साम्ब के विवाह का वर्णन है।

लक्ष्मण परिणय- (नाकू) उड़ीसा निवासी भुवनेश्वर बडपडा (दे) लिखित नाटक।

लक्ष्मी- (नापा) (१) विक्रमोर्वशी नाटक में उर्वशी वियोग वेदना से पीड़ित है। उसे लक्ष्मी स्वयंवर में लक्ष्मी की भूमिका मिली हुई है। जब नाटक में प्रस्तुतीकरण में सखी उससे पूछती है 'तुम किससे प्रेम करती हो' तो उसे कहना तो है पुरुषोत्तम (विष्णु) से किन्तु अपनी अभिनय की भूमिका भूलकर वह कह जाती है- पुरुरवा से। इसी अपराध में उसे मृत्युलोक में रहने का दण्ड मिलना है।

(२) समुद्रमन्थन- में समुद्र से लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है जो विष्णु का प्राप्त हो जाती है।

(१) लक्ष्मीकल्याण- (नाकू) रामानुजाचार्य द्वी (दे) लिखित सभवकार।

(२) लक्ष्मीकल्याण- (नाकू) सदाशिवदीक्षित लिखित ४ अकों का नाटक। ट्रावनकोर पुस्तकालय के कैटेलाग स ७८ पर इसका उल्लेख किया गया है। लक्ष्मी ने पृथ्वी पर कन्या रूप में अवतार लिया और यहाँ उनका विष्णु के साथ विवाह हुआ। यही इस नाटक का मुख्य कथानक है।

(३) लक्ष्मीकल्याण- (नाकू) मानविक्रम द्वारा लिखित नाटक। उल्लेख- ट्रावनकोर पुस्तकालय के कैटेलाग स ०१९१ पर।

लक्ष्मीकान्तदास- (नाका) ये २० वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनका लिखा हरिहरयुद्धम् नाटक का उल्लेख किया गया है।

लक्ष्मीकुमार ताताचार्य- (नाटीका) इन्हें कविभूषण नाम से भी याद किया जाता है। ये शठमर्षण गोरीय तिरुवेङ्कट के पुत्र थे और ट्रिप्लोकेन मद्रास में रहते थे। इनका समय १९वीं शताब्दी का अन्त एवं बीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण है। ये आशु कविता के लिये प्रसिद्ध थे। इनकी स्मृत काव्य परक कई रचनायें प्राप्त होती हैं जिनमें भवभूति भारती पादुकास्तुति सुभाषितरञ्जिनी, रामबाण सम्मिलित हैं। इन्होंने उत्तररामचरित की टीका भी लिखी थी जिसमें इन्होंने करण के स्थान पर विप्रलाभ रङ्गाय को उसका अगीरस सिद्ध किया था।

लक्ष्मी देवनारायणीय- (नाकू) श्रीधर लिखित ५ अकों का नाटक। ट्रावनकोर पुस्तकालय में संस्कृत पाण्डुलिपि सूची स ७८ में इसका उल्लेख किया गया है।

इस नाटक में अम्बल्लपुल ट्रावनकोर के देवनायपण नायक हैं और नन्दपुर के दिनराज की पुत्री लक्ष्मी (नायिका) के प्रति उनकी प्रणय लीला का चित्रण किया गया है। नायक नायिका के गुणों पर मुग्ध हैं वह उसे भद्रनन्दन प्रदेश में बुलाता है। नायक ने उस प्रदेश से राक्षस को निकाल दिया है। अतः राक्षसराज प्रतिज्ञा करता है कि वह नायक से उसकी पत्नी का अपहरण कर बदला लेगा। नायिका निश्चित समय और स्थान पर नायक से मिलने आती है। उसके पहले ही राक्षसराज वनगज के रूप में सारे प्रदेश को ध्वस्त कर डालता है। जब नायक वनगज को मारने जाता है तब वह अवसर पाकर नायिका (लक्ष्मी) का अपहरण कर लेता है। राक्षस और नायक में युद्ध होता है और राक्षस मारा जाता है। किन्तु नायिका के वियोग में नायक तड़प उठता है क्योंकि उसे पता नहीं है कि नायिका कहाँ है। उसी समय आकाशवाणी होती है कि नायिका अपने पिता के घर सुराधिन है। अन्त में दोनों का मिलन हो जाता है और दोनों प्रणयसूत्र में बंध जाते हैं।

इस नाटक में प्रमदवना के लिये स्थानना शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें प्रकृतिक दृश्यों की भरमार है। देवनारायण द्वारा आयोजित भाषा के उत्सव में इसका

अभिनय किया गया था। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी।

लक्ष्मीधर- (नाट्योका) इन्होंने गीत गोविन्द, अनर्घराघव और प्रसन्नराघव पर रीकाये लिखीं।

लक्ष्मी नारायण द्विवेदी- (नाका) ये २०वीं शताब्दी के उत्तर प्रदेश निवासी कवि हैं। इन्होंने दो नाटकों की रचना की थी- स्वर्णोदकीयम् और त्रिभाण्डपट्टक (भाग) इनके अतिरिक्त इनकी रचनायें हैं- ऋतुविलसितम्, आगमविश्वदर्शनम्, तर्करत्नावली, वागीश्वरीस्तवराज।

लक्ष्मीनृसिंह- (नाका) इनके लिखे दो भाग प्रकाश में आये हैं- अनगलतिका (दे) और अनगसर्वस्व (दे)।

लक्ष्मीपति- (नाका) लवलोपरिणय (दे) नाटक के लेखक।

लक्ष्मीमानवेद- (नाक) यह उद्गाह सुन्दर के पुत्र दिवाकर (दे दिवाकर (२)) की रचना है। ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में स V ६३५१ पर इस नाटक का उल्लेख किया गया है।

(१) **लक्ष्मीस्वयंवर-** (नाक) यह एक ओपेरा (प्रेक्षणक) है जिसकी रचना डा वेङ्कट राम राघवन् ने की थी। इसका प्रसारण आकाशवाणी मद्रास से सन् १९५९ में लक्ष्मीव्रत के अवसर पर किया गया था। इसमें समुद्रमन्यन से लेकर लक्ष्मी के साथ विष्णु के विवाह तक की कथा अंकित की गई है।

(२) **लक्ष्मीस्वयंवर-** (नाक) यह १८वीं शताब्दी की प्रथम वेङ्कट की तीन अकों की रचना है। लक्ष्मी प्रणयलह में नाराज होकर समुद्रकन्या के रूप में जन्म लेती है। स्वयंवर में सभी देवताओं का अतिक्रमण कर लक्ष्मी विष्णु के गले में जयमाला डाल देती है और विष्णु सभी देवों को भेंट के रूप में अमरता का वरदान देते हैं। इसमें प्रत्येक अंक के साथ एक विष्कम्भक जुड़ा है। इसका प्रथम अभिनय वेङ्कटनाथ के महोत्सव में हुआ था। इसे बिबुधानन्द नाम से भी याद किया जाता है।

(३) **लक्ष्मीस्वयंवर-** (नाक) इसकी रचना स्वयं सरस्वती ने की थी और इसका प्रथम अभिनय स्वयं भरतमुनि द्वारा इन्द्र की रंगशाला में किया गया था। शृङ्गार प्रवाश में इसका उल्लेख किया गया है।

(४) **लक्ष्मी स्वयंवर-** (नाक) यह रामानुज के पुत्र श्रीनिवास द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध नाट्यकृति है। इसका उल्लेख कैटैलागस कैटैलागोस भाग १ स. ७१ पर किया गया है।

(५) **लक्ष्मी स्वयंवर-** (नाक) पराशर भट्ट लिखित नाटक। इसका उल्लेख वेदान्त देशिक ने रहस्यत्रयसार में किया है।

लका- (नापा) रावण के पुण्योक्त देश का महावीर चरित में मानवीकृत रूप।

लटकमेलक- (नाकू) राखधर (दे) लिखित प्रहसन इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। साहित्यदर्पण में इसे सवीर्ण प्रहसन के उदाहरण के रूप में उल्लिखित किया गया है। इसकी नायिका मदन मञ्जरी है जो कुट्टिनी दन्तुरा के यहाँ रहकर रूप का व्यवसाय करती है। प्रेम के अनेक सौदागर आते हैं और मोल तोल करते हैं। जब नायिका के गले में भूखली का काटा डलझ जाता है। तब चिकित्सा के लिये सर्वथा अयोग्य वैद्य जनुकेतु आता है। वह ऐसी ऐसी बातें करता है जिससे हास्य की वृद्धि होती है। नायिका के जोर से हसने में ही गले का काटा निकल जाता है और वैद्य का कार्य पूरा हो जाता है। जिस विवाह का आयोजन किया गया है वह मुख्य नायिका के साथ नहीं है दन्तुरा कुट्टिनी के साथ दिगम्बर का विवाह है जो प्रस्ताव ही वास्तव में हास्य जनक है।

इसका प्रकाशन काव्य माला सीरीज स २०, १८८९ में हुआ था।

लम्बोदर प्रहसन- (नाकू) दे उन्मत्तकविकलश।

ललितनाथव- (नाकू) रुपगोस्वामी लिखित नाटक। इसमें राधा कृष्ण की प्रेमलीला का श्रीमद्भागवत के आधार पर चित्रण किया गया है। इसमें १० अंक हैं। इसका प्रकाशन वाराणसी मुर्शिदाबाद में हुआ था।

ललितरत्नमाला- (नाकू) धेमेन्द्र (१) लिखित नाटक जिसका उल्लेख औचित्यविचारचर्चा में किया गया है। अब यह नाटक उपलब्ध नहीं होता। औचित्य विचारविमर्श में जो उद्धरण दिया गया है उससे ज्ञात होता है कि इसका कथानक हर्ष की रत्नावली के समान होगा।

ललितराघवीय- (नाकू) यह रामपाणिवाद नामक कवि का लिखा नाटक है। इसमें राम के पूरे चित्रण का विषय वस्तु के रूप में उपादान किया गया है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग में खण्ड २१ स ८५४२ पर इसका संकलन किया गया है।

ललितविग्रहराज- (नाकू) यह सोमेश्वर (दे) का लिखा एक प्रशस्ति नाटक है। इसमें देशलदेवी और विग्रहराज के प्रेम प्रसंग का अंकन किया गया है। देशलदेवी इन्द्रपुर के राजा वसन्तपाल की पुत्री थी। इस नाटक में हम्पीर के साथ युद्ध का भी संदर्भ आया है यद्यपि वास्तविक युद्ध का वर्णन नहीं है। इस नाटक की खुदाई शिला खण्डों पर की गई थी जो अजमेर की मस्जिद के गुम्बजों में लगे हैं।

ललिता- (नाकू) कृष्ण तम्बी का लिखा नाटक। इसमें आधुनिक शैली में राजपूत और इस्लामी युग का चित्रण किया गया है। इसका प्रकाशन सन् १९२४ में हो गया था।

सुख कुश- (नापा) उदररामचरित में सीता के यमज पुत्र हैं। माता पिता से दूर पाल्मोकि की देछोख में इनका पालन पोषण हुआ है जहाँ इन्हें शस सम्भालन इत्यादि

धर्म की शिक्षा के साथ मानवता के सद्गुणों और व्यवहार की भी बहुत उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त हुई है। जन्मकाख तो इन्हे जन्म से ही सिद्ध है। जिस समय शूरी ऋषि के यज्ञ से लौटकर गुरु वशिष्ठ और अरुन्धती की देखरेख में राम का परिवार वाल्मीकि के आश्रम में आता है उस समय वाल्मीकि के निर्देश पर कुश अभिनय के लिये उत्तर रामायण की पाण्डुलिपि भरत को देने के लिये गया है। अतः इस समय आश्रम में अकेला लव विद्यमान है। इस नाटक में लव का ही चित्रण हुआ है कुश बाद में आ जाता है और यत्किञ्चित् प्रकाश उसके स्वभाव पर भी पड़ जाता है। किन्तु उसको मानव प्रकृति का चित्रण प्रायः उपेक्षित ही रह गया है। लव स्वभाव से निहायत ही विनम्र और मानव गुणों से भरा पूरा है। सबसे पहले तो उसकी आकृति और सौन्दर्य ही परिवार वालों पर प्रभाव डालते हैं। वे लोग उसकी आकृति में राम और सीता दोनों की प्रतिच्छाया का अनुभव करते हैं। वह अपने सद्व्यवहार और विनम्रशीलता से सभी को प्रभावित करता है। रामायणविषयक अपने ज्ञान से सभी की प्रशंसा प्राप्त कर लेता है। किन्तु धर्मोचित दर्प भी उसके अन्दर विद्यमान है। उसे दूसरों की दम्पकित्या सहन नहीं होती। इसीलिये यज्ञ का अश्व अपने अधिकार में लेकर युद्ध की स्थिति बना देता है और जब राम द्वारा परशुराम को पराजित किये जाने की बात कही जाती है तब वह निस्मद्धोच कह देता है कि ब्राह्मणों में शक्ति ही क्या होती है। एक ब्राह्मण को दया लेने में राम की क्या प्रशंसा। राम की आलोचना करने में भी उसे सकोच नहीं होता यद्यपि वह इसमें राम के प्रति सम्मान भावना का परित्याग नहीं करता। जब अवसर आता है तब युद्ध कौशल प्रदर्शित करने में भी नहीं चूकता और उचित होने पर लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु के साथ मैत्री भाव भी बना लेता है।

जब रामायण की पाण्डुलिपि भरतमुनि को सौंपकर कुश लौटता है और उसे ज्ञान होता है कि किसी धर्मिय से युद्ध चल रहा है तब वह अमर्ष में भरकर बीरोचित कर्म करने के लिये तैयार हो जाता है। किन्तु जब लव उसे बतलाते हैं कि राम इत्यादि उसके दोस्त चन्द्रकेतु के पारिवारिक व्यक्ति हैं तब वह शान्त होकर सब के समान ही राम के पारिवारिक व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा का व्यवहार करने लगता है।

लवणलक्ष्मणम्- (नाट्) नारायण शास्त्री (१) लिखित ७ अंकों का नाटक।

लवलीपरिणय- लक्ष्मीपति लिखित एक नाटक। मैसूर की प्राइवेट लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि कैटेलाग में स २८२ पर इसका उल्लेख है।

लाक्ष्णिकनाट्य- (नाटि) दे प्रतीक नाटक साहित्य।

लालकवि- (नाका) ये बिहार के कवि एवं नाटककार हैं इन्होंने गौरी स्वयंवर रसक की रचना की थी।

लालावैद्यम्- (नाट्) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना खेत स्कन्द शर्मा ने

की थी। लाला वैद्य स्वयं वैद्य नहीं है किन्तु उनके पिताजी वैद्य थे। उन्हीं का रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र लेकर वह अपनी वैद्यक चला रहा है। उसे जलवैद्य, भस्मवैद्य जैसे कुछ सरचा भी मिल गये हैं जो वैद्य न होते हुये वैद्यक से काफी पैसा पैदा कर रहे हैं। वे अनेक ऐसे कार्य करते हैं जो हान्य जनक हैं, अन्त में पकड़े जाते हैं और उन्हें दण्ड मिलता है। यह रचना नागपुर से प्रकाशित हुई है।

लावण्यपाल- (नापा) 'हम्मीरमदमर्दन' (दे) नाटक का एक पात्र वह वास्तुपाल के भाई देव पाल का पुत्र है। वास्तुपाल अपने भतीजे लावण्यपाल की प्रशंसा करता है कि वह एक कुशल व्यक्ति है, बुद्धिमान है और उसके गुणचर मरत्वपूर्ण सूचना लाते हैं। लावण्यपाल को चिन्ता लगी हुई है कि वह किसी प्रकार अपने चाचा की प्रशंसा के अनुकूल कार्य करके दिखलाये। उसके चाचा का सुझाव है कि हमीर पर आक्रमण करने के पहले भारवाड के राजाओं की सहायता ली जानी चाहिए। लावण्य पाल इस कार्य को सफलता के साथ पूरा कर अपने चाचा द्वारा की गई प्रशंसा को सत्य सिद्ध करके दिखलाता है।

लिगादुर्गभेदन- (नाक) परमानन्द दादभट्ट लिखित नाटक। कैटेलागस कैटेलागस १५४४ में इसका संकलन किया गया है।

लीलातिलक- (नाक) यह एक भाण है जिसकी रचना केरल निवासी एव दरवारी कवि भास्कर ने की थी। इसे शृङ्गारलीलातिलक नाम से भी याद किया जाता है। (दे भास्कर २)

लीलादर्पणभाण- (नाक) यह पद्यनाभ (दे) का लिखा भाण है। यह एक शृङ्गार परक रचना है। इसे मदनलीलादर्पण नाम से भी अभिहित किया जाता है। इसका प्रथम अधिनय बनारस के चैत्रात्मव के अवसर पर किया गया था। मद्रास की ओरिएण्टल लायब्रेरी की दायनियल रिपोर्ट स III ३१७७ पर इसका संकलन किया गया है।

लीलावतदयाल- (नाका) ये बम्बई निवासिनी २० वीं शताब्दी की कवयित्री हैं। इनकी माता धमादेवी राव एक योग्य विदुषी एव कवयित्री थीं। उन्हीं के लिखे बथानकों को इन्होंने नाट्य रूप में परिणत किया, माता से ही इन्हें लेखन की दिशा में प्रेरणा मिली। इनके नाटक हैं- असूयिनी, कटुविषाक, कपोतालप, क्षणिकविभ्रम, गणेशचतुर्थी, गिरिजायात्रादिज्ञा, जयन्तु, कुमाउनीया, शनिदेवरचरितम्, तुकारामचरितम्, बालविधवा, माध्वजानम्, मिथ्याग्रहणम्, भीराचरितम्, वीरभा, वृत्तरामिच्छात्रम् और हातिकोत्सव।

इनके लिखे नाटक नवीन शैली में सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं।

लीलावती- (नाक) रामनागिराद (दे) लिखित कौथी। वर्णाटक के राजा की पुत्री लीलावती इस कौथी की नायिका है। राजा अग्रहरण के भय से ठसे अन्य प्रदेश की रानी बन्नावती के मरधन में भेजे देते हैं। यहां का राजा ठसे चाहने लगता है, किन्तु वह रानी

से भयभीत है। विदूषक सिद्धिभती योगीश्वरी की सहायता से दोनों प्रेमियों को मिलाने की चेष्टा करता है। योगमाया के प्रभाव से रानीको सर्प डसता है, वह मूर्छित हो जाती है। विदूषक सपेरा बनकर उसका विष दूर करता है। रानी प्रसन्न होकर उससे कुछ पारितोषिक मागने को कहती है। विदूषक राजा और लीलावती का प्रणय सम्बन्ध भाग लेता है। दोनों का विवाह हो जाता है। किन्तु देवार्चन केलिये निकलने पर ताम्राक्ष नामक असुर लीलावती का अपहरण कर लेता है। राजा उस असुर को पराजित कर लीलावती को पुन प्राप्त कर लेता है।

इस बीथी में विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है जो बीथी के नियमों के प्रतिकूल है। कहा जाता है इसकी रचना अल्लमपल्ल के राजा देवनायण के आदेश पर की गई थी।

एलवी शास्त्री-(नाक) २० वीं शताब्दी के मद्रास निवासी कवि एवं नाटककार। इनकी लिखी तीन नाट्यकृतियां प्राप्त होती हैं- लीलाविलास (दे), चामुण्डा (दे) और निपुणिका (दे)।

लीलाविलासम्-(नाक) एक हास्यप्रधान नाटक। इसकी रचना मद्रास के एलवी शास्त्री ने की थी। इसका प्रकाशन पालघाट (केरल) से सन् १९३५ में हो गया था। इस प्रहसन की नायिका गौतम नामक ब्राह्मण की पुत्री लीला है। पिता उसका विवाह वेदान्त भट्ट से करना चाहता है, किन्तु मा मित नामक एक शरावी से करना चाहती है। लीला का भाई सत्यव्रत बहन का मन जानकर उसका विवाह विलास से करना चाहता है। विवाह के पहले एक दस्यु लीला का अपहरण कर लेता है। विलास उसे छुड़ा लाता है तब लीला और विलास दोनों का विवाह हो जाता है।

लेनिनविजयम्-(नाक) डा एमवीधरी लिखित नाटक जिसका प्रथम अभिनय रूस के प्रसिद्ध पुरुष लेनिन के शताब्दी समारोह के अवसर पर किया गया था।

लोकनाथभट्ट-(नाक) इनका जन्म १७वीं शताब्दी में हुआ था। इनके पिता वरदार्य या कविशेखर थे। इनका सबन्ध विश्वगुणादर्श चम्पू के लेखक चेङ्कट्यध्वनी से था। इनका लिखा कृष्णाभ्युदय नामक प्रेक्षणक प्रसिद्ध है।

लोकरञ्जन-(नाक) श्रीनिवासाचार्य लिखित प्रहसन मैसूर पुस्तकालय पाण्डुलिपि अनुभाग स १८२, २६३ में इसका सक्लन किया गया है।

लोकानन्द-(नाक) चन्द्र (दे) चन्द्रक, चन्द्रक, महसत्व चन्द्र या चन्द्रगोविन की कृति। इसकी केवल एक प्रति तिब्बती अनुवाद के रूप में प्राप्त होती है। इसका नायक मणिचूड है जिसने अपनी पत्नी और बच्चों को किसी ब्राह्मण को दान कर दिया और इस प्रकार एक उदार व्यक्ति का यश प्राप्त किया। ईत्सिंग ने लिखा है कि एक प्राचीन भारतीय बुद्धिमान व्यक्ति ने वेस्सन्तरजातक को प्रगीत नाट्य के रूप में प्रस्तुत किया था

साधन से उदयन के पास सूचना भेजी जाती है और जब उदयन शिकार के लिये उस जंगल में आते हैं। महासेन के सैनिक उन्हें अधिकार में ले लेते हैं। उज्जैन में उदयन को सम्मान पूर्वक रक्खा जाता है।

मन्त्री यौगन्धरायण बहुत दुखी है और आत्महत्या का निश्चय करते हैं। प्रजा शोकाकुल होकर विलाप कर रही है और यौगन्धरायण सबके सामने अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं। किन्तु वह बनावटी आग है। यौगन्धरायण छिपकर उस आग से निकल आते हैं और रात्रि में कौशाम्बी में जाकर किसी न किसी प्रकार हाथी को वहा से निकाल लाते हैं तथा उज्जैन के निकट छोड़ देते हैं। हाथी मदमत्त है तथा बड़ा शोर मचाता है। उसको वश में लाने के लिये उदयन को कुछ समय के लिये छोड़ा जाता है और उदयन अनायास ही उस पर अधिकार कर लेते हैं।

महल के सौध से वासवदत्ता इस दृश्य को देख रही थी। अतः दोनों एक दूसरे को हृदय दे बैठते हैं। यह बात महासेन के मन्त्रियों को ज्ञात है। अतः मन्त्रियों के परामर्श से वासवदत्ता को वीणा सिखाने के लिये उदयन को निष्पुक्त कर दिया जाता है। दिन प्रतिदिन प्रेमियों का प्रेम बढ़ता जाता है। इसी बीच राजा से मिलने का यौगन्धरायण को अवसर मिल जाता है। राजा का प्रेम कुछ ही समय में पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।

एक अन्तर्नाटक का आयोजन किया जाता है जिसमें वासवदत्ता अपनी संगीत नाटयकला का प्रदर्शन करती है। उसकी कलात्मक निपुणता को देखकर राजा पूर्ण रूप से आसक्त हो जाते हैं। दृष्टियों के माध्यम से एक दूसरे पर अपनी भावना प्रकट कर देते हैं और अंगूठों का भी आदान प्रदान हो जाता है। एक दिन नर्मदा तट पर भरोत्सव में नागरिक सलग्न हैं। राजा महासेन भी बाहर गये हैं। यौगन्धरायण महल में एक कृत्रिम आग का आतंक उत्पन्न कर देते हैं तथा उसी भगदड़ में यौगन्धरायण उदयन तथा वासवदत्ता को निकाल ले जाते हैं। दोनों पहले से ही तैयार अपने प्रिय हाथियों पर कौशाम्बी पहुँच जाते हैं। प्रजा के हर्षोल्लास और दोनों की प्रेमलोला के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक में भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण के कथानक को मूल आधार के रूप में स्वीकार किया गया है। यह असम्भव नहीं है कि जिस प्रकार शूद्रक ने भास के चारदत्त को आधार बनाकर मृच्छवटिक की रचना की थी उसी प्रकार प्रतिज्ञायौगन्धरायण को आधार बनाकर शूद्रक ने ही इस नाटक की रचना की है। कुछ विचारक इस नाटक में शूद्रक को भी छाया देखते हैं। इस मान्यता में दण्डी का एक श्लोक भी प्रमाण रूप में मिल जाता है—

शूद्रकेणासक्ञ्जित्वा स्वच्छया खड्गपारया ।

जगद्गोप्यवष्टब्धं वाचा स्वचरितार्थया ॥

अर्थात् जिस प्रकार उदयन ने जेल में रहते हुये वासवदत्ता से प्रेम किया और यौगन्धरायण की सहायता से उसे भगा लाये तथा उससे विवाह कर लिया उसी प्रकार राजा शूद्रक ने भी स्वाति क बन्दी गृह में रहते हुये विनयवती से प्रेम किया और बन्धुदत्त की सहायता से कैद से छुटकारा पाकर विनयवती को भगा लाये तथा उनसे शादी कर ली। क्षेमेन्द्र ने औचित्य विचारचर्चा में दीपक कवि के नाम पर एक पद्य उद्धृत किया है जिसमें विनयवती का उल्लेख किया गया है।

इस नाटक का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायेनिमल कैटेलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट के III ३९९५ पर किया गया है।

वत्सला- (नाकू) दुर्गादत्त शास्त्री लिखित ६ अकों का नाटक। यह हिमाञ्चल सस्कृति परक सामाजिक नाटक है।

वत्सलाञ्जल भट्टाचार्य- (नाका) ये १६वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इन्होंने रामोदय नामक नाटक की रचना की थी।

वनज्योत्स्ना- (नाकू) कृष्णन तम्पो (दे) लिखित नाटक। यह २० वां शती का एकाङ्की नाटक है। इसमें प्रस्तावना और भरत वाक्य नहीं है तथा इसमें प्रात साय रात्रि के दृश्य पर्दा गिराकर दिखाये गये हैं।

वनभोजनम्- (नाकू) जीवन्मायतीर्थ (दे) लिखित नाटक। ६ मित्र वन भोजन करने निकलते हैं। उनकी हास्योन्मादक चेष्टायें इस नाटक का विषय हैं। प्रणव पारिजात में इसका प्रकाश हो गया है। इसका प्रथम अभिनय ऋषि बकिमचन्द्र महाविद्यालय में सम्पन्न हुआ था।

वनमाला- (नाका) ये मध्यप्रदेश की नाटककार हैं। इन्हें श्रीमती भवाल्कर क नाम से भी जाना जाता है। इन्हें डाक्टर की उपाधि प्राप्त थी। इनके लिखे ६ नाटक बतलाये जाते हैं- अन्नदेवता पाददण्ड पार्वती महेश्वरीयम्, भवनध्रुव रामवनगमनम्, आर सीताहरणम्।

वनमाला नाटिका- (नाकू) यह एक नाटिका है जिसकी रचना अमरचन्द्र नामक कवि ने की थी। इसका उल्लेख जैन गन्थावली में किया गया है।

वनमालिका- (नाकू) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र की नाट्यकृति। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम ख १ स २९८ पर किया गया है।

वनमाली मिश्र- (नाका) ये उड़ीसा निवासी नाटककार हैं। इन्होंने अद्भुत राघवम् नामक रचना की थी।

वरगुणोदयम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (१) लिखित ७ अकों का नाटक।

(१) वरद- (नाका) आत्रेय गोत्रोप श्रीनिवास के पुत्र रघुनाथ के भाई और विश्वगुणादर्श चम्पू के लेखक वेङ्कटराचार्य क चाचा थे। इनका समय १७वीं शताब्दी का

मध्य भाग है। इनका लिखा कृष्णभ्युदय नामक एक काव्य और अनङ्गजीव नामक भाण (दे) पाया जाता है।

(२) वरद- (नाका) ये कौशिक गोत्र में उत्पन्न हुये थे। इनका लिखा शृङ्गम जीवन (दे) भाण प्राप्त होता है।

वरदराज शर्मा- (नाका) इनकी लिखी 'कस्याहम्' शर्पिक नाट्यकृति प्राप्त होती है।

(१) वरदाचार्य- (नाका) आत्रेय गोत्रोय वेङ्कटाचार्य के पुत्र थे जो सम्भवत वरदार्य नामक कवि से अभिन्न थे। इन्होंने अनग ब्रह्मविद्याविलास नामक एक भाण की रचना की थी जिसका उद्देश्य द्विप्लोकेन के एक उत्सव में अभिनय प्रदर्शित करना था।

डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ् सस्कृत मैयुस्क्रिप्ट्स इन दि ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में स XXI ८३४५ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(२) वरदाचार्य- (नाका) १८वीं शताब्दी के सुदर्शन के वराज कवि हैं। ये पट्टिका शत सुदर्शन के पुत्र एवं काशी के निवासी थे। ये रामानुज के भतीजे सुदर्शन के पौत्र नडादुर अम्पाल (वरद) की ५वीं पीढ़ी के उत्पन्न हुये थे। रामभद्र दीक्षित के शृङ्गातिलक (अप्याभाण) की स्पर्धा में वसन्ततिलक (दे) भाण की रचना की जिसको अम्पाल भाण की मज्ञा दी। इनका एक प्रतीक नाटक वेदान्त विलास (दे) प्रकाश में आया है। इनकी अम्पालाचार्य के नाम से भी याद किया जाता है।

(३) वरदाचार्य- (नाका) अनङ्गजीवन भाण के लेखक। इसी नाम के जो दूसरे नाटक लिखे गये हैं उनके लेखकों से ये भिन्न हैं। इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है।

वरदार्य- (नाका) ये कुमार वेङ्कटार्य के पुत्र थे, जोकि रामानुज के पितृव्य वरदगुरु क शिष्य थे। इनका लिखा अनगब्रह्मविद्या विलास भाण एक उत्सव में अभिनय के मन्त्रव्य स लिखा गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की विवरणात्मक ग्रन्थसूची स XXI ८३४५ में इसका उल्लेख किया गया है। सम्भवत वसन्तभूषण भाण भी इन्हीं का लिखा हुआ है जिसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक सूची में स १०१९ में किया गया है।

वररुचि- (नाका) सस्कृतसाहित्य की उन महान विभूतियों में एक हैं जिनके नाम पर अपनी रचनायें प्रसिद्ध करने में दूसरे कवि गौरव का अनुभव करते हैं और दूसरा लोग उन अपनी आर छाँचने और अपने समय का प्रसिद्ध करने में हर्षित होते हैं। वैसे तो य महान व्याकरण के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनका प्राक्न्याकरण और दो एक छोटी छोटी व्याकरण की पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। किन्तु विष्णुनिन्द का कहना है कि इतन स ही इनकी ध्यान नहीं मिल सकती थी। पार्श्व में सूत्रों पर बार्हस्पत्य निखने वाले बान्वायन का

नाम कात्यायन वररुचि बतलाया जाता है। यदि यह सच है तो केवल यह ऐसा कार्य है जो इन्हें इतना ऊँचा उठा सकता है। कुछ लोग इन्हें नन्दकालीन मानते हैं कुछ लोग उदयनकालीन। कई कथानक ऐसे भी हैं जो इन्हें पाणिनि का प्रतिद्वन्दी बतलाते हैं। विक्रमादित्य के नवरत्नों में भी इनकी गणना की जाती है। वैयाकरण होने के अतिरिक्त इनके नाम पर चयनिकाओं की कतिपय कवितायें भी उद्धृत की गई हैं जिनमें कुछ अच्छी हैं। पतञ्जलि ने इन्हें कवि कहा है। इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या ये प्रसिद्ध वररुचि ही थे या इस नाम के कोई अन्य कवि थे। चतुर्भाषी में इनके नाम पर एक उभयाभिसारिका (दे.) नामक भाग भी सम्मिलित किया गया है। इनका नाम छन्द शास्कारों में भी लिया जाता है। श्यामिलक ने इन्हें छन्द शास्कार बतलाया है।

वरुण- (नापा) इन्द्रवरुण सवाद में एक पात्र। दे इन्द्र (२)

वर्णेकर श्रीधर भास्कर- (नाका) दे श्रीधर भास्कर वर्णेकर।

वर्धमानस्वामी- (नाडपा) प्रबुद्धरौहिणेय (दे.) में वर्धमान का उल्लेख देवताओं की पहिचान के लिये किया गया है। यह कहा गया है कि इन्होंने बतलाया है कि देवताओं को पसोना नहीं आता, उनकी मालायें नहीं कुम्हिलाती उनके पाव धरती पर नहीं पड़ते इत्यादि।

वल्लवी पल्लवोत्लास- (नाकृ) (१) एक भाष जिसकी रचना वशिष्ठ गोत्रीय मञ्जुलाचार्य ने की थी जिसकी कृष्णमूर्ति कुमार की भी सज्ञा दी जाती है। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायनियल कैटेलाग में इसका सकलन III ८६९६ पर किया गया है।

(२) इसी नाम का एक अन्य भाष भी प्राप्त होता है जिसके रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है। उसका भी उल्लेख उसी कैटेलाग में स III २८७३ पर किया गया है।

वल्ली- (नापा) विष्णु और लक्ष्मी की एक किरात द्वारा पालित पुत्री (परिचय के लिये देखिये वल्ली परिणय (१))

(१) **वल्ली परिणय-** (नाकृ) इसके लेखक वत्सगोत्रीय शिवसूर्य के पुत्र भास्कर हैं जो राजा हलधट्टि के धर्माचार्य थे। इन्होंने ५ अकों का यह नाटक श्रीरगम के निकट तिरवानक्काबलम् में जम्बूनाथ के फाल्गुनोत्सव में प्रदर्शन के लिये लिखा था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में विवरणात्मक पुस्तकसूची खण्ड ११ स ८५८९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

विष्णु का तेज किसी मृगी में सञ्चारित होकर एक कन्या को जन्म देता है जिस पर स्वामिकारिकेय और शूरपद्म दानव दोनों मुग्न्य हैं। पालक पिता एक शवर है जिसने कन्या को वल्ली नाम दिया है। वह स्वामिकारिकेय को चाहती है किन्तु दानव बलात् उस पर अधिकार करना चाहता है। सुरक्षा की दृष्टि से वल्ली को तिरस्करिणी से आवृत कर शची के पास पहुँचा दिया जाता है जहाँ से वह कुमार और दानव का युद्ध देखती

है। कुमार विजयो हाता है और दानव मयूर का रूप धारण कर कुमार की राख में आ जाता है तब त्रिधि पूर्वक वल्मी और कुमार का विवाह होता है।

इसका प्रमुख रसगुद्धार है और अगभूत रस बोर है।

(२) वल्मी परिणय- (नाट्) ५ अंकों का इस नाटक का रचना इश्वर क पुत्र वाराहच न १९वा शताब्दी के तजौर के राजा शिवाजी क समय में की थी। कैलागम कैलागारम छन्द • स ११८ पर इसका उल्लेख है। इसमें वल्मी और मुद्रहयन् के विवाह का बान किया गया है। इसका मवाद अधिनयार्चित है। प्रमुख रस गुद्धार है माध ही हास्य का भा पुट दिया गया है। मञ्च पर वज्र प्रमग पुद्ग आलिङ्गन इत्यादि भा दिखलाय गय हैं। आपराज का सापिन पुत्रा इस नाटक का भयिका है।

(३) वल्मीपरिणय- (नाट्) वल्मी और कुमार क परिणय को लखर स्थामि दाभित द्वारा लिखा गया नाटक। इस विषय में अन्य कुछ भा ज्ञान नहीं है।

(४) वल्मीपरिणय- (नाट्) टाए विश्वनाथन लिखित ५ अंकों का नाटक। अंकों का विभाजन दसों में किया गया है। इसमें किरान कुमार वल्मी के माध स्वामित्विकेय क विवाह का चित्रण किया गया है। रचनाकाल २० वा शताब्दी। सन् १९२१ में कुम्पवागम् म इसका प्रकाशन किया गया।

वल्मी वातुनयम्- (नाट्) मुद्रहयमुरि (८) का लिखा ७ अंकों का नाटक जिसमें वल्मी और स्वामित्विकेय क विवाह का चित्रण किया गया है। वल्मी विष्णु और लम्भा का पुत्रा है और वातुनय स्वामि कर्तिकेय का एक नाम है। सन् १९२९ में मद्रास में रम नाटक का प्रकाशन किया गया था।

वल्मीसहाय- (नाट्) नार्थ अराट बिन में वल्मी क निकट विठ्ठिलराम क गहन बाल वधूलगात्राय वल्मीसहाय १९वाँ शताब्दी के मध्य में उद्भूत हुये थ। ये नारायण क शिष्य थ। इनके दो नाटक प्रान्त हात र यथाउत्तमानन्द और रायनानन्द। सम्भवत यथानि दक्षनाचार्य नामक नाटक भा इन्हीं का लिखा हुआ है। इनके अनिरिक्त आचार्य दिग्विजय नामक एक चम्पू भा प्रान्त हाता है जिसमें शङ्कराचार्य क जीवन पर प्रकाश हाता गया है साथ ही काकुत्स्थविजय नामक एक और चम्पू भा इनका रचनाओं क अनागत सम्पत्तिन विद्या जाता है जिसका विषय राम चरित है। (इनकी नाटकाद रचना आ का परिचय यथाम्मान दत्तिय।)

वरिष्ठ- (नाट्) ५ रेखिक (छन्द व) ऋषि है और राम क परिवारिक मुद्ग ट। मन्त्रिय में इनका अर्चक उल्लेख पाया जाता है।

(१) ऋग्वेद ७.३३ एक मवाद मुख है। इसमें वरिष्ठ और उनका पुत्रों का मवाद लिखा गया है। इस मुख क अनुसर भागने और तृमुओं क मर्ग में वरिष्ठ तृमुओं क महावक थ जिस मद्रा में भर्तों की पराजय हुई थी।

(ख) ऋग्वेद के कतिपय सूक्तों में वशिष्ठ और विश्वामित्र का सर्ग दिखनाया गया है। कौथ के अनुसार ये सूक्त कर्मकाण्ड की धार्मिक परम्परा से व्यतिरिक्त सूक्तों में हैं। इस सर्ग का पल्लवन रानायण की उपकथाओं में हुआ जहाँ राजदर्प में विश्वामित्र वशिष्ठ की गाय को बलात् अपने साथ ले जाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु ब्रह्मतेज के सामने उनके मारे अस्त्र बेकार हो जाते हैं। तब वे ब्रह्मतेज प्राप्त करने के लिये हजार वर्ष तपस्या करते हैं और उन्हें ब्रह्मतेज भी प्राप्त हो जाता है।

(ग) राम विषयक परवर्ती नाटकों में वशिष्ठ का कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं है, फिर भी यत्र तत्र उनका उल्लेख किया गया है। महावीर चरित में राम और परशुराम के विवाद में वे मधुर्य को बचाने के लिये उद्यमशील के रूप में दृष्टिगत होते हैं। उत्तररामचरित में उनका राम को प्रजानुरञ्जन में तत्पर रहने के लिये उपदेश है और अनर्गलाघव में राम राज्याभिषेक के अवसर पर उनके दर्शन होते हैं।

साहित्य कार के रूप में वशिष्ठ— ऋग्वेद में अनेक सूक्तों के ऋषि हैं। पारिवारिक मण्डलों में सप्तममण्डल उन्हीं के परिवार की रचना माना जाता है। ३० अध्याओं का वशिष्ठ धर्मसूत्र केवल पाण्डुलिपियों में जीवित रहा है। यह उत्तर वैदिक युग की रचना है जिसमें परवर्ती काल में मिलावट भी पर्याप्त मात्रा में हुई है। कुमारिल ने इस धर्मसूत्र का उल्लेख किया है और इसमें उद्धरण दिये हैं जो इस धर्मसूत्र में मिलते हैं। योगवशिष्ठ में भी वशिष्ठ के उपदेशों का सङ्कलन पाया जाता है किन्तु यह रचना उनकी नहीं है।

वसन्ततिलक— (नाकू) वरदाचार्य (उपनाम अम्मालाचार्य) लिखित भाग। इसकी रचना रामभद्र दीक्षित लिखित शृङ्गारतिलक के अनुकरण पर हुई है। इसे अम्माल भाग भी कहा जाता है। शृङ्गारतिलक के समान ही इसमें भी जादू के खेलों और सपेयों के कर्तव्योंका आकाश भाषित के माध्यम से प्रदर्शन किया गया है। इसका प्रदर्शन मद्रास से हो गया है। इसका नायक भुजगशेखर म्रियतमा हेमाङ्गी से वियुक्त है, किन्तु उसे आश्वासन दिया गया है कि उसका पुनर्मिलन होगा। वह गणिकाओं की गलौ में घूमता है, आकाश भाषित करता है, सपेयों, देवताओं और इन्द्रजाल का वर्णन करता है। अन्त में उसे उसकी प्रेमिका मिल जाती है।

इसकी रचना १६६८ में की गई थी। कलकत्ता से १९७२ में प्रकाशन हुआ। भाषा सुबोध, सरल एवं नाट्योचित है लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है।

(१) वसन्त भूषण— (नाकू) एक भाग जिसकी रचना वगोपुर के नृसिंह सूरि (दे.) ने की थी। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के सस्कृत पाण्डुलिपि के ट्रायनियल कैटेलाग में स III ३६९६ पर किया गया है। इसका प्रथम अभिनय काञ्चीवरम् के उन्मव में किया गया था।

(२) वसन्तभूषण— (नाकू) यह रचना वरदाय्य (दे.) ने की थी। यह इनी नाम की

नृसिंह सूरि की रचना से भिन्न है।

वसन्तमित्र भाण- (नाकू) मगलगिरि कृष्णद्वैपायनाचार्य (दे.) लिखित भाण। विभिन्न परिस्थितियों में पड़ी हुई स्त्रियों के पतन का इसमें चित्रण किया गया है। इन स्त्रियों में देवदामी, नर्तकी, कुट्टनी, विधवा, विषम परिस्थिति में पड़ी गृहिणी सम्मिलित हैं। इसमें विधवा विवाह का पुरस्कार दिया गया है, अश्रेष्ठ महिला का भी उपादान किया गया है जो अश्रेष्ठ शब्दों का प्रयोग करती है। विभिन्न प्रदेशों की वेषभूषा का इसमें वर्णन किया गया है। काछी के गरद का वर्णन इसकी विषयवस्तु में सम्मिलित है।

(१) **वसन्तसेना-** (नापा) भास (दे.) के अपूर्ण नाटक चारदत्त की नायिका। इसके चरित्र के लिये (दे.) वसन्तसेना (२)

(२) **वसन्तसेना-** (नापा) शूद्रक रचित मृच्छकटिक की नायिका। यह अवन्तिपुरी की सर्वाधिक सुन्दरी एवं सम्पन्न वेश्या है। इसके भवन और सम्पत्ति को देखकर भ्रम हो जाता है कि यह कुवेर का भवन है। किन्तु उसे सम्पत्ति की कोई इच्छा नहीं, वह गुणों की दीवानी है। वह चारदत्त के गुणों पर मुग्ध है और स्वयं को चारदत्त के गुणों से खरीदी हुई दासी कहती है। धन का उसके मन में जरा भी मोह नहीं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि राजा का साता उसे १०००० स्वर्ण मुद्रायें देना चाहता है, किन्तु वह उस भेंट को तुकरा देती है। यौवन की मदमाती वेश्या होकर भी उसका लक्ष्य पैसा या वामन्रीडा नहीं है। वह किसी प्रतिष्ठित गुणवान की कुलवधू बनकर जीवन व्यताना चाहती है और सौभाग्य से उसकी कामना पूरी हो जाती है।

वसन्तसेना का हृदय विशाल है। वह किसी का दुःख नहीं सह सकती। मदनिका को सुखी बनाने के लिये वह प्रसन्नतापूर्वक उसे उसके प्रेमी को सौंप देती है। जब जुआरी सवारक उसकी शरण में आता है वह बिना ही परिचय के उसके ऋण का स्वयं भुगतान कर उसे छुटकारा दिला देती है। वह तो यहाँ तक चाहती है कि यदि उसका वश चले तो सभी परिजनों को दासता से मुक्त कर दे। लोभ की छे उसके अन्दर इनकी कमी है कि वह एक बच्चे (चारदत्त के पुत्र) की इच्छा पूरी करने के लिये उसकी सोने की गाड़ी बनवाने के निमित्त अपने सब जेवर उतारकर दे देती है। वह एक सच्ची प्रेमिका है।

वधू धृता के प्रति उसका व्यवहार बहुत ही नम्रता का है और उसके पुत्र की वह हृदय से चाहना है। उसके अन्दर ईर्ष्या का नाम नहीं। वह हयवती है, आभूषण से प्रेम करती है, बलानुशल और विदूषी है। उसके अन्दर साहस की भी कमी नहीं। किसी अत्याचार के या किसी शक्ति के सम्भाने वह झुकना नहीं जानती। शक्कर भी प्रणय वासना को तुकरा कर वह मरण का भी वरण करने को तैयार हो जाती है। अन्त में अपने प्रिय का प्राप्ति कर उसका जीवन शान्त हो जाता है। उस अपने गुणों का उचित पुरस्कार मिल जाता है।

सक्षेप में वह अनुपम सुन्दरी है। वेश्या होते हुये भी और वेश्यालय में रहते हुये भी अपने चरित्र की रक्षा किये हुये है। वेश्यालय के रौंति रिवाज वह जानती है कि अनेक पुरुषों से सहवास करने वाली स्त्रियों के झूठ फरेब से वेश्यालय भरा रहता है। फिर भी अपने चरित्र को बचाये रहना १० हजार स्वर्ण मुद्राओं जैसी राशि को ठुकरा देना कोई मामूली बात नहीं। वह तो उससे भी बढ़कर चरित्र रक्षा के लिये जीवन भी देने को तैयार हो जाती है। वह अपरिमित धनराशि की स्वामिनी है फिर भी वह धन का सफल उपयोग परोपकार में ही समझती है। सच्चा प्रेम उसके चरित्र की अन्यतम विशेषता है। वह एक ही निगाह में अपने हृदयवल्लभ को पहिचान लेती है और दिल दे देती है फिर उससे पीछे नहीं हटती।

वसन्ताभरण- (नाकृ) युवराज (१) लिखित नाटक।

वसुदेव- (नापा) भास लिखित बालचरित का एक पात्र। कृष्ण के पिता जो उनके ब्रम्ह के बाद नन्द के यहाँ उन्हें सुरक्षित पहुँचाने गये थे।

वसुनाग- (नाका) ये भीमट के पुत्र थे। इनके लिखे प्रतिभानिरुद्ध नाटक का उल्लेख रामधन्व गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है। अभिनवगुप्त ने भी अभिनवभारती के १९वें अध्याय में इसका उल्लेख किया है। अब यह उपलब्ध नहीं होता।

वसुभूति- (नापा) रत्नावली नाटिका में यह सिंहलेश्वर का भन्त्री है। सिंहलेश्वर ने पुत्री रत्नावली को इसके और उदयन के कञ्चुकी वाधव्य के सरक्षण में रत्नावली को उदयन के यहाँ भेजा था। किन्तु मार्ग में प्रवहण भग हो जाने से तीनों ही बच तो गये किन्तु एक दूसरे से अलग होकर भटक गये जिसके कारण उदयन के राजघराने में अनेक प्रकार की समस्यायें पैदा हुईं। इसके और वाधव्य के दर्शन नाटक के अन्त में होते हैं जब राजा को विजय का समाचार मिल चुकता है। ये दोनों पहिचान लेते हैं तब नाटक की नायिका सागरिका से रत्नावली बनती है।

वसुमगल- (नाकृ) पेरसूरि (दे) लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें मरुत् कोलाहल की पुत्री गिरिवा के साथ उपरिचर वसु के विवाह का चित्रण किया गया है। इसका अभिनय मदुरा के मोनाक्षी मन्दिर में किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट लायब्रेरी की संस्कृत पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूची में इसका उल्लेख XXI ८४९७ पर किया गया है। इसमें अज्ञातनामा लेखक की एक टीका भी सम्मिलित है।

वसुमती- (नापा) (१) वसुमती चित्रसेनाविलास (दे) में राजा शक्तिमान की पुत्री जिसकी कल्याण कामना से उसका पिता प्रयाग में तपस्या कर रहा है किन्तु इस बीच निषादराज आक्रमण कर पूरे परिवार के साथ उसे बन्दी बना लेता है। महाराज चित्रसेन निषादराज से छुड़ाते हैं और उससे गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। बाद में विजय के पुरस्कार

के रूप में रानी की उम्र विवाह के लिये स्वीकृति मिल जाती है।

(२) वसुमती परिणय- (दे) में वह नायिका है।

वसुमती परिणय- (नाकू) यह जगन्नाथ (दे) का लिखा ५ अकों का नाटक है जिसमें वसुमती के विवाह का वर्णन किया गया है। इस नाटक का उद्देश्य राजाओं को सत्य पर लाना प्रतीत होता है। बालाजी बाजीराव सभी गुणों से अलंकृत महाराज हैं जिन्हें अखिलगुणशृङ्गाटक विशेषण प्रदान किया गया है। इस नाटक में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक चर्चाएँ हैं। राजनीति और अर्थशास्त्र की योजनाएँ हैं। यवनों से राष्ट्र को बचाने के लिये हिन्दूजाति की एकता पर बल दिया गया है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। दे कैटेलागस कैटेलागोरम १५५७

वसुमती चित्रसेनविलास- (नाकू) १७वीं शताब्दी में अप्पय दीक्षित (दे) लिखित नाटक। इस नाटक को वसुमती चित्रसेनीयम् नाम से भी जाना जाता है। कर्लिंग के राजा शक्तिमान अपनी पुत्री वसुमती की कल्याण कामना से प्रयाग में तपश्चरण में निरत रहते हैं। उसी अवसर पर उसकी राजधानी पर आक्रमण कर निपादराज उसके परिवार को बन्दी बना लेता है। महाराज चित्रसेन निपादराज को पराजित कर शक्तिमान के परिवार को छुड़ा लेते हैं। तभी चित्रसेन का साक्षात्कार वसुमती से होता है। दोनों प्रणयजाल में फस जाते हैं और गार्ध्व विवाह कर लेते हैं। किन्तु चित्रसेन की पत्नी उसे स्वीकार नहीं करती। दोनों प्रेमी चतुरिका (वसुमती की सखी) की सहायता से मिलते हैं। इसी समय समाचार आता है कि राजकुमार ने दानवों को पराजित किया है इसकी प्रसन्नता के उपलक्ष्य में रानी राजा चित्रसेन को वसुमती से विवाह की अनुमति दे देती है।

(१) **वसुलक्ष्मी कल्याणम्-** (नाकू) वेङ्कटसुब्रह्मण्यम् (दे) लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें बंकि के आश्रयदाता द्वावन्वोर के श्रीबालारामवर्मा के सिन्धुराजकुमारी वसुलक्ष्मी के साथ विवाह की घटना को कथानक के रूप में अपनाया गया है। इस विवाह का मन्व्य राजनैतिक लाभ प्राप्त करना था।

सिन्धुराज की पुत्री वसुलक्ष्मी द्वावन्वोर के राजा बालाराम वर्मा पर अनुरक्त है। ठमका पिता अपनी पुत्री की आकांक्षा का अनुवर्तन करना चाहता है। किन्तु माता का आग्रह है कि पुत्री सिंहलराज को प्रदान की जानी चाहिये। माता उसे सिंहलराज के यहाँ के लिए भेज देती है। किन्तु बुद्धिमागर मन्त्री उसे समुद्रतट पर ही रोकर द्वावन्वोर को भज देता है। द्वावन्वोर की रानी वसुमती ठमका विवाह चेदिदरा के राजा वसुवर्मा से करना चाहती है। विवाह की तैयारी की जाती है किन्तु वसुवर्मा क वेप में बालारामवर्मा बैठ जाता है और विचार हो जाने पर रानी को यह मन्व्य स्वीकार करना पड़ता है।

इस नाटक की रचना १७८५ में हुई थी और त्रिवन्द्रम मन्सूत गौरीज से इसका प्रकाशन हुआ। इसमें एतिहासिक पात्रों का उपादान किया गया है किन्तु घटनाएँ काल्पनिक

हैं। पद्यों का अधिक प्रयोग किया गया है और वर्णित दृश्य आतिथनादि भी दिखलाये गये हैं।

तत्कालीन कवि एव चोक्कनाथ केपुत्र सदाशिव माखिन ने इसी राजा बलराम वर्मा की प्रशस्ति में रामवर्मा यशोधूषण नाम की काव्य शास्त्र विषयक एक पुस्तक लिखी जिसमें नाटक विषयक अध्याय में इसी नाटक वसुलक्ष्मी कल्याण को एक नमूने का नाटक मानकर अपनी कृति में अन्तर्भुक्त कर दिया। राम वर्मा का समय १७५८ से १७९८ तक था।

(२) वसुलक्ष्मी कल्याण—(नाकू) १८वीं शताब्दी के सदाशिव दोक्षित (सदाशिव माखिन) (दे.) की लिखी ५ अकों की नाट्यकृति इसका कथानक वसुलक्ष्मी कल्याण (१) (दे.) से पर्याप्त मेल खाता है। केवल कतिपय परिवर्तन किये गये हैं— वसुलक्ष्मी को समुद्रतट पर रोककर सिंहल के स्थान पर ट्रावन्कोर भेजने का कार्य मन्त्री बुद्धिसागर का नहीं बोधिका नामक योगिनी का है। ट्रावन्कोर की महारानी वसुमती वसुलक्ष्मी का विवाह चेदिदेश के राजा से नहीं पाण्ड्य देश के राजा से करना चाहती है।

इस नाटक का अभिनय पद्मनाभ देव के वसन्तोत्सव में किया गया था।

(३) वसुलक्ष्मी कल्याण—(नाकू) यह रामानुज (दे.) का ५ अकों का नाटक है। देवता रगनाथ और प्रसिद्ध देवी वसुलक्ष्मी के विवाह को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। इसका प्रथम अभिनय त्रिवल्लूर में वीरराघव के वसन्तोत्सव के अवसर पर किया गया था।

डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ सस्कृत मैन्सुक्रिप्टस् इन दि ओरियण्टल मैन्सुक्रिप्टस लायब्रेरी मद्रास में स XII ८५०४ पर इसका सकलन किया गया है।

दाणीपाणिग्रहणम्—(नाकू) यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना रामानुजाचार्य हो ने की थी।

(१) वादिचन्द्र—(नाका) ये १७वीं शताब्दी के गुजरात में जैनाचार्य थे। ज्ञानभूषण के शिष्य प्रभावचन्द्र इनके गुरु थे। इनकी रचनाओं में गद्य काव्य, पद्य काव्य, चरित काव्य, दो पुराण (पार्श्व पुराण और पाण्डव पुराण) आदि तो सम्मिलित हैं ही मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया पवनदूत भी है। नाट्यसाहित्य के अन्तर्गत ज्ञानसुर्योदय (दे.) नामक एक प्रतीक नाटक भी आता है। इनका जन्म १६वीं शताब्दी के अन्त में गुजरात के मधूक नगर (महुवा) में हुआ था।

(२) वादिचन्द्रसूरि—(नाका) ये १६वीं के कवि हैं। इन्होंने यशोधर चरित (नाटक) की रचना की थी। इसी नाम से एक कवि ११वीं शताब्दी में भी हुए थे। इसके अतिरिक्त यशोधर चरित नामक चार सग्यों के एक काव्य की रचना १७वीं शताब्दी के वादिचन्द्र ने की थी। कहा नहीं जा सकता कि ये वादिचन्द्र उन दोनों से भिन्न थे या इनकी उनमें

किसी से एकात्मता थी।

वामदेव- (नाका) दे रामदेव।

वामनभट्टवाण- (नाका) ये आन्ध्र के निवासी थे। इनका जन्म १४वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। ये वत्सगोत्रीय वरदाश्रित के पौत्र और कामन्दकी यज्वन् के पुत्र थे। ये विद्यारण्य के शिष्य थे। पहले ये विजय नगर में रहते थे जहाँ इन्होंने हरिहर नयक का शानदार शासन देखा था। किन्तु लगभग ३० वर्ष की आयु में कोण्डाविडु के शासक कोमनी वेमभूपाल के सरक्षण में चले गये थे।

इनका अध्ययन बहुत विस्तृत और रचना में बहुक्षेत्र व्यापी है। इसी से इन्हें षड्भाषा वल्लभ और कविसार्वभौम की उपाधि मिली थी। ये स्वयं को वाण का नववतार मानते थे क्योंकि वाण भी वत्सगोत्र में ही उत्पन्न हुये थे। इसीलिये ये अपना परिचय भट्टवाण या अभिनव वाण इन उपाधियों से दिया करते थे। इनकी आकाङ्क्षा इस प्रसिद्धि को झूठलाने की थी कि वाण केबाद कोई अच्छा गद्यकार हुआ ही नहीं। इसीलिये इन्होंने वाण के अनुकरण पर रचनायें की थी। इन्होंने नलाम्पुदय (८ सर्ग) रामाम्पुदय (३० सर्ग) ये महाकाव्य और मेघदूत के अनुकरण पर हम सन्देश लिखा। इनकी पद्य रचनाओं में वेम भूपालचरित्र, बृहत्कथा मञ्जरी और कोश ग्रन्थों में शब्द चन्द्रिका एवं शब्दरत्नाकर सम्मिलित हैं।

इन्होंने तीन नाटकों की भी रचना की थी- पार्वतीपरिणय (दे.) कनकलेखा (दे.) और शङ्गारभूषण भाग। इनके पार्वतीपरिणय का भी उल्लेख किया गया है किन्तु उसकी उपलब्धि का कुछ पता नहीं चलता। कुछ लोगों ने इनकी अभिधा मामन भट्टवाण लिखी है जो लेखक का भ्रमाद प्रतीत होता है।

वामनविजय- (नाकू) शङ्करलाल (दे.) लिखित नाटक। सम्भवत इसका प्रकाशन हो चुका है।

वार्तागृह नाटक- (नाकू) यह खोन्डनाथ ठाकुर का लिखा नाटक है जिसका अनुवाद ध्यानेश नारायण ने संस्कृत में किया है।

वार्थिकन्यापरिणय- (नाकू) यह रामानुज (१) (दे.) का लिखा नाटक बताया जाता है।

वालिबन्ध- (नाकू) यह राम विषयक एक नाटक है जिसका उल्लेख प्रेङ्गुण उपल्लयक के उदाहरण के रूप में साहित्यदर्पण में किया गया है। शारदाजनक ने भी इनका उल्लेख किया है। इसके कर्तृत्व इत्यादि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

वालिबन्ध- (नाकू) वैयाकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इस नाटक के प्रदर्शन का उल्लेख किया है जिसमें ज्ञात होता है पतञ्जलि के समय में भी किसी न किसी रूप में नाट्यकला विवक्षित हो चुकी थी और उसके लिये कतिपय नाट्य कृतिया भी विद्यमान

थी जिनका अभिनय किया जाता था।

वाली- (नापा) रामायण का एक प्रसिद्ध पात्र। राम के सहयोगी सुग्रीव का भाई एव शत्रु। राम ने छिपकर घोखे में उसका वध किया जो युद्ध के नियमों के प्रतिकूल था। साथ ही यह कार्य अविवेक पूर्ण था। मरते समय वाली ने जो हत्या के कारण के विषय में प्रश्न किया था राम उसका कोई भी युक्तियुक्त उत्तर नहीं दे सके उस उत्तर में भी राम को जवाबदस्ती का एव झूठ का सहारा लेना पड़ा। इस घटना का रामकथानक परक नाटकों में प्रायः उपादान किया गया है और उसमें इस प्रकार के कुछ परिवर्तन प्रस्तुत किये गये हैं जिनसे कहीं कहीं राम के इस चरित्र दोष का कुछ प्रच्छालन हो जाता है-

(क) भास के नाटकों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं है। केवल वाली और सुग्रीव के दो युद्धों को एक में मिला दिया गया है, तारा विलाप नहीं करती, क्योंकि उन्हें वालि ने अपनी मृत्यु पर रोने के लिये मना कर दिया था। अभिषेक नाटक में अगद ने विलाप करते हुये जो शब्द कहे उनसे वाली की विषम दशा का पता चलता है- 'जो तुम पहले किसी समय अत्यन्त शक्तिशाली एव सुखी जीवन बिता रहे थे तथा वानराज के प्रतिष्ठित गौरवपूर्ण पद के अधिकारी थे आज तुम्हारी सब अगों की चेष्टाये समाप्त हो गई हैं और तुम भूमि पर लोट रहे हो।' कवि ने वाली की मृत्यु रामवध पर ही दिखलाई है जो नाटक की प्रतिष्ठित परम्परा के प्रतिकूल है। मरते समय वाली को गंगा इत्यादि पवित्र नदियों, अप्सराओं और सहस्र हसों द्वारा खींचे जाने वाले वीर वाही विमान के दर्शन होते हैं।

(ख) भवभूति के नाटकों में उत्तररामचरित में लव द्वारा वाली वध के लिये राम को निन्दा की गई है। महावीर चरित में माल्यवन्त ने वाली को राम का विरोधी बना दिया। ऋष्यमूक पर्वत पर रावण का भाई विभीषण राम से मिलने आने वाला था, माल्यवन्त के कहने से वाली ने विभीषण के ऋष्यमूक क्षेत्र में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार अनेक विरोधी कार्यवाहिया करने के कारण आत्मरक्षा में रामद्वारा किया गया वालिवध उचित ठहराया गया है। वाली रावण का मित्र था, अतः राम द्वारा उसका वध उचित ही था। महावीर चरित में छल अश को निकाल दिया गया है।

(ग) उदात्तराघव में यह घटना छोड़ ही दी गई है जिससे राम पर अनौचित्य के आरोप का निरसन हो जाता है।

(घ) अनर्घराघव में विरोध का कारण कुछ और ही है। लक्ष्मण जब कबन्ध से गुह निषाद की रक्षा कर रहे थे उन्होंने दुन्दुभि का अस्थिपञ्जर उलट दिया जिससे रूष्ट होकर वाली ने राम को युद्ध के लिये ललकारा और उस युद्ध में वालि मारा गया। इसमें राम के चरित्र में किसी प्रकार का दोष नहीं आता। प्रच्छन्न प्रहार का वहा प्रसंग ही नवी है।

वाल्मीकि- (नाउपा.) (१) उत्तररामचरित में वाल्मीकि का अनेकश उल्लेख हुआ

है। सीता को वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ा गया है, दुःखस्था में उत्पन्न हुये सीता के दो बच्चों को वाल्मीकि को ही समर्पित किया गया। अग्नेयी और वासन्ती की बातचीत से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के आश्रम में उच्च शिक्षा दी जाती है जहाँ अन्य आश्रमों में निम्नस्तर की शिक्षा प्राप्त कर वाल्मीकि आश्रम में उच्च शिक्षा के लिये छात्र प्रवेश लेते हैं। उन्हीं की बातचीत से यह भी ज्ञात हो जाता है कि वाल्मीकि के आश्रम में कोई दो प्रतिभा शाली बालक आ गये हैं जिनको जन्म से ही जूम्भकास सिद्ध है। उनके लिये ही वाल्मीकि रामायण की रचना कर रहे हैं। अन्त में वाल्मीकि का भी समर्पण प्राप्त हो जाता है जिससे सीता अपने अन्वपुर में पुनः प्रवेश पा जाती है।

(२) 'वाल्मीकि सवर्धनम्' नाटक के ये नायक हैं। इसमें इनके पूर्ववर्ती जीवन और वाल्मीकि बनने का अंकन किया गया है।

वाल्मीकि प्रतिभा- (नाकू) वेङ्कटरामराधवन लिखित नाटक।

वाल्मीकिसवर्धनम्- (नाकू) यह विरवेश्वर विद्याभूषण लिखित ५ अंकों का नाटक है। इसमें वाल्मीकि के प्रारम्भिक जीवन की उस प्रसिद्ध घटना का चित्रण किया गया है जिसमें वे प्रारम्भ में दुराचारी बतलाये गये हैं और बाद में यह जानकर कि उनके दुष्कर्मों का फल भोगने के लिये उनके परिवार का कोई व्यक्ति भागीदार नहीं, सभी केवल दुष्कर्मों से उपाजित सम्पत्ति के भागीदार हैं, वे विरक्त होकर साधना निरत हो जाते हैं और अन्त में महर्षि वाल्मीकि बनकर रामायण की रचना करते हैं। प्रारम्भ में उनका नाम दस्यु रत्नाकर बतलाया गया है। इस कृति में सांस्कृतिक महता की चर्चा की गई है, प्रकृति वर्णन एवं नृत्य गीतादि का भी पर्याप्त उपादान किया गया है।

इस नाटक का रचनाकाल २०वीं शताब्दी है। १९६६ में रुपकमञ्जरी नामक ग्रन्थ माला से इसका प्रकाशन हुआ है तथा आकाशवाणी से इसका प्रसारण भी किया जा चुका है।

वासन्तिक स्वप्न- (नाकू) यह मूल रूप से सेक्सपियर के 'मिड संपर नाट्स ड्रीम' का संस्कृत अनुवाद है। इसके अनुवादक हैं अग्र कृष्णमाचार्य।

वासन्तिका- (नाकू) रामचन्द्र लिखित नाटिका। यह रचना १६वीं १७वीं शताब्दी में की गई थी।

वासन्तिका परिणय- (नाकू) यह शठकोप (दे) लिखित नाटक है। इसमें उच्चकांठ की कविता के ५ अंक हैं। अरोविलनार्सिंह के साथ जंगल की घरी वासन्तिका के विवाह का इसमें कथानक अपनाया गया है। सोमैज आप विजया नगरम्, दिष्टी आफ मद्रास में इसका उल्लेख भद्राम की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक कैटेलाग की संख्या XX। ८५०० पर किया गया है। इसका प्रकाशन १८९२ में मैमूर से हो चुका है।

वासन्ती-(नापा) यह उत्तररामचरित (दे.) की एक पात्र है। यह वनवास काल में राम और सीता के परस्पर प्रेम और उनके विहार की साक्षिणी है। यह सीता की सहेली और दण्डक वन में वनदेवी है। कार्यव्यस्तता के कारण उसे अयोध्या की घटनाओं का पता नहीं चला था। सयोगवश उसे वाल्मीकि आश्रम से लौटती हुई आत्रेयी मिल जाती है जिससे उसे सीतापरित्याग, राम के अश्वमेध, उसके लिये सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा इत्यादि का पता चलता है। शम्बूक का वध करने राम दण्डक वन में आते हैं, वहा के पूर्वोपभुक्त प्रदेश उनके मनमें करुणवेदना जागृत करते हैं। राम बार बार मूर्छित होते हैं, उसमें त्राण देने के लिये भगवतो भागरिषी की कृपा से सीता और तमसा अदृश्य रूप में उनके साथ लगी हैं। मूर्छावस्थाओं में सीता के अदृश्य स्पर्श से उनको मूर्छा दूर होती है। राम के साथ वासन्ती है। एक ओर अदृश्य सीता और तमसा तथा दूसरी ओर राम और वासन्ती इनसे भवभूति ने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया है कि भावना के उद्वेलन से पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। वासन्ती वनवास काल की राम के विश्रम्भ विहार की साक्षिणी है। अतः उसका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वासव-(नापा) इन्द्र का नामान्तर है। पार्यपराक्रम में इसी नाम से उनका उल्लेख है। युद्ध की सफलता पूर्वक परिणति पर अप्सरा के साथ विमान से आकर वधाई देते हैं और भरत वाक्य बोलते हैं।

वासवदत्ता-(नापा) एक प्रतिष्ठित नायिका है जिसका मूल रूप में उपादान गुणादय की बृहत्कथा में हो गया था। बाद में अनेक गद्यपद्य काव्यों और नाटकों की वह नायिका बनी। कवियों की कल्पना और रस निष्पत्ति की आवश्यकता के अनुसार उसके चित्रण में परिवर्तन भी होता रहा है। प्रमुख नाटकों में उसकी भूमिका निम्नप्रकार की रही है-

(१) प्रतिज्ञा यागन्यराश्रण- में वह महान पिता की प्यारी पुत्री है जिसके माता पिता उसका प्रदान करने के लिये किसी लोकातिशायी व्यक्ति की तलाश में हैं और उन्हें उदयन के रूप में ऐसा व्यक्ति मिल भी जाता है। वह कला की प्रेमिका है और संगीत में विशेष आनन्द लेती है। दोनों में प्रेम उत्पन्न करने के लिये उदयन को गिरफ्तार कराया जाता है और पुत्री को बीणा सिखाने के लिये उन्हें महल में ही रख लिया जाता है। वह सच्ची प्रेमिका और सौन्दर्यानुगमिणी होने के कारण उदयन को सर्वात्मना अपना दिल दे देती है। इस प्रेम में उदयन की बीणा पटुता भी बहुत बड़ा कारण है। उसके सौन्दर्य इत्यादि गुणों का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जब उदयन का मन्त्री कौशल से उदयन को छुड़ाने की सफल योजना बना लेता है तब उदयन उसे छोड़कर राज्य में भी लौटना नहीं चाहते। वह भी प्रेम के लिये माता पिता और सभी आत्मीयजनों का परित्याग कर उदयन के साथ भाग आती है और अपने प्रेम के प्रति सच्ची साबित होती है।

(२) स्वप्नवामकदत्तम्- में उसके गुणों और उदारता पूर्ण प्रवृत्तियों का ठीक रूप में

परिचय प्राप्त होता है। उसे पति का प्रेम इस सीमा तक प्राप्त होता है कि पति उसे एक क्षण के लिये भी छोड़ना नहीं चाहता। यहाँ तक की शिकार खेलने जाने पर भी साथ हा ले जाता है। उसे भी उसी सीमा तक पति से प्रेम है। किन्तु वह अपनी किसी भी स्वार्थपूर्ति के लिये पति की विजय और उसकी उन्नति में आड़े आना नहीं चाहती। केवल इतना ही नहीं अपितु इस कार्य के लिये वह बड़े से बड़ा बलिदान करने में भी नहीं हिचकती। पति पर आपत्ति आई है और उसके निराकरण के लिये मगध की राजकुमारी पद्मावती से राजा का विवाह आवश्यक है तथा इस निमित्त उसे कुछ समय के लिये अज्ञानवास करना है। वह प्रसन्नता पूर्वक मन्त्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। जब उसे धरोहर के रूप में पद्मावती के पास रख दिया जाता है तब वह बड़ी ही विषम स्थिति में पड़ जाती है। उसे राजा के दूसरे विवाह की पूरी तैयारी में जुट जाना पड़ता है। वह पति की विजय के लिये सौत का भार वहन कर लेती है। सौत की सहेली के रूप में रहने हुये भी कभी भी अपनी वास्तविकता प्रकट होने नहीं देती। कई बार प्रमाद स्खलित होता भी है तो भी निपुणता के साथ छिपा जाती है। पद्मावती के धोखे में वह राजा के पाम लेट जाती है और राजा की स्वयं की बडबडाहट में वह वार्तालाप में साथ भी देती है किन्तु अपनी स्थिति को दत्काल सभाल लेती है। सौसुलभ भावुकता की भी उसमें कमी नहीं है। जब वह भेद खुल जाने के भय से राजा के पास से भाग जाने का प्रयत्न करती है तब भी राजा की लटकती बाँह को ठीक रूप में रख देने के प्रलोभन का सवरण नहीं कर पाती यद्यपि इससे उसकी स्थिति कुछ न कुछ खुल रही जाती है। वह कन्दुक क्रीड़ा माला गूधने इत्यादि कला में अपनी निपुणता की धाक जमा देती है। उसे अपनी सरलता और हृद्यगुण इत्यादि गुणों का उचित पुरस्कार प्राप्त हो जाता है। उसका पति विजयी हाठा है और उसके माता पिता दोनों के चित्रों द्वारा उनकी विवाहविधि सम्पादित कर उनके गान्धर्व विवाह की स्वीकृति प्रदान कर देते हैं।

(३) तापस वनसार- में भी वासवदत्ता का वही रूप सुसंक्षिप्त है- केवल कथानक को नया रूप दे दिया गया है। किन्तु स्वरूप का विकास इतनी निपुणता से नहीं हो सका। फिर भी कथानक पुरानी परम्परा में आता है।

(४) रत्नावली- इस नाटक में इससे चरित्र का अवमूल्यन हुआ है। यहाँ वह अत्यन्त ईर्ष्यालु तथा अत्यन्त क्रोधी स्वभाव की है, उसमें स्त्री सुलभ सौन्दर्या इह अत्यधिक मात्रा में है। वह स्वधनवासवदत्ता की वासवदत्ता के समान एक आदर्श रमणी नहीं है। हर्ष ने वासवदत्ता में यद्यपि भारतीय पारिवारिक रमणों के दर्शन किये हैं। उसमें वे सब बमबोरीया हैं जो प्रायः महिलाओं में होती हैं यद्यपि उसमें उदात्तता और सहृदयता भी यत्नचित् रूप में विद्यमान है। यहाँ भी लावण्य में उसके जल मरने की खबर उड़ाई जाती है। किन्तु पण्डित गणेशशास्त्री उससे परामर्श करना आवश्यक नहीं समझता। यहाँ उदयन के सम्मान उसमें भी उसके जल मरने की खबर छिपाई जाती है। उसके अनुरूप में अनेक

दासिया है किन्तु जब वह एक नई दासी सागरिका को देखती है और उसकी रूपराशि का साक्षात्कार करती है तब उसके मन में आशका जागृत हो जाती है, वह होन भाव से अज्ञान हो जाती है। वह इस विषय में पुरुष की कमजोरी से परिचित है, इसीलिये सागरिका को राजा को निगाह से बचाये रहती है।

जब उसे पता चलता है कि राजा और सागरिका एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो गये हैं तब आशका उसके मन में भय, निराशा और फिर क्रोध का स्थान ले लेती है। उसे मालूम है कि सागरिका और सुमगता आपस में अत्यन्त घुली मिली हैं। अतः वह सुमगता को फोड़ने के लिये उसे अपना अच्छे से अच्छा परिधान देकर अपनी ओर करने की चेष्टा करती है और उसको उत्तरदायित्व प्रदान करती है कि सागरिका और राजा मिल न सके। किन्तु सुमगता मैत्री सम्बन्ध को अधिक महत्व देती है और राजा तथा सागरिका को मिलाने में उसी परिधान का उपयोग करती है।

जब यह राजा वासवदत्ता पर खुलता है तब वह मैके पर पहुँचकर उस मिलन में विघ्न तो डालती ही है साथ ही रूढ़ने और क्रोध करने का अभिनय कर वह राजा की कोमल भावनाओं पर भी प्रभाव डालना चाहती है। हार कर वह नया कदम उठाती है—विदूषक और सागरिका दोनों को पकड़कर बन्द कर देती है। वह जानती है विदूषक राजा का निबटवर्ती है और राजा पर विशेष प्रभाव डालने की स्थिति में है। अतः वह उसे छोड़ ही नहीं देती उसका पर्याप्त सत्कार करती है—तथा उसे वस्त्र और स्वर्णभरण की भेंट भी देती है। साथ ही वह यह प्रचार भी कर देती है कि सागरिका उज्जैन भेज दी गई है। इस योजना से उसे आशा है कि राजा कुछ दिनों में सागरिका को भूल जायेंगे। किन्तु वह इस दूरी के प्रभाव को देखना चाहती है, अतः वास्तव में उसे भेजती नहीं। एक तो घर की बात मैके में पहुँचाना ठीक नहीं दूसरे पता नहीं परिस्थिति क्या मोड़ ले और राजा पर उसका क्या प्रभाव पड़े। अतः उसको अपने पास ही सुरक्षित रख लेती है और केवल खबर उड़ाकर ही काम चला लेती है।

मैके के प्रति स्त्रियों की खास कमजोरी होती है। जब वह सुनती है कि मैके का जादूगर आया है तब उसमें एक विशेष आग्रह जागृत हो जाता है और राजा को प्रेरित कर वह राजा के साथ ही उसका आनन्द लेती है। पर जब उसे ज्ञात होता है कि माना के दहा से मन्त्री आया है तब जादूगरी के खेल को छोड़कर तत्काल उनके स्वागत को उठ खड़ी होती है।

सुलभ कमजोरियाँ तो उसमें हैं हीं। उदात्तता और सहानुभूति की भी उसमें कमी नहीं। आग लगने की घटना से वह एक दम सागरिका के लिये व्याकुल हो जाती है और बचाने के लिये राजा से प्रार्थना ही नहीं करती स्वयं भी आग में कूद पड़ती है। सागरिका से छुटकारा पाने के लिये वह वेनाव अवश्य है किन्तु मानवता को भी नहीं छोड़ती और अपने प्रतिद्वन्दी की जीवन रक्षा के लिये प्राणरक्षण से चेष्टा करती है। जब

उसे ज्ञात होता है कि सागरिका वासव में उसकी ममेरी बहन है तब उसकी आत्मीयता उमड़ आती है, वह अपने किये पर पश्चाताप करती है और अपने हाथ से राजा का प्रणय बन्धन कर देती है। बड़ी बहन के समान यह भी कहती है कि इसके माता पिता बहुत दूर हैं- अब ऐसा करें कि यह माता पिता को भूल जाये। वस्तुतः सारे वातावरण को देखते हुये परिस्थिति से समझौता कर लेने में ही उसकी बुद्धिमानी है।

(५) प्रियदर्शिका- मैं भी इसका चित्रण रत्नावली के समान ही हुआ है। केवल प्रतिनायिका के नामकरण और कथानक के स्वरूप में अन्तर आया है।

वासवदत्ता नाट्यपार- (नाकू) एक प्राचीन कवि एव आचार्य सुबन्धु का लिखा नाटक। उन्होंने नाटक के जो चार भेद किये हैं- प्रशान्त भास्वर, ललित और समप्र। उममें समप्र को उन्होंने नाट्यपार या नृत्यपार कहा है और उसके उदाहरण के रूप में वासवदत्ता नाट्यपार की रचना की। अभिनव गुप्त ने अभिनवभारती में नाट्यपार का परिचय दिया है।

वासवीपाराशरीयम्- (नाकू) नरसिंह आचार्य (दे) लिखित १२ अंकों का नाटक। अकाल की स्थिति में ब्राह्मण लोग गौतम की शरण में चले जाते हैं और गृहस्थों की यज्ञक्रिया लुप्त हो जाती है देवताओं को यज्ञभाग नहीं मिलता। देवता बदला लेने के लिये एक मायामयी राक्षस गौतम व पाम भेजते हैं जो गौतम के हावने पर मर जाती है और गौतम को गोवध का पाप प्रदान कर जाती है। गौतम रष्ट होकर देवताओं को शाप देते हैं। इस शाप का अनुग्रह करने के लिये विष्णु भगवान पराशर के पुत्र के रूप में अवतार लेने का निश्चय करते हैं। पराशर दारुणाज की कन्या वासवी की ओर आकृष्ट होते हैं और उसे वरदान देते हैं कि वह उनके पुत्र को जन्म देकर पुन कन्या बन जायेगी और तब उसे चक्रवर्ती पति मिलेगा। वासवी व्यास को जन्म देती है जिससे देवताओं को गौतम के शाप से मुक्ति मिल जाती है।

इस नाटक की रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी और विजय नगर से १९०२ में तेलुगु निधि में इसका प्रकाशन किया गया। इसमें प्राकृत का प्रयोग नहीं है रचना धर्म प्रचारात्मक है जिसमें बौद्ध इत्यादि की लम्बी चर्चा है वहीं वहीं अस्तोतता भी आ गई है।

वासवीपाराशरीयप्रकरणम्- (नाकू) यह मुकुन्दबई वेङ्कटराम नरसिंह (दे) का लिखा नाटक है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

वासुदेव- (नाटीका) मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की वैरिफिकर छात्र रिपोर्ट में स. ॥ ३८७८ पर विद्वत्सालभाञ्जिका की एक टीका का उल्लेख है जिसके टीकाकार का नाम वासुदेव दिया हुआ है। इस नाम के कई कवि हुए हैं जिनमें मानावर के ज्योतिष मानविक्रम के समय के वासुदेव अधिक प्रसिद्ध हैं। किन्तु टीकाकार

वासुदेव उनसे भिन्न थे। ये भी मालावार के ही निवासी थे। इन्हें विद्याधर मल्ल की उपाधि दी गई थी। ये करुणाकर के शिष्य थे।

वासुदेव द्विवेदी- (नाक) साहित्याचार्य एवं वेदशास्त्री की उपाधि धारण करने वाले २०वीं शताब्दी के कवि हैं। ये उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के निवासी थे। इन्होंने काशी में सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय की स्थापना की। व्याख्यानों और नाट्य प्रयोगों द्वारा संस्कृत का प्रचार करने के लिये भारत भ्रमण किया। संस्कृत प्रचार माता में मुद्रित कराने के लिये कई एकाङ्कियों तथा दूसरे प्रकार की पुस्तकों की रचना की। इनकी कतिपय नाट्यकृतियाँ हैं— कौत्सस्य गुरुदक्षिणा भोजराज्ये संस्कृतसाम्राज्यम्, बालनाटकम्।

वासुदेव नरेन्द्र- (नाक) इन्हें श्रीवत्साङ्क उपाधि के साथ वासुदेव श्रीवत्साङ्क नाम से भी याद किया जाता है। श्रीवत्साङ्क नाम से गोपाल श्रीवत्साङ्क (दे) तथा नरेन्द्र श्रीवत्साङ्क का भी नाम प्राप्त होता है। ज्ञात होता है ये सभी नाम एक ही व्यक्ति के थे। ये कारमौर के प्रमुख अधिकारी थे। इनका लिखा सुभगानन्द (दे) एक प्रहसन (दे) प्राप्त होता है।

विकटनितम्बा- (नाक) एक प्रेक्षक है जिसकी रचना वेङ्कटराम राधवन ने की थी। विकटनितम्बा एक प्रतिष्ठित कवयित्री थी जो आचार्य गोविन्द स्वामी की शिष्या थी। इनके पति केवल प्राकृत बोलते थे इसके अतिरिक्त कुछ पदे लिखे नहीं थे। इस ओषरा में विकटनितम्बा का चित्रण किया गया है जिसमें उनके द्वारा पति की मजाक बनाने की नाट्यविषय बनाया गया है। इसका प्रमाण आकाशवाणी मञ्चास से किया गया था।

विक्रमाश्वत्थामोयम्- (नाक) इस व्यायोग की रचना डा. नारायण राव विल्कुरी ने की थी। दुर्योधन मरणासन अवस्था में पड़ा है उसके प्राण नहीं निकल रहे हैं। अश्वत्थामा भामर्गन का क्या हुआ सा लगे हैं तब उनके प्राण निकलते हैं। बाद में अश्वत्थामा कृपाचार्य का बतलाते हैं कि वह सर तो बनावटी था।

इस व्यायोग की भाषा नाटयानुकूल है और इसमें छायातत्व का समावेश किया गया है। विभाजन दृश्यों में है। इसका प्रथम अभिनय अन्न पुर की कलाशाला में किया गया था। मन् १९३८ में इसका प्रकाशन किया गया।

विक्रमोर्वशीय- (नाक) महाकवि कालिदास (दे) की नाट्यरचना। विचारकों ने इस शब्द का श्रणीय रखा है। कुछ लोग इसे नाट्य और दूसरे लोग इसे सामान्य कवि (दे) बताते हैं। नामकरण का आशय है— विक्रम या शक्ति के द्वारा उर्वशी को शब्द कान के कान के लिये लिखा गई नाट्य रचना। पुरुषता न उर्वशी या शक्ति के द्वारा ही रहन आनन्द रूप में और फिर स्थायी रूप में प्राप्त किया था। विक्रमोर्वशीय के रचनाकार काव्यरस के अनुसार पुरुषता ने भी विक्रम की उपाधि धारण की थी। अन्तर्भाव का अर्थ होगा विक्रम और उर्वशी का लेकर लिखा गया नाट्य। कुछ भी हा

यहा कवि अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य का नाम जान बूझकर रचना में सन्निविष्ट करना चाहता है।

पुरूरवा और उर्वशी की कथा बहुत पुरानी है। यह ऋग्वेद शतपथ ब्राह्मण मत्स्य पुराण इत्यादि कई स्थानों पर आई है। प्रस्तुत रचना का कथानक मत्स्य पुराण से विशेष मेल खाता है। इस नाटक में अशिक घटना स्वर्ग लोक में घटती है और आशिक मृत्युलोक में पुरूरवा एक दैत्य से उर्वशी की रक्षा करते हैं और अपनी वीरता से उर्वशी को प्रभावित कर लेते हैं। दोनों एक दूसरे की देखा देखी में एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। इसी समय उर्वशी के लिये इन्द्र का बुलावा आ जाता है और वह व्यथित हृदय लिये वहा से चली जाती है। किन्तु गुप्त रूप से वह एक पत्र पुरूरवा के सामने डालती जाती है जो दुर्भाग्य से पुरूरवा की रानी के हाथ लग जाता है। रानी क्रोधाभिभूत हो जाती है। उधर उर्वशी को लक्ष्मी स्वयंवर नामक नाटक में लक्ष्मी की भूमिका निभानी है। किन्तु पुरूरवा के वियोग में दुःखी होने के कारण उसका अभिनय ठीक नहीं बन पाता। नाटक में जब मेनका उससे प्रश्न करती है कि तुम किसमे प्रेम करती हो तब उसे उत्तर देना है— पुरुषोत्तम नारायण से। किन्तु धोख में उसके मुह से निकल जाता है— पुरूरवा से। नाटक के बिगड़ जाने से भरत रूष्ट हो जाते हैं और उसे मृत्यु लोक वास का श्राप देते हैं। उस श्राप को इन्द्र कुछ नियन्त्रित कर देते हैं कि यह मृत्युलोक में तभी तक रहेगी जब तक इसका पति इससे उत्पन्न अपने पुत्र का मुख नहीं देख लेता। उर्वशी मृत्युलोक में आकर पुरूरवा के साथ आनन्दमय जीवन बिताने लगती है। रानी का वियोग भी शान्त हो जाता है। उर्वशी प्रेम में इतना खो गई है कि उसे पुत्र प्रेम की भी परवा नहीं है। वह एक पुत्र को गुप्त रूप से जन्म देती है जिसका पता पुरूरवा को भी नहीं चलता। वह पुत्र को अपने से दूर रखती है कि वहाँ पुरूरवा उसका मुह न देख लें और उसे अपने प्रेमी से दूर जाना पड़े।

एक बार ईर्ष्यावश क्रोध में भरकर उर्वशी कुमारवन में प्रवेश कर जाती है और पुरूरवा को दिखलाई नहा देती। पुरूरवा वियोग व्यथा से पागल होकर इधर उधर भटकने लगते हैं। व पागलपन में कभी बादल का अपनी प्रियतमा का अपहर्ता दानव समझते हैं कभी नदी की धारा के रूप में परिणत हुई प्रियतमा दिखलाई देती है। वे मोर नीलकण्ठ कायल ध्रुवर आदि से अपनी प्रियतमा का पता पूछते हैं नाचते हैं गाते हैं मूर्छित होते हैं कभी प्रतिध्वनि को उसका उत्तर समझ लेते हैं। अन्त में सगमनीय मणि को लेकर वे लता की आलिगन करने हैं। (कुमारवन की यह मान्यता है कि यदि कोई स्त्री उस वन में जायेगी तो वह लता के रूप में परिणत हो जायेगी और अपने रूप में तभी आयेगी जब उसका सम्पर्क सगमनाथ मणि से होगा।) सगमनीय मणि के साथ आलिगन करने पर उसका प्रियतमा उसकी बाह में आ जाता है।

पुनः उसका आनन्दमय जीवन व्यतीत होने लगता है। सयागदश एवं गिद्ध सगमनीय

भणि को ले उड़ता है और एक युवक के वाण से मारा जाता है। वाण पर लिखा है— 'पुरूरवा उर्वशी के पुत्र आयु का वाण'। राजा पुत्र मुख देखकर हर्षविभोर हो जाते हैं किन्तु उर्वशी अत्यन्त दुखी हो जाती है क्योंकि शर्त के अनुसार अब उसे अपने प्रेमी से अलग होकर स्वर्ग को लौट जाना है। इस बात को राजा अभी तक नहीं जानते थे। राजा अपनी प्रेमिका के होने वाले वियोग से अत्यन्त दुखी हो जाते हैं। तभी नारद आते हैं और राजा को सन्देश देते हैं— दानवों पर विजय के लिये इन्द्र को उनकी आवश्यकता है और इस सेवा के उपलक्ष्य में भेंट रूप में उन्होंने सारे जीवन के लिये उन्हें उर्वशी प्रदान कर दी है।

यह नाटक कालिदास की कला का अच्छा निदर्शन है। इसका सर्वोत्तम भाग उर्वशी का लता के रूप में परिणत होना और राजा का अनेक तत्वों में अपनी प्रियतमा का दर्शन करना कहा जाता है। विद्वानों की सम्मति में यह एकाताप (मोनो एक्टिंग) के क्षेत्र में विश्वसाहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। जादू की सगमनीय भणि शाप, स्वर्गीयदूत इत्यादि के प्रयोग से दैव और मानव जगत का इसमें अच्छा समन्वय अधिगत होता है।

विक्रान्तकौरव—(नाकू) हस्तिमल्ल (दे) लिखित ६ अकों का नाटक। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की पाण्डुलिपि विषयक त्रैवार्षिक रोज रिपोर्ट स १९८८ पर इसका उल्लेख किया गया है मोहनलाल ने भूमिका के साथ इसका सम्पादन किया और बम्बई से इसका प्रकाशन किया गया।

विक्रान्तराघवीय—(नाकू) श्रीकृष्ण का लिखा व्यायोग।

विक्रान्तशूद्रक—(नाकू) अज्ञातनामा कवि का लिखा एक प्रकरण। भोज राज ने शृङ्गार प्रकाश में इसका उल्लेख किया है। इसके अनुसार शूद्रक का एक भृत्य दा नौचाथ या शिवगण। उसने स्वामिकार्य के लिये निर्दोष भी पत्नी को चिता में जला दिया और पत्नी प्रेम के कारण स्वयं भी दूसरी चिता में कूद गया। किन्तु दोनों चितायें मायामयी (जादुई) थीं। जब पत्नी की चिता से माया दूर हुई तब उसे ज्ञात हुआ कि पति उसके वियोग में जलमरा है। तब वह भी पति की चिता में कूद पड़ी। जब माया दूर हुई तो दोनों साफ सुखे बाहर निकल आये। यह माया शूद्रक द्वारा तैयार की गई थी। इस घटना से राजा की शक्ति, भृत्यों की कर्तव्यपरायणता और पतिपत्नी का परस्पर प्रेम व्यक्त होता है। एक दूसरे स्थान पर भोजराज ने इस कृति का एक पद्य भी उद्धृत किया है।

विख्यातविजय—(नाकू) लक्ष्मणनागिक्य देव (दे) लिखित ६ अकों का नाटक। इसमें नकुल और कौरवों के युद्ध का चित्रण किया गया है। साथ ही कर्ण पर अर्जुन की विजय दिखलाई गई है। रचना १६वीं शताब्दी की है। इसका संस्कृत कैटलागस कैटलागोम III १२० पर किया गया है।

विग्रहराज—(नाका) इनका दूसरा नाम धौसलदेव भी है जो शाकभरी या साभर

के प्रसिद्ध चौहान राजा थे। पृथ्वीराज विजय के अनुसार इनके पिता का नाम अणोरज था। ये अजमेर के उनके उत्तराधिकारी राजा थे। इन्होंने मुसलमानों के प्रति कुल सफल सङ्घर्ष किया था। इनका लिखा हरकेल (दे) प्रसिद्ध है। सुभाषितावली में भी इनका लिखा हुआ एक पद्य दिया हुआ है। इससे ज्ञात होता है नाटक के अतिरिक्त इन्होंने कतिपय अन्य पुस्तकें भी लिखी थी। इनका समय १२वीं शताब्दी का अन्त एवं १३वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। अपनी कृति सुरक्षित रखने के लिये इन्होंने अपना नाटक एवं सोमदेव या सोमेश्वर द्वारा इनकी प्रशस्ति में लिखी ललित विग्रहराज नाटिका पत्थरों पर खुदवाई थी। उन पत्थरों को बाद में मुसलमान शासकों ने मस्जिद के गुम्बजों में लगा दिया था।

विचक्षणा- (नायक) कर्पूरमञ्जरी (दे) में नायिका को सखी जो राजा के साथ नायिका को प्रेम जोड़ने में सहायता करती है।

विजयपारिजात- (नाक) हरिजीवन मिश्र (दे) लिखित नाटक।

विजयपाल- (नायक) ये गुजरात के कवि हैं। श्रौपदीस्वयंवर इनका लिखा (दे) नाटक है। इनका समय सम्भवतः १३वीं शताब्दी है। चालुक्यराज भोमदेव के निर्देश पर इन्होंने रचना की थी।

विजययादवम्- (नाक) नारायणशास्त्री (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक।

विजयविक्रम- (नाक) यह कौण्डिन्यगोशय आर्यसूर्य (दे) का लिखा व्यायोग है। मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय में ट्रायैनीयल ग्रन्थ सूची स ॥ १७५१ में इसका उल्लेख किया गया है। इस नाटक में जयद्रथवध का कथानक चित्रित किया गया है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

विजयश्री- (नाक) दे पारिजातमञ्जरी।

विजया- (नायक) दे विज्जिका।

विजयाङ्क- (नायक) यह डा रामरावकन लिखित प्रेक्षक (ओपेरा) है। इसमें कर्णाटक के शामरु महाराज चन्द्रादित्य का पत्नी विजयाङ्का का पत्रिचित्रण किया गया है। कन्नड भरी कालेज मद्रास एवं संस्कृत एकेडमी मद्रास में इसका अभिनय किया गया था। इसका प्रसारण भी मद्रास से हो चुका है। इनका दूसरा नाम विज्जिका भी है।

विजयीन्द्रतीर्थ- (नायक) ये १६वीं शताब्दी के कर्णाटक के कवि हैं। इनका लिखा मुभद्राधनञ्जय नामक नाटक धनलाया जाता है।

विजयेन्द्रिरापरिणय- (नाक) यह मुबल्लण की रचना है। कैटलागस कैटलागोरम छण्ड २ स १३५ पर इसका उल्लेख किया गया है।

विज्जिका- (नाक) इनका वास्तविक नाम विजया है जिसको प्राकृत भाषा में विज्जिका कहा गया है। इनकी प्रसिद्धि इस प्राकृत नाम से हुई है। कवयित्रियों में य मन्विष्य प्रविष्टन है और कैटर्षी शैलाकालिदास के बाद इन्हीं का नाम आता है-

सरस्वतीव कर्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ ।

या वैदर्भीरावास कालिदासादन्तरम् ॥

इनके फुटकर पद्य संग्रह ग्रन्थों में मुराधित हैं जिनमें बहुत ही उच्चकोटि का कवित्व विद्यमान है। भद्रास से कौमुदीमहोत्त्व (दे) नामक जिस नाट्यकृति का उद्घार किया गया है सम्पादकों के मत से यह कृति विज्जिका की मालूम पड़ती है। एक तो इसकी रचना विज्जिका के नाम से उपलब्ध साहित्य से मेल खाती है। दूसरे इसकी पुष्पिका में लेखक का नाम कौडों से छा लिया गया है किन्तु दो अक्षर शेष हैं 'कया' अनुमान होता है यह शब्द 'विज्जिकया' (विरचित) होगा।

कौमुदीमहोत्त्व (अंक ३ श्लो १५) में शौनक और अविमारक का नाम आता है। शौनक दण्डी की अवन्तिसुन्दरी कथा का एक पात्र है और अविमारक भास का एक नाटक है। इससे ज्ञात होता है इसका समय भास और दण्डी के बाद होगा। विज्जिका चन्द्रादित्य की रानी थी जिनका समय ७वीं शताब्दी है। यह समय उक्त उल्लेख से मेल खाता है। इस नाटक में चतुर्भाणों के लेखकों के नाम आये हैं और इसकी प्रविधि भी उनसे मेल खाती है; इससे ज्ञात होता है कि यह नाटक उसी वर्ग का है।

विज्जिका- (नाक) दे विजयाङ्का ।

विटराजविजय- (नाक) यह एक भाण है जिसकी रचना रामवर्मा ने की थी जिनको कुह्युन्नितम्बिरान नाम से प्रसिद्ध सार्वभौम उपाधिधारी रामवर्मा युवराज (दे राजवर्मा ३) नाम से याद किया जाता है। यह नाटक रसात्मकता से भरापूर है। इसका प्रकाशन त्रिचूर से हो गया था। इसमें एक रंगीले युवा व्यक्ति का तुङ्गी वेश्या से समागम चित्रित किया गया है जो हास्य से भरा है।

विट्टल- (नाक) इनका लिखा छायानाटक (दे) रायपुर आदिलशाही की वसपरम्परा के शासन काल में १६वीं १७वीं शताब्दी में लिखा गया था।

विट्टल कृष्ण विद्यावागीश- (नाक) हास्यकाव्यप्रहसन के लेखक। रचनावाल १८वीं शताब्दी।

विदग्धमाधव- (नाक) शङ्करदेव लिखित नाटक।

विदग्धमाधव- (नाक) रूपगोस्वामी (दे) लिखित नाटक। इसमें ७ अंक हैं। श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण और गोपी की प्रेमलीलाओं का चित्रण इसका विषय है। जिसमें राधा कृष्ण की प्रेमलीला को प्रमुखता दी गई है। इस नाटक में भागवत का आधार नाम मात्र को लिया गया है, कथानक सर्वथा काल्पनिक है। अधिमन्यु नायक गोप में राधा का विवाह हो गया है जो उन्हें मधुरा ले जाना चाहता है। किन्तु राधा कृष्ण के प्रेम में फसी है। विभिन्न सहेलियों और कृष्ण की विदग्धना में वे व्रज में ही रह जाती हैं जहाँ कृष्ण के साथ उनकी प्रेमलीला चलनी रहती है।

इसका पहला अभिनय केशितोष में खुले आकाश में किया गया था। राधा की सखियों और विदूषकादि के सवादों में पद्यों में संस्कृत और गद्य में प्राकृत का प्रयोग किया गया है।

विल्सन के अनुसार इसका रचनाकाल १५५३ ई है इसका प्रकाशन १९०२ ई में बुरहानपुर मुर्शिदाबाद से हुआ था।

विदूषक- (नामापा) इसकी परिकल्पना नाट्यशास्त्र की एक बहुत बड़ी विशेषता है। यह प्रायः एक हसोड़ ब्राह्मण या ब्राह्मण का हास्यजनक विकृत रूप होता है। वह अपने अंग सस्यान वेषभूषण और भाषा सभी माध्यमों से हास्य सृष्टि करता है, कभी कूबड़ कभी गजा या बौना रूप, बाहर की निकले हुये दात लाल आँखें उसकी सामान्य विशेषतायें हैं। वह बहुत अधिक खाने वाला या सर्वदा खाने की बातें करने वाला एक बेवकूफ और अज्ञानी व्यक्ति होता है। किन्तु राजा का वह विश्वासपात्र सच्चा हितैषी होता है और सच्चाई के साथ राजा के स्वार्थ साधन में तत्पर रहता है। किन्तु सारे कार्य विचित्र ढंग से एवं मनोरञ्जक रूप में करता है। किन्तु कभी कभी उसका हास्य जनक रूप पीछे पड़ जाता है और स्वामी के प्रति निष्ठा प्रमुखरूप में उमड़कर सामने आ जाती है।

विदूषक- (नापा) विभिन्न नाटक में विदूषक का अपाक्षम-

(अ) अद्भुतदर्पण- यह रामविषयक नाटकों में एक है जिसमें सामान्य रूप से विदूषक का समावेश नहीं किया जाता है। किन्तु इसमें किया गया है।

(आ) अभिज्ञान शाकुन्तलम्- में इसका नाम माधव्य है। राज्य के कर्तव्य पालन के मध्य व्यस्तता में वातावरण को हसी मजाक से रत्ना करने के लिये एक सहचर की आवश्यकता होती है। उसको वही बात का धुरा नहीं मरना जाता और सभी कुछ मजाक के रूप में लिया जाता है। वालिदास की कुशल लेखनी ने विदूषक के चित्रण में इसी मजाक में मर्यादा का ध्यान रक्खा है। उसके हास्य परक वाक्यों में भी शिष्ट हास्य की प्रतीति होती है। वह राजा का मित्र है राजा उससे अपने गुप्तप्रेम की बात कर मन को रत्ना करने की चेष्टा करता है। उसका हास्य स्मित तब ही सीमित नहीं रहता। हास्य के साथ ही वह अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है। वह जानता है कि हास्य विनोद के साथ उसका कर्तव्य घर भी है कि यह राजा को गलत रास्ते पर न चलने दे। अतः जब राजा उसे शकुन्तला के प्रति अपने प्रेम की बात बदलते हैं तब वह उसे उस गलत मार्ग पर जाने से रोकने के लिये कहता है- अच्छा अब तो आपकी नियत मुनिकुमारियों पर भी पड़ने लगी। इस पर जब राजा उसे बतलाता है कि मुनि कुमारी नहीं क्षत्रिय विश्वापित्र की पुत्री है और छाड़ी जाने पर मुनि को प्राप्त हुई है तब वह हल्के रूप में कहता है- तब तो आप जल्दी जल्दी जाइये- वही मालबागनी का तेल चुपडकर अपने बालों को बिजना बरके आये हुए किसी ऋषिकुमार के हाथ में न पड़ जाय। जब राजा विषाग व्यथा में कहते हैं कि इधर तो मेरा मुनिपुत्री विषयक विम्वरण दूर हुआ तब कामदेव ने

आम का बौर रूप वाण भी धनुष पर चढ़ा लिया इस पर कह उठता है- 'लो अभी मैं कामदेव के इस वाण को डंडे से तोड़े देता हूँ।' हरिणी के बच्चों के साथ पत्नी लड़की के साथ मेरा प्रेम कैसे हो सकता है?' राजा के इस बहाने का सहारा लेकर कभी राजा को उस प्रेम की याद नहीं दिलाता। यह उसकी कर्तव्य परायणता का नमूना है। राजा उसे इतना सम्मान देता है कि माता के अनुष्ठान में अपने स्थान पर वह उसे ही भेज देता है और वह भी बिना चूके कह उठता है- 'तब तो मैं राजा का अनुज बन गया। एक और हास्य व्यङ्ग्य- राजा कहते हैं कि राजधानी में मा के अनुष्ठान में शामिल होना और वन में मुनियों की रक्षा करना- दोनों प्रदेश दूर दूर स्थित हैं। मैं निश्चय नहीं कर पाता कि मैं क्या करूँ। इस पर वह कह उठता है- 'त्रिशकु की भाँति दोनों के बीचों बीच में खड़े हो जाओ, जब राजा अवकाश की घोषणा कर अपने सहयात्रियों को हटा देता है तब वह बड़े भोलेपन से कहता है- 'आपने सभी मक्खियाँ उड़ा दीं। जब राजा ने शकुन्तला की प्रेम चेष्टाओं का वर्णन किया तब वह कहता है- 'इतना तो सब उसने कर दिया और क्या आप चाहते थे देखते ही देखते वह आपकी गोद में आ बैठती?' संक्षेप में वह राजा का मुँह लगा व्यक्ति है। राजा से हसी मजाक में बहुत कुछ कह लेता है राजा बुरा नहीं मानते। इस नाटक में उसके हास्य सामयिक एवं मर्यादित हैं। हास्य व्यङ्ग्य लिखने में भी कालिदास पूर्ण सफल है इसमें सन्देह नहीं।

(३) अविमारक- मैं भास की लेखनी ने प्रारम्भ में ही इस पात्र का जो स्वरूप स्थिर कर दिया था वह आगे चलकर प्रतिभाशाली कवियों द्वारा कल्पना के साथ कुछ नवीन रूप देकर अपनाया गया। जब शापग्रस्त होकर विष्णुसेन एक अन्य रूप में अज्ञातवास करने के लिये वाध्य हो जाता है तब भी वह स्वामिभक्ति से मुह नहीं मोड़ता। वह उसे जीवित या मृत खोज लाने के लिये कटिबद्ध है। यदि आवश्यकता पड़े तो परलोक तक उसका अनुगमन करने के लिये तत्पर है। अविमारक स्वयं उसके गुणों का कायल है। वह उसकी स्वयं प्रशंसा करता है। वह विदूषक को हास्योक्तियों पर मुग्ध है साथ ही उसकी वीरता, युद्ध कौशल और सान्त्वना पूर्ण वचनों की प्रशंसा करता है। जब नायिका वियोग वेदना में रोती है तो वह भी रोना चाहता है। किन्तु आसू नहीं आने तब वह याद करता है कि जब उसके पिता मरे थे तब भी उसके आसू नहीं आये थे।

(४) कर्पूरमञ्जरी- मैं नायिका की सहेली विचक्षणा के सहयोग में वह नायक-नायिका का संयोजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस नाटक में उसकी उक्तिया सामान्य कोटि की हैं और दर्शक पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं जमाती।

(५) नागानन्द- इसमें विदूषक जोधूतवाहन के साथ सत्सङ्ग है वह अपने कर्तव्य का पालन करता है और जोधूत वाहन एवं भलपवती इन दो लज्जाशील प्रेमियों को मिलाने का सफल प्रयास करता है। किन्तु उसके हास्य कुछ गवारू किस्म के मालूम पड़ते हैं। वह मक्खी, मच्छरों से पीछा छुड़ाने के लिये चादर छोड़ कर सेटा रहता है।

विट उसे अपनी पत्नी समझ कर उससे आलिंगन इत्यादि प्रेम की चेष्टायें करने लगता है। उसने अपना बप भो औरतों जैसा बना रक्खा है। उसी समय विट की पत्नी नवमालिका आ जाती है। वह पति को किसी परसी से प्रेम करते हुये देखकर नाराज हो जाती है। तब विदूषक को मनाने के लिये विट उस विवश करता है और विट की पत्नी के चरणों पर गिरकर और उसके आग्रह पर मदिरा पीकर उसे मनाता है। बाद में नवमालिका दम्पति के सामने तमाल रस से उसका मुह रंग कर उसकी मजाक उड़ाती है।

(ऊ) प्रियदर्शिनी- में विदूषक नायक नायिका को मिलाने में सहभागी तो होता है मनोरमा के साथ उसके प्रयत्न से ही राजा नाटक में अपनी भूमिका स्वयं करने के लिये राजी हुये हैं जिसमें दोनों का प्रेम विकसित होने में सहायता मिलती है किन्तु उसके चरित्र में पेदूपन के अतिरिक्त और कोई विशेषता नहीं है।

(ए) मालविकाग्निमित्र- यद्यपि वालिदास की उतनी ग्रीढ़ रचना नहीं है फिर भी विदूषक का चरित्र अफलातमक नहीं है। भोजनप्रियता उसका सर्वमान्य शास्त्रीय चरित्र है। जब राजा चन्द्रमा की प्रशंसा करता है तब उसे मादक की याद आती है। राजा के अवाञ्छित प्रेम का रहस्य जब खुल जाता है तब वह राजा को परामर्श देता है कि उसे तो चोर का व्यवहार करना चाहिए। जैसे सेंध लगाते हुये पकड़े जाने पर चोर बहाना करता है कि वह सेंध लगाने की कला सीख रहा था। राजा अपने अन्तपुर से असन्तुष्ट होकर एक दासी से प्रेम कर रहे हैं इसकी तुलना वह ऐसे व्यक्ति से करता है जो मांठे पिण्डीखर्जूर खाने खाते ऊब गया हो अब इमली खाने के लिये सलचा रहा हो।

(ऐ) मृच्छकटिक- म इसका नाम मैत्रेय है। इसके चरित्र का एक वाक्य में समाहार हो जाता है- सर्वकालमित्रम् अन्य नाटकों की अपेक्षा वह कुछ भिन्न है। अन्य नाटकों में उसका कर्तव्य होता है अभिनय में हास्य की मृष्टि करना और श्रान्त नायक का मनोविनोद करना। यहा नायक श्रान्त नहीं है क्योंकि वह समस्त सम्पत्ति खोकर दरिद्र बन चुका है। अब उसके पास श्रान्ति ताने का कोई काम है ही नहीं। किन्तु मैत्रेय उन स्वार्थी लोगों में नहीं है जो सम्पत्ति में तो साथ देते हैं और विपत्ति आने ही किनारा कस लेते हैं। उसने चारदत्त की सम्पन्नता में बहुत आनन्द उठाये हैं। एक वह समय था जब मिष्टान्तों से भरे हुए दासों को सूकर छोड़ देता था अब यह स्थिति आ गई है कि दिन में बही इधर उधर भोजन का ढोल बैठाना पड़ता है और रात में सोने के लिये वह चारदत्त के पाम घना आता है। फिर भी वह चारदत्त का सच्चे हृदय से हिनैपे है और निरन्तर उसका कल्याण का कामना करता ही रहता है। उसके प्रेम की दर मोटा है कि जब चारदत्त को मृत्युच्छेद की मजा मुना दी गई है तब वह चारदत्त के बिना जीवित रहना नहीं चाहता। वह चारदत्त का विरवास पात्र था बहुत अधिर है। वह उससे राध चार मृदा की सारभूत रत्नावली भेंट देता है। मैत्रेय भी विरवासगत नहीं करता। वह अपना कर्तव्य समझकर चारदत्त का कर्तव्य माग पर तान की चष्टा करता है और कहता है कि

वेरयागमन में बहुत अनर्थ होते हैं। वह अपने मित्र को इस दुर्व्यसन से रोकता है। अवसर आने पर क्रोध भी कर सकता है और झगड़े से भी नहीं डरता शकार से लड पड़ता है। उसके हास्य चुटीले हैं। वसन्त सेना की मा के मोटापे को देखकर कहता है— 'क्या इस कमरे में इन्हें बैठाकर यह कमरा बनाया गया होगा। जब उससे कहा जाता है कि इन्हें चौधिया ज्वर आ रहा है तब वह कहता है— 'भगवान चौधिया कभी मेरे ऊपर भी कृपा कर दे।'

सधोप में कहा जा सकता है वह सच्चा हित चिन्तक मित्र है, सम्पत्ति और विपत्ति में एक जैसा साथ देने वाला है। अन्य विदूषकों के चरित्र से उसका चरित्र सर्वथा भिन्न है। वह एक दरिद्र व्यक्ति का साथी है, वह केवल हसी मजाक की बातें ही नहीं करता नायक के क्रिया कलाप में भी शामिल होता है। उसकी ईमानदारी पर नायक को विश्वास है। वह केवल पेटू ब्राह्मण ही नहीं है और न केवल खाने पीने के मन्तव्य से नायक के पहा पड़ा है किन्तु सच्चे हितैषी का कर्तव्य पालन करता है और मित्र को ठीक रास्ते पर लाने की चेष्टा करता है।

(ओ) रत्नावली— में इसका नाम वसन्तक है। संस्कृत नाट्य परम्परा का पालन करते हुये उसका नामकरण किया गया है। वह हसोड पात्र तो है ही परम्परानुसार उसका पेटू ब्राह्मण होने का गुण भी विद्यमान है। जहाँ कहीं अवसर मिलता है वह खाने पीने की और विशेष रूप से लड्डुओं की याद अवश्य करता है। मदनमहोत्सव में जब घेटी द्विपदीखण्ड की बात करती है तब उसे खण्ड (खाड) से लड्डुओं की याद आ जाती है और पूछने लगता है कि क्या इस खाड से लड्डू बनते हैं? वह वायन लेने के लिये आतुर रहता है। जब बन्दीगृह से छूटने पर वह वासवदत्ता को कृपा का वर्णन करता है तब लड्डुओं से पेट भरने की ही बात करता है।

वह मनोज्ञान करने के अतिरिक्त राजा का सहचर, उसके रहस्यों को जानने वाला एक सहायक भी है। वह प्रत्येक पद पर राजा का साथ देता है और राजा उसका विश्वास भी करता है। वह नाचने का शौकीन है। मदनमहोत्सव में नर्तकियों के साथ स्वयं भी नाचने लगता है। जब चित्र फलक देखने के अवसर पर वासवदत्ता आ जाती है तब राजा उसे चित्रफलक छिपा लेने का आदेश देता है और वह उसे बगल में दबा लेता है किन्तु चित्रफलक छिप जाने की प्रसन्नता से इतना भर जाता है कि उसे इतना भी ध्यान नहीं रहता कि अभी वासवदत्ता यही है। वह बाहें उठाकर नाचने लगता है, चित्रफलक गिर जाता है और वासवदत्ता उसे देख लेती है। विदूषक जो उठता।

(ओ) विद्वत्शाल भञ्जिका— शृङ्गार प्रधान नाटिका है, इसीलिये इसमें हास्यरसमय आमोद प्रमोद के अवसर भी अधिक हैं, अतः विदूषक की भूमिका भी कुछ अधिक महत्वपूर्ण है। राजा के समस्त आमोदप्रमोदों और रहस्यों का वह नर्म सचिव तो है ही राजा के प्रेम सम्बन्धों की योजना में सहायक भी है इसके साथ ही रानी की हसी मजाक का वह विषय

भी है। रानी डमरुक नामक एक सेवक को लडकी बनाकर विदूषक का उससे विवाह रचाती है। उस लडकी के माता का नाम मृगतृष्णिका रक्खा गया और पिता का नाम शशशृङ्ग। स्वयं उस लडकी का नाम अम्बरमाला बतलाया गया। यदि विदूषक नामों पर ध्यान देता तो भी वह इस मजाक को समझ सकता था। किन्तु वह अपने विवाह की प्रसन्नता में फूला नहीं समाता। विवाह समाप्त होने के पहले ही जब राज खुलता है और लोगों को ते खूब मजा आता है किन्तु विदूषक की हालत खराब हो जाती है। इस मसखरी में प्रधान रूप से योजना और प्रबन्ध मेखला नाम की दासी का था। अतः विदूषक ने उससे बदला लेने के लिये एक दूसरी दासी को तैयार किया और उसे देवता की ओट में बिठा दिया। जब मेखला पूजा करने आई तो देवता की ओट में बैठी दासी ने देवता की ओर से कहा कि— तुमने एक ब्राह्मण का अपमान किया है अतः मैं (देवता) तुमसे दृष्ट हूँ और तुम मर जाओगी। उस ब्राह्मण के पैरों की पूजा कर उसकी जायों के नीचे से निकलो तभी बच पाओगी।' मेखला बहुत पबडा गई किन्तु रानी ने उसकी जीवन रक्षा के लिये देवता की सभी बातें पूरी की और जब विदूषक ने यह रहस्य खोला तब उससे लोगों को ज्यादा मजा आया। इस बदला लेने में राजा का भी परामर्श शामिल था।

(अ) शारिपुत्र प्रकरण— वनिष्क कालीन नाटककार अश्वघोष की इस कृति में विदूषक का समावेश इस वास्तविकता को स्पष्ट रूप में प्रमाणित करता है कि उस सुदूर वर्ती काल में भी नाटकों में विदूषक का समावेश हो चुका था। उसका हास्यप्रधान रूप भी सुरक्षित है किन्तु वह बौद्धधर्म के प्रतिकूल ब्राह्मणधर्म के समर्थन में विवाद में भी भाग लेता है। कोय के अनुसार उसके नामकरण में इस परम्परा का पालन किया गया है कि विदूषक का नाम पुष्प वसन्त इत्यादि पर होना चाहिये। इसका नाम कुमुदगन्ध है जिसका अर्थ है कुमुदगन्ध की सन्तान। इस प्रकार यह नाम पुष्प (कुमुद) पर हो आधारित है। परवर्ती साहित्य के समान वह एक पेटू ब्राह्मण है किन्तु शास्त्रार्थ में भाग लेना उसकी अतिरिक्त विशेषता है।

(अ) स्वप्नवासवदत्ताम्— में जब वामवदत्ता की मृत सम्पन्न राजा वियोग विदारण हो जाता है तब उसकी सान्त्वना का एक मात्र सहारा विदूषक ही रह जाता है। उसी के सम्पर्क में राजा अपनी पीड़ित आत्मा को विनोदित करते हैं। उसमें विदूषक की सामान्य विशेषतायें विद्यमान हैं। उस खाने पीने का ही विशेष ध्यान रहता है। जब राजा पृष्ठता है कि 'तुम्हें पचावती और वामवदत्ता में कौन अधिक अच्छी लगती है। उस समय वासवदत्ता या अब पचावती? तब उसका धरो उत्तर रहता है कि मुझे दोनों अच्छी लगती हैं किन्तु वामवदत्ता मेरे खाने पीने का अधिक ध्यान रखती था।

विद्धवेधनम्— (नाट्) नाटयग्न शस्त्री (१) लिखित ५ अंकों का नाटक।

विद्धशाल भञ्जिका— (नाट्) राजशेखर (२) लिखित ४ अंकों का नाटक जिसमें

हास्य के अनेक अवसर प्रस्तुत किये गये हैं। इसका नायक उज्जैन का विलासी राजा विद्याधर मल्ल है। यह शीर ललित नायक है जिसने राज्य का साथ भाग मन्त्री भ्रातृभ्रातृपुत्रों को सौंपकर विलासवेष्टाओं में अपना मन लगा दिया है। साथ वातावरण शृङ्गारमय है। महापत्नी पतिव्रता है और पति की इच्छा पूरी करने के लिये कोई भी विलक्षण करने में प्रसन्नता का अनुभव करती है। इसीलिये उसने स्वयं ही मगध, मालव, पाञ्चाल अथवा आलन्दर, केरल इत्यादि राज्यों की राजकुमारियों के साथ राजा का विवाह करवा दिया। कुन्तलनरेश चन्द्रमहासेन जब पराजित होकर उज्जैन राज्य में आ गये तब एक दिन उसकी सुन्दरी पुत्री कुवलपद्माला नर्मदा स्नान कर बाहर निकल रही थी कि राजा की निगाह उस पर पड़ गई और वह उस पर आसक्त हो गया।

साट प्रदेश का अधिराजि चन्द्रवर्मा विद्याधर मल्ल का माना लगता था। उसके यहां एक पुत्री का जन्म हुआ जो अद्वितीय पुत्र सुन्दरी थी। लाटेश्वर के यहां कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था जो लाट राज्य का उपराधिकारी बन सकता। अतः वहां की रानी ने उसको लडका बनाकर पालन पोषण किया। और मृगाङ्गवती के स्थान पर उसका नाम मृगाङ्गवर्मा रख दिया। उस कन्या के विषय में भविष्यवानों की गई थी कि इसका पति चक्रवर्ती सम्राट् होगा। उज्जैन के गुणवरो से भ्रातृभ्रातृपुत्रों को यह सूचना मिल गई थी। अतः अपने महाराज को यह सौभाग्य प्रदान करने के लिये वह प्रयत्नपूर्वक मृगाङ्गवर्मा को अपने राज्य में ले आया। महाराणी अपने मनोरं भाई को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। मन्त्री ने एक विश्वस्त दामो की विश्वास में लेकर उसे कुछ निर्देश दिये और मृगाङ्गवर्मा को स्फटिकशिला मन्दिर केलि कैलास के निकट उस दासी के सरक्षण में छोड़ा दिया। दामो का वर्णज राजा को उस सुन्दरी को ओर आकर्षित करता था और वह वही बना कर राजा को उसके सौन्दर्य की झलक वार वार दिखला देने थी। साथ ही कैलिकैलास के मन्त्रियों पर उस सुन्दरी के चित्र अंकित करा दिये गये और एक छन्दों की उक्तियों कर उसे उस सुन्दरी की हूँ बहूँ मैंने शाल भञ्जिका के रूप में दास दिया गया। इसी आधार पर इस नाटिका का संनकरण किया गया है। मन्त्री ने परितः में रत्नावली नामक चौकी पर उसकी ही मूर्ति की स्थापना कर दी।

राजा ने एक अपूर्णपूर्व सुन्दरी की स्तब्ध में देखा। राजा उस स्तब्धता का मुग्ध हो गया। राजा ने उसके वस्त्र पकड़ने की चेष्टा की, किन्तु वह राजा के कण्ठ में हल डालकर अदृश्य हो गई। जाकर राजा ने चतुर्मुख की अन्धा स्तब्धता में जब वे उद्यान भ्रमण के निदेश मिले तब उन्हें ऊपरी अष्टमैत्रिका पर चौकी का द्वार सुनाई दिया। जब राजा और विदूषक ने ऊपर की ओर उड़या तब उन्हें एक अनुपम सुन्दरी होने में हैरत भरे हुए दिखलाई दी। राजा यह देखकर चकित रह गया कि यह तो वह सुन्दरी है जिसे राजा ने स्तब्ध में देखा था। जब राजा उस ओर बढ़े वह अदृश्य हो गई। ऊपर जाकर राजा ने उसी का द्वार खोजा हुआ देखा तब कुछ और आगे बढ़कर शालभञ्जिका

(Statue) देखी। यह तो स्वप्नदृष्ट सुन्दरी की ही मूर्ति थी। राजा ने गले से हार उतार कर उस मूर्ति के गले में डाल दिया। इसी बीच राजा को उस सुन्दरी की झलक भी दिखलाई पड़ गई। किन्तु वह भी क्षण भर में अदृश्य हो गई। राजा पर सम्मोहन जादू का पूरा प्रभाव पड़ गया।

रानी को विदूषक से मसखरी करने की सूझी। उसने अपने परिचारक डमरुक को जनाने कपड़े पहनाकर यह कहला दिया कि पिता शराशुद्ध और मरता मृगतृष्णिका से उत्पन्न अम्बरमाला (आकाश कुसुम) नामक लड़की से विदूषक की शादी की जायेगी। सारा आयोजन किया गया और भावरे पड़ने के ठीक अवसर पर उस दास ने स्वयं को प्रकट कर दिया जिस पर खूब हसी हुई। विदूषक हष्ट होकर चला गया।

जब राजा विदूषक के साथ इधर उधर घूम रहे थे तब परिसर में दीवाल की आड़ से आता हुआ युवतियों का वार्तालाप सुनाई दिया जिससे उन्हें ज्ञात हो गया कि उन्हीं की प्रेम दीवानी कोई युवती सहेली के साथ मिलने की योजना बना रही है। उसी समय उन्हें एक पत्र मिला गया। उससे कुछ पहले राजा ने उस सुन्दरी को गेंद खेलते देखा था और रत्नवती चौकी पर उसकी मूर्ति भी देखी थी। सखियों की बातचीत में ही राजा को ज्ञात हो गया कि उस सुन्दरी का नाम मृगाङ्गवती है और वह राजा के प्रति प्रेम भावना से आपादमस्तक आल्पावित हो गई है। अब दोनों एक दूसरे के सामने आ जाते हैं और राजा प्रणय निवेदन कर उसके गले में हार डाल देते हैं।

राजा के सहयोग से विदूषक बदला लेने की सोचता है। उस मिथ्याविवाह में मेखला दासी ने प्रमुख भाग लिया था। अब विदूषक एक दूसरी दासी को तैयार कर पूजा के अवसर पर देवता की ओट से मेखला के प्रति कहला देता है कि क्योंकि उसने एक ब्राह्मण का अपमान किया है— इसलिये यह उस ब्राह्मण के पैरों की पूजा कर ब्राह्मण की जाप के नीचे से नहीं निकलेगी तो वह भर जायेगी। उसका जीवन बचाने के लिये रानी सभी विधि पूरी करती है।

जब रानी को वास्तविकता का पता चलता है तब वह राजा से बदला लेने की सोचती है। वह सोचती है कि मृगाङ्गवती इतना खूबसूरत युवक है कि यदि उसे लड़की के कपड़े पहिना दिये जायें तो वह बहुत मुन्दर लड़की जयेगी। वह राजा के पास सन्देश भेजती है कि मृगाङ्गवती की बहन आई है। उसके साथ राजा के विवाह की तैयारी कर ली गई है। इस विवाह से राजा चक्रवर्ती सम्राट् बन जायेंगे। वैसे रानी को पता था कि राजा कुवलय माला के प्रति आकर्षित है। अब रानी ने एक नई सौत से पीछा छुड़ाने के लिये मृगाङ्गवती और कुवलयमाला की शादी करा देने की योजना बना रखी थी। अब वह सोचने लगी कि लड़की बनाकर उस लड़के (मृगाङ्गवती) से शादी करा देने में खूब मजा आयेगा। शादी की रम्य जैसे ही पूरी होती है लट्ट नरेश का दूत आकर समाचार देता है कि मृगाङ्गवती वामन में मृगाङ्गवती है। पुत्रहीन होने के कारण उसे

लडका बनाकर पाला गया था। अब लाट नरेश के यहां पुत्र जन्म हो चुका है और लाट देश को अपना वारिस मिल गया है। अतः इस लडकी की शादी कहीं कर दी जाय। रानी राजा को मूर्ख बनाना चाहती थी किन्तु स्वयं मूर्ख बन गई। नवीन विवाह का पुरस्कार राजा को सर्वत्र शत्रु विजय के रूप में मिल गया।

चरित्रचित्रण कथानक, संघटना इत्यादि सभी दृष्टियों से नाटक भले ही सदोष एवं पिछड़ा प्रतीत हो किन्तु कलात्मक सौन्दर्य की उसमें कमी नहीं और ऋतु, चन्द्रोदय, प्रातः-साय, सन्ध्यावर्णन में कल्पना शक्ति का चमत्कार दृश्य है। उक्तिया कहीं कहीं कालिदास से होड़ लेती हैं।

इस नाटक का प्रकाशन वमनाचार्य ने बनारस से कराया। अमेजी में 'THE LADY OF THE STATUE' नाम से कई अनुवाद प्रकाशित हुये जिनमें लेवी थियेटर इण्डियन २४७) विल्सन (थियेटर II २५४) हेनरी एलएच ग्रे (अमेरिकन जर्नल आफ ओरियण्टल सोसाइटी XXVII १) सम्मिलित हैं। इस पर कई एक टीकायें भी लिखी गई जिनमें नारायण की टीका (पूना संस्करण), धनश्याम (दे.) और दोनों पत्नियों की टीका (ई हुल्टज की दक्षिण भारतीय पाण्डुलिपियों की रिपोर्ट, मद्रास में स III ६७६ पर उल्लिखित), सत्यव्रत की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित) जे विद्यासागर की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), अज्ञातनामा कवि की एक टीका (जो करुणाकर का शिष्य है), इसकी प्रति मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८५१८ में और वासुदेव की टीका मद्रास पुस्तकालय की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट III ८८७० पर उल्लिखित है।

विद्या- (नापा) प्रतीक रूपक प्रबोधचन्द्रोदय का पात्र। यह विवेक और उपनिषद् की सन्तान है, प्रबोध उसका भाई है। यह महामोह तथा उसके वर्ग को निगल जाती है और राज्य पर विवेक का शासन स्थापित करने में उसकी सहायता करती है।

विद्याधर- (नापा) यह देवयोनिविशेष का परिचायक वर्ग है। अनेक नाटकों में इनका समावेश किया गया है- (१) अनर्घराघव में दो विद्याधर रत्नचूड़ और हेमाङ्गद राम रावण के अन्तिम युद्ध का वर्णन करते हैं। (२) अभिषेक नाटक में ३ विद्याधर राम रावण युद्ध का वर्णन करते हैं। (३) अविमारक में नायक को विद्याधर की जादुई अगूठी मिलती है। जिसके प्रभाव से वह अदृश्य होकर राजकन्या का उपभोग करता है। (४) उत्तरायणवर्ति में विद्याधर पत्नी के साथ आकाश मार्ग में जा रहा है, वह लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन करता है जिसमें दिव्यास्त्रों का भी प्रयोग किया गया है। (५) कर्णसुन्दरी में विद्याधर की पुत्री कर्णसुन्दरी के चातुर्व्य राज से प्रेम और विवाह का वर्णन किया गया है। (६) श्रीमुदीमित्रानन्द में एक स्त्री लोलुप विद्याधर के प्रतिकूल मित्रानन्द कापासिक को सहायता देता है।

(७) नागानन्द में नायक जीभूत वाहन विद्याधर राजकुमार है। नाटक के विभिन्न कथानकों का समन्वय इसी के चरित्र में हो जाता है। (८) प्रसन्नराघव में विद्याधर और

विद्याधरी रावणवध का वर्णन करते हैं।

(इस नाटक का परिचय यथाम्थान देखिये।)

विद्याधर चक्रवर्ती- (नाका) य १४वो शताब्दी में कर्णाटक के निवासी थे। इनका लिखा विरपाक्ष पञ्चाशिका नामक काव्य और रुक्मिणीकल्याण (दे) नामक नाटक बतलाया जाता है। इनके नाम पर कतिपय टीकायें भी बतलाई जाती हैं।

विद्याधरमल्ल- (नापा) विद्वत्शालभञ्जिका (द) का नायक। यह एक विलासी राजा है यह धीरललित नायक की कोटि में आता है। इसकी प्रवृत्ति के कारण सारा वानावरण शृङ्गारमय हो गया है। महाराणी ने उदारता पूर्वक राजा का विवाह मगधमालव पञ्चाल अवनती, जालन्धर केरल इत्यादि की राजकुमारियों से करा दिया है। अन्तपुर में इतनी रानियों के होते हुये भी इसे सन्ताप नहीं है। कुन्तलमरेश जब पराजित होकर उज्जैन में शरण लेने हैं तब उनका पुत्री कुवलयमाला पर भी इसकी नियत चल जाती है। दूसरी ओर मन्त्री भागुदायण लाट प्रदेश की राजकुमारी मृगाङ्गावली को पुरष वध में लाकर राजा का विवाह कराना चाहता है। रानी उसे लडकी ही ममझती है और एक नई सौत कुवलयमाला से पीछा छुड़ाने के लिये मृगाङ्गवर्मा (मृगाङ्गावली का पुरष रूप) के साथ चट पट उसका विवाह कराना चाहती है किन्तु उसे राजा से कुछ मजाक करने की सूझती है और वह मृगाङ्गवर्मा को लडकी बनाकर उसका विवाह उससे करा देती है। यही छानो चूक जाती है क्योंकि मृगाङ्गवर्मा तो मृगाङ्गावली नाम की लडकी ही है। इस प्रकार रानी को एक नहा दा और सौते मिल जाती है।

विद्याधरशास्त्री- (नाका) इनका जन्म चौकानेर राज्य के चुरु नामक नगर में १९०१ में हुआ था। इनके पिता विद्यावाचस्पति देवीप्रसादशास्त्री एक अच्छे विद्वान थे जिन्हें स्वशास्त्र निष्णात होने की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इन्हें भी अनेक उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं। शिवपुष्पाञ्जलि सूर्यप्रार्थना विद्याधरशास्त्रक जैसे इनके ग्रन्थ तो प्रसिद्ध ही हैं। इनके लिखे नाटक हैं पूर्णानन्द कलिप्रतापनम् और दुर्बलबलम्। (यथाम्थान देखिये।)

विद्यानाथ विडम्बन- (नाक) दे प्रतापहृदविजयम् (२)।

विद्यापरिणय- (नाक) वेदकवि (दे) विरचित प्रतीक नाटक। इसमें जीवात्मा का विद्या से विवाह दिखलाया गया है। जीव अविद्या और उसकी मरचारियों के चक्कर में पड़ा है। जीव का सचिव चित्त शर्मा निपुणतापूर्वक जीव का उम जानने में छुड़ाने व दारण्यनिवासिनी निवृत्ति में मेल करता है तथा उसे वेदारण्य लज्जाकर सभी तात्त्विक इत्यादि पाण्डुओं सम्प्रदायों में बचाने हुये विद्या से अनुराग करा देता है तथा दोनों का विवाह हो जाता है। चित्तशर्मा अविद्या से जीव को थोरे थोरे अलग करता है। वह अविद्या का भा पताभरांदाता बन जाता है और उसमें मान इत्यादि एम कार्य करता है कि जीव मग्न विरक्त हो जाता है। वह भगवैज्ञानिक रूप में हो अविद्या से दूर होता

जाता है। उसे ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि चित्तशर्मा उसे बलात् अविद्या से अलग कर रहा है। इसके लिये चित्तशर्मा अविद्या को परामर्श देकर वेदारण्य तक साथ ही लगाये रहता है। किन्तु अविद्या को ज्ञान के अतिरिक्त कोप भवन में बैठकर इतनी दूर करता जाता है कि जीव उब जाता है और इस प्रकार अविद्या को छोड़कर विद्या की ओर झुक जाता है।

इसका सम्पादन काव्यमाला में १८९३ में किया गया था। वस्तुतः इस नाटक की रचना वेदकवि ने ही की थी। किन्तु इस कवि ने अपने दोनों नाटकों (विद्या परिणय और जीवानन्द) की रचना कर उन्हें अपने आश्रयदाता को समर्पित कर दिया। अब ये नाटक आनन्दराय माकिन के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

विद्युन्माला- (नाकू) व्यासराज शास्त्री लिखित रूपक। यह रामकथा से सम्बन्धित है। मन्थरा कैकेयी को रामराज्याभिषेक के विरोध में समझाती है, किन्तु कैकेयी पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। देवता परेशान हैं, यदि राम राजकाज में लग गये तो स्वर्ण वध नहीं हो पायेगा। अतः बृहस्पति विद्युन्माला को नियुक्त कर कैकेयी को विरोधिनी बनाते हैं। यह रचना अनेक दूरियों में विभाजित है और छोटे सवाद अभिनय के अनुकूल है। विद्यासागर प्रकाशनालय, राजा अण्णरानलैपुल्लु, मद्रास से इसका प्रकाशन १९५५ में हो गया था।

विद्योत्तमम्- (नाकू) विष्णुदत्त त्रिपाठी लिखित नाटक। रचनाकाल २० वीं शताब्दी।

विद्राघ माधवम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ६ अंकों का नाटक।

विद्वन्मोदतरंगिणी- (नाकू) यह रामदेव (दे) लिखित एक विचित्र प्रहसन है। यह वास्तव में नाटक नहीं नाटक जैसी रचना है जो किसी सीमा तक नाटक कही जा सकती है या कहने के लिये नाट्यकृति है। इसमें धार्मिक, अधार्मिक, सामान्यजन, सम्प्रदायों के अनुयायी सभी एक मंच पर लाये गये हैं और वार्तालाप द्वारा विचित्र दार्शनिक विचारधाराओं में एक रूपता स्थापित की जाती है। इसका प्रकाशन कलकत्ता और मद्रास से हुआ है।

विधिविपर्यास- (नाकू) जीवन्नाथ तीर्थ लिखित नाटक। विधि शब्द के दो अर्थ हैं- ब्रह्मा और कानून। विधि विपर्यास का अर्थ है- भगवान् की बनाई व्यवस्था और मानव निर्मित सामाजिक विधिविधान दोनों में उलट फेर है। विनोद इस नाटक का नायक है जो स्त्री पुरुष समानाधिकार का समर्थक है और सन्तानोत्पादन के लिये विवाह की आवश्यकता नहीं समझता। नायिका विवाह पर जोर देती है, किन्तु नायक विज्ञान की बातें कहकर उसे शान्त करने की चेष्टा करता है। इसी बीच एक डाक्टर एक नपुंसक को लेकर आता है और कहता है कि जब ये लोग विवाह नहीं करना चाहते तब उन्हें प्रजनन अंग की आवश्यकता नहीं। इनका अंग निकाल कर इस नपुंसक के अंग में लगा दिया जाय जिससे इसके अन्दर प्रजनन शक्ति आ जायेगी। यह सुनकर विनोद डर जाता है

और विवाह कर लेता है। बाद में ज्ञात होता है कि डाक्टर की घटना बनाई हुई थी जो विवाह के समर्थक लोगों की विनोद को विवाह के लिये राजी करने के लिये अभिनीत की गई थी।

हिन्दूकोड विलपर विचार करने के लिये पूना में जो मीटिंग बुलाई गई थी उसमें अभिनय के मन्तव्य से इस नाटक की रचना की गई थी। इसका प्रकाशन आचार्य पचानन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत हो गया था।

विधि विलसित- (नाकू) एक प्रकरण। इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है।

विनतानन्द- (नाकू) गोविन्द का लिखा एक व्यायोग। दे गोविन्द और प्रचण्ड गरुड।

विनयवसु- (नापा) प्रियदर्शिका में अगराज दृढवर्मा का कञ्चुकी। अगराज ने पुत्री प्रियदर्शिका का विवाह वत्सराज के साथ करने का निश्चय कर रक्खा था। किन्तु कलिंगराज उसे चाहता था। उसने अगराज पर आक्रमण कर दृढवर्मा को पराजित कर दिया। इसी बीच विनय वसु (कचुकी) प्रियदर्शिका को किसी तरह बचाकर निकाल ले गया और अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुये प्रियदर्शिका को वत्सराज के यहा पहुँचा दिया। वह आरण्याका नाम से वत्सराज के यहा सेविका बनकर रहने लगी। अन्त में दृढवर्मा के विजयलाभ कर लेने के बाद इसी कञ्चुकी ने प्रियदर्शिका को पहिचान कर उसे अपना प्राप्तव्य दिलवाया।

विनायकरावदोकील- (नाका) २०वीं शताब्दी महाराष्ट्र निवासी कवि एवं नाटककार। इनका सम्बन्ध शिक्षा विभाग से रहा। इन्होंने फर्गुसन कालेज पूना में अध्यापक के पद पर और लगभग ६ वर्ष शिक्षा विभाग में इस्पेक्टर के पद पर कार्य किया।

इनकी लिखी कृतियाँ हैं- भीमकीचकीय, रामानाथ श्रीकृष्णस्मरणाय श्री शिववैभव और सौमद्र। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने कई बालोपयोगी पुस्तकें लिखीं। इनकी कतिपय रचनाएँ मराठी और अंग्रेजी में भी पाई जाती हैं।

विनोदरग- (नाकू) यह एक प्रहसन है जिसका सक्त्तन कैटेलागस कैटेलागोरम म १५७७ पर किया गया है। यह भी सम्भावित है कि यह रचना मुन्दरदेव (दे) की हो।

विनोद विहारी- (नाका) ये १९वीं २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनकी उपाधि काव्य विनोद भी थी। इनका लिखा वादम्बरोनाटक बतलाया जाता है।

विनुघदानव- (नाकू) यह प्रधानिवैकटभूपति (दे) लिखित समवसर है।

विबुधमोहन- (नाकू) १७वीं शताब्दी का हरिजीवन मिश्र (दे) लिखित प्रहसन। महिषमाला का विवाह अखण्डानन्द के साथ होना निश्चित हुआ है। उसके पिता

सखलागमाचार्य ने शास्त्रार्थ का आयोजन किया है। अखण्डानन्द राजसभा में उपस्थित होकर शास्त्रार्थ में कन्यापक्ष को पराजित कर विवाह करता है। कन्यापक्ष की ओर से कन्या का भाई शास्त्रार्थ करता है। (कहीं कहीं बहुत समय तक यह प्रथा रही है कि विवाह के पहले कन्या और वर के दोनों पक्ष परस्पर शास्त्रार्थ करते थे। वर पक्ष के विजयी होने पर ही विवाह होता था। यह दूसरी बात है कि विवाह के मन्त्रव्य से कन्या पक्ष जान बूझकर पराजित हो जाता था।)

विबुधविनोद- (नाकू) बंगीय कवि रजनोकात साहित्याचार्य को २०वें शताब्दी की नाट्यकृति।

विबुधानन्दम्- (नाकू) दे लक्ष्मीस्वयंवर (२)।

विभीषण- (नापा) यह रामायण के प्रमुख पात्रों में एक है। यह रावण का भाई है और राम रावण युद्ध की सम्भवना होने पर यह राम से मिल जाता है। कई नाटकों में इसका उपादान किया गया है— (क) वाल्मीकि रामायण में राम ने समुद्र पर कायदे से पुल बंधवाया था। किन्तु भास के विभीषण ने सेतु निर्माण के साथ पर समुद्र पर बल प्रयोग का प्रामर्श दिया। (ख) महावीर चरित में विभीषण राम से मिलने ऋष्यमूक पर्वत पर आना चाहता है। किन्तु रावण के मन्त्री माल्यवन्त के कहने से ही वालों उसके ऋष्यमूक पर प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा देता है। (ग) प्रसन्नराघव में रावण के वध के बाद विभीषण का राम के साथ अयोध्या आने का वर्णन किया गया है।

विमलयतीन्द्रम्- (नाकू) यह यतीन्द्रविमलयौघरी (दे.) का लिखा १७ अकों का नाटक है। इसमें रामानुजाचार्य का चरित्र चित्रित किया गया है। किसी शिष्य को यादव प्रवाश द्वाहा उपनिषद् का गलत अर्थ बतलाये जाने पर जब रामानुज उसे शुद्ध कर देते हैं तब यादवप्रकाश उन्हें मार देने को तैयार हो जाते हैं। इस अन्याय से दुखी होकर रामानुज सन्यासी बन जाते हैं और विमलयतीन्द्र नाम धारण कर लेते हैं। वे ब्रह्मसूत्र का वैष्णव भाष्य लिखते हैं और द्रविड आन्ध्र का प्रचार करते हैं। अपने शिष्य के साथ दिग्विजय के लिये निकलते हैं। स्वयं यादवप्रकाश उनका शिष्यत्व स्वीकार करते हैं। शैव चोल नरेश के अत्याचारों से भी उनका कार्य रुकता नहीं।

विमुक्ति- (नाकू) यह दो अकों का प्रहसन है जिसके लेखक हैं डा वेङ्कटराघवन। रचनाकाल १९३१ ई इसका विषय है पञ्चतत्व, मन एव इन्द्रियों के द्वारा परवश बनाये गये आत्मा की विमुक्ति अर्थात् प्रकृति के बन्धन से छुटकारा। लेखक ने इसके लिये मानवचरित्रों की कल्पना की है। आत्मसाथ इसके नायक हैं तथा इसी प्रकार आत्मतत्वों को भी मानव व्यक्तियों के नामों से प्रस्तुत किया गया है। सन् १९६३ में मद्रास में धर्मप्रकाश थियेटर के मंच पर संस्कृतग के चतुर्थ स्थापना दिवस पर इसका अभिनय किया गया था।

विराजसरोजिनी- (नाट्) इस नाटक की रचना हरिदास (दे) ने कुछ आयु बढ जाने के बाद की थी। सम्भवत इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है। मालव नरेश हरिदश्व और गन्धर्व कन्या सरोजिनी का प्रणय लीला इस नाटक के कथानक का विषय है जिसमें दानवराज सुबाहु प्रतिद्वन्द्वी है। भाषा सरल एवं नाटकोचित है। इसकी रचना १९०० में की गई थी। सरल नाटकोचित भाषा, सूक्तियों और लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग नृत्यगीत का बाहुल्य इस नाटक की विशेषतायें हैं।

विराधक- (नायक) मुद्राराक्षस में राक्षस का गुप्तचर यह छद्मवेष धारण कर शत्रु पक्ष से कोई समाचार निकाल लाने में निपुण है। चाणक्य की गतिविधि की सूचना इसी के माध्यम से राक्षस को मिलती है।

विरुपाक्ष- (नायक) ये विद्यानगर के सगमवश के हरिहर द्वितीय और मुक्तदादेवी के पुत्र एवं युक्का के पौत्र थे। ये १४वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। विजयनगर के आधीन भरतपुर, कर्णाट चोल, पाण्ड्य मण्डलों में प्रशासक (बाइसराय) पदों पर कार्य करते रहे हैं। इनकी दो नाट्यकृतियाँ उपलब्ध होती हैं- उन्मत्ताधव (एकहज़ारी) (दे) और नारायणविलास (दे)।

विलक्षकुरुपति- (नाट्) यह विनक्षदुर्योधन भी कहलाता है। इसका उल्लेख नाट्यदर्पण और अभिनवभारती में किया गया है। महाभारत के पहले दुर्योधन के दारुण में कृष्ण के शान्ति प्रयत्नों का वस्तु रूप में इसमें उपादान किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं चलता।

विलामभूषण- (नाट्) यह एक भाण है जिसकी रचना वेङ्कटकृष्ण ने की थी। इसका उल्लेख भद्राम की आरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनिश्ल कॅटेलाग में किया गया है। इसका प्रथम अभिनय भद्राचलम् के उत्सव में किया गया था।

(१) **विलासवती-** (नाट्) साहित्यदर्पण में नाटयत्तमक का उदाहरण। यह अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

(२) **विलासवती-** यह एक मट्टक है जिसकी रचना उडुप्पा निवामी मार्कण्डेय मिश्र (८) ने की थी।

विलास प्रोखर- (नायक) यह शङ्कर भूषण भाण (८) का एक पात्र है जो वेश्याओं के मुहल्ल में जाकर अन्तर्गमज्जा से मिनता है। तथा उस मुहल्ल में भ्रमण करते हुए आकाशपति के माध्यम से अनेक प्रश्नों का स्वयं उत्तर देता है। उसके कथन उस मुहल्ल के अनेक विचित्रताओं का परिचय देते हैं।

विनिनाथ- (नायक) मदनमञ्जरी महात्म्य का लेखक। ये कौशिक गार्गीय वनमन्थर्षि का पुत्र और यज्ञ नारायण का पौत्र थे। इनका नाटक मदनमञ्जरीमहात्म्य का

राजा अच्युत (१५१७-१६१४) के दत्तार में अभिनय किया गया था। तजौर जिले का विष्णुपुरम् इनका निवास स्थान था।

विल्हण-(नाका) १३वीं शताब्दी के मध्य प्रदेश के कवि। इनका लिखा कर्णसुन्दरी (दे.) नाटक प्रकाशित हुआ है।

विवाह विडम्बनम्-(नाकू) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना जीवन्मायतीर्थ ने की थी। यह वृद्ध विवाह पर व्यङ्ग्य किया गया है। रतिकान्त नामक ६० वर्ष का वृद्ध विवाह के लिये उत्तुक है। उससे एक घटक कुछ रुपये ऐठना है २००० कन्या के पिता को देने के लिये १००० विवाह व्यय के लिये, १५०० जेवरों के लिये। इनके अतिरिक्त मुहल्ले के तरणों का मुह बन्द रखने के लिये भी कुछ राशि लेता है। जब वह घर वेष्ट में जाता है तब देखता है कि उस युवती का विवाह उसी के दिये हुये रूप्यों में भास्कर नामक युवक के साथ हो चुका है। यह एक प्रकाशित रचना है।

विवाह विषयक नट्यकृतिया-(नामा) इन्दिरा परिणय (श्री शैलपुत्र वीरराघव), इन्दुमती परिणय (शिवाजी महाराज), उषा परिणय (श्रीनिवास), वनवल्ली परिणय (श्रीनिवास शास्त्री), कल्याणी परिणय (श्रीनिवास १), कामाक्षीपरिणय, गोदापरिणय (१ श्री शैलश्रीनिवास, १ केशव नाथ), चन्द्रकलापरिणय (नृसिंह), जानकीपरिणय (१ नागयण भट्ट, २ सीताराम) द्रौपदी स्वयंवर (१ पेरीवासीनाथ, २ नृसिंह पुत्र कृष्ण), नीला परिणय (१ धर्मराज पुत्र वेङ्कटेश्वर, २ दुधवत), पाञ्चालीपरिणय (श्री रंग के बालासूरि अहिक), पार्वती स्वयंवर (शेषाद्रि), बकुलमालिनी परिणय (वीरवल्ली श्रीनिवास), भानुमती परिणय, भैमीपरिणय (१ रामशास्त्री, २ श्रीनिवास दीक्षित, ३ वेङ्कटाचार्य, ४ मण्डिकल राम शास्त्री, ५ गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य, ६ शठकोपाचार्य), भद्रालसा परिणय (शेषाद्रि), मरकत वल्ली परिणय (श्रीनिवास), मीनाक्षी परिणय (अन्नाशास्त्री), रक्मिणी परिणय (१ आत्रेयवरद, २ कवितार्किकसिंह), रक्मिणी हरण (शेष चिन्तामणि), लक्ष्मीस्वयंवर (श्रीनिवास), लवलीपरिणय (लक्ष्मीपति), वल्लीपरिणय (१ भास्कर, २ वीरराघव, ३ स्वामिदीक्षित), विजयेन्द्रापरिणय (सुब्रह्मण्य), सांताविवाह (शेषाद्रि) सुभद्रापरिणय (१ नल्लाकवि, २ रघुनाथाचार्य), सौगन्धिकापरिणय।

(यह सूची पूर्ण नहीं है। कोष्ठक में लेखकों के नाम दिये गये हैं।)

विवेक-(नापा) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का यह एक प्रमुख पात्र है। मनस और निवृत्ति से इसका जन्म हुआ है। वाराणसी पर इसका शासन था किन्तु इसके सौतेले भाई प्रवृत्ति की सन्तान महामोह ने इससे अधिकार छीन लिया। भविष्यवाणी की गई थी कि विवेक से पत्नी उपनिषद् में जो सन्तान होगी वह महामोह को पराजित कर पुनः सत्ता प्राप्त करेगी। दोनों पक्षों में लम्बा संघर्ष चलता है। महामोह और उसके पक्ष के लोगों का प्रयत्न है कि विवेक और उपनिषद् मिल न सकें जबकि विवेक के पक्ष के पात्र दोनों को मिलाने के लिये उद्यमशील हैं। अन्त में विवेक का सम्मिलन उपनिषद् से हो जाता है जिससे प्रबोध नामक पुत्र और विद्या नामक पुत्री का जन्म होता है। दोनों के सहयोग

से विवेक पुनः सत्ता प्राप्त कर लेता है और महामोह को समाप्त हो जाती है।

विवेकचन्द्र- (नायक) मोहराज पराजय (दे) का प्रमुख पात्र। यह जनमनोवृत्ति प्रदेश का शासक है। मोहराज से पराजित होकर पत्नी शान्ति और पुत्री कृपासुन्दरी के साथ छिप कर निकल जाता है। हेमचन्द्र के आश्रम में पहुँचकर योगशास्त्र की शिक्षा लेकर उनके शिष्यों के प्रभाव से तिरस्करिणी का प्रभाव प्राप्त कर इन्होंने मोहराज के रहस्य जाने और उन पर विजय प्राप्त की।

विवेकचन्द्रोदय- (नायक) यह शिव (दे) का लिखा प्रतीक नाटक है। इसका उल्लेख एई गफ ने एन्थोप्ट सस्कृत लिटरेचर में किया है। इस कृति का उल्लेख गफ के प्राचीन सस्कृत साहित्य के अभिलेख में स १०६ पर किया गया है।

विवेकमिहिरम्- (नायक) हरिषज्वा लिखित ५ अंकों का प्रतीक नाटक। मोहराज को राजसभा में कामक्रोधादि विचार अपना महत्त्व स्थापित करते हैं। आचार्य को आज्ञा से विवेक मोहराज पर आक्रमण करता है। भक्ति, श्रद्धा, धृति, शम इत्यादि विवेक का साथ देते हैं। महामोह पराजित होता है और आचार्य के सामने विवेक इत्यादि नतमस्तक होते हैं।

इस प्रतीक नाटक का उद्देश्य वेदान्त के गहन सिद्धान्त को सरल भाषा में समझाना है। नटी भी सस्कृत बोलती है। इसमें प्रहसन का तत्व भी शामिल कर दिया गया है।

विवेक विजय- (नायक) यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना रामानुज (२) ने की थी। इस नाटक का सक्वन मैथुस्त्रिष्ट अनुभाग ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के विवरणात्मक खण्ड स ८५२१ पर किया गया है।

विवेकानन्द चरितम्- (नायक) जीवन्त्यापनीर्ण लिखित तीन अंकों का नाटक। विवेकानन्द का जीवन एवं कार्यकलाप इस नाटक की नाट्यवस्तु है। इसका प्रकाशन विवेकानन्दशतदोषायन में हुआ है।

विवेकानन्दविजयम्- (नायक) यह १० अंकों का महानाटक है। इसका रचना विवेकानन्द शिलास्मारक समिति के तत्वावधान में श्रीधर भास्कर बर्गेकर ने की थी। इसमें विवेकानन्द द्वारा अत्याचारियों से एक विधवा का दुष्टकारा एक अन्य को मार्ग दर्शन रामकृष्ण दर्शन का अनुशीलन मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ बन्ध्याकुमारी में श्रेष्ठ शिला पर समाधि तथा उससे व्युत्पन्न, अमीरा का प्रवास इत्यादि विषयों को नाट्योक्त किया गया है। इसका प्रकाशन विवेकानन्द स्मरण समिति की ओर से मद्रास में किया जा चुका है।

विशाखदत्त- (नायक) मुद्राराक्षस (दे) नाटक का लखनऊ। मुद्राराक्षस सस्कृत के निर्दिष्ट नाटकों में एक है और उसका लखनऊ विरचित साहित्य में एक प्रसिद्ध व्यक्ति है। किन्तु उसका निर्दिष्ट नाटक काल में निर्दिष्ट रूप में कुछ नहीं बता जा सकता। परन्तु

वाक्य में राजा चन्द्रगुप्त की कल्याण कामना की गई है। इससे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के समय में ही इनकी सत्ता रही होगी। काशी प्रसाद जायसवाल, कोनो, वीए स्मिथ की सम्मति है कि ये चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल में हुये थे। इसी प्रकार हिलब्राण्ड और टानी इन्हें ४१० के आसपास का मानते हैं। कहीं कहीं चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्तिवर्मा भी पाठ पाया जाता है। अवन्तिवर्मा महाराज हर्ष के समय में मौखरी राजा थे अथवा नवीं शताब्दी के काश्मीर में भी अवन्तिवर्मा नाम के एक राजा हुये थे। इस प्रकार इनका समय ७वीं से नवीं शताब्दी तक पहुँच जाता है। के.एच. ध्रुव, तेलग, कीथ इसी मत के हैं। निश्चय रूप से केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनका समय दसवीं शताब्दी से पहले का है क्योंकि इनका प्रथम उल्लेख १०वीं शताब्दी की रचना दशरूपकम् में पाया जाता है। भरतवाक्य में पद्य में दन्तिवर्मा भी एक पाठ मिलता है जो ८वीं शताब्दी के पल्लव राजा का सूचक है।

इनके नाम पर 'देवी चन्द्रगुप्तम्' नामक एक अन्य नाटक का भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार इन्होंने अपने दो नाटकों का नायक चन्द्रगुप्त को बनाया है। इससे चन्द्रगुप्त से इनका विशेष सम्बन्ध सिद्ध होता है। मुद्राराक्षस की प्रविधि और अभिव्यञ्जना पद्धति भी कालिदासादि तत्कालीन नाटककारों की कृतियों से मेल खाती है। देवी चन्द्रगुप्तम् में एक ऐसे समय के कथानक को लिया गया है जब शक पूर्णतः भारत में प्रवेश नहीं कर सके थे। इन सब तथ्यों से सिद्ध होता है कि इनका समय ५वीं शताब्दी के आसपास ही था।

विल्फोर्ड ने एक प्रति में प्रस्तावना में ऐसा पाठ पाया है जिसके अनुसार इनके पितामह का नाम वटेश्वरदत्त और पिता का नाम महाराज प्रद्युम्न था तथा ये गोदावरी के तट पर रहते थे। किन्तु आजकल पुस्तकों में पिता का नाम भास्करदत्त पाया जाता है।

इनकी मुद्राराक्षस नामक केवल एक कृति पूर्ण रूप से उपलब्ध होती है। दो अन्य कृतियों का उल्लेख मिलता है— 'देवी चन्द्रगुप्तम्' और 'अभिसारिकावधितकम्' इन कृतियों से उद्धरण पाये जाते हैं। वल्लभ देव की सुभाषितावली में इनके नाम पर कुछ पद्य दिये हुये हैं इससे सिद्ध होता है कि इन्होंने कतिपय अन्य नाटक भी लिखे होंगे। कहीं कहीं विशाखदत्त भरत वाक्य में चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्ति वर्मा, रन्तिवर्मा, रन्तवर्मा इत्यादि पाठ भी प्रकाश में आये हैं। ज्ञात होता है यह नाटक अतीत में बहुत प्रतिष्ठित रहा है और इसका अभिनय भी पर्याप्त मात्रा में किया जाता होगा। इसीलिये विभिन्न अवसरों पर अपने अपने राजा लोगों का नाम जोड़कर इसका अभिनय किया जाता होगा। यदि यह विचार ठीक है तो इसका निष्कर्ष यही निकलता है कि इनमें सबसे प्राचीन राजा चन्द्रगुप्त के समय में ही इनकी रचना हुई होगी। किन्तु भरत वाक्य से इतना तो प्रमाणित होता ही है कि कवि इनमें किसी एक राजा के आश्रय में ही रहता होगा। फिर भी किसी राजा के दरबारियों में उसका उल्लेख न होना आश्चर्यजनक है। प्रो. जैकेबोनी ने प्रस्तावना

में चन्द्रग्रहण के विवरण में इनका अवन्तिवर्मा के यहाँ काशीर में होना अधिक सम्भव माना है क्योंकि बुध की चन्द्रग्रहण के प्रतिबन्धक होने की स्थिति ८६० ई में आई थी। किन्तु यह भी कोई पुष्कल प्रमाण नहीं कहा जा सकता। सम्भव है जिसने चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्तिवर्मा पाठ किया हो वह कोई गणितज्ञ ज्योतिषी रहा हो और उसने उस समय की ग्रहस्थिति का वर्णन चन्द्र और केतु (चन्द्रगुप्त और मलयकतु) के श्लेष के आधार पर कर दिया हो। जेकब की इस मान्यता में भी कोई प्रमाण नहीं कि इस अदसर पर अवन्तिवर्मा से मन्त्री शूर ने इसका अभिनन्दन कराया था। इसके निकट यह अधिक प्रामाणिक है कि विशाखदत्त के दो नाटकों में मगध को ही कार्यक्षेत्र और चन्द्रगुप्त को ही नायक चुना गया। गौड़गुप्तों के केश प्रसाधन (मुरा ५२३) का वर्णन भी इन्हीं पूर्व देश की रीति रीति से अधिक परिचित सिद्ध करता है। वहाँ के इतिहास और तत्कालीन स्थिति से भी इनका अधिक परिचय प्राप्त होता है। किन्तु यहाँ भी कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। यह भी हो सकता है कि अपने पैतृक स्थान को छोड़कर वे बहुत समय तक पूर्व प्रदेश में रहे हो या इस प्रकार का ज्ञान अध्ययन के चलते प्राप्त किया हो। बाबा पिता और स्वयं अपना दत्तान्त नाम भी प्रदेश पर सामाजिक प्रकाश नहीं डालते। पूर्व के अनिश्चित अन्यत्र भी इस प्रकार के नाम प्राप्त होते हैं। आशय यह है इनके व्यक्तित्व में जीवन के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

इनके व्यक्तित्व के विषय में हमें कुछ नहीं कहा जा सके किन्तु इनके नाटकों से इनके शास्त्रीय ज्ञान और इनकी सामाजिक विचारधारा का पता अवश्य चलता है। इन्होंने ज्योतिष, तर्कशास्त्र और नाट्य शास्त्र का विशेष ज्ञान था। इन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का भली भाँति परिशीलन किया था और कूटनीति को गहराई से समझने की चेष्टा की थी। मगध के इतिहास में इनकी विशेष रूचि थी और उसके साथ मीमांसकों राज्यों के इतिहास की इनकी समझ बहुत गहरी थी। इनका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था, स्वयं ब्राह्मण धर्म में आस्था रखते हुए भी दूसरे धर्मों को भी उचित सम्मान देते थे। समाजिक नीति नाति को वे बहुत अच्छी तरह समझते थे। यही कारण है कि शुद्धाधिकारवाद का चित्रण नहीं करते हुए भी इस नाटक ने सर्वदा जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट किया है।

विश्वनाथ- (नापा) धर्म समागम में गुरु, जो शिष्य दुराचार की प्रेरणा अनगणित पर अपना अधिकार जमाना चाहता है और इसके लिये निर्णय कराने के निमित्त जिस जसम्भाति ब्राह्मण के पास जाता है वह ब्राह्मण उस अपना बना लेता है तथा गुरु और शिष्य दोनों में किसी को कुछ नहीं मिलता।

(१) विश्वनाथ- (नापा) य त्रिमलदत्त के पुत्र य और वचनन में गान्धर्वी के रूप में रहते थे। यही इनका मृगाङ्गना (२) नाटिका की रचना की थी।

(३) विश्वनाथ- (नापा) य १०वीं शताब्दी में वागमन में प्रवेश करके य आचार्य कहलाया। वचनन में अनाथ के रूप में इनका परिचय प्राप्त किया गया।

और इनकी शिक्षा मामा के संरक्षण में हुई थी। वाराणसी दरबार में इन्होंने पण्डित समाज के सभ्य सौगन्धिकाकरण (दे) नामक एक नाटक प्रस्तुत किया था।

(३) विश्वनाथ- (नाका) ये महादेव के पुत्र एवं दुर्गराज के शिष्य थे। इन्होंने शृङ्गारवाटिका (अथवा शृङ्गारवापिका नामक एक नाटिका की रचना की थी जिसमें अवन्ति के राजा चन्द्रकेलि और चम्पावती की राजकुमारी कान्तिमती के विवाह का वर्णन किया गया है। इन्हें विश्वनाथभट्ट नाम से भी याद किया जाता है।

(४) विश्वनाथ- (नाका) शृङ्गारमञ्जरी भाग के लेखक (दे शृङ्गार मञ्जरी १)

विश्वनाथन् टी ए- (नाका) बल्ली परिणय के लेखक (दे बल्ली परिणय ४)

विश्वनाथ निर्दिष्ट नाटक- (नासा) विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में उदाहरण रूप में कतिपय नाटकों का उल्लेख किया है जिनमें अनेक नाममात्र शेष रह गये हैं। उन नाटकों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है- उदात्तराघव, कर्णपराक्रमम्, कुन्दमाला, कुसुमशेखरविजयम्, क्रीडासातलम्, छलिनरामम्, जानकीराघवम्, देवीमहादेवम्, धूर्तचरितम्, नर्मवती, पुष्पभूषितम्, बालचरितम्, बिन्दुमती, मायाकापालिकम्, मुक्तावली, मेनकाहिनम्, ययातिविजयम्, राघवाभ्युदयम्, रामाभिनन्दम्, रामाभ्युदयम्, रैवतमदनिका, लटकमेलकम्, लीलाधनुकरम्, विलासवती, शर्मिष्ठायाति, शृङ्गारतिलकम्, समुद्रमन्थनम्, सनभितरम्भम्, हयग्रीववध ।

विश्वनाथ सत्यनारायण- (नाका) इनका जन्म आन्ध्रप्रदेश के नन्दमूरग्राम कृष्णा जिला में हुआ था। इन्होंने एमए एवं साहित्याचार्य तक शिक्षा पाई थी। इन्हें कविसम्राट की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। तेलुगु रचना 'रामायण कल्पवृक्ष' पर ज्ञानपीठ और एक अन्य रचना पर मद्रास विश्वविद्यालय से पुरस्कार प्राप्त हुये थे। ये राजपण्डित थे और गुण्डूर में पहले तो तेलुगुपण्डित और बाद में लेखक बन गये थे। इन्हें पद्मविभूषण की उपाधि प्राप्त हुई थी। इन्होंने संस्कृत में दो नाटक लिखे थे- गुप्ताशुपतम् और अमृतशर्मिष्ठम्। तेलुगु में इन्होंने १०० से अधिक पुस्तकें लिखी थी।

विश्वनाथसिंह- (नाका) १९वीं शताब्दी के मध्य में धनेशखण्ड के निवासी थे। इनका 'आनन्द रघुनन्दन' नामक हिन्दी गीति नाट्य का संस्कृत रूपान्तरण किया गया था। सम्भवतः रूपान्तरण भी इन्हीं का किया हुआ है। ये रीवा के राजा थे।

विश्वान्तरजातक- (नाक) ८ लोकानन्द।

विश्वरूपकृष्णभट्ट- (नाका) मुरारि विजय नाटक के लेखक (दे मुरारि विजय १)

विश्वविलास नाटकम्- (नाक) नर्मितनाडु के अन्तर्गत तञ्जौर राजपरान में आश्रित कवियों और ग्रन्थकारों द्वारा रचित साहित्य में इस नाटक का भी नाम है।

विश्ववीरव्रतम्- (नाक) नरकण शब्दों १ लिखित ८ अंकों का नाटक।

(१) विश्वामित्र- (मन्त्रकर्त्ता एवं मन्त्रदत्त के नेतृ) ऋग्वेद के पारिवर्तिक मण्डला

में तृतीय मण्डल इन्हीं के परिवार की रचना है। प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र के ऋषि ये ही हैं। तृतीय मण्डल में नदी सूक्त ३३३ में इनका और नदियों का सवाद दिया गया है। विश्वामित्र और वशिष्ठ का पारस्परिक सघर्ष साहित्य जगत् में प्रसिद्ध है। वशिष्ठ सप्तम (पारिवारिक) मण्डल के प्रणेता हैं। विश्वामित्र भरतवशियों के सहयोगी थे जबकि वशिष्ठ तृत्सुओं के सहायक थे। भरतवशियों को व्यास और शतलज्ज पार करने में कठिनाई हो रही थी तब नदी सूक्त के द्वारा जलों को शान्त कर भरतों को पार करने योग्य बना दिया। किन्तु इस युद्ध में वशिष्ठ से सहायता प्राप्त तृत्सुओं की विजय हुई।

(२) विश्वामित्र- (नापा) रामकाव्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। यज्ञ रक्षा के लिये राम लक्ष्मण को ले जाना, उन्हें दिव्यस्त्रों की शिक्षा देना, जनकपुर धनुर्धर में राम का साथ देना ये सब सुप्रतिष्ठित कार्य हैं। राम विषयक अनेक नाटकों में इनका उपादान हुआ है-

(अ) महावीर चरित- में विश्वामित्र के आश्रम में ही सयोगवश सीता और उर्मिला आ जाती हैं जहाँ यज्ञरक्षा के लिये राम और लक्ष्मण मौजूद हैं। दोनों युग्मों में परस्पर प्रेम उत्पन्न हो जाता है जो धनुष भग के माध्यम से विवाह में परिणत होता है। महा विश्वामित्र ने राम को दिव्यास्त्र प्रदान किये हैं। इस नाटक में परशुराम के साथ भी वशिष्ठ और विश्वामित्र दिखलाये गये हैं। लका विजय के बाद जब राम अयोध्या को लौट आने हैं तब विश्वामित्र ही उनका अभिषेक करते हैं।

(आ) अनर्घराघव- में ये राम लक्ष्मण को दशरथ से भागकर यज्ञ विघ्नों की समाप्ति के बाद उन्हें जनकपुर ले जाते हैं जहाँ धनुष तोड़कर राम सीता से विवाह करते हैं।

इसी प्रकार प्रसन्नराघव इत्यादि नाटकों में भी प्रसंगानुकूल उपादान किया गया है।

(३) विश्वामित्र- (नापा) हरिश्चन्द्र विषयक चण्डकौशिक इत्यादि नाटकों में यथावसर इनका उपादान हुआ है।

विश्वेश्वर- (नापा) ये पटिया माम जि अल्मोड़ा के लक्ष्मीधर के पुत्र और उमापति के भाई थे। ये १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने केवल १० वर्ष की आयु में रचना करनी प्रारम्भ कर दी थी। कहा जाता है इस प्रकार के प्रतिभाशाली लोगों का जीवन सम्या नहीं होता। इनका देहान्त केवल ३४ वर्ष की आयु में हो गया था।

इनकी रचनाये धनुमुञ्जी हैं- बनारस से आर्यासप्तशती नामक इनकी जो रचना प्रकाशित हुई है वह वस्तुतः शृङ्गार प्रधान रचना है, कवीन्द्राभरण चित्रकाव्य है जिसको चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रगीत मुक्कनकी में वधोजरानर, आर्यारातक,

होलिकाशतक, लक्ष्मीविलास, षड्भूतवर्णन, रोमावली शतक इन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। मन्दारमञ्जरी नामक एक गद्य काव्य भी प्राप्त होता है। स्वतन्त्र ललित साहित्य के अतिरिक्त इन्होंने नैषध और रसमञ्जरी की व्याख्यायें भी लिखी हैं।

काव्यशास्त्र इनका मुख्य विषय था। जिसपर अलंकारकौस्तुभ, अलंकारकर्णाभरण, अलंकारकुलप्रदीप, अलंकारमुक्तावली, काव्यलोला, काव्यरत्न रसचन्द्रिका आदि ग्रन्थों की रचना की।

इनका नाट्य साहित्य भी महत्वपूर्ण और परिमाण में पर्याप्त विस्तृत है जिसमें नाट्य के एकाधिक प्रकारों का उपयोग किया गया है। रुक्मिणीपरिणय नाटक है, नवमासिका नाटिका है और शृङ्गारमञ्जरी प्राकृत में लिखा एक सट्टक है।

वस्तुतः इस नाम के कई कवि हुये हैं, चमत्कारचन्द्रिका के लेखक, साहित्यसार के लेखक, चन्द्रालोक के टीकाकार ये सभी लेखक भिन्न भिन्न व्यक्तित्व हैं।

विश्वेश्वरदयाल- (नाका) कृष्णलीलामृतम् नाटक के लेखक। समय २० वीं शताब्दी।

विश्वेश्वर विद्याभूषण- (नाका) ये कृष्णकान्त कविरत्न एवं कुसुमकामिनी देवी से उत्पन्न हुये थे। इनका निवासस्थान चट्टल ग्राम (बंगाल) था जहाँ इन्होंने शिक्षा पाई थी और वहीं अध्यापक हो गये थे। प्राध्यापक के पद से ही सेवानिवृत्त हुये थे और बाद में हुगली में रहने लगे थे। साहित्यकार होने के अतिरिक्त ये स्वयं अभिनय में भी रुचि सेते थे। इन्होंने गद्य और पद्य दोनों प्रकार के काव्यों की रचना की तथा गीतिकाव्य भी लिखा। बंगला में भी इनका साहित्य पाया जाता है। इनके नाम पर १५ नाटक बतलाये जाते हैं- अरुणाचलकेतनम्, उत्तरकुरुक्षेत्रम्, उमातपस्विनी, ओङ्कारनायकमंगलम्, काशीकोशशेश, चरणकव्यविजयम्, दस्युरत्नाकर, द्वारावती, प्रबुद्धहिमालय, भरतमेलनम्, मातृपूजनम्, राजर्षिभारत राजर्षिसुतम्, चात्सीकि सवर्धनम्, और विष्णु माया।

इनके अनेक नाटकों का आकाश वणी से प्रसारण भी किया गया।

वी. के. थम्पी- (नाका) राजपूत मुस्लिम युग के ऐतिहासिक रोमैण्टिक विषयों पर लेखक। इनके तीन नाटक बतलाये जाते हैं- धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः, प्रतिक्रिया और वनज्योत्सना।

विष्टव्याचापलम्- (नाक) नारायण शास्त्री १ लिखित ५ अंकों का नाटक।

विष्णु- (नापा) समुद्रमन्थन (दे) सम्भवतः में समुद्रमन्थन से जो लक्ष्मी उत्पन्न हुई वह विष्णु पर अनुक्त हो गई। मन्त्र पर विष्णु के चित्र को वह अपनी दो सहेलियों धृति और लज्जा के साथ तन्मयता पूर्वक देख रही है। बाद में विष्णु का प्रवेश होता है। लक्ष्मी विष्णु को प्राप्त हो जाती है।

विष्णुदत्तत्रिपाठी- (नाका) ये मध्यप्रदेश के २० वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके

लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं- अनसूयाचरितम् (दे) और विद्योत्तमम् (दे)।

विष्णुपद भट्टाचार्य- (नाका) ये २० वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनके लिखे ५ नाटक बतलाये जाते हैं- अनकूलगलहस्तकम्, कपालकुण्डला काञ्चनकञ्चुकीयम्, धनञ्जयपुरञ्जयम् और मणिकाञ्चनसमन्वय। (परिचय यथा स्थान देखिये।)

विष्णुपुरी- (नाका) दे वैकुण्ठपुरी।

विष्णुभक्ति- (नापा) प्रबोध चन्द्रोदयनाटक का एक पात्र। यह उच्च गुणों वाली एक उदार महिला है जो सत्याग्रहों की सदैव रक्षा करती है। धर्म और श्रद्धा को अनेक कष्टों से उबारती है। यदि वह सहायता न करती तो महाभैरवी धर्म और श्रद्धा दोनों को निगल गई होती। विवेक को महामोह से युद्ध करने की प्रेरणा वही देती है और वही उचित अवसर का निर्देश करती है। महामोह का विनाश उसी की प्रेरणा से होता है। उसकी पुत्री शान्ति विवेक और उपनिषद् का मेल कराकर विद्या और प्रबोध के जन्म में कारण बनती है। वह वेदान्तविद्या के साथ सभी कार्यों की सूत्रधारिणी है इसमें यही प्रमाण है कि अन्त में भरत वाक्य उसी का है और अन्त में फलप्राप्ति की प्रशंसा वही करती है।

विष्णुमाया- (नाक) विश्वेश्वर विद्या भूषण लिखित नाटक।

वीणावरी- (नाक) शारदानन्द ने भावप्रकाशन में भाणिका के उदाहरण में इस रचना का उल्लेख किया है। अब यह रचना प्राप्त नहीं होती। विश्वनाथ ने विलासिका नाम के एक नये उपरूपक की कल्पना की है और कहा है कि कुछ लोग उसे लासिका कहते हैं और कुछ लोग उसका समावेश दुर्मास्तिका में करते हैं। किन्तु कुछ लोगों का विचार है कि भाणिका और विलासिका लगभग एक से ही उपरूपक हैं। विश्वनाथ ने विलासिका का कोई उदाहरण नहीं दिया है। भाणिका के उदाहरण में कामदत्ता का उल्लेख किया है। यदि सगति बैठानी हो तो विश्वनाथ के मत में विलासिका का उदाहरण वीणावरी माना जा सकता है।

वीणावासवदत्ता- (नाक) दे बत्सरत्न चरित।

वीरधर्म दर्पणम्- (नाक) परशुराम नारायण पाटणकर (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक। महाभारत युद्ध से सम्बन्धित इस नाटक में वीर रस प्रधान होकर आया है। शूद्रार रस का सर्वथा अभाव है। भीष्म द्वारा शरशय्या प्रवेश करने से लेकर जयद्रथ वध तक की घटनाओं का इन्हीं उपादान हुआ है। इसकी रचना १९०५ में और प्रकाशन १९०७ में बंगाल से हो गया था।

वीरघवन- (नापा) हम्प्रीसदमर्दन का एक पात्र यह गुजरात का राजा है जिसका मन्त्री वास्तुपाल है। हम्प्रीसदमर्दन की प्रमुख घटनायें वास्तुपाल के नियन्त्रण में चलती हैं और वीरघवन के प्रतिनिधि के रूप में वास्तुपाल वार्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

वीरपृथ्वीराजम्- (नाक) मथुरा प्रसाद दीक्षित लिखित ६ अंकों का नाटक। जयचन्द्र की दुर्योधन और पृथ्वीराज की उदात्तता तथा अन्त में पृथ्वीराज द्वारा मु गोरी का वध और आत्महत्या नाटक के विषय हैं। इसमें रंगमञ्च पर धनुर्विद्या के कर्तव्य दिखलाये गये हैं। प्रथम अभिनय सोलन में दुर्गा भगवती के महोत्सव पर सम्पन्न हुआ था। इसकी रचना १९४९ में हुई थी।

वीरभद्रविजय- (नाक) यह एक ड्राम है जिसकी रचना अरुण गिरिनाथ II (कुमार डिण्डिम या डिण्डिम IV) ने १६वीं शताब्दी में की थी। इसमें दक्षयज्ञ विध्वंस के लिये वीरभद्र द्वारा विभिन्न साधनों के उत्पादन का वर्णन किया गया है। भूपतिपुर पुरम् के उत्सव में इसका अभिनय किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के त्रैवार्षिक पाण्डुलिपि सूचीपत्र स II २७६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

वीरभा- (नाक) लीलाराव दयाल (दे) लिखित एकाङ्किका। इसमें वीरभा नामक एक ऐसी युवती का चित्रण किया गया है जो यौवनजन्य सुख सुविधाओं को छोड़कर सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड़ी और आन्दोलन की नेत्री बन गई।

(१) **वीरराघव-** (नाका) ये कौण्डिन्य गोत्रीय ईश्वर और कामाक्षी के पुत्र थे। ये १९वीं शताब्दी में सहजीमहराजपुरम् (तिरुवशीनल्लूर) में रहते थे और इन्हें तजौर के राजा शिवेन्द्र शिवजी का आश्रय प्राप्त था। इनके दो नाटक प्रसिद्ध हैं- वल्ली परिणय (दे) और रामराज्याभिषेक (दे)।

(२) **वीरराघव-** (नाका) ये श्रीशैल के पुत्र थे। इनका लिखा एक नाटक इन्दिरा परिणय (दे) प्राप्त होता है। ई हुल्टज (E. Hultsen) द्वारा १९०५ में पाण्डुलिपियों की जो खोज रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जो मद्रास पुस्तकालय में सुरक्षित है उसकी स III १७४९ IX पर इसका सकलन किया गया है।

(३) **वीरराघव-** (नाका) ये बाधुल गोत्रीय नृसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तमिलनाडु के चिंगलपुट जिला में हुआ था। इनकी कई अन्य रचनाओं के साथ मलयजा परिणय नामक एक नाटक भी बतलाया जाता है। यह नाटक तथा इनकी अन्य कृतियाँ अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। इन्हीं के नाम पर मलयजा कल्याण नाम की एक नाटिका भी प्राप्त होती है जिसका प्रकाशन जवल्पुर से बाबूलाल शुक्ल ने करा दिया था। ज्ञात होता है मलयजा कल्याण का ही नामान्तर मलयजा परिणय भी है।

वीरराघवाचार्य- (नाका) पुरी के निवासी थे। इनका लिखा नीलद्विचन्द्रोदय नाटक काञ्चोवरम से प्रकाशित हुआ था। नाटक के आमुख में उडोसा के मुकुलदेव का उल्लेख किया गया है इससे इनका सम्बन्ध सिद्ध होता है।

वीरराघवीय- (नाक) प्रधानवेङ्कटभूपति लिखित एक व्यायोग। यह मैसूर

पुस्तकालय में सस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग स २८८ में प्राप्य है। इसमें रामद्वारा विराय, खरदूषण त्रिशिता का वध दिखलाया गया है। नाटकोचित सरल भाषा और सगीतमयी शैली इसकी विशेषताये हैं।

वीरविजय- (नाट्) यह ईहामुग है जिसकी रचना विजयनगरम् के कृष्णामित्र ने की थी। कोनों ने इस नाट्यकृति का उल्लेख अपनी नाट्यविषयक पुस्तक में किया है।

वीरवैश्वानरम्- (नाट्) नारायणशास्त्री लिखित ८ अकों का नाटक।

वीरसौभद्रम्- (नाट्) जगू श्रीबकुल भूषण (दे) लिखित नाटक।

वीरानन्द- (नाट्) यह एक अप्राप्त प्रकरण है जिसका उल्लेख शिंग भूपाल ने रसार्णव सुधाकर में किया है।

वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य- (नाका) ये बंगाली कवि एवं नाटककार हैं। इनका जन्म सिलहट (अब बंगलादेश) में १९१७ में हुआ था। ये दर्शन के विद्वान थे और कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९४८ में डी लिट् की उपाधि प्राप्त की थी। ये प्रारम्भ में प्रोफेसर के पद पर कार्य करते रहे और बाद में प्रशासकीय सेवा में चले गये। इनका रचनाकार्य बहुत देर से ५० वर्ष की आयु के बाद प्रारम्भ हुआ। इनकी रचनायें सस्कृत, बंगला और अंग्रेजी तीनों में हैं। ओमर खैयाम की रुबाइयों का सस्कृत में अनुवाद भी इनकी रचनाओं में सम्मिलित है।

इनकी सस्कृतनाटक साहित्य भी अत्यन्त समृद्ध है। इस दिशा में इनकी रचनायें हैं— बब्रिकालिदास, कालिदासचरितम्, गीतगोराङ्ग, चार्वाकताण्डव, ज्ञानवृत्त, मर्जिनाचातुर्यम्, मयदौत्य, लक्ष्मणव्यायोग, वैद्यनव्यायोग, शारणाधिसवाद, शार्दूलशकटम्, शूर्पणखाभिषार मिठार्थचरित और सुप्रभा स्वयंवर।

वीरसल्लदेव- (नाका) दे विग्रहराज।

वृत्तशसिच्छत्रम्- (नाट्) यह लीलावत दयाल का लिखा रूपक है। १८ अर्थ की भाँटा का विवाह २८ वर्ष के व्यक्ति से हो जाता है जो २६ वर्ष की सास पर होंरे हासला है और उसमें फट्कार खाकर घर से निकल जाता है। एक रेल दुर्घटना में उसकी मृति जाना रहता है। वह त्यागी बाबा बनकर धूमने लगता है। सयोग से एक विधवा को दूबने से बचता है और उस पर आसक्त हो जाता है। वह विधवा नहीं उसकी पत्नी हो है। जब त्यागी बाबा उसके घर पर विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है तब उसकी नाम पहिचान कर उनका पुनर्मिलन करा देती है।

वृन्दा- (नापा) गंगालालनेनिर्दिष्टिका का एक पात्र। वृन्दा (लक्ष्मी) राधा और कृष्ण का तादात्म्य का रहस्यमय प्रतिरूपन बगती है। कृष्ण परमपुरुष हैं और राधा उनकी शक्तिरसा है।

वृषभानुजा- (नाट्) मधुसूदाम (दे) लिखित नाटिका। इसमें राधा और कृष्ण के

प्रेम का वर्णन किया गया है। इसमें ईर्ष्या विप्रलम्भ शृङ्गार प्रधान है। कृष्ण के पास एक नारी का चित्र है जिससे राधा के मन में ईर्ष्या भाव जागृत होता है। किन्तु अन्त में सिद्ध होता है कि वह चित्र राधा का ही है। वृषभानु राधा के पिता थे। इसीलिये नाटिका का नाम वृषभानुजा रक्खा गया है। इसका प्रकाशन यण्डित, खण्ड तीसरे चौथे में और काव्य माला बान्हे संस्करण खण्ड ४६ में सन् १८९५ में हुआ था।

(१) वेङ्कटकृष्ण- (नाका) ये वधूलगोत्रीय वेङ्कटाद्रि और मङ्गलाम्बा से १७वीं शताब्दी में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने महाकाव्य कई छोटे काव्य और चम्पू काव्यों की रचना की। इनकी रचनाओं का मुख्य विषय रामकथा है। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुरालविजय नाटक भी लिखा जिसमें राम पर उनके पुत्रों कुरा और लव की विजय और अन्त में निर्वासित सौता की पुन प्राप्ति दिखलाई गई है। ट्रावन्कोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग स ७६ पर इसका उल्लेख किया गया है। इन्हें वेङ्कटेश नाम से भी याद किया जाता है।

(२) वेङ्कटकृष्ण- (नाका) ये विलास भूषण (दे) भाण के लेखक हैं। जिसका संकलन मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में पाण्डुलिपियों में किया गया है।

वेङ्कटकृष्ण राव- (नाका) भक्ति चन्द्रोदय नाटक के लेखक। समस २०वीं शताब्दी।

वेङ्कट कौण्डिन्य- (नाका) रसिकजबरसोल्लास (दे) भाण के लेखक। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

वेङ्कटचलमय्य- (नाका) इनका जन्म पूर्वी गोदावरी जिले में मुक्तेश्वर के निकट मागाप नामक स्थान पर हुआ था। इन्होंने निजाम राज्य के इधर उधर अनेक स्थानों पर शिक्षा पाई थी। ये अनेक भाषाओं के जानकार थे। इन्होंने कतिपय छोटे छोटे काव्य लिखे थे। साथ ही इनकी रचनाओं में गोपीचन्द्र चरित भी सम्मिलित है।

वेङ्कटनाथ- (नाका) ये अनन्त सूरि के पुत्र थे और काक्षी के निकट तुप्पल में पैदा हुआ थे। कहा जाता है कि ये भगवान् वेङ्कटेश के घण्टा का अवतार थे। इनका जन्म १२६८ में हुआ था। इन्होंने अपने मामा आत्रेय रामानुज से शिक्षा पाई थी। इनको कवि तार्किक सिंह, वेदान्त देशिक एवं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र की उपाधिया मिली थीं। ये कविता, शास्त्रार्थ, वेदान्त में निष्णात थे हरे सभी शास्त्रों पर इनका अधिकार था। इनकी लोकोत्तर शक्तियों के विषय में अनेक किंवदन्तिया प्रसिद्ध हो गई हैं। ये वेदान्त देशिक के नाम से विशेष रूप से जाने जाते हैं। ये श्री वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे और इसीलिये दक्षिण के प्राय सभी विष्णु मन्दिरों में इनकी मूर्ति की पूजा की जाती है।

ये जीवनभर अविराम साहित्य साधना करते रहे इन्होंने विभिन्न विषयों में १२१ पुस्तकों की रचना की जिनमें अधिकांश विशिष्टाद्वैत विषयक हैं। इनका संकल्पसूच्योदय

(दे) नामक एक रूपक भी है जो प्रबोध चन्द्रोदय (दे) के आदर्श पर लिखा गया है। इनकी मृत्यु १३६९ ई में नवम्बर मास में हुई।

वेङ्कट भाण- (नाक) पेरूमूरि (दे) लिखित भाण। इस लेखक के दूसरे नाटक वसुमगल (दे) की प्रस्तावना में इस भाण का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

वेङ्कटरगनाथ- (नाक) मञ्जुलैषधम् (दे) एवं नलभूमिपाल नाटक के लेखक। इनका समय १८२२ से १९०० तक है। ये विजयगपट्टम के रहने वाले थे।

वेङ्कटरमणाचार्य- (नाका) ये कर्णाटक के २०वीं शताब्दी के कवि एवं नाटक लेखक हैं। शरम्भ में बगलौर में सस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद पर और बाद में मैसूर सस्कृत विद्यालयों के निरीक्षक पद पर कार्य किया। इनकी रचनाओं में जीवसज्जीवनी (दे) नामक एक नाटक भी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कमलाविजय नाम से टेनीसन के एक नाटक का अनुवाद भी किया था।

वेङ्कटराघव- (नाका) कौशिकगोत्रीय राघवनाथ के पुत्र थे तथा श्रीरंगम् में (१८४९-१९०६ के मध्य) रहते थे। ये एसपीजी कालेज त्रिचनापल्ली में सस्कृत के हेड प्रिण्ट थे। इनकी अनेक काव्यात्मक रचनाएँ हैं। इन्होंने मम्मय विजय नामक एक नाटक भी लिखा था जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ था।

वेङ्कटराम- (नाका) दे मुडुम्बई वेङ्कटराम नासिंह आचार्य।

वेङ्कटराम सी जी दीक्षितार- (नाका) कृष्णार्जुन विजय के लेखक।

वेङ्कटराम राघवन- (नाका) वर्तमान शताब्दी के सस्कृत के महान उन्नायकों में एक। वेङ्कटराम अय्यर एवं भीमाक्षी देवी से तञ्जौर जिले के तिरुवायूर नगर में इनका जन्म पर्वरी सन् १८०८ में हुआ तथा। भोजराज के शृङ्गारप्रकाश पर इन्होंने पीएचडी की उपाधि प्राप्त की थी। मद्रास विश्वविद्यालय के सस्कृत विभागाध्यक्ष के कार्य के अतिरिक्त देश विदेश की अनेक समस्याओं में सम्मेलनों में अध्यक्षता की। यूरोपीय समराज्य में पुरातत्त्व से सम्बन्धित ग्रन्थों का पर्यालोचन पाण्डुलिपियों की छाँट और प्रकाशन, मद्रास सस्कृत साग्रश की स्थापना अनेक पत्रपत्रिकाओं का सम्पादन इनके अन्यतम कार्य हैं। इन्हें उपाधियाँ प्रदान की गई थी। जिनमें विद्वत्सर्वोद्भूत, सबलसत्ता बलाप, कविकोविल उपाधियाँ प्रमुख हैं। पञ्चविभूषण उपाधि देकर राजकीय स्तर पर भी इन्हें सम्मानित किया गया।

इनका लिखा साहित्य अत्यन्त विस्तृत एवं बहुमुखी है जिसमें इनकी विद्वता के साथ अनुसन्धानात्मक प्रतिभा प्रनिवृत्ति होती है। इनका मुख्य विषय काव्य शास्त्र है जिस पर इन्होंने छठी बड़ा लगभग २५ पुस्तकें लिखी हैं। तत्पु काव्यों की भी सख्या पर्यन्त है। इन्होंने एक महाराज्य भी लिखा था। इनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है न्यू

कैटेलागस कैटेलागोरम का सम्पादन ।

इनका नाटक साहित्य भी पर्याप्त विस्तृत है जिनमें मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के रूपक सम्मिलित हैं । इनका नाटक साहित्य— अनारकली, अवन्ति सुन्दरी (ओपेरा), आषाढस्य प्रथमदिवसे, कामशुद्धि, नदीपूजा (अनूदित), पुनरुन्मेष, प्रतापरुद्रविजय, महाश्वेता, रासलीला, लक्ष्मीस्वयंवर, वाल्मीकिप्रतिभा, विकटनितम्बा (ओपेरा) विज्जिका (ओपेरा), और विमुक्ति ।

वेङ्कटराम शास्त्री— (नाका) इनका लिखा सीता कल्याणम् नाटक १९५३ में प्रकाशित कर दिया गया । (दे सीता कल्याणम् २)

वेङ्कटवरद— (नाका) इनका लिखा श्रीकृष्णविजयम् (दे) डिम प्राप्त होता है । रचनाकाल १८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध । इनका परिवार अत्यधिक शिक्षितों का था और कई पूर्व पीढ़ियों में साहित्य रचना का कार्य चलता रहा । इनके वंश में श्रीनिवास वरद देशिक जैसे प्रतिष्ठित लेखक उत्पन्न हुये ।

वेङ्कट सुब्रह्मण्यम्— (नाका) ये अय्ययदोक्षित (दे) की वंश परम्परा से उत्पन्न हुये थे । अय्यय दोक्षित के पुत्र श्रीकृष्णध्वरीण से ५वीं पीढ़ी में इनका जन्म हुआ था । अपने आश्रयदाता ट्रावनकोर, नरेश रामवर्म (१७३४-१७९८) के सम्मान में इन्होंने 'वसुलक्ष्मी कल्याणम्' की रचना की थी ।

(१) **वेङ्कटाचार्य—** (नाका) इनका लिखा ५ अर्कों का श्रीकृष्णशृङ्गारतरङ्गिणी । नामक नाटक प्राप्त होता है । रचनाकाल १८वीं शताब्दी ।

(२) **वेङ्कटाचार्य—** (नाका) भैमोपरिणय (दे) के लेखक ।

(३) **वेङ्कटाचार्य—** (नाका) श्रीनिवास ताताचार्य के भाई । सम्भवत चित्तूर जिला के निवासी थे और इनके पिता का नाम अनयार्य था । इन्होंने शृङ्गार तरंगिणी की रचना की थी जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १६६० में किया गया है ।

(४) **वेङ्कटाचार्य—** (नाका) ये १८वीं शताब्दी में गुलबर्गा (आन्ध्र) के निवासी थे । इनके पिता श्रीनिवास और माता वेङ्कटाम्बा थीं । इन्होंने अप्रतमन्थन (दे) नाम का ५ अर्कों का नाटक लिखा था । रचनाकाल १२वीं शताब्दी ।

वेङ्कटाध्वरीण— (नाका) इन्हें वेङ्कटाचार्य भी कहा जाता है । ये आत्रेयगोत्रीय रघुनाथ और सीताम्बा के पुत्र थे । इनका जन्म विद्वानों की वंश परम्परा में हुआ था । ये अय्यय दोक्षित के समसामयिक महान् ताताचार्य के भतीजे थे । रामानुज के शिष्य प्रणतार्थहर के ये वंशज थे । काज़ीवरम् के निकट अरशाणिपालई में इनका जन्म हुआ था । और वही इनका निवास था । वेदान्तदेशिक के ये परम अनुयायी थे । सभी शास्त्रों में पूर्ण निष्णात थे एवं कविता के प्रति इनकी जन्मजात प्रवृत्ति थी । प्रसिद्ध गुणादर्श इन्की की रचना है ।

इनकी रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें शब्द चमत्कार की प्रवृत्ति भी अत्यधिक पाई जाती है। विश्वगुणादर्श की क्लृप्ता तो प्रसिद्ध ही है— इनका दूसरा काव्य यादवराघवीयम् भी शब्दचमत्कार का एक अनूठा उदाहरण है जिसमें सीधे पढ़ने में राम की ओर दूसरी ओर से पढ़ने में कृष्ण की कथा आ जाती है। इनकी कृतियों में काव्य भी है चम्पू भी है, स्तुत पद्य भी है सूक्ति समूह भी है। इनके दो नाटक प्राप्त होते हैं— प्रद्युम्नानन्द (दे.) और शङ्कर दीपिका भाग (दे.) एक अन्य नाटक सुभद्रापरिणय भी है जिसके केवल दो अंक प्राप्त होते हैं।

वेङ्कटार्य—(नाका) इनका लिखा चतुरीचन्द्रिका (दे.) भाग बरलाया जाता है। ये शरण्यपाद के पुत्र थे तथा सम्भवतः चित्तूर जिला के तिरुपति स्थान पर रहते थे।

वेङ्कटेश—(नाका) दे वेङ्कटकृष्ण (१)।

वेङ्कटेश—(नाका) मदनान्धुदय नाटक के लेखक। इन्हें कालिदास भी कहा जाता है।

वेङ्कटेश प्रहसन—(नाक) दे वेङ्कटेश्वर। कैटेलागस कैटेलागोरम स १६०२ पर इसका उल्लेख है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी।

वेङ्कटेश्वर—(नाका) मनालूर के नैथुव कश्यपगोत्रीय धर्मराज के पुत्र एवं तर्जौर के राजद्वार के सभासल्य थे। तर्जौर का राजद्वार उन दिनों कवियों और कलाकारों से भरा हुआ था। सन् १६८४ से १७१० तक शाहजी का और १७११ से १७२८ तक सफ़ोज़ा का शासन था। इनकी शासनकाल में यह कवि इस दरबार का अलङ्कृत करता था। इसने भौसले वंश का इतिहास लिखा था। इसके अतिरिक्त इस कवि के नाम पर ये सात और नाटक प्राप्त होते हैं— उन्मत्तकविकलरा नीलापरिणय, भानुप्रबन्धप्रहसन राघवानन्द राघवान्धुदय वेङ्कटेशप्रहसन, और सभापतिविलास ये कृतियाँ पैलेस लायब्रेरी तर्जौर के क्लासीफाइड इंडेक्स एवं ओरियण्टल लायब्रेरी में प्राप्त की जा सकती हैं। कहा नहीं जा सकता ये सब एक ही कवि की रचना हैं या एक ही नाम के दो अलग अलग कवि हैं।

वेङ्कटार्य—(नाका) दे प्रधानवेङ्कट भूपति।

वेणीसहार—(नाक) भट्ट नारायण (दे.) लिखित नाटक। वेणीसहार का अर्थ है चोटी की सपेटर बाधना। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। धृतराष्ट्र में पराजित पाण्डवों को अपमानित करने के लिये कौरवों ने जा व्यवहार किया था उसमें सबसे प्रमुख पात्र द्रौपदी की चोटी का दुश्शासन द्वारा राजसभा में बार बार खींचा जाना। उस समय द्रौपदी ने चोटी खोलकर प्रतिज्ञा की थी कि जब तक दुश्शासन का रक्त केशों पर नहीं पड़ता तब तक मैं अपनी चोटी नहीं बांधूंगी। भीम ने भी दुश्शासन की छाती का खून पीने की और साथ ही उसके खून से रंगे हाथों द्वारा द्रौपदी के केश सयमन

की प्रतिज्ञा की थी। इन प्रतिज्ञाओं की पूर्ति ही नाटक का मुख्य विषय है। नाटक का प्रारम्भ कृष्ण के असफल दौत्यकर्म और भीम के क्रोध से होता है। प्रासङ्गिक रूप में महाभारत युद्ध की अनेक घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है। इनमें कुछ तो दृश्य हैं और कुछ सूच्य।

महाभारत एक महासागर है जिसमें घटना जलचरो की कोई इयत्ता नहीं। इस मटासमर को पार करने में प्रमुख भूमिका कृष्ण और अर्जुन की ही मानी जाती है और महाकवि गान्धीय धनुष को ही विजय का श्रेय देते हैं। किन्तु अर्जुन को जो व्यामोह प्रारम्भ में हुआ था जिसका निराकरण भगवान् कृष्ण ने किया उसकी कुछ न कुछ झलक पूरे भारत युद्ध में दिखलाई पड़ती है। अर्जुन ने किसी कुटुम्बी का वध नहीं किया। उनकी भूमिका केवल प्रतिरोध (क्वैरिंग देने) की रही। असली बदला तो भीमसेन ने ही लिया। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे वीरों को उलझाये रखने का उत्तरदायित्व अर्जुन ने वहन किया जिससे भीमसेन को अपनी प्रतिज्ञायें पूरी करने का पूरा अवसर मिल गया।

भीमसेन और द्रौपदी की प्रतिज्ञा पूर्ति नाटक का फल है। फलभोक्ता भीम और द्रौपदी दोनों हैं, किन्तु कार्य व्यापार के सञ्चालक भीमसेन ही हैं। उनकी क्रियाशीलता समस्त नाटक में व्याप्त है। अतः वे ही नाटक के नायक हैं, दुर्योधन प्रतिनायक हैं।

नाटक का प्रारम्भ कृष्ण के दौत्यक्रम से होता है जो सूच्य है। प्रथम अंक में इस दौत्यकर्म पर भीमसेन और द्रौपदी की प्रतिक्रियायें दिखलाई गई हैं। दूसरे अंक में दुर्योधन और भानुमती की प्रणय लीला दिखलाई गयी है। वास्तविक युद्ध का प्रारम्भ तीसरे अंक से होता है। पहले कर्ण और अश्वत्थामा का क्रोधपूर्ण सलाप चलता है जिसमें दुर्योधन कर्ण का पक्ष लेकर उसे सेनापति बना देता है। क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा प्रतिज्ञा करता है कि जब तक कर्ण जीवित रहेगा वह शस्त्रग्रहण नहीं करेगा। भीमसेन ललकार कर दुःशासन की छाती का खून पी जाता है। कर्ण और दुर्योधन रक्षा करने आते हैं किन्तु अर्जुन दोनों को रोक लेते हैं। चतुर्थ अंक में कर्णपुत्र वृषसेन के मारे जाने का समाचार मिलता है और धृतराष्ट्र तथा गान्धारी सजय के साथ कुरुक्षेत्र में युद्ध का समाचार लेने आते हैं। पञ्चम अंक में धृतराष्ट्र, गान्धारी और सजय दुर्योधन को युद्ध से विरत करने के चेष्टा करते हैं, पर दुर्योधन एक नहीं मुनता। इसी अंक में कर्ण के मारे जाने की सूचना मिलती है। भीम और अर्जुन माता पिता को देखने आते हैं। भीम की दर्पोक्तियों का दुर्योधन उसी के स्वर में उत्तर देता है। भीम वही दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारते हैं, किन्तु अर्जुन के कहने से रुक जाते हैं। युद्ध रुक जाने की युधिष्ठिर की आज्ञा प्रसारित की जाती है, युद्ध रुक जाता है। अश्वत्थामा बदला लेने का प्रस्ताव करता है पर दुर्योधन यह कह कर ठुकरा देते हैं- 'कर्ण में और मुझमें क्या अन्तर? कर्ण की भाति मेरे भी मारे जाने की प्रतीक्षा करो तब बदला लेना।'

छठे अंक में दुर्योधन को तलाश किया जाता है। भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध

होता है। इसी बीच दुर्योधन का शस्त्रसमित्र चार्वाक कपट मुनि के वेष में युधिष्ठिर और द्रौपदी को भीम के मारे जाने की सूचना देकर चला जाता है। युधिष्ठिर के खेमे में करुणा छा जाती है। युधिष्ठिर और द्रौपदी आग में जल जाने की तैयार हो जाते हैं। इसी समय भीमसेन आ जाते हैं जिन्हें दुर्योधन समझकर युधिष्ठिर भिड जाने को तैयार हो जाते हैं। वास्तविकता प्रकट हो जाने पर द्रौपदा की चोटी गूथी जाती है। राज्यारोहण की तैयारी होने लगती है और भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

कवि ने कल्पना का बहुत कम महारा लिया है। पात्रों के चरित्र तदवस्थ हैं। प्रमुख रूप से केवल दो घटनाय कल्पित कही जा सकती हैं— भानुमती और दुर्योधन की प्रणय सीला जिससे उसकी निश्चिन्ता और समय की भोषणता की नासमझी पर प्रकाश पड़ता है, दूसरी कल्पना चार्वाकमुनि के विषय में है जिससे विचित्र, भयानक एवं शाङ्गपूर्ण परिस्थिति के निर्माण में मदद मिलती है।

कवि को रसात्मक परिस्थिति के चित्रण में विशेष महारत हासिल है। वीररस अग्री है जिसके साथ आनुषङ्गिक रूप में भयानक एवं करुण रस का भी यथोचित अगभाव सन्निविष्ट हो गया है। कवि ने युद्ध के रगभूमि पर न दिखलाये जाने की मर्यादा का पालन किया है और युद्ध के विवरणों को सूच्य ही रक्खा है। फिर भी सूचनाओं से जो परिस्थिति उत्पन्न की गई है वह बार, भयानक और करुण के आस्वादन के लिये अत्यधिक अनुकूल है। शृङ्गार का अलग से ही उपादान किया गया है जो वीर रस का अंग नहीं बन पाया है।

वर्णनों की अधिकता ने नाटकीयता को आच्छादित कर लिया है। किन्तु चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटक का काफी सफलता मिली है। शैली प्रमादगुणपूर्ण है और अपेक्षित ओजगुण की गरिमा विद्यमान है। भाषा में स्थान स्थान पर प्रयुक्त श्लेष की छटा दर्शनीय है। समास और असमास दोनों अवस्थाओं में पदपाजना चार रस के अनुकूल है। अयम्नुविद्यमान मनोरस है जो स्थान्यक्तर को आच्छादित नहीं करते— पुष्ट ही करते हैं। कथा भागों का चयन युक्तियुक्त एवं परिस्थिति के अनुकूल है। सम्मान्य नाटक सफल ही कहा जा सकता है।

इस नाटक पर कई टिकायें लिखी गईं— जगद्धर की टीका (पूना से प्रकाशित) जगन्मोहन तर्कालकार की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित) मी आर तिवारी का टीका (बनारस से प्रकाशित), तर्कवादस्मृति की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), धनरयाम का टीका (मुल्तान की १९०५ की रिपोर्ट प्रकाश में स ११ पर उल्लिखित) लक्ष्मण मूर्ति का टीका (प्रकाश में प्रकाशित) अनन्ताचार्य द्वारा गया में मारात (साहित्य मस्कन जर्नल स १११ १९३३)।

चेदकवि— (नाका) १८वीं शताब्दी के तर्काल के महाराज मर्भाजी और तुक्कोजी व मन्त्री आनन्दराय भास्कर व आश्रय में रहने थे। इन्होंने विद्यापरायण (६) और जीवानन्दन (६) नाम के दो प्रसिद्ध नाटक लिखे जो इन्होंने अपने आश्रयदाता आनन्दराय भास्कर का

समर्पित कर दिये। ये नाटक आनन्दराय मार्किन क ही नाम से प्रसिद्ध हुये।

(१) वेदान्त विद्या- (नापा) यह प्रतीक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय (दे) का एक पात्र है। पत्नी प्रवृत्ति से उत्पन्न सन्तान महामोह के मारे जाने से मनस् दुखी है। महामोह के साथ प्रवृत्ति का भी वध किया जा चुका है। तब वेदान्त विद्या आती है। वह व्यासदेव से उत्पन्न है। इसीलिये इसे वैयासिकी सरस्वती भी कहा जाता है। यह आकर मनस् को समझाती है और उसके शोक को दूर करती है जिससे वह अपनी दूसरी पत्नी एव विवेक की माता निवृत्ति के साथ वानप्रस्थ में चले जाने का निश्चय करता है।

(२) वेदान्तविलास- (दे) में वेदान्त नायक है।

वेदान्त देशिक- (नाका) दे वेङ्कटनाथ।

वेदान्तदेशिक चरित- (नाक) श्रीशैल ताताचार्य (दे) लिखित रूपक। इसमें नाट्यरूप में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त दर्शन की विशेषतायें दिखलाई गई हैं। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

वेदान्त वागीश- (नाका) इन्हें वेदान्तवागीश भट्टाचार्य नाम से जाना जाता है। इनके लिखे भोजराजप्रशस्ति परक भोजराज सच्चरितम् (दे) का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स १४१८ पर किया गया है।

वेदान्तविलास- (नाक) यह १७वीं शताब्दी के वरदाचार्य (दे) का ६ अकों का प्रतीक नाटक है। इसमें रामानुज के जीवन चरित्र का चित्रण किया गया है। यह नाटक प्रतीक एव लौकिक नाटकों का सम्मिलित कार्यक्रमलाप लेकर चलता है। मानव पात्र प्रतीक पात्रों से वार्तालाप करते हैं। नायक वेदान्त है, नारद, भरत, शंकर आदि अन्य चरित्रनायक हैं, चार्वाक, जैन, बौद्ध, पार्शुपत, मायावादी, भास्करीय, यादवीय, द्वैती आदि सम्प्रदायों की प्रमुख मान्यताओं की झलक दृष्टिगत होती है।

नायक वेदान्त मायावाद से प्रभावित होकर सुमति पत्नी का तिरस्कार कर देता है। इस कार्य में उसे चार्वाक और बौद्ध इन नास्तिक दर्शनों से प्रेरणा मिलती है। किन्तु यतिराज द्वारा प्रदत्त ज्ञान के प्रकाश में वह अपनी भूल समझ जाता है और सुमति को पुन स्वीकार करता है। इसका प्रकाशन तिरुपति से १९५६ में हो गया था।

वेदान्त सूरि- (चक्रवर्ती) (नाका) ये चिंगलपुट के निकट वल्लियम्बकम् के निवासी श्रीवत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके लिखे रघुवीर चरित का मद्रास ओरिएण्टल लायब्रेरी के ड्यूरेनियल कैटेलाग खण्ड II स १२९ पर उल्लेख किया गया है।

वेदान्ताचार्य- (नाका) इनका लिखा शृङ्गारसर्वस्व भाण तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में स VIII ३६११ पर प्राप्त किया जा सकता है। ये १६वीं शताब्दी में मदुरा क राजा रामभद्र के आश्रय में रहते थे।

वेदिका- (नाक) यह एक प्रकरण है जिसका उल्लेख साहित्यदर्पण में किया गया

है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

वेलण्कर श्रीराम भिकाजी- (नाका) ये महाराष्ट्र में रत्नागिरि के निवासी थे। इनका जन्म इसी शताब्दी के प्रथमचरण में हुआ था। डाक विभाग में उच्चाधिकारी थे। इस विभाग में इनकी सबसे बड़ी सेवा पिनकोड का प्रवर्तन था। गणित में इनकी विशेष रुचि थी। गुरु के आदेश पर इन्होंने अपना साग जीवन संस्कृत प्रचार में लगा दिया था। इनकी श्रीरामभिकाजी वेलण्कर के नाम से भी जाना जाता है।

इनकी रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें नवीन प्राचीन सभी प्रकार के विषय सम्मिलित हैं। संस्कृत के अतिरिक्त इन्होंने मराठी और अंग्रेजी में पुस्तकें लिखी थीं। मूलकृतियों के अतिरिक्त इनकी दो एक अनूदित कृतिया भी उपलब्ध होती हैं। इनके निम्नलिखित नाटकों का उल्लेख पाया जाता है-

अवनिदमनम्, आपढस्य प्रथमदिवस कल्याणकोश बालिदासचरित्रम् कैलासकम्, छत्रपतिशिवराज, जन्म रामायणस्य तत्वमसि, तनयोराराज भवति कथ मे तिलकायनम्, दूषणनिरसनम्, नभोनाटिका नियतिलीला बालगीतम्, मध्यमपाण्डव मेघदूतौतरेयम्, राज्ञीदुर्गावती रामचरितम्, श्रीलोकमान्यस्मृति संगीतकालिन्दी सौभद्र (अनूदित) स्वातन्त्र्यचिन्ता स्वातन्त्र्यमणि स्वातन्त्र्यलक्ष्मी और हुतात्मा दधीचि।

वैकुण्ठव्यायोग- (नाक) यह वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का लिखा नाटक है। इसमें वेहन (धैराव) की नई पद्धति पर प्रकारा डाला गया है। यह कलियुग का एक महत्वपूर्ण अंश है। इसका नायक सञ्जय है। उसके नेतृत्व में पांच श्रमजीवी अपनी मागे लेकर श्रमाध्यक्ष और शिल्पाध्यक्ष के पास जाते हैं और अधिकारियों के स्वीकार न करने पर उनका धराव कर देते हैं। अन्त में विद्रोह होकर अधिकारियों को उनकी मागे स्वीकार करनी पड़ता है और कलियुग प्रकट होकर उन्हे बर्खास्त देता है।

वेस्मन्तर जातक- (विरवानर जातक) (नाक) दे साकानन्द।

वैकुण्ठपुरी- (नाका) इनका लिखा नाटक शान्तिरस प्रतीक नाटक की श्रेणी में आता है। इनका नाम विष्णुपुरी भी कहा गया है। इनकी रचनाओं का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागारम स १५९१ पर किया गया है। पद्यावली में इनके पद्य उद्धृत किये गये हैं।

वैकुण्ठविजयम्- (नाक) १६वीं शताब्दी के अमर माणिम्य (दे) का लिखा नाटक जिसमें उषा और अनिरुद्ध कथा को रुपकायित किया गया है।

वैदर्भीवासुदेवम्- (नाक) यह मुन्दरराज (दे) का लिखा कृष्णविषयक ५ अंकों का नाटक है। इसका उल्लेख द्राचनकोर के पुस्तकालय में संस्कृतपाण्डुलिपि विभाग के कैटेलाग स १८१ पर किया गया है। निम्नेवेत्ती जनरद कैलासपुर से इसका प्रकाशन हो चुका है। इस नाटक में १९वीं शती के भारनाय ममात्र एव सम्प्रति के विषय में महत्वपूर्ण भूषणार्थे दी गई है।

वैद्यदुर्ग्रहम्- (नाक) सुरेन्द्रमोहन लिखित लघु नाटक जो बच्चों के पढ़ने के लिये लिखा गया था। इसमें एव वैद्य का कथानक चित्रित किया गया है। जो एक अन्धी वृद्धा की विकल्पा के बहाने उसकी वस्तुधेँ चुरा लेने में लगा रहता है।

वैद्यनाथ- (नाका) संस्कृत साहित्य में इस नाम के कई कवि हुये हैं। इनमें १७वीं शताब्दी के अन्त एव १८वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण के कवि वैद्यनाथ के नाम पर तीन नाट्यकृतियों का उल्लेख किया जाता है- सत्सगविजय नामक प्रतीक नाटक, मिथ्याचारप्रहसन और कृष्णलीलानाटिका। इनके व्यक्तित्व के विषय में साहित्य जगत् को कुछ भी ज्ञात नहीं है। यह भी सम्भव है इन नाटकों के कर्ता विभिन्न व्यक्ति हों। परिचय यथास्थान देखिये।

वैद्यनाथ- (नाका) इनका लिखा शृङ्गारपावन नामक भाण प्राप्त हुआ है। ये तजौर जिले के तिरुवल्लूर नामक स्थान पर रहते थे। इनका जन्म वत्सगोत्र में हुआ था। ये कृष्ण कवि के पुत्र थे। इन्होंने भाण की प्रस्तावना में अपनी अनेक पुस्तकों का उल्लेख किया है जिनमें अधिकतर स्तोत्र हैं।

इस नाम के कई कवियों का उल्लेख पाया जाता है जिनकी एकता, अनेकता के विषय में निश्चयत्न रूप से कुछ कहना कठिन है। सम्भव यही प्रतीत होता है कि ये सब विभिन्न व्यक्तित्व थे।

वैद्यनाथतत्सत्- (नाका) ये १७वीं शताब्दी (उत्तरार्ध) में तत्सन् गोत्र में उत्पन्न हुये थे। इनके नाम पर काव्य शास्त्रीय कई ग्रन्थों की टीकायें प्रसिद्ध हैं। कृष्ण लीला नामक नाट्यकृति इन्हीं की बतलायी जाती है।

वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य- (नाका) ये ११वीं शताब्दी के मध्य में नदिया में रहते थे। इन्होंने चैत्रयज्ञ (दे) नामक नाटक की रचना की थी। इस नाटक की रचना ईश्वरदत्त के निर्देशन पर की गई थी। इस रचना को चित्रयज्ञम् नाम से भी याद किया जाता है।

वैद्यनाथ शर्मा- (नाका) इनका लिखा गणेशपरिणयम् (दे) नाटक इण्डियन प्रेस प्रयाग से सन् १९०४ में प्रकाशित हुआ था। इनका लिखा गणेशसम्भव भी प्रकाश में आया है। ये आन्ध्रप्रदेश के रामशास्त्री के शिष्य थे और वाराणसी में रहते थे। इनको बालकवि भी कहा जाता है।

वैद्यासिकी सरस्वती- (नापा) यह प्रबोधचन्द्रोदय (दे) की एक पात्र है। यह वेदान्तविद्या का दूसरा नाम है। वेदव्यास वेदान्त सूत्रों के कर्ता बतलाये जाते हैं। इसीलिये वेदान्तविद्या को यह नाम दिया गया है।

वैरोधक- (नापा) यह मुद्राराक्षस का एक पात्र है। यह रणभूट पर नहीं आना, किन्तु उसका उल्लेख किया गया है। यह पर्वतक का भाई एव मलयकेतु का चाचा है।

पर्वतक के मारे जाने और मलयकेतु के भाग जाने से यह अकेला राज्याधिकार प्राप्त करने के आग्रह में बहो डटा रहा। चाणक्य के सामने उससे पीछा छुड़ाने की समस्या थी। चन्द्रगुप्त की शय्याजा की घोषणा की गई। राक्षस ने उस यात्रा में चन्द्रगुप्त का वध करने के लिये कतिपय बंधकों को नियुक्त किया जिन्हें तोरण गिराकर चन्द्रगुप्त की हत्या करनी थी। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के स्थान पर वैरोधक को यह कह कर बिठा दिया कि आखिर यह भी राज्याधिकारी है। तोरण के गिरने से चन्द्रगुप्त के स्थान पर वैरोधक मारा गया और साथ ही तोरण गिराने के आरोप में चाणक्य ने उन सब बंधकों को भी मृत्युदण्ड दे दिया। इस प्रकार वैरोधक में चाणक्य का पीछा छूट गया।

वैशम्पायन के आर- (नाका) ये २०वीं शताब्दी के कवि हैं। इनका लिखा 'देश स्वानन्वयसमरकाले देशधर्म' शीर्षक नाटक १९७० ई में शारदा में प्रकाशित हुआ था।

व्यत्यस्तवक्रम्- (नाकू) नारायण शास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

व्यायोग साहित्य- (नावि) उरुभग (भास), कर्णभार (भास), किरानार्जुनीय (वल्मीक), जरासन्ध (मोक्षादित्य), जामदग्न्य विजय दूतप्रदोत्कच (भास), दूतवाक्यम् (भास), धनञ्जयविजय (कचन पण्डित अथवा कनकाचार्य), निर्भयभीम (रामचन्द्र), नृसिंह विजय (आर्यमूर्य) पार्यपराक्रम (प्रह्लादन देव), प्रचण्डगरुड (गोविन्द), प्रचण्डभैरव (सदाशिव) भीमविक्रम (मोक्षादित्य), मध्यमव्यायोग (भास), विक्रान्तराघवीय (श्रीकृष्ण), विजय विक्रम (आर्यमूर्य), विनानन्द (गोविन्द), वीर राघवीय (प्रधानभूपति), मौगन्धिकाहाण (ब्रिहवनाथ)

व्यासराजशास्त्री, के एल- (नाका) ये २०वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके लिखे नाटक हैं- चामुण्डा, निरुणिमा, महान्धविजय, विद्युन्माला और शार्दूलसप्तशत। इनको विद्यामगर की उपाधि प्राप्त हुई थी।

व्यासश्रीमोक्षादित्य- (नाका) दे मोक्षादित्य।

व्यासश्री रामदेव- (नाका) दे रामदेव व्यासश्री।

वज्रराज नन्दन- (नाकू) जोगीपटनायक (दे) लिखित नाटक।

शकटदास- (नापा) मुद्राराक्षस में राक्षस का पक्षधर पात्र। इसे चाणक्य ने बन्दी बनाया और उसी अवस्था में उससे एक महत्वपूर्ण पत्र की नकल करा ली। बाद में उसे मृत्युदण्ड की सजा सुनाई गई और जब उसे अधिक तौर पर वधमयान की ओर ले जा रहे थे चाणक्य के निर्देश पर उस मिथ्यादर्क छुड़ा से जाता है तथा उसे राक्षस के पास पहुँचा देता है। राक्षस वृद्धता पूर्वक मिथ्यादर्क की प्रशंसा देता है उस अनन्य सहाय सेना

है और शकटदास को अपना व्यक्तिगत सचिव का पुराना पद पुन दे देता है। बाद में वही पत्र राक्षस की गिरफ्तारी में कारण बनता है।

शकार- (नापा) मृच्छकटिक में प्रतिनायक। उसका वास्तविक नाम सस्यानक है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार प्रतिनायक लोभी, धीरोद्धत, जडस्वभाव वाला, पापी और व्यमनी होता है। इसके अतिरिक्त शास्त्र में शकार नामक एक विशेष प्रकार के पात्र का निर्देश किया गया है जो राजा की किसी रखैल का भाई होने से राजा का साला होता है जिसमें (श्यान्क शब्द के प्रथम अक्षर के अनुसार) उसे शकार कहा जाता है। उसके शकार नाम का एक और भी कारण है- वह 'स' को 'श' बोलता है जैसे 'वसन्तसेना' को 'वशन्तरोना'। वह धूर्तों, विदों इत्यादि निम्न पात्रों से घिरा हुआ है। उसकी मा व्यभिचारिणी थी। इसलिये उसे काणेलीमात कहा गया है। उसकी बहन भी व्यभिचारिणी है जो राजा की रखैल बन गई है जिसका उसे बहुत बड़ा अभिमान है और वह बात बात पर 'मैं राजा का साला हूँ' की धमकी देता है। उसके अभिमान की सीमा यहाँ तक है कि वह कोर्ट में खड़े होकर न्यायाधीश में कहता है कि 'तुम्हें वहीं निर्णय करना होगा जो मैं कहूँगा। यदि तुम नहीं मानोगे तो मैं अपने बहनोई (राजा) में कहकर तुम्हारी जगह किसी और को बैठा दूँगा।' उसे अपने रूप का भी अभिमान है क्योंकि वह एक सुन्दर बहन का भाई है। वह पढ़ा लिखा कुछ नहीं है। कतिपय पौराणिक पात्रों के नाम याद कर रखे हैं जिनको उल्टे सीधे रूप में बोलता रहता है। जैसे 'द्रोणपुत्रो जटायु'। वह अत्यन्त दुष्ट एवं नीचवर्मा है। रास्ता चलते औरतों को छेड़ता है। वसन्तसेना जब उमका कहा नहीं मानती तब वह अपने साथियों को इधर उधर कर वसन्तसेना की हत्या भी कर देता है यद्यपि वह अपने भाग्य से बच जाती है। वह चारुदत्त का प्राणपण से इसलिये शत्रु है कि वसन्तसेना चारुदत्त पर अनुरक्त है और इसलिये कि उसके वश में नहीं आती। शत्रुता की भावना यहाँ तक बैठो हुई है कि स्वयं ही वसन्तसेना की हत्या कर और लाश पत्तों के ढेर से छिपाकर हत्या का झूठा मामला चारुदत्त पर चला देता है। संयोग से चारुदत्त के प्रतिकूल प्रमाण जुट जाते हैं, तब वह शीघ्र ही बच करने के लिये बधिको पर जोर डालता रहता है। किन्तु जब राज्य परिवर्तन हो जाता है और उसको सजा देने की ज़ुम्मेदारी चारुदत्त पर आ जाती है तब जिसके जीवन लेने के लिये उमने कोर्ट कमर नहीं उठा रखी थी उसी से क्षमादान की प्रार्थना करने लगता है और उसे चारुदत्त की उदारता के कारण क्षमा मिल भी जाती है। वह अत्यन्त कायर और दुराग्रही है। संक्षेप में अत्यन्त क्रूर, निर्दयी, स्त्रीलम्पट, धूर्त, दगाबाज, और पापी है। सभी दुगुणों की खान है। उसके साथी भी उसका विश्वास नहीं करते। वह समाज के दुर्गन्धित मलो में एक है। जिसका काम समाज को कलुषित करना ही होता है।

शकुन्तलानाटक- (नाट्) दे अभिज्ञानशकुन्तल।

शकुन्तला- (नापा) कालिदास के विश्वप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शकुन्तल' की

नायिका। वह जबानी की दहलोज पर कदम रखने वाली भोली भाली वन्य हरिणी है। उसके उठाव पर आरुढ़ यौवन को सखिया लक्षित करती हैं और उसे बिढ़ाती हैं वह एक ऐसी मदिरा है जिसका अभी तक स्वाद नहीं लिया गया वह ऐसा रत्न है जो अभी तक तराशा आर छेदा नहीं गया। ऐसा सौन्दर्य किसी मानवी स तो उत्पन्न हो ही नहीं सकता, पला वहीं प्रभातरल ज्योति भूमि से उत्पन्न हो सकती है— वह तो बादलों से हो उद्भूत होती है। उसका जन्म तो अमरा (मेनका से हुआ है) उसके उपभोग का सौभाग्य भी ऐसे व्यक्ति को ही प्राप्त होगा जिसने अखण्ड पुण्य किया हो। मौक से उसके यौवन को गुदगुदाने वाली सहेलिया भी मिरा गई। वन्य जीवन में नगरिक वातावरण क्या सम्भव है? अतः वह वृक्षों लताओं और पशुपक्षियों के मध्य अपने पारस्परिक भावों का आनन्द लेती है। वन्यात्मा (लता) के पादों से लिपटने में वह प्रेमियों के सम्मिलन की कल्पना करती है। मृगशावकों को बच्चों के समान पालती है। फूलने वाली लतायें उसके आनन्द का माधन हैं।

जिस गुणग्रहक की प्रतीति है वह आ ही जाता है। पिता भतीनों के लिये तार्क्यता पर चने गए हैं। सहेलियों का सहयोग प्राप्त हो है। वह प्रेमी की चिन्नी चुपड़ा जाता है आकर आत्मभक्षण कर देती है और उसका गन्धर्व विवाह हो जाता है। यह उसके प्रेमी जीवन का दूसरा स्तर है। विलास चलता रहता है और वह गर्भवती हो जाता है। तभी उस शीघ्र ही बुला लेने का वादा कर चला जाता है क्योंकि वह कुलपति के लौटने की सम्भावना में भयभीत है। यह जीवन का अग्रिम पड़ाव है। पिताजी लौट आये हैं। अब सखिया के मामल भी समस्या है कि यह समाचार पिता जी को कैसे दिया जाय। इस समस्या का समाधान आकाश वाणी के माध्यम से हो जाता है। अब विदा की तैयारी होती है। जंगल का पूरा वातावरण पुत्री की विदा के अवसर पर शाबाकुल है। वह मरदा के लिये अनप बालजीवन से नाता तोड़कर जा रही है। उसका पान पामे वृक्ष उसके दुलार हुए मृग सर्वदा के लिये छूट रहे हैं। उसका मन दो छोरों में बंटा हुआ है। एक ओर आवास छूट रहा है दूसरी ओर हृदयवत्तम स मिलने की उत्कण्ठा सता रहा है। पिता के उपदेश और प्रियतम के प्रति उनके मदेश वादक भ्रातृस्थनीय शत्रुकुमारों एवं माता माँतमा के साथ वह प्रियतम के घर का आर प्रस्थान करनी है।

परन्तु पर क्या? इतना बड़ा पागल? प्रियतम तो उस परिवारने में भी इन्कार कर देता है। कामना के आदेश में उसने जो कुछ किया है उस मानन के लिये वह कहीं तैयार नहीं। उसके भाई उसके पथ में जारदार वकालत करता है वह भी अपनी आर में सम्मत्त और प्रमाण देने का पूरी चेष्टा करती है। किन्तु राजा पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसके भाई उसे न जाने का विन्दुस तैयार नहीं। अन्त में इस बात पर गन्धर्वों का ज्ञान है कि प्रसव पर्यन्त वह पुरहित के घर में रहेगा और बाद में बच्चे के लक्षणों का अध्ययन कर लिया जाएगा।

इस प्रकार पुत्रीद्वारा परधर में रहकर वेदनामय अपमानित जीवन बिताने को उसकी मा (मेनका) पसन्द नहीं करती और उसे अपने साथ लेजाकर सुरासुर गुरु कश्यप के आश्रम में रखती है। वहा वह एक बालक को जन्म देती है जिसके जातकर्मोदि सस्कार कश्यप द्वारा किये जाते हैं। निस्मन्देह वह एक महान तेज का बीज है। बचपन में शेरों के साथ खेलता है। गुणानुरूप उसका नाम सर्वदमन रक्खा गया है जो आगे चलकर विश्व का भरण पोषण करने के कारण भरत नाम से अखण्ड यश प्राप्त करेगा। देवताओं के प्रयत्न से ऐसा सद्योग भिड जाता है कि उसका पति (राजा) उसी आश्रम में आ जाता है जहा वह अपने घोखेबाज कौमारहर का आखों में आसू भरकर स्वागत करती है। वह वियोग वेदना से धीण हो चुकी है। नियमों के पालन करने के कारण उसका चेहरा कुदलाया हुआ है। मैंले कुचैले पटे, पुराने कपडे पहने हुये हैं। उसने पूर्ण रूप से पातिवृत्य धर्म का पालन किया है। उनका मिलन स्वर्ग भूमियों में होता है। कश्यप दोनों का सकोच दूर कर उन्हें एक दूसरे के प्रणय बन्धन के लिये आशीर्वाद देते हैं। इस प्रकार उसके कष्टों और वेदनाओं से भरे जीवन में एक बार फिर बहार आ जाती है।

वह एक सच्ची प्रेमिका है। पिता और परिवार की दुलारी है और स्वयं उनसे प्रेम करती है। पिता के प्रति उसकी श्रद्धा अनुकरणीय है। यह उसका सौभाग्य ही है कि मा विपत्ति काल में उसे ऐसे स्थान पर भेज देती है जहा कल्पवृक्ष सभी सुविधाये जुटाते रहते हैं, जहा के जल सोने के कमलों की परग से सुनहले रंग के हो जाते हैं। भवन रत्नों की शिस्ताओं के बने हैं। देवमणियां स्वच्छन्द विहार करती हैं जिनका ससर्ग सभी दुखों का विघातक होता है। ऐसे स्थान अखण्ड तपस्या के फल रूप में ही प्राप्त किये जा सकते हैं। क्या वह कण्व के आश्रम में लौटकर वही सम्मान, वही आनन्द दुवारा प्राप्त कर सकती थी? क्या उसे पति के समीप ही किसी दूसरे के घर पर रहना मरण से भी बदतर नहीं होता। यही वह पृथ्वी पर खिली कली है जिसका मेल स्वर्ग से हुआ है।

शक्तिभद्र- (नाका) आश्चर्यचूडामणि (दे) के लेखक। परम्परा प्रसिद्धि है कि ये शङ्कराचार्य के शिष्य थे। यदि यह सत्य है तो इनका समय ८वीं ९वीं शताब्दी माना जा सकता है। आश्चर्यचूडामणि में प्रस्तावना में आश्चर्य प्रकट किया गया है कि केरल में भी नाटक की रचना हुई है। इससे ज्ञात होता है यह केरल का पहला नाटक है और १०वीं शताब्दी के कुलशेखर के नाटकों से भी यह पहले का है। मालावार में इनको बहुत अधिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है और भास के नाटकों के समकक्ष इनके नाटकों को रक्खा जाता है। वहा इसका अभिनय कुछ पहले तक होता रहा है। इनके लिखे उन्माद वासवदत्ता (दे) तथा दो एक अन्यकृतियों का भी उल्लेख पाया जाता है। किन्तु ये रचनायें अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं।

शक्तिवल्लभ अर्ज्याल- (नाका) जय रत्नाकर (१) नाटक क लेखक। इनका

समय १८वीं शताब्दी है। ये १८वीं शताब्दी के नेपाली कवि थे। इन्हें पद्मकोटीश्वर की उपाधि प्राप्त हुई थी।

शक्तिवासकुमार- (नाका) अनङ्गसेना हरिनन्दिनी (दे) नाटक के लेखक।

शक्तिसारदम्- (नाक) यतीन्द्रविमल चौधरी (दे) लिखित रामकृष्ण परमहंस की पत्नी सारदामणि विषयक चार अंकों का रूपक। इसमें गीतों का प्रयोग किया गया है। भाषा सरल एवं पात्रानुसारी है। इसका प्रथम अभिनय २० जून १९५८ को पुरी में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् के अधिवेशन में किया गया। उसके बाद भी कई बार इसका अभिनय आयोजित किया जाता रहा।

शक्रानन्द- (नाक) यह समवकार है जिसका उल्लेख सागर नन्दी ने उदाहरण के रूप में किया गया है। अब यह रचना उपलब्ध नहीं होती।

(१) **शङ्करकवि-** (नाका) इनके लिखे शारदातिलक का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स I ६८३ पर विल्सन के थियेटर स II ३८४ पर और बीध के संस्कृत ड्रामा में किया गया है।

(२) **शङ्कर कवि-** सम्भवत दूसरे शङ्कर हैं जिनके गौरी दिगम्बर का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स III ३७ और के जायसवाल द्वारा मथुरा में की गई पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक खोज रिपोर्ट स II ५५ में किया गया है।

शङ्करदत्त- (नाका) ये उत्तरप्रदेश के कवि हैं इनका लिखा 'हरिवंशहसम्' शीर्षक नाटक और दो अन्य पुस्तकें अलवारशकर और शधिकामुखवर्णनम् प्रकाश में आई हैं।

शङ्कर दीक्षित- (उपनाम शंकर बालकृष्ण दीक्षित) (नाका) ये भारद्वाज गोत्रीय, महाराष्ट्र ब्राह्मण बालकृष्ण के पुत्र और दुर्गिदाज के पौत्र थे। सम्भवत ये वही दुर्गिदाज थे जो १७१३ में व्यासयज्वन के रूप में विद्यमान थे। यह समय काशिराज चेतसिंह का था। इनका प्रद्युम्न विजय पन्ना के राजा सभा सुन्दर के राज्यारोहण के अवसर पर अभिनय के लिये लिखा गया था। सभासुन्दर बुन्देल खण्ड के इतिहास प्रसिद्ध राजा छत्रसाल के पौत्र थे। शङ्कर कवि का देहावसान १७८० में हुआ था। उक्त नाटक के अतिरिक्त इनके चम्पू काव्य भी प्रसिद्ध हैं।

शङ्करदेव- (नाका) विदग्धमाधव के लेखक।

शङ्कर नारायण- (नाका) रसिकामृत (दे) नाटक के लेखक।

शङ्कर मिश्र- (नाका) बिहार प्रदेश के १५वीं शताब्दी के कवि। ये भीमासक भवनाथ के पुत्र थे। स्वयं एक अच्छे नैयायिक थे। खण्डनखण्डखाण्ड पर एक टीका लिखी थी। अन्य अनेक शास्त्रीय एवं दार्शनिक ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने तीन नाट्यकृतियों की भी रचना की थी- श्रीकृष्णविनोद, मनोभवप्रभाव और गौरीदिगम्बरप्रमन।

शङ्करसाल- (नाका) १९वीं २०वीं शताब्दी के कामरुगर निवासी भारद्वाजगोत्र

गुजराती ब्राह्मण थे। काठियावाड के प्रश्मोरा नगर ब्राह्मण परिचार में महेश्वर और मोघीवाई से इनका जन्म हुआ था। इनको जामनगर के राजा ने शोधकवि एवं महामहोपाध्याय की उपाधिया प्रदान की थी। मोरवी के संस्कृत महाविद्यालय में ये प्रधानाध्यक्ष के पद पर केवल २१ वर्ष की आयु से ही कार्यरत रहे। इनका साहित्य अत्यन्त विस्तीर्ण है जिसमें गद्य पद्य, लघुकाव्य, महाकाव्य आदि अनेक विधाओं पर रचनाएँ सम्मिलित हैं। मोरवी स्टेट के राज परिवार के विषय में इन्होंने रावजी राज कीर्तिविलास नामक काव्य की रचना की। इनके नाटकसाहित्य में कृष्णचन्द्राभ्युदय, गोपालचिन्तामणि, ध्रुवाभ्युदय, पार्वतीपरिषय, भद्राभ्युविजय, वामनविजय और सावित्रीचरित का उल्लेख किया जाता है। इनमें अधिकांश रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके नाटकों में छाया नाटक तत्व के भी दर्शन होते हैं। इनकी रचनाओं के विषय में काठियावाड निवासी इनके पौत्र सुखदेव खेल शर्कर (S K. Bhatt) से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इनके प्रशंसकों ने शर्कराश्रम की स्थापना की है जहाँ समय समय पर सन्यासियों तथा दूसरे विद्वानों से धार्मिक प्रवचन कराये जाते हैं।

शङ्करविजय- (नाकू) मधुता प्रसाद दीक्षित लिखित शर्कराचार्य की विजय का अंकन। इसमें प्रत्येक अंक में एक प्रतिपक्षी पर विजय का अंकन किया गया है। इस प्रकार मण्डन मिश्र, चार्वाक, जैनसूरि, बौद्ध आचार्य और कोलाचार्य पर विजय दिखलाई गई है और अन्त में व्यास इत्यादि द्वाघ शङ्कराचार्य का अभिनन्दन किया गया है।

शङ्करशंकरम्- (नाकू) डा रमाचौधरी (दे) लिखित शङ्कराचार्य जीवन गाथा दिपयक नाटक। इसमें अकों के स्थान पर दृश्यों का प्रयोग किया गया है। दृश्यों की संख्या १४ है। एकोक्तिव्यो की संख्या पर्याप्त है। प्रत्येक दृश्य में संगीत आता है।

इसका प्रथम अभिनय १९६५ में प्राव्यवाणी के २२वें प्रतिष्ठादिवस के अवसर पर किया गया था।

शङ्कु- (नाका) रससूत्र के व्याख्या वार के रूप में प्रसिद्ध। इन्होंने इस विषय में लोल्लट की व्याख्या का खण्डन किया है। अभिनवगुप्त ने नाट्य शास्त्र की टीका अभिनव भारती में इनके उद्धरण दिये हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने नाट्य शास्त्र की व्याख्या भी लिखी थी। ये सम्भवतः लोल्लट के उत्तरवर्ती समसामयिक थे। इनके एक काव्य ग्रन्थ भावनाभ्युदय का उल्लेख किया जाता है जिसकी रचना ब्रह्मेश्वर के राजा अजितापीड (८१४-८५१) के राज्यकाल में बतलाई जाती है। इस प्रकार आनन्दवर्धन से पहले इनका होना सिद्ध होता है। चयनिकाओं में भी इनके नाम पर कुछ पद्य पाये जाते हैं जिससे ज्ञात होता है कि नाट्यशास्त्रेतर विषयों में भी इन्होंने कुछ साहित्य लिखा था। इन्हें अमात्य शङ्कु कहा जाता है। इनके नाम पर 'चित्रोत्पलावलिम्बितक' (दे) नामक एक प्रकरण भी चहलाया जाता है। इनका उल्लेख राजतरंगिणी में किया गया है। शार्ङ्गधरपद्धति और सृक्तिमुक्तावली में 'दुर्वारा, स्मरमार्गणा' इत्यादि प्रसिद्ध पद्य उद्धृत किया गया है।

मुभाषितावली में यह पद्य मयूर के पुत्र भट्ट शकु क का लिखा बतलाया जाता है। यदि शकु क वास्तव में मयूर के पुत्र थे तो इनका समय ७वीं शताब्दी रहा होगा। उस दशा में दो शकु क सिद्ध होते हैं- एक मयूर के पुत्र और दूसरे रस सूत्र के व्याख्याकार। कहा नहीं जा सकता चित्रोत्पावलीम्बितक रचना किन शकु क की है।

शङ्कुर्ण-(नापा) अभिषेक नाटक में रावण का एक सनानी जा एक हजार सैनिकों के साथ हनुमान से युद्ध करने आया था और मारा गया।

शखचूड-(नापा) (१) नागानन्द (दे) में एक नाग जिसे अपने परिवार का एक व्यक्ति गरुड के भोजन के लिये भजन के निमित्त चुनना है। उस ही बचाने के लिये जमीनवाहन आत्मोत्सर्ग करता है।

(२) शखचूड वधम् (दे) नाटक का एक प्रधान पात्र।

शखचूड वधम्-(नाकू) दीन द्विज लिखित तीन अंकों का नाटक। एक अनिन्य मुन्दरी बन्धा तुलसी ने अच्छे वर की अभिलाषा से लम्बी तपस्या की जिस पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने निर्देश दिया कि कृष्ण का पार्षद मुदामा राधा के शाप से ग्रस्त होकर शखचूड दानव बन गया है। यदि तुम उमम विवाह कर लोगी तो वह शापमुक्त होकर तुम्हारे साथ कृष्ण को प्राप्त कर लेगा। इस निर्देश के अनुसार तुलसी उमम विवाह कर लेती है। शखचूड वैभवशाली और उन्मत्त है। शङ्करजी उम पर आक्रमण कर दत्त हैं। किन्तु तुलसी के पतिव्रत्य के प्रभाव से शङ्करजी उम पर विजय नहीं प्राप्त कर पाते। तब विष्णु भगवान् शखचूड का रूप धारण कर तुलसी का पतिव्रत्य भंग कर दत्त हैं जिसमें शखचूड मारा जाता है। रहस्य जानकर तुलसी विष्णु का शिरोधार्य बन जाने का शाप दे दती हैं जिससे विष्णु शक्तिप्राप्त शिरो में परिणत हो जाते हैं। शिवजी शखचूड की हड्डियाँ समुद्र में फेंक देने हैं जो आज भी शख के रूप में समुद्र में बिखरी पड़ी हैं और तुलसी पौष के रूप में परिणत हो गई हैं।

असम साहित्य सभा जारहाट में १९६२ में इस नाटक का प्रकाशन हुआ था। उसी रचना १८०३ में हुई थी। गान संस्कृत और असमी भाषा में है। भाषा सरल सरल है। सूत्रधार सभा के सवाट बाली है।

शखधर कविराज-(नाका) ये कन्नौज के राजा गाविन्दचन्द्र के राज्यकाल में १२वीं शताब्दी में हुए थे। इन्होंने लखमनव (२) नामक एक प्रहसन लिखा था। इसके अतिरिक्त कविराजिका नामक एक काव्य रसत्रय ग्रन्थ भी इन्होंने लिखा था।

शचीपुरन्दरनाटकम्-(नाकू) नगर रत्नसदान के आश्रय में तैयार किया गया नाटक। अज्ञान इसका भी उल्लेख किया गया है।

(१) शठकोप- (नाका) ये एलकडु के परदाबागवर्ष शक्तिमाधव के पुत्र एवं दक्षिण भारत के अरावली मठ के प्रसिद्ध ७वें मुख्य पुराहित थे। विजयनगर के रंगार

(१५१२-१५२२) का शासन काल था। इनका प्रारम्भिक घरेलू नाम तिरुमल था और इन्हें कवितार्किक कण्ठोव की उपाधि मिली थी। कहा जाता है ये १०० व्यक्तियों को एक साथ बोलकर कविता लिखा सकते थे। गजपति राजकुमार मुकुन्देव ने इनकी पूजा की थी। इनकी नाटयकृति वासन्तिकापरिणय (दे) प्राप्त होती है।

(२) शठकोप- (नाका) तरुण भूषण (दे) भाण के लेखक।

(३) शठकोपाचार्य- (नाका) इनके लिखे भैमोपरिणय का सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम स II ९५ पर किया गया है।

शठ गोपाचार्य- (नाका) दमयन्ती कल्याणम् (दे) नाटक के लेखक। इन्होंने अपनी परम्परा का अनुशोलन ठरुपुत्युरी अच्चन से किया है जो महान् वैष्णव आचार्य नादमुनि के ७ शिष्यों में एक थे।

शठजित्कवि- (नाका) इनका लिखा शृङ्गारसञ्जीवन (दे) भाण प्राप्त होता है। ये भरद्वाज गोत्राय ब्राह्मण थे। इनका परिवार काञ्चीवरम् में निवास करता था। बाद में इनके पिता गोदावरी के कुटालस्थान पर रहने चले गये थे।

शर्तजीव मिश्र- (नाका) १७वीं शताब्दी के उड़ीसा के कवि। इन्होंने मुद्रितमाधवम् नामक गीति नाट्य की रचना की।

शतवार्धिकम्- (नाक) जीवन्माय तीर्थ (दे) लिखित नाटक। कलकत्ता विश्वविद्यालय के शताब्दी समारोह के अवसर पर अभिनय के लिये लिखा गया नाटक। इसका कथा काल्पनिक है। मर्त्यमणि अपने शरीर पर रॉकेट चिपकाकर ब्रह्मलोक जाता है। वहा द्वारपाल रॉकेटों को देखकर डर जाता है। मर्त्यमणि कहता है कि अभी तक मंगल पर ही रॉकेट छोड़ा गया है, शुक्र और बुध पर भी रॉकेट छोड़ने की योजना है। चन्द्र भी दुखी है कि उसका निर्ममता पूर्वक अतिक्रमण किया गया है। वह अपनी दुर्गति सुनाता है। राहु को क्रोध आ जाता है, वह मर्त्यमणि से भिड जाता है। सभी ग्रह मर्त्यमणि को लेकर ब्रह्माजी के पास जाते हैं। ब्रह्मा सबको शान्त करते हैं। अन्तिम सन्देश है- या तो यान्त्रिक विज्ञान पर नियन्त्रण किया जाय नहीं तो १०० वर्ष में पृथ्वी ध्वस्त हो जायेगी। इस नाटक का प्रकाशन रुपकचक्रम् में किया गया था।

शतानन्द- (नापा) रामायण में जनकपुर के राजा जनक के पुत्रोहित। इनका पात्रों में समावेश (१) महावीर चरित, (२) अनर्घराधव, (३) प्रसन्नराधव इन राम विषयक नाटकों में किया गया है।

शम्बूक- (नापा) उत्तररामचरित का एक पात्र जो शूद्र होते हुये भी तपस्या कर रहा था। उसे मारने के लिये राम दण्डक वन को गये थे।

शरणाधिसवाद- (नाक) वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक। बंगलादेश की स्वतन्त्रता के बाद वहा की दशा का चित्रण इसका विषय है। इसमें पाकिस्तान के

अत्याचारों से छुटकारा दिलाने में भारतीयों की सहृदयता का चित्रण किया गया है। इसमें हर्ष, शोक, द्वेष, उदारता इत्यादि भावनाओं के चित्रण के साथ व्यङ्ग्य का भी सहारा लिया गया है।

शरभविजयम्- (नाट्य) नारायण शास्त्री लिखित एकाङ्की नाटक।

शरभोजी- (नाट्य) का) मराठा सम्राट। इनके दरबार में संस्कृत के अनेक कवि और कलाकार विद्यमान थे। इन्होंने स्वयं मुद्राराक्षस की शब्दावली पर कार्य किया था।

शर्मिष्ठा ययाति- (नाट्य) यह एक अंक (उत्सृष्टिकांक) है जिसकी रचना अभिनय के मन्तव्य से भारत ने की थी। इसका अभिनय स्वर्ग में नहुष के दरबार में किया गया था जब इन्द्र की वृत्रवध के प्रायश्चित्त के लिये इन्द्रासन से हट जाना पड़ा था और नहुष इन्द्रासन के अधिकारी बन गये थे। यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं होती।

(२) **शर्मिष्ठा ययाति-** (नाट्य) इसका उल्लेख विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में किया गया है। वहा पर विश्वनाथ ने इसे अंक (उत्सृष्टिकांक) के उदाहरण के रूप में उल्लिखित किया है। कहा नहीं जा सकता विश्वनाथ का अभिप्राय किसकी रचना से है। कृष्णकवि (भागवत कृष्ण) के नाम पर इस नाम की रचना कही जाती है। इस विषय की एक दूसरी रचना ययातिविरित रुद्रदेव (प्रताप रुद्रदेव) के नाम पर भी प्रसिद्ध है। अतः यह निश्चय करना कठिन है कि इन दोनों में किस रचना से विश्वनाथ का अभिप्राय है। इन दोनों से भिन्न कोई अन्य नाटक भी अभिप्रेत हो सकता है।

(३) **शर्मिष्ठा ययाति-** (नाट्य) भागवत कृष्ण (दे.) लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ स ६३८ पर किया गया है। भागवतकृष्ण कवि के नाम पर उद्भुतबुकोदर (दे.) नामक नाटक भी पाया जाता है। हो सकता है ये दोनों भागवत कृष्ण एक ही व्यक्ति न हों। हो सकता है इनमें एक व्यक्तित्व शेषकृष्ण से अभिन्न हो।

(१) **शर्मिष्ठा विजयम्-** (नाट्य) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित एक नाटक। इसमें चार अंक हैं। नाट्य विषय के रूप में महाभारत की शर्मिष्ठा ययाति की कथा का उपादान किया गया है। इसमें शर्मिष्ठा और ययाति का विवाह दिखलाया गया है। इसका प्रकाशन मद्रास और चिदम्बाम् से हुआ है। इसका मुख्य रस उत्तान शृङ्गार है जिसमें हास्य का भी पुट है। लोकोक्तिों का भी प्रयोग किया गया है। शुक्राचार्य इत्यादि भी पात्र रूप में मंच पर आते हैं। मंदिरा में मत्तवेष्ट विदूषक को प्रेयसी समझ लेता है।

(२) **शर्मिष्ठा विजयम्-** (नाट्य) नारायण शास्त्री (दे.) (१) लिखित चार अंकों का नाटक।

शर्विलक- (नाट्य) शुद्ध (दे.) द्वारा रचित मूच्छकटिक के प्रमुख पात्रों में एक। यह हमारे सामने कई रूपों में आता है। यह प्रमी है अच्छा मित्र है, ब्रान्तिगरी है, बीर है, विवेकशील है, स्वार्थभ्रष्ट के लिये घोर जैसा गहन काम भी करता है, दीनद की

अपेक्षा चोरी करने को भी अच्छा समझता है। उसकी प्रेमिका वसन्तसेना की दासी मदनिका है जिसे छुटकारा दिलाने के लिये वह चारुदत्त के यहाँ चोरी करता है और सयोगवश वसन्तसेना के जेवर ही चुरा लेता है। चोरी करने के अवसर पर भी उसे यह दुष्कर्म टीसता अवश्य है। वह एक सच्चा मित्र है, जैसे ही वह सुनता है कि उसका मित्र आर्यक बन्दी बना लिया गया है वह अपनी कठिनता से पाई हुई प्रेमिका को भी मित्र के यहाँ छोड़कर आर्यक को बचाने चल देता है। वह वीर है— आर्यक की जेल से छुड़ा लेना उसी का काम है। वह वेष बनाने और अनेक भाषायें बोलने में निपुण है। सफल क्रान्तिकारी है। राजा के महल में घुसकर राजा का वध करता है और चटपट आर्यक का तिलक भी कर देता है। अनेक गुणों के होते हुये चोरी करना उसका एक दोष है जिसका उसे ज्ञान भी है। किन्तु चोरी वह अपने प्रेम के लिये करता है। उसने चोरी करने की कला योगाचार्य नाम के किसी आचार्य से विधिवत् सीखी है। इसीलिये पड़े हुये नियमों को यादकर कर वह उनका प्रयोग करता है। वह बड़े से बड़े काम के लिये जी जान से जुट जाता है, तत्काल निर्णय लेता है। वह स्वाधीनता को इतना महत्व देता है कि निन्दित होने में भी बुराई नहीं समझता। उसे सबसे बुरा काम मालूम पड़ता है किसी के सामने हाथ फैलाना। वह कलाभिज्ञ और कलाप्रेमी भी है। सेंध काटने में भी वह कला का ध्यान रखता है। उसने जैसी सेंध की आकृति बनाई है उसकी प्रशंसा चारुदत्त भी करता है। मानव सुलभ ईर्ष्या उसके अन्दर भी है। जब मदनिका चारुदत्त की प्रशंसा करती है तब उसे अच्छा नहीं लगता और बिगड़ पड़ता है। वह स्त्रियों और वेश्याओं को बुरा भला कहता है। उसे धर्म का ज्ञान है और जब वह चोरी जैसा दुष्कर्म कर रहा होता है उस समय भी उसका ध्यान इस ओर रहता है कि वह गलत काम कर रहा है। किन्तु उस गलत काम को भी वह पूरी लगन से करता है। क्योंकि उसकी भावुकता उसकी धर्मभावना पर हावी है। वह समाज के ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधि है जो अच्छे चरित्र वाले कहे जा सकते हैं, मित्रता निभाने वाले होते हैं और आवश्यकता पड़ने पर कठिन से कठिन काम कर गुजरने में सकोच नहीं करते। यदि आवश्यकता पड़ जाती है तो बुरे काम को भी निस्संकोच भाव से करते हैं।

शल्य— (नाभा) भास (दे) के कर्णभार (दे) का पात्र। महाभारत में शल्य का उद्देश्य कर्ण के उत्साह को कम करना और अर्जुन की विजय की परिस्थिति तैयार करना है। किन्तु कर्णभार में वह अपने सारथी होने का उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से निभाता है। वह कर्ण को कुण्डल कवच देने से रोकता है यद्यपि कर्ण उसकी बात मानते नहीं। कर्ण को भी उस पर विश्वास है और कर्ण निस्संकोच भाव से उसे परशुराम के शाप की और अपने छत की बात सुना देता है।

शशिकला परिणय— (नाक) ऋद्धिनाथ झा (दे) के लिखे इस नाटक को यज्ञोपवीत का अभिधान भी प्रदान किया जाता है। इसमें भक्त सुदर्शन का शशिकला से विवाह

रूपकायित किया गया है। मिथिलाधिपति कामेश्वर सिंह के भतीजे जीवेश्वर सिंह के यज्ञोपवीत के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था। इसीलिये नाटक को यज्ञोपवीत का अभिधान प्राप्त हुआ। इसकी रचना १९४१ में और दशभगा से प्रकाशन १९४७ में किया गया।

शशिशास्त्रदीपम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ६ अंकों का नाटक।

शाहजीराजविलासनाटकम्- (नाकू) तजौर साहित्य में परिगणित साहित्य यश में किसी अज्ञात लेखक की नाट्यकृति।

शाकुन्तलम्- (नाकू) दे अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

(१) **शान्ति-** (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय का एक पात्र। यह श्रद्धा की पुत्री है और अपनी मा से बिछुड जाती है। महामोह उसे बन्दी बनाना चाहता है। मा के वियोग से यह अत्यन्त दुखी है- यहा तक कि आत्महत्या करने को तैयार हो जाती है। उसे इस कार्य से उसकी सहेली करुणा बचाती है। शान्ति सखी करुणा के साथ माँ की खोज में निकल पडती है। वह दिगम्बर-जैन, बौद्ध, कापालिक इत्यादि अनेक परिवारों में तलाश करती है। उन सबके पास उनकी पत्निया हैं जिन्हें वे सब श्रद्धा के नाम से पुकारते हैं, किन्तु उनमें शान्ति को अपनी मा श्रद्धा नहीं मिलती। वे सब श्रद्धाएँ विण्डी हुई हैं। अतः वे उसकी मा नहीं हो सकती। जैनधर्म इत्यादि सभी श्रद्धा की पुत्री शान्ति की खोज में लगे हैं किन्तु शान्ति उन्हें कहीं नहीं मिलती। दूसरी ओर शान्ति उपनिषद् और विवेक का सफलता पूर्वक मेल कराती है जिससे विद्या (पुत्री) और प्रबोध (पुत्र) का जन्म होता है। शान्ति को यज्ञविद्या, मीमांसा, सांख्य, न्याय इत्यादि से बहुत कष्ट मिलते हैं किन्तु वह उसे प्राप्त नहीं होती।

(२) **शान्ति-** (नापा) महामोह पात्रजय (दे) में विवेकचन्द्र की पत्नी जिसकी पुत्री कृष्णमुन्दरी का विवाह राजा कुमारपाल से होता है और उसके विवाह का परिणाम होता है धर्मराज्य की स्थापना।

शान्तिचरित- (नाकू) एक बौद्ध नाट्यकृति जिसका उल्लेखमात्र प्राप्त होता है किन्तु उसके कर्ता या विषय वस्तु का कोई पता नहीं।

शान्ति भिक्षु- (नापा) मत्तविलास (दे) प्रदसन का एक पात्र। वह बौद्ध भिक्षु है और बुद्ध वचनों की अपनी स्वतन्त्र व्याख्या करता है।

शान्तिरस- (नाकू) यह प्रतीक नाटक की श्रेणी में आने वाली प्रतीक रचना है। इसकी रचना वैकुण्ठपुरी (उपनाम विष्णुपुरी) ने की थी। इसका उल्लेख कैटेलागम कैटेलागोरम १५९१ पर किया गया है।

शाप- (नापा) बालचरित में कस को दिया गया मधुन ऋषि का मानवीकृत शाप धग्दान वेद में थाण्डाल पुनर्तियों के साथ राज प्रसाद में पुसने की चेष्टा करता है जरा

वह राज्यश्री द्वारा रोक दिया जाता है। तब शाप विष्णु की आज्ञा बतलाने पर अन्दर जाने दिया जाता है जो वहा जाकर कस की शक्ति को निगल जाता है जो एक अपराकृत है।

शामशास्त्री आर. (डा.) - (ना अनुका) इन्होंने लेसिंग की एमेलिया कैलेडो का संस्कृत के अनुवाद किया था। (दे अमीलिया गलनि)।

शारदा- (नाका) यह एक कवयित्री है। सालुव नरसिंह ने रामाभ्युदय काव्य में इनका उल्लेख करते हुये लिखा है कि इन्होंने १८ नाटक लिखे और प्राकृत काव्यों की भी रचना की। शारदा का इतना विस्तृत साहित्य प्रकाश में नहीं आया है। यह सम्भवतः राजपरानों के पुस्तकालयों में बिखरा पड़ा होगा।

सालुव नरसिंह विजय नगर के राजा, कवियों साहित्यकारों एवं नाटककारों के आश्रयदाता तथा स्वयं कवि थे। इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। अतः शारदा का समय भी इसी के आस पास होना चाहिए। रामाभ्युदय में शारदा विषयक निम्नलिखित पद्य पाया जाता है-

गद्यपद्यमयै काव्यैस्ताष्टादशनाटकै।

साक प्राकृतकाव्यैश्च साहित्य शारदाभ्यधात्॥

शारदाचन्द्रिका- (नाक) शारदातनय के भावप्रकाशन में लिखा है कि वाण भट्ट ने इसमें चन्द्रापीड के कथानक को लेकर इसकी रचना की थी। दशरूपक में उत्प्रेक्षिका के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। वहा इसे भट्टवाण की कृति बतलाया गया है। दशरूपक के अनुसार इसमें चन्द्रापीड के प्रत्युज्जीवन पर्यन्त कथानक का उपादान किया गया है।

शारदातनय द्वारा उल्लिखित नाटक रचनायें- (नासा) अभिमन्युनम्, अमृतमन्युनम्, इन्दुलेखा, उदात्तकुञ्जरम्, कलिकेलि, कुन्दमाला, गंगाभागीरथम्, गौडविजय, तरंगदत्ता, तारकोद्धारणम्, त्रिपुरदाह, त्रिपुरमर्दनम्, देवीपरिणयम्, देवोमहादेवम्, नलविक्रमम्, नृसिंहविजय, पद्मावतीपरिणय, बालिवध, मदलेखा महानाटकम्, माणिक्य वल्लिका, मारीचवञ्चितकम्, मेनकानहुषम्, रामाराधा, वीणावती, वृत्तोत्तरणम्, शारदचन्द्रिका, शृङ्गारतिलकम्, सैन्धिका, सौषद्रिका, स्वम्भिराम्यकम्, स्वप्नवारावदत्तम्।

शारदातिलक- (नाक) १ दे शङ्कर कवि (१) (२) दे शेषगिरि। इस भाग का उल्लेख मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग स २८४ में किया गया है।

शारदानन्दन- (नाक) एक भाग। इसकी रचना कौशिकगोत्रीय श्रीनिवासाचार्य ने की थी। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में यह प्राप्य है। इस अनुभाग के विवरणात्मक सूचीपत्र में स ११८५३३ पर इसका विवरण दिया गया है।

शारद्वत- (नापा) अभिज्ञान शाकुन्तल में कण्व का शिष्य । यह स्वभाव से गम्भीर एवं मितभाषी है । केवल सारगर्भित आवश्यक बात करता है । जब देखता है कि शार्ङ्गरव को बातचीत से अनर्थ हो जाने की सम्भावना है तब वह शार्ङ्गरव को बीच में ही रोक देता है- 'ज्यादा उत्तरप्रत्युत्तर की आवश्यकता नहीं । हमें जो कुछ कहना था कह दिया । शाकुन्तला ! अब तुम अपनी सफाई दो ।' जब शार्ङ्गरव क्रोध पूर्ण बातें करता है और यहाँ तक कह देता है कि इस अधार्मिक कार्य से राजा को पतन ही प्राप्त होगा, तब बात बिगड़ते देखकर वह उपसहार रूप में दो दूक बात कह देता है- 'आओ शार्ङ्गरव चलें, और राजा से कहता है- राजन् यह आपकी पत्नी है- इसे छोड़ें या स्वीकार करें । पत्नी पर पति का पूरा अधिकार होता है ।'

शारद्वतीपुत्रप्रकरणम्- (नाक) दे शारिपुत्रप्रकरण ।

शारिपुत्र- (नापा) बौद्ध अश्वघोष लिखित नाटक शारिपुत्र प्रकरण का एक पात्र । दे शारिपुत्र प्रकरण ।

शारिपुत्रप्रकरण- (नाक) बौद्धकवि अश्वघोष (दे) की यह नाट्य कृति बहुत समय तक छिपी पड़ी रही । प्रो लूडर्स ने तुर्फान के ताम्रपत्रों का अनुसन्धान करते हुये इसे खोज निकाला । वनिष् के दरवारी कवि की रचना होने के कारण इसका रचनाकाल प्रथम शती ई के आसपास माना जाता है । यह नौ अकों का एक नाटक है जिसमें अन्तिम पुष्पिका सुरक्षित है जो नाटक को अश्वघोष कृत प्रमाणित करती है । इसके कुछ उच्छिन्न अंश ही प्राप्त हुये हैं । इसमें मुक्क मौद्गल्यायन और शारिपुत्र का बुद्ध द्वारा मत परिवर्तन दिखलाया गया है । बुद्ध द्वारा दोनों शिष्यों के महत्तम ज्ञानी और सिद्ध होने की भविष्यवाणी के साथ नाटक की समाप्ति होती है । यह नाटक प्रविधि में नाट्यशास्त्र की प्रतिष्ठित परम्परा से मेल खाता है । इसमें प्रयुक्त प्राकृत परवर्ती नाटकों की प्राकृत से प्राचीनतर है । नाटक का नायक शारिपुत्र है जो धीरशान्त नायक कहा जा सकता है । वस्तु शङ्कर रस से शान्त की ओर प्रवर्तित होता है । इसका ही नामान्तर शारद्वतीपुत्रप्रकरण भी है । कथासार इस प्रकार है- 'शारिपुत्र अश्वजित् से मिलने जाता है । वहाँ दोनों का मित्र विदूषक से इस विषय में विवाद होता है कि बुद्ध का शिक्षक होने का दावा कहा तक उचित है ? उसका कहना है कि 'मेरा स्वामी एक ब्राह्मण है, वह एक शत्रिय से शिक्षा कैसे ले सकता है ?' इस पर दूसरी ओर से उत्तर दिया जाता है कि एक शूद्र वैद्य की दवा भी रोगी को लाभ पहुँचाती है और एक शूद्र के दिये हुये अन्न से भी प्यास शान्त होती है । मौद्गल्यायन शारिपुत्र का स्वागत करता है और आने का कारण पूछता है । फिर उसके भन्व्य को जानकर दोनों बुद्ध के पास जाते हैं । बुद्ध उनका स्वागत करते हैं और भविष्य वाणी करत है कि मेरे सब शिष्यों में तुम अत्यन्त ज्ञानवृद्ध सिद्ध होग और तुम लोगों की भन्वरविन अन्यन्त बड़ी चढ़ी होगी । इसके बाद शारिपुत्र और बुद्ध का दार्शनिक संवाद चलता है जिसमें किसी स्थायी आत्मा के प्रति विश्वास के प्रतिकूल एक विधि

समस्त सिद्धान्त का निश्चय किया जाता है। अन्त में बुद्ध अपने दोनों शिष्यों की प्रशंसा करते हैं और आशीर्वाद के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक के केवल अन्तिम दो अंक प्राप्त होते हैं। इससे इतना प्रकट हो जाता है कि इस नाटक में ९ अंक थे। इसका पूरा परिचय देना सम्भव नहीं है। जितना भी अंश प्राप्त हुआ है उससे यह तो सिद्ध हो जाता है कि अश्वघोष काव्यकला के समान नाट्यकला में भी सिद्धहस्त रचनाकार थे। प्राप्त अंश से ज्ञात हो जाता है कि इस नाटक का श्रोत विनय पिटक के महावग्ग का मौद्गल्यायन उपाख्यान रहा होगा जिसमें मौद्गल्यायन और उनके मित्र शारिपुत्र का संवाद दिया हुआ है। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटक के कथानक का उपादान बौद्ध धर्मग्रन्थ के त्रिपिटक से ही किया गया होगा।

शार्ङ्गरव- (नापा) अभिज्ञान शाकुन्तल (दे.) में कण्व का शिष्य। कण्व ने शकुन्तला को पति के घर पहुँचाने के लिये जिन दो शिष्यों को नियुक्त किया था उनमें एक यह भी है। यह लोक व्यवहार में निपुण व्यक्ति है और साहस के साथ अपनी बात निस्सङ्कोच रूप से कह सकता है। अवसर के अनुसार तत्काल निर्णय लेने की योग्यता भी उसमें है। कण्व उसकी योग्यता से परिचित है अतः उसे ही राजा से सन्देश निवेदन करने के लिये समझाते हैं। वह अपना उत्तरदायित्व पूर्ण योग्यता से निभाता भी है जिसमें वह मर्यादा का पूरा ध्यान रखता है। जब राजा उसके और दूसरे मुनिजनों के कुशल के विषय में प्रश्न करते हैं तब वह यही कहता है— 'आप जैसे रथक को पाकर हम मुनिजनों का अकुशल कैसे हो सकता है?' किन्तु जब राजा कण्व की कुशल पूछता है तब गुरु के गौरव का ध्यान रखते हुये उत्तर देता है— 'जो लोग सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं उनकी कुशल किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में नहीं होती, कुशलता तो उनके आधीन होती है।' वह निपुणता के साथ कण्व की ओर से शकुन्तला को ले आने का सन्देश देता है और व्यवहार की बात कहता है— 'लडकी यदि बहुत दिनों पिता के यहाँ रहती है तो चाहे वह कितनी ही सदाचारिणी हो लोग उसके चरित्र पर शंका करने ही लगते हैं। अतः वह प्यारी हो या न हो बधू के अपने बन्धु बान्धव यही चाहा करते हैं कि लडकी पति के ही यहाँ रहे।' किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि राजा तो इसी बात से इन्कार कर रहा है कि उसने कभी शकुन्तला से प्रेम किया था तब इस बात की परवा न कर कि वह राजा से बात कर रहा है दो टूक साफ साफ कह देता है कि जो लोग ऐश्वर्य के नशे में बेहोश हो जाते हैं और कर्तव्य अकर्तव्य नहीं समझते उनके अन्दर ये बुराईयाँ आ ही जाती हैं। वर सत्य बोलने में जरा भी सकोच नहीं करता और राजा को एक डाकू तक की उपमा दे देता है। राजा के प्रति ही नहीं शकुन्तला के प्रति भी उसके मन में न मोह है न कठोर होने में उसे कुछ सकोच होता है। वह स्पष्ट कह देता है— 'यदि राजा सच कहता है और तुम दुष्टचारिणी हो तो तुम्हें लेकर हम क्या करेंगे? यदि तुम समझती हो कि तुम्हारा

व्रत पक्व है तो पति के यहा सेवा टहल करना भी तुम्हारे लिये उचित है ।'

जब देखना है कि बात बन नहीं रही है कोमल होकर कुछ समझाने के मन्त्रव्य से कहता है- 'आप परस्त्री समझकर इसे स्वीकार करना नहीं चाहते क्योंकि आप अधर्म से डरते हैं। यह हो सकता है कि राजकीय व्यनता के कारण आप पुरानी घटना भूल गये हों तो क्या अपनी धली के परित्याग का आपको पाप नहीं लगेगा?' और बात बन जानी है। राजा इसके लिये राजी हो जाता है कि प्रसवपर्यन्त शकुन्तला पुरोहित के यहा रहे। फिर प्रसूति के लक्षण देखकर निर्णय कर लिया जायेगा। वह वरिष्ठ स्नातक है और बिना पिता की राय लिये इस अवसर पर स्वयं निर्णय कर लेता है। मातृस्थानीय गौतमी उपस्थित है। किन्तु वह भी निर्णय के लिये उसी का मुख देखती है। घर के ज्येष्ठ भाई के वर्तव्य का वह अत्यन्त निपुणता के साथ निर्वाह करता है। यदि उसके निर्णय के अनुसार शकुन्तला राजकुल में मौजूद रहती और अगूठी मिलने पर राजा की विस्मृति समाप्त हो जाती तो बात बन ही जाती। किन्तु नियति पर किसका वश।

शार्दूल शटकम्- (नाक) वीरेन्द्र भट्टाचार्य लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें नवीन वातावरण का चित्रण किया गया है। परिवहन सस्था के कर्मचारी हड़ताल करते हैं जिनसे परिवहन सस्थाध्यक्ष का जैसे तैसे समझौता हो जाता है और बसें पुन चलू हो जाती हैं। किन्तु कुछ ही दिनों बाद कलकत्ता इत्यादि शहरों में खबर आने लगती है कि मजदूर फिर हड़ताल पर जाने वाले हैं। मजदूरों ने हड़ताल के लिये अवसर इसलिये चुना है कि गवर्नर और मैजिस्ट्रेट परिवहन कर्मचारियों को सम्बोधित करने वाले हैं जिस आयोजन की पूरी तैयारी हो चुकी है। आमन्त्रण पत्र भी बट गये हैं। मजदूर इस आयोजन को विफल करने की धमकी से लाभ उठाना चाहते हैं। एक हड़ताली मारा भी जाता है। मजदूर जुलूस बनाकर राजभवन तक जाते हैं। विवश होकर परिवहन के अध्यक्ष मजदूरों की मांग मान लेने का आश्वासन देकर हड़ताल तुड़वा देते हैं।

इस नाटक में टेलीफोन मुक्ति के अत्याचार, मंदिरासन इत्यादि वर्तमान परिस्थितियों और समस्याओं का चित्रण किया गया है।

इस नाटक का प्रकाशन १९६९ में संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता से हो गया था।

शार्दूल सम्पाति- (नाक) ध्यासराज शास्त्री लिखित व्यायाग जिमम विश्वामित्र द्वारा यज्ञरक्षा के लिये दशरथ के पुत्रों की याचना को स्थापित किया गया है।

शांतिग्राम द्विवेदी- (नाक) बम्बई के २०वीं शताब्दी का नाटककार। इन्होंने धान्यभारतम् नाटक की रचना की।

शिगभूपाल द्वारा उल्लिखित नाटक- (नामाम) कुर्नूल जिले में विध्यावल और श्री सैल का मध्य लगभग १४वीं शताब्दी में एक विम्बित क्षेत्र का शासक शिगभूपाल

ने रसार्णव सुधाकर में कई प्रकरणों का उल्लेख किया है जिनमें कतिपय हैं— कन्दर्प सम्भव, कामदत्ता, महेश्वरानन्द, रामानन्द और वीरानन्द ।

शिवि वैभवम्— (नाक) जगू सिंग्रैया द्वारा राजा शिवि और कपोत की पौराणिक कथा को लेकर लिखा गया तीन अकों का नाटक । इसकी रचना स्वतन्त्रता दिवस के स्मरणोत्सव पर अभिनय के लिये की गई थी । इसका प्रकाशन १९६१ में संस्कृत प्रतिभा में किया गया था ।

शिव— (नापा) भरतमुनि ने त्रिपुरदाह नामक ड्राम का उल्लेख किया है । अब यह रचना उपलब्ध नहीं होती । (१) यत्नराज के त्रिपुरदाह में शिव का चित्रण किया गया है । किन्तु इसमें उनके रुद्र रूप की अपेक्षा शालीन रूप का चित्रण अधिक है । कुमार विजय की ओर बढ़ते जा रहे हैं कि इनका एक आदेश उन्हें वहीं पर रोक देता है । इनके विरोधी दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य भी इनकी मर्यादापालन, शालीनता और अनुशासन की प्रशंसा करने के लिये बाध्य हो जाते हैं ।

(२) भास्कर यज्वा लिखित कुमार विजय (दे) और (३) वनश्याम लिखित कुमार विजय में भी इनका पात्र रूप में उपादान हुआ है ।

शिव— (नाका) आई गफ के एनोट संस्कृत लिटरेचर के अभिलेख में इनका उल्लेख किया गया है । उसके अनुसार इनका लिखा विवेकचन्द्रोदय (दे) एक प्रतीक नाटक है । (दे) आई गफ प्राचीन संस्कृत साहित्य के अभिलेख स १०६)

शिवश्याम सुन्दरी परिणय नाटकम्— (नाक) तर्जो साहित्य में परिगणित एक अज्ञात कर्तृक रचना ।

शिवदत्त त्रिपाठी— (नाका) इनका निवास स्थान अजमेर के निकट पुष्कर था । रचनाकाल २०वीं शताब्दी का पूर्वभाग । इन्होंने धार्मिक विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखी थी जिनमें रामायण, महाभारत, श्रीकृष्ण चरित्र, दुर्गाचरित्र, सूर्यस्तवम् के अतिरिक्त कर्मकाण्ड और नीति इत्यादि अनेक विषय सम्मिलित हैं । इन रचनाओं में 'दुर्वासस्तृप्तिस्वीकार' (दे) नाटक भी सम्मिलित है ।

शिवदूतम्— (नाक) नारायण शास्त्री (१) लिखित ६ अकों का नाटक ।

शिवनन्दन— (नाका) बिहार के २०वीं शताब्दी के कवि, इनका लिखा गजानन चरित नाटक बतलाया जाता है ।

शिवनारायणदास— (नाका) 'नन्दिपोष विजयम्' शीर्षक नाटक के लेखक । रचनाकाल १६वीं शताब्दी ।

(१) **शिवनारायण भज महोदयम्**— (नाक) उड़ीसा निवासी नरसिंह कवि की ५ लोकों की रचना । इस नाटक में अक के स्थान पर लोक शब्द का प्रयोग किया गया है । यह नाटक क्यौंझर के राजा शिव नारायण के सम्मान में लिखा गया है । इस नाटक

का विषय तत्त्व चिन्तन है। इसे संक्षेप में शिवनारायण महोदय भी कहा जाता है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III १३४ पर किया गया है।

(२) शिवनारायण भजमहोदय- (नाकू) उडीसा के अज्ञात लेखक की रचना। यह उक्त रचना से सम्भवतः भिन्न है।

शिवनारायण महोदय- (नाकू) दे शिव नारायण भज महोदय (१)।

शिवभक्तानन्द- (नाकू) बालकवि (दे) लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स १६५० पर किया गया है।

शिवराज्याभिषेक- (नाकू) श्रीधर भास्कर वर्णेकर (दे) लिखित ७ अकों का नाटक। यह २०वीं शताब्दी का रचना है। यह शिवजी के राज्याभिषेक के त्रिशताब्दी समारोह में अभिनय के लिये लिखा गया था। इसका प्रकाशन वसन्तगाडगिल ने पूना से करा दिया था।

शिवरामकृष्ण- (नाका) इनका जन्म गौतमगोत्र में हुआ था। इन्होंने अनङ्गविजय (दे) भाण की रचना नरेश महिपाल एवं उनके पुत्र कृष्ण युवराज के आग्रह पर की थी जिसका अभिनय वमनूर में किया गया था।

शिवलिंग सूर्योदय- (नाकू) यह भन्तारि आराध्य (दे) का लिखा प्रतीक नाटक है। इसमें ५ अंक हैं। चौरशैव सम्प्रदाय की महत्ता स्थापित करने के मन्तव्य से इसकी रचना की गई थी। कण्डुकूरि वंश के वासवेश्वर के लिये लेखक ने इसे लिखा था। सम्भवतः वासवेश्वर एक स्थानीय सामन्त थे। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायेनिवल कैटेलाग (संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट) के III ८१२५ में इसका उल्लेख है।

शिवस्वामी- (नाका) कल्हण ने लिखा है कि काश्मीर के अवन्तिवर्मा के शासनकाल (८५५-८८३) में शिवस्वामी कवि एवं नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित थे। ये कवि रत्नाकर के समसामयिक थे। इन्होंने अनेक नाटकों, नाटिकाओं और प्रकरणों की रचना की। परन्तु अब वे कृतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। अब केवल इनका नाम और यश ही शेष रह गया है। सुभाषितसंग्रह में इनका केवल एक पद्य पाया जाता है।

शिवाजी- (नाका) ये तजौर के राजा तथा शाहोजि के पुत्र थे। इनका राज्यकाल १८३३-१८५५ तक था जबकि इनकी मृत्यु १८६५ में हुई थी। इनका लिखा नरेश विनास (दे) पौराणिक कथा पर आधारित एक नाटक है। इन्दुमतीपरिणय (दे) भी सम्भवतः इन्हीं शिवाजी की रचना है।

शिवाजिचरित्रम्- (नाकू) हरिदास सिद्धान्त वागेश लिखित १० अकों का नाटक। इसमें शिवाजी महाराज के चरित्र का चित्रण किया गया है। शिवाजी के चरित्र के द्वारा जनता में देशभक्ति जगाना इस नाटक का उद्देश्य है। इसमें अनेक गीतों और छायातत्व का प्रयोग किया गया है। सम्यो एकाकिनयो म कथानक का परिचय देना इसकी अन्यतम

विशेषता है। निर्वाह में नवीनता के भी दर्शन होते हैं। पारिपाक्षिक तिरगा लेकर रंगमञ्च पर आता है, मञ्च पर ही सर्कस दिखलाने की योजना की गई है। जयन्ती देवी स्त्रियों की सभा सजाती है। मञ्च पर ही शवयात्रा दिखलाई जाती है। इसकी रचना १९४५ में हुई थी।

शिवाजिविजयम्—(नाकू) रंगाचार्य लिखित दो अकों का एक प्रेक्षणक (ओपेरा)। इसमें आगरा में शिवजी के बन्दी होने से लेकर साधु वेष में राजधानी पहुचने तक घटना का चित्रण किया गया है। इसमें नान्दी और भरत वाक्य नहीं है। प्रस्तावना भी नहीं है। पद्यों का प्रयोग नहीं किया गया है। सवाद कुछ लम्बे हो गये हैं।

इसका प्रकाशन कलकत्ता से सन् १९३८ में साहित्यपरिषद्पत्रिका के अन्तर्गत हो गया था।

शिवाभ्युदय—(नाकू) श्यामवर्ण द्विवेदी (दे) लिखित नाटक।

शिशुपाल—(नापा) रक्मिणीहरण (दे) नाटक का एक पात्र। रक्मिणी इसकी वाग्दत्ता है जिसका कृष्ण सफलतापूर्वक अपहरण करते हैं। उमे रुक्मी की सहायता प्राप्त है फिर भी कृष्ण के सामने पराजय का मुख देखना पड़ता है।

शिशुविनिमयम्—(नाकू) नारायणशास्त्री लिखित ६ अकों का नाटक।

शीतलचन्द्र—(नाका) इनका लिखा घोषयात्रा नामक ड्राम कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। इसका रचना काल १९वीं शताब्दी का मध्य भाग है।

शीतसूर्य—(नाकू) नरसिंहाचार्य स्वामी (दे) लिखित नाटक।

शुकाभिषेक—(नाकू) श्रीनिवास (दे) की नाट्य रचना। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग (स २८४) में प्राप्य।

शुक्र—(नापा) त्रिपुरदाह (दे) में यह राक्षसों का गुरु है। फिर भी उदार व्यक्ति है और अपने विरोधी देवताओं के सेनानायक कुमार की इसलिये प्रशंसा करता है कि कुमार पिता के नियन्त्रण में है और मर्यादाओं का पालन करते हुये युद्ध करता है।

शुक्लेश्वर—(नाका) इनका उल्लेख हाल की दशरूपक की भूमिका में किया गया है। कैटलागस कैटलागोस्म में भी १६५८ पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है। इनका लिखा नाटक प्रमाणादर्श है जो अभी तक साहित्य जगत के सामने आया नहीं है। अनुमान है कि यह एक प्रतीक नाटक होगा।

शुद्धसत्त्व—(नाकू) मदभूषि वेङ्कटार्य (दे) लिखित प्रतीकनाटक। इसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। कृष्णमाचार्य ने लिखा है कि इसकी प्रति गोदावरी जिला के रखोल गांव के निवासी सस्कृत के पण्डित पी वी सुब्रह्मण्य शास्त्री के पास है।

शुन शेष—(नापा) दे पशुमेद्।

(१) शूद्रक—(नाका) चतुर्भाणी में सङ्कलित पद्य प्राभूतक (दे) भाग के लेखक। कहा नहीं जा सकता सकलनकर्ता का मन्तव्य मृच्छकटिक के लेखक शूद्रक से ही है या ये कोई दूसरे शूद्रक हैं।

शूद्रक—(नाका) मृच्छकटिक नाटक के लेखक के रूप में प्रसिद्ध। संस्कृत साहित्य में शूद्रक का व्यक्तित्व अत्यन्त विलक्षण है। ये दो रूपों में हमारे सामने आते हैं—नाटककार के रूप में और प्रमुख पात्र (नायक) के रूप में। नाटककार के रूप में अपनी श्रेणी का अद्वितीय नाटक मृच्छकटिक प्रसिद्ध है। चतुर्भाणिका में समाविष्ट पद्यप्रभूतक भी इन्हीं के नाम पर बतलाया जाता है।

संस्कृत साहित्य में पौराणिक महा विभूतियों के बाद जिन व्यक्तियों को लोकोत्तर महत्ता प्राप्त हुई है तथा जिन्हें सामान्य कथा नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है उनमें उदयन और विक्रमादित्य के समान शूद्रक को भी महामानव के रूप में अधिष्ठित किया गया है तथा इन पर स्वतन्त्र रचनायें प्रस्तुत की गई हैं। कथा सरित्सागर में इन्हें शोभावती का राजा बतलाया गया है जिनके १०० वर्ष की आयु प्राप्त करने के लिये एक ब्राह्मण ने उपकार के बदले आत्मवीर्य दे दी थी। वेदान्त पञ्चविंशतिका में भी यही कथा आई है। किन्तु उसमें इन्हें वर्धमान का राजा बतलाया गया है। दशकुमारचरित और अर्जुनसुन्दरी कथा में इनके अनेक जन्मों के महान कार्यों का वर्णन किया गया है। हर्षचरित में ध्वजोर के राजकुमार चन्द्रकेतु का इन्हें विरोधी बतलाया गया है। कादम्बरी इन्हें विदिशा का राजा बतलाती है। राजतरंगिणी ने इन्हें दृढ़ चरित्र का निदर्शन करा है और विक्रमादित्य का पूर्ववर्ती बतलाया है। इनके जीवन के विषय में कई स्वतन्त्र कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं जिनमें शूद्रकचरित (आख्यायिका) रामलसौमित्र लिखित शूद्रक कथा, पञ्चशिखलिखित शूद्रककथा (प्राकृत वाक्य) विक्रान्तशूद्रक (एक नाटक) इन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। इस विषय में कई प्रश्न सामने आते हैं—क्या ये सब शूद्रक एक ही व्यक्ति थे? क्या रचनाकार शूद्रक और नायक शूद्र अभिन्न व्यक्ति हैं? क्या शूद्रक कोई ऐतिहासिक पात्र हैं या केवल काल्पनिक? इन प्रश्नों का निश्चयात्मक उत्तर अभी तक साहित्य जगत को प्राप्त नहीं हो सका है।

नाटककार शूद्रक का परिचय मृच्छकटिक के आमुख में दिया गया है जिसका माराश यह है—‘शूद्रक नाम का एक परम तेजस्वी राजा हुआ जो अद्वितीय सौन्दर्य शाली होने के साथ ही द्विज मुख्य कवि था। ये वेद के विद्वान वैश्विक शास्त्र एवं अश्वविद्या के विशेषज्ञ तथा ये ही युद्ध में निरालस विरोध उत्साही, हाथियों के युद्ध में अधिक आनन्द लेने वाले थे। इन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी किया था और जब देखा कि पुत्र उत्पत्ति की पराजय पर पहुँच गया है तब उसे राज्य भार सौंपकर १०० वर्ष और १० दिन की आयु पूरी कर अग्नि समाधि ले ली। उन्होंने शूद्रक न मृच्छकटिक नाटक की रचना की।

इतिहास में इन गुणों से सम्मन्न इस नाम का कोई राजा दृष्टिगत नहीं होता। इस

वर्णन को देखकर इतना प्रभावित हो जाता है कि यह वर्णन स्वयं नाटककार का नहीं है और न इसमें शास्त्रानुगत इस परम्परा का स्वयं कवि ने पालन किया है कि आमुख में कवि अपना परिचय स्वयं देकर दर्शकों को रसास्वादन के लिये आकर्षित करे। इस वर्णन में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं- (१) इसमें प्रत्येक वाक्य के साथ किल इस शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ होता है सुन रक्खा है पता नहीं सही भी है या नहीं। (२) इनमें 'वभूव' इत्यादि परोक्ष भूत का प्रयोग किया गया है जिसका आशय है कि शूद्रक की सत्ता बहुत पहले की बात है। लेखक ने उन्हें देखा नहीं था और (३) राजा की अग्नि समाधि का वर्णन है। जब राजा ने अग्नि समाधि ले ही ली तब मरने के बाद इन श्लोकों को बनाने के लिये वह पुनर्जीवित हो ही नहीं सकता था। इससे इस बात में सन्देह रह ही नहीं जाता कि इस नाटक में प्रस्तावना में कवि का परिचय नहीं था उच्छिन्न हो गया था और किसी परवर्ती कवि या अभिनय के अधिष्ठाता ने इस कमी को दूर करने के लिये इन पद्यों को इस रचना में जोड़ दिया, साथ ही किल 'वभूव' इत्यादि शब्दों का प्रयोगकर और अग्निदाह की बात कहकर यह भी प्रकट कर दिया कि इस वर्णन की सच्चाई की ज़ुम्मेदारी वह नहीं लेना चाहता। इन पद्यों का लेखक स्वयं एक अच्छा कवि था और अपने समय की प्रसिद्धि को स्थायित्व देने के लिये उसने उस प्रसिद्धि को पद्यबद्ध कर नाटक के प्रारम्भ में जोड़ दिया। साथ ही यह भी कहा जा सकता है इस प्रसिद्धि में कुछ न कुछ सच्चाई अवश्य होगी क्योंकि इसका लेखक भी एक प्राचीन व्यक्ति ही था और हो सकता है कि मूलनाटक की रचना से अधिक समय का व्यवधान न हुआ हो।

निश्चित प्रमाण के अभाव में विद्वानों ने इनके व्यक्तित्व के विषय में अनेक कल्पनायें की हैं-

(१) शूद्रक नाम की विलक्षणता के कारण प्रो. कोनो और डा. स्लीट ने आन्ध्र के आभीर राजा शिवदत्त में शूद्रक के दर्शन किये हैं जिन्होंने आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा का उच्छेद किया था अथवा उनके पुत्र ईश्वर सेन ने उस वंश का विनाश किया था। उनकी इस कल्पना के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि मृच्छकटिक के पात्र आर्यक को गोपाल दासक कहना इस नाटक के कर्ता को शूद्रजाति का सिद्ध करता है। शूद्रक इस नाटक में आर्यक के रूप में विद्यमान है। (२) कुछ लोग आन्ध्र के शिशुक शिमुक या शियुक में शूद्रक को देखते हैं। (३) अवन्तिसुन्दरी कथा में इन्द्राणिगुप्त का शूद्रक कहा गया है। अतः कुछ लोगों ने इन्द्राणिगुप्त को ही मृच्छकटिक का कर्ता शूद्रक माना है। (४) पञ्चद्वली पाण्डेय ने आन्ध्र वंशीय पुलुमावि को शूद्रक माना है क्योंकि पुलुमावि ही इन्द्राणिगुप्त है। किन्तु ये सारी कपोल कल्पनायें ही हैं। मृच्छकटिक का कर्ता नाम से तो शूद्रक है किन्तु द्विजमुख्यतम तपोधन यज्ञकर्ता होने से ब्राह्मण सिद्ध होता है और समर व्यसनी होने से क्षत्रिय भी कहा जा सकता है। क्या उक्त राजा लोग हीन ग्रन्थि से पीड़ित

ये इसलिये उन्होंने उपनाम नहीं लिखा। किन्तु शूद्रक कहने से तो वह हीन ग्रन्थ और उद्भाग्य हो गई। कुछ लोगों ने यह भी माना है कि यह एक ऐसी रचना है जिसमें समाज और राजवर्ग की बुद्धियों की खुलकर अभिव्यक्ति की गई है। अतः राजदण्ड के मय से लेखक ने अपना नाम प्रकट नहीं किया। किन्तु प्रस्तावना और अनेक कथानकों से तो ज्ञात होता है कि वह स्वयं राजा था। अतः राजदण्ड की बात कहना सर्वथा निरर्थक है।

कौथ ने शूद्रक का व्यक्तित्व सर्वथा काल्पनिक माना है और कहा है कि किसी परवर्ती कवि ने भास के दक्षिणावृत्त के कथानक में आर्यक के राजविद्रोह की कथा मिलाकर मृच्छकटिक का रूप खड़ा कर दिया। उस लेखक ने अपना नाम छिपाकर इसे शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। कुछ लोगों ने माना कि लेखक ने अपना नाम इसलिये छिपाया क्योंकि वह अपनी रचना को अधिक सम्मानित देखना चाहता था। किन्तु यह मान्यता भी अधिक विश्वसनीय नहीं है क्योंकि शूद्रका का नाम अनेक रचनाओं में आया है और स्कन्द पुराण जैसी पौराणिक और राजतरंगिणी जैसी ऐतिहासिक रचनाओं में भी ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में उनका उल्लेख किया गया है। अतः उन्हें सर्वांश में काल्पनिक नहीं माना जा सकता। यद्यपि संस्कृत साहित्य में अपनी कृति दूसरे के नाम से प्रसिद्ध करने के उदाहरण कम तो नहीं हैं किन्तु एक इतिहास सम्मत व्यक्ति के नाम पर इतनी महत्वपूर्ण रचना समर्पित कर देना आश्चर्यजनक अवश्य है।

कुछ विचारकों ने कल्पना की है कि यह नाटक भास का लिखा हुआ है तथा कतिपय अन्य लोग इसका रचनाकार दण्डी को मानते हैं। किन्तु एक तो भास और दण्डी दोनों में कोई भी राजा नहीं था, दूसरे जब इन दोनों रचनाकारों ने अपनी कृतियाँ अपने नाम से ही प्रसिद्ध कीं तब केवल इस एक रचना को अन्य के नाम पर प्रसिद्ध करने की क्या तुक थी यह समझ में नहीं आता।

शूद्रक के दशकाल का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। मृच्छकटिक का परिवेश उज्जैन के आस पास का है किन्तु शब्दप्रयोग पर दक्षिण का प्रभाव अधिक लक्षित होता है। दुर्गादेवी को महादेवी कहा गया है। दक्षिणात्य और कर्णाटकलह और बला का भी उल्लेख प्राप्त होता है। चन्द्रनक स्वयं को दक्षिणात्य बतलाता है और दक्षिणी भाषाओं का नाम भी लेता है। प्रथम अंक में पैसे के अर्थ में नाणक शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी आधार पर तैलंग ने इसे महागुप्त निकासी बतलाया है। ये सब बातें इनका आन्ध्र से भी सम्बन्ध हो।

शूद्र के काल के विषय में मतभेद है। नाट्यकला के पावर्ती सिद्धान्तों से प्रस्तुत रचनाकार परिचित नहीं हैं। मृच्छकटिक की भाषा भास की भाषा के समान सादगी लिये हुए है। प्राकृत का प्रयोग भी पावर्ती रचनाओं की प्राकृत से भिन्न है। ये भाषाएँ प्राकृत के नियमों का पालन नहीं करतीं तथा प्राकृत भाषाओं की प्रथम अवस्था की मृच्छक है। कालिदास ने सौमित्र को अच्छे नाटककारों में गणित किया है। राजशेखर ने

सौमिल को रामिल के साथ शूद्रक कथाकार कहा है। इसका अर्थ यह है कि शूद्रक कालिदास और सौमिल से भी पहले हुये थे। नाटक में विट और शकार का प्रयोग इसकी प्राचीनता का परिचायक है। किन्तु इसके प्रतिकूल कीथ इत्यादि कई पाश्चात्य विद्वान इस नाटक में प्राचीनता के लक्षणों के विषय में कहते हैं कि मृच्छकटिक के रचनाकार ने भास की कला का पूर्ण सफलता के साथ अनुकरण किया था। जहाँ तक सौमिल की शूद्रक कथा का सम्बन्ध है— शूद्रक कई हुये हैं या कालिदास ने जिन सौमिल का उल्लेख किया है वे दूसरे सौमिल थे। शूद्रक कथाकार रामिलसौमिल दो माने जाते हैं जिनमें रामिल प्रथम होने के कारण प्रधान है। यदि कालिदास का मन्तव्य उन्हीं सौमिल से होता तो निश्चित रूप से कालिदास ने सौमिल के साथ रामिल का भी नाम लिया होता या केवल रामिल का ही नाम लिया होता क्योंकि उनके साथ सौमिल गौण है। कालिदास पर मृच्छकटिक का कोई प्रभाव नहीं है और इसमें समाज की गिरती हुई जिस परिस्थिति का चित्रण किया गया है वह विक्रमादित्य और हर्ष के मध्य की संस्कृति है जिसमें बौद्ध धर्म का हास और ब्राह्मण धर्म का विकास हुआ था। अतः ये लोग शूद्रक का समय ६ठी शताब्दी का अन्त या ७ वीं शताब्दी का प्रारम्भ मानते हैं।

ज्ञात होता है कि कालिदास के बाद के किसी कवि ने भास को विशेष अध्ययन का विषय बनाया। उसे 'दरिद्रचारुदत्तम्' अपूर्ण दिखलाई दिया। अतः भास की शैली का ही अनुसरण कर उसमें अपने समय के परिवेश और आर्थिक की राजनीति को जोड़कर नया नाटक तैयार कर दिया। अतः नाटक की नवीनता का प्रारम्भ वसन्तसेना की उदारता से होता है। जिसमें वह चारुदत्त के पुत्र द्वारा मिट्टी की गाड़ी के स्थान पर सोने की गाड़ी के लिये आग्रह करने पर सोने की गाड़ी बनवाने के लिये अपने सारे जेवर उतार कर दे देती है। इसी घटना के आधार पर नाटक का नामकरण किया गया है और इसकी भासकालिकता प्रमाणित करने के लिये तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्ति शूद्रक को दूढ़ निकाला और उसी के नाम पर इस कृति को प्रसारित कर दिया। यह भी असम्भव नहीं है कि जिस कवि ने यह पूर्ति की उसका भी नाम शूद्रक रहा हो। इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुसन्धान की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

विभिन्न उद्धरणों के आधार पर कृष्णमाचार्य ने शूद्रक के जीवनवृत्त का भी कुछ परिचय दिया है जो इस प्रकार है— इन्द्राणीगुप्त नाम से प्रसिद्ध शूद्रक अश्मक प्रदेश के ब्राह्मणकुमार थे जिनका बचपन राजकुमार स्वाति (शिवस्वाति) के साथ बालक्रीड़ा में व्यतीत हुआ था। बालक्रीड़ा में ही उनमें आपस में विरोध हो गया। एक बार एक बौद्धभिक्षु उन्हें वहकाकर एक गुफा में ले गया और उनकी हत्या करने की चेष्टा की। किन्तु शूद्रक ने उन्हें अधिकार में ले लिया और निकल गये तथा मथुरा, उज्जैन, विदिशा इत्यादि अनेक नगरों में घूमते हुये उज्जैन पहुँचकर और वहाँ के राजा को पराजित कर शासक बन बैठे। बचपन के साहचर्य के कारण स्वाति को क्षमादान कर दिया। एक सम्राट और एक महाकवि

होने के नाते शूद्रक का नाम परम्परागत उच्चकोटि की विभूतियों में लिया जाता है। उनके अवदान साहासक कार्य विक्रमादित्य के जैसे ही हैं।

शूद्रक कथा- (नाक) राजशेखर ने रामिल और सोमिल की लिखी शूद्रक कथा का उल्लेख किया है। उनके कथन के अनुसार शूद्रककथा अर्धनारीश्वर भगवान शंकर का प्रतिरूप है। कीथ के अनुसार अर्धनारीश्वर का अर्थ है शृङ्गार और वीर दोनों की प्रधानता देकर लिखा गया काव्य। यह काव्य सर्वथा सुप्त हो गया है और यह भी पता नहीं चलता कि यह दृश्य काव्य था या श्रव्य काव्य। कालिदास ने भालविक्रान्तिमित्र की प्रस्तावना में भास और कविपुत्र के साथ सोमिल का भी उल्लेख किया है। कालिदास ने कहा है- 'इन उच्चकोटि के नाटककारों के होते हुये मुझ नौसिखिया कवि की रचना का आदर बौन करेगा?' इसका आशय यह है कि सोमिल कोई महान कवि थे जिनका गुणगान कालिदास जैसे कलाकार को भी करना पड़ा। नाटक की प्रस्तावना में उक्त कथन है, इससे कल्पना की जा सकती है कि सोमिल की यह कृति नाटक ही होगी। अवन्तिसुन्दरी कथा में शूद्रक के अनेक जन्मों की कई कथाएँ आ गई हैं। अब उन कथानकों को मिलाकर परिकथा की सज़ा दी जा सकती है। किन्तु रामिल सोमिल की शूद्रक कथा का काव्यरूप स्थिर करने की दिशा में साहित्य जगत सर्वथा अन्यकार में है। रामिल सोमिल के नाम पर दो एक पद्य प्राप्त होते हैं जो वस्तुतः अच्छे हैं। भोज के शृङ्गार प्रकाश में शूद्रककथा की एक घटना का उल्लेख किया गया है जिसमें नायिका और सन्देश वाहक तोते का उल्लेख है। हो सकता है नायिका शूद्रक की प्रेमिका हो। हरिमती वृत्तान्त से भोजराज ने एक श्राकृत गद्यखण्ड भी उद्धृत किया है जो एक तो अपूर्ण है दूसरे उसका कोई अर्थ समझ में नहीं आता। यह सभी कुछ अनुसन्धान सापेक्ष है। कहना न होगा कालिदास द्वारा उल्लिखित कवियों (नाटककारों) में भास भी बहुत समय तक अज्ञात अवस्था में पड़े रहे। शेष दोनों (कविपुत्र और सोमिल) की कृतियों को अभी तक उपलब्ध नहीं किया जा सका।

शूरमायूरम्- (नाक) नारायण शास्त्री (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें स्वमिर्कर्तृकेय द्वारा अमुरों पर विजय कर शूर नामक दानव राज को मयूर के रूप में परिणत कर उसे अपनी सवारी बना लेने की रूपायित किया गया है। इसी प्रसंग में कर्तृकेय का विवाह इन्द्र की पुत्री देवसेना से होता है। इसमें छोटे मोंट गैप छन्दों का प्रयोग किया गया है और चरित्र चित्रण अच्छा बन पड़े हैं।

प्रधान रस वीर है फिर भी रास्य का अभाव नहीं है यद्यपि विद्रुष्य का सन्नावेश नहीं किया गया है।

शूर्पणखा- (नापा) रामायण की प्रमुख पात्रों में एक। इसका उद्घाटन कई नाटकों में नवीन दुर्गिका के साथ किया गया है-

(१) महावीर धर्म- (दे) में मात्स्यकान मन्त्री के निर्देश से वह कैकेयी की दास्य

मन्यरा का रूप धारण कर कैकेयी का एक जाली पत्र मिथिला में राम को देती है जिसके आधार पर राम का वनगमन हुआ।

(२) अनर्थ राखव- (दे) में वह माल्यवान को सीता स्वयंवर, रामसीता सयोग और परशुराम के मिथिला पहुंच जाने का समाचार देती है और माल्यवान के परामर्श से मन्यरा का रूप धारण कर राम और सीता के वन गमन में कारण बनती है।

(३) बालरामायण- (दे) में सीता के साथ विवाह न हो सकने से रावण दुखी है और उन्मत्त होकर वृक्षों इत्यादि में सीता की खोज करता फिरता है। शूर्पणखा राम पर आक्रमण कर देती है और आहत हो जाती है तब रावण को पुरुषोचित कर्म के लिये प्रोत्साहन देती है।

शूर्पणखाभिसार- (नाक) वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य लिखित ५ दृश्यों का संगीत नाट्य। इसमें नृत्य गीतों की अधिकता है। प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। शूर्पणखा के प्रणयनिवेदन और लक्ष्मण द्वारा उसे विरूप करने का कथानक लेकर रचना की गई है।

संस्कृत प्रतिभा में इसका प्रकारान हो चुका है।

शृङ्गार कोश- (नाक) इस नाम के दो भाग प्राप्त होते हैं-

(१) गीर्वाणेश्वर दीक्षित- का लिखा हुआ, तबौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में स VIII ४६४९ और मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में स १९४९ में प्राप्त किया जा सकता है।

(२) अभिनव कालिदास- लिखित भाग। इसे शृङ्गार-शेखर की भी सज्ञा दी जाती है। उल्लेख- मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के ट्रायेनियल कैटेलाग की स III ३८९१ पर किया गया है।

शृङ्गार चन्द्रिका- (नाक) श्रीनिवास (वत्स गोत्रीय) (दे श्रीनिवास ८) द्वारा लिखित भाग। कैटेलागस कैटेलागोरम स II १५७ और मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैथुलिक्रिट कैटेलाग III २९४९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

शृङ्गार जीवन- (नाक) कौशिक गोत्रीय वरद लिखित भाग। कैटेलागस कैटेलागोरम स I ६६१ में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) शृङ्गारतरंगिणी- (नाक) श्रीनिवासाचार्य ईच्चमवाडि (दे) लिखित भाग।

(२) शृङ्गारतरंगिणी- (नाक) रामभद्र (दे) लिखित एक भाग। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १६६० पर किया गया है।

(३) शृङ्गारतरंगिणी- (नाक) वेङ्कटाचार्य लिखित भाग। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम ११२ पर किया गया है।

(४) शृङ्गारतरंगिणी- (नाक) यह जगन्नाथ (४) (दे) लिखित एक भाग है।

(१) शङ्करतिलक- (नाक) यह साहित्यदर्पण एवं भाव प्रकाशन में प्रस्थान उपरूपक के उदाहरण के रूप में उल्लिखित नाटयवृत्ति है। यह न तो अभी तक उपलब्ध हुई है और न इन उल्लेखों के अतिरिक्त इसके विषय में कुछ ज्ञात ही है।

(२) शङ्करतिलक- (नाक) अविनाशी स्वामी लिखित भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि विषयक विवरणात्मक सूचीपत्र की स २२१ ८५४० पर इसका विवरण दिया गया है। इसका अभिनय १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्पन्न मैसूर के राजा सागराज के राज्यकाल में श्री रंगपट्टम के निकट वरदराजपुर में हुआ था।

(३) शङ्करतिलक- (नाक) रामभद्र दीक्षित (दे) लिखित भाण। इसका दूसरा नाम अय्याभाण (दे) भी है। इस भाण की रचना मद्रास की मीनाक्षी देवी के विवाहोत्सव में खेलने के निमित्त हुआ था। इसका नायक भुजगेश्वर है जो प्रेयसी हेमाङ्गी के वियोग में दुखी हो रहा है। उसे आरवासन मिला है कि घर लौटने पर उसकी प्रेमिका उसे मिल आयेगी। मुहल्ले में घूमता फिरता है और आकाश भाषित के द्वारा देवताओं से परे ऐन्द्रजाति की पर्वतों इत्यादि का विस्तार के साथ वर्णन करता है। उसे उसकी प्रेमिका हेमाङ्गी पुन मिल जाती है। कवि ने इसकी रचना अपने मित्र वरदाचार्य के लिये वसन्ततिलक भाण के अनुकरण पर की थी। इसका प्रकाशन मद्रास से हो गया था।

(४) शङ्करतिलक- (नाक) यह एक भाण है जिसका उल्लेख तजौर के राज्याश्रित कवियों की रचनाओं के अन्तर्गत किया गया है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

शङ्करदीपक- (नाक) एक भाण जिसके लेखक हैं राघवाचार्य विन्नमूरि (दे)। इसकी नायिका शङ्कराचन्द्रिका का बेट राजशेखर के साथ समगम वर्णित है जिसमें अनगशेखर साहयता देता है। काञ्चीपुरी में श्रीदेवराज की यात्रा के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था।

शङ्करदीपिका- (नाक) यह एक भाण है जिसकी रचना वेङ्कटाध्वरीण (दे) ने की थी। कैटेलगस कैटेलगोरस स ११६१ पर इसका उल्लेख किया गया है।

शङ्करनारदीयम्- (नाक) मरुतिद्वशास्त्री (दे) लिखित प्रदसन। देवी भागवत की नारद कथा को लेकर इसकी रचना हुई है जिसमें यथाचित परिवर्तन भी किये गये हैं। इसमें सन्ने गोत और एकोक्तिरुपा सम्मिलित हैं। इसकी रचना १९३८ में की गई थी।

शङ्करभूषण- (नाक) वामन भट्टवाण (दे) लिखित भाण। इसका नायक विलास रेंछर और नायिका अनगमजरी है। इसकी रचना १५वीं शताब्दी के अन्त या १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई थी। नायक नायिका स मिलने उसक घर जाता है। वर गणिकाओं के मुरत्तन में घूमता है। वह आकाश भाषित करता है। भणों के युद्ध मुक्कवाजी मुगों

की लड़ाई, प्रतिद्वन्दियों के झगड़े इत्यादि का वर्णन करता है। इसमें दिन के विभिन्नकालों और मदनमहोत्सव का भी वर्णन किया गया है। इसकी पद्धति अय्याभाण (दे.) के प्रतिरूप है।

कवि को यह प्रारम्भिक रचना है जब कवि विजय नगर में रह रहा था और जहाँ उसने हरिहर का साम्राज्य वैभव देखा था। यह भाण विरूपाक्ष के उत्सव के अवसर पर अभिनय के लिये लिखा गया था। सगीतात्मक पद्यों में इसमें तत्कालीन नागरिक जीवन की अभिजात अवस्था का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन काव्यमाला संस्कृत संस्करण बम्बई तथा मद्रास से हुआ है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III १३७ में हुआ है।

(१) शृङ्गारमञ्जरी- (नाकू) अज्ञातनामा कवि का लिखा भाण। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग ट्रायेनियल कैटेलाग V ६३०६ पर किया गया है।

(२) शृङ्गारमञ्जरी- (नाकू) विश्वनाथ लिखित भाण। इसका उल्लेख मद्रास के ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में स II २६१४ पर किया है।

(३) शृङ्गारमञ्जरी- (नाकू) रतिकर लिखित भाण। इसका सकलन मद्रास के ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट स VI ७१४९ पर किया गया है।

(४) शृङ्गारमञ्जरी- (नाकू) गोपालराय लिखित भाण जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स II १५८ पर किया गया है।

इसी नाम के कतिपय अन्य निम्नलिखित भाणों का भी उल्लेख किया जाता है।

(५) तजौर नरेश शाह जी लिखित। इसका विषय है साहित्य और रतिशास्त्र।

(६) राममनोहर लिखित।

(७) मानकवि लिखित।

(८) केरल वर्मा लिखित- ये ट्रावन्कोर के राजा थे।

(९) अवधान सरस्वती- (दे.) लिखित। तजौर के राजपुस्तकालय में VIII ३५९९ पर संकलित।

(१०) शृङ्गारमञ्जरी- (नाकू) शारदातनय ने उपरूपकों में भाण नामक एक नया प्रकार माना है जो प्रधान रूपकों के भाण से भिन्न प्रकार का है। इसके उदाहरण के रूप में इस कृति का उल्लेख किया है जो अब प्राप्त नहीं होती।

शृङ्गार मञ्जरी- (नाकू) विश्वेश्वर पाण्डेय (दे.) लिखित सष्टक। इसका समय १८वीं शताब्दी है। इसकी रचना प्राकृत भाषा में कि गई थी। लेखक की दूसरी कृति

अलकार कौस्तुभ में इसका उल्लेख किया गया है। पेटर्सन द्वारा बम्बई में की गई संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट स IV ३१ एवं काव्यमाला VIII ५२ पर इसका उल्लेख है। बाबू लालशुक्ल द्वारा बनारस से इसका प्रकाशन भी कर दिया गया है।

शुद्धारमञ्जरीशाहजीय- (नाकृ) यह अम्मादीधित लिखित नाटक है इसमें शाहजी के जीवन और इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। शाहजी ने स्वप्न में एक सुन्दरी को देखा है और जागकर उसका चित्र बनाया है। ज्योतिषियों ने कहा कि यह सिंहल की राजकुमारी शुद्धार मञ्जरी है। जब सिंहल पर सिन्दुराज का आक्रमण होता है तब शाहजी सिंहल की रक्षा करने पहुँच जाते हैं जहाँ नायक नायिका का प्रेम पल्लवित हो जाता है। किन्तु रानी कुछ विघ्न डाल देती है। पर उसे मना लिया जाता है और दोनों का प्रणय बन्धन निर्विघ्न रूप में समाप्त हो जाता है।

इसका अभिनय तिरुवैयर (तिरुवदी) में चैत्रोत्सव पर किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग के ट्रायेनिशल् कैटेलाग III २५७५ और कैटेलागस कैटेलागोरम II १५८ में इसका उल्लेख किया गया है।

शुद्धार रत्नाकर- (नाकृ) यह सुन्दर कालाक्षर्य लिखित एक भाण है। जिसका उल्लेख एडिंगफ के प्राचीन संस्कृत साहित्य अभिलेख स १८८ पर पाया जाता है।

शुद्धाररसभूद्धार- (नाकृ) एक भाण, इसकी रचना इन्द्रगन्धि कोण्डसूरि ने की थी। इसका प्रथम अभिनय श्री शैल में मल्लिकार्जुन के उत्सव में किया गया था। मद्रास लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट स III ३१७५ पर इसका सबलन प्राप्त किया जा सकता है।

शुद्धार रसोदय- (नाकृ) एक भाण जो राम कवि (दे) का लिखा हुआ है। बम्बई से इसका प्रकाशन हो चुका है। इसका विवरण ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के विवरणात्मक सूचीपर स XXI ८५३९ पर दिया हुआ है।

शुद्धारराज- (नाकृ) गोपालराय लिखित एक भाण जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम II १६० पर किया गया है।

शुद्धार लीलातिलक- (नाकृ) दे लीलातिलक।

शुद्धार वाटिका- (नाकृ) इसका दूसरा नाम 'शुद्धार वापिका' भी है। इसकी रचना विश्वनाथ भट्ट ने की थी। (दे (४) विश्वनाथ) इसमें नायक उज्जैन के राजा चन्द्रवर्धन और नायिका चम्पावती वी राजकुमारी बान्तिमती के एक दूसरे के प्रति प्रेम की नाट्य वस्तु के रूप में अपनाया गया है। दोनों एक दूसरे को स्वप्न में देखकर हृदय दे बैठते हैं। जिसका पर्यवसान विवाह बन्धन में होता है। राजसभा की कविगोष्ठी का अवन क्रिया गया है। आमेर के राजा रामसिंह की राजसभा में इसका प्रथम अभिनय किया गया था इसमें रामसिंह की प्रार्थना का भी समावेश है। ऐतिहासिक और संस्कृतिक दृष्टि से

यह रचना महत्वपूर्ण है।

कैटेलागस कैटेलागोस II ६६१ और II १५८ पर इसका उल्लेख है। इण्डिया आफिस लायब्रेरी में एगलिंग द्वारा सकलित पाण्डुलिपियों में स II १५८ पर इसका विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है।

शृङ्गारविलसित- (नाकू) यह नारायण (१) (दे) लिखित भाण है। इसे मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्त किया जा सकता है।

शृङ्गारविलास- (नाकू) यह साम्बशिव लिखित भाण है जिसका सकलन मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में किया गया है तथा मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में स IV ४९२५ पर इसका उल्लेख है। दोनों प्रतियों में आश्रयदाताओं का नाम पृथक् पृथक् है। मैसूर की प्रति में आश्रयदाता महाराज कृष्ण हैं और मद्रास की प्रति में जमोरिन मान विक्रम है।

शृङ्गाशृङ्गारक- (नाकू) रघुनाथ लिखित भाण। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोस स II १५८ पर किया गया है।

(१) **शृङ्गारशेखर-** (नाकू) इसके रचनाकार श्रीवत्सगोत्रीय रामानुज हैं। इसका उल्लेख मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में स VI ७४०३ पर किया गया है।

(२) **शृङ्गारशेखर-** (नाकू) दे शृङ्गार कोश (२)।

(३) **शृङ्गारशेखर-** (नाकू) इस नाम की एक अन्य कृति सुन्दरेश शर्मा की लिखी प्राप्त होती है। यह हास्यप्रधान रचना है इसका प्रथम अभिनय तजौर के बृहदीश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था।

शृङ्गार सञ्जीवन- (नाकू) एक भाण- इसके लेखक हैं भरद्वाज गोत्रीय शठजित्कवि (दे)। इसकी प्रति मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में स III ३०४ पर प्राप्त की जा सकती है। इस नाटक का प्रथम अभिनय एलौर के शान्त गोपाल महोत्सव में किया गया था और राजवेङ्कटगोपाल ने इसे आश्रय दिया था।

(१) **शृङ्गार सर्वस्व-** (नाकू) भूमिनाथ उपनाम नल्लादीक्षित लिखित भाण। नायक अनङ्गशेखर प्रियतमा से विछुड गया है। उसी समय एक हाथी आ जाता है जिससे गली के लोग आतङ्कित हैं और उसी भाग दौड में उसे अपनी प्रियतमा मिल जाती है। अनङ्गशेखर प्रियतमा की प्राप्ति के लिये शिव की प्रार्थना कर रहा है। अतः वह समझता है कि शिव ने प्रसन्न होकर गणेश को भेजकर उसकी सहायता की। अतः वह हाथी की पूजा करता है।

इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ था। तजौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की सूची VIII ३६०० पर इसकी पाण्डुलिपि का उल्लेख किया गया है।

(२) शृङ्गारसर्वस्व- (नाक) यह कौशिक नल्लबुप (दे) का लिखा भाण है। इसका उल्लेख तजौर की पैलेस लायब्रेरी की पाण्डुलिपि सूची स VIII ३६०९ पर किया गया है।

(३) शृङ्गारसर्वस्व- (नाक) यह अनन्त नारायण के पुत्र एव सुब्रह्मण्य के भाई स्वामी का लिखा एक भाण है। त्रिचनापल्ली में इसका अभिनय किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग स XXI ८५४२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(४) शृङ्गारसर्वस्व- (नाक) यह एक भाण है जिसकी रचना राजवूडामणि दीक्षित ने की थी। इसका अभिनय विदम्बरम् में उस समय किया गया था जब महाराज रघुनाथ वहा की यात्रा करने गये थे। इसका उल्लेख काव्यदर्पण में किया गया था।

(५) शृङ्गारसर्वस्व- (नाक) यह एक भाण है जिसके लेखक हैं भरद्वाजगोत्रीय वेदान्ताचार्य। इनकी प्रति तजौर की पैलेस लायब्रेरी की पाण्डुलिपि सूची स VIII ३६११ पर प्राप्त की जा सकती है। इसका प्रथम अभिनय तिरुपति में किया गया था।

(६) शृङ्गारसर्वस्व- (नाक) इस रचना का समावेश तजौर राजघराने के आश्रित कवियों के साहित्य में किया गया है। इसके कर्ता का पता नहीं है।

शृङ्गार सुधाकर- (नाक) रामवर्मवर्धियुवराजलिखित भाण। इसके नायक माधव की अनेक वेश्याओं से प्रणय ब्रीडा का उपादान किया गया है। इन वेश्याओं में हरिलालिका, मन्दार वल्ली, चम्पकलता, सुमनोवती, सीमन्तिनी, वकुलमञ्जरी आदि प्रमुख हैं। इसका प्रथम अभिनय त्रिवेन्द्रम् में पद्मनाभ चैत्रोत्सव में हुआ था। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

शृङ्गारसुधावर्ण- (नाक) कोराडा गोत्रीय रामचन्द्र (दे) (४) रामचन्द्र का लिखा भाण। मुसली पट्टम् से इसका प्रकाशन हुआ है। इसका अभिनय भुद्रायलम् में राममन्दिर के वसन्तोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था। इसमें विट भुजगशेखर की दिनचर्या का आखों देखा हाल है।

शृङ्गारसुन्दर- (नाक) इस भाण के लेखक हैं ईश्वर शर्मा (दे) इसका उल्लेख ट्रावन्कोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में स ७९ पर किया गया है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

शृङ्गारस्तवक- (नाक) यह एक भाण है जिसके लेखक हैं हारीनगोत्रीय नृसिंह यवि। यह भाण तजौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में खण्ड VIII स ३६०७ पर उपलब्ध किया जा सकता है।

शेखरक- (नापा) नागानन्द ने जीमूतवाहन का विट जो विदुष्य के माध हास्य रूप की सृष्टि करता है।

शेषकृष्ण- (नाका) इनका समय अकबर बादशाह के राज्यकाल का अन्तिम भाग है। इन्हें कृष्णकवि भी कहा जाता है। इनके पिता शेषनरसिंह (दे) एक अच्छे सस्कृत के विद्वान थे और उनके आश्रय में ही भट्टोजिदीक्षित और नागेशभट्ट जैसे प्रतिष्ठित वैयाकरणों की रचनार्ये सामने आई थी। शेषकृष्ण के आश्रयदाता अकबर के वित्तमन्त्री टोडरमल के पुत्र गोवर्धनाधिकारी थे। इनकी कई रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें कसवध (दे) इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है। इसके अतिरिक्त इनके तीन नाटक और प्रकाश में आये हैं- मुषारिविजय (दे) मुक्तावरीत (दे) और सत्यभामा परिणय (दे) हो सकता है शर्मिष्ठावयाति (दे) कृति इन्हीं की रचना हो। जिसका अक के उदाहरण के रूप में उल्लेख किया गया है।

नाटकों के अतिरिक्त इनके तीन चम्पू ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं- पारिजात हरण, उषा परिणय और सत्यभामा विलास। कहा जाता है इन्होंने क्रियागोपन रामायण भी लिखी थी जिसके पद्यों में गुप्त क्रिया को दूढ़ निकालना पड़ता था।

शेषगिरि- (नाका) ये मैसूर के महाराजा कृष्ण राज कृष्णराव ओडयार के शिक्षक थे। इनका लिखा कल्पनाकल्पक (दे) नाटक और शारदातिलक (दे) भाग प्राप्त होते हैं।

शेषगोविन्द- (नाका) दे गोविन्द।

शेषचिन्तामणि- (नाका) ये प्रसिद्ध वैयाकरण और दार्शनिक विद्वान तथा बनारस में व्याकरण शिक्षा के अधिष्ठाता शेषनरसिंह (दे) के पुत्र थे। इनका लिखा रक्मिणी हरण (दे) नाटक प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं जिनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १७७ पर किया गया है।

शेषाचार्य- (नाका) मदन विजय भाग के लेखक। इनका जन्म कालहस्ती के विक्किराल परिवार में हुआ था। ये वेल्लोर ये सीएस मिशन कालेज के सस्कृत के अध्यापक थे।

शेषाद्रि- (नाका) ये बाज्जीवरम के निवासी थे और इन्होंने रामविलास नायक एक काव्य लिखा था। इनके तीन नाटकों का पता चलता है। (१) मशालसापरिणय जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ स ४२६ पर किया गया है, (२) पार्वतीस्वयंवर इसका भी उल्लेख उसी में स ३३६ पर किया गया है, और (३) सीताविवाह तञ्जौर की पैलेस लायब्रेरी के कैटेलाग में खण्ड ८ स ३५२४ में किया गया है।

शैलदीक्षातार- (नाका) १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इन्होंने भ्रान्तिविलास नाम से सेक्सपियर के कमेडी आप एर्स का सस्कृत में अनुवाद किया था।

शैव कापालिक- (नापा) भक्तविलास (दे) का नायक।

शोभावती- (नाक) नाययणशास्त्री १ लिखित २ अंकों का नाटक।

शौचल- (नापा) अनर्घराघव में रावण का दूत जो सीता से विवाह के लिये रावण का प्रस्ताव लेकर जनकपुर आया था। मनुष्य बदने की परीक्षा देना रावण के

स्वाभिमान क प्रतिकूल था अतः शौकल ने उसे अस्वीकार कर दिया। वह रावण की महता का चञ्चल करके ही विशाह का प्रस्ताव स्वीकार करा लेना चाहता था।

श्यामवर्ण द्विवेदी- (नाका) २०वीं शताब्दी के उत्तर प्रदेश के कवि एवं नाटककार। इनका लिखा शिवाभ्युदयम् नाटक प्रकाश में आया है। इनकी दूसरी रचनायें हैं विशाल भारतम् और व्युत्पत्तिविनोद।

श्यामिलक- (नाका) चतुर्भाणी (दे) के एक नाटक 'पादताडितक' के लेखक। ये ईश्वरदत्त या वीरेश्वर दत्त के पुत्र थे और स्वयं को इन्होंने औदीच्य कहा है। ईश्वरदत्त (दे) चतुर्भाणी के एक लेखक भी हैं। क्या उनसे इनका पिता पुत्र का सम्बन्ध था? चतुर्भाणी के लेखकों में ये ही एक मात्र लेखक हैं जिनका कृतित्व प्रामाणिक है। इन्होंने पादताडितक की पुष्पिका में अपने कृतित्व का उल्लेख किया है।

श्येनदूतम्- (नाक) नागयण शास्त्री (१) (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक।

श्रद्धा- (नापा) प्रबोधचन्द्रादय (प्रतीक नाटक) में देवर्षि का एक प्रमुख पात्र। यह धर्म के साथ विवेक और उपनिषद् का मेल कराने के लिये प्रयत्न कर रही है। वह कुछ समय के लिये अज्ञातवास में चली जाती है जबकि उसकी पुत्री शान्ति उसकी खोज में लगी है। अनेक व्यक्तियों ने कल्पित श्रद्धायें बना ली हैं किन्तु वे सब सच्ची श्रद्धायें नहीं हैं। शान्ति उन्हें अपनी मा नहीं मानती। अन्त में श्रद्धा मिल जाती है। उसे अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा है। महाभारत तो उसे समाप्त कर देने पर ही तुली थी। देवपथ की विजय के साथ उसकी पुत्री शान्ति भी उसे मिल जाती है।

श्रमण- (नापा) शशिपुत्र प्रकरण (दे) का एक पात्र है। यह बुद्ध शिष्य कौण्डिन्य के साथ विवाद में भाग लेता है। इसकी भाषा संस्कृत है।

श्रवणा- (नापा) अनर्पराधव (दे) में यह एक तापसी है जो जामवन्त से वार्तालाप करती है। इस वार्तालाप से राम के वन में पहुँचने तक के कार्यों का वर्णन है। वह राम के स्वागत का स्वयं प्रबन्ध करती है और सुग्रीव को भी राम के स्वागत की प्रेरणा देती है।

(१) श्रीकण्ठ- (नाका) दे भवभूति।

(२) श्रीकण्ठ- (नाका) बन्धुर्धर्षण भाग के लेखक। ये काशी के निवासी तथा एकाग्रनाथ के उपासक थे। इन्होंने अपने पिता का निर्देश कलियुग का कालिदास नाम म किया है पिता का वास्तविक नाम नहीं लिखा। इनके पिता का लिखा एक भाग शृङ्गार राजा या शृङ्गार कोश नाम से जान होता है। मातृविकाग्निमित्र की इनकी लिखी टीका भी जान जाती है।

(३) श्रीकण्ठ- (नञ्जुड) य आत्रेयगङ्गावीय कवि एवं नाटककार थे। इनके लिखे कर्त्तव्यमतिपारा और मदनमहात्म्य ये दो भाग प्रकाश में आये हैं। इनका लिखा अधिनव

भारत भी बतलाया जाता है। ये बाल व्याघ्रपुर के रहने वाले थे। इन्होंने चिदम्बरकवि को अपना गुरु बतलाया है। इससे ज्ञात होता है इनका समय १६वीं १७वीं शताब्दी है। इनके पिता का नाम सामयार्थ था।

श्रीकान्तगण- (नाका) ये मथुरा निवासी १८वीं शताब्दी के कवि थे। इनका लिखा दो अकों का श्रीकृष्णरहस्य (दे) प्रकाशित हुआ है।

श्रीकृष्ण- (नापा) भगवान् कृष्ण विषयक कृष्णपाक सन्दर्भों के अन्तर्गत देखिये।

श्रीकृष्ण- (नाका) इनका लिखा कन्दर्प दपं नामक भाण प्राप्त होता है। मैसूर की संस्कृत लायब्रेरी के संस्कृतपाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलागस में १२वीं सख्या पर इसका उल्लेख किया गया है।

श्रीकृष्ण- (नाका) दे विक्रान्तराववीय।

श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयम्- (नाक) महामहोपाध्याय शङ्करताल लिखित ५ अकों का शिवपक्ति विषयक नाटक। इसमें कुटुम्ब में सहयोग और सद्भावना का अच्छा निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण की पत्नी जाम्बवती ने कृष्ण से प्रार्थना की है कि उनकी सभी पत्नियों के समान सख्या में पुत्र उत्पन्न हों। कृष्ण उसकी पूर्ति के लिये शिव की आराधना करते हैं और शिव वरदान देते हैं कि सभी पत्नियों में प्रत्येक को १० पुत्र और एक पुत्री प्राप्त होगी। पर में पुत्रों के जन्म पर आनन्द मनाया जा रहा है कि रुक्मिणी के पुत्र का शम्बरसुर अपहरण कर लेता है। इसका शोक छा जाता है। जाम्बवती के पुत्र सम्ब का विवाह होने वाला है किन्तु जाम्बवती उस उत्सव में शामिल नहीं होती। क्योंकि रुक्मिणी के पुत्र के अपहरण के कारण दुखी है। तब शंकर प्रकट होकर बतलाते हैं कि रुक्मिणी का पुत्र वास्तव में कामदेव है जिसे शंकर ने जला दिया था और शम्बर ने उसका अपहरण कर उसका संयोग उसकी पत्नी रति से करा दिया है। तब शोक का वातावरण समाप्त हो जाता है और सब लोग आनन्दोल्लास में शामिल हो जाते हैं। शङ्कर जी कृष्ण को चक्र प्रदान करते हैं।

इस नाटक की रचना १९१२ में की गई थी। इसमें छायातत्व की प्रधानता है। पृथक् पृथक् असम्बन्ध अनेक घटनायें हैं। गायन और वादन का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है। इसका प्रथम अभिनय मौरवी नरेश ने कराया था।

श्रीकृष्णजन्मरहस्यम्- (नाक) १८वीं शताब्दी के श्रीकान्त गण लिखित दो अकों का नाटक। इसमें गीतात्मक सवादों द्वारा श्रीकृष्ण जन्म की कथा प्रस्तुत की गई है। इसका प्रकाशन प्रयाग से हो गया है।

श्रीकृष्ण त्रिपाठी- (नाका) इनका लिखा सावित्री शार्पक एकाङ्की नाटक प्रकाश में आया है।

श्रीकृष्णदानामृतम्- (नाक) भगलगिरि कृष्णद्वैपायन (दे) लिखित नाटक।

श्रीकृष्णदोत्यम्- (नाक) भास्कर केशव ढोक लिखित लघु नाटक। श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवों के दोत्यक्रम को इसमें रूपायित किया गया है। नाटक छाटा होने के कारण न प्रस्तावना है न परत वाक्य। नान्दी प्रारम्भ में दे दी गई है। भारती पत्रिका में इसका प्रकाशन हो गया है।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका- (नाक) अनन्ददेव लिखित उपदेशप्रवण नाटक। इसे नाटक इसीलिये कहा जा सकता है क्योंकि इसके लेखक ने इसे नाटक कहा है। जैसे मवाद के अतिरिक्त नाट्यकला के लिये मान्य कोई विशेषता इसमें नहीं है। पहले शैव वैष्णव शास्त्रार्थ चलत है। महावैष्णव आकर युक्तियों द्वारा उनका निपटारा करता है कि शिव और विष्णु में कोई भेद नहीं। फिर शब्दशास्त्री और तार्किक का विवाद चलता है जिसमें मीमांसक शामिल हो जाता है। तब कृष्णभक्त आकर समझाता है कि कृष्ण ही परब्रह्म है। तब वेदान्ती आता है- उसे भी कृष्णभक्त निरस्त कर देता है। अन्तिम निष्कर्ष यही है कि कृष्ण भक्ति ही परमतत्त्व है।

इसकी रचना १६वीं शताब्दी में हुई थी।

श्रीकृष्णरुक्मिणीय- (नाक) यह विनायकराव वोकील (दे) का लिखा नाटक है। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

(१) **श्रीकृष्णविजयम्-** (नाक) वेङ्कटराव लिखित ड्राम। इसमें अक के स्थान पर यवनिका शब्द का प्रयोग किया गया है। कृष्ण ने अर्जुन से सुभद्रा के साथ विवाह करा देने का वादा किया है और इस कार्य के लिये वे उन्हें त्रिदण्डी (यति) वेष्ट में अपने महल में ले आये हैं। बलराम उन्हें प्रमदवन में ठहराते हैं और सुभद्रा को उनकी सेवा के लिये नियत कर देते हैं। उनका गान्धर्व विवाह हो जाता है। बाद में उस विवाह का सभी अभिनन्दन करत हैं।

कहने को यह ड्राम है किन्तु इसमें ड्राम की अनेक व्यवस्थाओं का अतिक्रमण किया गया है। ड्राम में अनियमानुसार ४ अंक होते हैं किन्तु इसमें ५ यवनिकायें हैं। (इसमें अक के स्थान पर यवनिका शब्द का प्रयोग किया गया है।) ड्राम में शास्त्रीय नियमानुसार शृङ्गार रस नहीं होना चाहिये, इसमें शृङ्गार को ही अंगी बनाया गया है। ड्राम में विष्कम्भक और प्रवेशक नहीं होने चाहिये किन्तु इसमें हैं। निष्पन्न निर्धार में लेखक ने दर्शक स्वतन्त्रता ग्रहण की है।

(२) **श्रीकृष्ण विजयम्-** (नाक) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना रामचन्द्र वेल्माल ने १८वीं शताब्दी में की थी। इसमें कृष्ण द्वारा रुक्मिणी को युद्ध से प्राप्त करने का बहाना अंकित किया गया है। इसका अभिनय श्रीरंगनायक के शारदोत्सव में किया गया था।

श्रीकृष्णविनोद- (नाक) शङ्कर मिश्र (८) का लिखा नाटक।

श्रीकृष्ण शृङ्गार तरङ्गिणी- (नाक) वेङ्कटाचार्य लिखित ५ अकों का नाटक । नारद से कृष्ण को एक पारिजात प्राप्त होता है जो कृष्ण प्रेम में रुक्मिणी को दे देते हैं । इस पर सत्यभामा नाराज हो जाती है । तब कृष्ण उन्हें मनाने के लिये इन्द्रलोक जाकर इन्द्र से युद्ध करते हैं तथा उन्हें पराजित कर पारिजात पुष्प लाकर सत्यभामा को देते देते हैं । अन्तिम अंक में कृष्ण और सत्यभामा की प्रणय लीला वर्णित है । इसमें चुम्बन आलिङ्गन का प्रयोग किया गया है । इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है ।

श्रीकृष्णसंगीतिका- (नाक) श्रीधरभास्कर वर्णेकर (दे) लिखित ८ अकों का गीतिकाव्य ।

श्रीगोरक्ष- (नाक) दे रक्षक ।

(१) **श्रीदामचरित-** (नाक) सामाज्य दोक्षित (दे) विरचित ५ अकों का एक प्रतीक नाटक (दे) इसे कुछ लोग सुदामा चरित नाम से भी अभिहित करते हैं । कृष्ण के मित्र सुदामा की आर्वात्मिक धनप्राप्ति का उपाख्यान इस नाटक का विषय है । सुदामा का लक्ष्मी के प्रति द्वेष और सरस्वती के प्रति प्रेम है । अतः गरीबी और मूर्खता उन पर आक्रमण कर देती है क्योंकि जो लोग पवित्र और बुद्धिमान हैं उन पर सौभाग्य दृष्टि पात भी नहीं करता । वह उसी परिमाण में व्यक्ति से दूर होता जाता है जिस परिमाण में व्यक्ति का झुकाव दर्शन और उच्च गुणों की ओर होता है । दूसरी ओर जब धनवानों में बिगाड उत्पन्न हो जाता है तब विष्णु या कृष्ण मूर्खता इत्यादि प्रतिनिधियों को नियुक्त कर उन्हें ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं । मूर्खता उन धनवानों के हृदयों में प्रवेश कर उन्हें दरिद्रता की ओर ले जाती है और जब वे विपत्ति में पड़ जाते हैं तब उन्हें सासारिकता से विराग हो जाता है । उन्हें सासारिक माया मोह से छुटकारा मिल जाता है और वे स्वर्ग के अधिकारी बन जाते हैं ।

इस नाटक में मूर्खता का मानवीकरण कर उन्हीं तत्वों द्वारा सुदामा का तात्पर्य सिद्ध किया गया है । इन्हीं तत्वों के प्रभाव से सुदामा कृष्ण के निकट जाने और उनसे आतिथ्य प्राप्त करने के अधिकारी बन जाते हैं ।

कैटेलागस कैटेलागोरम ॥ ६८ III १४२ (इसके साथ टीका भी है) विल्सन के थियेटर ॥ ४०४ ६ में इसका विश्लेषण किया गया है । इस नाटक की रचना १९४२ में हुई थी ।

श्रीधर- (नाक) ये १८वीं शताब्दी के टावन्कोर के निवासी थे और वहा के राजा देवनाययण ने इनका सम्मान किया था । इनका लिखा लक्ष्मीदेवनाययणीय (दे) नाटक प्राप्त होता है ।

श्रीधर पेरूमडु- (नाक) १८वीं शताब्दी के आन्ध्र के कवि हैं । इनका लिखा वसुमगलम् नाटक प्रकाश में आया है । इन्होंने औणादिक पदार्णव नामक शब्दशास्त्रीय ५

ग्रन्थ की भी रचना की थी।

श्रीधरभास्करवर्णेकर- (नाका) आधुनिक काल के सर्वप्रमुख लेखकों में एक। संस्कृत साहित्य के इतिहास का इनका विशेष अध्ययन है और अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पर अधिप्रबन्ध में इन्हें नागपुर विश्वविद्यालय से सर्वोच्च डी लिट् की उपाधि प्राप्त हुई। साहित्यअकादमी, कालिदास आदि अनेक पुरस्कार प्राप्त किये।

इनका लेखन कार्य अत्यन्त व्यापक और बहुमुखी है। संस्कृत, मराठी और हिन्दी तीनों भाषाओं में इन्होंने पुस्तकें लिखी हैं जिनमें महाकाव्य खण्डकाव्य, गीतिकाव्य गद्य रचनाएँ आदि अनेक प्रकार के सृजनात्मक साहित्य ग्रन्थ सम्मिलित हैं। जहाँ तक ग्रन्थों की विशालता का प्रश्न है इसका शिवराज्योदय महाकाव्य ६८ सर्गों का एवं कई नाटक दस और ग्यारह अंकों के हैं।

इनके साहित्य में निम्नलिखित दो नाटकों विवेकानन्द विजय और शिवराज्याभिषेक एवं श्री राममनोरेका और श्रीकृष्णमनोरेका दो गीतिनाट्य भी शामिल हैं।

महत्वपूर्ण साहित्य सर्जन के अतिरिक्त संस्कृत और मराठी की पत्रिकाओं एवं संस्कृतवाङ्मय के सर्वाङ्गपूर्ण दो खण्डों के सम्पादन, देश विदेश की अनेक समस्याओं और आयोगों की सदस्यता एवं अध्यक्षता तथा संस्कृत साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अन्य गतिविधियों की प्रतिष्ठा भी आपको प्राप्त है।

(१) श्रीनिवास- (नाका) इनके नाम पर कई नाट्य कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। जिनमें कल्याणोपरिणय (उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ८६) वनकाशी परिणय (वही १८६) वनकवल्ली परिणय (वही १९४ और उषा परिणय (वही १७८) सम्मिलित हैं।

(२) श्रीनिवास- (नाका) इनका लिखा शुक्राभिषेक नाटक मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग स २८४ पर प्राप्त किया जा सकता है।

(३) श्रीनिवास- (नाका) ये रामानुज के पुत्र थे। इनका लिखा लक्ष्मीस्वयवर नाटक कैटेलागस कैटेलागोरम स १७१ पर उल्लिखित है।

(४) श्रीनिवास (वोरवल्ली) - (नाका) इनका जन्म वोरवल्ली वंश में कौण्डिन्य गोत्र में १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। इनका लिखा ८ सर्गों का एक महाकाव्य अनेक गद्य एवं चम्पू काव्य प्राप्त होते हैं। इनकी एक नाट्य रचना वकुलमालिनी परिणय का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में ट्रायेनियल कैटेलागस में स ११०४७ पर संकलित की गई है।

(५) श्रीनिवास- (श्रीशैल) इनका लिखा गोदापरिणय (दे३) नाटक प्राप्त होता है जिसका संकलन ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास में डिमिस्टिब कैटेलाग स १८३९९ पर किया गया है। इनका लिखा रामचन्द्राशुभोदय नामक एक रामकाव्य भी है।

(६) श्रीनिवास- (नाका) ये प्रतिवादिभयकरगोत्रीय नृसिंह के पुत्र और श्री सस्कृतकालेजकोयम्बटूर में प्रिंसिपल थे। इनकी मृत्यु १९०० में हो गई थी। इनका लिखा रसिकरञ्जन भाग प्राप्त होता है।

(७) श्रीनिवास- (नाका) ये देवराज के पुत्र थे, इनके लिखे मरुतवल्लीपरिणय (दे) नाटक का उल्लेख तञ्जौर के राज पुस्तकालय में स ८३४५० पर किया गया है।

(८) श्रीनिवास- (नाका) ये श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने आनन्द रग नामक एक चम्पू लिखा था जिसमें आनन्द रग के जीवन चरित्र का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त इनका शृङ्गार चन्द्रिका (दे) नामक एक भाग भी है।

(९) श्रीनिवास- (नाका) इनका लिखा श्रीरगनाथ भाग (दे) मैसूर ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित किया गया है।

(१०) श्रीनिवास- (नाका) इनके नाम पर सीतादिव्यचरित नाटक बदलाया जाता है।

श्रीनिवासदयाविलास- (नाक) अज्ञातनामा कवि की रचना। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्य।

श्रीनिवास दीक्षित- (तल्लखेट) (नाका) विश्वामित्र गोत्र के भाव स्वामी के पुत्र और कृष्ण के पौत्र थे। इनका समय ई की २६ वीं शताब्दी का मध्य भाग है। इन्हें गिंगी के नायक चोल नरेश ने वर्णन शैली पर प्रसन्न होकर तल्लखेट की उपाधि प्रदान की थी और आगे चलकर ये उसी नाम से प्रसिद्ध हुये। ये अप्पय दीक्षित और गोविन्द दीक्षित के समसामयिक थे। ये बहुज्ञ एवं सफल लेखक थे। इनको षड्भाषा चतुर, अद्वैत विद्याचार्य, अभिनव भवभूति, आदि अनेक उपाधिया प्राप्त हुई थीं। दर्शन एवं अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त कहा जाता है इन्होंने १८ नाटक और ६० काव्य ग्रन्थ लिखे थे। इनका दमयन्ती के विवाह को लेकर भ्रैमा परिणय (दे) नामक नाटक और रुक्मिणी को लेकर लिखा गया इसी नाम का एक चम्पू प्राप्त होता है। इनका एक प्रतीक नाटक भावना पुरुषोत्तम (दे) भी प्राप्त होता है। इनके ग्रन्थों की सूची काव्यमाला के गगावतरण की भूमिका में उद्धृत की गई है।

श्रीनिवास रंगाचार्य- (नाका) इनका लिखा गुरुदक्षिणा (२) नाटक प्रकाश में आया है।

श्रीनिवासविजयनाटिका- (नाक) यह नरसिंह दीक्षित की लिखी नाटिका है जिसकी रचना शक सन् १५७२ (सन् १६५०) में हुई थी। त्रिदास पुस्तकालय की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट स IV ५४७९ पर इस नाटिका का उल्लेख किया गया है।

श्रीनिवासविलास- (नाक) यह एक भाग है जिसकी रचना रामानुजाचार्य की (दे) ने की थी।

श्रीनिवास वेदान्ताचार्य- (नाका) ये काञ्चीवाम के नजदीक पुरुम्बुदूर के निवासी थे। इन्होंने रसोल्लास (दे) नामक भाण की रचना की थी।

(१) श्रीनिवासशास्त्री- (नाका) उपहारवर्मवर्ति (दे) नामक नाटक के लेखक। इनका जन्म कावेरी नदी के तट पर सहजपुरी नामक ग्राम में १९वीं शताब्दी के मध्य में हुआ था। इन्हें वेदवेदान्तवर्धक की उपाधि प्राप्त थी। इनके पिता का नाम वेङ्कटेश्वर और पितामह का नाम सुब्रह्मण्य शास्त्री था।

(२) श्रीनिवासशास्त्री- (नाका) सौम्यरसोदयम् (दे) नाटक के लेखक।

(१) श्रीनिवासाचार्य- (नाका) ये तिरुवदी नामक स्थान के निवासी थे। इनका जन्म १८६३ में हुआ था। राजमदन स्कूल बोर्ड में ये सस्कृत के पण्डित थे। इनके लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं क्षीराब्धिशयनम् (दे) और ध्रुव (दे)। इनके नाटक प्रकाशित नहीं हुये हैं कृष्णाचार्य के अनुसार राजमदन में इनके पुत्र आरएस कृष्णाचार्य के पास अब भी सुरक्षित हैं। इनके दोनों नाटकों का अभिनय उसी स्कूल में हुआ था जहाँ ये कार्यरत थे। इनका देहावसान १९३२ में हो गया था।

(२) श्रीनिवासाचार्य- (नाका) लोकतजन प्ररसन (दे) के लेखक।

(३) श्रीनिवासाचार्य- (नाका) जाम्बवन्तीकल्याण (दे) (२) के लेखक।

(४) श्रीनिवासाचार्य- (नाका) ये वरदाचार्य के पुत्र थे और चिंगलपुट जिला के श्री पेरम्बुदूर नामक स्थान पर रहते थे। इनका लिखा शारदानन्दन (दे) भाण प्रवाश में अग्रा है। इनका लिखा अम्बुजवल्लीकल्याण नामक पचासी नाटक भी बतलाया जाता है।

(५) श्रीनिवासाचार्य- (ईष्वमवाडि) (नाका) दक्षिण अर्काट जिला के तिरुवर्हिड पुरम् के निवासी कौण्डिन्य गोत्रीय वेदान्ताचार्य के पुत्र थे। इनका समय १८४८ से १९१४ ई है। ये गवर्नमेण्ट कालेज कुम्भकोणम् में सस्कृत के प्रोफेसर थे, एक प्रतिष्ठित कवि थे, कविता के क्षेत्र में कविता की दृष्टि से उन्हें उत्तकोटि की कला निपुणता का वरदान प्राप्त था। मृच्छकटिक और नागानन्द की इनकी व्याख्याएँ उच्चस्तर की मानी जाती हैं। कालिदास के मय्यो और विशेषकर शाकुन्तल की इनकी व्याख्या अनुलनीय मानी जाती है। इन्होंने स्वयं भी दो नाट्य ग्रन्थ लिखे थे- शङ्करातरंगिणी भाण और उपापरिणय नाटक। इनके अतिरिक्त हसविलास नामक ६ खण्डों का काव्य और कृष्णलोलायित तथा शार्ङ्गकोपाख्यान गद्य ग्रन्थ भी इनकी अन्यतम कृतियाँ हैं। सङ्गीतकला में भी इन्हें निपुणता प्राप्त थी जो कि इनकी कविताओं में प्रतिफलित होती है। गीतगोविन्द की शैली पर इन्होंने अमृतमन्थन नामक एक पुस्तक लिखी थी और उसी प्रकार की एक अपूर्ण रचना भी बनलाई जाती है।

(६) श्रीनिवासाचार्य- (नाका) मुद्रांशत्रिजय नाटक के लेखक।

श्रीरंगनाथभाण- (नाक) इनके रचनाकार हैं श्रीनिवास (९) इसकी प्रति मैसूर ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित है।

श्रीरंगराजचरित- (नाक) इस नाटक का उल्लेख त्रैवार्षिक रिपोर्ट मद्रास में स VI ७४२३ पर किया गया है।

श्रीराम भिकाजी वेलण्कर- (नाका) दे वेलण्कर श्रीराम भोकाजी।

श्रीराम महाराज- (नाका) ये मालावार के राजकुमार थे इन्होंने 'मुबालावन्नतुण्ड' (दे) नामक ५ अकों का एक नाटक लिखा था।

श्रीरामराय- (वेल्लमकोण्ड) (नाका) भरद्वाज गोत्र में गुण्टूर जिले के पमिदिपाडु अग्रहार में १८७५ में पिता मोहनराय और माता हनुमायम्मा से इनका जन्म हुआ था। लगभग सभी शास्त्रों का इन्होंने अध्ययन किया था और दार्शनिक विषयों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक चम्पू और अनेक छोटे बड़े काव्य ग्रन्थ लिखे थे। साथ ही इनका लिखा कन्दर्प दर्पण (दे) नाम का एक भाण भी है।

श्रीरामविजयम्- (नाक) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें ताडकावध से रावण वध तक की घटनाओं का चित्रण किया गया है। कथानक में अनेक परिवर्तन भी किये गये हैं। इसकी रचना १९४० में हुई थी और बालेश्वर मण्डल संस्कृत नाट्यसंघ (उड़ीसा) से इसका प्रकाशन सन् १९५४ में किया गया था।

श्रीराम संगीतिका- (नाक) श्रीधर भास्कर वर्गेकर लिखित ११ अकों का गीति नाट्य।

श्रीलोकमान्यस्मृति- (नाक) श्रीराम वेलण्कर लिखित दो अकों का रूपक। इसमें लोकमान्यबालगंगाधर तिलक के जीवन के अन्तिम दृश्यों का उपादान किया गया है। इसका प्रकाशन १९७० में तिलकस्मारक मन्दिर पुणे की ओर से किया गया।

श्रीवत्सलाञ्जन- (नाका) इनको केवल श्रीवत्स नाम से भी जाना जाता है। ये बंगाल के निवासी थे। इन्होंने विद्यानाथ से उद्धरण दिये हैं और इनका कमलाकर ने उल्लेख किया है। इनकी साबोधिनी की व्याख्या में चक्रवर्ती के भारसग्रह का अनुसरण किया गया है। इन सब बातों पर विचार करने से इनका समय १६वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इन्होंने विद्यासागर और जयराम की टीकाओं का भी सन्दर्भ प्रस्तुत किया है। इनकी लिखी कई पुस्तकों का पता चलता है जिनमें काव्यपरीक्षा काव्यामृत इत्यादि सम्मिलित हैं। इनका रामोदय शीर्षक नाटक भी प्राप्त होता है जिसका कैटेलागस कैटेलागोरम १५२६ पर उल्लेख किया गया है।

श्रीवत्साङ्ग- (नाका) दे वासुदेव नेन्द्र।

श्रीशिववैभवम्- (नाक) यह विनायक राव वेकिल (दे) का लिखा नाटक है। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

श्री शैलताताचार्य- (नाक) शठमर्षण गोत्र के वेङ्कट नाद के पुत्र थे और १८०२-१८२५ के मध्य काजीवरम् में रहते थे। इन्होंने युगलाङ्गुलीय (दे) नामक एक छोटा सा नाटक लिखा था। इसके अतिरिक्त वेदान्तदेशिकचरित नाटक (दे) में विशिष्टाद्वैत दर्शन की विशेषताओं का वर्णन किया है। इन्होंने दुर्गेशनन्दिनी और क्षत्रियरमणी इन दो बंगली पुस्तकों का अनुवाद भी किया है।

घ

घण्टमननाटकम्- (नाक) यह जयन्त भट्ट का लिखा प्रतीक नाटक है। इसका उल्लेख पैटर्सन रिपोर्ट में स V ४३७ पर किया गया है।

बाहजहाननुपतिराजनीति- (नाक) यह हजारीलाल शर्मा का लिखा नाटक है। जिसमें शाहजहा बादशाह की राजनीति का वर्णन किया गया है।

स

सयुक्ता- (नाक) जगुश्रीवकुलभूषण (दे) लिखित नाटक।

सयोगितास्वयंवर- (नाक) यह मूलशंकर माणिकलाल यज्ञिक द्वारा लिखा नाटक है। इसमें भारत के अन्तिम क्षत्रिय सम्राट पृथ्वीराज के कामुककपटजाल का चित्रण किया गया है।

यह नाटक बडौदा से प्रकाशित हुआ है। रचना १९२७ में और प्रकाशन १९२८ में सम्पन्न हुआ। इसमें गीतों का बाहुल्य है और छायातत्व का समावेश किया गया है।

सवाहक- (नाया) दे भिक्षु (१)।

ससारामूलम्- (नाक) डा रमा चौधरी लिखित नाटक। अर्कों के स्थान पर दृश्यों में विभाजित, दृश्य स सात। बेलि एक गरीब कन्या है जिसे प्रतिनायक ने धोखा दिया है। किन्तु उसका प्रेमी मयूर उसे अपना लेता है।

संस्कृत चाम्बिजयम्- (नाक) प्रभुदत्त शास्त्री लिखित ५ अर्कों का नाटक। अर्कों का दृश्य में विभाजन। इसमें विभिन्न कालों में संस्कृत स्वरूपों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है जिन में पाणिनि कालीन भोज कालीन और आधुनिक कालीन संस्कृत की उच्चावचता पर दृष्टिपात मुख्य यस्तु है। विदूषक, विदूषिका हास्य सृष्टि करते हैं। प्राकृत के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग इसकी एक विशेषता है। दिल्ली से १९४२ में इसका प्रकाशन हो गया था।

संस्थान- (नाया) चारुदत्त का एक पात्र। यह मूल्यांकन के संस्थानक का प्रतिरूप

है।

सस्थानक- (नापा) मृच्छकटिक में राजा का साला। राकार (दे) का वास्तविक नाम।

सकल्प सूर्योदय- (नाकृ) वेदान्त देशिक वेङ्कटनाथ द्वारा १३वें शताब्दी में लिखित एक प्रतीक रूपक। वेङ्कटनाथ ने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त पर यह रूपक लिखा है जिसमें कृष्णमिश्र (दे) के प्रबोध चन्द्रोदय का अनुकरण किया गया है। जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड में सन् १९२१ में पृ ५९१ पर इसका विवरण दिया गया। इसका सटीक प्रकाशन श्रीरंगम् से १९१७ में हुआ था। साथ ही मद्रास और बम्बई से भी इसका प्रकाशन हुआ। श्रीरंगम् के नारायणाचार्य रघुनाथ स्वामी ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसको प्रति ओरियण्टल मैन्सुक्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास से स १४६०० पर प्राप्त की जा सकती है। कतिपय अन्य अनुवादकों का डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में उल्लेख किया गया है जिनका पता नहीं है। (कैटेलाग स XXI ८५४६ ४९) उसी कैटेलाग में स XX ७९७७ पर कौशिक गोत्रीय श्रीनिवास के शिष्य द्वारा अनुवाद का उल्लेख किया गया है। यह प्रबोध चन्द्रोदय का उत्तर पक्ष है।

सङ्गीतयायातम्- (नाकृ) यह एक संगीत नाट्य (ओपेरा) है जिसमें बीच बीच में संगीत का प्रयोग किया गया है।

संगीतरघुनन्दनम्- (नाकृ) बघेल खण्ड के आधिपति विश्वनाथ सिंह की रचना। यह वास्तव में तो काव्य के रूप में लिखा गया है। विभाजन भी संगों में है। किन्तु पूर्ण रूप से गीत गोविन्द के अनुकरण पर इसकी रचना हुई है। शैली की दृष्टि से यह गीतनाट्य की कोटि में आता है। विषय रामकथा।

सच्चरित्र- (नापा) यह मोहराजपराजय (दे) का एक पात्र है जो नीति देवी का पति और कीर्ति मञ्जरी का पिता है।

सज्जलक- (नापा) यह भास के चारुदत्त (दे) का एक पात्र है। मृच्छकटिक के शार्विलक (दे) का यह पूर्व रूप है। चित्र चित्रण केलिये दे शार्विलक।

सञ्जय- (नापा) वेणीसहार का एक पात्र। इसने क्रुद्ध अश्वत्थामा को शान्त करने के लिये कौरवों की सेना की सहायता की।

सत्यचरितम्- (नाकृ) सुदर्शनपति लिखित नाटक।

सत्यभामा- (नापा) कृष्णविषयक कतिपय नाट्यकृतियों में एक पात्र। पुराणों में भी कृष्ण के साथ उनकी पत्नियों में इसका चित्रण किया गया है।

(१) **सत्यभामापरिणय-** (नाकृ) सत्यभामा और कृष्ण के विवाह विषयक इस नाटक की रचना गर्गपुर के कृष्णकवि ने की थी। इसको मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट स III २९९७ में सकलित किया गया है।

(२) सत्यभामा परिणय- (नाकू) और्रेट ने इस नाम के एक नाटक का उल्लेख किया है जिसे कृष्ण कवीन्द्र रचित बतलाया जाता है।

(३) सत्यभामा परिणय- (नाकू) शेष कृष्ण (दे) का लिखा बतलाया जाता है। इसकी रचना १६वीं शताब्दी में हुई थी।

(४) सत्यभामा परिणय- (नाकू) यह ५ अकों का नाटक है जिसमें सत्यभामा और कृष्ण के विवाह का वर्णन किया गया है। इसके रचनाकार हैं मल्लिकार्जुन (सुर्लिंग) और इसका अभिनय मुत्तन्द के उत्सव के अवसर पर किया गया था। इसकी प्रति मद्रास के ओरियण्टल पुस्तकालय के त्रैवार्षिक सूची पत्र में खण्ड III स २१५३ पर उपलब्ध है।

सत्यव्रत- (नाका) महर्षिचरितामृत (दे) नाटक के लेखक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

सत्यव्रतशर्मा- (नाका) भ्रमभञ्जनम् (दे) नाटक के लेखक। ये पञ्जाब के निवासी थे।

(१) सत्य हरिश्चन्द्र- (नाकू) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (दे रामचन्द्र २) लिखित नाटक। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। इसका एक संस्करण फ्लोरेंस से इटैलिमन अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हो चुका है। हरिश्चन्द्र के प्रसिद्ध उपाख्यान का इसको रचनामें प्रधानक के रूप में उपयोग किया गया है। इसका रचनाकाल १२वीं शताब्दी है।

(२) सत्य हरिश्चन्द्र- (नाकू) इस नाम की एक रचना हरिश्चन्द्र नामक किसी कवि की बतलाई जाती है। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है।

(३) सत्य हरिश्चन्द्र- (नाकू) यह रामचन्द्र (दे) नामक कवि की रचना बतलाई जाती है। इसका उल्लेख जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी १९१४ के पृ ११०४ पर किया गया है।

सत्याचार- (नापा) कौतुक सर्वस्व (दे) नाटक का नायक। यह हास्यास का आलम्बन है। (चित्रण के लिये देखिये कौतुक सर्वस्व)।

सत्सग विजय- (नाकू) वैद्यनाथ लिखित प्रतीक नाटक इसका उल्लेख कैटेतागस कैटेतागोराम में १६९० पर किया गया है। इसके पाच अकों में गुर्जर प्रदेश के नाट्ययोग सम्प्रदाय का दुगुण्य दिखाना प्रधान सन्ध्या रक्खा गया है। इसमें अच्छे और बुरे सभी प्रकार के प्रभाव पात्र हैं। नायक सत्सग, नायिका कौंति उसके सहायक हैं विद्या, तत्वविचार प्रतिष्ठा सत्य, आर्चक आदि। प्रतिनायक हैं- हुस्सा उसके सहायक हैं- व्याधिरार कुमति, मिथ्यापराध आदि।

सदाशिव- (नाका) प्रचण्ड भैरव (दे) नाटक के लेखक।

सदाशिव दीक्षित- (नाका) ये भरद्वाज गोत्री चोक्कनाथ और माता मौनाक्षी से १८वीं शताब्दी में उत्पन्न हुये थे। टावन्कोर के रामवर्मा के आश्रय में कुछ समय विताकर सन्यासी बन गये। रामवर्मा के नाम पर एक प्रशस्ति परक पुस्तक की भी रचना की थी। इनकी रचनायें धर्म और भक्ति परक होती हैं। इन्होंने दो नाटक भी लिखे थे— वसुलक्ष्मीकल्याण (दे) और लक्ष्मीकल्याण (दे)।

S.N.K. ताडपत्रीकर- (नाका) इनका समय २०वीं शताब्दी का मध्यकाल है। इन्होंने विश्वमोहन नाम से १९५१ में गोइट के फाउण्ड का संस्कृत में अनुवाद किया था।

सन्तुष्ट- (नापा) अविमारक में विदूषक (दे विदूषक)।

सन्तोष- (नापा) सैनिक जिसने अन्यो के साथ मोहराज को पराजित करने में विवेक की सहायता की।

सन्मत नाटकम्- (नाक) यह जयन्त भट्ट (दे) का लिखा प्रतीक नाटक है। बम्बई में संस्कृत पाण्डुलिपियों की पेटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट (V ४३७ में इसका उल्लेख किया गया है।

सभानाटक- (नाक) महेश्वर लिखित नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम स १६९६ में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **सभापति विलास-** (नाक) यह वेङ्कटेश्वर का लिखा नाटक है। तजौर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि कैटेलाग में स ३५१८ पर इसका उल्लेख किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम स १६९६ में लिखा है कि यह रचना धर्मराज की है। यह भूल से दे दिया गया है और यह भूल अन्यत्र भी दोहराई गई है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। इस रचना पर कवि को चिदम्बरम् की उपाधि प्राप्त हुई थी। इसका प्रथम अभिनय चिदम्बरपुर के वनक सभापति (शिव) की यात्रा के महोत्सव में किया गया था। इसका प्रधान नायक व्याघ्रपाद और उपनायक पतञ्जलि है। प्रधानरस - शृङ्गार।

(२) **सभापतिविलासनाटकम्-** (नाक) तजौर राज्य के ललित में सन्निविष्ट एक नाट्यकृति जिसका कर्ता अज्ञात है।

सभापर्वनाटकम्- (नाक) जयराम मल्लदेव (दे) (अथवा जयराम महादेव या जयराम मल्लदेव) का लिखा नाटक। इसमें महाभारत के सभापर्व को रूपकायित किया गया है। इसकी एक सज्ञा पाण्डव विजय भी है।

समाधानम्- (नाक) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अकों का नाटक। छात्र और छात्रायेँ यूरोपीय पद्धति पर गन्धर्व विवाह कर लेते हैं उनसे जो समस्यायेँ उत्पन्न होती हैं उनके समाधान को इसमें चर्चा की गई है। इसकी रचना १९४५ में की गई थी।

समिद्धार्थक- (नापा) मुद्राराक्षस (दे) में एक पात्र। यह चाणक्य का स्वामिभक्त कर्तव्य परायण गुप्तचर है जो अपने कर्तव्य पालन के लिये चाण्डाल तक का वेष धारण

करने में सकोच नहीं करता।

(१) समुद्रमन्थन- (नाकृ) भरत के नाट्यशास्त्र में इस नाम वाले समवकार (दे) का उल्लेख किया गया है। जब राग पूजा इत्यादि की तैयारी हो चल रही थी पितामह ब्रह्माजी ने प्रथम अभिनय के लिये इसकी रचना कर डाँती और भरत के शिष्यों को उसका अभ्यास भी करा दिया। रागपूजा के बाद इसका अभिनय किया गया। भरत का कहना है कि यह समवकार धर्म अर्थ और काम का साधक था तथा पहले ही प्रदर्शन में बहुत सफल रहा। कर्मभाव के अनुदर्शन से इससे देवता और दावन प्रसन्न हुये। यह उत्साह का जनक था, आनन्द दायक था, देवताओं की प्रीति के लिये लिखा गया था। तथापि इससे दानव भी प्रसन्न हुये क्योंकि उसमें देवताओं के उत्साह का भी चित्रण किया गया था। अब यह रचना प्राप्त नहीं होती।

(२) समुद्रमन्थन- (नाकृ) धनिक ने समवकार के उदाहरण के रूप में इस रचना का उल्लेख किया है। यह वत्सराज लिखित समवकार है। इसके लिखने की प्रेरणा लेखक को सम्भवतः नाट्यशास्त्र के उल्लेख से मिली थी। इसमें दो पद्यों की ओर के बाद सूत्रधार और स्थापक का सवाद चलता है। फिर देवताओं और दावनों द्वारा सम्मिलित रूप में किये गये समुद्रमन्थन की पौराणिक कथा अभिनेय रूप में प्रस्तुत की जाती है। दशरूपककार का कहना है कि समवकार में देव और असुर दोनों मिलकर १२ नायक होते हैं जिनकी पृथक् पृथक् फल प्राप्त होता है। प्रस्तुत समवकार में विष्णु को लक्ष्मी की तथा अन्यान्य देवासुरों को पृथक् पृथक् रत्नों की प्राप्ति हुई। धनञ्जय ने इसका उल्लेख अम्भोधिमन्थन के रूप में किया है। यह पुस्तक गायकवाड ओरियण्टल सोसैटी बड़ौदा से प्रकाशित हो चुकी है। इसका अभिनय १२वीं शताब्दी के परमादिदेव और उनके पुत्र त्रैलोक्य वर्मदेव के मनोरञ्जन के लिये किया गया था।

इस नाटक में पहले अंक में लक्ष्मी अपनी दो सहेलियों धृति और लज्जा के साथ अपने प्रियतम विष्णु का चित्र तन्मयता से देख रही है। बाद में रागमञ्ज पर विष्णु का भी प्रवेश होता है। रूपक का कथानक इस प्रकार है- सूत्रधार और उसके ११ भाई साथ साथ सम्पत्ति पाना चाहते हैं। यह सम्भव नहीं है। स्थापक के परामर्श और नेपथ्य से किसी शब्द के द्वारा समुद्र के शरण में जाने की राय दी जाती है, क्योंकि समुद्र ही सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला है। इसके साथ समुद्र मन्थन की प्रसिद्ध कथा का मञ्चन प्रारम्भ हो जाता है। समुद्र से जो १४ रत्न निकले हैं इनमें विष्णु को लक्ष्मी की प्राप्ति हुई। दैत्यराज ने वत्सात् अपृत पर अभिवाह कर लिया। तब दैत्यों के भय से सभी रत्न समुद्र को लौटने लगे। समुद्र ने मानव रूप में प्रकट होकर सभी का भय दूर किया। विष्णु ने मोहनी रूप धारण कर दैत्यों से वह अमृत कलश पुनः प्राप्त कर देवताओं को प्रदान कर दिया।

समृद्धमाधव- (नाकृ) गोविन्दविभूषण (दे) लिखित नाट्यकृति। इसका सबस

कैटेलागस कैटेलागोरम में स III १४४ पर किया गया है।

सम्पाति- (नापा) रामकथानक का एक प्रसिद्ध पात्र। यह गृध्र है और जटायु का बड़ा भाई है। वह सीता की खोज में वानरों की सहायता करता है।

महावीर चरित- में जटायु के साथ उसके सवाद में राम के कार्यों की सूचना मिलती है। वह जटायु को राम की भली भाँति रक्षा करने का आदेश देता है।

सरम्पा- (नापा) इन्द्र की दूती जो पणियों (इस नाम से असुरों) के पास जाकर रोचक वाद विवाद करती है। (ऋग्वेद १०-१०८)

सरम्पापणिसवादसूक्त- (ऋसू) १०वें मण्डल का १०८वा सूक्त। सरम्पा इन्द्र की दूती है। वह अपहृत गायों की खोज में पणि नामक असुरों के पास जाती है। वह उनसे मनोरञ्जक वाद विवाद करती है। यह सवाद कूटनीति विषयक वार्तालाप का उदाहरण है।

सरयू- (नापा) प्रसन्नराघव (दे) में एक पात्र। यह सूचक पात्रों में एक है जो धनुर्भङ्ग और सीता स्वयंवर तक की घटनाओं की सूचना देती है।

सरल चित्सुखीसार- (नाकू) एक प्रतीक नाटक है। इसकी रचना रमेशचन्द्र (दे) ने की थी। इसमें शास्त्रीयतत्वों के मानवीकृत पात्र हैं जिनका नाटकीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन सहृदय संस्कृत जर्नल मद्रास (स XVIII) से हो चुका है।

सरसकवि कुलानन्द- (नाकू) वेल्लाल वशीय रामचन्द्र लिखित भाण। इसका नायक भुजगशेखर है। इसका अभिनय गोदावरी जिला के भद्राचलम् स्थान पर किया गया था। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुभाग के ट्रायेनिअल कैटेलाग स II १४३० में इसका उल्लेख है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी।

सरस्वती कण्ठाभरण- (नाकू) कविन्द्र (कवीन्द्र) आचार्य के संग्रह में इस नाटक का संकलन किया गया है। कुछ लोगों का विचार है कि यह उनकी स्वयं की रचना थी।

सरस्वती वैयासिकी विद्या- (नापा) प्रबोधचन्द्रोदय का पात्र। यह वेदान्त विद्या के लिये प्रयुक्त हुआ है। जब मोहराज और प्रवृत्ति की मृत्यु हो जाती है तब यह आकर समस्त भ्रान्तियों को दूर करती है।

सर्वचरित- (नाकू) वाण भट्ट के नाम पर इस नाटक का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स I ७०१ पर किया गया है।

सर्वदमन- (नापा) अभिज्ञान शाकुन्तल (दे) का एक पात्र। इसके माध्यम से कवि ने वात्सल्य रस और बाल्यबीचन के आमोद प्रमोद का चित्रण किया है।

सर्वविनोदनाटक- (नाकू) कृष्ण अवधूत भट्टिकाशत महाकवि लिखित ईहामृग। इस नाटक का उल्लेख कोथ ने संस्कृत ड्रामा में किया है।

सर्वार्थसिद्ध- (नापा) मुद्राराक्षस में नन्दवश का अन्तिम अवशेष जो विरक्त होकर

सन्यासी बनकर जंगल की चला गया था। नाटक में इसका समावेश नहीं हुआ है, किन्तु भुवनाश्रय की पृष्ठभूमि में इसकी सत्ता बतलाई जाती है।

सलकृष्ण- (नाक) मुद्रितराघव नाटक के लेखक जिसका सकलन कैटेलागस कैटेलागोरम में स 11 १०६ पर किया गया है।

सहजानन्द- (नाक) दे सहृदयानन्द।

सहदेव- (नापा) वैष्णोसहार (दे) में कनिष्ठ पाण्डव। इसमें ये भीमसेन के अधिक निवृत्तवर्ती हैं और समय समय पर भीमसेन के क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

सहृदयानन्दन- (नाक) हरिजीनव मिश्र लिखित प्रहसन। इसमें नायिकाभेद इत्यादि साहित्यिक तत्वों को हास्योत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये कठिन साधना की आवश्यकता होती है जबकि नायिकाभेद आदि तत्व सुनते ही सुनते आनन्द देने लगते हैं। अखण्डानन्द के काव्यरसास्वाद को प्रथम स्थान मिलता है और राजा उसे पुष्कल पुरस्कार देता है।

इस नाटक को सहजानन्द सहा भी दी जाती है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी में हुई थी।

सागरिनी- (नापा) 'नाटवलक्षण रत्नकोश' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के लेखक के रूप में इन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त भी इन्होंने छन्दशास्त्र, संगीत, निर्यष्टु आदि विषयक पुस्तकें भी लिखी थी। इनका लिखा 'जानकीराघव' नामक एक नाटक भी बतलाया जाता है।

सागरिका- (नापा) रत्नावली नाटिका की नायिका। सिंहल की राजकुमारी रत्नावली इस नाम से वामवदत्ता (भरारानी) की दासी बन कर रही थी जहाँ उसका राजा उदयन से प्रेम सम्बन्ध प्ररूढ हो गया था। (उसके चरित्र चित्रण के लिये देखिये रत्नावली नापा)

साङ्कत्याघनी- (नापा) प्रियदर्शिका में वासवदत्ता की वृद्धा सहचरी। इसने ही अभिनय के लिये एक नाटक की रचना की थी और उसके प्रदर्शन का आयोजन किया था। उस नाटक की रचना उदयन और वासवदत्ता के प्रणय सम्बन्ध को लेकर की गई थी। अभिनय में स्वयं राजा ने अपनी भूमिका निभाई थी और वासवदत्ता की भूमिका आरण्यका (प्रियदर्शिका) की दी गई थी। वह अभिनय इतना सफल हुआ कि राजा और आरण्यका की प्रेम बढ़ चला जो नाटक की प्रमुख विषय वस्तु है।

साण्डिल्यपरिव्राजक- (नाक) अज्ञातनामा कवि लिखित प्रहसन। मैसूर पुस्तकालय संस्कृत परिशिष्ट (१३) में उल्लेख।

साधुहिसक- (नापा) हास्यार्णव (दे) प्रहसन का एक पात्र यह आरधियों का सरदार है और बन्धुता (वैश्य) के यहाँ मृगहृत्लेखा से प्रेम करने वालों में एक है।

साध्यवसान- (ना.वि) कतिपय लेखक Symbolism का अनुवाद इस शब्द से करते हैं इसके विषय में देखिये प्रतीक नाटक तत्व ।

सानुकुतूहल- (ना.कृ) कृष्णदत्त (दे.) लिखित प्रहसन । रचनाकाल १७५२, विभिन्न अकों में विभिन्न विषय । चतुर्थ अंक प्रहसन के लिये समर्पित । प्रथम तीन अकों में विभिन्न विषय । यह एक मनोरंजक रचना है । इसके आमुख में बतलाया गया है कि इसके रचनाकाल तक राजा धर्मवर्मा की मृत्यु हो चुकी थी ।

पेटर्सन द्वारा बम्बई में की गई संस्कृत पुस्तकों की खोज रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है तथा कैटेलागस कैटेलागोस १७०७ में भी इसको स्थान दिया गया है ।

सामन्त सौविदत्तम्- (ना.कृ) नारायण शास्त्री १ लिखित ७ अकों का नाटक ।

सामराज दीक्षित- (ना.कृ) १७वीं शताब्दी के एक नाटककार । ये मथुरा निवासी विन्दुपुरन्दर गोत्रीय नरहरि के पुत्र थे । बुन्देलखण्ड के आनन्दराय इनके आश्रयदाता थे । इन्होंने १६८१ में श्रीदामचरित नाटक (दे.) की रचना की जो एक प्रतीक नाटक है । इनका एक प्रहसन धूर्तनर्तक (दे.) भी उपलब्ध होता है । इन नाट्यकृतियों के अतिरिक्त काव्यशास्त्र पर एक पुस्तक काव्येन्दु प्रकाश भी है और पार्वती स्तोत्र, त्रिपुर सुन्दरी स्तोत्र इनको प्रसिद्ध रचनाएँ हैं ।

सामवतम्- (ना.कृ) अम्बिकादत्त व्यास का लिखा ६ अकों का नाटक । दो मित्र सुमेधा और सामवान् विवाहार्थ धनोपार्जन के लिये विदर्भ की ओर चले । मार्ग में मदालसा का सगीत सुनने में तल्लीन हो गये और दुर्वासा की उपस्थिति नहीं जान सके । दुर्वासा ने क्रुद्ध होकर स्त्री बन जाने का शाप दे दिया । विदर्भ में चित्राङ्गद की रानी से दान लेने के लिये सामवान् स्त्री वेष बनाकर राज भवन में पहुँचता है । एक तो दुर्वासा के शाप से दूसरे महाराणी के सत्यव्रत के प्रभाव से वह वास्तव में स्त्री बन जाता है । सामवान के पिता के लिये एकाकी पुत्र का स्त्री बन जाना एक आघात है, अतः वह देवी की आराधना कर उसके पुनः पुरुष रूप में परिणत हो जाने का प्रयत्न करता है । किन्तु रानी की साधना में अधिक शक्ति है । अतः उसके द्वारा स्त्रीत्व दिये जाने को देवी भी यत्न नहीं सकती । अन्त में उसका सामवती नाम रखकर उसके मित्र सुमेधा से विवाह करवाने में ही सन्तोष काना पड़ता है ।

इसका कथानक स्कन्द पुराण के बृहत्तर खण्ड से लिया गया है । भूत प्रेत, रगमञ्च पर नाव खेना, झंझावात, होली का उत्सव, वन यात्रा का दृश्य, नौका का डूबना, रगमञ्च पर स्थित पात्र का नेपथ्य स्थित पात्र से बात करना इत्यादि इस नाटक की विशेषताएँ हैं ।

इसकी रचना १८८० में प्रथम प्रकाशन मिथिला नरेश द्वारा कराया गया और दूसरा प्रकाशन १९४७ में व्यास पुस्तकालय मानमन्दिर काशी से किया गया ।

साम्यतीर्थ- (नाकू) जीव न्यायतीर्थ लिखित ५ अकों का नाटक। यह रवीन्द्रनाथ के निबन्धों पर आधारित नाटक है। इसका उद्देश्य है राष्ट्रीय एकता का प्रतिपादन। कलकत्ता से १९६२ में इसका प्रकाशन किया गया।

साध्विशिव- (नाकू) शृङ्गारविलास भाण के लेखक। ये वत्सगोत्रीय कनकसभापति के पुत्र थे एवं गोपालसमुद्र नामक गाँव में रहते थे। इन्होंने केरल के महाराज मान विक्रम (दे.) को प्रसन्न करने के लिये शृङ्गार विलास नामक भाण की रचना की थी।

सारस्वतम्- (नाकू) मध्यप्रदेश निवासी २० वीं शताब्दी के नाटककार रामजीवन मिश्र का लिखा नाटक।

सारस्वतोत्थास- (नाकू) यह एक भाण है जिसके रचनाकार हैं वेङ्कटराम। इसकी पाण्डुलिपि मैसूर ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में सुरक्षित है।

सालिधाम- (नाकू) अभिमन्यु नाटक (दे.) के लेखक।

सावित्री- (नाकू) श्रीकृष्ण त्रिपाठी लिखित एकाङ्की नाटक। इसमें सावित्री के पातिव्रत्य धर्म का प्रभाव दिखलाया गया है। इसकी रचना १९५६ में हुई थी।

सावित्रीचरित्रम्- (नाकू) २० वीं शताब्दी का नाटक जिसकी रचना मन्मथ नाथ ने की थी।

सावित्रीचरित्र- (नाकू) सर्वथा आधुनिक रचना है। यह महेश्वर के पुत्र शङ्करलाल प्रणीत नाट्यकृति है। इसमें कुल ७ अंक हैं। रचना १९वीं शती के अन्त में की गई थी और बम्बई से प्रकाशन भी उसी वर्ष हुआ था। कतिपय विद्वान इसे छाया नाटक मानते हैं। किन्तु दूसरे विद्वान मानते हैं कि इसमें छाया नाटक का कोई तत्व नहीं है।

साहिती समुत्थास- (नाकू) यह मुद्रवेङ्कटार्य की रचना है। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग से २६६ में इसे प्राप्त किया जा सकता है।

सिंहल विजयम्- (नाकू) सुदर्शन पति लिखित ५ अकों का नाटक। अकों का दृश्यों में विभाजन किया गया है। सत्कृत के साथ उड़िया गीतों का इसमें समावेश किया गया है। इसमें ठडोसा के वीरों की सिंहल पर विजय दिखलाई गयी है। इसका प्रकाशन बेदरामपुर से १९५१ में किया गया था।

सिद्धराज- (नापा) कौमुदीमित्रानन्द का एक पात्र। वरुण ने निर्दयतापूर्वक उसे बाध दिया था जिसे मित्रानन्द ने अपने मित्र के साथ उसे छुड़ाया था। अन्त में उसी के घर पर पतिव्रती का मिलन होता है।

सिद्धान्त भेरी- (नाकू) सुदर्शनार्य की कृति। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग से २५६ पर प्राप्य।

सिद्धार्थक- (नापा) मुद्गराथस में चाणक्य का गुणधर। यह अत्यन्त स्वाभिमान और कर्तव्यपरायण चर है। नाटक के महत्वपूर्ण दृश्यों की कृति इसी के द्वारा हुई है।

शकटदास को मृत्युदण्ड से बचाकर ले जाना और राक्षस से उसे मिलाना, राक्षस के यहाँ नौकरी करते हुये घरे को भेदकर गिरफ्तारी देना और महत्वपूर्ण पत्र, आभूषणों की मुद्रित पेटों तथा मौखिक सन्देश के द्वारा राक्षस को मलयकेतु की दृष्टि में अपराधी बनाकर शत्रुओं में फूट डालने का कार्य तो करता ही है वहा मार भी खाता है और यहा तक कि चाण्डाल के वेष में राक्षस को फसाने में भी सहयोग देता है। वह एक सच्चा सेवक और कर्तव्य परायण गुप्तचर है। चाणक्य ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य उसे ही सौंपा है।

सिद्धार्थचरितम्—(नाक) यह वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का लिखा ८ अंकों का नाटक है। इसका उद्देश्य है हिंसा परायण जनता के सामने बौद्ध सिद्धान्त रखकर उन्हें हिंसा से विरत करना। इसका प्रारम्भ गौतम की वाल्यावस्था से होता है और गडुल को भिक्षुत्व में दीक्षित करने तक कथानक चलता है। इसमें नृत्य गीतों की अधिकता है। प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। अनेक असाधारण छन्दों का इसमें प्रयोग है। इसकी रचना २०वीं शताब्दी के सातवें दशक में की गई।

सिद्धिवरसिंह—(नाका) ये १७वीं शताब्दी में नैपाल के राजा थे इनका लिखा हरिश्चन्द्रनृत्यनाटक बतलाया जाता है।

सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय—(नाका) २०वीं शताब्दी के पूर्व बंगाल निवासी कवि। वर्तमान विश्व विद्यालय में संस्कृत के प्रध्यापक थे और संस्कृत साहित्य परिषद् के सचिव पद पर कार्य किया। इनकी रचना में अथेजी बंगला और संस्कृत की कई अनुसन्धानात्मक कृतिया प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे चार नाटक भी प्राप्त होते हैं— अथकिम्, धरित्रीपतिनिर्वाचनम्, ननाविताडनम्, और स्वर्गीय प्रहसनम्। परिचय यथा स्थान देखिये।

(१) सीता—(नापा) उत्तर रामचरित की नायिका। वह भगवती वसुन्धरा से उत्पन्न हुई है और 'प्रजापति सम' जनक उनके पिता हैं जो योगभोग की सफल साधना करने वालों के आदर्श हैं, व्याह कर वे ऐसे राजा लोगों के परिवार में आई है जिसका उद्भव सूर्य से हुआ है। दशरथ जैसे श्वशुर, राम जैसे पति और वशिष्ठ जैसे गुरु उन्हें मिले हैं। किन्तु उनके दुर्भाग्य का ठिकाना नहीं। उन्हें अपने जीवन के महत्वपूर्ण वर्ष वनवास में या अज्ञातवास में बिताने पड़े जब उनके सभी सम्बन्धियों और स्वयं राम को इस बात का भय है कि उसकी दुबली पतली कमल शरीर लतिका मासाहारी जीवों द्वारा निश्चित रूप से विलुप्त कर दी गई होगी। इतने अधिक पवित्र परिवेश के होते हुये भी वह कलक का एक लक्ष्य बन जाती है और अकारण ही उसे जन समाज में बदनामी और फिर असौमित कष्टों का सामना करना पड़ता है। वह वीरप्रभू है, अद्भुत गुणों वाले दो वीर बालकों को उसने जन्म दिया है जिन्हें जन्म से ही जूझकर सिद्ध है। उमे केवल ज्ञात है कि उसके दो पुत्र हैं। उसे कभी माता होने के आनन्द का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं हुआ। वह कभी बच्चों के बाल विनोद का अनुरञ्जन प्राप्त नहीं कर सकी जो प्रत्येक पुत्रवती की सबसे बड़ी आकांक्षा होती है। कोई भी सी पति के पुत्रप्रेम को देखकर

निराल हो जाती है किन्तु उसके धन्य में वह भी वदा नहीं पा। यदि स्वयं नहीं तो पति को पुत्र होने से अनन्दिता होते हुये देखकर वह धन्य हो जाती- 'मुझसे ज्यादा अपना कौन है जिसके पुत्रों के मुखकमल को आर्यपुत्र ने चूम नहीं पाया।

अकारण परिष्कार पर भी साता के मन में पति के प्रति आक्रोश उत्पन्न नहीं होता। जब वानन्ता राम का उपलब्ध होता है तब वह वानन्ता को ही दास्य बतलाती है। जब अन्त में वह अपने पुत्रों और पति से निनती है तब वह ठीक ही कहती है कि यह उसका दूना जन्म है। उसका सबसे बड़ा सहारा यही है कि उसे राम के प्रेम का पूरा विश्वास है और उसे इतने से हा सन्तोष लाभ हो जाता है कि राम ने यज्ञ के लिये उसकी स्वाम्या प्रतिमा बनवाई है।

(२) सीता- (नापा) प्रतिमा नटक की एक महत्वपूर्ण पात्र है। रामायण में वाल्मीकि ने साता का उग्र स्वभाव वाली दिखलाया है। वाल्मीकि ने वन जन्म के अग्रह में और वन में मृगया में राम के जाने पर वदा राम को विपत्ति को साम्भवा में लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिये भेजने के अवसर पर उनके अत्यन्त उग्र स्वभाव का चित्रा किया है। किन्तु प्रतिमा में दोनों अवसरों पर इन दोषों को बदाया गया है। वन गमन के अवसर पर राम के यह कहने पर कि मैं अकेला ही वन जाऊंगा वे हल्के रूप में कह दती हैं कि 'इसालये दा मैं भा साथ चलूंगी। पुताहित वेशधारी राजा के निर्देश पर विदुषाद के लिये राम के मृगया के लिये चले जाने के अवसर पर लक्ष्मण पहले ही अनुपस्थित हैं। वे तद्दण्ड अभ्यास को अर्हण करने कहीं दूर जा चुके हैं। अतः क्रोध के अवसर का वदा दिया गया है। वे राम की अच्छी परामर्शदात्री हैं। कुटुम्ब को वापकर रखने का किता मर्हिता का अनक्षित गुण उनमें अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है।

(३) सीता- (नापा) अभिषेक नटक में इस पात्र का रामायण पर प्रवेश अन्त में होता है। लक्ष्मण का साता का अग्नि परीक्षा के लिये राम अदश देत है। वहा लक्ष्मण के मन में सर्वान्न विकल्प उत्पन्न होते हैं- मैं देवी की पवित्रता से पूर्णरूप से परिचित हूँ, दूसरी ओर आर्य का अंग्रेज। एक ओर स्नेह और दूसरी ओर कर्तव्य पालन। इन दोनों पक्षोंओं के बीच में ठसली हुई मेरी बुद्धि तडखडा रही है। लक्ष्मण के इन विचारों से ही साता का चित्रा हो जाता है।

(४) साता- (नापा) मरावीर चरित्र (दे) में राम और साता का मिलन विश्वामित्र के अग्रम में होता है जहा दोनों का प्रेम बद्ध मूल हो जाता है। बद्ध में धनुष तोड़कर राम इनम विवाह कर लेते हैं। साता साता के सौन्दर्य का दावना है। उमा की दुराधमन्य में राम और साता का वनवास मिलता है। अन्त में अग्नि परीक्षा द्वारा उन्ह अपने चरित्र का शुद्ध प्रमाणित हो करना पड़ता है।

(५) सीता- (नापा) बनारसवासी (२) में साता के प्रति राजा के अनुशासकों के विरुद्ध मान्य किया गया है। वह स्वयं जनकपुर जाता है किन्तु धनुष घटाकर परीक्षा

देना अपने स्वाभिमान के प्रतिकूल समझता है और धमकी देता है कि 'जो भी सीता से विवाह करेगा उसको चैन से बैठने नहीं दूंगा।' और सीता का विवाह उसकी उपस्थिति में ही होता है। सीता की सहेलिया रावण को खूब मूर्ख बनाती है। पहले वे सीता की पुतली का हाथ रावण के हाथ में दे देती हैं तब रावण प्रसन्न हो जाता है। किन्तु जब उसे मालूम पड़ता है कि वह सीता का हाथ नहीं किन्तु एक लकड़ी है तब वह दुःखी हो जाता है। वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये सीता का अपहरण करता है। वह राम को भुलावा देने के लिये सीता का कटा सर समुद्र के किनारे फेंक देता है। किन्तु वह एक पुतली है। जब वह बोलने लगती है तब राम को वास्तविकता का पता चल जाता है।

(६) सीता- (नापा) प्रसन्नराघव में राम सीता के वियोग में दुःखी है। दो विद्याधरों का प्रवेश होता है। वे माया शक्ति से रावण के यहा बन्दिनी सीता के दर्शन करा देते हैं। जब रावण सीता को मारने के लिये तलवार उठाता है तब उसके हाथ पर हनुमान द्वारा मारे गये अक्ष का सर आकर गिरता है।

(७) सीता- (नापा) उन्मत्तराघव (दे.) में वन में सीता एक ऐसे पुष्पोद्यान में घूम जाती है जो दुर्वासा के शाप से शापित है। सीता ठममें प्रवेश करते ही हरिणी बन जाती है। राम व्याकुल होकर घटकने लगते हैं और स्वगत पापण करते हैं। अन्त में अगस्त्य की कृपा से सीता को शाप से छुटकारा मिलता है।

सीताकल्याण- (नाकू) इस नाम की निम्नलिखित रचनायें प्राप्त होती हैं-

(१) बेङ्कट भूपति- (दे.) लिखित वीथी रचना। सीतारामपरिणय की कथा इसका विषय है। इसमें शुद्ध विष्ण्वम्भक का प्रयोग किया गया है जबकि शास्त्रीय दृष्टि से वीथी में उसका प्रयोग होना नहीं चाहिए।

(२) इसी नाम की दूसरी रचना बेङ्कटरामशास्त्री (दे.) की है जिसमें श्रीराम जन्म से लेकर विवाह तक की घटनायें दिखलाई गई हैं। इसमें ५ अंक हैं। इसका प्रकाशन १९५३ में किया गया है।

(३) इसी नाम की एक अन्य रचना सुब्रह्मण्यम् सूरि की बतलाई जाती है।

सीतानन्द- (नाकू) ताताचार्य कृत नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड II २८७५ में किया गया है।

सीताराघव- (नाकू) राम पाणिवाद लिखित ७ अंकों का नाटक। प्रतिष्ठित रामकथा में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। विश्वामित्र राम को जनकपुरी ले जाने के लिये पहले ही दशरथ से आज्ञा ले लेते हैं। मारोच का शिष्य मायावसु दशरथ का रूप धारण कर पहले ही जनकपुरी पहुँच जाता है और उसका सेवक कर्मम्भक सुमन्त्र के वेष में बहा पहुँचता है। किन्तु शनानन्द (जनक पुत्रोदित) दोनों को पहिचान लेते हैं। वे दोनों धनुर्भङ्ग

के पश्चात् परशुराम से सहायता लेने चले जाते हैं। शूर्पणखा अयोमुखी नामक राक्षसी को निमुक्त करती है जो मन्थरा के रूप में कैकेयी को बहकाती है। जब हनुमान सीता की खोज में लङ्का में ही है मायावसु चारण के रूप में सूचना देता है कि रावण ने सीता को और मेघनाद ने हनुमान को मार डाला है। किन्तु उसी समय दधिमुख सूचना देता है कि हनुमान सफल होकर लौटे हैं। तब वर भाग जाता है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग में स २१८५५३ पर इसका उल्लेख किया गया है।

सीताराम- (नाकः) ज्ञानकी परिणय (४) के लेखक जिसका सकलन कैटलॉगस कैटलॉगोरम स १२०६ पर किया गया है।

सीताराम आचार्य- (नाकः) भैमोनैपथीयम् (दे) नामक एकाङ्की के लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

सीतारामाविर्भावम्- (नाकः) नित्यानन्द लिखित तीन अकों का नाटक। य तीन अंक तीन पृथक् पृथक् कथानकों को लेकर चलते हैं जिनका योजकत्व है कलियुग की बुद्धियों का दिग्दर्शन। प्रथम अंक प्रतीक रूप है। राजा कलि काम क्रोधादि ६ मानव शत्रुओं से परामर्श कर विवेक को यन्दी बना लेता है साथ ही इस प्रकार का प्रयत्न करता है कि सभा ब्राह्मण सोभी बन जायें और सभी स्त्रिया व्यभिचारिणी हो जायें। दूसरे अंक में दो नास्तिक गुणधर और श्यामलाल इस विषय में वार्तालाप करते हैं कि धर्म से छुटकारा कैसे मिले। तभी उन्हें समाचार मिलता है कि एक नास्तिक ने गुणधर की सारी सम्पत्ति लूट ली है और उसकी स्त्री की हत्या कर दी है। तीसरे अंक में नारायण की श्राद्ध और धर्म सूचना देते हैं कि मर्त्य लोक में धर्म ग्लानि बहुत हो गई है। नारायण शीघ्र अवतार लेने का आश्वासन देते हैं।

इसकी रचना २०वीं शताब्दी में हुई थी और प्रथम अभिनय सीताराम दास ओंकार नाथ दव की जयन्ती पर आयोजित किया गया था।

सीताविजयेन्द्रापरिणय- (नाकः) मुञ्जहृण्यम् (दे) लिखित नाटक। मद्रास पुस्तकालय के डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग में XXI ५१२ पर इसका उल्लेख किया गया है। मुञ्जहृण्य का नाम पर ही एक अन्य कृति विजयेन्द्रापरिणय का उल्लेख कैटलॉगस कैटलॉगोरम ॥ १३५ पर किया गया है। कहा नहीं जा सकता कि दोनों कृतिया तथा दोनों लेखक एक ही हैं या पृथक् पृथक्।

(१) सीता विवाह- (नाकः) गणार्द्रि (२) लिखित नाटक। इसका सङ्कलन तनौर की पैलेस लायब्रेरी के कैटलॉग में खण्ड ८ स ३५२४ पर किया गया है।

(२) सीता विवाह- (नाकः) कृष्णामुरि क पुत्र मुञ्जहृण्यम् का निष्ठा ५ अकों का नाटक।

सीताहरणम्- (नाकः) इस नाम की दो कृतिया प्राज्ञ द्वारा हैं-

(१) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ५ अंकों का नाटक ।

(२) वनमाला- (दे) लिखित नाटक ।

सुकुमार- (नाका) १२वीं शताब्दी के कवि । इन्होंने रघुवीर चरित (दे) की रचना की थी ।

सुकुमार पिल्ले- (नाका) इनका लिखा लक्ष्मीस्वयंवर नाटक प्रकाश में आया है ।

सुग्रीव- (नापा) रामायण का एक प्रतिष्ठित पात्र । यह पताका नायक है और इसमें इस प्रतिष्ठा के सारे गुण विद्यमान हैं । इसका अपना स्वार्थ है जो राम की स्वार्थ पूर्ति के पहले ही पूरा हो जाता है । वह राम के स्वार्थ साधन में पूरा योगदान देता है, राम का परम भक्त है । कुछ लोगों ने इसे पीठमर्द भी कहा है (जो नायक से कुछ कम गुणों वाला उसका मित्र एवं सहायक होता है) । राम ने वाली के होते हुये ही इन्हें राजा बना दिया था । इस प्रकार व्यक्तित्व के अधिकार परिवर्तन के कारण साहित्य दर्पण में आरम्भोवृत्ति के अग सक्षिप्तक का भी इसे उदाहरण माना गया है ।

राम विषयक नाटकों में इसका पात्र रूप में उपादान हुआ है जिनमें कतिपय निम्नलिखित हैं-

(१) प्रतिमा नाटक- सीताहरण के बाद राम ने सुग्रीव से मैत्री की और वाली के प्रतिकूल सहायता देने का वचन दिया । रामायण में वाली और सुग्रीव का दो बार युद्ध हुआ था । किन्तु प्रतिमा नाटक में दोनों युद्धों को एक में मिलकर दिया गया । इससे युद्ध कुछ सक्षिप्त हो जाता है ।

(२) महावीर चरित- में सीताहरण के बाद शोकाकुत राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मैत्री करते हैं । अपहरण के मार्ग में सीता अपने आभूषण ऋष्यमूक पर्वत पर गिराती गई थी । वहा सुग्रीव से राम उन निशानियों को प्राप्त कर लेते हैं । लका से निष्कासित विभीषण ऋष्यमूक पर्वत पर राम से मिलकर सीता का विचरण देना चाहता है किन्तु रावण का मन्त्री माल्यवान वाली से कहकर उससे विभीषण के ऋष्यमूक पर जाने पर प्रतिबन्ध लगा देता है ।

राम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहते हैं और अपने शत्रु वाली का वध करते हैं । मरते समय वाली अपने भाई सुग्रीव को सीता की खोज में राम की पूरी सहायता करने का आदेश देता है जिसे सुग्रीव पूरी तन्मयता से पूरा करते हैं और केवल खोज में ही नहीं सीता प्राप्ति में भी राम की सहायता देते हैं ।

(३) अनर्घराघव- में कबन्ध राक्षस से गुह निशद की बचाने के प्रयत्न में लक्ष्मण दुन्दुभि के ककाल वृक्ष को उलट देते हैं जिससे क्रुद्ध होकर वाली युद्ध करने आता है और मारा जाता है । तब नेपथ्य में सूचना दी जाती है कि वाली के स्थान पर सुग्रीव का

राजतिलक किया जा रहा है और सीता की प्राप्ति के लिये सुग्रीव ने खोज करवाने का वचन दिया है। यह सब सूच्य ही है। मित्र गुह के साथ लक्ष्मण उस राज्याभिषेक में सम्मिलित होते हैं। अन्त में सुग्रीव कुवेर के पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्या की ओर आते हैं जिस यात्रा में अनेक प्रदेशों, नगरों और पर्वतों को पार करते हैं।

(४) प्रसन्नराघव- में रामकथा विभिन्न वर्णनों में कही गई है। सुग्रीव यमुना का भाई है जिसका वाली ने निर्वासन कर दिया है। अतः यमुना अपने दुःख का वर्णन गंगा से करती है। बाद में तुलसीदास आकर वालिवध और राम तथा सुग्रीव की मैत्री का समाचार देती है। अन्त में राम के दल के साथ सुग्रीव अयोध्या यात्रा करते हैं।

सुग्रीवकेलनम्- (नाक) शारदातनय द्वारा दिया गया काव्य नामक उपरूपक का उदाहरण। यह रचना अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

सुचेतना- (नापा) यह अविमारक (दे) में सौवीर राजा की पत्नी तथा सुदर्शना (सौवीर राजा की पत्नी) की बहन है। इसने सुदर्शना से उसके पुत्र अविमारक को गोद ले लिया था।

सुदती सप्ततिञ्जयम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) लिखित ७ अंकों का नाटक।

सुदर्शन- (नाका) ये पञ्चनद निवासी आचार्य थे इनका लिखा अनर्घनलघुरित महानाटक कहा जाता है जिसका प्रकाशन चौखम्बा प्रकाशन बनारस से हुआ है।

सुदर्शनपति- (नाका) इनके नाम पर दो नाटक पाये जाते हैं- सत्यचरितम् (दे) और सिंहल विजयम् (दे) सम्भवतः ये दोनों कृतिया एक ही व्यक्ति (प्रसन्न कवि ही) की कृति हैं। इनका सम्बन्ध उड़ीसा से प्रतीत होता है।

सुदर्शनविजय- (नाक) श्रीनिवासाचार्य लिखित नाटक। इसमें पौण्ड्रक विनाश का कथानक अपनाया गया है।

सुदर्शनशर्मा- (नाका) शङ्कराशेखर भाण के लेखक इनका समय २०वीं शताब्दी का मध्यभाग है।

सुदर्शना- (नापा) अविमारक में काशिराज की पत्नी जिसने अग्निदेव से अविमारक को जन्म दिया था और बाद में सौवीरराज की पत्नी सुचेतना को गोद दे दिया था। सुचेतना उसकी बहन थी।

सुदर्शनार्थ- (नाका) सिद्धान्त भेरी (दे) नामक कृति के लेखक जिसका सङ्कलन मैमूर के पुस्तकालय में किया गया है।

सुघोन्द्र- (नाका) (दे) सुभद्रा परिणय (७)।

सुन्दर- (नाका) इनके लिखे अनगणगल भाण का उल्लेख वैटेलामस वैटेलामोरम ११२ पर किया गया है।

सुन्दर ताताचार्य- (नाका) इनके लिखे भाण शङ्कर रत्नाकर का उल्लेख एई गफ

ने अपने प्रचीन सस्कृत साहित्य के अभिलेख में किया है।

सुन्दरदेव- (नाका) इनका लिखा मुक्ति परिणय एक प्रतीक नाटक है। तजौर की पैलेस लायब्रेरी के मैनुस्क्रिप्ट कैटेलाग में स VIII ३४६५ पर इसका उल्लेख है। विनोद रंग नामक प्रहसन भी शायद इन्ही का है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में स I ५७७ पर किया गया है।

सुन्दरमिश्र- (नाका) ये १७वें शताब्दी के प्रथमचरण के कवि हैं। इन्हें सुन्दर जाज्जगिरि भी कहा जाता है। इनके लिखे एक नाटक अभिराममणि (दे) और एक नाट्य शास्त्रीय कृति नाट्यप्रदीप का उल्लेख पाया जाता है।

सुन्दरराज आचार्य- (नाका) ये आत्रेयगोत्रीय वरदराज के पुत्र थे। इनका जन्म ट्रावन्कोर में एलायुर अग्रहारम् के अन्तर्गत १८४१ में हुआ था तथा ६३ वर्ष पर्यन्त वहीं रहे। इन्होंने मास्तमन्त्र सिद्ध कर लिया था। इसलिये जब चाहते थे हनुमान की शक्ति प्राप्त कर लेते थे जिससे किसी रोग के वास्तविक कष्ट का इन्हें ज्ञान हो जाता था। इनकी पत्नी का नाम बेडूट लक्ष्मी था। ये सस्कृत के उद्भट विद्वान और जन्म जात कवि थे। इनको ट्रावन्कोर के शासकों का आश्रय प्राप्त था और ये राजकीय कवि केरलवर्मा के मित्र थे। इनका साहित्य बहु आयामी है जिसमें प्रमुख रूप से काव्य है, चम्पू है, नाटक है, टीकाये हैं। इनके भाई के पौत्र वरदराज ने इनके जीवन चरित्र को लेकर एक चम्पू की रचना की थी। इनके ५ नाटक प्राप्त होते हैं- पद्मिनी परिणय, रसिकरजन, वैदर्भी वासुदेव, स्नुषाविजय और हनुमद्विजय। (परिचय यथास्थान)

इनकी रचनाओं का विवरण ट्रावन्कोर, एरिथ्यापुरम्, और मद्रास के पुस्तकालयों में पाण्डुलिपि कैटेलागों में दिया हुआ है।

सुन्दर वीररघूदह- (नाका) भोज राजाङ्कनाटक (अक) के लेखक। समय १९वीं शताब्दी।

सुन्दर वीरराघव- (नाका) कपूल गोत्रीय कस्तूरी रंगनाथ के पुत्र और वीरराघव के पौत्र थे। इनका निवास स्थान दक्षिण अर्काट जिला में सिरुवल्लूर था। इनकी तीन नाट्यकृतिया उपलब्ध होती हैं- भोज राजाङ्क (दे) रम्भारावणीय (दे) और अभिनवराघव (दे)।

सुन्दरार्य- (नाका) मार्कण्डेय विजयम् (दे) के लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

सुन्दरेश शर्मा- (नाका) प्रेम विजय (दे) नाटक के लेखक। इनका समय बीसवीं शताब्दी है।

सुप्रभात स्वयवरम्- (नाक) कलकत्ता निवासी वीरेन्द्र भट्टाचार्य लिखित नाटक। इसमें महभारत की सुप्रभा और अष्टावक्र के प्रणय की कथानक के रूप में स्वीकार किया गया है।

सुवालावक्रतुण्ड- (नाका) यह राम कवि (२) (दे) की रचना है। इसमें ५ अंक हैं। वक्रतुण्ड एक चूहा है जिसकी पत्नी का नाम सुवाला है। रक्ताद्वंद नामक सर्प सुवाला को अपने शिकार के रूप में पकड़ लेता है। उस सर्प को वक्रतुण्ड मार डालता है और पत्नी को छुड़ा लेता है।

(डिक्लिप्टिव कैटेलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास XXI ८५५४ पर इसका उल्लेख किया गया है।)

सुबुद्धि- (नापा) वत्सराज लिखित रुक्मिणी हरण (दे) में एक सौ पात्र जिसकी भाषा गस्कृत है।

सुब्रह्मण्य- (नाका) इनका लिखा सीता विजयेन्द्रा परिणय नामक एक नाटक मद्रास पुस्तकालय के डिक्लिप्टिव कैटेलाग में स XXI ५१२ पर उपलब्ध हो सकता है। सम्भवत इन्हीं सुब्रह्मण्य ने भवभूति के महावीर चरित के अन्तिम भाग की पूर्ति की। नाम से ही प्रकट होता है कि ये दक्षिण भारतीय थे। साथ ही वीरराघव ने महावीर चरित के अन्तिम भाग की व्याख्या के लिये इन्हीं के द्वारा पूरे किये गये भाग को स्वीकार किया। यह भी एक प्रमाण है कि ये दक्षिण भारतीय थे।

वीथ के अनुसार भारतीय परम्परा ५वें अंक के ४६ वें पद्य तक ही महावीर चरित की रचना भवभूति कृत मानती है। शेष भाग की पूर्ति सुब्रह्मण्य कवि द्वारा की हुई बतलाई जाती है। किन्तु वीथ ने इस प्रसिद्धि पर विश्वास नहीं किया है क्योंकि यह तभी सम्भव है जब महावीर चरित भवभूति की अन्तिम रचना हो। किन्तु ऐसा है नहीं। उत्तर रामचरित (दे) अधिक प्रौढ़ है। अतः वही उनकी अन्तिम रचना होनी चाहिए। यह तर्क इस मान्यता पर आधारित है कि कवि की बाद की रचना ही अधिक प्रौढ़ होती है। किन्तु यह तर्क पूर्ण विश्वसनीय नहीं है। कभी कभी किसी प्रौढतम कृति के बाद की लेखक की रचनायें शिथिल भी पाई जाती हैं। अतः इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

सुब्रह्मण्यसूरि- (नाका) इनका जन्म पुडुक्कोट्टा के निकट कडवुडि में १८५० में हुआ था। इनके पिता का नाम शङ्कर नारायण था। ये राजा कानैज पुडुक्कोट्टा में सस्कृत विभाग के प्रोफेसर थे। इनका ज्ञान बहुतुछी था— कविता, व्याकरण, संगीत, नाट्य एवं चित्रकला इत्यादि अनेक दिशाओं में इनकी प्रतिभा का क्षेत्र व्यापक था। इनकी वाणी में माधुर्य था जिससे इनकी कथा का श्रवण करने के लिये बहुत बड़ा जन समूह एकत्र हो जाया करता था इन्होंने ७ अंकों का वत्सोबाहुलेयम् (दे) नाटक और मम्मथभादन नामक एक भाग लिखा था। इसके अनिश्चित इनके लिखे अनेक गद्यकाव्य, लघुकाव्य, काव्य प्रबंधकाव्य, संगीतपरक कथानक, रामविषयक काव्य, पुराण परक रचनायें इत्यादि बहुत कुछ सम्पत्ति हैं। विभिन्न देवताओं के विषय में दोलागोत और हल्लीसमझारिया समिद्ध हैं। इनका सम्पूर्ण रामायण पर लिखा माहिर्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सुब्रह्मण्य

सूरी के नाम पर सौताकल्याणम् (दे) नाटक बतलाया जाता है। हो सकता है वह इन्हीं की रचना हो।

सुभगानन्द- (नाकू) वासुदेव नरेन्द्र (उपनाम श्रीवत्साङ्ग) लिखित एक प्रहसन। गोविन्दश्रीवत्साङ्ग के ही ये दूसरे नाम ज्ञात होते हैं। मालूम पड़ता है कि ये कश्मीर के प्रमुख अधिकारी थे। इस रचना का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १७२७ और तजौर पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग की ग्रन्थसूची VIII ३६३४ पर किया गया है।

सुभट- (नाका) दूताङ्गद (दे) नाटक के लेखक। इनके कवित्व की प्रशंसा नमिसाधु और सोमेश्वर ने अत्यधिक मात्रा में की है। इनकी केवल यही एक कृति उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। राजशेखर के अनुसार सोमेश्वर का समय १३वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। अतः इनका भी समय यही होना चाहिए। इन्हें कहीं कहीं मदनसुभट की भी संज्ञा दी गई है। ये गुजरात निवासी बतलाये गये हैं।

सुभद्रा- (नापा) कृष्ण की बहन जिसका अपहरण कृष्ण की सम्मति से अर्जुन ने किया था। इस विषय पर अनेक नाट्यकृतियाँ प्रकाश में आई हैं जिनका प्रस्तुत पुस्तक में यथा स्थान परिचय दिया गया है उन कृतियों की यह नायिका है।

सुभद्रा- (नाकू) दे सुभद्रानाटिका।

(१) **सुभद्राघनञ्जय-** (नाकू) केरल के राजा कुलशेखर का लिखा नाटक जिसमें अर्जुन द्वारा कृष्ण की बहन सुभद्रा के हरण का कथानक नाट्य विषय बनाया गया है।

(२) **सुभद्राघनञ्जय-** (नाकू) गुप्तराम (दे) लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें सुभद्रा के विवाह का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन जर्नल आफ सस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता से हुआ है। इसका सकलन मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक पाण्डुलिपि अनुभाग में स XXII ८५५६ पर किया गया है।

(३) **सुभद्राघनञ्जय-** (नाकू) विजयोन्द्रतीर्थ (दे) लिखित नाटक।

सुभद्रा नाटिका- (नाकू) १३वीं शताब्दी की हस्तिमल्ल जैनाचार्य लिखित नाटिका। इसमें चार अंक हैं। इसे केवल सुभद्रा सुभद्रापरिणय और सुभद्राहरण इन नामों से भी याद किया जाता है। इसकी एक प्रति मैसूर के प्राच्य पाण्डुलिपि पुस्तकालय में स २८७ पर विद्यमान है।

(१) **सुभद्रा परिणय-** (नाकू) यह व्यासश्री रामदेव (दे) लिखित नाटक है जिसे छायानाटक के रूप में कतिपय निचरकों ने स्वीकार किया है। कृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन द्वारा अपहरण तथा विवाह इस नाटक का विषय है। इसका उल्लेख ब्रिटिशम्यूजियम् कैटेलाग में किया गया है। बृहदेव के राज्यकाल में इसका प्रथम अभिनय किया गया

था। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट लायब्रेरी में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में एवं कैटेलागस कैटेलागोरम में भी किया गया है।

(२) सुभद्रापरिणय- (नाकू) भूमिनाथ दीक्षित लिखित ५ अकों का नाटक। ट्रायेनिपल कैटेलाग आफ सस्कृत मैनुस्क्रिप्टस इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में स ११०४० पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रथम अभिनय मध्वार्जुन प्रभु की विजय यात्रा पर आयोजित किया गया था।

(३) सुभद्रापरिणय- (नाकू) दे सुभद्रानाटिका।

(४) सुभद्रापरिणय- (नाकू) इसके लेखक रघुनाथाचार्य हैं। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १७२८ पर किया गया है।

(५) सुभद्रापरिणय- (नाकू) चैट्टठाध्वोण कृत नाटक। इसके केवल दो अंक प्राप्त होते हैं जो कवि के जन्म स्थान अरशाणिपलई में सुरक्षित हैं।

(६) सुभद्रापरिणय- (नाकू) इस नाट्यकृति का उल्लेख तजौर राजभराने के आश्रित कवियों की रचनाओं में किया गया है। रचनाकार और लेखक का पता नहीं है।

(७) सुभद्रापरिणय- (नाकू) सुधीन्द्रलिखित नाटक।

सुभद्रार्जुन- (नाकू) केशवशास्त्री का लिखा नाटक। ट्रावनकोर के पुस्तकालय में स १८२ पर सुरक्षित प्रति।

सुभद्रा विजय- (नाकू) यह सुभद्रा और अर्जुन के कथानक को लेकर लिखा गया नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स १७२८ में किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं।

(१) सुभद्राहरणम्- (नाकू) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ६ अकों का नाटक।

(२) सुभद्राहरणम्- (नाकू) दे सुभद्रा नाटिका।

(३) सुभद्राहरणम्- (नाकू) माधव भट्ट लिखित श्रीगद्दित। इस नाटक का कथानक सुभद्रा के अर्जुन के साथ पलायन पर आधारित है। अर्जुन एक सन्यासा के रूप में सुभद्रा के घर पर जाकर रहते हैं और वहाँ से उसका अपहरण कर लेते हैं। इस रचना में नाट्य शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग विश्वनाथ के अनुसार किया गया है जिसमें कवि ने अनुमान लगाया है कि यह रचना विश्वनाथ के बाद की है। यह सम्भवतः १६०० ई के पहले की रचना है। इसका एक पद्य के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि इस नाटक का सम्बन्ध छायानाटक में है। कैटेलागस कैटेलागोरम में इसका उल्लेख। ७४८ पर किया गया है और बम्बई से इसका प्रकाशन हुआ है। कवि ने इस रचना का ही श्रीगद्दित का एकमात्र उदाहरण माना है।

सुभद्राहरण- (नाकू) यह एक एकाकी है जिसकी रचना केरलवासों ताम्पूरन ने १९वीं शताब्दी में की थी।

(५) सुभद्राहरण- (नाक) दे सुभद्रा नाटिका ।

सुभाष सुभाषम्- (नाक) यतीन्द्र विमल चौधरी लिखित ६ अकों का नाटक । इसमें सुभाषचन्द्र बोस द्वारा विदेश जाकर भारतीय स्वाधीनता के लिये उद्योग करने को नाटक का विषय बनाया गया है । इसमें झांसी की रानी ब्रिगेड आजाद हिन्द फौज इत्यादि का चित्रण किया गया है ।

सुमतिजितामित्र मल्लदेव- (नाका) ये भलगाव के राजा थे । इन्होंने अश्वमेध नाटक (दे) की रचना की थी ।

सुमित्रा- (नापा) कौमुदी मित्रानन्द (दे) का एक पात्र । यह एक सार्यवाह की पुत्री है और कौमुदी की सहचरी बन जाती है तथा उसके साथ ही आदिवासियों के सरदार चन्द्रदत्त द्वारा बन्दी बना ली जाती है । अन्त में राजा के पत्र द्वारा उसकी मुक्ति होती है और कौमुदी के प्रयत्न से मित्रानन्द के सहचर मकरन्द के साथ उसका विवाह हो जाता है ।

सुरपुरम् अण्णराय- (नाका) इन्हें अण्णराय सुरपुरम् की भी सज्ञा दी जाती है । इनका लिखा रसोदर (दे) भाण प्राप्त होता है ।

सुरेन्द्र मोहन पञ्चतीर्थ- (नाका) ये बीसवीं शताब्दी के कलकत्ता निवासी नाटककार थे । इन्होंने बालोपयोगी अनेक लघुनाटकों की रचना की जिनमें प्रमुख हैं- वैद्यदुर्गह, काञ्चनमाला, पञ्चकन्या, प्रजापते पाठशाला, अशोककानने जानकी, वणिक्सुता इत्यादि । इनके नाटकों का प्रकाशन मञ्जूषा में हो गया था (परिचय यथास्थान) ।

सुरसंगता- (नापा) रत्नावली में सागरिका की सखी । वह एक योग्य तथा सहृदय सहेली है । जिसके उद्योग से ही सागरिका और राजा का सम्मिलन हुआ है । वह सागरिका के बनाये राजा के चित्र के पास सागरिका को काम देव की रति कहकर चित्रित कर देती है । वह नटखट भी है और हसी मजाक में भी निपुण है । जब राजा कहते हैं- 'तुमने यह कैसे जान लिया कि मैं यहा हू ?' तब वह उत्तर देती है- 'आपको ही नहीं इस चित्र को भी जान लिया है । अब मैं सब बातें रानी से कहूँगी ।' यह बात उसने मजाक में ही कही है, किन्तु राजा को भयभीत करने के लिये काफी है । वह अन्त तक सागरिका से प्रेम सम्बन्ध का निर्वाह करती है ।

यह एक सच्ची सहेली है । वासवदत्ता द्वारा सम्मान के साथ उसे उतरदायित्व दिया जाता है कि वह राजा से सागरिका को दूर रखे । किन्तु वह मित्रता को महत्व देती है और रानी द्वारा दिये गये वस्त्र की सहायता से राजा और सागरिका को मिलाने की चेष्टा करती है । वह एक कलाकार भी है और बात की बात में राजा के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र बना देती है । नाटक में उसका स्थान महत्वपूर्ण है ।

सेतुनाटक- (नाक) माणिक्यसूरि का लिखा नाटक ।

सेवन्तिका परिणय- (नाक) चोक्कनाथ (दे) लिखित नाटक। इसमें मित्रवर्मा की पुत्री सेवन्तिका और वासवराज के विवाह का वर्णन है। मित्र वर्मा मालावार के राजकुमार थे। ये कोचीन के गोदावर्मन के साथ युद्ध में पराजित हो गये थे। तब उन्हें मुकाम्बा के मन्दिर में गिरफ्तार कर रक्खा गया था। बाद में वासवराज ने उन्हें अत्यन्त सम्मान के साथ एक महल और अनेक प्रकार की दूसरी भेंटें प्रदान की और इसी उपलक्ष्य में वासवराज के साथ मित्रवर्मा की पुत्री सेवन्तिका का विवाह हो गया।

सैरन्धिका- (नाक) इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती।

सोमता- (नापा) मोहराज पञ्चजय (दे) में एक पात्र। यह नायिका कृपासुन्दरी की सहेली हैं। जब दोनों सहेलिया बात कर रही थीं राजा ने छिपकर सुन लिया और उसी से उनका प्रेम अकुरित तथा विकसित हुआ।

सोमदत्त- (नापा) अश्वघोष के ठच्छिन्न गणिका विषयक रूपक (दे) का नायक। यद्यपि उपलब्ध नाटक भाग से नायकरूपता सिद्ध नहीं होती। नायक का नाम नायक ही दिया गया है किन्तु उपलब्ध भाग पर विचार करने से निष्कर्ष यही निकाला जाता है कि सोमदत्त सम्भवतः उस नाटक का नायक ही होगा।

(१) **सोमदेव-** (नाका) इनके लिखे नाटक रामायण कथा का उल्लेख अभिनव गुप्त ने किया है। वह नाटक अब प्राप्त नहीं होता। ये कथा सरित्सागर वर सोमदेव तथा तलित विग्रहराज नाटक के लेखक सोमदेव या सोमेश्वर से भिन्न हैं।

(२) **सोमदेव-** (नाका) ये १२वीं १३वीं शताब्दी के कवि हैं। इनका लिखा प्रशस्ति नाटक तलित विग्रहराज (दे) अजमेर के शिलाखण्डों पर खुदा हुआ है। विग्रहराज ने यह खुदाई कराई थी और बाद में मुसलमान आक्रान्ताओं ने उन शिलाखण्डों को अजमेर की मस्जिद में लगा दिया। ये सोमदेव कथासरित्सागर के लेखक सोमदेव से भिन्न हैं।

सोमवल्ली योगानन्द- (नाक) अरण गिरिनाथ (१) दे लिखित एक ग्रन्थ। इसमें एक गिरी हुई विवाहित महिला के प्रति एक सन्यासी की वामुक प्रार्थनाओं का वर्णन किया गया है जिसमें परिहास की समझी भरी पड़ी है। इसकी पाण्डुलिपि तञ्जौर पुस्तकालय पाण्डुलिपि विभाग (२८) और मद्रास पुस्तकालय के विवरणात्मक पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्त की जा सकती है।

सोम सिद्धान्त- (नापा) प्रबोध चन्द्रोदय (दे) में एक पात्र। बौद्ध और जैन दर्शन के समान यह भी एक सुन्दरी लिये बैठा है और उसे श्रद्धा बतलाता है। किन्तु वह वास्तविक श्रद्धा (शान्ति की जन्मदात्री भा) नहीं है। वह झूठी श्रद्धा है। इसका दूरय राख्य जनव है। नाट्यकार ने उपहास के लिये इस नाटक में स्थान दिया है।

सोमिल- (नाका) दे रामिल ।

सोमेश्वर देव- (नाका) कहीं कहीं ये स्वयं को सोमशर्मा भी कहते हैं । कुमारपाल के राजपुरोहित कुमार और लक्ष्मी से इनका जन्म हुआ था । राजशेखर ने अपने प्रबन्धकोश में लिखा है कि ये वीरभद्र के दरबार में १२४३ से १२७१ तक रहे थे । ये और इनके पूर्वज चालुक्य वंश के आश्रय में रहते थे । अन्य रचनाओं के अतिरिक्त इनके दो नाटकों का भी उल्लेख पाया जाता है- उत्ताघराघव और रामायणनाटक जिसका उल्लेख बम्बई क्षेत्र में संस्कृत पाण्डुलिपियों की पेटर्सन की खोज रिपोर्ट में खण्ड ३ स ८१६ पर किया गया है । हो सकता है रामायणनाटक के लेखक कोई अन्य सोमेश्वर या सोमदेव रहे हों ।

सौगन्धिका परिणय- (नाक) इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स १७३७ पर किया गया है । यह एक विवाह विषयक नाटक है । इसके लेखक का पता नहीं है ।

(१) सौगन्धिकाहरण- (नाक) भगवान बुद्ध के समय का एक रूपक जिसका अभिनय राजगृह में किया गया है । इसके अभिनेता थे भगवान बुद्ध के शिष्य उपतिष्य और भौद्रत्यायन । इसका पाठ्य अवदान शतक और दिव्यावदान में दिया गया है ।

(२) सौगन्धिकाहरण- (नाक) विश्वनाथ का लिखा व्यायोग । इसका विभाजन दृश्यों या अंकों में नहीं किया गया है । एक छोटा सा मध्यान्तर अवश्य है । इसमें महाभारत के उस कथानक का नाटकीकरण किया गया है जिसमें गन्धर्वों द्वारा लाये गये पारिजात पुष्प को देखकर द्रौपदी उसके प्रति आकर्षित हो जाती है और भीम से वैसा ही पुष्प लाने का आग्रह करती है । भीम पुष्प की खोज में जाता है जहाँ मार्ग में उसकी भेंट अपरिचित भाई हनुमान से हो जाती है । दोनों का मुष्टामुष्टि युद्ध प्रारम्भ ही होने वाला है इसी बीच में कुबेर आकर दोनों की वास्तविकता बतलाकर सघर्ष शान्त कर देते हैं । वे भीमसेन को उसी प्रकार का गुच्छा देकर उनकी आवश्यकता पूरी कर देते हैं । सवाद ओजस्वी तथा वक्रोक्तियों से पूर्ण है ।

इस समय प्राप्त होने वाली प्रति स्वयं को प्रेङ्खण बतलाती है जबकि विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इसे व्यायोग का उदाहरण बतलाया है । कथ और विष्टरनित्य इसे विश्वनाथ की स्वयं रची हुई रचना बतलाते हैं । यह कुछ समझ में नहीं आता कि अपनी ही एक ही कृति को कोई व्यक्ति पृथक् पृथक् श्रेणी में कैसे स्थान दे सकता है । सम्भवतः व्यायोग के रूप में लिखी हुई कोई दूसरी कृति होगी जो अब उपलब्ध नहीं होती जिसका विश्वनाथ ने उदाहरण के रूप में उपयोग किया है ।

इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम स १७३७ पर किया गया है । काव्यमाला सरीज बाम्बे से इसका प्रकाशन हो चुका है जो १४५ पद्यों तक विस्तृत, वीर रस की अभिव्यक्ति से परिपूर्ण १ अंक का नाटक है । केवल भीमसेन और हनुमान की बातचीत की इसमें प्रधानता है ।

सौदामिनी- (नापा) मालतीमाधव में बौद्ध भिक्षुणी तथा कामन्दकी की शिष्या । यह मालता को कपालकुण्डला के चगुल से छुड़ाती है और अन्त में मालती द्वारा धारण की हुई माला को प्रत्यभिज्ञान के रूप में प्रस्तुत करती है । यह सात्विक प्रवृत्ति की महिला है और इसके कार्य भी सात्विक हैं ।

सौभद्र- (नाक) विनायक राव वोकील (दे) लिखित नाट्य कृति । रचनाकाल २०वीं शताब्दी ।

सौभद्रम्- (नाक) यह संगीतसौभद्रम् शीर्षक मराठी नाटक का संस्कृत अनुवाद है । इसके अनुवादक हैं वेलण्कर । मूल मराठी नाटक किलोस्कर का लिखा हुआ था । बम्बई में इसका कई बार अभिनय किया गया और इसे अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई ।

सौभद्रिका- (नाक) इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है । रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है ।

सौभाग्य महोदय- (नाक) जगन्नाथ शीघ्र कवि (दे (३) जगन्नाथ) लिखित प्रतीक नाटक । इसमें भावनगर के महाराजा वखतसिंह के दरबार में सभी अलंकार सभासद के रूप में उपस्थित होकर अपने कार्य कलाप का वर्णन करते हैं । यह १७वीं शताब्दी की रचना है । इसका परिचय भाईरं रिव्यू के १६वें अंक में दिया गया है । इसकी एक दूसरी सज़ा सौभाग्य सूर्योदय भी है ।

सौभाग्य सूर्योदय- (नाक) दे सौभाग्य महोदय ।

सौम्य सोमम्- (नाक) (२) श्रीनिवास शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक । इसमें स्वामी कार्तिकेय का जन्म दैत्यों का विनाश और इन्द्र के प्रभुत्व की पुनः स्थापना नाटक के विषय हैं । लम्बी एकोक्तिया और लम्बे संवाद इसकी विशेषताएँ हैं ।

स्कन्द शंकर खोत- (नाका) इन्होंने कई नाटकों की रचना की थी जिनमें उल्लेख्य है- ध्रुवावतार, मालाभविष्यम्, सात्वावैद्य और हा टन्त शारदे ।

स्तव्यपौगण्डम्- (नाक) नाट्यमण शास्त्री (१) लिखित ५ अंकों का नाटक ।

स्तम्भितरम्भक- (नाक) साहित्यदर्पण और भावप्रकाशन में प्रौढक (उपरूपक विधा) के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है । यह कृति अब उपलब्ध नहीं होती । यह ७ अंकों का रूपक बताया गया है जिसमें नाट्यशास्त्र के चार्तिककार हर्ष द्वारा बताया हुआ प्रौढक लक्षण घटित होता है ।

स्नुषाविजय- (नाक) मुन्दरराव आचार्य (दे) लिखित नाटक । इसमें एक ऐसे परिवार का मनस्यो भूतक चित्रण किया गया है जिसमें शत्रु और पति पत्नी अर्धे पात्र हैं जबकि मास और नन्द दुष्ट हैं । पात्रों के चरित्र उनके नामों से ही प्रकट होते हैं- श्वशुर मुन्दरराव पति - मुगुण बहू सन्ध्यावि मास - दुष्टरा, नन्द दुर्ललित । बहू सर्वदा पदों में रक्ता है और उसके चरित्र का ज्ञान सोनों के संवाद से होता है । इसका

रवनाकाल १९वीं शताब्दी है।

स्फुलिंगकवि- (नाक) दे मल्लिकार्जुन।

स्यमन्तक- (नाक) जगू आलवार आयगर (दे) की रचना। जिसमें कृष्ण के स्यमन्तक विषयक प्रवाद को कथानक के रूप में अपनाया गया है। इसी नाम की एक रचना जगू श्री वकुलभूषण (दे) की प्रशंसा में आई है। सम्भवतः यह एक ही कृति है, तोड़क के दो नाम हैं जगू आलवार आयगर और जगू श्रीवकुलभूषण।

स्यमन्तकोद्धार- (नाक) कालीपाद तर्काचार्य लिखित नाटक। इसका विभाजन दृश्यों में किया गया है। दृश्य भी अकों के समान बड़े हैं। अकों को ही दृश्य कह दिया गया है जिसकी संख्या ५ है। इसमें श्री कृष्ण के स्यमन्तक विषयक कथानक को अपनाया गया है। इसमें गीतों की अधिकता है। अङ्गोरस वीर है और अगरस शूङ्गार है। सभी पात्र संस्कृत बोलते हैं। वनदेवी विष्णुशक्ति इत्यादि पात्र मानव रूप धारण कर रंगमञ्च पर उपस्थित होते हैं।

स्वप्नदशानन- (नाक) यह भीमट (दे) का लिखा नाटक है जिसका उल्लेख राजशेखर ने किया है। राजशेखर के अनुसार यह भीमट का सर्वोत्तम नाटक है। किन्तु अभी तक यह प्राप्त नहीं हो सका है।

स्वप्नवासवदत्तम्- (नाक) भास (दे) के उपलब्ध साहित्य में प्रौढतम कृति। उदयन कथा पर भास ने दो नाटक लिखे थे- प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम्। प्रथम नाटक उदयन और वासवदत्ता के प्रणयबन्धन तक सामित है और दूसरे में बाद की घटनाएँ दिखलाई गई हैं। किसी सिद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि उदयन पर विपत्ति आयेगी और मगध की राजकुमारी से उनका विवाह हो जाने के बाद मगधराज की सहायता में उनकी विपत्ति दूर हो जायेगी। संयोगवशात् विपत्ति आ गई। किन्तु पद्मावती के साथ विवाह में सब से बड़ी बाधा थी उदयन का वासवदत्ता से सीमातीत प्रेम। मन्त्रियों ने वासवदत्ता को विश्वास में लेकर योजनानुसार प्रसिद्ध कर दिया कि लावाणक नगर में वासवदत्ता जलमयी है और उसको बचाने के उद्योग में यौगन्धरायण भी जल मरा है। इस विश्वास पर कि अब पद्मावती से उदयन के विवाह का मार्ग प्रशस्त हो गया है यौगन्धरायण अपनी विधवा बहन बतलाकर अवन्तिका के नाम से वासवदत्ता को पद्मावती के साक्ष्य में दे देता है। पद्मावती और उदयन का विवाह हो जाता है। किन्तु उदयन वासवदत्ता के वियोग में बहुत दुःखी है। उसे सूचना मिलती है कि पद्मावती बीमार है। वह उसे देखने समुद्र ग्रहक में जाता है जहाँ पद्मावती नहीं है। राजा सूनी चारपाई पर लेट जाता है और उसे नींद आ जाती है। उसी समय बीमार पद्मावती को देखने वासवदत्ता भी आ जाती है। राजा स्वप्न की बड़बड़ाहट में वासवदत्ता से बातें करता है और वासवदत्ता भी आ जाती है। राजा स्वप्न की बड़बड़ाहट में वासवदत्ता से बातें करता है और वासवदत्ता कुछ देर बातों में बातें मिलाती है। पर जागृतिये जाने के भय से वहाँ से चल देती है। किन्तु चलते चलते राजा की बाँह चारपाई पर टोक करके रख देती है जिससे राजा जाग

जाता है और उसे पकड़ने की चेष्टा करता है। किन्तु वासवदत्ता पकड़ में नहीं आती।

अन्त में ज्योतिषी की भविष्यवाणी के अनुसार राजा को विजय मिल जाती है। वासवदत्ता और यौगन्धरायण प्रकट हो जाते हैं। उज्जयिनी से वासवदत्ता की पत्नी और कञ्चुकी आकर सूचना देते हैं कि उज्जयिनी के महाराज प्रद्योत ने वासवदत्ता और उदयन के विवाह की स्वीकृति दे दी है। अन्त में भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

रचनावान से ही लेकर स्वप्नवासवदत्ता एक प्रतिष्ठित नाटक रहा है। कालिदास जैसे महाकवियों ने उदयन कथा का उल्लेख किया है। दण्डी और वामन ने इसके उद्धरण दिये हैं। समुद्रगुप्त में वासवदत्ता और उदयन के मिलन का भोजराज ने उल्लेख किया है। शारदातन्त्र ने ता उस नाटक की नाट्यस्थितियों तक का विवेचन किया है। इसी प्रकार सर्वानन्द अभिनवगुप्त रामचन्द्र गुणचन्द्र इत्यादि लक्षणकारों की कृतियों में भी उस महत्वपूर्ण नाटक का उल्लेख या उद्धरण मिलते हैं।

यौवन जन्य उद्दाम भावना के साथ कर्तव्यबुद्धि का निर्वाह इस नाटक की अनन्य साधारण विशिष्टता है। यह नाटक प्रेम भाव के चित्रण में परवर्ती साहित्य का मार्ग दर्शक बन गया है। चरित्रचित्रण में कवि को वाञ्छनीय सफलता मिली है। नाट्यशैली भाषा-भावभाव्यक्ति इत्यादि अनेक दृष्टियों से यह नाटक बेजोड़ सिद्ध होता है।

इस नाटक का प्रकाशन अनेक स्थानों से हुआ है और इस पर कई टीकाएँ लिखी गई हैं।

स्वयभूनाथ—(नाक) इनका सम्बन्ध विजयानगरम् के राजपरिवार से सबद्ध डिंडिम नाम से प्रसिद्ध कवियों से था। ये डिंडिम सार्वभौम राजनाथ द्वितीय के दौहित्र तथा स्वयभू के पुत्र थे। अतः इनका समय १३वीं १४वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इन्होंने भारवि की किरातार्जुनीय रचना को लेकर एक चम्पूकाव्य और कृष्णकाव्य को लेकर १४ सर्गों का एक महाकाव्य लिखा है। इनकी तीन नाट्य कृतियाँ भी पाई जाती हैं— सुभद्राधनञ्जय (दे) लक्ष्मण प्रसादन (दे) तथा मदनगोपाल विलास भाग (दे)। कुछ लोग इन नाटकों का रचनाकार उनके भाई गुरुराम को मानते हैं।

स्वर्गायप्रहसनम्—(नाक) यादवेन्द्रराय (दे) द्वारा लिखित नाटक। इसकी रचना खान्दनाथ ठाकुर के प्रहसन के अनुकरण पर हुई है। स्वर्ग में निर्वाचन का वातावरण चल रहा है। पारस्परिक ठठापटक बृहस्पति की कुटिलचालों इत्यादि हास्योत्पादक ढंग से प्रदर्शित की गई हैं। वर्तमान समस्याओं पर भा हास्योत्पादक रूप से प्रकाश डाला गया है।

स्वर्णमुक्ताविवाद—(नाक) महेश्वर पण्डित लिखित नाटक। इसमें सोने और मुक्ता का विवाद दिखनाया गया है। दोनों म्वय को दुमर में बदचढ़कर बतलाते हैं।

इस विवाद में मध्यस्थ श्रीनगरी के बलभद्र देव को बनाया गया है। इसकी प्रति इण्डिया आफिस एगलिंग कैटेलाग में स १६३२ पर प्राप्त की जा सकती है।

स्वातन्त्र्यझाहुति- (नाकू) नारायण शास्त्री काकर लिखित स्वातन्त्र्य सेनानियों के वलिदान के विषय में नाटक। इसका रचनाकाल चौसवीं शताब्दी है और इसका प्रकाशन संस्कृत रत्नाकर दिल्ली से सन् १९५६ में हो गया है।

स्वानुभूति नाटक- (नाकू) अनन्त पण्डित लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें शङ्कराचार्य के क्वलाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसमें अनेक सिद्धान्त प्रयोगों के उद्धरण दिये गये हैं। रचनाकाल १७वीं शताब्दी।

स्वानुभूत्यभिधा- (नाकू) अनन्तराम (दे) लिखित प्रताक नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ७५२ में किया गया है।

स्वामिदीक्षित- (नाका) वल्ला परिणयनाटक के लेखक (दे (३) वल्ला परिणय)

स्वामिशाल्त्री- (नाका) ये त्रिचनापल्ली के निवासी थे। इनका लिखा शृङ्गारसर्वस्व (दे) भाण मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में प्राप्त किया जा सकता है। इनकी लिखी मुद्राराक्षस की टीका भी प्राप्त होती है। जिसका परिचय ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि विषयक विवरणात्मक सूचीपत्र में दिया गया है।

स्वैरचार- (नाकू) नारायण शास्त्री लिखित ३ अकों का नाटक।

ह

हसपदिका- (नापा) अभिज्ञान शकुन्तल (दे) में दुष्यन्त की रानी जिसे हसवती भी कहा गया है। सगात के द्वारा इसने राजा के प्रति अपना उपासाम्य व्यक्त किया है जो अनन्त में शकुन्तला के विषय में भी लागू होता है।

हसवती- (नापा) दे हसपदिका।

हजारीलाल शर्मन- (नाका) इनका उल्लेख सूर्योदय संस्कृत जर्नल काशी स ११ ५१ पर किया गया है। मुरस्थल से इनका सम्बन्ध था। इनकी लिखा कई पुस्तकें हैं जिनमें राजहाननृपतिराजनाति नामक एक नाटक भी है। हकीकत राय नामक एक एकाङ्की भी इनके नाम से प्राप्त होता है।

हनुमद्विजय- (नाकू) सुन्दरराज आचार्य (दे) लिखित नाटक। कवि ने अपने आराध्य देव की अभिशप्ता में इस नाटक की रचना की है।

हनुमन्त- (नापा) (अ) रामायण के प्रमुख पात्रों में एक। रामायण विषयक नाटकों में पात्ररूप में या सूच्य भाग में इनका उपादान हुआ है। प्रमुखरूप में (१) प्रतिना नाटक (२) अभिषेक नाटक (३) महत्वार चरित (४) अनर्घराघव (५) प्रसन्नराघव (६) दूताङ्गद

इत्यादि में इनका उपादान हुआ है।

(आ) महाभारत परक कथानक से निर्मित सौगन्धिकाहरण में भी इनका उपादान किया गया है।

हनुमन्नाटक- (नाकू) दे महानाटक।

हम्मीर- (नापा) जयसिंह सूरि लिखित हम्मीर मदभर्दन का प्रांतनायक। एक मुसलमान आक्रान्ता जो सम्भवत मेवाड का १३वीं शताब्दी का शासक था और जिस पर गुजरात के राजा वीरधवल ने अपने मंत्री वास्तुपाल की कूट नीति के बल पर विजय प्राप्त की थी।

हम्मीर मदभर्दन- (नाकू) जयसिंह सूरि (दे.) का लिखा एक ऐतिहासिक (या ऐतिहासिक जैसा) नाटक। यह ५ अकों का नाटक है जिसकी रचना मंत्री वास्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह या जैरूपह आग्रह पर की गई थी। इसकी रचना का मुख्य उद्देश्य २५ स्वर्णदण्डों के अनुदान की स्मृति को सुरक्षित रखना था। इसमें वास्तुपाल की सन्धि विग्रह का वर्णन किया गया है और गुजरात पर मुसलमान आक्रान्ता के आक्रमण पीछे हटा देने का विवरण दिया गया है। (जिस विवरण के लिये उक्त अनुदान दिया गया था उसको मुसलमान आक्रान्ताओं ने बाद में मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया।) इस नाटक को भाषा और कविता भाकर्षक है और चुनी हुई उपमाओं का प्रयोग मनोरञ्जक है। राजनीति की चालें भी विवेकपूर्ण हैं।

वास्तुपाल सन् १२७६ (सन् १२१९) में वीरधवल का मंत्री बना था। अतः इस नाटक की रचना १२२० और १२३० ई के मध्य हुई होगी। इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज से सीड्री दलान की भूमिका के साथ प्रकाशित हो चुका है।

हरकेलि- (नाकू) यह विपद राज का लिखा नाटक है इसमें अर्जुन और महादेव के युद्ध का अंकन किया गया है जिसमें बाद में अर्जुन को पारुपत अस्त्र का पुरस्कार प्राप्त होता है। इस नाटक की विषय वस्तु वही है जो किरातार्जुनीय की है। इस नाटक को स्थापित्य प्रदान करने के लिये पत्थरों पर खुदवाया गया था जो बाद में अजमेर मस्जिद के बुर्जों में लगा दिये गये। इस शिलालेख का समय सन् १२१० (सन् ११५३) है।

हरगौरीविवाह- (नाकू) १७वीं शताब्दी का नेपाली कवि जगज्योतिमल्ल लिखित रूपक। यह रोचक गतिनाट्य है जिसमें नाट्य की अपेक्षा संगीत रूपात्मकता अधिक है। इसके अधिकांश पद्य जनपदीय भाषा में लिखे गये हैं। यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

हरविलास- (नाकू) यह राजरोछर (दे.) का लिखा नाटक बनलाया जात है। अब यह उपलब्ध नहीं रहता। हेमचन्द्र ने इसका उल्लेख किया है और उज्ज्वलदत्त ने

इससे उद्धरण दिया है।

हरिचरण भट्टाचार्य- (नाका) इनका जन्म पूर्वी बंगाल में १८७९ में एक शिक्षित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता १९१० में कलकत्ता में रहने लगे थे। वहीं मैट्रोपोलिटन कालेज कलकत्ता में ये सस्कृत के प्रोफेसर पद पर कार्य करते रहे। बकिम चन्द्र के कपाल कुण्डला उपन्यास का इन्होंने सस्कृत में नाटकीकरण किया है। इसके अतिरिक्त ओमर छय्याम की रुवाइयों का फ़िटज़राल्ड ने अंग्रेजी में जो रूपान्तरण किया था उस पर ७५ पद्यों की एक पुस्तक की रचना भी इनकी कृतियों में शामिल है।

हरिजीवन मिश्र- (नाका) १७वीं शताब्दी में राजा रामसिंह के आश्रम में रहते थे। इनके पिता का नाम लाटमिश्र था। सवत् १७३० (सन् १६७३) की लिखी विजयपारिजात नाटक की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है। इनके चार प्रहसनों की पाण्डुलिपिया भी मिलती हैं प्रासङ्गिका, सहृदयानन्दन, विवुधमोहन और अटभुततरंग। पलाण्डुमण्डनम् एव धृतकुल्यावली के लेखक हरिजीवन मिश्र सम्भवतः अन्य व्यक्ति थे।

(१) **हरिदास-** (नाका) पूर्वी बंगाल के उन्मिया, फ़ोटवालपुर के कश्यप गोत्र के गणगधर विद्यालंकार एव विष्णुमुखी से सन् १८७६ में इनका जन्म हुआ था। विद्या की दृष्टि से इनका जन्मस्थान दूसरी काशी माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मण सैकड़ों देवताओं की नित्य पूजा करते हैं। हरिदास के बाबा वाशीचन्द्र वाचस्पति एक प्रतिष्ठित विद्वान् थे। इनके पूर्वजों में यादवानन्दन्यायाचार्य और मधुसूदन सरस्वती जैसे प्रतिष्ठित विद्वान् उत्पन्न हुये थे। ये जीवानन्द सरस्वती विद्यासागर के शिष्य थे।

१३ वर्ष की आयु में ही इन्होंने सस्कृत भाषा और साहित्य का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था और १४ वर्ष की आयु में ही इन्होंने एक नाटक और एक चम्पू की रचना की थी। यह क्रम लगातार चलता ही रहा और २० वर्ष की आयु तक ये कई पुस्तकें लिख चुके थे। उच्चकोटि की कई पुस्तकों की टीकायें, महाकाव्य, खण्डकाव्य, लघुकाव्य, चम्पू, नाटक इनके साहित्य के अंग हैं। महाभारत का बंगला में अनुवाद भी खण्डशः प्रकाशित हुआ था। इनकी नाट्य कृतियाँ हैं- कसवध जानकीविक्रम विराजसरोजिनी बगीचप्रताप मिवाडप्रताप, शिवाजीचरित, पेशे से ये अध्यापक थे। इन्हें सिद्धान्त वागीश की उपाधि प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई विषयों में तीर्थ की उपाधि भी प्राप्त की थी। इनकी अधिकांश पुस्तकें कलकत्ता से प्रकाशित हुई हैं। इन्हें महामहोपाध्याय की भी उपाधि प्राप्त हुई थी।

(२) **हरिदास-** (नाका) ये श्रौढ दवणपुरम के निवासी थे। इनका लिखा हरिविलास भाग प्रकाश में आया है।

हरिदूत- (नाक) यह भास (दे) के नाटक दूत वाक्य (दे) के कथानक को लेकर लिखा गया है। कृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की सभा में जाते हैं। इस नाटक

में कोई नई विशेषता नहीं है। लूडर्स ने इसे छाया नाटक माना है जिसे कोथ ने स्वीकार नहीं किया। कोथ क मत स इसमें कोई ऐसी विशेषता नहीं है जो इसे छाया नाटक की श्रेणी में ला सके। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १७५७ पर किया गया है।

हरियज्वन- (नाका) इनका लिखा कसान्तक प्राप्त होता है जो मैसूर ओरियण्टल पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में ६३६ संख्या पर संकलित किया गया है।

हरिरामचन्द्र दिवेकर- (नाका) ये ग्वालियर के निवासी थे। इन्होंने महोत्सवम् (८) की रचना की थी जिसका अभिनय उज्जैन में कालिदास महोत्सव के अवसर पर किया गया था।

हरिवंश हसम्- (नाक) शङ्करदत्त (दे) का लिखा नाटक।

हरिविलास- (नाक) हरिदास (२) (दे) लिखित भाण कैटेलागस कैटेलागोरम II १८३ पर इसका उल्लेख किया गया है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्ररी के पाण्डुलिपि धक् विवरणान्तक कैटेलाग में स XXI ८५६३ पर भी इसका परिचय दिया गया है।

(१) **हरिश्चन्द्र-** (नाका) दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के कवि थे। इनके पिता का नाम आद्रदव और माता का नाम राधा था तथा ये कायस्थ परिवार के लम्पण के भाई थे। इन्हें सरस्वती पुत्र की उपाधि प्राप्त हुई थी। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में इनका उल्लेख किया है। इनका लिखा २१ सर्गों का महाकाव्य श्राप्य शता है जिसमें १५वें तीर्थंकर धर्मनाथ का जन्म से निर्वाण तक अंकन किया गया है। टी.ए. कुप्पू स्वामी शास्त्री के अनुसार इन्होंने जीवन्मर चरितम् नाटक (दे) की भी रचना की थी। इनकी भाषा मन्तरम और प्रसादगुणपूर्ण है और उसमें सगीतान्वयता है। कुप्पूस्वामी शास्त्री के अनुसार इनका समय ९वा १०वीं है तथा ये दक्षिण भारतीय थे।

(२) **हरिश्चन्द्र-** (नाका) सन्यहरिचन्द्र नाटक (दे) के लेखक।

(१) **हरिश्चन्द्रचरित-** (नाक) यह अज्ञातनामा कवि की नाट्य कृति है। इसका उद्धरण भाजराज के शङ्कर प्रकाश में दिये गये हैं। किन्तु भाजराज ने जो उद्धरण दिये हैं पौराणिक उपाख्यान से व कुछ हट कर प्रभाव होने हैं। उनमें माधवी के विक्रय की बात नहीं आई है। किन्तु पुराण में हरिश्चन्द्र की पत्नी का नाम माधवी नहीं मिलता। इस विक्रय में विश्वामित्र के शिष्य गालव माधवी के विक्रय में योगदान देता है। महाभारत में विश्वामित्र के शिष्य गालव की कथा आई है जिसमें गालव विश्वामित्र की गुह्यदक्षिणा चुकान के लिये कन्या विक्रय करत है। हा सक्ता है इस अज्ञात नाटक में विश्वामित्र और गालव की कथा आई हो। जो दूसरा उद्धरण दिया गया है उसमें स्पष्ट रूप में विश्वामित्र द्वारा पत्नी विक्रय की बात बताई गई है। सम्भवत यह अन्य नाट्यकृति है जिसमें हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध कथा का उल्लेख किया गया है। कथ्यत्र न जो उद्धरण दिया है उसमें हरिश्चन्द्र की पत्नी का नाम औषानरा बताया गया है। ज्ञात होता है यह दूसरी

हरिश्चन्द्र कृति का उद्धरण है।

(२) हरिश्चन्द्र चरित- (नाक) प्रभाकर श्रीनिवास लिखित नाटक। इसका उल्लेख भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में और रुद्रट ने काव्यालंकार में किया है। मैसूर ओरियण्टल पुस्तकालय स २८७ पर पाण्डुलिपि पुस्तक सूची में इसका उल्लेख है।

हरिश्चन्द्रचरितम्- (नाक) रणेन्द्रनाथ गुप्त लिखित ५ अकों का नाटक। अकों का दृश्यों में विभाजन किया गया है। इसमें हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा का उपादान हुआ है। उत्तर रामचरित से प्रभावित इस रचना में करुण रस का प्राधान्य है, किन्तु कहीं कहीं हास्य का पुट भी सम्मिलित कर दिया गया है। धर्म, महाव्रत आदि प्रतीकात्मक पात्रों की नियोजना की गई है। रंगमञ्चीय सविधान पारचात्य है। इसकी रचना १९११ में की गई थी।

हरिश्चन्द्र नृत्य- (नाक) १७वीं शताब्दी के सिद्धिवर सिंह (नेपाल नरेश) लिखित नाटक।

हरिश्चन्द्रयशश्चन्द्रचन्द्रिका- (नाक) अज्ञातनामा लेखक की एक नाट्यकृति। दक्षिण भारत के प्राइवेट पुस्तकालय में सुरक्षित पाण्डुलिपियों की खोज गुस्तव ओपर्ट ने की थी और उनकी सूची दो खण्डों में प्रकाशित की गई थी। उसमें स ६७०४ पर इसका उल्लेख किया गया है। ऑफ्रिट के कैटेलागस कैटेलागोरम लीपजिग स १७६१ पर भी इसका उल्लेख है।

हरिश्चन्द्रोपाख्यान- (नाक) १४वीं शताब्दी के जयसिंह वर्मा का लिखा नाटक।

हरिहर- (नाका) ये शैव सम्प्रदाय में दीक्षित मैथिल ब्राह्मण थे। इनके लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं- भर्तृहरिविन्द (दे) नामक प्रतीक नाटक और प्रभावती परिणय (दे)। कुछ लोग दोनों कृतियाँ एक ही व्यक्ति की मानते हैं। दूसरे लोगों का विचार है कि ये दो पृथक् पृथक् व्यक्ति थे दोनों का समय भी भिन्न था।

हरिहर द्विवेदी- (नाका) नागराज विजयम् (दे) रूपक के लेखक।

हरिहर युद्धम्- (नाक) २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि लक्ष्मीकान्त दास का लिखा नाटक।

हरिहरानुसारण यात्रा- (नाक) यह नृसिंह भट्ट का लिखा नाटक है। जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम ७६३ में किया गया है। इसका प्रकाशन बम्बई से हो चुका है।

हर्ष- (नाका) ये प्रसिद्ध नाटककार हैं। इनके नाम पर तीन नाटक प्राप्त होते हैं- रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। इन नाटकों के विषय में सामान्य रूप से अनुमोदित तत्व हैं- (१) इन तीनों नाटकों की शैली शब्दयोजना, भाषा, प्रस्तावना, वस्तुयोजना इन सभी दृष्टियों से ये नाटक एक जैसे ही प्रतीत होते हैं। इससे स्वभावतः सिद्ध होता है

कि ये नाटक एक ही कलाकार की कृति हैं। (२) नाटकों के अन्त साक्ष्य के आधार पर सिद्ध होता है कि इनके रचनाकार का नाम हर्षदेव था जो कोई राजा था— सामान्य राजा नहीं एक ऐसा राजा जिसके चरण कमलों की आधीनता में राजा लोगों का समूह अपनी सत्ता बनाये हुये था तथा दूर दूर के प्रदेशों से राजसमूह आकर भेंट देता था— (नाना दिग्देशागतेन राज्ञ श्रीहर्षदेवस्य पादपञ्चोपजीविना राजसमूहेन)। (३) उन महाराज के जीवनकाल में ही उनकी कृतियों की प्रतिष्ठा व्याप्त हो गई थी और राजा लोग उनका अभिनय देखने के लिये उत्सुक रहते थे— (राजसमूहेनेक्तो यथा अस्मत्स्वामिना श्रीहर्ष देवेनापूर्ववस्तुरचनालकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता। सा चास्माभि श्रोत्रपरम्परयाश्रुता न तु प्रयोगतो दृष्टा) इससे सिद्ध हो जाता है कि इस नाटक की रचना किसी हर्ष नामधारी सम्राट ने की होगी। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में हर्ष नाम के अनेक कवियों का होना सिद्ध होता है जिनमें १२वीं शताब्दी के कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दातारी कवि नैषधकार का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। दूसरे हर्ष नामक कवियों में मुजराज के पुत्र ११वीं शताब्दी के काश्मीरी शासक कवि, १५वीं शताब्दी के कवि हर्ष इत्यादि अनेक कवियों का उल्लेख प्राप्त होता है। कल्हण ने उज्जैन के महाराजा हर्षदेव विक्रमादित्य का उल्लेख किया है जो मातृगुप्त के आश्रयदाता थे। इनका समय ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी है। अभिनवगुप्त, शारदानन्द, बटुरूपमिश्र प्रभृति अनेक नाट्यशास्त्रकारों ने नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार हर्ष का उल्लेख किया है। ७वीं शताब्दी के कन्नौज के राजा अन्यतम हर्ष हैं जो वाणमयूर जैसे कवियों के आश्रयदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि इनमें प्रस्तुत नाटकों का रचयिता कौन है।

काव्यशास्त्र के अनेक रचनाकारों ने रत्नावली इत्यादि नाटकों के उद्धरण दिये हैं जिनमें सबसे प्राचीन उद्धरण ७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दामोदर गुप्त का है। इससे सिद्ध हो जाता है कि ७वीं शताब्दी के बाद जितने भी हर्ष हुये हैं उनमें कोई भी इन नाटकों का लेखक नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि उन परवर्ती रचनाकारों में कोई भी महान सम्राट नहीं है। अतः विचार क्षेत्र में दो हर्ष शेष रह जाते हैं— पहली या दूसरी शताब्दी के महाराज हर्ष विक्रमादित्य और दामोदर गुप्त के तत्काल पहले ७वीं शताब्दी के कन्नौज के राजा हर्षवर्धन। इन नाटकों की नाट्यविधा और रचना प्रविधि प्राचीन नाटककार इत्यादि से मेल नहीं खाती। अतः ये नाटक प्रथम द्वितीय शताब्दी के हर्ष विक्रमादित्य के नहीं हो सकते। दूसरी बात यह भी है कि यदि ये नाटक इतना पहले लिखे गये होते तो निश्चित रूप से इनका उल्लेख कालिदास के समय की किसी रचना में अवश्य प्राप्त हो जाता। अतः इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि ये रचनायें इतनी पुरानी नहीं हो सकती।

अब विचारणीय है कि ७वीं शताब्दी के महाराज हर्षवर्धन कवियों के आश्रयदाता तो थे क्या कवि भी थे। इसका उत्तर हा में ही दिया जा सकता है। वाण कवि ने इनकी

कवित्वरक्ति की प्रशंसा की है- 'ये काव्यकथाओं में अमृत प्रवहित करते थे ***** इनकी कवित्व की वाणी के क्षत्र में कोई सीमा नहीं थी। इसके अतिरिक्त इनके राज्यकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था। उसने सन् ६३० से ६४४ तक भारत प्रयाण किया था। वह बहुत समय तक महाराज हर्ष के दरबार में रहा था। उसने लिखा है कि महाराज हर्ष कवियों के आश्रयदाता होने के अतिरिक्त स्वयं भी एक महान कवि थे। चीनी यात्री इत्सिंग ने भी उल्लेख किया है कि राजा शीलालित्य ने बोधिसत्व जैमूतवाहन की कथा पद्य बद्ध रूप में प्रस्तुत की थी और उनके अश्रित नृत्यगीत मण्डलियों ने उसे गीत नृत्य और नाट्य द्वारा जनता में प्रचारित किया था। हमें ज्ञात है कि नागानन्द के कथानक नायक जैमूतवाहन ही हैं। इन सब प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि इन नाटकों की रचना कन्नौज के महाराज हर्ष ने की थी जिनकी उपाधियाँ था शीलालित्य आदयराज इत्यादि।

भारतीय और चीनी दोनों परम्पराओं में इन नाटकों का कर्ता कन्नौज के हर्षवर्धन की ही स्वीकार किया जाता है। विजयनिम्ब के अनुसार इन परम्पराओं पर अविश्वास का कोई कारण नहीं। उक्त मान्यता पर कई सन्देह उठाये गये हैं- (१) इसमें सन्देह नहीं कि नट्यकला और काव्य की दृष्टि से इनके नाटक अन्यत्र मन्वन्तु हैं, किन्तु वास्तविकता और उदयन के चरित्रों का जैसा अवमूल्यन हुआ है वह एक महान् सम्राट हर्ष की रचना में सम्भावित नहीं है। (२) वाग ने हर्ष के कवित्व की प्रशंसा की किन्तु उनके नाटकों का उल्लेख नहीं किया। (३) प्रस्तावना में 'श्रुतार्थो निपुण कवि' कहा गया है। अपने लिये न तो श्री कहा जाता है और न 'निपुण कवि' कहकर कोई महान् व्यक्ति अपना प्रशंसा स्वयं करती है। (४) रचयिता का नाम हर्ष देव बतलाया गया है वहीं भी अन्यत्र हर्षवर्धन की हर्षदेव नहीं कहा गया। (५) हर्ष के नाम पर जो गायार्थे सुप्रहो में दो गई हैं वे नाटकों में नहीं मिलती। (६) काव्यप्रकाशकर मम्मट ने काव्य प्रयोजनों में काव्य से धन प्राप्ति का उदाहरण दिया है जैसा हर्ष ने धनक को धन प्राप्त हुआ। इसमें निश्चय होता है कि ये नाटक किसी धनक कवि ने लिखे थे और हर्ष ने पैसा देकर उन्हें खरीद लिया।

संक्षेप क प्रति उदाहरण और पति की सम्पत्ति के लिये मन्त्रों के परामर्श पर सपना जवन कष्ट में कष्टों की स्वीकृति एक आदर्श चरित्र है। किन्तु रत्नावली में वामदेवना के इस आदर्श चरित्र के स्थान पर यशोदरपता प्रदान की गई है जो कला के क्षेत्र में महान से महान व्यक्ति से भी असम्भवित नहीं है। उक्त तर्कों में केवल एक ही विचारणीय है कि मम्मट के कथन से निश्चय होता है कि हर्ष ने धन देकर इन कृतियों को खरीदा था। कुछ लोग ने धनक के स्थान पर वाग पाठ रक्खा है- हर्षदेवार्थेन निपुण धनक उनका अर्थ है कि ये नाटक वाग ने लिखे थे। किन्तु वाग की रचना इन नाटकों से विच्युत नहीं मिलती। गद्यों का नाटकों में न मिलना कोई ठीक तर्क नहीं है। नाटकों

के अतिरिक्त हर्ष का अन्य रचनायें भी उपलब्ध होती हैं जिनमें दो बौद्ध स्तोत्र सुप्रभात स्तोत्र और अष्टमहर्षिवैद्यसस्वार स्तोत्र तथा कुछ गाथायें चयनिकाओं में पाई जाती हैं। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है— ये नाटक या तो हर्ष के लिखे हैं या धावक नामक किसी अन्य लेखक ने लिखे जिनको पैसे देकर हर्ष ने खरीद लिया।

हर्ष का जीवनवृत्त— हर्ष का जन्म सन् ५९० के आस पास कुरुक्षेत्र के निकट धानेश्वर में प्रभाकर वर्धन और प्रभावती से हुआ था। इनका एक बड़ा भाई राज्य वर्धन था और छोटी बहन राज्यश्री थी। बहन का विवाह कन्नौज के भवनिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा से हुआ था। प्रभाकर वर्धन ने हूणों को पराजित कर लाट, मालव और गान्धार तक अपना राज्य बढ़ा लिया और उत्तर में विजय करने राज्यवर्धन को भेजा। किन्तु पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राज्यवर्धन लौट आये। इसी बीच समाचार मिला कि मालव राज ने मह वर्मा को मारकर राज्यश्री को बन्दिनी बना लिया है। तब बदला लेने के लिये राज्यवर्धन ने मालव नरेश पर घटाई की और उसे युद्ध में मार डाला। किन्तु धोखा देकर बगाल के राजा शशाक ने राज्यवर्धन की हत्या कर दी। इसी बीच राज्यश्री कैद से छूटकर बिन्ध्याचल के जंगल में भाग गई। वहाँ जब वह आत्महत्या के लिये आग में कूदने का तैयार थी उसे हथ न तलाश कर लिया और बचाकर घर ल आये और कन्नौज की भी अपने राज्य में मिला लिया। शशाक से बदला लिया और उत्तर भारत में एक छत्र राज्य स्थापित कर दक्षिण विजय का विचार किया। किन्तु पुलकेशी द्वितीय से पराजित होकर दक्षिण विजय का विचार त्याग दिया। अब उनका हिमालय से लेकर नर्मदा तक और गान्धार एवं मालवा से लेकर बगाल तक अखण्ड समृद्ध, सुख शान्तिमय राज्य था। अन्तिम जीवन में इन्होंने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया किन्तु ब्राह्मण धर्म के प्रति भी उदारता बनाये रखी। इनका प्रयाग का महा परित्याग प्रसिद्ध ही है।

ये कवियों का आश्रय देते थे तथा स्वयं भी रचना करते थे। चीनी यात्री ह्वेसांग को भी राज्याश्रय दिया जो पर्याप्त समय तक इनकी राजधानी में रहा। शिक्षा की पर्याप्त उन्नति की बौद्ध स्त्रियों की रचना की और दो नाटकों त्रियदर्शिका (दे) एवं रत्नावली (दे) की रचना बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पहले तथा एक नाटक नागानन्द की रचना बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने के बाद की। इनकी रचना प्रसादगुणपूर्ण एवं प्रवाहपूर्ण हैं ललित कला का अनुठा उदाहरण है जिसमें संस्कृत और प्राकृत का परिनिष्ठित रूप में प्रयोग किया गया है। इन नाटकों ने साहित्य जगत् में पर्याप्त प्रतिष्ठित प्राप्ति की है।

हर्षदेव— (नाका) जगदानन्द नामक नाटक के लेखक क्या ये कन्नौज के प्रसिद्ध राजा एवं इज्जतम पुरुष हैं या कोई दूसरे हर्ष देव इसका निर्णय करना कठिन है।

हर्षनाथ झा— (नाका) १९वीं २०वीं शताब्दी के बिहार निवास कवि नाटककार एवं शास्त्रीय भण्डारक। इनके लिखे कई शास्त्रीय ग्रन्थ एवं टीका ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। इनका लिखा वक्त्रहार (दे) नामक एक नाटक भी प्राप्त होता है।

हर्षनैषधीयम्- (नाक) रामावतार शर्मा । (दे) लिखित नाटक ।

हर्षवाणभटीयम्- (नाक) रगाचार्य लिखित हर्षवर्धन विषयक चार अकों का नाटक । प्रभाकर वर्धन (हर्ष के पिता) की मृत्यु के बाद वाण से मिलने तक की कथा का इसमें उपादान किया गया है । यह २०वीं शताब्दी की रचना है । संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका में इसका प्रकाशन कर दिया गया ।

हर्षावसान- (नाक) यह कनैयालाल पंचतीर्थ (दे) का लिखा राम कथा विषयक नाटक है । इसका प्रकाशन सहाद्री संस्कृत जर्नल मद्रास एव कलकत्ता से हो चुका है ।

हस्तिमल्ल- (नाका) ये वत्सगोत्रोप गोविन्द के पुत्र थे । बाद में इन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था । इनका यह वास्तविक नाम नहीं था किन्तु जैसा कि अम्बयाचार्य ने जिनेन्द्र कल्याण में बतलाया है ये एक हाथी से लड़े थे जिससे इन्हें यह सजा प्राप्त हुई । इस घटना की प्रशंसा में तत्कालीन पाण्ड्यराज ने १०० पद्यों में खुली सभा में इनकी प्रशंसा की थी । इनके पिता गुणभद्र के दूरवर्ती शिष्य थे । इनका समय सम्भवतः १३वीं शताब्दी है । कतिपय प्रबन्ध काव्यों और आदि पुराण के अतिरिक्त इन्होंने अनेक नाटकों की रचना की थी- उनके इन नाटकों का उल्लेख किया जाता है- अञ्जनापवज्रय, अर्जुनराज, भरतराज, मेघेश्वर, मैथिलीपरिणय, विक्रान्तकौरव और सुभद्रा नाटिका । (परिचय यथा स्थान देखिये ।)

हारहैमवतम्- (नाक) नारायण शास्त्री (१) (दे) लिखित ७ अकों का नाटक ।

हासामृत- (नाक) यह एक नेपाली रचना है और नेपाल के पुस्तकालय में सुरक्षित है । इसकी रचना बुन्देलखण्ड के सुजान सिंह के राज्यकाल में हुई थी ।

हास्यचूडामणि- (नाक) वत्सराज (दे) लिखित प्रहसन । इसका नायक है ज्ञानराशि । वह है तो भागवत सम्प्रदाय का आचार्य किन्तु वह केवली ज्ञान का ज्ञाता होने का दावा करता है जिससे वह गड़े धन और खोई वस्तु का पता लगा सकता है । उसका शिष्य दुर्निग्रह है जो अपने गुरु की मजाक उड़ाता है और इसके लिये वह गुरु के वचनों की इस रूप में शब्द व्याख्या करता है कि उससे हास्यसृष्टि होती है । शिष्य की व्याख्या के अतिरिक्त उसके अपने कारणों से ही हास्य सृष्टि करने में समर्थ है । छल कपट ही उसकी आजीविका का साधन है । गायकवाड ओरियण्टल सीरीज से इसका प्रकाशन हो गया है ।

हास्य कौतूहल- (नाक) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना विठ्ठल कृष्ण विद्यावागीश ने की थी ।

हास्य नाटक- (नाक) आचार्य कवीन्द्र (अथवा कविन्द्र) लिखित नाटक । यह नेपाल में लिखा गया नाटक है । आचार्य की पुस्तक सूची में इस नाटक का उल्लेख किया गया है जोकि बड़ौदा से प्रकाशित हो चुका है ।

हास्यरत्नाकर- (नाकू) एक प्रहसन जिसका उल्लेख धनञ्जय के दशरूपक में किया गया है।

हास्यसागर- (नाकू) १७वीं शताब्दी के रामानन्द का लिखा प्रहसन। इसमें सवाद संस्कृत में है और पद्य हिन्दी छप्पय छन्द में। औरंगजेब के समय में हिन्दुओं की दुर्दशा का चित्रण। ब्राह्मण की पत्नी बिन्दुमती बुद्धिनी द्वारा एक यवन के सम्पर्क में लाई जाती है जिसकी सूचना बिन्दुमती का भाई राजा को देता है। राजा का नाम कुलकुत्तार अन्य पात्र- मिथ्याशुक्त, मण्डकचतुर्वेदी आदि।

हास्यार्णव- (नाकू) जगदीश या जगदीश्वर लिखित प्रहसन। इसके कई संस्करण हो चुके हैं- कैप्लर जेन का आक्सफोर्ड संस्करण बंगाली अनुवाद के साथ, कलकत्ता; संस्करण इत्यादि। विल्सन थियेटर II ४०८ ९) में विश्लेषण। अंग्रेजी अनुवाद के साथ संस्करण।

कथानक- राजा अनयसिन्धु परेशान है कि उसके राज्य में बहुत बड़ी गड़बड़ी चल रही है। सबसे बड़ी परेशानी है लोगों का मर्यादा पालन, पतिव्रता स्त्रियाँ, एक पत्नीव्रत पुरुष, जूते बनाने का काम केवल चाण्डाल करते हैं, ब्राह्मण नहीं। राजा इन बातों से परेशान है और इन बुराइयों को दूर करने के लिये मन्त्री की राय से बन्धुता बुद्धिनी के यहाँ जाता है वहाँ उसकी पुत्री मृगाङ्गलेखा से मिलने वैद्य ज्योतिषी, धर्माध्यक्ष इत्यादि सभी आते हैं और उनके व्यवहार से हास्य सृष्टि होती है। नामकरण में हास्य का पुट है- राजा अनयसिन्धु, रक्षाधिकारी साधुहिस्र इत्यादि। ज्योतिषी जी का विचार गया मुहूर्त मृत्युदायक होता है। बुद्धों को मृगाङ्गलेखा मिलती है जबकि युवकों को बुद्धों बन्धुता से संतोष करना पड़ता है। हास्यरस का यह एक अच्छा छण्ड है।

हा हन्त शारदे- (नाकू) २०वीं शताब्दी के स्वप्न शंकर खेत का लिखा रूपक। स्त्री शिक्षा पर जोर डालना इसका उद्देश्य है। दो सहेलियाँ कीर्ति और मूर्ति गुड्डे गुड्डियों की शादी करती हैं और बाद में उनका भोज होता है। भोज में पत्तलों की जगह वे वाणव काम में लाये जाते हैं जिन पर मूर्ति के पिता गोविन्द ने मूर्ति के भाई को पढ़ाने के लिये टिप्पणियाँ तैयार की हैं। दूसरे ही दिन मूर्ति के भाई को पतोक्ष है किन्तु उसके अध्ययन की सारी सामग्री भोज में ही समाप्त हो गई। तब पितापुत्र को ज्ञात होता है कि स्त्री शिक्षा किन्हीं आवश्यक है।

हिडिम्बा- (नापा) भास के मध्यमव्यायोग (दे) का एक पात्र। यह दासिनी है फिर भी भास ने उसके उदार गुणों का चित्रण किया है। अपने प्रियतम के प्रति उसमें अनुताप है कार्यकुशलता है एक विशिष्ट योजना के अनुसार वह प्रियतम को बुलाना चाहती है और उसमें उसे सफलता मिलती है। पुत्र पर उसका पूरा नियन्त्रण है। मानव भाव भोजी रहने रूपे भी सदाशयता को उसमें कभी नहीं

हिन्दुविश्वविद्यालय- (नाकू) मधुसूदनसरस्वती लिखित पूर्ण नाटक। विश्वविद्यालय को स्वर्णजयन्ती में इसका अभिनय हुआ था।

हृदय विनोद- (नाकू) कवि पण्डित का लिखा प्रहसन कैटेलागस कैटेलागोरम II १८७ स पर इसका उल्लेख है।

हेज्जल- (नाका) राधा विप्रलम्भ (दे) नाटक के लेखक।

हेमाङ्गद- (नापा) एक विद्याधर जो अनर्घरापव (दे) में एक दूसरे विद्याधर के साथ वार्तालाप में राम-रावण युद्ध की चरमावस्था का वर्णन करता है।

हेमाङ्गी- (नापा) वसन्तविलक (दे) की नायिका।

हैदरावादविजयम्- (नाकू) नीरपजि भीमभट्ट लिखित १० दृश्यों का एक ऐतिहासिक नाटक। सरदार पटेल द्वारा हैदरावाद राज्य के भारत में विलय को इस नाटक के कथानक के रूप में स्वीकृत किया गया है। कासिम रिवजी एक अत्यन्त दर्पनिष्ठ व्यक्ति है। हैदरावाद में रजाकारों के उपद्रव चरमसोमा पर हैं। नेहरू को तत्कालीन गवर्नर जनरल बतलाते हैं कि रजाकारों के उपद्रव में हैदरावाद और जूनागढ़ के नवाब मूल कारण हैं। नेहरू हैदरावाद पर अतिक्रमण की आज्ञा दे देते हैं, हैदरावाद पराजित हो जाता है और कासिम रिवजी भाग जाता है। नेहरू सरदार पटेल को वधाई देते हैं।

इसका प्रकाशन हैदरावाद से १९५४ में अमृत बाजार पत्रिका में हो गया था।

होलिकोत्सव- (नाकू) यह लीलाराव दयाल (दे) का ३ दृश्यों का रूपक है। इसमें एक ग्रामीण परिवार का चित्र है। राधा होलिकोत्सव मनाने के लिये अपना जेब (केयूर) गिरवी रखकर बच्चों के लिये कपड़े खरीदती है। उसका पति गणु जब पत्नी का केयूर पहने पर पुरुष को देखता है तब पत्नी को दुरचारीणी समझकर घर से निकाल देता है। अगले दिन उसे गिरवी की चिट्ठी मिलती है तब उसे पश्चात्ताप होता है। उसका भ्रम दूर हो जाता है और वह हसी खुशी पत्नी को लाकर आनन्दमय जीवन बिताने लगता है।

नाट्यकोश-परिशिष्ट

(नाट्यशास्त्रीयतत्त्व जिनका उपयोग नाट्यकृतियों
के अध्ययन के लिये उपयोगी है)

देवानामिदमाप्नोति मुनयः कान्तं कृतं चाक्षुषम् ।
रुद्रेणैदमुभाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ॥
त्रैलोक्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते ।
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समारयनम् ॥

विषय-सूची

१	नाट्यशास्त्र के उपयोगी तत्त्व	५२४
२	पूर्वग	५२६
	पूर्वग का स्वरूप	५२७
	पूर्वग की भरतसम्मत प्रक्रिया	५२७
	दो रूपों में विभाजन का आधार	५३०
३	सूत्रधार	५३३
४	प्रस्तावना अथवा आमुख	५३५
५	अर्थोपक्षेपक	५३८
	विष्कम्भक	५३८
	प्रवेशक	५३८
	घूलिका	५३९
	भङ्गमुख	५३९
	अकावतार	५४०
६	नाट्यवस्तु	५४१
	लोकधर्मी और नाट्यधर्मी	५४४
	कथानक के प्रकार	५४५
	कथानक के भेद	५४६
	श्रवण की दृष्टि से भेद	५४६
७	पताकीस्थानक	५४७
८	यन्त्र का उद्घाटीकरण	५४९
९	नाट्यरचना	५५२
	अर्थ प्रवृत्तियाँ वार्तावस्थायें एवं सन्धि	५५३-५५९
	मुख सन्धि और उसके अंग	५५९
	प्रतिमुख सन्धि और उसके अंग	५६१
	गर्भ सन्धि और उसके अंग	५६१

	विमर्श सन्धि और उसके अंग	५६३
	निर्वहण सन्धि और उसके अंग	५६५
१०.	नाट्यवृत्तियाँ	५६६
	परिचय	५६९
	भारतीवृत्ति	५६९
	सात्वतीवृत्ति	५७१
	कैशिकीवृत्ति	५७२
	आरभट्टीवृत्ति	५७४
११.	नाटक के पात्र	५७५
	पुरुषपात्र	५७६
	नायक के सहायक	५७८
	स्त्रीपात्र	५७९
	नायिकाओं के अलंकार	५८४
१२.	रस के उपकरण	५८९
	रस और उसके उपादानों की विलक्षणता	५९०
	रसोपकरणों का समाहार	५९४
१३.	कतिपय नाट्यत्वद्वय	५९४
	नाटक का नामकरण	५९६
	पात्रों के नामकरण	५९७
	नाटकों में भाषा प्रयोग	५९७
	संशोधन के प्रकार	६०२
	नाट्यवर्जनायें	६०४
१४.	नाट्यसिद्धि	६०७
	नाट्य के विघ्न	६०८
	नाट्य की परीक्षा	६१०
	पताकादान	६११

नाट्य-कोश-परिशिष्ट

नाट्य-शास्त्र के उपयोगी तत्त्व

लक्षण सर्वदा लक्ष्यानुगामी होता है। पहले बच्चा पैदा होता है तब उसका नामकरण किया जाता है और उसके भी बाद उसके व्यक्तित्व का निखार होता है। जब उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली बनकर सर्वांगीण बन जाता है तब उसका नियन्त्रण माना जाने लगता है और उसका निर्देश क्रियाकलाप को गति देने वाला बन जाता है। शास्त्रीय परम्परा की भी कुछ ऐसी ही कहानी है। पहले कोई तत्त्व सामने आता है। तब लक्षण बनाये जाते हैं, नामकरण होता है फिर विशेषताओं का अभिख्यान किया जाता है, उनसे शास्त्र तैयार होता है जिसका परवर्ती रचनाओं पर प्रभाव पड़ता है और चाहे अनचाहे शास्त्र का नियन्त्रण माना ही जाता है।

भारतीय शास्त्रों की एक और परम्परा है— लक्ष्य के आधार पर उनकी अभिख्या करने वाली और उनकी विशेषतायें बतलाने वाली छोटी छोटी रचनायें सामने आती रहती हैं और लक्ष्य संकलित होता रहता है। फिर एक महान व्यक्तित्व सामने आता है जो उन प्राग्वर्ती सभी रचनाओं का पर्यवेक्षण कर किसी महान शास्त्रीय ग्रन्थ को जन्म देता है। वह ग्रन्थ इतना महान होता है कि उसका नियन्त्रण सभी रचनाकार नतमस्तक होकर स्वीकार कर लेंगे हैं और उस दिशा का उन्मीलन करने वाले छोटे छोटे पुराने ग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं। आयुर्वेद में चरक, व्याकरण में पाणिनि की अध्यायी, अर्थशास्त्र में कौटिल्य का अर्थशास्त्र इसी प्रकार की रचनायें हैं।

काव्यशास्त्र का भी ऐसी ही कथा है। वैदिक काल से ही संहिताओं से ही कुछ ऐसा काव्य सामने आ रहा था जो प्रतीत हो रहा था मानों अभिनय के लिये लिखा गया हो। बाद में उसकी अभिनयरूपता की व्याख्या उत्तरवर्ती वैदिक साहित्य में ही कर दी गई। उदाहरण के लिये पुरुषा उर्वशी सूक्त को लीजिये— सूक्त में केवल सवाद दिया हुआ है उस सवाद की पृष्ठभूमि और कथानक का विश्लेषण शतपथ ब्राह्मण में किया गया। सोमयज्ञिक इत्यादि के कतिपय तत्पुरुषक भी बना लिये गये। बहुत बड़े यज्ञों में जहाँ एक और यज्ञविधि का सम्पादन किया जाता था वहाँ दूसरी ओर उपस्थित जनता के मनोरञ्जन के लिये या तो विभिन्न पात्रों का रूप धारण कर दो व्यक्ति आते थे और वैदिक सवाद बोलते थे जिन्हें अभी कभी राक्ष इत्यादि अंगों के अभिनय भी शामिल रहते थे या तत्पु नाटकों का प्रदर्शन किया जाता था। इस प्रकार लक्ष्य पूर्ण रूप से विवक्षित

हो रहा था।

स्वभावतः कुछ लोगों के विचार में आया कि इन कविताओं और इन अभिनयों में वे ही शब्द आते हैं जो हम रोज बोलते हैं और वे ही बातें और व्यवहार आते हैं जिनका अभ्यास हम रोज करते हैं फिर इनमें वह क्या तत्त्व है कि इनके देखने सुनने में हमें आनन्द आ जाता है। इसी विचार धारा ने लक्ष्मणों को जन्म दिया। फिर वे विचारक प्रस्तोताओं को सुझाव भी देने लगे और उनकी विवेकशीलता की धाक और उनके प्रति बड़बुन भा धारणा ने प्रस्तोताओं में उनके नियन्त्रणों को मानते हुये रचनायें करने की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। जिस प्रकार मानसून आने पर बादलों के छोटे छोटे टुकड़े इधर उधर से उठकर एक दिशा में चल देते हैं और उनका घटाटोप आकाश को आक्रान्त कर लेता है। शास्त्रों के विकास का यही क्रम है और इसी क्रम के अनुसार नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में भरत की कृति का उद्भव हुआ। यह काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र की पहली कृति माना जाता है, किन्तु स्वयं इस रचना में प्राचीनों के अनेक उद्धरण दिये गये हैं और उनका उल्लेख किया गया है जिससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भरत के पहले इस शास्त्र की अनेक परम्परायें पनपी थीं। इस महाग्रन्थ को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस कृति की पृष्ठभूमि में लक्ष्यग्रन्थों की बहुत बड़ी माला विद्यमान रही होगी जो काल कबलित हो गई। अब उसका कोई अस्तित्व दृष्टिगत नहीं होता। इस महाग्रन्थ में रचना का जिस समान्य पद्धति का परिचय दिया गया है— लक्ष्यग्रन्थों की महान साहित्यराशि के अभाव में वह सम्भव नहीं है।

कहने को तो यह नाट्यशास्त्राग्रन्थ है किन्तु नाट्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले अनेक तत्व इतने सागोपाङ्ग रूप में इसमें सम्मिश्रित हो गये हैं कि यह उन सभी तत्वों का एक विश्वकोश (इन्साइक्लोपेडिया) बँसा बन गया है। इसमें इतिहास है, भूगोल है, समाजशास्त्र है आधार विचार रहन सहन परिचाय-उद्घाटन, शृङ्गारविधि, आभूषण नृत्यसंगीत वगैर इत्यादि कलायें हैं नृत्यविज्ञान, स्त्री पुरुषों का सामान्य एवं प्रादेशिक विशेषतायें हैं, कानशास्त्र है, वैशिकशास्त्र है, शब्दशास्त्र है, रसशास्त्र है, वास्तुशास्त्र है साहित्यशास्त्र है, मनोविज्ञानशास्त्र है वास्तुविधि है, अभिनय की प्रायोगिक प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न अंगों से भावाभिव्यक्ति का विवेचन है, धार्मिक पूजा पद्धति है, धार्मिक रुढ़ियाँ हैं। आशय यह है कि ज्ञान की नाट्योपयोगी कोई ऐसी शाखा नहीं है जिसका इसमें समावेश न किया गया हो।

इस पूरे ग्रन्थ में नाट्यशास्त्रीय तत्व बिखरे पड़े हैं। यह ग्रन्थ व्यवस्थित नहीं है। अब शुद्ध रूप में नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में आने वाले विषयों के चयन में एक कठिनाई का अनुभव होता है। १०वीं शताब्दी के आसपास धनञ्जय ने दशरूपक की रचना कर नाट्यशास्त्रीय तत्वों का सङ्कलन कर दिया और उस पर उनके भाई धनिक ने वृत्ति लिखकर उन विज्ञानुओं के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया जो संगीतादि दूसरे शास्त्रों को वचाते हुये

शुद्ध नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का परिचय करना चाहते थे। बाद में जो भी नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखे गये या काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्यतत्त्वों का समावेश किया गया उनमें दशरूपक की अपनाई पद्धति का ही प्रमुख रूप से पदानुसरण किया गया। जो नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थतायें पुरानी पढ़ गई हैं उनका भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व है। अतः यहाँ पर अध्ययन की सुविधा के लिये नाट्यतत्त्वों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

पूर्वराग

आवश्यकता और सुविधा के अनुसार इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। यह नाटक प्रारम्भ होने के पहले की कार्यविधि है और इसका मुख्य एवं श्रेष्ठ उद्देश्य है देवताओं को प्रसन्न करना जिससे नाट्यक्रिया सफलता पूर्वक सम्पन्न हो सके। नाट्य एक लोकोत्तर कला है— ऐसी कोई विद्या नहीं, ऐसी कोई कला नहीं, ऐसा कोई शास्त्र नहीं तथा ऐसा कोई व्यवहार नहीं जिसका उपयोग नाटक में न हो। ऐसी कला का सफलता पूर्वक प्रदर्शन कोई हसी खेल नहीं। इसके लिये साधना और मनोयोग की आवश्यकता होती है। भगवान की कृपा के बिना कोई भी आरम्भ सफलता तक नहीं पहुँच सकता। इसीलिये प्रत्येक अनुष्ठान के पहले भगवदाराधन आवश्यक होता है, वही सफलता तक ले जाता है। उस अनुकम्पा को प्राप्त करने के लिये पूर्वराग के विधान का विवेचन किया गया है।

पूर्वराग का दूसरा उद्देश्य है अभिनेताओं की तैयारी। नेपथ्य विधान से लेकर रागमधुरी का माजमज्जा तक ऐसे अनेक स्तर होते हैं जिनमें सूत्रधार या अभिनेता को पार करना पड़ता है। उसे अभिनेताओं को सजाना पड़ता है, उनका स्वरूप भरना पड़ता है। सामर्थ्य सर्कलित कर हमें यथास्थान लगाना पड़ता है, थोड़ा बहुत प्रायोगिक अभ्यास भी करना पड़ता है। इसका अतिरिक्त और बहुत सी तैयारी करनी पड़ती है जिससे अभिनय के मध्य में दर्शकों का रसाम्बादन व्याप्त न हो जाय। इस प्रकार मुख्य अभिनय प्रारम्भ होने के पहले अभिनेताओं को तैयारी में जुट जाना पड़ता है। कभी कभी इस तैयारी में इतना समय लग जाता है कि नाटक ठीक समय पर प्रारम्भ ही नहीं हो पाता। एक ओर यह तैयारी चलती है दूसरी ओर दर्शक समय से पहले आने लगते हैं जिससे वे अपना ठीक स्थान ले सकें। धीरे धीरे आ जाती है तब प्रबन्धों के सामने ठन्ड़े नियन्त्रित करने की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है जिसमें लोग ठीक रूप से बैठकर समय की प्रतीक्षा कर सकें। छान्नी मन्त्रिण से पूर्ण रानन रहना असम्भव है। अतः उपस्थित जनता के सामने कोई प्रोत्साहक प्रश्न प्रस्तुत करना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार अभिनय की सफलता के लिये देवपूजन और उपस्थित जनता को आरत रखने के लिये कोई प्रोत्साहक प्रश्न प्रस्तुत करना दो समस्यायें व्यवस्थापकों के सामने थीं। इन दोनों की पूर्ति के लिये मुनि ने पूर्वराग की व्यवस्था की। मुनि ने इन दोनों उद्देश्यों का स्वयं स्वयं कर दिया है। देवाराधन के विषय

में-

देवस्तुष्यति यो येन यस्य यन्मनस प्रियम् ।

ततथा पूर्वर्गे तु मया प्रोक्त द्विजोत्तमा ॥

सर्वदेवत पूजाहं सर्वदेवतपूजनम्

धर्म्यं यशस्यमायुष्य पूर्वर्गप्रवर्तनम् ॥ V ५६, ५७

[हे उत्तम ब्राह्मणों। मैंने पूर्वर्ग में वह सब बतलाया है जिससे जो देवता प्रसन्न होता है। और जिस देवता के मन में जो प्रिय वस्तु होती है। यह सब देवताओं की पूजा के योग्य है, इसमें सभी देवों की पूजा की जाती है, यह धर्म, यश और आयु को बढ़ाने वाला होता है।]

जनमनोरञ्जन के विषय में-

दैत्यदानवतुष्ट्यर्थं सर्वेषां च दिवौकसाम् ।

निर्गीतानि संगीतानि पूर्वर्गकृतानि तु ॥ V ५८

[पूर्व रग के कार्य चाहे गीत युक्त हों या बिना गीत के हों इनका प्रयोजन दैत्यों, दानवों की तुष्टि है तथा सभी देवताओं की तुष्टि भी है।] नाटक की उत्पत्ति स्वर्ग लोक में हुई थी, अतः दसैंक दैत्य दानव और देवता ही थे, उन्हें सन्तोष देने के लिये पूर्वर्ग का प्रवर्तन किया गया था।

पूर्वर्ग का स्वरूप

यन्नाटयवस्तुन पूर्व रगविघ्नोपशान्तये ।

कुशीलवा प्रकुर्वन्ति पूर्वर्ग सञ्चर्यते ॥

अभिनेय वस्तु से पहले रग विघ्न की शान्ति के लिये अभिनेता लोग जिस नाटयविधा का सम्पादन करते हैं उसे, पूर्व रग की सज्ञा दी जाती है।

पूर्वर्ग वस्तुतः छोटे छोटे लगभग २० नृत्यगीतों का समूह होता है, जिसमें देवाराधन की प्रधानता होती है और जिसका मन्दव्य होता है रगशालानुरजन। इसके अतिरिक्त इसका एक और महत्वपूर्ण प्रयोजन होता है- एक छोटा मोटा रिहर्सन। प्रायः देखा जाता है कि नाटक के प्रस्तुतीकरण में कभी कभी कई प्रकार के विघ्न उपस्थित हो जाते हैं। कभी साजों या दूसरी सामग्रियों की कमी पड़ जाती है, कभी संगीत में स्वर लहरी उच्छिन्न हो जाती है, कभी नर्तकियों का पदन्यास विशृङ्खलित हो जाता है। प्रधान अभिनय के प्रारम्भ के पहले पूर्वर्ग की योजना कर लेना इस दिशा में लाभकारी होता है।

पूर्वर्ग की भरत-सम्मत प्रक्रिया

भरत ने पूर्वर्ग की प्रक्रिया पर नाट्यशास्त्र के ५वें अध्याय में प्रकाश डाला है। भरत के अनुसार इसको दो खण्डों में विभाजित किया जाता है- ९ विधिया पदा उठने

के पहले पुरो की जाती हैं और १० विधियों का सम्पादन पर्दा उठने के बाद किया जाता है। सबसे पहले ढोल और तुरही बजाकर आरम्भ की सूचना दी जाती है। फिर दरी बिछा दी जाती है और उस पर वाद्य यन्त्रों की स्थापना की जाती है। फिर गायक और वादकवृन्द अपने अपने स्थान ग्रहण करते हैं। अपने अपने साजों को लेकर सुर भरते हैं और उनकी सगति को ठीक रूप में लाने की चेष्टा करते हैं। साज समान की सगति बिठाई जाती है और वाद्य विशेषज्ञ अपने अपने साजों को ठीक करने का प्रयत्न करते हैं। जब सब वाद्य यन्त्र ठीक हो जाते हैं और उनका ठीक काम करने का विश्वास हो जाता है तब गायक लोग अपने अपने सगति का अभ्यास करते हैं और वाद्य यन्त्र के साथ अपने ताल सुर मिलाने की चेष्टा करते हैं, फिर अलग अलग वृत्तियों का अभ्यास करते हैं। वीणा को भी ताल स्वर से संयुक्त किया जाता है और इस रूप में लाया जाता है कि वाद्ययन्त्रों से उसकी सगति बैठ सके। गायक लोग अपने हाथों को विभिन्न सगीत विधियों में स्वर और ताल के अनुसार सञ्चालित करते हैं। इनका भी अभ्यास नेपथ्य के अन्दर ही किया जाता है। इसके बाद एक साथ वाद्य यन्त्र इस रूप से बजाये जाते हैं जिनमें एक समा सी बध जाती है। इसके बाद एक एक कर फिर एक बार देख लिया जाता है। इस प्रकार रगमञ्च पर आकर देवपूजन की तैयारी पूरी हो चुकती है।

इस समस्त तैयारी में विभिन्न स्तरों पर जो कार्य किये जाते हैं उनके नामकरण भी मुनि ने कर दिये हैं— सर्वप्रथम घोषणा के बाद वाद्य यन्त्रों का अपने स्थान पर रखना प्रव्याहार कहा जाता है। वादकवृन्द का अपना अपना स्थान ग्रहण करना अवतरण कहलाता है। फिर जब गायक कण्ठगति का अभ्यास करते हैं तब वह स्थिति आरम्भ कहलाती है। कण्ठ गति के अभ्यास के बाद जब वाद्य यन्त्रों के स्वरतालानुकूल सुव्यवस्थित करने का अभ्यास किया जाता है तब वह आश्रवणा विधि कहलाती है। विभिन्न शैलियों और विधियों में सगीत यन्त्रों का अभ्यास करना ब्रजपाणि कहा जाना है। वीणा यन्त्र की डोरी को ठीक कर ठमे मुखर बनाने को परिवट्टना की मञ्जा दी जाती है। सघोटना अगली स्थिति है जिसमें हाथों के सकेत का अभ्यास किया जाना है। गायक लोग वाद्य यन्त्राधिकारियों को अपने हाथ से सकेत देते चलते हैं। वे हाथ कण्ठ स्वर के अनुकूल चलते हैं और वाद्य यन्त्रों को अनुसरण करने की प्रेरणा देते हैं। फिर जब सभी वाद्य यन्त्र एक साथ मिलकर समा सी बाध देते हैं उसे मार्गमांशित कहा जाता है और कलाओं का पृथक् पृथक् छोटे बड़े और मझोले गीतों में अभ्यास करना आसारित शब्द से अभिरित किया जाता है। ये गीत अभिबारात देवपूजन विषयक होते हैं। ये ९ प्रयोग नेपथ्य के अन्दर रगमञ्च पर देवपूजन के लिये सूत्रधार के प्रवेश के पहले किये जाते हैं। भारत ने सगीत प्रकरण में इनका पर्याप्त विस्तार से परिचय दिया है।

कुछ लोगों के मत में इनका विस्तार उपयोगी नहीं है किन्तु जैसा कि बतलाया जा चुका है इसके दो महत्वपूर्ण प्रयोजन हैं नृत्य और सङ्गीत के लिये कलाविद् तैयार

हो जाते हैं और वाद्य यंत्रों की जाच हो जाती है जिससे मुख्य अभिनय में उनसे निराशा नहीं होती। इस बात का विश्वास हो जाता है कि गायक, वादक और नर्तक रगमञ्च पर पूरी निपुणता से अपनी कला का प्रदर्शन करेंगे। दूसरी बात यह है कि कार्य व्यस्तता के कारण सभी दर्शक एक साथ तो आते नहीं, जब तक रगशाला भर न जाय तब तक मुख्य नाटक जमना नहीं। यदि अभिनय पहले ही प्रारम्भ कर दिया जाय तो उत्तरवर्ती आगन्तुक प्रारम्भिक भाग का आस्वादन करने से वञ्चित हो रह जायें। अतः समय भरना भी इस क्रिया का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। जब आसारित क्रिया में छोटे बड़े गीत गाये जाते हैं तब दर्शकों का मनोरञ्जन भी अधिक होता है और तब रग स्थल पर उपस्थिति भी काफी हो जाती है। रगमञ्च पर दिखलाये जाने वाले कार्यक्रम के लिये वातावरण तैयार करना इसका एक महत्वपूर्ण प्रयोजन है।

इसके बाद जब पर्दा उठा दिया जाता है तब पूर्वर्ग का अगला कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया जाता है। अब रगमञ्च पर मद्रकाग प्रारम्भ हो जाता है या वर्धमानक (मृत्यु सवलित) राग का प्रदर्शन किया जाता है। अब सूत्रधार प्रवेश करता है और जर्जर को उठाकर विघ्नविनाश की क्रिया प्रारम्भ कर देता है। सूत्रधार के साथ दो अनुचर भी चलते हैं। उनमें एक दास के हाथ में ध्वज होता है और दूसरे के हाथ में पवित्र जलपट रहता है। सूत्रधार की वेषभूषा श्वेत होती है, वह श्वेत वस्त्र पहने रहता है और श्वेत पुष्पों की माला विस्रेता चलता है। वह स्वर्ण घट से पवित्र होकर लोकपालों की बन्दना और स्तुति करता है, जर्जर की पूजा करता है, पुष्प चढाता है। जर्जर की पूजा के लिये वह जिन अक्षरों का उच्चारण करता है वे होते तो निरर्थक हैं किन्तु जर्जर के लिये प्रभावशाली माने जाते हैं। जर्जर की पूजा के बाद सार्धक गीत और अभिनय प्रारम्भ होता है जो शृङ्गाररसप्रवण कोमल भी होता है और रौद्ररसानुकूल कठोर भी होता है। अब सूत्रधार अपने साथियों पारिपार्श्विक इत्यादि में चार्नालाप करता है। फिर सूत्रधार सफलता के लिये प्रार्थना करता है और नाटक में अभिनीत होने वाली वस्तु का तर्कपद्धति पर निर्देश करता है। वह रगमञ्च पर आकर अपनी कला से दर्शकमण्डली को अनुरजित करता है। यवनिका के अन्तर्गत चहिंगीतों के समान और विघ्ननों के भी नाम कारण किये गये हैं। अभिनय का प्रारम्भ आशीर्वाद से होता है। यह पहला रगमञ्चोप कार्य है अतः इसे उच्चापना करा जाता है। सूत्रधार समस्त रगमञ्च पर घूम फिर कर लोकपालों की स्तुति करता है अतः उसे परिवर्तन (धूमना) की सज्ञा दी जाती है। अब नान्दों का अवसर आता है जिसमें देवता, ब्राह्मण, राजा इत्यादि को आशीर्वाद दिया जाता है। इसमें आशीर्वाद के साथ स्तुति भी रहती है। जर्जर की पूजा के अर्पणीय शब्दों और अक्षरों का उच्चारण शुष्कावकृष्टा करा जाता है। वास्तविक अभिनय इसके बाद ही प्रारम्भ होता है अतः उसे रगद्वार की सज्ञा दी जाती है। अगिक और वाचिक सम्मिलित इस अभिनय में शृङ्गाररस परक सचरण चारों वक्त्रों का है। यदि यह नञ्जरण रौद्र पङ्क होता है तब उसे महावारी की सज्ञा प्राप्ति

होता है। त्रिगत में सूत्रधार, पारिपार्श्विक और विदूषक मिलकर बात करते हैं। सूत्रधार द्वारा तर्क वितर्क के साथ वस्तुनिर्देश करना प्रोत्तना करा जाता है।

दो रूपों में विभाजन का आधार

भरत ने उस परिस्थिति पर भी प्रकाश डाला है जिसके कारण पूर्वर्ग को दो भागों में विभाजित करने की आवश्यकता पड़ी। नारद के तत्वावधान में संगीत समारोहों का आयोजन किया जाता था जिसमें नृत्य, गीत, वाद्य इत्यादि सभी प्रकार के मनोरञ्जनों का समावेश होता था और दर्शकों में दैत्य, दानव, देव, सभी उपस्थित होते थे। आयोजन दो प्रकार का चलता था— कुछ में गीत विलकुल नहीं होते थे, केवल वाद्य और नृत्य का आनन्द लिया जाता था, कुछ कार्यक्रमों में केवल सागोपाङ्ग संगीत चलता था। संगीत में अधिकतर देवताओं की स्तुति और उनकी विजय गाथाओं का उल्लेख होता था। दैत्यों, दानवों और राक्षसों को संगीत से द्वेष था, वे देवताओं की प्रशंसा से चिढ़ते थे। अब उन लोगों ने मिलकर एक योजना बनाई— जब निर्गीत कार्यक्रम उनके सामने आता था तब वे उसमें बहुत अधिक रुचि लेते थे और बार बार उसके सुनने के लिये माग (फर्माइश) पेश कर देते थे और उसी में इतना समय निकाल देते थे कि संगीत सुनने का अवसर ही बहुत कम रह जाता था। उनकी यह प्रवृत्ति देवताओं को अच्छी नहीं लगी और देवताओं ने माग रखी कि इस कार्यक्रम से निर्गीत को विलकुल निकाल दिया जाय। किन्तु नारद ने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि वीणा वादन इत्यादि अनेक कार्यक्रम बहुत ही महत्वपूर्ण थे उनका सर्वथा परित्याग आयोजन की बहुत बड़ी हानि थी। अतः नारद इत्यादि ने तब वह व्यवस्था की कि निर्गीत कार्यक्रम परदा उठने के पहले रख दिया गया और देवपूजा का कार्यक्रम परदा उठने के बाद रक्खा गया। साथ ही संगीत कार्यक्रम को नृत्यवाद्य इत्यादि निर्गीत कार्यक्रम से जोड़ दिया गया जिससे दानव और देव दोनों की माग पूरी हो गई। निर्गीत कार्यक्रम के पृथक् और सम्मिलित दोनों रूपों में होने से दानवों का अपना मन चाहा कार्यक्रम मिल गया और देवता इसीलिये प्रसन्न हो गये कि उनकी प्रशंसा में किया जाने वाला कार्यक्रम निर्विघ्न चलने लगा।

पूर्वर्ग की यह विधि उपयोगी थी— इससे देवपूजन भी हो जाता था, गायकों, नर्तकों और वाद्य यंत्रों का एक हल्का पूरा पूर्वाभ्यास (रिहर्स) भी हो जाता था और दर्शकों को एक प्रोत्साह भी मिल जाता था तथा उनकी उलझाये रखने की समस्या भी रत हो जाता थी। किन्तु इसमें एक बुराई थी— यह कार्यक्रम बहुत लम्बा था और मुख्य अभिनय बड़ा दूर से शुरू होता था। दर्शक धक जाते थे, उनकी मनोरञ्जन की आवश्यकता इस प्राप्ति से पूरी हो जाती थी। वे मुख्य अभिनय का आनन्द नहीं ले पाते थे। जब यह रियायत भरत के सामने रखी गई तब भरत ने इसके सधियोजन का निर्देश दिया—

कार्योनातिप्रसङ्गो गीतनृत्तविधिं प्रति ।

गाते वाद्ये च नृत्ये च प्रवृत्तेतिप्रसङ्गत ॥ V १५३

खेदो भवेत्प्रयोक्तृणा प्रेक्षकाणा तथैवच ।

खिन्नाना रस भावेषु स्पष्टता नोपजायते ॥ V १५४

तत शेषप्रयोगस्तु न रागजनको भवेत् ॥ V १५५

[इस पूर्वरंग में नाचगान की दिशा में अत्यन्त विस्तार नहीं कर देना चाहिये । यदि संगीत, नृत्य, वाद्य इत्यादि की अत्यन्त अधिकता की जाती है तो प्रयोक्ता लोग हो एक ही जाते हैं दर्शक भी एक जाते हैं जिससे थकावट के कारण खेद का अनुभव होने लगता है । जब लोग खिन्न हो जाते हैं तब रस और भाव को स्पष्ट रूप में हृदयगमन नहीं कर पाते । (प्रयोक्ता ठीक रूप में प्रयोग नहीं कर पाते और दर्शक उसे ठीक रूप से समझ नहीं पाते और तब उत्तरवर्ती प्रयोग लोगों को आनन्द देने वाला नहीं होता ।)]

भरत ने सक्षिप्तीकरण का निर्देश दिया अवश्य किन्तु बात बनो नहीं । लोगों को मुख्य नाटक देखने की उत्कण्ठा बलवती थी और उन्हें बीच का यह पूर्वरंग विधान व्यवधान जैसा लगता था । अतः भरत ने ही इसमें और सकोच किया—

प्रत्याहारादिकान्यद्गान्यस्य भूयासि यद्यपि ।

तथाप्यवश्य कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥

[यद्यपि इस पूर्व रंग के प्रत्याहार इत्यादि बहुत से अंग हैं (और स्वयं में सभी आवश्यक भी हैं, फिर भी यदि उनसे मुख्य अभिनय में व्यवधान मालूम पड़े तो उसे छोड़ देना चाहिए) फिर भी विघ्न की शान्ति के लिये नान्दी का प्रयोग अवश्य कर लेना चाहिये ।]

आशय यह है कि ढोल या तुरही बजाकर उद्घाटन की सूचना देने के बाद सक्षिप्त सा नान्दी का प्रयोग कर लेना चाहिये जिसमें देवता इत्यादि की स्तुति के साथ आशीर्वाद देने की प्रक्रिया पूरी कर लेनी चाहिये । यह क्रिया विघ्नविधात के लिये आवश्यक है ।

इस प्रकार विस्तृत पूर्वरंग विधि के १९ अंगों के स्थान पर केवल एक छोटा सा नान्दी प्रयोग शेष रहा । अब व्यवस्था यह बन गई कि पर्दा के उठने के पहले अन्दर से नान्दी की क्रिया समाप्त कर ली जाती थी । तब पर्दा उठता था और तब सूत्रधार प्रविष्ट होकर देवस्तुति और आशीर्वाद परक वाक्य बोलकर ब्रह्मा के स्थान पर पुष्प मोक्षण करता था । इसका आशय यह है कि दो बार नान्दी पाठ होता था । एक बार परदा उठने के पहले और दूसरी बार पर्दा उठने के बाद रंगमञ्च पर आकर जो देवस्तुति और आशीर्वाद परक वाक्य बोला जाता था वह भी एक प्रकार का नान्दी पाठ ही था । कालिदास के पूर्ववर्ती नाटककारों में अश्वघोष, भास और शूद्रक का नाम लिया जा सकता है । अश्वघोष के पूरे नाटक प्राप्त नहीं होते । शूद्रक की पूर्ववर्तिता सन्दिग्ध है क्योंकि कालिदास ने

अपने पूर्ववर्तियों में शूद्रक का नाम नहीं लिया है। इस प्रकार केवल भास ही प्राचीन नाटककारों में उल्लेख्य रह जाते हैं जिनके पूरे नाटकों का पता है। इनके नाटकों में नान्दने तत प्रविशति सूत्रधार' ये शब्द आते हैं। इसके सिद्ध होता है कि इन नाटकों के प्रारम्भ होने के पहले नान्दीपाठ समाप्त हो जाता था तब सूत्रधार रगमञ्च पर आता था। सूत्रधार पुन आशीर्वादात्मक वाक्य बोलता था जो वस्तुतः दूसरा नान्दी पाठ ही कहा जा सकता था। पूर्वग के नान्दीपाठ की यही स्थिति प्राचीन नाटकों में थी। शूद्रक ने इस प्राचीन परिपाटी को न अपनाकर परवर्ती नवीन शैली को अपनाया है।

उक्त पद्धति से ज्ञात होता है बहुत समय तक नहीं चल सकी। यह दोहरा प्रयास व्यर्थ था, अतः आगे चलकर पहले नान्दीपाठ का परित्याग कर दिया गया और प्रारम्भिक मङ्गलाचरण के पद्य को ही नान्दीपाठ मान लिया गया। यह बात इस तथ्य से प्रामाणित होती है कि कालिदास इत्यादि के नाटकों में प्रारम्भिक पद्य से पहले नहीं बाद में लिखा होता है— 'नान्दने तत प्रविशति सूत्रधार'। इसका अर्थ यही है कि पहले नान्दी पाठ नहीं हुआ था। नाटक का मङ्गलाचरण का पद्य ही नान्दी पाठ है।

नान्दीपाठ की यह प्रक्रिया अब तक चलती रही। यद्यपि उसे नान्दीपाठ का नाम सम्भवतः बहुत कम दिया जाता है किन्तु कार्य वही किया जाता है कि उसे नान्दीपाठ को सज्ञा दी जा सके। वैसे पूर्वग और नान्दीपाठ का पुराना रूप तो समाप्त ही कहा जायेगा, किन्तु उसका ध्वसावशेष देवपूजन और आशीर्वाद के रूप में अब तक चलता रहा। कनिषय लोकनाटकों और नौटंकीयों में वास्तविक नाटक प्रारम्भ होने के पहले पूजन किया जाता है। उसमें धूप, दीप, नैवेद्य इत्यादि आधुनिक पूजा पद्धति अपनाई जाती है और प्रसाद बांटा जाता है। कभी कभी कई अभिनेता मिलकर भारतमाता या सरस्वती की मूर्ति स्थापित कर स्तुति परक एक समूह गीत गाते हैं और पुष्पमोक्षण करते हैं। यह विधि शुभ फलदायक एवं नाटक के सफल अभिनय के लिये उपयोगी मानी जाती है। इससे वानावरण बनता है तथा दर्शकों में यह अनुभूति जागृत होती है कि नाटक का अभिनय एक पुनीत कार्य है और अभिनेता में आत्मबल जागृत होता है। बंगाल की धार्मिक यात्राओं में पूर्वग की छाप कुछ अधिक मात्रा में दृष्टिगत होती है।

पूर्वग विधि मानव की मनोगत धार्मिक भावना से उद्भूत होने के कारण स्वाभाविक है फिर चाहे वह विस्तार में हो या संक्षेप में। मानव स्वभावतः अपने क्रियाकलाप को समस्त सफलता लोकातीन परमशक्ति के प्रसाद के रूप में स्वीकार करता है और प्रत्येक असफलता या प्रत्येक सन्देह में उसी परमशक्ति का आग्रह लेकर आश्वस्त एवं निश्चिन्त हो जाता है। वह प्रत्येक असफलता का कारण उस शक्ति का श्रवण ही मानता है। आज बुद्धिवादी युग है और पूर्वग की पुरानी विधि समाप्त हो चुकी है, फिर भी प्रत्येक वृत्ति एवं वृत्तिवार में उस भावना की आस्था के दर्शन होते हैं। लोकोत्तर शक्ति की वृत्ति को ठपार्जित करने के लिये मानव सर्वदा प्रयत्नशील रहता है।

आज के वैज्ञानिक युग ने जो लम्बे डग मोरे हैं उनके प्रभाव से अभिनय कला ने भी नया रूप धारण कर लिया है। नाटकों का स्थान सिनेमेटोग्राफी ने लिया है। आज मानव के चलते फिरते चित्र हमारा मनोरंजन करने के लिये सन्नद्ध रहते हैं। बनी बनाई पूरी पिकचर तैयार रहती है और घड़ी पल में ही चालू की जा सकती है। उसके लिये न सविधानक तैयार करने की आवश्यकता होती है, न स्वरूप भरने पड़ते हैं अतः पूर्वर्ग के किसी रूप का अवसर ही नहीं रह गया है। जनता को अटकाये रहने की समस्या केवल कुछ मिनटों की पड़ती है जब एक शो के समाप्त हो जाने के बाद दूसरे शो के प्रारम्भ होने में कुछ मिनटों का व्यवधान पड़ता है। उसको भरने के लिये या तो पुराने गीतों की रीत चढ़ा दी जाती है या विज्ञापन के दृश्य दिखला दिये जाते हैं जिससे दर्शक का मन लगा रहता है। फिर भी धार्मिक भावना का सर्वथा अपलाप नहीं होता। किसी भी फिल्म कम्पनी की स्थापना पर जो मुहूर्त किया जाता है वह इसी धार्मिक भावना के अन्तर्गत आता है। फिल्म कम्पनी ही नहीं विशिष्ट पिकचर के प्रारम्भ करने के अवसर पर भी देवपूजन किया जाता है। इसके साथ ही प्रत्येक शो दिखलाने के अवसर पर भी किसी न किसी रूप में इसका उपादान दृष्टिगत हो जाता है। अलग अलग कम्पनियों ने इसके लिये अपनी अपनी व्यवस्थायें कर रखी हैं। ठाढ़ाहरण के लिये बी आर चोपड़ा की फिल्मों में समुद्र से उठता हुआ ग्लोब दिखलाया जाता है और गीता का एक श्लोक बोला जाता है। जे ओम प्रकाश की पिकचर्स में शङ्कर जी की मूर्ति दिखलाकर 'त्वमेवमाता च पिता त्वमेव' इत्यादि श्लोक गायता जाता है। जैमिनी की पिकचर्स में दो बच्चे तुरही बजाते दिखलाये जाते हैं। मद्रास की पिकचर्स में नटराज की मूर्ति सामने लाई जाती है। शान्तराम की पिकचर्स में कमल पर खड़ी हुई एक स्त्री दिखलाई जाती है। राजकपूर की फिल्मों में पृथ्वीराज कपूर पूजा करते हुये दिखलाये जाते हैं। कल्पेश्वर फिल्म में शंकर जी के दर्शन कराये जाते हैं और राजश्री प्रोडक्शन में चित्र का प्रारम्भ सरस्वती के दर्शन से होता है। कई फिल्म कम्पनियाँ अपनी फिल्में पूजा विधि से प्रारम्भ करती हैं। इस प्रकार पूर्वर्ग विधि यद्यपि अपने पारिभाषिक रूप में समाप्त हो चुकी है, किन्तु यह भावना अब भी किसी रूप में निभाई जाती है।

सूत्रधार

मञ्च संचालन का सर्वोत्कृष्ट अधिष्ठाता सूत्रधार ही होता है; नाट्य सूत्र के सञ्चालन और व्यवस्थापन का वह सबसे बड़ा अधिकारी होता है। भरत ने उसके असीमित गुणों का उल्लेख किया है। वह सर्वशास्त्र विशारद होता है, देश विदेश का परिज्ञाता, व्यवहार कुशल और प्रयोग विज्ञान का महापण्डित तो होता ही है, गीत, नृत्य, नाट्य अभिनय की पद्धतियों और प्रयोगों की वारिक्रियों को खूब समझता है। वह नाटक का प्रारम्भ तो करता ही है कभी कभी स्वयं अभिनेता बनकर अभिनय में भाग भी लेता है।

सर्वगुण सम्पन्न होते हुये भी उसके विषय में एक सन्देह भी उत्पन्न हो गया है— वाण ने भास का परिचय देते हुये लिखा है कि भास के नाटक सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ किये हुये होते हैं। तो क्या और नाटक सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ किये हुये नहीं होते? वाण का ध्यान सम्भवतः भारत की इस स्थापना की ओर था कि पूर्वराग का पूरा सञ्चालन सूत्रधार ही करता था। वही जर्जर पूजन का भी सर्व प्रमुख प्रतिष्ठापक होता है। फिर जब पूर्वराग का कार्य समाप्त हो जाता है तब सूत्रधार समस्त कर्मचारी वर्ग के साथ रगमञ्च से हट जाता है और तब उसी के जैसे गुणों वाला एक दूसरा व्यक्ति आकर नाटक की स्थापना और सञ्चालन करता है। हो सकता है यह व्यवस्था प्राचीन नाटकों में लागू रही हो और ऐसे कतिपय नाटकों का वाण को ज्ञान हो। ऐसा स्वाभाविक भी है। भारत प्रतिपादित पूर्वराग विधि इतनी विस्तृत है कि कोई भी सञ्चालक भ्रान्त होकर विश्राम की आवश्यकता का अनुभव करने लगे। भारत ने नाटकीय व्यवस्था का जितनी गहराई से जितना सांगोपाग विवेचन किया है पृष्ठभूमि में अनेक नाट्यकृतियों के न होने पर वैसा विवेचन सम्भव ही नहीं है। यह दुर्भाग्य की बात है कि वह साहित्य सर्वथा लुप्त हो गया है। अब जो परवर्ती साहित्य उपलब्ध है उसमें कहीं भी स्थापक द्वारा रग सञ्चालन का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रायः सभी उपलब्ध नाटकों में रगसञ्चालक सूत्रधार ही है, कहीं स्थापक के दर्शन नहीं होते। यह ठीक भी है— जब पूर्व राग की विधि ही समाप्त हो गई तब नाट्यारम्भ से पहले सूत्रधार के एक जाने का प्रश्न ही ठपस्थित नहीं होता और न उसे अपने जैसे गुणवान किसी व्यक्ति को नियुक्त करने की आवश्यकता ही थी। सूत्रधार ही ताजे दिग्गज और ताजी त्रियाशक्ति से सभी कार्य सञ्चालित कर सकता था। यही कारण है कि परवर्ती नाटकों में सर्वत्र सूत्रधार ही नाट्यमञ्च का सञ्चालक है। कहीं वह सूत्रधार के रूप में है और कहीं आवश्यकतानुसार कोई दूसरा रूप धारण कर लेता है। उदाहरण के लिये उत्तरारमणरित में वह वैदेशिक का रूप धारण कर प्रस्तावना में भाग लेता है। परवर्ती काव्य शास्त्रकारों ने भी सूत्रधार और स्थापक के इस विभेद और पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी भी नाटक में स्थापक के अभाव पर ध्यान दिया है। अभिनव गुप्त ने लिखा है— सूत्रधार एव स्थापक इति सूत्रधार पूर्वराग प्रयुज्य स्थापक सन् प्रविशेदिति न भिन्नवर्तकता।' अर्थात् सूत्रधार ही स्थापक होता है। सूत्रधार पूर्वराग का प्रयोग कर स्थापक बनकर प्रवेश कर इसलिये पूर्वराग और आमुख भिन्न व्यक्तियों द्वारा सम्पादित होते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। किसी ने इस आशय के पद्य लिखकर भारत के मूल में शामिल कर दिए हैं। विश्वनाथ ने भी लिखा है— 'इदानीं पूर्वरागस्य सम्पक् प्रयोगाभावादेक एव सूत्रया सर्व प्रयोज्यतैति व्यवहार।' अर्थात् आजकल पूर्वराग के ठीक प्रयोग की परम्परा न रहने से एकाकी सूत्रधार ही सभी कार्य कर लेता है।

वाणभट्ट ने भास के विषय में जो यह कहा है कि भास के नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार द्वारा किया जाता है सम्भवतः इसका आशय यही है कि अन्य नाटकों में सूत्रधार

के साथ दूसरे पात्र भी सवाद करते हुये नाटक का प्रारम्भ करते हैं जबकि भास के नाटकों में अकेला सूत्रधार ही अभिनय को सञ्चालित कर देता है। परवर्ती नाटकों में सूत्रधार दूसरे सहयोगियों के साथ बातचीत करते हुये कवि, काव्य और कभी कभी नाट्य विषय का भी परिचय देता है जबकि भास के नाटकों में स्थापना के नियमों का पालन नहीं किया जाता— न इसमें कवि का परिचय दिया जाता है, न नाटक का नाम बतलाया जाता है, उसकी सामान्य विधि इस प्रकार होती है— सूत्रधार आता है और मङ्गलाचरण पद्य के बाद कहता है— 'मैं आप लोगों को सूचित करता हू कि—' (इसी समय उसे पर्दे के पीछे से कोई शब्द सुनाई देता है और वह कहता है) 'ओर यह क्या ? जब मैं सूचना देने ही जा रहा था तभी यह कैसा शब्द सुनाई दिया ?' फिर कुछ रुक कर और सुनने का अभिनय कर एकदम कहता है 'ओर समझ गया वे अमुक अमुक व्यक्ति अमुक अमुक कार्य कर रहे हैं।' यह कहकर सूत्रधार तो चला जाता है और जैसा उसने बतलाया होता है उसके अनुसार ही कार्य करते हुये पात्रों का प्रवेश होता है तथा मुख्य अभिनय प्रारम्भ हो जाता है। निम्नन्देश यह विधि परवर्ती नाटक साहित्य से सर्वथा भिन्न है जिसमें बड़ी ही कलात्मक पद्धति पर परिचय दिया जाता है और पात्रों का प्रवेश कराया जाता है। इसके लिये एक परिनिष्ठित शास्त्रीय परम्परा प्रचलित हो गई है।

प्रस्तावना अथवा आमुख

नाट्यशास्त्र में स्थापना, प्रस्तावना और आमुख इन शब्दों का एकार्थक रूप में प्रयोग किया गया है। यह पूर्वग और मुख्य नाटक का मध्यवर्ती आयोजन है जिसमें कवि, काव्य (नाट्य) और कभी कभी काव्यविषय का परिचय दे दिया जाता है। इस भाग का मन्तव्य होता है उपस्थित दर्शक गण को आकर्षित करना। कवि समाज में अपनी रचनाओं से प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है, जब उसका नाम सामने आता है तब दर्शक गण स्वभावतः आकृष्ट हो जाते हैं कि अमुक लेखक की रचना का आम्नादन करने का अवसर मिलेगा। किसी विशेषता के कारण ही अभिनय के लिये कोई नाटक चुना जाता है— या तो महत्वपूर्ण कवि की कृति हो, या कोई कथानक ही इतना प्रसिद्ध हो गया हो कि दर्शक उसे बार बार देखना चाहें। जहाँ ये दोनों बातें नहीं होती वहाँ भी दर्शकों में कौतूहल वृत्ति जागृत हो जाती है कि 'देखें अमुक कवि की रचना कैसी होती है।' समाज नवीनता को पसन्द करता है, अतः नवीन कथानक को दृश्यपटल पर अभिनीत करने हुये देखने की उसकी आकांक्षा होती है। कथानक का ऐसा अंश भी कभी कभी बतला दिया जाता है जो अभिनीत वस्तु के समझने में सहायक होता है। फिल्म जगत् में एक और प्रवृत्ति बढ़ गई है— कवि की अपेक्षा अभिनेताओं को अधिक महत्व दिया जाता है और उनकी ओर दर्शक आकर्षित भी अधिक होता है, क्योंकि अभिनय कला में कतिपय अभिनेता अपनी धाक जमा लेते हैं और उनके प्रति जनता में प्रशंसा का भाव जागृत हो जाता है। यह प्रवृत्ति प्राचीन काल में नहीं थी। उस समय कलाकारों में नम्रता की भावना अधिक

हो वे अपने मुख से अपनी प्रशंसा उचित नहीं समझते थे। अधिक से अधिक ऐसा एक वाक्य बोल देते थे जो प्रशंसा रूप नहीं आश्वासन रूप होता है- 'हम लोगों ने भले भाति अभ्यास कर रक्खा है अतः अभिनय में कोई कमी नहीं रह जायेगी सुविहित प्रयोगतया आर्यस्य न किमपि परिहायिष्यते।

प्रस्तावना का एक प्रयोजन और होता है- रंगस्थल में दर्शकों को शान्त कर रसास्वादन के लिये परिस्थिति तैयार करना। फिल्म जगत के समान केवल नामावली ही प्रस्तुत नहीं की जाती किन्तु साधु परिचय इस प्रकार दिया जाता है कि प्रस्तावना भाग भी एक छोटा मोटा आस्वाद्य अभिनय खण्ड बन जाता है। इसमें सवाद के लिये सूत्रधार के साथ नटी विदूषक और परिपार्श्विक आकर सवाद बोलते हैं, किसी ऋतु को लेकर या कभी कभी परिस्थिति को लेकर गीत का आयोजन किया जाता है और उसके प्रभाव पर सन्तोष किया जाता है- 'देखो तुम्हारे गीत से साण रंगस्थल कितना शान्त हो गया है मानो साण चित्र लिखित हो' या 'तुम्हारा संगीत इतना अच्छा बन पड़ा है कि मैं तो इतना आकर्षित हो गया हूँ कि मुझे ध्यान ही नहीं रहा कि आगे की कार्यवाही चलानी है। प्रस्तुतीकरण के लिये एक छोटा सा कथानक बना लिया जाता है और उसी का प्रदर्शन कर दिया जाता है। किन्तु इस समस्त क्रिया में आंगिक अभिनय को नहीं सवाद को भरत्व दिया जाता है इसलिये नियम बनाया गया है कि प्रस्तावना में भारती वृत्ति की प्रधानता रहनी चाहिये। अभिनय के लिये भी नियम बनाया गया है कि इसका प्रदर्शन वाणी और प्रहसन जैसे नट्यप्रकारों का जैसा होना चाहिये। उसमें उन्नी नाट्य प्रकारों के अंगों का उपयोग करना चाहिये। (इनकी विशेषताओं के लिये देखिये - भूमिका भाग I) ये अंग स्वतन्त्र नाट्य को प्रारम्भ में ही अधिक सुसज्जित और अधिक कलात्मक और अधिक आकर्षक बनाने की चेष्टा का एक अंग है।

नाटक के सूत्र्य अंश को भी नियम बद्ध कर दिया गया है। आचार्यों ने नियम बनाया है कि स्थापक को उसी प्रकार का रूप धारण कर रामायण पर आना चाहिए जिसकी वह सूचना देने जा रहा है- यदि सूचना किसी मानव के विषय में है तो उसे मानव रूप में आना चाहिये यदि सूचना देव विषयक है तो देव बनकर आना चाहिये और यदि देव और मानव दोनों का सम्मिलित कथानक है तो दोनों में कोई भी रूप धारण कर वह रामायण पर आ सकता है। सूचना के लिये नियम है कि वह चार तत्वों में किसी एक को सूचना देता है- वातु बीज, मुख या पात्र। उदाहरणार्थ में समस्त नाट्यवस्तु का सारांश सा दे दिया गया है- 'राम पिता की आज्ञा को सम्राट् स्वीकार कर बन को छोटे गये उनकी भक्ति से भरत ने माता के साथ ही राज्य का भी परित्याग कर दिया प्रसिद्ध सुभीच और विभीषण राम के अनुयायी बने और राम ने सभी उद्धतराजुओं को मार डाला' यह कथानक की सूचना है। रत्नावली नाटिका में बीज की सूचना दी गई है। नाटिका का बीज है- सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नावली का प्रवहण भोग में बचते बचते उदयन

के राजभवन में प्रवेश और फिर उदयन के साथ उनकी प्रणय सीता। इस बीज का परिचय स्थापक ने इन शब्दों में दिया है— 'अनुकूल विधाता दूसरे द्वीपों से भी, समुद्र के मध्य से भी और दिशाओं के छोर से भी लाकर अभिमत को मिला देता है।' मुख का आशय है श्लेष इत्यादि के द्वारा वस्तु की ओर सकेत करना। मुद्राराक्षस में स्थापक चन्द्रमहण के प्रसंग में कहता है कि 'दूर ग्रह केतु वलात् चन्द्र को अभिभूत करना चाहता है किन्तु चन्द्र की रक्षा बुध कर रहा है अतः केतु चन्द्र को दवाने में सफल नहीं हो सकता।' यहाँ केतु से मलयकेतु चन्द्र से चन्द्रगुप्त और बुध से चाणक्य की ओर श्लेष मूलक सकेत कर कथानक में मुख की सूचना दी गई है क्योंकि यहाँ से नाटक का प्रारम्भ होता है। पात्र की ओर सकेत अभिज्ञान शाकुन्तल में किया गया है— वहाँ स्थापक नटी का संगीत सुनकर उसकी प्रशंसा में कहता है— 'तुम्हारे इस आकर्षक संगीत के प्रेम से मैं ऐसा भुलावे में डाल दिया गया जैसे वेगवान हरिण इस राजा दुष्यन्त को भुलावे में डाले लिये जा रहा है।' यहाँ पर पात्र दुष्यन्त की ओर सकेत किया गया है और राजा शिकार खेलते हुये रगमञ्च पर आ जाते हैं।

पात्र का जिस प्रकार प्रवेश होता है उसके आधार पर प्रस्तावना के भेद भी किये गये हैं— दशरूपक में तीन भेद किये गये हैं— कथोद्घात, प्रवर्तक और प्रयोगातिशय। कथोद्घात में स्थापक या सूत्रधार ने वाक्य या उसके अर्थ को लेकर पात्र प्रवेश करता है यह प्रक्रिया मुद्राराक्षस और बेणी संहार में अपनाई गई है। प्रवर्तक में ऋतु वर्णन के साम्य के आधार पर पात्र प्रवेश होता है जैसा कि त्रियदर्शिका में किया गया है। प्रयोगातिशय में सूत्रधार 'वह आ रहा है' कह कर प्रत्यक्ष निर्देश के द्वारा सूचना देता है जो विधि अभिज्ञानशाकुन्तल में अपनाई गई है। साहित्यदर्पण में प्रस्तावना के दो भेद और बढ़लाये गये हैं उद्घातक और अवकलित। किन्तु इनका समावेश बीधा के अंगों में ही हो जाता है।

प्रस्तावना नाट्य रचना का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसका उपयोग नाट्य वस्तु का परिचय देने के लिये तो है ही नाट्यरसास्वादन के अनुकूल वातावरण बनाने के निमित्त भी इसका समावेश आवश्यक माना जाता है। इससे दर्शक आकर्षित होते हैं और उनके मन रमाने की पृष्ठभूमि भी तैयार हो जाती है। इसके लिये संगीत का भी प्रयोग किया जाता है और रोचक संवाद भी इस आवश्यकता को पूरा करते हैं। पात्र प्रवेश इतने कलात्मक ढंग से होता है कि दर्शक पूर्ण परिचित के समान उनका आस्वादन करने में अनायास हो प्रवृत्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त मुख्य अभिनय तक आते आते दर्शक सुव्यवस्थित भी हो जाता है और उसकी मनोवृत्ति भी आस्वादन के योग्य बन जाती है। पुरानी रंगी की नाट्य मण्डलियों में इसका प्रचलन अब तक बना हुआ है यद्यपि नवीन रंगी के नोटों में इसका प्रत्याख्यान होता जा रहा है।

अर्धोपक्षेपक

ऊपर कवि, नाटक और कथानक सूचना का विवरण दिया गया। केवल प्रस्तावना में ही नहीं मुख्य कथानक के क्लेवर में भी सूचना की आवश्यकता पड़ जाती है। कथानक का प्रत्येक भाग दृश्य रूप में दिखलाने योग्य नहीं होता। दृश्य रूप में वे ही भाग दिखलाये जाते हैं जिनमें रसनिष्पत्ति और रसास्वादन का अवसर होता है। किन्तु ऐसे भागों को दिखलाने से कथानक की क्रमबद्धता पूरी नहीं हो पाती जिससे उसके समझने में भी कठिनाई होती है। कुछ घटनायें दीर्घकाल व्यापी होती हैं, कुछ घटनाओं के मध्य बहुत अधिक व्यवधान पड़ जाता है, कभी कभी अन्तरालवर्ती समय में परिस्थितियाँ बदल जाती हैं जिससे अग्रिम दृश्य को समझने में व्यापाद उत्पन्न हो जाता है। अतः कथानक को शुद्धताबद्ध करने के लिये उन अन्तरालवर्ती घटनाओं की सूचना दे देनी पड़ती है जो नवीन परिस्थिति को जन्म देने वाली होती है। होश तो वे नीरस हैं किन्तु रसात्मक दृश्यों के आस्वादन के लिये उनका बतलाया जाना आवश्यक माना जाता है। इस प्रकार की सूचना देने वाले भाग को अर्धोपक्षेपक कहा जाता है। ये अर्धोपक्षेपक ५ प्रकार के होते हैं— विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अन्तर्वतार और अन्तर्मुख।

(१) विष्कम्भक— जो पात्र अपनी बातचीत के द्वारा विभिन्न घटनाओं का परिचय देते हैं उनमें यदि अमात्य, पुरोहित या कञ्चुकी जैसा मध्यम कोटि का भी पात्र सम्मिलित हो तो वह अर्धोपक्षेपक विष्कम्भक कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है— शुद्ध और सक्तीर्ण। यदि वार्तालाप में लगे सभी व्यक्ति मध्यम पात्र हों तो वह शुद्ध विष्कम्भक होता है। यदि कुछ पात्र मध्यम श्रेणी के और कुछ निम्न श्रेणी के हों तो वह सक्तीर्ण विष्कम्भक होता है। शुद्ध विष्कम्भक में पात्र या तो सस्कृत में बात करते हैं या शौरसेनी में या दोनों की मिली जुली भाषा में बातचीत होती है। किन्तु सक्तीर्ण विष्कम्भक में क्योंकि निम्न पात्र भी वार्तालाप में सम्मिलित होते हैं, अतः सस्कृत और शौरसेनी के साथ निम्नस्तर की प्राकृत भी प्रयुक्त होती है। मध्यम पात्र सस्कृत या शौरसेनी का प्रयोग करते हैं और निम्न पात्र निम्न कोटि की प्राकृतों का प्रयोग करते हैं। चाणक्य ने लिखा है कि इसका प्रयोग नाटक और प्रकरण में होता है। ज्ञात होता है पहले इसका प्रयोग केवल नाटक में होता था, बाद में प्रकरण में भी किया जाने लगा। इसका प्रयोग अक की आदि में या आमुख के बाद अथवा प्रथम अक के प्रारम्भ में किया जाता है। दो अकों के मध्य में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। अभिज्ञान शाकुन्तल में तीसरे और चौथे अक के बीच में दुर्वासा के शाप की सूचना विष्कम्भक के माध्यम से ही दी गई है। यह सर्वदा अक के प्रारम्भिक भाग के रूप में ही आता है, न तो अक के अन्त में आता है और न दो अकों के मध्य में, इसकी स्वतन्त्र सना होती है।

(२) प्रवेशक— इसका उपयोग और स्थिति विष्कम्भक से मिलती जुलती है। इसमें भी पूरा और धक्का घटनाओं की सूचना दी जाती है। किन्तु विष्कम्भक से अन्तर यह

होता है कि केवल नीच पात्र ही इसके प्रयोजक होते हैं, अतः केवल प्राकृत ही और वह भी मागधी आभीरी आदि निम्नकोटि की प्राकृत ही प्रयुक्त की जाती है। दूसरा अन्तः यह है कि इनकी स्थिति दो अकों के मध्य में होती है। इसका प्रयोग नाटक और प्रकरण में किया जाता है। शारदातनय इत्यादि कतिपय आचार्यों का कथन है कि यदि उन दो नीच पात्रों की बातचीत में ब्राह्मण इत्यादि कोई मध्यम पात्र शामिल हो जाता है तो वह संस्कृत का भी प्रयोग कर सकता है। यह केवल दो अकों के मध्य में आता है, इससे सिद्ध हो जाता है कि इसका प्रयोग प्रथम अक में नहीं होता। युद्ध, देशध्वंस, मृत्यु इत्यादि की जो घटनायें रंगमञ्च पर नहीं दिखलाई जा सकती कथासूत्र की एक सूत्रता के लिये इस अर्थोपपक्षेपक से उसकी पूर्ति कर दी जाती है।

(३) चूलिका- विष्कम्भक और प्रवेशक का प्रयोग अक की आदि में या दो अकों के मध्य में एक स्वतन्त्र सवाद के रूप में होता है। किन्तु कभी कभी अक के मध्य में भी सूचना देने की आवश्यकता पड़ जाती है। इस प्रकार की सूचना देने का एक साधन चूलिका है। इसमें पात्र रंगमञ्च पर आकर सूचना नहीं देता किन्तु जवनिवा के अन्दर से ही सूत्र, भागध या बन्दी इत्यादि कोई पात्र परदे के अन्दर से ही सूचना दे देता है। इसमें पात्रों के बहिर्गमन की आवश्यकता नहीं पड़ती। चूलिका का प्रयोग केवल अक के मध्य में ही नहीं होता किन्तु उसका प्रयोग कभी कभी अकारम्भ में कर दिया जाता है। इसका व्यतिरेकी लक्षण परदे के अन्दर से सूचना देना है। उदाहरण के लिये उत्तररामचरित में दूसरे अक के प्रारम्भ में परदे के अन्दर से आवाज आती है- 'तपस्विनी का स्वागत हो' इससे दर्शकों को ज्ञात हो जाता है कि अब रंगमञ्च पर तपस्विनियों का प्रवेश होगा और उनका सवाद दिखलाया जायेगा। तब आत्रेयी और वासन्ती का प्रवेश होता है और दोनों के सवाद से उत्तररामचरित के कथाशरीर परित्याग, इत्यादि का पता चल जाता है।

इसी प्रकार वीरचरित में चौथे अक के प्रारम्भ में परदे के अन्दर से सूचना दी जाती है कि वैश्वामित्र गण। रंगमञ्च इत्यादि की सजावट का आयोजन करो- राम ने परशुराम को जीत लिया है।

भास के नाटकों की प्रस्तावनाओं में सूत्रधार अन्दर की आवाज सुनते हुये कहता है कि 'अरे! मैं तो कुछ विज्ञापित करने जा रहा था यह शब्द कैसा सुनाई दिया अरे ज्ञात हुआ। यह कहते हुये हट जाता है और पात्र का प्रवेश होकर नाटक प्रारम्भ हो जाता है। इसे भी एक प्रकार की चूलिका ही कहा जा सकता है।

अकमुख- विष्कम्भक और प्रवेशक में दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की बातचीत से कथा का उन्मूलन किया जाता है, चूलिका में पर्दे के अन्दर से सूचना दी जाती है। अकमुख सूचना देने का एक अन्य प्रकार है। इसमें चल रहे प्रसंग में ही कोई पात्र आकर कुछ सूचना देता है जिससे नवीन कथानक का अवतरण हो जाता है। साहित्यदर्पणकार ने इसकी दो परिभाषायें दी हैं- (१) जहा किसी एक अक में सब अकों की पूरी सूचना

दी जाय वहा अकमुख नामक अर्थोपप्रेषक होता है। इसका उदाहरण दिया है— जैसे मालतीमाधव में प्रथम अंक की आदि में कामन्दवी और अवलोकिता ने भूरिवसु इत्यादि की पावी भूमिकाओं की संक्षिप्त सूचना दे दी है जिसका प्रासङ्गिक रूप में अभिनय किया जाने वाला है। किन्तु यह परिभाषा ठीक नहीं है— एक तो किसी नाटक की पूरी सूचना दी नहीं गई है, यहा भी मालती माधव के पूरी कथानक का परिचय नहीं दिया गया है। दूसरी बात यह है कि नाटक में कौतूहल वृत्ति अत्यन्त प्रयोजनीय होती है। रसास्वादन के अतिरिक्त कौतूहल वृत्ति भी दर्शकों को बाधे रहती है। यदि पूरी कथा का पहले ही परिचय दे दिया जायेगा तो कौतूहल वृत्ति तो समाप्त हो जायेगी, यह दर्शकों के आस्वादन में विघात ही उत्पन्न करेगा। इसी अरथि के कारण विश्वनाथ ने दूसरी परिभाषा दी है— 'जहा अंक समाप्त होने जा रहा है वहा उस अंक से सम्बन्धित ही कोई सी या पुरुष प्रविष्ट होकर कोई ऐसी सूचना दे देता है जिससे अग्रिम अंक का प्रारम्भ हो जाता है।' यह परिभाषा दशरूपक से ली गई है। इसका उदाहरण वीरघरित के दूसरे अंक से दिया गया है। शतानन्द और जनक का संवाद चल रहा है, इसी बीच सुमन्त्र आकर कहते हैं— 'भगवान् वशिष्ठ और विश्वामित्र, परशुराम के सहित आप लोगों को बुला रहे हैं।' उनसे पूछा जाता है भगवान् वशिष्ठ और विश्वामित्र कहा हैं? सुमन्त्र— 'महाराज दशरथ के पास।' तब सब लोग कहते हैं— 'तो उनके अनुरोध से हम सब वही चलते हैं।' इसके बाद अग्रिम अंक प्रारम्भ हो जाता है।

दूसरा उदाहरण अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक से दिया जा सकता है— राजा दुष्यन्त शाकुन्तला के वियोग से पीड़ित हैं। इसी बीच विदूषक का करुणक्रन्दन सुनकर धनुषबाण चढ़ा कर उसकी रक्षा की तैयारी कर रहे हैं कि इतने में ही इन्द्र का साराथि मातलि आकर निवेदन करता है— 'इन्द्र ने तुम्हें शशसों के वध के लिये नियुक्त किया है अतः उन्हीं पर तुम्हारे बाण चलाने चाहिये। इससे छठे अंक की समाप्ति हो जाती है और सातवें अंक का प्रारम्भ हो जाता है।

धनञ्जय की यह परिभाषा नाट्यशास्त्र से मेल नहीं खाती है जो इस प्रकार है— सी या पुरुष द्वाय श्लिष्ट रूप में प्राची वधावस्तु का उपप्रेषण अकमुख कहलाता है। यन्तुत भात की परिभाषा अनेक पाठभेदों में उलझ जाने से बहुत स्पष्ट नहीं है।

जिस प्रकार मुख देखकर व्यक्ति की पहिचान हो जाती है वसी प्रकार अंक के जिस भाग को देखकर अग्रिम अंक के आने वाले कथानक का कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है उसे अकमुख कहा जाता है। यही इसके नामकरण का कारण है।

अकावतार

एक अंक को बिना समाप्त किये जहा दूसरे अंक की सूचना दे दी जाती है तथा उसमें भीषणार्क उक्ति का भी समावेश रहता है उसे अकावतार कहा जाता है। इस व्यवस्था

से अग्रिम अंक का प्रारम्भ इस प्रकार किया जाता है मानों पहले अंक का ही क्रम जारी रखा गया है। पहले अंक के साथ ही दूसरा अंक अवतीर्ण हो जाता है अतः उसे अकावतार कहा जाता है। इसमें और अंकमुख में एक अन्तर यह है कि अंकमुख में सूचना के साथ ही पहले अंक में चलने वाला कथानक समाप्त हो जाना है और अगला अंक नये कथा भाग को लेकर चल देता है। इसके प्रतिकूल अकावतार में प्रचलन में विद्यमान कथानक का ही कोई पात्र कुछ सूचना देता है और उसे लेकर अगला अंक इस प्रकार प्रारम्भ हो जाता है मानों पहले अंक का कथाभाग ही चल रहा है। इसमें अंक के बदलने के साथ कथाभाग का विच्छेद नहीं होता।

उदाहरण के लिये भालविकाग्निमित्र में हरदत्त और गणदास पहले अंक में दिखलाये गये हैं; वहा यह भी दिखलाया गया है कि श्लिष्ट क्रिया किसी के तो आत्मा में रहती है और दूसरे लोगों का सक्रमण का ढग बड़ा ही विशेष होता है, जिसमें दोनों गुण हों वही शिक्षकों में अग्रगण्य होने का अधिकारी है। यह उक्ति ही बीज है। अच्छे शिक्षक की परीक्षा होनी है जिसमें दोनों को अपनी कला का प्रदर्शन करना है कि किसका शिष्य प्रतियोगिता में सफल होता है। आयोजन की सारी तैयारी है। अवान्त में विदूषक कहता है- 'तो फिर तुम दोनों देवी के मन्दिर में जाकर सगीत का आयोजन करो और बाद में आयोजन पूरा हो जाने पर श्रीमानजी के पास दूत भेज देना अथवा मृदङ्गरावद सभी को सूचना दे देगा।' इसके बाद दूसरा अंक प्रारम्भ हो जाता है जिसमें आयोजन का आनन्द लिया जा रहा है। कथानक बदला नहीं, उसी परम्परा में दूसरा अंक भी चल रहा है। इसके प्रयोग से प्रवेशक या विष्कम्भक की आवश्यकता नहीं रहती।

पिछले दिनों की आर चोपड़ा ने जो महाभारत दिखलाया था उसमें समय को सूचक बनाया गया था। समय जो सूचनायें देता था उसी सिलसिले में कथानक प्रारम्भ हो जाता था। समय की सूचना और वस्तु प्रदर्शन में अन्तर नहीं आता था। इसे अकावतार की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि इसमें समय रगमञ्ज पर उपस्थित नहीं होता। यह चूलिका और अकावतार का मिला जुला रूप है जिसे नये ही प्रकार का अर्थोपक्षेपक कहा जा सकता है।

नाट्यवस्तु

अभिनवगुप्त के अनुसार अभिनय के द्वारा जो कुछ दिखलाना कवि या अभिनेता का उद्देश्य होता है उसे नाट्य कहा जाता है और वह उद्देश्य नाट्य में सर्वदा रस होता है। अतः नाट्य का अर्थ है रस। कवि या नाटककार दर्शकों और श्रोताओं को रसास्वादन कराना चाहता है और दर्शक एवं श्रोता उसका आस्वादन करना चाहता है। अतः कवि का उद्देश्य होता है- रसनिष्पत्ति और परिशीलक का उद्देश्य होता है रसास्वादन।

कवि रसनिष्पत्ति के निमित्त जिम सामग्री का उपादान करता है उसे नाट्यवस्तु की

सजा दी जाती है। इस प्रकार रस निष्पत्ति भी एक प्रकार कार्य ही है। प्रत्येक कार्य के लिये कुछ सामग्री अपेक्षित होती है। मिट्टी से घड़ा बनाने में मिट्टी, चाक, कुह्लार इत्यादि अनेक तत्व कारण होते हैं। उनमें कोई एक कारण प्रधान होता है शेष अप्रधान। प्रधान कारण वही होता है जिसके नष्ट हो जाने से वस्तु नष्ट हो जाय। उदाहरण के लिये बना बनाया घड़ा कुह्लार के मर जाने से नष्ट नहीं हो जायेगा। जो गधा घड़ा बनाने के लिये मिट्टी लाया था उसके न रहने से घड़ा फूट नहीं जायेगा। अतः कुह्लार, चाक, गधा, कुह्लार का डण्डा ये सब तत्व मुख्य कारण नहीं हैं। यदि वह मिट्टी नष्ट हो जाय तो घड़ा भी नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार के प्रधान कारण को समवायिकरण या उपादान कारण कहा जाता है।

रस निष्पत्ति के लिये आयोजक रगमथ सजाता है, संगीत, वाद्य इत्यादि का प्रबन्ध करता है, पर्दे इत्यादि पर चित्रकारी करता है, दर्शकों को बैठने के लिये रगशाला का प्रबन्ध करता है, ये सब रस निष्पत्ति में सहायक कारण अवश्य हैं, किन्तु मुख्य कारण नहीं हैं। मुख्य कारण है— कथानक और उसका प्रदर्शन। लोक में घड़े के बनाने के लिये मिट्टी तो प्रधान कारण होती ही है मिट्टी के विभिन्न भागों का जोड़ना भी प्रधान कारण होता है क्योंकि जोड़ के ठूँड जाने से भी वस्तु नष्ट हो जाती है। इस प्रकार शास्त्रकारों ने कारण तीन प्रकार के बतलाये हैं— मिट्टी इत्यादि कोई वस्तु जिससे रचना की जाती है वह समवायिकरण या उपादान कारण होता है, मिट्टी के अवयवों का जोड़ अममवायि कारण कहलाता है शेष सभी निमित्त कारण बने जाते हैं। इसी प्रकार नाटक में भी प्रदर्शनीय वस्तु रामादि की कथा उपादान कारण होती है, उसका अभिनय असमवायि कारण होता है और रगसज्जा इत्यादि सभी साधन निमित्त कारण की बोटि में आते हैं।

अब यहा प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रदर्शनीय वस्तु का सीमा विस्तार क्या है। इस विषय में नाट्यशास्त्र में एक मनोरञ्जक उपाख्यान दिया हुआ है। ऋग्वेदादि से नाट्य का निर्माण कर ब्रह्माजी ने देवताओं को प्रदान कर दिया। देवता लोग अपनी विजय और दैत्यों की पराजय का अभिनय करने लगे और उसी का प्रदर्शन प्रारम्भ कर दिया। दैत्यों को यह जान बुझी लगी और उन्होंने विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया जिससे देवता लोग परेशान होकर ब्रह्माजी के पास गये और ब्रह्माजी ने दैत्यों को बुलाकर विघ्न डालने का कारण पूछा। दैत्यों ने कहा कि आपने नाट्यकला का यह साधन देवताओं को दे दिया है जिनसे वे लोग हमारे भजाव उठाने हैं। आपको यह पक्षपात नहीं करना चाहिये था आपके लिये हम और देवता एक जैसे हैं। इस पर ब्रह्माजी ने कहा— 'दैत्यों तुम्हें ज्ञांध नहीं करना चाहिये, तुम दुखी न हो। मैंने यह नाट्यवेद ऐसा बनाया है जो तुम्हारी और देवताओं की सभी की अच्छाइयों और बुराइयों पर प्रकाश डालने वाला है। यह तुम्हारे और देवताओं के कर्म और भाव दोनों की अपेक्षा करके चलने वाला है। यह वयस देवताओं की भावना का प्रतिनिधि नहीं है और न केवल तुम्हारी ही भावनाओं

और विचारों का प्रतिनिधि है। नाट्य तो तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन है। कहीं इसमें धर्म का विवेचन है, कहीं क्रीडा का, कहीं धन का, कहीं शान्ति का, कहीं हास्य का, कहीं युद्ध का, कहीं काम का, कहीं वध का। अधर्म में प्रवृत्त व्यक्तियों को धर्म का उपदेश देने वाला है, जो काम वासना के सेवन के लिये अत्यन्त आतुर है उन्हें काम कला की शिक्षा देता है, जो लोग उदण्ड और अमर्यादित हैं उन्हें नियन्त्रित करता है, जो लोग अनुशासित हैं उनमें अनुशासन के प्रति दृढता को बढाता है, वीरों में शक्ति का सञ्चार करता है, अल्पबुद्धि वालों की बुद्धि को विकसित करता है और विद्वानों की योग्यता को बढाता है। यह सम्पत्ति शालियों में विलास, दुःखी व्यक्तियों में सहन शक्ति, धर्म लिप्सुओं को धन, उद्विग्नचित्तवालों को धैर्य प्रदान करता है। मैंने यह ऐसा नाट्यवेद बनाया है जो अनेक भावों से भरा हुआ, विभिन्न प्रकार की स्थितियों से युक्त है और समस्त लोकवृत्त का अनुकरण करने वाला है। यह अच्छे बुरे या सामान्य सभी व्यक्तियों के कर्मों का चित्रण करता है, धैर्य, क्रीडा और सुख के साथ हितोपदेश भी देने वाला है। न ऐसा ज्ञान है, न शिल्प है न विद्या है न कला है जिसका उपयोग इस नाट्य में न होता हो। सब शास्त्र सब शिल्प, विविध कर्म इस नाट्य में एकत्र होकर रहते हैं। इस नाट्य में सप्तद्वीपा वसुमती का अनुकरण प्रतिष्ठित है। वैदिक साहित्य और महाभारत इत्यादि पुराणों के कथानकों को लेकर उनकी योजना नाट्य में इस प्रकार की जाती है कि उनमें आनन्द देने की शक्ति उत्पन्न हो जाते हैं। सब मनुष्यों की प्रकृति और हर्ष विषाद शारीरिक, वाचिक और आहार्य (वैषभूषागत) अभिनय द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं तब उसे नाट्य सज्ञा प्राप्त होती है।'

भारत के उक्त विवरण का आशय यही है कि नाट्य वस्तु के अन्तर्गत सभी लौकिक आचार व्यवहार, वस्तु स्थिति या कोई भी घटना सम्मिलित होने की अधिकारिणी है। इसीलिये भारत ने अपने अग्रिम अध्यायों में विस्तार पूर्वक लौकिक आचार विचार पर प्रकाश डाला है। प्रादेशिक रीतिरिवाज, स्त्री पुरुषों की प्रकृति, परिस्थिति सभी का वर्गीकरण कर विस्तार पूर्वक उनका विवेचन किया है। इसके साथ ही रस और भाव का भी विस्तृत परिचय दिया गया है और उसके उपकरणों रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति सभाषण विधि, भूषण विकल्प इत्यादि का सागोपाङ्ग विवेचन किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि जिस प्रकार प्रपञ्चात्मक विश्व की इयत्ता नहीं उसी प्रकार उपादेय नाट्यतत्त्व की भी सीमा नहीं। समाज में नये नये परिवर्तन होते जाते हैं, नये नये वैज्ञानिक प्रवर्तन और नये सम्पर्क समाज को जब जब जैसा जैसा नवीन रूप देते जाते हैं वह सब नाट्यवस्तु के रूप में प्रयुक्त होता रहता है और भावी परिस्थितियाँ उन पर अपनी छाप छोड़ने के लिये सतत सन्नद्ध रहती हैं। सातवाँ यह है कि नाट्य वस्तु की इयत्ता है ही नहीं।

लोकधर्मी और नाट्यधर्मी

ऊपर के संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट हो जाता है कि काव्यवस्तु का स्रोत लोकवृत्त ही है। लोक में लोग जिस प्रकार चलते फिरते उठते बैठते उद्योग धन्ये चलते, आमोद प्रमोद करते हैं वही सब नाट्य में भी आता है। किन्तु इससे यह समझना भूल होगी कि नाट्य लोक की एक सच्ची फोटोग्राफी है। यह सच है कि नाटककार लोकवृत्त का अतिक्रमण नहीं कर सकता और न लोक में प्रतिष्ठित कथानकों एवं इतिहास वृत्तों में उलट फेर कर सकता है, इसके साथ ही यह भी सच है कि कवि का वर्तव्य लोक के अन्यानुकरण की अपेक्षा बहुत अधिक महान है। लोक के साथ ही उसे कुछ ऐसे तत्वों का समावेश करना पड़ता है जो लोक में दृष्टिगत नहीं होंगे। लोक में लोग सीधी सीधी भाषा में अपने विचारों और मनोभावों को व्यक्त कर देते हैं और सारे व्यवहार साधारण बातचीत से ही चलते रहते हैं। न तो कोई गीत गा कर बतें करता है न कोई बातचीत में नाचने लगता है न उनमें वाद्य यंत्रों की गण की आवश्यकता होती है। धूल ने विभिन्न भावों को प्रकट करने के लिये जिना अंगिक चेष्टाओं का विवेचन किया है उनका लोक ने कहीं ध्यान नहीं देखा जाता। वस्तु के सुन्दरीकरण और आकर्षक रूप में सम्प्रेषण के लिये हम प्रकार की चेष्टाओं और मूल्य गांथादि के समावेश का निरन्तर अपेक्षा होती है। इसीलिये शास्त्रकारों ने वस्तु को दो रूपों में विभाजित किया है— लोक से उपादेय वस्तु और केवल नाट्य में प्रयोजनीय वस्तु। पहले प्रकार की वस्तु को लोकधर्मी और दूसरे प्रकार की वस्तु को नाट्यधर्मी कहा जाता है। कवि काव्यवस्तु को ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है कि लोक में प्रचलित परम्परा और व्यवहार का अतिक्रमण न होने पाये, साथ ही उन व्यवस्थाओं का भी पालन हो जो नाट्य परम्परा में प्रतिष्ठित हो चुकी है तथा नाट्य को सार्वजनिक एवं आकर्षक बनाने के लिये जिनका उपादान अत्यावश्यक है।

नाट्यधर्मी तत्वों का लोकधर्मी के समान समानोत्तर विस्तार है। देवी और सौख्य शक्तिशाली की त्रिपाशांलता स्वर्गीय दूर्य और व्यक्ति, नदी, पर्वत, अस्त्रास्त्र, विमान, वक्त्र, पनाका, पशुपती इत्यादि का मनुष्य रूप में मनुष्य की भाषा में बातचीत करना यह सब नाट्यधर्मी ही है। कभी कोई व्यक्ति एक रूप में कार्य करता है और तत्काल बाद दूसरा रूप धारण कर लेता है। यह अभिनेताओं की कमी के कारण भी होता है और किसी अभिनेता की कई भूमिकाओं के कुराल निर्वाह की योग्यता के कारण भी होता है। कभी कभी जहाँ साधारण चल होनी चाहिये वहाँ पात्र नाच नाच कर चलता है तथा अभिनय के साथ पद विशेष करता है। कभी कभी निर्दिष्ट सम्यन्ध दिखलाने जाते हैं। भुविष्य के लिये रमण्य के विभाग कर उनमें जाबारा इत्यादि की परिवर्तन कर ली जाती है। यह सब नाट्यधर्मी ही है। मारा यह है कि नाट्यकार कथानक का उपादान लोक से ही करता है, किन्तु उसमें दृश्यमय मुद्राओं और अभिनयों द्वारा ही किया जाता है तथा कभी कभी उसमें मोकोन्य तत्व का भी समावेश कर दिया जाता है जो नाट्यधर्मी के

क्षेत्र में आता है।

नाटक में दोनों धर्मियों का पृथक्करण किञ्चित् अशक्य है। जो तत्व लोकोत्तर होते हैं उनकी सत्ता लोक में नहीं पाई जाती, लोकोत्तर पात्रों का समावेश और दैवी शक्तियों का उपादान इनमें नाट्यधर्मिता सन्दिग्ध रहती ही नहीं क्योंकि लोक में उनकी सत्ता होती ही नहीं। इसी प्रकार अगाभिनय के द्वारा उपस्थापन भी लोकबाह्य ही होता है। इस प्रकार नाट्य में नाट्यधर्म का महत्व अधिक है। यह उसी प्रकार होता है जिस प्रकार काव्य में स्वभावोक्ति की अपेक्षा वक्रोक्ति अधिक उपादेय मानी जाती है। भरत का कथन है कि नाट्य का प्रयोग सर्वदा नाट्यधर्म प्रवृत्ति के साथ ही करना चाहिये क्योंकि अगाभिनय के बिना कभी दर्शकों में राग जागृत ही नहीं किया जा सकता। सामान्य प्रवृत्तियाँ तो सभी में समान और सहजात होती हैं, उन सबका उपादान किसी विशेष उद्देश्य से ही किया जाता है। अतः अलंकृत अगाभिनय सर्वदा नाट्य धर्म ही माने जाते हैं।

कथानक के प्रकार

विकास की दृष्टि से वस्तु दो प्रकार की होती है— आधिकारिक और प्रासङ्गिक। अधिकार का अर्थ है फल का स्वामित्व। अधिकारी उस फल के स्वामी को कहते हैं। उसके द्वारा फल पर्यन्त पहुँचाई हुई व्यापक कथा वस्तु आधिकारिक कहलाती है। आशय यह है कि मुख्य कथावस्तु आधिकारिक कहलाती है जिसकी दो शर्तें हैं— एक तो वह कथावस्तु व्यापक हो। आदि से अन्त तक नाटक को घेरे हुये हो और उस कथानक का नायक फलभोक्ता हो। उस नायक के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये जो कथानक मध्य में प्रारम्भ कर दिया जाता है जिसका नायक प्रधान नायक के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये नाटक में समाविष्ट कर दिया जाता है वह कथानक प्रासङ्गिक कहलाता है।

प्रासङ्गिक कथानक दो प्रकार का होता है— पताका और प्रकरी। जो इतिवृत्त सानुबन्ध होता है अर्थात् मुख्य कथानक के साथ दूर तक चलता है उसे पताका कहा जाता है इसके प्रतिकूल जो कथानक मुख्य नायक का उपकारक तो होता है किन्तु दूर तक नहीं चलता उसे प्रकरी कहा जाता है।

रामायण के कथानायक राम का चरित्र प्रारम्भ से अन्त तक चम्पक है और रावण विजय, सौता की पुनः प्राप्ति रामायण के फल है जिसके भोक्ता भगवान् राम हैं। अतः उनसे सबद्ध कथानक आधिकारिक है। सुग्रीव का कथानक मध्य में सम्मिलित हो जाता है और बहुत दूर तक चलता है। अतः उनसे सबद्ध वृत्तान्त प्रासङ्गिक पताका कथा वस्तु है। शबरी का वृत्तान्त भी राम का उपकारक है क्योंकि उससे राम के चरित्र का विकास होता है। बिना वह कथानक एक स्थान पर सामने आता है और वहीं समाप्त हो जाता है। अतः उसे प्रकरी कहा जाता है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि कोई कथानक स्वभावतः न तो आधिकारिक

होता है न प्रासङ्गिक। रचना के अनुसार कोई कथा आधिकारिक हो सकती है और उसी की उद्देश्य के अनुसार प्रासङ्गिक रूप में योजना की जा सकती है। पताका नायक का भी कोई अन्य फल हो सकता है किन्तु उसकी सिद्धि बीच में हो जाती है। राज्य प्राप्ति का भोक्ता सुप्रोव भी है जो फल उसे राम से पहले ही प्राप्त हो गया।

पताका और प्रकरी का नाटक में समावेश अनिवार्य नहीं है। वैसे शास्त्रकारों ने नियम बनाया है कि पताका का प्रयोग गर्भ सन्धि में होना चाहिये। किन्तु ये सब शास्त्रीय विधान हैं जिनका अभिप्राय नाटककार को पराधीन बनाना नहीं है। ये सब केवल सुझाव हैं, यदि इस प्रकार की योजना से नाटक में सौन्दर्य का आधान करना सम्भव हो तो इस प्रकार की योजना की जा सकती है। भोजराज ने इन भेदों को कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ स्वीकार किया, उनके अनुसार कथानक तीन प्रकार का होता है— आधिकारिक आनुषङ्गिक और प्रासङ्गिक। भोजराज ने आधिकारिक के अतिरिक्त दूसरे भेदों की व्याख्या नहीं की है। क्या आनुषङ्गिक और प्रासङ्गिक से उनका अभिप्राय पताका और प्रकरी से है ?

कथानक के भेद

कथानक की अपनी प्रकृति के अनुसार उसके तीन भेद किये गये हैं— प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र। रामादि प्रसिद्ध इतिवृत्त प्रख्यात कथानक कहलाता है, काल्पनिक इतिवृत्त उत्पाद्य और दोनों का मिला जुला रूप मिश्र कथानक की श्रेणी में आता है। महावीर चरित, उदतरामचरित, वेणी सारार इत्यादि प्रख्यात कथानक के उदाहरण हैं, मालती माधव कथानक उत्पाद्य कथानक है। हर्ष चरित का प्रारम्भ सरस्वती की कथा से होता है जो उत्पाद्य है, फिर महाराज हर्ष की कथा आती है जो ऐतिहासिक प्रसिद्ध कथा है। इस प्रकार दोनों का मिला जुला रूप होने से यह मिश्र कथा का उदाहरण है।

भोजराज ने यह विभाजन कुछ अन्य प्रकार से किया है— इनके मत में कथानक ५ प्रकार का होता है (१) इतरासाश्रय जैसे कुमार सम्भव, हयग्रीववध इत्यादि इतिहास पुराण प्रसिद्ध कथानक को लेकर चलने वाली नाट्य कृति (२) कथाश्रयवाच्य जैसे बृहत्कथा का आधार पर अनेक नाटक लिखे गये। उदयन कथा को लेकर लिखे गये नाटक प्रसिद्ध हो हैं, (३) उत्पाद्य जैसे बादम्बरी में पुण्डरीक चन्द्रापीड इत्यादि का चरित्र, (४) अनुत्पाद्य जिसमें कल्पना का सहारा विलुप्त न लिया गया हो और (५) प्रति भस्कार्य इतिवृत्त जिसमें सीधे रूप में कथानक में अनेक दोषों की सम्भावना को देखकर प्रसिद्ध कथानक में काट छाट कर उसे दोष रहित बना दिया जाय।

श्रवण की दृष्टि से भेद

समर्पण की दृष्टि से दूरय और मूच्य भेदों की पहचान हो व्याख्या की जा चुकी जिसमें विष्कम्भक इत्यादि मूच्य भेदों का परिचय दिया गया। श्रवण की दृष्टि से कथानक

के तीन भेद किये जाते हैं— सर्वश्रव्य, नियतश्रव्य और अश्रव्य। श्रवण पर विचार रगमञ्ज पर अवतीर्ण पात्रों की दृष्टि से किया जाता है। परिशीलक तो सभी कुछ सुनता है, सभी प्रकार के सम्भाषण का लक्ष्य तो परिशीलक को सुनाना ही होता है। रगमञ्ज पर उपस्थित सभी पात्र जिस सवाद को सुनते और उसमें भाग लेते हैं वह सवाद सर्वश्रव्य होता है। कभी कभी दो पात्र रगमञ्ज पर उपस्थित किसी पात्र से छिपाकर कुछ कुछ बात करना चाहते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वह पात्र उस बातचीत को नहीं सुन रहा है तब वह सम्भाषण नियत श्रव्य होता है। इस प्रकार का सम्भाषण दो प्रकार का होता है— जनान्तिक और अपवारित। जहाँ हाथ की आड़ कर किसी के रहस्य की बात चुपके से किसी दूसरे पात्र से की जाय वह जनान्तिक होता है। जहाँ कुछ धूमकर या मुह घुमाकर चुपके से कोई बात किसी दूसरे पात्र से कह दी जाती है वह अपवारित होता है। कभी कोई पात्र मानो अपने मन में ही कोई बात कहता है जिसे रगमञ्ज पर उपस्थित कोई पात्र सुनता प्रतीत नहीं होता वह कथन केवल दर्शकों को सुनाने के मन्तव्य से किया जाता है उसे अश्रव्य कथन कहा जाता है।

सम्भाषण का एक प्रकार और है— आकाशभाषित, इसमें एक पात्र रगमञ्ज पर आता है और अकेले ही इस प्रकार बात करता है मानो कोई दूसरा व्यक्ति वही दूर खड़ा हुआ उससे बात कर रहा है। वह अकेला ही दोनों की बात कहता है। अपना उत्तर तो देता ही है, दूसरी ओर की बात को 'क्या कहा?' कह कर पूरा कर लेता है।

पताकास्थानक

वस्तु से ही सन्निहित एक अन्य तत्व होता है पताकास्थानक। पताका में तो दूसरी कोटि का एक कथानक ही अभिनीत किया जाता है। उसको भी पताका इसीलिये कहा जाता है कि जिस प्रकार पताका को देखकर राजसत्ता का परिचय प्राप्त हो जाता है या आजकल विशिष्ट प्रकार की पताका देखकर पता चल जाता है कि यह किस पार्टी का आयोजन है उसी प्रकार अप्रधान कथानक को देखकर प्रधान कथानक का पता चल जाता है। उदाहरण के लिये वालि और सुग्रीव का अभिनय देखने से मालूम पड़ जाता है कि राम विषयक नाटक चल रहा है। पताकास्थानक उस प्रकार का कथानक भाग नहीं होता, वह पताका नहीं पताका जैसा होता है। उससे भविष्य में क्या होने वाला है इसका अनुमान लग जाता है। सफेद पताका को देखकर अनुमान लगा लिया जाता है कि विरोधी पक्ष सन्धि के लिये तैयार है और अब बहुत शीघ्र संधि समाप्त हो जायेगा। इसका सम्बन्ध अर्थप्रकृतियों से है किन्तु इसे अर्थप्रकृतियों में शामिल नहीं किया जाता। न यह कोई व्यक्तित्व है और न सानुबन्ध है। यह कार्य व्यापार में शामिल अवश्य होता है।

परत ने नाट्यशास्त्र में इसके चार प्रकार बतलाये हैं और ठन्री का अनुकरण अनेक काव्यशास्त्रियों ने किया है— (१) किसी अन्य उद्देश्य से कोई कार्य करते हुये कोई बहुत

बड़ी उपलब्धि हो जाना पहला पताका का स्थानक है। उदाहरण के लिये रत्नावली में राजा सागरिका से अत्यन्त प्रेम करते हैं और उसे सकेत स्थान पर बुलाते हैं। रानी वासवदाता को पता चल जाता है। उधर सागरिका रानी से प्रताडित होकर फासी लगाने की वैयासि करती है। राजा रानी को मनाने जाता है और मार्ग में सागरिका को फासी लगाते देखकर समझता है कि रह होकर रानी फासी लगा रही है। वह रानी की फासी छुड़ाने जाता है जहाँ उसे अपनी प्रेमिका सागरिका मिल जाती है। इस प्रकार रानी को बचाने के प्रयत्न में राजा को सागरिका मिल जाती है।

२ जहाँ कोई बात बड़ा घटा कर कही जाय और अन्त में वह सत्य सिद्ध हो जैसे उत्तररामचरित में राम दर्प के साथ कहते हैं— 'स्नेह, दया और सौख्य यहाँ तक की सीता को भी छोड़ना पड़े तो लोकाराधन करने के लिये मुझे कुछ नहीं होगा।' और अन्त में राम को वस्तुतः सीता परित्याग करना पड़ता है।

३ जहाँ कोई बात कही जाय और वह किसी दूसरे की कही बात से जुड़कर भविष्य की किसी महत्वपूर्ण घटना की सूचना दे दे। जैसे प्रेम के क्षणों में दुर्योधन पानुमती से कहता है— 'तुम्हारा आसन तो है हमारा उर युग्म।' इस 'उर युग्म' शब्द बोलने के साथ ही उसे सेवक की चिल्लाकर कही गई बात सुन पड़ती 'टूट गया।' सेवक वस्तुतः वायु से पताका टूट जाने की बात कह रहा था। किन्तु 'उर युग्म टूट गया' इन शब्दों ने मिलकर अन्त में दुर्योधन की अथाओं के टूटने की ओर सकेत कर दिया। इसी प्रकार प्रतिमा में सीता ने शौक में मुनि वस्त्र धारण किये थे जिससे कुछ ही समय बाद होने वाले वनवास की ओर सकेत हो गया।

४ जहाँ श्लेष गर्भित रूपर्यक शब्दों का प्रयोग किया गया हो और वह प्रधान कथा भाग के किसी अन्य अर्थ की ओर सकेत कर दे। जैसे रत्नावली में खण्डदास ने राजा को एक ऐसा मन्त्र दिया है जिसके प्रभाव से लतायें धेमीसम फूल खिलाने लगती हैं। राजा ने वह प्रयोग लता पर किया है और दावा किया है कि उसका प्रयोग सफल होगा। रानी ने चुनौती दी और दोनों में टोड लग गई। राजा को सूचना मिली की लता में फूल निकल आये हैं। वह विजयगर्व में फूलकर विदूषक के साथ जाते रह रहा है— 'चलो देखें आज जब मैं समदना उदाम उत्कलिका लता को प्रेम पूर्वक देखूंगा तो रानी का मुख कोपारण हो जायेगा।' यहाँ 'समदना' और उदाम उत्कलिका के दो दो अर्थ हैं— 'समदना' अर्थात् (१) मदनवृक्ष के साथ और (२) वापदेव की भावना से भरी हुई। उत्कलिका का है— (१) खिली हुई बलियों वाला और (२) उत्कण्ठित। यहाँ राजा के शब्द हैं कि जब मैं उस लतावासी मदनवृक्ष से पिपरी हुई उत्कलिकाओं से भरी हुई लता को प्रेम के साथ देखूंगा तब (अपनी पताका के कारण) रानी ऐसी क्रोध में भर जायेगी मानो मैं किसी मुन्दरी पत्नी को देख रहा होऊँ।' यह एक सकेत है और कुछ ही समय बाद राजा के सागरिका के प्रति प्रेम को देखकर वास्तव में रानी को क्रोध आ

गया। यह श्लेष मूलक पताका स्थानक है।

दशरूपककार ने केवल चौथे प्रकार के पताका स्थान को स्वीकार किया है और उसमें अन्योक्ति मूलक एक भेद और जोड़ दिया है। अन्योक्ति मूलक पताका स्थानक का उदाहरण— 'दुष्यन्त और शकुन्तला एक लता मण्डप में मिल रहे हैं। उसी समय सन्ध्याकाल में गौतमी के आने की सूचना मिलती है और शकुन्तला बाहर जाने के लिये बाध्य है। वह लता मण्डप को सम्बोधित कर कहती है— 'लतामण्डप ! पुनः परिभोग के लिये हम तुम्हें आमन्त्रित करते हैं।' यहां पर शकुन्तला और दुष्यन्त के पुनः लता कुंज में मिलने के लिये यह संकेत हो जाता है। इस प्रकार दशरूपककार के मत में इसके दो भेद हो जाते हैं। साहित्यदर्पण में भरत निरूपित ४ पताका स्थानकों का विवेचन किया गया है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार कुछ लोग कहते हैं कि प्रथम चार अंकों में क्रमशः चारों पताका स्थानों का प्रयोग किया जाना चाहिये। किन्तु ऐसा कोई नियम नहीं। सभी सन्धियों में कितनी ही बार आवश्यकतानुसार पताकास्थानकों का प्रयोग किया जा सकता है। ये पताकास्थानक कभी मङ्गलार्थक होते हैं कभी अमङ्गलार्थक। प्रस्तुत उदाहरणों में ही पहले में उदयन की सागरिका के मिलन की माङ्गलिक प्राप्ति हुई है, दूसरे उदाहरण में सौता परित्याग रूप अमांगलिक परिणाम निकला है, तीसरे में दुर्योधन के उग्र तोड़े जाने में परिणति अमांगलिक है और चौथे में वासवदत्ता की सौत आ जाने से उसके लिये अमांगलिक तथा राजा के लिये सुन्दरी सुवती के लाभ के कारण माङ्गलिक है।

वस्तु का उदात्तीकरण

वस्तु चाहे प्रख्यात हो चाहे उत्पद्य अथवा मिश्र सभी प्रकार की वस्तुओं में औचित्य का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। वैसे कवि किसी भी प्रकार की वस्तु चुनने के लिये स्वार्थीन होता है, किन्तु उसे इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि नाटक देखने में दर्शक की वितृष्णा उत्पन्न न हो, न तो उसे घटनायें अनुचित मालूम पड़ें और न उनमें असंभवनीयता का भान होना चाहिये। प्रख्यात वृत्त ऐसा ही होना चाहिये जिसे देखकर दर्शक यह समझे कि जिन घटनाओं को वह रंगमञ्च पर अभिनीत होते हुये देख रहा है वैसे घटनायें उसके आस पास नित्य होती रहती हैं। यदि थोड़ा बहुत अतिरिक्त शक्ति का परिचय दे दिया जाता है तो दर्शक उसे सहन कर लेता है। किन्तु उसमें मर्यादा का ध्यान अवश्य होना चाहिये। इसी प्रकार दर्शक की वितृष्णा उस अवस्था में भी हो जाती है जब वह ऐसे चरित्र देखता है जिसे वह दुराचार कहता है। ऐसी घटनाओं को बचाने की चेष्टा करनी चाहिये। जो बात प्रख्यात वस्तु के विषय में लागू होती है वही कल्पित वस्तु के विषय में भी बरी जा सकती है। वस्तुतः कल्पित वस्तु भी इस अर्थ में प्रख्यात होती है कि उसमें जो कुछ दिखलाया जाता है वैसा लोक में घटित होता रहता है। उसमें केवल नाम और घटना ज्ञात नहीं रहती। कल्पित कथानक के पात्र भी थोड़े समय में परिचित हो

जाते हैं।

यह ध्यान रखना चाहिये कि कवि एवं कलाकार की निष्ठा कथानक की सच्चाई की ओर उतनी अधिक अपेक्षित नहीं होती जितनी भावना की सच्चाई आवश्यक होती है। कवि इतिहासकार नहीं है वह दर्शकों को भावना का आस्वादन कराना चाहता है। यदि घटना की अनिवार्यता के कारण कहीं भावना में विक्षेप उत्पन्न हो रहा हो तो उसे घटना में परिवर्तन करने का अधिकार शास्त्रकारों ने दिया है। इसमें भी उसे लोक मनोवृत्ति का ध्यान रखना चाहिये। उसे इतनी तो छूट नहीं है कि वह अकबर को जहांगीर का बेटा बना सके परन्तु बद्धमूल सच्चाइयों को ध्यान में रखते हुये उसे व्यवहार और विवरण में परिवर्तन करने का पूरा अधिकार है। भावना की सच्चाई के लिये वह नई कल्पना कर सकता है, नये कथानक का समावेश कर सकता है, प्रख्यात कथा को नया रूप दे सकता है नई सगति बैठा सकता है। पुराण का दुष्यन्त मनचला नायक है, चिकनी चुपड़ी बातें कर एक भोली भाली कुमारी को वहकाकर उसका शीलभंग करता है और फिर लोकापवाद से डरकर उससे बिल्कुल मुकर जाता है। लोकापवाद से डरना प्रेम की सच्चाई नहीं है। अतः महाकवि ने उसके चरित्र की रक्षा करने के लिये दुर्वासा के शाप की कल्पना करली है। राम का उदात्त चरित्र है, किन्तु वे छिप कर वालि का वध करते हैं और वालि के किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाते। उनके चरित्र का परिमार्जन करने के लिये उद्युत्तराध्व में ऐसी परिस्थिति बनाई है कि उस घटना का ही परित्याग हो गया है। एक दूसरे कवि ने आत्मरक्षा के लिये वालिवध का औचित्य सिद्ध किया है।

कैकेयी दशरथ परिवार की एक प्रशस्त महिला है। राम को बनवास देने का ठनका कार्य अत्यन्त पूजित है जिसकी महाकवि वाल्मीकि ने निन्दा की है। किन्तु उनके चरित्र में परिमार्जन की अनेक कवियों ने अपने अपने ढंग से चेष्टा की है। किसी ने माया के दशरथ और कैकेयी द्वारा राम को बनवास दिलवाया है किसी ने रावण के मन्त्री माल्यवान की कूटनीति का सहारा लिया है। किसी ने शूर्पनखा को मन्यस के वेष में लाकर उनके द्वारा राम को बनवास दिलाने की कल्पना की है। सरस्वती को उनकी जवान पर बैठाकर उनके द्वारा बनवास दिलवाने की कल्पना तुलसीदास की है। प्रतिमा नाटक में उनकी उदात्तता के लिये कल्पना कर उनके इस कार्य को अधिक महान बना दिया है। प्रतिमा नाटक के अनुसार कैकेयी को पता चल गया था कि दशरथ को शाप मिला है कि पुत्र विद्योग में उनकी मृत्यु होगी। अब उन्हें चिन्ता सताने लगी। उन्हें चारों पुत्र एक समान प्यारे थे। किन्तु उक्त शाप के कारण उन्हें किसी एक पुत्र का जीवन छतरे में दिखलाई पड़ता था। अतः उन्होंने योजना बनाकर भरत और राघव को नमिहास भेज दिया और समझ लिया कि राजा दशरथ वृद्ध तो हो ही गये हैं जीवन का अन्त तो होना ही है। यदि भरत व विद्योग में उनकी मृत्यु हो जाय तो शाप की भी पूर्ति हो जायेगी और चारों पुत्रों की जीवन रक्षा भी हो जायेगी। किन्तु वह दाव खूब गया। अब कैकेयी ने यह

परीक्षण राम पर करना चाहता। उनका विचार १४ दिन का वनवास मागना था। किन्तु इतने अल्प वियोग में हो सकता है दशरथ की मृत्यु न होती। अतः सङ्कल्प विकल्प करते हुये मागने के समय उनके मुख से १४ वर्ष निकल गया और राम को १४ वर्ष का वनवास भोगना पड़ा तथा उनको अनेक परेशानियाँ और सीता वियोग की लम्बी वेदना तथा युद्ध की घटितताओं का सामना करना पड़ा। इसी प्रकार प्रचलित कथानक में आवश्यकतानुसार परिवर्तन और काटछाटकर चरित्रों के उदात्तीकरण कर लिये जाने का कवि को अधिकार है।

समाज में कुछ बातें रूढ़ हो जाती हैं और उन पर जनता की विश्वास भी हो जाता है यद्यपि वे बातें समाज के अनुकूल नहीं पड़ती या समाज की दृष्टि में वे सम्भव नहीं होतीं। फिर भी न तो उन्हें बुरा माना जाता है और उन पर अविश्वास किया जाता है। उनका उपादान सदोष नहीं माना जाता। उदाहरण के लिये एक स्त्री के अनेक पतियों का होना सदाचार की मर्यादा के प्रतिकूल माना जाता है। इसी प्रकार पर पुरुष को बुलाकर उससे सन्तान उत्पन्न करना भी सदाचार की मर्यादा में नहीं आता। किन्तु द्रौपदी के ५ पतियों का होना बुरा नहीं माना जाता। कुन्ती का पर पुरुषों से सन्तान पैदा करना जनता में त्रास उत्पन्न नहीं करता। इन घटनाओं को जनता सह गई है। अतः इससे वितृष्णा उत्पन्न नहीं होती। ऐसी घटनाओं का उपादान निषिद्ध नहीं माना जाता। इसी प्रकार समुद्र का लाघना, पहाड़ लेकर आकाश में उड़ना मानव शक्ति के लिये असम्भव घटनाएँ हैं। किन्तु हनुमान् श्री के विषय में यदि इनका प्रकथन किया जाता है तो वह असम्भव नहीं माना जाता। किन्तु इस विषय में इतना ध्यान रखना चाहिये कि जिस सीमा तक जनता ने मान्यता दी हो या उसे सम्भव मान लिया हो उसी सीमा तक उसका वर्णन करना चाहिये, उससे आगे नहीं जाना चाहिये। देवताओं की ही बात नहीं राजाओं की अतौकिक शक्ति का प्रचार हो जाता है। शातवाहन का नागलोक जाना प्रसिद्ध ही है। विज्रमादित्य के विषय में भी अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हो गई हैं। अतः उनके सम्बन्ध में लोकोत्तर शक्ति का वर्णन बुरा नहीं माना जाता। किन्तु काल्पनिक कथाओं के विषय में ऐसी बात नहीं है। उनमें पात्रों के विषय में जनसाधारण की भावना बनी हुई नहीं होती। अतः काल्पनिक कथाओं की रचना करने में असम्भव घटनाओं का वर्णन नहीं ही करना चाहिए। ध्वनिकार का कहना है—

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभगस्य कारणम् ।

प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ॥

[अनौचित्य के अतिरिक्त रस भग का कोई दूसरा कारण नहीं। प्रसिद्ध औचित्य का निबन्धन रस की सबसे बड़ी पराविष्टा है।]

प्रसिद्ध औचित्यबन्ध में ध्वनिकार ने विभाव, भाव, अनुभाव, सञ्चारी भाव इन सभी के औचित्य पर विचार किया है। सूक्ष्म रसमय रचना के लिये कवि को ऐसी रचना का

आश्रय लेना चाहिये जिसमें स्पष्ट रूप में ऋतु माला इत्यादि के उपादान का अवसर हो, जिसमें लीला इत्यादि अनुभावों के अभिनय की गुञ्जाइश हो। यह बात लोक प्रसिद्ध है कि कौन से भाव उचित होते हैं, कौन से अनुचित। समाज में प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कौन से प्रेम उचित होते हैं कौन से अनुचित। पुरुष का परस्त्री से प्रेम और परस्त्री का परपुरुष से प्रेम अनुचित माना जाता है। किसी स्त्री का अनेक पुरुषों से प्रेम उचित नहीं माना जाता, किन्तु वेश्या के विषय में यह नियम नहीं है। गुरुजनों के प्रति ब्रोध अनुचित होता है किन्तु शत्रु के प्रति उचित माना जाता है। इसी प्रकार हास्य रस भी गुरुओं के प्रति उचित नहीं होता। उत्साह एक उत्तम भाव है जो लोक मर्यादा के स्थायित्व में कारण होता है। किन्तु यदि बह्विध या लोक मर्यादा के उल्लङ्घन के विषय में उत्साह दिखलाया जाय तो वह उचित नहीं होता। यदि भय किसी कायर में दिखलाया जाय तो उचित होगा, किन्तु अत्तम पात्र में भय दिखलाया जाय तो वह उचित नहीं होगा। पहिरावे उढावे में भी औचित्य का ध्यान रक्खा जाता है। जो रमणी प्रियतम से मिलने जा रही है उसकी वेषभूषा और प्रकार की होगी, विमोगिनी की और प्रकार की। इस विषय में भरत का कहना है कि प्रकृतियां नाना शीलवाली होती हैं, शील में ही नाट्य की प्रतिष्ठ होती है। लोक सिद्ध ही सिद्ध माना जाता है, शास्त्र लोक स्वभाव से उद्भूत होता है। अतः नाट्य प्रयोग में लोक ही प्रमाण है। जो शास्त्र है, जो धर्म है, जो शिल्प है, जो क्रियायें हैं लोकधर्म द्वारा सञ्चालित होने पर ही वे नाट्य सञ्चा की अधिकारिणी होती हैं। स्यावर और चर लोक का शास्त्र के द्वारा इयत्ता के रूप में निर्णय करना असम्भव है। अतः सदाचार की मर्यादा लोक से ही समझ ली जानी चाहिये। वस्तुतः धर्म और अधर्म तथा उचित और अनुचित की भावना प्रत्येक समझदार व्यक्ति के हृदय में स्वतः होती है। अतः लोक प्रवृत्त व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा से ही उचित अनुचित का निर्णय कर लेता है। शास्त्रकार केवल दिग्दर्शन करते हैं।

नाट्य रचना

पूर्वरङ्ग, प्रस्तावना (आमुख), अयोपक्षेपक, नाट्यवस्तु के अन्तर्गत लोकधर्मों, नाट्यधर्मों, वधानक प्रकार और उसके भेदों तथा औचित्य पर प्रकारा डाला जा चुका। नाट्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण की भी एक परिपाटी है जिसका विवेचन शास्त्रकारों ने किया है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये पाश्चात्य नाट्य शैली के समान भारतीय नाट्य रचना में सङ्घर्ष अनिवार्य नहीं होता, किन्तु यह नाट्यपद्धति किसी भी समस्या को या विषय को लेकर चलती है और उसका विकास दिखलाया जाता है। नाट्य में वस्तु का आँदाम्य प्रयोजनोप होता है, साथ ही उसका निपुण गुम्फन भी उसे आकर्षक बनाता है। सुन्दर से सुन्दर वस्तु यदि ठपठपापन में डोब न घन पड़े तो उसकी रमणीयता पराहत हो जाती है और भाषारन से सन्धारण वस्तु गुम्फन की निपुणता से रुचिकर प्रतीत होने लगती है। वताकार को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कौन सी बात कहने योग्य है, किस वस्तु

का सकेत उसे रुचिकर बनाता है, क्या प्रदर्शनीय है, क्या सूच्य है। इसके साथ ही रचना भी आवश्यक है, प्रदर्शन के प्रकार पर भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। कथानक का उचित परिमाण में विभाजन करना और योजनाबद्ध रूप में प्रदर्शित करना नाट्य की सफलता के लिये अत्यन्त उपयोगी होता है। इसी दृष्टि से शास्त्रकारों ने अर्थ प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और सन्धियों पर विचार किया है। किन्तु यह सारा विवेचन परामर्श मात्र है इसको अनिवार्य नहीं मानना चाहिये। यदि इसमें रसास्वादन में सहायता मिलने की सम्भावना हो तो इसका अनुसरण करना चाहिये, नहीं तो इस योजना में यथेष्ट सुधार कर लेना चाहिये। लक्ष्य रसास्वादन होना चाहिये, योजना का परिपालन नहीं। फिर भी इस योजना का परिपालन प्रायः किया गया है और बड़े से बड़े कलाकारों ने इसका अनुसरण किया है तथा उससे उच्चकोटि की कलाकृतियाँ तैयार हुई हैं, अतः उन पर प्रकाश डालना अनिवार्य हो जाता है।

अर्थ-प्रकृतियाँ

अर्थ प्रकृतियाँ ५ मानी गई हैं— बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। कतिपय आचार्यों ने इनको दो भागों में विभाजित किया है— बीज और कार्य अचेतन अर्थ प्रकृतियाँ हैं क्योंकि इनमें क्रियाशीलता नहीं होती जबकि बिन्दु, पताका और प्रकरी क्रियाशील होने से चेतन अर्थ प्रकृतियाँ मानी जाती हैं। बीज का प्रारम्भ में निर्देश कर नाटक प्रवृत्त होता है जो नाटक का प्रमुख प्रेरक होता है और कार्य उसका फल है। शेष तीन चेतन अर्थ प्रकृतियाँ क्रियाशीलता की द्योतक हैं।

बीज

बीज उपमान पर आधारित है। जिस प्रकार एक बीज मिट्टी और पानी से संयुक्त होकर अकुरित हो जाता है, बढ़ता पौंडता है, शाखा-प्रशाखाओं में फैल फुटक कर झमड़े वृक्ष का रूप धारण कर लेता है तथा समय पर फलित होकर जन समाज के आस्वादन में कारण बनता है उसी प्रकार नाट्य बीज भी अभिनेताओं के क्रियाकलाप और साज सामग्री का आश्रय लेकर अकुरित होता बढ़ता पौंडता है, एक भरापूरा नाटक बन जाता है और अन्त में फल का रूप धारण कर परिशीलकों के रसास्वादन का कारण बनता है।

बीज का उल्लेख आमुख के बाद किसी पात्र द्वारा किया जाता है। कारण यह है कि बीज नाटक के इतिवृत्त का एक अंश है वह प्रस्तावनारूप नहीं हो सकता। कभी कभी आमुख में ही नट के मुख से बीज का उल्लेख करा दिया जाता है, तब मुख्य इतिवृत्त के प्रारम्भ होने पर कोई पात्र उसे पुनः दोहराता है। जब तक वह किसी पात्र के मुख से दोहराया नहीं जाता वह बीज का रूप धारण नहीं करता। उसके बीजरूपता धारण करने के लिये किसी पात्र द्वारा उसका दोहराया जाना नितान्त अपेक्षित होता है। रत्नावली, मत्स्यहरिश्चन्द्र, यादवाभ्युदय इत्यादि नाटकों में बीजोक्तियाँ आमुख में उल्लेख के बाद

इसी प्रकार दोहराई गई हैं।

रत्नावली नाटिका में दूरवर्ती सिंहल प्रदेश की राजकुमारी का वत्सदेश की ओर प्रस्थान, प्रवहण भद्र, जैसे तैसे कौशाम्बी के राजपराने में पहुँचना, वहा राजा से प्रेम और विवाह नाटिका की कथावस्तु का सार है। उसका बीज है— भाग्य विधान। उसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है— 'अनुकूल दैव दूसरे द्वीप से भी, सागर की लहरों के बीच से भी, दिशाओं के छोर से भी लाकर अभिमत को मिला देता है।' वेणीसहार में पाण्डवों द्वारा बदला लेना नाट्य वस्तु है, बीज रूप में भीमसेन के मुख से कहला दिया गया है 'मेरे जीते जो धृतराष्ट्र के पुत्र स्वस्य कैसे रह सकते हैं?' यही बात मुद्राराक्षस में भी है। उत्तररामचरित में सीता परित्याग की कथा अपराधी गई है। प्रारम्भ में ही राम की प्रतिज्ञा सामने जाती है— 'लोकाराधन के लिये स्नेह, दया, सुख यहा तक कि जानकी को भी छोड़ने में मुझे व्यथा नहीं होगी।' अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त एक खेला खाया सौन्दर्य का शिकारी है जिसने भोली भाली आश्रम की हरिणी जैसी शकुन्तला का शिकार किया है। उसी को व्यङ्ग्य रूप में प्रस्तुत कर कवि ने बीज रूप में राजा को शिकारी दिखलाया है। इस प्रकार बीज के अनेक रूप हो सकते हैं। यदि विपत्ति का निराकरण नाटक विषय हो तो बीज रूप में विपत्ति का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होता है। सक्षेप में कहा जा सकता है कि नाट्यवस्तु किस दिशा में जा रही है इसका सक्षिप्त संकेत कर दर्शकों को नाट्य रसास्वादन के लिये तैयार कर लेना ही बीज का मुख्य लक्ष्य है। यह कभी नायक के आश्रय से प्रकट किया जाता है कभी प्रतिनायक के और कभी किसी प्रधान सहायक (मन्त्री इत्यादि) के आश्रय से उपनिबद्ध किया जाता है। इस प्रकार जहा बीज के अनेक रूप होते हैं वहा उसके अनेक आश्रय होते हैं और उनके उपनिबन्धन के प्रकार भी अनेक हो सकते हैं।

बिन्दु

आचार्यों ने इसकी उपमा जल में पड़े हुये तेल के बूद से दी है। जिस प्रकार जल में पड़ा हुआ तेल का बूद जल में छिहर जाता है उसी प्रकार कथानक में भी बिन्दु सारे नाटक में बिखरे हुये होते हैं। इसके लिये दूसरी उपमा सीनरी में प्रयुक्त रगविरगे बिन्दुओं से दी गई है जिस प्रकार किसी सीनरी में रगविरगे बिन्दु छाल दिये जाते हैं जिनकी ओर स्वभावतः ध्यान चला जाता है और दर्शक यह समझ जाता है कि सीनरी का नया मोड़ अपुन स्थान पर आ रहा है। नाट्य दर्पण कार ने सृष्टि उत्पत्ति से इसका तुलना की है। सृष्टि रचना में जो तत्व सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ उसके तीन भाग थे— बीज, नाद और बिन्दु। बीज उसका अव्यक्त भाग था, नाद उभयनिष्ठ व्यक्ताव्यक्त और बिन्दु व्यक्त अतः था।

सामान्य रूप में कथानक में मोड़ को बिन्दु की सजा दी जा सकती है। जब एक

ही प्रकार का कथानक बड़ी देर तक चलता रहता है तब दर्शक स्वभावतः ऊब जाता है और चाहता है कि कथानक में परिवर्तन आये। उस समय कोई नई परिस्थिति या घटना अथवा उक्ति उपस्थित होकर कार्य विधि को नई दिशा दे देती है तब कथानक नये परिवेश में प्रवेश कर जाता है। कथानक में मोड़ देने वाले इस तत्व को नाट्यशास्त्रीय भाषा में बिन्दु कहा जाता है।

उदाहरण के लिये रत्नावली में अनगणपूजन हो रहा है। सभी लोग आमोद प्रमोद में मस्त हैं। सारा आमोद प्रमोद इतने समय तक चलता रहता है कि दर्शकों के मन में कथानक के अग्रिम भाग को जानने की इच्छा जागृत हो जाती है। 'फिर क्या हुआ' की भावना लोगों के मनों को गुदगुदाने लगती है। उसी समय वैतालिक आकर राजा का गुणगान करने लगता है— 'यह राजसमूह चन्द्रकिरणों के समान उदयन के चरणों की प्रतीक्षा कर रहा है' सागरिकां सुनकर सोचती हैं— 'क्या ये वे ही उदयन हैं जिनके लिये पिताजी ने मुझे भेजा है' और इस विचार के साथ ही प्रणयलीला का प्रवर्तन हो जाता है और कथानक का नया स्वरूप सामने आ जाता है।

अभिज्ञान शाकुन्तल में राजा शिकार खेल रहे हैं। हिरण की उछलकूद, पलायन ये सब जनता को आनन्द दे रहे हैं। राजा वाण का सन्यास करते हैं, उसी समय दो ऋषिकुमार उपस्थित होकर कहते हैं— 'यह आश्रम का मृग है, इसे मत मारिये, मत मारिये' राजा— 'क्या यह आश्रम का मृग है?' ऋषिकुमार बतलाते हैं— 'यह कण्व का आश्रम है, महर्षि सोमनाथ की यात्रा पर गये हैं और पुत्री को अतिथि सत्कार का भार सौंप गये हैं। आप आश्रम का आतिथ्य स्वीकार करें। यहाँ से दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय कथा का सूत्रपात हो जाता है।

प्रयोजन की सिद्धि के लिये अनेक फुटकर खण्ड बिखरे रहते हैं। उनकी विशुद्धता को दूर करना भी बिन्दु की एक आवश्यकता होती है।

घटाका

इसका परिचय नाट्यवस्तु के प्रकारों के प्रसंग में दिया जा चुका है। कर्म सम्पादन के लिये नायक को कतिपय सहायोगियों की आवश्यकता होती है। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति थोड़े ही होते हैं जो बिना सहायक के अनायास ही स्वकार्य सम्पादन कर लेते हैं। अतः अधिकांश कथानकों में घटाका अपेक्षित होती है। किन्तु वह अनिवार्य नहीं है। किसी भी नायक पर यह प्रतिबन्ध नहीं है कि बिना सहायक के वह कार्य सिद्धि प्राप्त ही न कर सके। यदि उसमें शक्ति है तो वह स्वयं ही सारा कार्य बना लेता है।

किन्तु अधिकतर ऐसा होता नहीं है। राम जैसे उदात्त, दुर्घर्ष नायकों को भी सुग्रीव की सहायता की आवश्यकता पड़ गई, फिर साधारण व्यक्ति की बात ही क्या?

प्रकरो

इसका भी परिचय नटयमलु प्रकाश के प्रसंग में दिया जा चुका है। प्रकरो शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'प्रकरोर्वेति प्रकरी' अर्थात् जो प्रकृष्ट रूप में सहायक सिद्ध हो। इसको प्रकृष्टता यहाँ है कि इसका किसी प्रकार का अपना स्वार्थ नहीं होता। यह केवल नायक की सहायता के लिये आता है और सहायता कर दृष्टि से ओझल हो जाता है फिर धूम कर नायक से पुरस्कार प्राप्त करने की भी परवा नहीं करता। उदाहरण के लिये उन कथा में बछुसु का वृत्तान्त प्रकरी ही है। प्रकरी का वृत्तान्त भी इसी प्रकार का है।

कार्य

'कृ' धातु से विघ्नार्थ प्रपञ्च प्रत्यय होकर कार्य शब्द निश्चय होता है जिसका अर्थ है— करणीय या वर्तव्य। करणीय व्यापार में चेष्टा या क्रिया का भी समावेश होता है और फलरूप प्राप्ति भी उसमें सम्मिलित हो जाती है। भरत ने दोनों मिलित अर्थों में इसका नामकरण किया है। 'नाटक' में आधिकारिक वस्तु के प्रयोजन का सिद्धि के लिये योग्य व्यक्तियों द्वारा जो प्रयत्न किया जाता है वह कार्य कहलाता है। बाद में आचार्यों ने फल को प्रमुखता प्रदान की है। दशरूपक में त्रिवर्ग (धर्म अर्थ और काम) को सम्मिलित या पृथक् पृथक् अथवा दा के योग से नटयफल या कार्य के लिये स्वीकार किया गया है। संहित्यदर्पण के अनुसार 'जो अपेक्षित साध्य हो जिसको दृष्टिगत रखकर व्यापार का प्रारम्भ किया गया हो और जिनको सिद्धि के लिये नाटक का समापन किया जाय उसे कार्य कहते हैं।

कार्यावस्था एवं सन्धि

वस्तुत्व वृत्ति जैसा कि डा. नोब्र का मत है किन्ना योजना की अपेक्षणी नहीं होता। उसमें तो स्वाभाविक उच्छलन होता है। किन्तु यह कथन मुक्तक वाक्य और गतों के विषय में चरितार्थ होता है। प्रबन्ध वाक्य और नाटक में किसी न किसी योजना की अपेक्षा अवश्य होती है। योजना के साथ नाटक रचना में वृत्ति सुव्यवस्थित बन जाता है जिससे परिस्थितियों और अलोचकों को परिचालन में परेशानी नहीं होती तथा वृत्ति का मूल्यद्वन पा ठंके रूप में हो जाता है। योजनाबद्धता का दृष्टिगत रखते हुये आचार्यों ने कार्यवस्थाओं और सन्धियों का वर्णन का है।

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटककार किसी बीच को लेकर क्रियान्वितता के द्वारा विवक्षित करने हुये उसे कार्य या फल तक पहुँचाता है। उसके लिये वह विम व्यापार चालों की योजना करता है उस ५ स्तर पर करने पड़ता है जिन्हें कार्यवस्था कहा जाता है।

कार्यावस्था

अवस्था का अर्थ है मुख्य फल के प्रति कायिक, वाचिक और मानसिक व्यापार। यह व्यापार, नायक, उपनायक, प्रतिनायक, नायिका आदि किसी के आधीन हो सकता है किन्तु फल भोक्ता प्रधान नायक ही होता है। कार्यावस्था, इस बात का परिचय कराती है की बीज विकसित होते हुये किस स्तर तक पहुँच गया है। ५ कार्यावस्थाओं का क्रम इस प्रकार है— (१) पहली कार्यावस्था आरम्भ होती है जिसका प्रधान लक्षण है उत्कण्ठा। यह उत्कण्ठा फल प्राप्ति के लिये भी होती है और फल प्राप्ति के लिये किये जाने वाले साधनों के लिये भी होती है। (२) दूसरी कार्यावस्था प्रयत्न होती है जिसमें फल प्राप्ति के उपाय करने में त्वरा आ जाती है। इसमें निश्चय हो जाता है कि अमुक कार्य अमुक प्रयत्न से सफल होगा। आरम्भ अवस्था में भी औत्सुक्य होता है, किन्तु वह औत्सुक्य इस दूसरी अवस्था में तीव्रतर हो जाता है। साथ ही इस अवस्था में औत्सुक्य के साथ उत्कट व्यापार का भी सहयोग हो जाता है। (३) तीसरी कार्यावस्था है प्राप्त्याशा इसमें कार्य की प्रगति में विघ्न उपस्थित हो जाता है। फल प्राप्ति की आशा तो होती है किन्तु उसका निश्चय नहीं होता क्योंकि उपाय और विघ्न दोनों मिलकर अनिश्चय की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। इसमें कभी बीज लक्षित हो जाता है और कभी छिप जाता है। विघ्न आते हैं और उनका निराकरण भी होता जाता है। विरुद्ध परिणाम की सम्भावना कभी कम हो जाती है कभी अधिक। (४) चौथी कार्यावस्था होती है नियताज्ञि इसमें विघ्नवाधाओं के निराकरण से फल प्राप्ति के निश्चय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रतिबन्धक धीरे धीरे शान्त होते जाते हैं और सहकारी कारण तथा सहायक जोर पकड़ते जाते हैं जिससे फल प्राप्ति सुदूर नहीं रह जाती। (५) पाचवी कार्यावस्था है फलागम इसमें नायक को प्रत्यक्ष फल की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् यह आशा नहीं रह जाती कि यदि इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में तो अपने प्रयत्न का नायक को फल मिल ही जायेगा। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि फल प्राप्ति का आवेश पाचवी अवस्था है। पूर्ण फल प्राप्ति और उसका उपभोग तो नाटक का साध्य कहा जा सकता है जिसके बाद नाटक समाप्त हो जाता है।

उक्त पाँचों कार्यावस्थाओं के अनुसार शास्त्रकारों ने ५ सन्धियों का विवेचन किया है। सन्धि शब्द 'सम्' पूर्वक 'धा' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है सन्धान करना। मुख्य या अधिकारिक कथावस्तु के विभिन्न स्तरों का सधान करना या जोड़ना सन्धि कहलाता है। पाँच सन्धियाँ चक्ररूप क्रम में इस प्रकार होती हैं— (१) आरम्भ कार्यावस्था में मुख सन्धि, (२) प्रयत्न कार्यावस्था में प्रतिमुख सन्धि, (३) प्राप्त्याशा कार्यावस्था में गर्भ सन्धि, (४) नियताज्ञि कार्यावस्था में विमर्श सन्धि, और (५) फलागम कार्यावस्था में निर्वहण सन्धि। सन्धियाँ कार्यावस्थाओं के अनुसार ही होती हैं। ये उनका अतिक्रमण नहीं कर सकतीं।

कुछ लोगों का विचार है कि सन्ध्या अर्थ प्रकृतियों का भी अनुसरण करती हैं। मुख सन्धि में आरम्भ कार्यावस्था और बीज अर्थ प्रकृति होती है प्रतिमुख सन्धि में मल कार्यावस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति होती है, गर्भ सन्धि में प्राप्ताशा कार्यावस्था और पताका अर्थप्रकृति होती है, विमर्श सन्धि में नियतादि कार्यावस्था और प्रकरी अर्थ प्रकृति होती है और निर्वहण सन्धि में फलागम कार्यावस्था और कार्य अर्थ प्रकृति होती है। किन्तु अर्थप्रकृतियों के विषय में यह मत ठीक नहीं है। इतना निश्चित है कि बीज अर्थ प्रकृति मुख सन्धि में आती है और कार्य अर्थ प्रकृति निर्वहण सन्धि में आती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ये अर्थ प्रकृतियाँ अन्यत्र नहीं आती बीज का अनुसन्धान वहीं भी कर लिया जाता है। कार्य या फल समस्त नाटकीय गतिविधि का प्रेरक होता है और उसकी ओर ध्यान देने वाली अर्थप्रकृतियाँ हैं। यह सहायता लेने वाले आधिकारिक वधानायक पर निर्भर करता है कि कब किसकी सहायता लेता है और यह भी कि उसे कब और कैसे सहायता उपलब्ध हो जाती है। यह भी निश्चित नहीं है कि सभी नाटकों में पताका और प्रकरी हो ही। अनेक नाटकों में इनका उपादान किया ही नहीं जाता। मुद्राराक्षस में न कोई पताका है न कोई प्रकरी। भागुरायण सिद्धार्थक इत्यादि ने जो सहायता दी है वे तो आधिकारिक कथा भाग के ही अंग हैं और चाणक्य के अनुचरों में हैं। उन्हें पृथक् सहायता देने वाला व्यक्ति नहीं माना जा सकता। मालतीमाधव में माधव और कामन्दकी दोनों को पताका नायक कहा जा सकता है। किन्तु दोनों का समावेश मुख सन्धि में ही हो जाता है। बिन्दु तो सामान्य मोड़ को कहते हैं। इस प्रकार के बिन्दु सारे नाटक में बिखरे रहते हैं। सारांश यह है कि अर्थप्रकृतियों की कोई क्रमबद्धता नहीं होती और न इनका सम्बन्ध कार्यावस्थाओं से है।

एक कुशल कलाकार आत्मप्रेरणा से रचना करता है, उसकी योजना भी आत्म प्रेरणा पर ही आधारित होती है। अर्थप्रकृतियों की योजना कलाकार के विवेक पर ही निर्भर है। फिर भी यदि पताका की योजना की जाय तो इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पताका नायक मुख्य नायक को छाप न ले और उसके समक्ष न आ जाये। यदि मुख सन्धि में आरम्भ में ही पताका का समावेश कर दिया जायेगा तो नायक के समक्ष उसकी गतिविधि सञ्चालित हो जायेगी और नायक के महत्व में कुछ कमी अवश्य आ जायेगी। फल प्राप्ति में भी यदि दोनों नायकों की समसामयिकता होगी तो नायक की फल प्राप्ति का महत्व नहीं रहेगा। इसीलिये नायक को अपने स्वयं के प्रयत्न का पहले कुछ समय तक अवसर देकर पताकानायक का समावेश अधिक अच्छा रहता है। इसी प्रकार यदि पताका नायक का अपना कोई स्वार्थ हो तो उसकी पूर्ति परते हो जानी चाहिये जिम्मा अपने विषय में निश्चिन्त होकर पताका नायक मुख्यनायक का अच्छा सहायक बन सके। प्रकरी के विषय में तो ऐसी कोई कठिनाई है ही नहीं उसका कोई स्वार्थ होता ही नहीं और वह कुछ समय के लिए सहायक बनकर दृष्टि से आकर्षित हो जाता है।

आशय यह है कि कोई बुराई न हो और अन्यत्र आवश्यक न हो तो पताका का समावेश गर्भ सन्धि में अधिक अच्छा रहता है।

मुखसन्धि और उसके अंग

मुख सन्धि नाटक की पहली सन्धि है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को पहिचान मुख देखर ही होती है उसी प्रकार नाटक की मुख सन्धि के द्वारा ही इस बात का पता चलता है कि नाटक में किस रस से सम्बन्धित क्या दिखलाया जाने वाला है। इसमें बीज का अवतरण होता है और शृङ्गार इत्यादि रसों को उतने अंश में दिखलाया जाता है जितना प्रारम्भ के लिये उपयोगी हो। आशय यह है कि मुखसन्धि में प्रथम कार्यावस्था प्रारम्भ का प्रवर्तन इस रूप में कर दिया जाता है कि उसमें भावनात्मकता के साथ बीज का उपक्षेप कर दिया जाता है जिसमें नाटक का मुख्य बीज अकुरित अवस्था में रहता है और दर्शक यह समझ जाता है कि अग्रिम कथा भाग में कौन सा रस सामने आने वाला है। इसमें कभी कभी कई रसों का स्फुरण हो जाता है और विभिन्न रसों की निष्पत्ति की पूर्व सूचना मिल जाती है। अभिनवगुप्त ने मुखसन्धि का सारांश इस प्रकार दिया है— प्रारम्भ में उपयोगिनी जितनी अर्थ राशि आपातत विचित्र आस्वाद वाली आ उपस्थित हो जाती है वही मुख सन्धि है और वह उसको कहने वाला रूपक का एक भाग होता है। उदाहरण के लिये रत्नावली में अमात्य का धीररस, वत्सराज का शृङ्गार और अद्भुत तथा बाद में केवल शृङ्गार। इतना सब उस क्रियाकलाप के लिये उपयोगी है जो अमात्य ने सागरिका के राजा द्वारा देखे जाने के लिये उपयोगी बनाया है। अतः रस और अर्थ दोनों दृष्टियों से यह मुख सन्धि है।

मुखसन्धि के अंग

आचार्य भरत ने मुख सन्धि के १२ अंग बतलाये हैं जिन्हें तीन उपविभागों में विभाजित किया गया है— बीजोद्गम सम्बन्धी ६ भाग रस सम्बन्धी ४ भाग और उपाय सम्बन्धी दो भाग। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(अ) बीजोद्गम सम्बन्धी अंग— (१) सामान्य रूप से बीज का उपस्थापन (उपक्षेप) (२) बीज का विस्तार (परिकर) (३) सिद्धि के विश्वास की अभिव्यक्ति (परिन्त्यास) ये तीनों केवल मुख सन्धि में और इसी क्रम से आते हैं। अन्य सन्धियों में इनका उपादान नहीं होता। (४) कुछ अन्तर देकर पुनः एक बार बीज को ओर सकेत (सपायान) (५) बीज का अकुरण या कुछ रहस्यात्मक कथन जिससे बीज अकुरित रूप में दृष्टिगत होने लगता है (उद्घेष्ट) (६) बीज के अनुकूल थोड़ा सा कार्य प्रारम्भ कर देना (करण) ये तीनों अंग भी केवल मुख सन्धि में आते हैं किन्तु उनमें इसी क्रम से आने का नियम नहीं है। ये विपर्यय से सन्धि के अन्तर्गत आ सकते हैं। इस सन्धि व दूसरे अंग नियमित रूप से केवल इसी सन्धि में नहीं आते दूसरी सन्धियों में भी आते हैं उनका मुख सन्धि

में उल्लेख केवल प्राप्तिवत्त्व को लेकर कर दिया गया है। इस प्रकार मुख सन्धि के सुनिश्चित अंग केवल ये ६ ही हैं।

दूसरा वर्ग रस सम्बन्धी है जिसमें इसे अकुरित रूप में दिखलाया जाता है और बीज के प्रति भावुकता प्रकट की जाती है। इस वर्ग में ४ अंग आते हैं— (७) किसी वस्तु (बीज) या पात्र के गुणों का आख्यान करना तथा प्रशंसा करना जिससे उस वस्तु या पात्र के प्रति दृढ़ आस्था जग उठे (चित्तोन्मत्त) (८) सुख और दुख की प्राप्ति (विधान) इसमें किसी एक ही के सुख दुख का वर्णन रहता है या केवल सुख या दुख का वर्णन किया जाता है। (९) सुख या सुखहेतु की कुछ अन्वेषण के बाद प्राप्ति (प्राप्ति) (१०) उदभूत रस का आवेश अर्थात् किसी के लोकचित्तान्त गुण पर रीझना कि अमुक वस्तु क्या है ? क्योंकि हमें वस्तु लोक में तो देखी नहीं जाती (परिभावना) तीसरा वर्ग उपाय सम्बन्धी है जिसमें किसी प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये उपायों की खोज की जाती है। ये दो अंग होते हैं— (११) अपनी शक्ति, सामग्री तथा दूसरे उपयोगी तत्वों का परिशीलन (शुक्ति) और (१२) किसी कर्तव्य कर्म के प्रति प्रोत्साहन (भेद) इस (भेद) के दो और रूप स्वीकृत किये जाते हैं— जैसे पात्र प्रयोजनवश कार्यानुष्ठान के लिये जब इधर उधर घूमते हैं अथवा किसी कृत्य को स्वीकार कर ठमके करने के लिये रामश्च मे बाहर चले जाते हैं उसे भी भेद की सज्ञा दी जाती है। कुछ लोग भेद की दूसरे रूप में व्याख्या करते हैं— उनका कहना है कि मुख्य कार्य में यदि प्रतिपक्ष संघटित हो और बीज तथा फलोत्पत्ति में रक्कावट डाल रहा हो तो उसमें भेद डालकर उसके विघटित कर देने की प्रक्रिया भेद कहलाती है।

मुख सन्धि के १२ भागों में बीज सम्बन्धी तत्व सभी रूपों में अनिवार्य होते हैं क्योंकि मुख सन्धि तो सभी रूपों में होती है। इसमें केवल कारण अनिवार्य नहीं होता। उसके स्थान पर युक्ति तत्व अनिवार्य होता है। नाटक का वास्तविक आरम्भ आमुख के बाद होता है। अतः मुख सन्धि के अंग भी आमुख के बाद ही आते हैं। यदि बीजोपन्यास इत्यादि दो एक तत्व आमुख में आ जाते हैं तो भी वे मुख सन्धि के अंग नहीं माने जाते। इन अंगों में भेद एक ऐसा अंग है जो प्रवेशक, विष्वम्भक तथा दूसरी सन्धियों के अकों के अन्त में अवश्य सिद्ध किया जाता है क्योंकि पात्रों का निर्गम तो सर्वत्र होता ही है जो भेद का प्रमुख सधन है।

प्रतिमुख सन्धि और उसके अंग

कार्यसिद्धि के निमित्त प्रयत्न में सत्तन्मता प्रतिमुख सन्धि या प्रधान सधन है। उगमें बीज वहीं सन्धित किया जाता है वहीं अलक्षित हो रहता है। इसका आरम्भ प्रायः कथानक के किसी मोड़ में होता है। प्रतिमुख सन्धि वा सम्बन्ध आधिकारिक तथा भाग्यमयी होता है। मुखसन्धि में गम्भीरता के साथ जिस बीज का न्यास किया जाता है उसको

हो प्रवृत्ता के साथ उद्घाटित करते हुये सफलता की ओर अग्रसर होता हुआ दिखलाया जाता है। प्रथम अवस्था के समाप्त हो जाने पर मुख सन्धि भी समाप्त हो जाती है और द्वितीय अवस्था के प्रारम्भ के साथ प्रतिमुख सन्धि का प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार मुख के प्रति अभिमुख होने के कारण इसका नाम प्रतिमुख सन्धि पड़ा है। यह सन्धि प्रयत्नावस्था से परिच्छिन्न होती है।

प्रतिमुख सन्धि के अंग

मुखसन्धि में बीज का केवल समागम दिखलाया जाता है और फल की महत्ता के प्रति ध्यान आकर्षित किया जाता है, किन्तु प्रतिमुख सन्धि में बीज को फल पर्यन्त ले जाने के लिये प्रबल प्रयत्न की स्थिति बन जाती है। उसमें सुख और दुःख दोनों प्रकार की समय समय पर अनुभूति होती है। कहीं बीज लक्षित होता है, कहीं उसके प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। कहीं सफलता से प्रसन्नता होती है, कहीं विफलता के भय से विषाद होता है। कहीं वैराग्य उत्पन्न होता है कहीं विघ्नों के निराकरण के लिये अनुनय विनय करना पड़ता है, कहीं बीज के प्रति विशेष आकर्षण दिखलाया जाता है तो कहीं उसे युक्ति से प्रकट किया जाता है, कहीं कठोर शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो कहीं सभी सहायकों को एकत्र करने की चेष्टा की जाती है।

उक्त आधार पर प्रतिमुख सन्धि के १३ भेद किये गये हैं— (१) सर्वप्रथम फल के लिये तीव्र उत्कण्ठा व्यक्त की जाती है (विलास), (२) लक्ष्य भूत व्यक्ति का अन्वेषण करना पड़ता है (परिसर्प), (३) अनुनय विनय को या सन्धि प्रयत्नों को ठुकराया जाता है (विघ्न), (४) विघ्नों को देख कर वेदना जन्य अभिभूति होती है (तापन), (५) साधियों की हसी मजाक तथा आक्षेप सहने होते हैं (नर्म), (६) दोषों को छिपाने के लिये जो बहाने किये जाते हैं उनकी हसी उड़ाई जाती है (नर्मयुक्ति), (७) उत्तर प्रत्युत्तर किया जाता है (प्रगमन), (८) अभीष्ट सिद्धि में विघ्नों के उपस्थित होने पर खेद की अनुभूति होती है (निरोध), (९) सृष्ट व्यक्तियों का समझाया बुझाया जाता है, (सुशामद की जाती है), (पर्वुषासन), (१०) विशेष वचन तथा परिस्थिति को अनुकूल व्याख्या की जाती है (पुष्प), (११) कठोर वचनों का प्रयोग किया जाता है (वज्र), (१२) विशेष निपुणता के साथ अपना अभीष्ट सिद्ध करना पड़ता है (उपन्यास), (१३) सभी साधियों को एकत्र बिया जाता है (वर्ण सहाय)।

प्रतिमुख सन्धि के उक्त १३ अंगों में परिमर्ष परिगमन वज्र, उपन्यास और पुष्प प्रधान हैं।

गर्भ सन्धि और उसके अंग

मुखसन्धि में बीज की उत्पत्ति होती है, प्रतिमुख सन्धि में फल प्राप्ति की त्वरा के साथ उसका उद्घाटन तथा विकास होता है। इसी तीसरी गर्भ सन्धि में यह बीज फल

प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है किन्तु गर्भित (गुप्त) रहता है। इसीलिये इसे गर्भ सन्धि कहा जाता है। इस सन्धि का सामान्य लक्षण है प्राप्त्याशा, यही इस सन्धि में कार्यवस्था होती है। कहीं कहीं इसका पाठ प्रत्याशा भी है। इसमें बीज सफलता और असफलता के मध्य झूलता रहता है। कभी सफलता की ओर बढ़ता दिखलाई देता है, फिर असफलता में विलीन हो जाता है, फिर सफलता की ओर बढ़ता है, फिर कोई विघ्न आ जाता है और उसमें असफलता बलवती हो उठती है। यही क्रम चलता रहता है। इसमें फल प्राप्ति की आशा और निराशा दोनों में कोई निश्चित नहीं रहती। कुछ आचार्यों के मत में प्राप्ति की सम्भावना तो रहती है किन्तु प्रदानता तो अप्राप्ति अंश की ही होती है। अन्यथा उसके अग्रिम विमर्श सन्धि में समाविष्ट होने की सम्भावना हो जाती है।

गर्भ सन्धि के अंग

गर्भ सन्धि सहर्ष प्रधान सन्धि है। इसके मूल तत्त्व तीन हैं- प्राप्ति, अप्राप्ति और अन्वेषण। कभी बीज की प्राप्ति होती है कभी अप्राप्ति, और अप्राप्ति के बाद पुन अनुसन्धान किया जाता है। इस सन्धि के आचार्यों ने १२ अंग माने हैं- (१) छल कपट का प्रयोग और इस प्रकार या तो बीज में विघ्न डालना या उसे अग्रसर करना (अभूताहरण) इसमें कपट पूर्ण वचन विन्यास होने के कारण इसे असत्यावरण भी कहा जाता है, (२) ठीक बात बतलाना जिससे नायक या किसी अन्य की चिन्ता दूर हो सके। मार्गण शब्द का अर्थ खोज करना भी होता है। अतः उसके अन्दर खोज करने का भाव आ जाता है (मार्ग), (३) किसी के उत्कर्ष और सफलता का वर्णन कर नायक में उत्साह और आशा का सञ्चार करना (उदाहरण), (४) साम और दान की उक्तियों और नीति वचनों एवं उपदेशों का इसमें संग्रह किया जाता है सम्भवतः नैदीगत सभी उपायों पर संकलित रूप में विचार करना भी इसी के अन्तर्गत आता है (संग्रह), (५) आवेश पूर्ण वाक्यों का प्रयोग। हर्ष व्रोध इत्यादि आवेशपूर्ण वचनों से हृदय स्वभावतः विदीर्ण हो जाता है। इसीलिये इसे विदीर्ण करने के अर्थ वाली यह सञ्ज्ञा प्राप्त हुई है- अर्थात् तोड़ने वाला (ज्राटक), (६) कपट आचारण के द्वारा विरोधी को पराजित करने की चेष्टा करना या विरोधी के कपट पूर्ण व्यवहार को कपट के द्वारा ही व्यर्थ करना। जिसमें अधिक चलता है वही सफल हो पाता है (अधिगत), (७) राजा, शत्रु या दस्यु से भय (उद्बेग) (८) शत्रु भय या त्रास के कारण होने वाली उद्वेजना (विद्रव) (९) तर्क वितर्क द्वारा वस्तुतत्त्व को समझने की चेष्टा करना। विचित्र अर्थ का तर्क ज्ञान के द्वारा प्रतिपादन करना (रूप) (१०) किसी लिङ्ग (चिन्त) देखकर वस्तु तत्त्व का अनुमान लगाना (अनुमान), (११) गर्भगत बीज का प्रकट कर देना (आक्षेप) गर्भ सन्धि में बीज प्राप्त्याशा से निवृद्ध रहता है, उसको ठीक रूप में प्रकट कर देना इस अंग की विशेषता है। (१२) चिन्तित वस्तु की प्राप्ति जो मूल बीज से भिन्न हो। कुछ लोग इसके अन्दर भाव ज्ञान को लेते हैं (रूप)।

नाट्य दर्पण कार ने १३वा प्रार्थना परक अंग भी माना है जिससे किसी भाव की भावना की जाती है। किन्तु इसके मानने पर अंगों की सख्या व्याहत हो जायेगी।

नाट्य शास्त्र की कुछ पुस्तकों में विद्रव के स्थान पर सभ्रम पाठ है। दश रूपक कार ने सम्भ्रम पाठ ही माना है। नाट्य दर्पण के अनुसार जो भय आ पडा हो वह उद्वेग होता है और जिस भय की सम्भावना होती है वह सम्भ्रम होता है।

गर्भ सन्धि के उक्त अंगों में अभूताहरण, मार्ग, चोटक, अधिवल और आक्षेप प्रधान हैं।

विमर्श सन्धि और उसके अंग

विमर्श शब्द का अर्थ है छानबीन। इसकी परिभाषा भरत मुनि ने इस प्रकार की है- 'बीजरूप फलहेतु गर्भ सन्धि में प्रकट होता है, उस विषय में जिस कथानक भाग में विलोभन से, क्रोध से अथवा व्यसन से छानबीन की जाय उसे विमर्श कहा जाता है।' आशय यह है कि मुख सन्धि में बीज की उत्पत्ति होती है, प्रति मुख सन्धि में उसका उद्घाटन होता है और गर्भ सन्धि के अन्त तक आते आते उसकी फलोन्मुखता प्रकट हो जाती है, तब इस विमर्श सन्धि में उस पर विचार किया जाता है। उसमें कार्यावस्था नियतापत्ति होती है अर्थात् सफलता निश्चित हो जाती है। अनिवार्य तो नहीं, किन्तु उसमें प्रकटी (एकदेशीय इतिवृत्त) का समावेश प्रायः देखा जाता है।

यहा पर अभिनव गुप्त ने एक नया प्रश्न उठाया है- जब फलोन्मुखता स्पष्ट हो गई और सफलता दृष्टिगत होने लगी तब विचार विमर्श का प्रश्न ही कहा उठता है। ठाकुरों की मान्यता है कि सन्देह और निर्णय के बीच तर्क रहता है। जब निर्णय हो चुका तब तर्क कैसा? इसका उत्तर देते हुये उन्होंने कहा है कि लोक में प्रायः देखा जाता है कि सफलता के निश्चित हो जाने के बाद भी कहीं किसी ओर से कोई विघ्न उद्भूत होता है वह सफलता को सन्दिग्ध बना देता है। कभी कभी विघ्न बहुत शक्तिशाली होता है और वह सफलता के समवक्ष आ जाता है। इस प्रकार इस तुल्यवत् विरोध में विघ्नों का अपसारण कर बीज को फल पर्यन्त से जाना ही इस सन्धि की विशेषता है। वस्तुतः नायक की प्रतिभा उसके सामर्थ्य और ओजस्विता की अभिव्यक्ति इस सन्धि में ही विशेष रूप से होती है। सफलता, निश्चित है उसे प्राणपण से हाथ से सरकने नहीं देना नायक को सबसे बड़ी कुशलता है। इस दिशा में बहुत सोच समझ कर कार्य करना पड़ता है यही इस सन्धि की विमर्शरूपता है।

कुछ लोग इसका नामकरण अवमर्श करते हैं और उसका अर्थ करते हैं विघ्न। ऐसी दशा में बीज का अर्थ है बीज का फल और इस अर्थ से उसकी निवृत्ति अभिप्रेत है। अतएव इस समस्त सन्दर्भ का अर्थ हो जाता है- 'बीज रूप फल की जो उपलब्धि गर्भ सन्धि में दिखलाई पड़ने लगी थी (नवीन विघ्नों के कारण) उसकी निवृत्ति अर्थात्

असम्भवनीयता प्रकट होने लगती है, उसमें विलोभन क्रोध या व्यसन इत्यादि अनेक कारण हो सकते हैं। इन सबका टालकर सफलता को पुनः उसी स्तर पर लाना इस सन्धि का क्षेत्र है। यदि आवश्यक हो तो पुनः उसका लिय किसी अल्प कालिक सहायक (प्रकार) की सहायता ला जा सकती है।

वस्तुतः दानों मतों में अन्तर नहीं है। दानों में विघ्नों के अपसारण का सिद्धान्त माना जाता है। दशरत्नक में इस अवसरों का कहा गया है। इस विषय में अभिनव गुप्त और सागर नदी न कई मतों का समाधान की है।

विमर्श सन्धि के अंग

इस सन्धि के १३ अंग बतलाये गये हैं जिनमें कुछ तो विघ्न पक्ष हैं और कुछ बाज के अनुकूल (१) दावों का प्रकटन (अपघटन), (२) राष भाषण (सम्प्रेषण), (३) बन्धन रत्नदि (विद्वेष) (४) गुरुओं का विरस्कार (द्रव), (५) डारना, डपटना (घृति), (६) अन्नन करना (छन्नन) (७) ब्राह्मण में धर दिये व्यक्तियों के साथ क्रोधपूर्ण वार्तालाप (विरोधन) (८) अपनी रान हाकना और बढ़ बढ़ कर बात करना (विवर्जन), यः ऐसे अंग हैं जिनमें ब्राह्मण पूरा एवं दानि का स्थिति का विरोध रहता है। यः अंग नायक गत हान में बाज के अनुकूल हो जा सकते हैं और प्रतिनायक गत हान में विरोध हो। कानिय अंग मानता लिय हुआ होने से सत्त्विक अंग कह जा सकते हैं। वे हैं- (९) राष का रानन (शक्न) (१०) गुरुओं का कर्तन (प्रमग) (११) अपना शक्ति का बजान (ध्वजमग) (१२) सिद्धों के आमन्त्रण में भविष्य का ज्ञान (प्राश्नना) और (१३) काय सप्तर (अपान) यः १३ अंग विमर्श सन्धि के बतलाये गये हैं।

निवहण सन्धि और उसके भेद

नाटक का उपसंहार निवहण सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। समस्त नाटक में बाज विराम रहता है। वहीं टल्कि रूप में कहीं टट्टाटन के रूप में और कहीं फलामुखना के रूप में। ठम बाज का अन्त्य रत्नदि कार्यवस्थाओं विन्दु इत्यादि अर्थ प्रकृतियों, मन्त्रों मन्त्रों इत्यादि भावों और नायक प्रतिनायक नायिका इत्यादि के व्यापारों से निरन्तर अभिवर्धन होता रहता है। अन्त में सबका पर्यवसान फल में हो जाता है। इस प्रकार फलाम नामक कार्यवस्था का सन्धि में निवहण सन्धि होता है। सभी रूपकों में मुख और निवहण यः दो सन्धियाँ ही अनिवार्य होती हैं। अन्य सन्धियाँ आवश्यकतानुसार प्रयुक्त हो जाती हैं। फल दो प्रकार का होता है- मुख प्राप्ति और दुःख रत्न। यदि फल मुख प्राप्ति हो तो उचित हम उत्सव विमर्श का स्थायी भावों में और घृति, गर्व मद अन्त्य इत्यादि का सहायक भावों में बहुरूप होता है। दुःख रत्न के सन्धि हान पर राक पय जुगुप्सा यः स्थायी भाव और आनन्द अन्त्य इत्यादि व्यभिचारि भाव बहुरूप से आते हैं।

निर्वहण सन्धि के अंग

निर्वहण सन्धि के सभी १४ अंगों में फल प्राप्ति की गूज रहती है और यह प्रतीत होता रहता है कि नाटक का उपसंहार हो रहा है— (१) कहीं बीज की याद दिलाई जाती है कि याद करो हमने जो करा था कर दिखलाया (सन्धि) , (२) कहीं उन व्यक्तियों द्वारा रहस्य को समझने की चेष्टा की जाती है जो अनभिज्ञ होते हैं (विबोध) , (३) कहीं अभिनय द्वारा कार्यपूर्ति दिखलाई जाती है (प्रथन) , (४) जो व्यक्ति किसी बात को नहीं जानते उन्हें समझाने की चेष्टा की जाती है (निर्णय) , इसमें कोई पात्र अपना अनुभव बतलाकर वास्तविकता को समझाता है । (५) कहीं दो व्यक्ति आपस में बातचीत करते हुये पश्चात्ताप व्यक्त करते हैं या अपनी निन्दा करते हैं (परिभाषा) , (६) कहीं शुभ समाचार सुनाकर दूसरों को प्रसन्न किया जाता है (प्रसाद) (७) कहीं वाञ्छित प्राप्ति के आनन्द का अनुभव किया जाता है (आनन्द) , (८) कहीं दुख से छुटकारे की बात कही जाती है (समय) , (९) कहीं प्राप्त फल के स्वीकृति को चेष्टा की जाती है (कृति) , (१०) कहीं सम्मान इत्यादि की प्राप्ति का वर्णन रहता है (भाषण) , नाट्यदर्पण के अनुसार साम और दान की उक्ति भक्षण कहलाती है । (११) कहीं कार्य के पहले दर्शन का वर्णन रहता है (पूर्वभाव) , (१२) कहीं अद्भुत की प्राप्ति का वर्णन रहता है (उपगूहन) , (१३) कहीं श्रेष्ठ वस्तु की प्राप्ति का कथन रहता है (काव्य संहार) और (१४) कहीं मग की आशंसा रहती है (प्रशस्ति) ।

नाट्य रचना के ६४ अंगों का परिचय ऊपर दिया गया । इन अंगों के ६ प्रयोजन भी आचार्यों ने बतलाये हैं— (१) जिस अर्थ की रचना करनी हो उसका ठीक निर्वाह हो जाय, उसमें कोई अंश छूट न पाये । (२) जिस बात को गुप्त रखना है वह गुप्त रह सके । (३) जिसका प्रकाशित करना अभीष्ट है उसका प्रकाश कर दिया जाय । (४) प्रयोग या अभिनय के विषय में लोगों का अनुसरण जागृत हो सके । (५) प्रयोग चमत्कार पूर्ण हो जाय और (६) वृत्तान्त का उपध्वय भी न हो ।

ऊपर जिन अंगों का परिचय दिया गया है उनमें अधिकांश का प्रयोग और उपयोग एक से अधिक सन्धियों में किया जा सकता है । किसी विशिष्ट सन्धि में उनका समावेश औचित्य और बाहुल्य के आधार पर किया गया है । प्रायः सभी आचार्यों का मत है कि अंगों का यह निरूपण कलाकार को बन्धन में डालने के लिये नहीं है । ये अंग कहीं भी अनिवार्य नहीं बतलाये गये हैं । इनका प्रयोजन केवल इतना है कि रचनाकार को रचना की योजना बनाने में कुछ सहायता मिल जाय । वैसे रचनाकार इनके स्वीकार करने, परित्याग करने, अन्य अंगों का अन्यत्र प्रयोग करने इत्यादि सभी दृष्टियों से स्वतन्त्र है । इन ६४ अंगों के अतिरिक्त नये अंगों की भी कल्पना की जा सकती है । किन्तु आचार्यों के प्रति सम्मान की भावना बनाये रखने की दृष्टि से परम्परा पालन के लिये इस सख्या और इनका निर्धारण निम्नानुसारे लाभ कर है अतः उसका सम्मान किया जाना चाहिये ।

नाट्यवृत्तियाँ

वृत्ति शब्द 'वृत्तवर्ति' धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर बनता है जिसका अर्थ है वर्तमान होना और वर्तन या व्यवहार करना। नाट्य से इसका समास करने पर इसका अर्थ हो जाता है नाट्य में वर्तमान होना या तद्विषयक व्यवहार करना। नाट्यशब्द का अभिनव गुप्त ने अर्थ किया है रस, क्योंकि सभी उपकरणों से कवि रस निष्पत्ति करता है परिशीलक रसास्वादन करता है। रस ही निष्पत्ति और आस्वादन दोनों दृष्टियों से समस्त नाटकों और काव्यों का उद्देश्य होता है। आन्तरिक भावनायें ही रस रूप से अभिव्यक्त होकर आस्वादन में कारण बनती हैं। जब तक ये भावनायें हृदय रहती हैं रसनीयता का रूप नहीं धारण कर सकती हैं जब सविधान के द्वारा उसे व्यक्त किया जाता है तभी उनमें रसनीयता आती है। सविधानक रस में विद्यमान रहता है और उसका वर्तन (व्यवहार या प्रयोग) रस को रसनीय बनाता है अतः इस प्रकार के प्रयोग को वृत्ति की सजा दी जाती है। आस्वादन के उद्भव में हेतु होने के कारण इन वृत्तियों को काव्य की माता कहा जाता है।

अभिनव गुप्त के अनुसार ये एक प्रकार की चेष्टायें हैं जो कि अभिनय से अभिन्न मानी जाती हैं। ये चेष्टायें अनादि काल से सारे विश्व में व्याप्त हैं। किन्तु ये लौकिक चेष्टायें रसनिष्पत्ति में कारण नहीं होतीं। इनसे भिन्न काव्यशास्त्रीय चेष्टायें कवि, नायक और दर्शक सभी के अन्तःकरणों में सामान्य रूप से वर्तमान रहती हैं जो अलौकिक होती हैं। लौकिक और अलौकिक भावनाओं में अन्तर यह होता है कि लौकिक चेष्टा प्रवर्तक होती है और अलौकिक चेष्टा आस्वादक होती है। उदाहरण के लिये यदि लोक में कहीं आग लग जाती है या कहीं झगडा हो जाता है हम आग बुझाने या झगडा निपटाने के लिये एक दम दौड़ पड़ते हैं। किन्तु अभिनय में यदि कहीं आग का दृश्य सामने आता है या दो पक्षों में झगडा होता है हम उसे निपटाने दौड़ते नहीं किन्तु घटनाक्रम के अनुसार उसका आस्वादन करते हैं। दूसरा अन्तर यह है कि लौकिक कार्यकलाप में हमारी दृष्टि कुछ और होती है और रगमञ्ज की घटना हमारे अन्दर भिन्न प्रवृत्ति जागृत करती है। लोक में घटनाक्रम को हम इस दृष्टि से देखते हैं कि अमुक घटना हमसे सम्बन्धित है, या हमारे शत्रु या मित्र से सम्बन्धित है अथवा उदासीन से सम्बन्धित है। उसमें हम घटना के सम्बन्धों के अनुसार या तो पसन्द करेंगे या उससे द्वेष करेंगे या उदासीन हो जायेंगे। किन्तु काव्य की सभी घटनायें हमारे अथवा हमारे शत्रु या मित्र सभी व्यक्तियों के लिये एक ही प्रकार की भावना जागृत करने वाली होती है। लौकिक सुख में हम किसी दूसरे को शामिल करना नहीं चाहते हम उसका उपभोग एकाकी रूप में करना चाहते हैं, किन्तु काव्य और नाट्य में हमारी भावना यही होती है कि हमारे सुख और आनन्द में सभी लोग सम्मिलित हों। लोक में हम सुख के कारणों से सुखी और दुःख के कारणों से दुःखी होते हैं। हम दुःख की परिस्थिति में पटना नहीं चाहते। किन्तु काव्य में सुख दुःख

सभी में हम आनन्दित होते हैं और दुःखात्मक अभिनयों को भी शौक से देखते हैं। लौकिक चेष्टाओं के लिये किसी प्रकार की ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं होती किन्तु काव्यात्मक चेष्टाओं के लिये अभिनेता को ट्रेनिंग भी लेनी पड़ती है और उसका अभ्यास भी करना पड़ता है तथा उसमें शास्त्रीय मर्यादाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है। यही कारण है कि काव्यात्मक व नाट्यात्मक चेष्टाओं को अलौकिक कहा जाता है। ये अलौकिक चेष्टाएँ या अभिनयविद्या नाट्य वृत्ति नाम से अभिहित की जाती है। ये नाट्य वृत्तियाँ चार प्रकार की मानी जाती हैं— भारती, सात्वती, आरपट्टी और कैशिकी।

वृत्तियों के उद्भव का पौराणिक उपाख्यान

भरतमुनि ने वृत्तियों के उद्भव के लिये एक पौराणिक उपाख्यान का उल्लेख किया है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि भरत नाट्य के उद्भव में चारों वेदों और तीनों देवताओं को भी शामिल कर लेना चाहते थे। चारों वेदों के अन्त्य की तो व्याख्या कर दा गई थी। तीनों देवताओं में ब्रह्माजी ने तो नाट्यकला को जन्म ही दिया था, शङ्कर जी ने सास्य और ताण्डव को उसमें सम्मिलित कर दिया था। किन्तु विष्णु के योगदान की कोई व्याख्या नहीं की जा सकी थी। अतः वृत्तियों के उद्भव के लिये विष्णु के योगदान की कल्पना जरूरी हुई।

मार्कण्डेय पुराण के परिशिष्ट (दुर्गा सप्तराती) में एक कथा आती है कि विष्णु के कान के मैल से दो राक्षस मधु और कैटभ उत्पन्न हुये जो ब्रह्मा को मार डालने का उद्योग करने लगे। तब ब्रह्मा जी ने रात्रिसूक्त के द्वारा भगवान को बग़ाय़ा और उनसे उन राक्षसों को मार डालने की प्रार्थना की। भगवान ने युद्ध कर उन राक्षसों को मार डाला। इसी कथा का आश्रय लेकर भरत ने विष्णु के युद्ध के उद्योग के आधार चार वृत्तियों की कल्पना कर ली और कथानक को एक नया रूप दे दिया।

सर्वप्रथम दोनों पक्षों की ओर से भयानक वाद विवाद हुआ जिसमें आक्षेप पूर्ण बचन विनि्यास इतना उग्र हो गया कि मानों समुद्र काप रहा हो, तब ब्रह्मा जी ने कहा यह वाग्विवाद का ही व्यापार क्यों चल रहा है— इस असुर को शीघ्र मारिये। तब विष्णु भगवान ने कहा— 'यह तो मैंने वक्ताओं और कवियों के सामने वक्तृता का आदर्श उपलब्ध करने के लिये भारती वृत्ति की रचना की है। अब मैं इन राक्षसों का वध करूँगा। एक ओर पैतरे काजी और दूसरी ओर जोरदार शब्दों के प्रयोग से पृथ्वी पर एक बहुत बड़ा भार पड़ा। इसीलिये इस वृत्ति का नाम भारती वृत्ति पड़ गया। इस वृत्ति का निर्माण भरतों (अभिनेताओं) के प्रयोग के लिये हुआ था। इसलिये भी इसका नाम भारती वृत्ति पड़ा। अब विष्णु ने युद्ध की तैयारी प्रारम्भ की। इसमें सत्व अर्थात् मनोवृत्ति को टँक करना अधिक आवश्यक था। सत्व की प्रेरणा से उद्भूत होने के कारण इस वृत्ति का नाम सात्वती वृत्ति पड़ा। अब युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्ध में प्रस्थान के पहले तैयारी

करने में विष्णु ने अपने केशों को सजाया सवाण जिसमें लक्ष्मी की शृङ्गार करने की चेष्टाओं की स्मृति भी सम्मिलित थी। शृङ्गार में केशों की बनावट और सजाने गजालों का महत्व सर्वाधिक है। अतः शृङ्गार प्रधान सजावट के आधार पर इस वृत्ति का नाम कैशिकी पड़ा। युद्ध में तेजों आई। अमर्ष और क्रोध से भरी हुई अनेक प्रकार की चारिषों से युक्त घनघोर सश्रम होने लगा, तब उस समय की आर (कोड़े या तलवार जैसी) भट्टी (घोड़ाओं) की आगिक क्रियाओं से जो वृत्ति निर्मित हुई उसका नाम आरभटी वृत्ति पड़ा। ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु की तत्कालीन विचित्र, विषम, और ललित क्रियाओं पर विचार कर चार वृत्तियों की रचना की और उन्हें देवताओं को प्रदान कर दिया। देवताओं से परम्परा से ये वृत्तियाँ भरत को प्राप्त हुईं जिनका समावेश नाट्यकला में किया गया। विभिन्न चेष्टाओं से न्याय की रचना की गई। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु का वो वृत्तियों के ढङ्ग में योगदान था ही कैशिकी वृत्ति की रचना में शृङ्गार जी के नृत्य से भी प्रेरणा प्राप्त की गई थी। अतः इस क्रिया में तीनों देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त था।

विष्णु की चेष्टाओं के अतिरिक्त वृत्ति के ढङ्ग में चारों वेदों से सहायता ली गई थी— ऋग्वेद से पाठ्य प्रधान भारती वृत्ति, यजुर्वेद से अभिनय प्रधान सात्वती वृत्ति, सामवेद से शृङ्गार प्रधान कैशिकी वृत्ति और अथर्ववेद से उग्रता प्रधान आरभटी वृत्ति का पाटुर्भाव हुआ।

शारदावनय के अनुसार कतिपय आचार्यों ने वृत्तियों का ढङ्ग एक अन्य प्रकार से बनलाया है— ब्रह्मा जी शिव-पार्वती का नृत्य देख रहे थे। उसी समय उनके चार मुखों से चार वृत्तियों का ढङ्ग हो गया जिनमें पृथक् पृथक् रसों का समावेश था।

मनोवाक्याय व्यापार को वृत्ति सजा दी जाती है। इसी आधार पर भरत ने वृत्तियों के चार भेद किये हैं— मानसिक व्यापार में सान्त्वनी, वाग्व्यापार में भारती, कायव्यापार में शृङ्गार में कैशिकी और कटोर रसों में आरभटीका प्रयोग किया गया।

भोजराज ने इनके अतिरिक्त एक मिश्र या विमिश्र वृत्ति नामक एक अतिरिक्त वृत्ति और स्वीकार की। किन्तु सभी वृत्तियाँ मिश्रित हो होती हैं। जब तक अभिनेता मनोभूमि में अभिनय वस्तु से एक रूपता स्थापित नहीं कर लेता उसके अभिनय में सञ्जीवना आ ही नहीं सकती। हम प्रकार सभी वृत्तियों से सात्वती की एक रूपता सिद्ध हो जाती है। वाग्वृत्ति को अपरिहार्यता और व्यापकता सिद्ध हो है। अभिनय के लिये आगिक चेष्टाओं का होना भी अनिवार्य है। कोई एक वृत्ति दूसरे के अभाव में निश्चय हो ही नहीं सकती। इस प्रकार सभी वृत्तियों का सम्मिश्रण वो स्वन सिद्ध है। प्रधानता के आधार पर ही वृत्ति को विशिष्ट श्रेणी प्रदान की जाती है। अतएव पृथक् रूप में मिश्रावृत्ति मानने की आवश्यकता नहीं है। उद्घट्ट के नाम पर एक अतिरिक्त 'अर्थवृत्ति' की कल्पना की गई। किन्तु इसका कोई अतिरिक्त क्षेत्र ही निर्दिष्ट नहीं किया गया है। अतः इसकी भी मानना आवश्यक नहीं है।

आनन्दवर्धन ने इन चारों वृत्तियों को आर्यवृत्ति बतलाया है। भरत ने ऐसा कोई विभाजन नहीं किया है। जिस भारती वृत्ति को उन्होंने वाग्वृत्ति कहा है उसमें भी अर्थ का सहारा लिया जाता है। फिर उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित कर दिया गया है। समस्त वाचिक अभिनय उसके क्षेत्र में नहीं आता। इस प्रकार वाचिक अभिनय का क्षेत्र शेष ही रह जाता है। इस कमी को पूर्ति उद्घट ने तीन शाब्दी वृत्तियों को भानकर की है— परुषा (क्ठोर वर्ण वृत्ति), उपनागरिका (मृदुवर्ण वृत्ति) और ग्राम्या (तदितर वर्ण वृत्ति)। मम्मट ने इन्हीं शब्दवृत्तियों को मान्यता दी है। रुद्रट ने तीन के स्थान पर ५ शब्द वृत्तियाँ मानी हैं— मधुरा, परुषा, ग्रीवा, ललिता और मद्रा।

वृत्ति के समान दो और तत्वों का विवेचन मिलता है मार्ग और रीति।

नाट्यवृत्तियों का परिचय

भारतीवृत्ति

जिस प्रकार वर्तमान फिल्मों के विषय में दो शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं— मूवी और टाकी, इसी प्रकार प्राचीन भारतीय परम्परा में मूकाभिनय करने वालों को नट और सवादपराक अभिनय करने वालों को भरत कहा जाता है। भरतों की कला भारती कहलाती है जिसमें अभिनय के साथ सवाद सम्मिलित होता है। सम्भवतः इसीलिये भारती को वाणों का पर्याय माना जाने लगा है। किन्तु भारती वृत्ति को शब्दवृत्ति कहना ठीक नहीं है, आनन्दवर्धन के अनुसार भारती वृत्ति भी अर्थवृत्ति ही है क्योंकि इसमें भी अर्थ की प्रेरणा तो रहती ही है। भारतीवृत्ति शब्दप्रयोग का पर्याय नहीं है, इसके लिये अलग से उद्घट कल्पित शब्दवृत्तियाँ विद्यमान हैं। भारती वृत्ति का क्षेत्र उनसे भिन्न है। शास्त्रीय परिभाषा से इसे सीमित कर दिया गया है।

सामान्यतः भारती वृत्ति की ये विशेषतायें हैं— (१) इसका प्रयोग प्रस्तावना में विशेष रूप से होता है, (२) यह वृत्ति करुण तथा अद्भुत रसों में विशेष रूप से आती है, (३) इसमें वाग्व्यापार की प्रधानता होती है अथवा यह वाग्व्यापार रूप ही होती है। (४) पुरुष इसका प्रयोग करते हैं, (५) स्त्रियों के लिये यह वर्जित है और (६) इसमें सस्कृत पाठ्य रहता है प्राकृत नहीं। इन नियमों से यह सिद्ध हो जाता है कि भारती वृत्ति सामान्य वाचिकाभिनय की वाचक नहीं है— यह एक योगरूढ शब्द है और वाचिक अभिनय के अर्थ में यौगिक होवे हुये भी उक्त अर्थों में रूढ बना दिया गया है। उक्त अर्थों में यह रूढ क्यों बना है इसके कारण हैं— प्रस्तावना का मन्तव्य दर्शकों को अभिनेय नाट्यवृत्ति के विषय में बतलाना और उन्हें उस विशिष्ट अभिनय का आस्वादन करने के लिये जागरूक करना है। यह कार्य कलात्मक शैली पर किया जाता है और इसके लिये नृत्य गीत एवं चमत्कार पूर्ण मनोरम सवाद का आयोजन किया जाता है। अतः स्पष्ट ही है कि उसमें अगाभिनय का विशेष अवसर नहीं होता। सूचनायें वाचिक ही दी जाती हैं। अतः प्रस्तावना

में वागव्यापार मूलक भारती वृत्ति का प्रामाण्य तर्क सगत ही है। करुण और अद्भुत इन दोनों रसों में क्रियाशीलता नहीं होती जैसी कि शृङ्गार वीर इत्यादि दूसरे रसों में होती है। शोक की अभिव्यक्ति के साधन विलाप प्रताप ही हैं जो वाचिक अभिनय के क्षेत्र में आते हैं। आश्चर्य की अभिव्यक्ति में भी शारीरिक क्रियाशीलता नहीं होती। केवल शब्दों द्वारा आश्चर्य प्रकट किया जाता है। अतः अद्भुत रस में भी भारती की प्रधानता स्वाभाविक है। जब यह परम्परागत नियम बन गया कि भारती वृत्ति संस्कृत भाषा के प्रयोग तक ही सीमित है तब स्वतः सिद्ध हो जाता है कि पुरुष ही इसका प्रयोग करते हैं क्योंकि परम्परा के अनुसार स्त्रियों के लिये संस्कृत का प्रयोग विहित नहीं है। प्रस्तावना में संस्कृत का ही प्रयोग होता है क्योंकि संस्कृत कोई प्रादेशिक भाषा नहीं है। यह ऐसी भाषा है जो सभी प्रदेशों में सामान्य रूप से समझी जाती है। सभी प्रांतीय भाषाओं का मूल होने के कारण यह किसी सीमा तक सर्वजनसंवेद्य बन गई है। प्रस्तावना में नाट्यकृति का परिचय दिया जाता है अतः उसके लिये ऐसी ही भाषा प्रयोजनीय हो सकती है जिसको सभी प्रदेशों के लोग समझ सकें। भारती के प्रस्तावना में प्रमुख होने का यह भी एक कारण है।

भारती वागव्यापार बदलाई गई है। अयोगव्यवच्छेद और अन्ययोगव्यवच्छेद से इसके दो अर्थ हो सकते हैं- 'वागव्यापारविषया भारती' में भारती विशेष्य है और शेष असा विशेषण है। एव शब्द का प्रयोग दोनों अर्थों में एक को स्वीकार्य बना देता है। यदि इसका प्रयोग विशेष्य के साथ किया जाय- भारती एव वागव्यापारविषया अर्थात् वाणी के व्यापार का विषय केवल भारती ही है और कोई नहीं तो यह अन्ययोगव्यवच्छेद होगा। किन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि पहले ही बतलाया जा चुका है कि भारती का प्रयोग सीमित है वाणी के व्यापार का विषय उसकी अपेक्षा बहुत विस्तृत है। अतः यह कहना ठीक नहीं कि केवल भारती ही वाणी के व्यापार का विषय है। अब दूसरा अयोग व्यवच्छेद लीजिये। इसमें एव का प्रयोग विशेषण के साथ किया जाता है 'वागव्यापारविषया एव भारती' अर्थात् भारती में केवल वाणी का व्यापार होता है। यह अर्थ ठीक है क्योंकि भारती में केवल वाणी का व्यापार होता है।

भारती के भेद- आचार्यों ने भारती के ४ भेद किये हैं- (१) प्ररोचना- इसमें कवि और काव्य की प्रशंसा की जाती है। संस्कृत नाटकों की प्रस्तावनाओं में कवि और काव्य की प्रायः प्रशंसा की गई है। इस विषय में मृच्छकटिक सबसे आगे है। रत्नावली में महाराज हर्ष की प्रशंसा की गई है। कहीं कहीं अभिनय कुरालता की भी प्रशंसा की जाती है। अभिज्ञान शाकुन्तल में केवल एक वाक्य में अभिनय कुरालता का परिचय दे दिया गया है- 'सुविहितप्रयोगमनया आर्चयन् न किमपि परिहर्तव्यम्'। अर्थात् अभिनेताओं ने भली भाँति पूरा अभ्यास कर रक्खा है। अतः अभिनय में कोई कमी नहीं रह जायेगी। वत्सराज धरति में भी नटों ने अभिनयकौशल की प्रशंसा की गई है। (२) वाद्य और (३)

प्रहसन ये दोनों रूपक के प्रकार हैं, उनकी विशेषताओं का प्रयोग प्रस्तावना में भी विहित है। प्रस्तावना में इनका प्रयोग होने से परिचय के साथ दर्शकों को रसास्वादन भी प्राप्त हो जाता है। (४) भारती का चौथा प्रकार है आमुख। इसमें सूत्रधार नटी और पारिपार्श्विक का वार्तालाप होता है। (प्रस्तावना के विषय में पिछले पृष्ठों पर उसके प्रकरण में देखिये)

सात्वती वृत्ति

‘सात्वती’ शब्द सत्व से बना है। इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है सत्व से निष्पन्न व्यवहार। सत्व का अर्थ है रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन (रजस्तमोग्र्यामस्पृष्ट मन सत्वमिहोच्यते) भरत ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है— ‘जो वृत्ति सत्व के गुण (उसके उत्थान) और न्याय के आचरण से मुक्त हो, जिसमें हर्ष की अधिकता हो, शोक का भाव समेट लिया गया हो उस वृत्ति को सात्वती वृत्ति की सज्ञा दी जाती है।’ इसमें वाणी और अंग का अभिनय इस प्रकार किया जाता है कि सवाद और आङ्गिकाभिनय में सत्व के उत्थान की प्रतीति होती रहती है। वीर, अद्भुत और रौद्र रसों में इसका उपयोग होता है शृङ्गार अद्भुत और करुण रसों के यह वृत्ति अनुकूल नहीं पड़ती। इसमें अद्भुत पात्रों का बाहुल्य होता है और पात्र एक दूसरे को सघर्ष में दबाने का प्रयत्न करते हैं।

सघर्ष में दो स्थितियां हो सकती हैं— (१) विना आगा पीछा देखे क्रोध के साथ शक्ति का प्रयोग करते चले जाना या (२) दिमाग पर पूरा अधिकार रखते हुये विवेक के साथ तथा योजनाबद्ध रूप से पछाड़ने और वीरता प्रदर्शन करने में शान्त चित्त से आगे बढ़ते जाना तथा उसमें आनन्द लेना। दूसरी स्थिति सात्वतीवृत्ति का क्षेत्र होती है। दूसरे को पराजित करने की मनोवृत्ति इसमें कम नहीं होती। किन्तु प्रयोक्ता इसमें मस्तिष्क का सन्तुलन खो नहीं देता। शृङ्गार और करुण में इस वृत्ति का अवसर नहीं होता। शृङ्गार में प्रयोज्य पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की जाती। प्रेम के प्रतिवन्धक पिता इत्यादि पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है, किन्तु वह शृङ्गार का क्षेत्र नहीं है। करुण में परिस्थिति से बचने के लिये सघर्ष किया जाता है। किन्तु वास्तविक करुण दशा तब उपस्थित होती है जब अभिलाषित वस्तु या व्यक्ति का अन्तिम रूप से विनारा हो जाता है और शोकग्रस्त व्यक्ति पूर्ण रूप से निराश हो जाता है। जब तक वह स्थिति उपस्थिति नहीं होती प्रयत्न प्रमुख रहता है, आशा बनी रहती है और व्यक्ति शोकग्रस्त नहीं होता। इसीलिये इस वृत्ति को विशोका वृत्ति कहा गया है। सराश यह है कि जिन रसों में तेजोदीप्ति का उत्थान दिखलाया जाता है उनमें वाचिक और आंगिक अभिनय वाली तेज की अधिकारपूर्ण क्रिया का प्रदर्शन किया जाता है उनमें सात्वती वृत्ति होती है। इसमें साहसी, उत्साही पुरुषों की भरमार होती है। क्रियाकलाप और उद्योग में आनन्द लेना इसका मुख्य लक्षण है। रौद्ररस में क्रोध पूर्ण परिस्थिति होती है, उसमें हर्ष नहीं होता और विवेक खो देने से सत्व का समावेश भी नहीं रहता, फिर भी सात्वती वृत्ति

की सत्ता इसमें इसलिये मानी गई है कि किसी किसी के क्रोध में उसकी चेतना जागृत भी रहती है। काम क्रोधादि पर विजय प्राप्त करना भी तो वीरता का ही कार्य है। इसलिये शान्त रस में भी इसकी सत्ता मानी गई है। अद्भुत रस में यद्यपि अपनी तेजस्विता नहीं होती फिर भी दूसरों के लोकोत्तर कार्यों की देखकर ही विस्मय उत्पन्न होता है। इसलिये अद्भुत में भी सात्वती वृत्ति स्वीकार की जाती है। नाट्यदर्पण में इसके कार्य बतलाये गये हैं- सारलता डाट डपट, मोद, हर्ष और धैर्य। इस मनोवृत्ति के अभिव्यञ्जन के ये प्रकार बतलाये गये हैं- विचित्र और गम्भीर कथनों का प्रयोग, प्रारम्भ में किये हुये कार्य का परित्याग करना, नये नये साहसपूर्ण कार्यों को स्वीकार करना, साम इत्यादि के प्रयोग, दैव इत्यादि से शत्रुओं में फूट डालना इत्यादि अनेक उपाय हैं जिनका उपादान इसमें किया जाता है।

भरत मुनि द्वारा सात्वती वृत्ति के चार प्रकार बतलाये गये हैं- (१) उत्थापक- जहाँ स्वयं युद्ध के लिये सन्नद्ध होकर दूसरे को ललकाता जाय वहाँ उत्थापक होता है। (२) परिवर्तक किसी कार्य के लिये ठठकर तैयार होकर और उसमें लगकर भी संयोगवश किसी दूसरे कार्य को स्वीकार कर लेना परिवर्तक कहलाता है। बदाहरण के लिये महावीर चरित में परशुराम राम को उखाड़ फेंकने आते हैं। किन्तु उनसे प्रभावित होकर आलिंगन करने लगते हैं। दूसरा उदाहरण ह्योग्य हनुमान सीता की खोज के लिये लका को आते हैं और खोज लेने के साथ ही अशोक वाटिका का विध्वंस, अध्वपथ और लकादहन जैसे कार्यों को भी कर देते हैं। (३) सल्लापक-वीरता पूर्ण तथा एक दूसरे को घोरित करने वाले सवाद। जैसे बेणी सहार में अश्वत्थामा और कर्ण का सवाद अथवा महानाटक में अगद रावण एवं लक्ष्मण परशुराम सवाद। (४) साक्षात् जहाँ शत्रु के सघ का भेदन मन्त्र, पन या दैवी शक्ति से अथवा किसी दूसरे उपाय से किया जाय वहाँ साक्षात् कहा जाता है। मुद्राराक्षस में घाणक्य ने मलयकेतु के सहायकों को मन्त्र या विचार शक्ति से फोड़ लिया। रामायण में विषोषण को राम की दैवी शक्ति का विश्वास दिलाकर फोड़ लिया गया।

कैशिकी वृत्ति

इस शब्द की निम्नलिखित केश शब्द से हुई है। भरत ने इसका सम्बन्ध केश से ही माना है। नाट्यदर्पण में सुन्दर केशों के अर्थ में कैशिक शब्द बनाया गया है और फिर कैशिक से सम्बन्धित इस अर्थ में कैशिकी की निम्नलिखित की गई है। सौन्दर्य का सर्वोत्कृष्ट उपकरण प्रसाधित केश ही होते हैं (तुलसी के शब्दों में अवलाकच भूषण) जिस प्रकार केशों का शृङ्गार सामान्य शृङ्गार की अभिवृद्धि के कारण होता है उसी प्रकार जो वृत्ति सौन्दर्य और शृङ्गार की तथ्य बनाकर चलती है उसे कैशिकी वृत्ति कहा जाता है। इस शब्द का एक अन्य अर्थ और है- बड़े हुये केश स्त्री सौन्दर्य में कारण होते हैं, किन्तु

केशों की बढवार में स्त्री के भावों की अपेक्षा नहीं होती उसी प्रकार काव्य का जो सौन्दर्य भावों की बिना अपेक्षा किये बढता है उस सौन्दर्य में कारण कैशिकी वृत्ति होती है। केशों की अधिकता और उसका सौन्दर्य स्त्रियों में होता है। अतः कैशिक शब्द का अर्थ है स्त्रिया। विचारकों ने स्त्री की परिभाषा में केश की विशेषता मानी है— 'स्तन केरावती नारी।' जिस वृत्ति में स्त्री सौन्दर्य उपमान होता है उसे कैशिकी वृत्ति कहते हैं।

भारत ने कैशिकी का परिचय इस प्रकार दिया है— 'जिसमें वस्त्र माला इत्यादि की ऐसी सुन्दरता विद्यमान हो जो मन को वरवस आकृष्ट कर ले और मन में बिपक जाय तथा बहुत हो मनोरम प्रतीत हो, जिसमें स्त्रियों के कार्य कलाप और लीलायें विद्यमान हों, जिसमें नृत्य और गीतों की बहुतायत हो, जिसमें कामोपभोग (रति) से उद्भूत समस्त व्यवहार हों ऐसी वृत्ति कैशिकी वृत्ति कही जाती है। इसमें वाद्य और गीत बहुत बहुत अधिक होते हैं, नृत्य की बहुतायत होती है, शृङ्गार परक अभिनय के अनुकूल चित्र विचित्र वेषभूषा बनाई जाती है, शरीरशृङ्गार की विशेषता होती है। यह वृत्ति विचित्र प्रकार के पदों वाक्यों और प्रबन्धों (रचनाओं) वाली, हमना, रोना, क्रोध करना इत्यादि से परिपूर्ण स्त्री पुरुषों की काम वामना से सबलित समझी जानी चाहिये।'।

शृङ्गार रस की सभी प्रकार की चेष्टायें इसके अन्तर्गत आती हैं जिनमें सयोग शृङ्गार भी होता है और वियोग शृङ्गार भी। सौन्दर्य का अधिष्ठान स्त्रिया होती है अतः इसमें स्त्रियों की प्रधानता रहती है। वहाँ हास्य, कहीं भय, वहाँ मान, वहाँ सापराध पति के प्रति उचित व्यवहार आदि असंख्य तत्त्व इस वृत्ति के अन्तर्गत आते हैं, जिसमें कायिक वाचिक मानसिक तीनों प्रकार के व्यापार आ जाते हैं।

अभिनव गुप्त के अनुसार कैशिकी वृत्ति सभी वृत्तियों और सभी काव्यों का प्राण तत्व है। आनन्द वर्धन का कहना है कि किसी विरोधी भाव के सम्पर्श से शृङ्गार रस दबता नहीं जबकि शृङ्गार रस किसी अन्य रस में अपना सिक्का जमा लेता है। नाट्य दर्पण के अनुसार वहाँ मान, वहाँ हास्य, वहाँ शृङ्गार हास्य, वहाँ भय हास्य वहाँ सापराध पति का स्नेह भेदन, वहाँ पूर्व नायिका की ओर से भय, इत्यादि अनेक कारणों से कैशिकी वृत्ति उद्भूत होती है। इसमें कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के व्यापारों का उपादान होता है। शृङ्गार से मानस व्यापार, हास्य तथा नर्म भेद से वाचिक और अभिनय से कायिक व्यापार सङ्गृहीत होता है। केशों के भाव होन स्वतः बढने की भी उपमा यहा सागू होती है— नृत्य, गीत इत्यादि अनुज्ज्वल उपकरण बिना अर्थ ज्ञान की अपेक्षा किये अपनी सत्ता से ही चमत्कृत कर आनन्द देने वाले होते हैं।

भारत ने कैशिकी वृत्ति के चार अंग माने हैं— नर्म, नर्मस्फूर्ब, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ। नर्म का अर्थ है परिहास वचन जिससे श्रिय का अभिमुखी करण हो। यह नर्म तीन प्रकार का होता है— केवल हास्य, सशृङ्गार हास्य और सभय हास्य। शृङ्गार हास्य के तीन उपभेद होते हैं— आत्मोपश्लेष नर्म, सभोग नर्म और मान नर्म। भय नर्म के दो भेद होते हैं—

शुद्ध और सकीर्ण । इस प्रकार शुद्धहास्य का एक प्रकार, शृङ्गार हास्य के तीन प्रकार और भय हास्य के दो प्रकार मिलकर नर्म ६ प्रकार हो जाता है । (१) केवल हास्य (शुद्ध हास्य) में कोई मजाक करते हुये प्रेम पैदा कर लिया जाता है, (२) आत्मोपश्लेष नर्म में व्यञ्जना वृत्ति से प्रणय निवेदन किया जाता है । इस प्रकार के अनेक उदाहरण शृङ्गारिक कविताओं में मिलते हैं । (३) सम्भोग नर्म में सम्भोगेच्छा प्रकाशन पाक चेष्टा में रहती है जिसमें हास्य का पुट भी मिला रहता है । (४) मान नर्म में मानवती की क्रिया में रहती है जिसके उदाहरण शृङ्गारिक काव्यों में अनेक मिलेंगे । (५) शुद्ध भय नर्म— जहाँ मजाक में भय दिखलाया जाता है । उदाहरण के लिये— रत्नावली में सुसगता (मजाक में) 'मैंने तुम्हारा सब हाल जान लिया है अब मैं चित्र फलक ले जाकर देवी से सारी बातें कहूँगी ।' (६) सकीर्ण भय नर्म में भय के साथ शृङ्गार भी मिला रहता है जैसे अपराध प्रकट हो जाने पर रूठी हुई किसी नायिका को सर्प इत्यादि का भय दिखलाकर आलिंगन के लिये विवश कर देना । इन छ प्रकार के नर्मों में प्रत्येक का वाणी, वेष और चेष्टा इन तीन तीन प्रकारों से अभिनय किया जाता है । इस प्रकार नर्म के १८ प्रकार होते हैं । नर्म स्फूर्ज में नायक नायिका का प्रथम सम्मिलन सुख पूर्वक हो जाता है किन्तु बाद में दूसरों के जान लेने का भय उत्पन्न हो जाता है । नर्म स्फोट में भय क्रोध इत्यादि अन्य भावों के सम्पर्श से शृङ्गार की अभिव्यक्ति होती है और नर्म गर्भ में कौशल पूर्वक अपने स्वरूप को छिपाकर शृङ्गार का उपभोग किया जाता है ।

आरभटी वृत्ति

यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है— आर और भट । इस प्रकार इसका अर्थ है ऐसी वृत्ति जिसके भट (योद्धा) आर के समान हों । नाट्य दर्पण में आर का अर्थ किया गया है— चाकू और रामचन्द्र गुण चन्द्र ने इसका अर्थ किया है चातुक । कोश ग्रन्थों में तोर पीतल या किसी अन्य धातु के बने काटने वाले किसी अस्त्र को आर कहा जाता है । भटों के चाकू इत्यादि चलाने की क्रिया की प्रधानता में आरभटी वृत्ति होती है । कोश में आर का अर्थ परीक्षा करना भी दिया गया है । अतः इसका एक अर्थ यह भी होता है जिस वृत्ति (व्यवहार) में योद्धाओं के अस्त्रशस्त्र चलाने की और उनको चौर वृत्ति की परीक्षा होती है उसे आरभटी कहा जाता है । भरत ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है— जिसमें आरभटों के क्रोध इत्यादि गुण अत्यधिक रूप में विद्यमान हों, अनेक प्रकार के कपट और चतुराई भरी हों, दम्भ और झूठ जिसमें प्रधान हो वह आरभटी वृत्ति होती है । इसमें बनावटी व्यक्तित्व सबूत, चमड़े इत्यादि के बने शायी इत्यादि दिखताकर धोखा दिया जाता है माया, इन्द्रजाल इत्यादि का प्रयोग किया जाता है, छंद और भेद श्राव्य हो रहे हैं युद्ध और झगड़े रोज होते रहते हैं । राजनीति के दाव फेंक, सामदान इत्यादि नातियाँ और सन्धि विग्रह इत्यादि उपायों का प्राधान्य होता है, रठ पूर्वक जो अन्धकार और मर्यादातिग्रस किया जाते हैं उनसे अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं । इसमें

विजय, पराजय, लाभ हानि ये सब तत्व सम्मिलित रहते हैं।

इसकी प्रवृत्तियाँ अनेक प्रकार की होती हैं, कभी कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का रूपधारण कर लेता है, कहीं आग लगती है। उगेजित भाषण, श्रान्ति, व्यर्थ के विवाद, बाहुयुद्ध, शस्त्र प्रहार, कूदना, गिरना, छलांगना इसके सामान्य तत्व हैं।

आरम्भटी के अंग

भारत ने इसके चार अंग बतलाये हैं- 'संक्षिप्तिका- किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये किसी की आकृति, अनुकृति बनाकर मुख्य वस्तु के स्थान पर निक्षिप्त कर देना, (२) अवपात- किसी विषम परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने पर भय इत्यादि किसी भावना के अधिक क्षेत्र में व्याप्त हो जाने पर दौड़ दूध का अधिक बह जाना, (३) वस्तुत्यापन- विद्रव किसी विषम स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न भावनाओं का उद्भव होना और (४) सम्प्रेष्ट- युद्ध की परिस्थिति जिसमें कपट, निर्भेद, शस्त्र प्रहार, बाण्युद्ध इत्यादि सभ्य विषयक सभी कुछ आ जाता है।

नाटक के पात्र

'रस ही काव्य की आत्मा है' यह कहने का अभिप्राय यही है कि कवि परिशीलकों को रति, क्रोध, भय, उत्साह इत्यादि मनोवृत्तियों का आस्वादन कराना चाहता है। ये भाव सभी के अपने अन्तःकरण में विद्यमान रहते हैं। उन्हीं का प्रदर्शन जब रगन्ध पर किया जाता है तब वे आस्वादन योग्य बनते हैं। किन्तु ये भाव अपनी सत्ता से ही प्रदर्शित नहीं किये जा सकते। जिस प्रकार कोई वस्तु प्रदान करने के लिये किसी पात्र की आवश्यकता होती है उसी प्रकार रसास्वादन के लिये भावना को समर्पित करने के निमित्त पात्र की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये यदि कवि रति का आस्वादन कराना चाहता है तो वह प्रेम का प्रदर्शन शकुन्तला और दुष्यन्त पर ढाल कर करेगा और उस प्रदर्शन को इस सीमा तक ले जायेगा कि दर्शक शकुन्तला और दुष्यन्त के व्यक्तित्व को भूलकर रति रूप हो जायेंगे। आशय यह है कि भाव को समर्पित करने के लिये पात्र का पुरुष होते हैं। इसीलिये रस शास्त्र के आचार्यों ने प्रारम्भ से ही लेकर नायक नायिका भेद उनकी विशेषतायें चेत्ययें इत्यादि का रसोपकरण के रूप में विवेचन किया है। किसी वस्तु के रखने के लिये उस वस्तु के उपयुक्त पात्र चयन की आवश्यकता होगी है। यदि अयोग्य तथा अस्मद्गत पात्र में कोई वस्तु रख दी जाय तो उसका स्वाद बिगड़ जाता है वर वस्तु अव्यवहार्य एवं फेंक देने योग्य हो जाती है। इस प्रकार किसी पात्र को प्रदान करने के लिये उसके अनुकूल ही पात्र चुनना पड़ता है अन्यथा रस के बिगड़ जाने की सम्भावना बनो रहती है। इसी वास्तविकता को ध्यान में रखते हुये आचार्यों ने नायक नायिका भेद पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

पुरुष पात्र

नाट्यकला विश्व का प्रतिरूप है। अतः नाट्यप्रवृत्त पात्रों के उठने ही प्रकार हो सकते हैं जितने विश्व के मानवों के प्रकार होते हैं और विश्व के मानवों के उठने ही प्रकार होते हैं जितने विश्व के मानव। प्रत्येक मनुष्य अपने में एक इकाई है। अतः शास्त्र केवल दिशा निर्देश करता है। सामान्य मानव, उसकी विशेषतायें, उसकी सफलता, असफलता, उसके व्यवहार क्षेत्र इत्यादि सभी बातों में लोक ही प्रमाण होता है और लोक से ही उसका अध्ययन करना चाहिये। यही भरत इत्यादि आचार्यों का निर्देश है। सभी कुछ विवेचन करने का बाद भरत ने यह दिया है मानवचरित का अध्ययन लोक से ही करना चाहिये।

भरत ने समस्त स्त्री पुरुषों के तीन वर्ग बताये हैं— (१) उत्तम प्रकृति के व्यक्ति— इस वर्ग की विशेषतायें होती हैं— जितेन्द्रियता, गम्भीरता, उदारता, लोक और शास्त्र ज्ञान की निपुणता, दक्षिण्य, धीरता, त्याग इत्यादि। इस वर्ग की स्त्रियाँ कोमल हृदय, सलज्ज, दिनयशील, मधुर, रूपावती स्मितपूर्वाभिभाषिणी, गुणवती, गम्भीर और धीर होती हैं। (२) मध्यम प्रकृति के लोग— लोक व्यवहार में निपुण शिल्प शास्त्र में व्युत्पन्न, ज्ञानवान एवं मधुर स्वभाव वाले होते हैं। इस वर्ग की स्त्रियों में प्रथम वर्ग की स्त्रियों के ही गुण होते हैं, किन्तु उनमें प्रथम वर्ग की स्त्रियों के गुणों में वे गुण घट कर होते हैं। (३) अधम प्रकृति के लोग— वे दुःशील, चिरानु, मित्रद्रोही अकृतज्ञ आलसी, दुराचारी कलहप्रिय पापी परापकारी क्रोधी छलकपट परायण होते हैं। अधम प्रकृति की नारी में भी यही सब दोष होते हैं। नाट्य में प्रधान पुरुष का विशेष महत्व होता है जिस पर आचार्यों ने विशेष विचार किया है। सामान्यतः आधिकारिक कथावस्तु के पक्ष का देखभाल प्रधान नायक कहा जाता है। नायकत्व की दृष्टि से पात्रों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— (१) नायक जो प्रधान पक्ष का भोक्ता होता है, (२) अनुनायक जो लगभग नायक जैसे गुणों का ही होता है किन्तु उसका महत्व उतना अधिक नहीं होता। रामायण के कथा नायक राम हैं, लक्ष्मण भी उन्हीं के जैसे गुणों वाले हैं किन्तु उनका महत्व घट कर है। इसी प्रकार कृष्ण के सहयोगी बलराम हैं। (३) उपनायक— यह पत्राका नायक होता है। वह भी किसी सोमा तक फलभोक्ता होता है। राम के साथ सुग्रीव और विभीषण भी फलभोक्ता हैं किन्तु उनका वैसा महत्व नहीं जैसा राम का। (४) प्रतिनायक— यह विरोधी पक्ष नायक होता है जैसे रामायण में रावण या महाभारत में दुर्योधन।

नाट्यशास्त्राचार्य ग्रन्थों में नायक के निम्नलिखित गुण बताये गये हैं—

नरा विनीतो मधुरस्वामी दक्ष प्रियवन्द ।

रत्नलोक शुचिर्वाग्मी रद्वरा स्मितोयुवा ॥

मुद्गयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वित ।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुरव धार्मिक ॥

ये सब उच्चकोटि के गुण हैं जो किसी नायक में अनिवार्य माने जाते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि नायकों के चरित्र की दुर्बलता उनके चरित्र में स्वाभाविकता लाने के लिये आवश्यक होती है। न कोई पुरुष गुणरहित होता है न दोषरहित। फिर भी भारतीय साहित्य की अपनी विशेषता आदर्शवाद और आनन्दवाद के कारण नायकों के दोषदर्शन को अधिक महत्व नहीं दिया गया है। इसके प्रतिकूल जहाँ कहीं दोष की सम्भावना दिखलाई भी दो है वहाँ उसके परिमार्जन की चेष्टा की गई है।

शास्त्र में नायक चार प्रकार के माने गये हैं- (१) धीरोदात्त ये महाप्राण, अति गम्भीर, धमाशील, स्थिर, अभिमान के भाव को गुप्त रखने वाले होते हैं, उनका व्रत दृढ होता है। (२) धीर शान्त- इनमें उदात्तता के गुण तो होते ही हैं साथ ही ये अभिमान शून्य, कृपालु, विनयी, न्याय परायण और उदासीन स्वभाव के होते हैं। (३) धीरललित- इनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता होनी है कलापउपगता। ये कोमल प्रकृति के तथा चिन्ता रहित होते हैं। ये विलासी, भोग सहित एव रति प्रिय होते हैं। और (४) धीरोद्धत- ये अभिमान और द्वेष से भरे रहते हैं। छल कपट और माया इनके स्वभाव की मुख्य प्रकृति होती है। ये अहंकारी भयंकर घमण्डी, चंचल, क्रोधी तथा आत्म श्लाघा परायण होते हैं। (इस वर्गीकरणमें प्रत्येक को धीर बतलाया गया है। इसका आशय यह है कि इन प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों में अपने स्वभाव की दृढ़ता होती है- धीरोदात्त व्यक्ति उदात्तगुणों का अचिह्नभण नहीं करता और धीरोद्धत व्यक्ति कभी छल कपट से रहित नहीं हो सकता। धीर ललित व्यक्ति जीवन के आमोद प्रमोद और विषयोपयोग से कभी मुँह मोट हा नहीं सकता। युद्ध चल रहा है, किन्तु रत्नावला के नायक ने सारे राज्य का भार मन्त्रियों पर ढाल रक्खा है, उसे विषयोपयोग छोड़कर दोन दुनिया की कोई चिन्ता नहीं।)

शूद्रा की दृष्टि से नायकों के चार प्रकार बतलाये गये हैं- (१) दक्षिण- जो अनेक पत्नियों और प्रेमिकाओं से प्रेम करता है किन्तु निग्रह रहता है, किसी स प्रात पक्षपान नहीं करता, सर्वदा इस बात का ध्यान रखता है कि सभी प्रेमिकायें मनुष्य रहें। (२) अनुकूल- जो नायक एक मात्र अपनी पत्नी से ही प्रेम करता है व भी स्वप्न में भी किसी अन्य स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। (३) धूर्त- जो निरशङ्क होकर यौन अपराध करता है, हाटे फटकारे जाने पर भी लज्जित नहीं होता। अपराध चाहे सामने देख लिया गया हो फिर भी झूठ बोलता रहता है। (४) शठ- इसका प्रेम कहीं हावा है, बड़ से प्रेम प्रदर्शन किसी और के प्रति करता है और छिप छिप कर किसी और को फँसा देता है।

शास्त्रकार ने नायक के ८ गुण बतलाये हैं- (१) शोभा- इस गुण की सम्बन्ध सांसारिक सौन्दर्य से तो है ही स्वभावगत सौन्दर्य भी इस गुण में आ जाता है। (२)

खिलास चाल तथा दृष्टि में धैर्य और स्मितपूर्वक बातचीत की प्रवृत्ति इस गुण के अन्तर्गत आ जाती है। (३) माधुर्य- क्रोध के कारणों के उपस्थित होने पर भी क्रोध न करना माधुर्य कहलाता है। (४) गाम्भीर्य- भय शोक इत्यादि तीव्र भावों में भी घबराहट का अनुभव न करना गाम्भीर्य है। (५) धैर्य- महान विघ्नों के होते हुये भी अपने स्वीकृत कार्य का परित्याग न करना धैर्य नाम का गुण है। (६) तेज- यदि कोई व्यक्ति आक्षेप या अपमान करे तो उसको सहन करना और विरोध में प्राण भी दे देना तेज कहा जाता है। (७) लालित्य वाणी और वेष की मधुरता तथा शृङ्गार की चेष्टायें ललित गुण में आती है। और (८) औदार्य- प्रिय भाषण के साथ दान देना तथा शत्रु मित्र के प्रति समान भाव रखना औदार्य कहलाता है।

नायक के सहायक

नायक के सहायकों में सर्वप्रथम पीटमर्द आता है। यह उपनायक भी कहा जा सकता है। यह मुख्य नायक के स्वार्थ साधन में तत्पर रहता है। स्थानापन्न होकर नायक का कार्य भी सञ्चालित रखता है। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्ति नायक के सहायक होते हैं। राजनीति तथा अर्थशास्त्र के चिन्तन में मन्त्री सहायता करता है। शासन व्यवस्था तीन प्रकार की होती है- (१) स्वाम्यायत शासन जिसमें राजा निर्णायक होता है, मन्त्री केवल परामर्श देता है। (२) सचिवायत शासन जिसमें मन्त्री पूरा अधिकारी होता है, (३) उभयायत शासन जिसमें दोनों सहयोगी होकर निर्णय लेते हैं। राजदूत का पद भी महत्वपूर्ण होता है। (१) निःसृष्टार्थ- जिसको राजा की ओर से निर्णय लेने और किसी समझौते पर हस्ताक्षर करने का पूरा अधिकार होता है, (२) मितार्थ- इसे सीमित अधिकार होते हैं और अपने शासन की सहायता से ही यह कोई भी निर्णय ले सकता है तथा कार्य बना सकता है। (३) सन्देशहारक- इसका कार्य सन्देश वहन करना होता है। उसके क्षेत्र में निर्णय लेना नहीं आता। ये तीनों प्रकार के राजदूत राजा के कूटनीतिक सम्बन्धों के सहायक होते हैं। शत्रुओं और दुष्टों को दण्ड देने में युवराज, दूसरे कुमार, आठविक (जिन में छिपने के ठिकाने का ज्ञान रखने वाले) विभिन्न प्रकार की सेनाओं के सेनाध्यक्ष तथा सैनिक सहायक होते हैं। इसी प्रकार राजकार्य सञ्चालन के दूसरे विभागों में अधिकारी भी सहायक होते हैं।

राजा के शृङ्गार के सहायक होते हैं- विट, चेट, विदूषक, इत्यादि। ये सब भक्त होते हैं, इसी मजाक में निपुण होते हैं और कुपित स्त्रियों के मान भंग करने की कला में निपुण होते हैं। किन्तु स्वयं अभी सत्त्वान्वित होते हैं। विट देशकाल को समझने वाला कोई धूर्त व्यक्ति होता है जिसे बला के एक देश का ज्ञान होता है, जो नये नये वेष धारण करने में निपुण होता है। यह गोष्ठी में खेलने में चतुर तथा मधुर होता है। विदूषक एक ऐसा पात्र होता है जो शरीर, वेष, भाषा तथा कर्म से हसी उत्पन्न करता है। उसका

नाम कुसुम, वसन्त इत्यादि होता है। यह लड़ाई करने में निपुण होता है और अपने कार्य को समझता है। इसी प्रकार अन्तपुर में इसके सहायक होते हैं— वामन, कुम्भ किरात, म्लेच्छ, आभीर, शकार कुबडे इत्यादि। शकार का अर्थ है साला यह बिना व्याही राजा की प्रेमिका का भाई होता है। किन्तु ऐश्वर्य सम्पन्न हुआ करता है तथा अपने मद और मूर्खता के कारण सर्वदा अभिमानी व्यक्ति का अभिनय करता है। अन्तपुर के सहायकों में कञ्जुकी का महत्वपूर्ण स्थान है यह मध्य श्रेणी का पात्र होता है और सस्कृत बोलता है। धर्म में राजा के सहायक होते हैं— ऋत्विक्, पुरोहित, ब्रह्मवित् तथा तपस्वी इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में सहायकों के विषय में समझना चाहिये।

स्त्री पात्र

नाट्य शास्त्र में पुरुषपात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों का चरित्र अधिक महत्वपूर्ण, अधिक जटिल और अधिक विस्तृत होता है। वैसे तो पारिवारिक आदि सम्बन्धों के अनुसार स्त्री पात्र अनेक विध होते हैं जिनको लोक व्यवहार के अनुभव के आधार पर समझा जा सकता है, किन्तु काममूलक विशेषताओं पर आचार्यों ने विवेचनात्मक दृष्टि डाली है। वस्तुतः काम का सम्बन्ध तीनों वर्गों से होता है। अर्थकाम और धर्मकाम का भी प्रयोग किया जाता है। किन्तु शुद्ध काम में और दूसरी कामनाओं में मौलिक अन्तर है। दूसरे काम केवल साधन हैं— साध्य नहीं। धर्म की कामना के मूल में विपत्ति निवारण और अभीष्ट लाभ सन्निहित रहता है, अर्थ की कामना भी सुख लाभ के लिये होती है। उन कामनाओं में प्रयोक्ता को लाभ होता है, प्रयोज्य को नहीं। किन्तु शुद्ध अमिश्रित काम के मूल में काम के अतिरिक्त और कोई तत्व नहीं होता। दूसरी बात यह भी है कामानुभूति में प्रयोक्ता और प्रयोज्य को एक जैसा लाभ होता है। दोनों को समान आनन्द आता है, दोनों को समान तृप्ति होती है और दोनों की समान रूप से अभिलाषा पूर्ति होती है।

कामानुभूति में स्त्री पुरुष दोनों प्रयोज्य प्रयोजक होते हैं किन्तु स्त्रियां तो काम का स्वरूप ही होती हैं। अतः स्त्रियों के भेदोपभेदों पर विशेष विचार किया गया है। काम का मूल होने के अतिरिक्त भी उन पर विशेष विचार करने के कुछ अन्य कारण भी हैं। स्त्रियों पर सामाजिक प्रतिबन्ध अधिक होते हैं। उनका आना जाना मिलना जुलना अधिक स्वच्छन्द नहीं होता। आयु के अनुसार उनके स्वभाव, क्रियाकलाप, चेष्टा इत्यादि के साथ उनकी शरीर रचना में भी जल्दी जल्दी परिवर्तन उपस्थित होते रहते हैं। यही कारण है कि नायिका भेद हजारों की सख्या तक पहुँच गया है जबकि नायक भेद की सख्या दो अकों का अतिव्रमण नहीं कर सकी है। नायिका भेद में यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न प्रकार की स्त्रियों की प्रवृत्ति क्या होती है। विरह में उनकी विचार की दिशा क्या होती है? मिलने के अवसर पर उन पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है? मिलन के पहले उनकी क्या दशा होती है? प्रथम मिलन के बाद

उनका विषय क्या कहानी कहता है? प्रेम की प्रतिकूलता, नायक का अपराध इत्यादि अवसरों पर उनको किस प्रकार की प्रवृत्ति होती है? ईर्ष्या में उनका क्या रूप होता है इत्यादि अनेक तत्व ऐसे हैं जिन पर नायिका भेद के अन्तर्गत विचार किया जाता है।

नायिका भेद पर विचार नाट्यशास्त्र की रचना के पहले ही प्रारम्भ हो गया था। परत मुनि ने कामसूत्र से नाट्यवस्तु के उपादान का आदेश दिया है। कामसूत्र में स्पष्ट रूप से मनोवैज्ञानिक आधार पर नायिकाभेद का निरूपण नहीं किया गया है क्योंकि उसका मुख्य विषय कामशास्त्र है जिसमें स्त्रियों के शरीर की बनावट, गुप्ताङ्ग की रचना सहवास का कार्यकाल इत्यादि के आधार पर भेदोपभेदों का निरूपण उसके विषय के अधिक अनुकूल पड़ता है। किन्तु इसमें अनेक प्रकरण इस प्रकार के आये हैं कि यदि उन पर विवेचनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि उन पर मनोविज्ञान का विशेष प्रभाव पड़ा है। स्त्रियों की सामाजिकता मनोविज्ञान के अनुसार भेदोपभेद वस्त्रना का मूल आधार अधिक बनी है। सर्वप्रथम वैवाहिक समस्या पर विचार कर स्त्री जाति को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है— स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया के अन्तर्गत बहुपत्नीपरक सामाजिक व्यवस्था पर ध्यान देते हुये ज्येष्ठा कनिष्ठा वृत्त पर विचार किया गया है। इसके साथ ही बालोपक्रम, अनेक बान्तावृत्ति इत्यादि स्वकान्त विषयक अनेक तत्वों पर विचार किया गया है। कन्या प्रकरण परकीया प्रकरण इत्यादि अनेक तत्वों का आधार वैवाहिक समस्या ही है। भरत ने कामसूत्रों के अतिरिक्त पशुओं व स्वभाव इत्यादि पर भी स्त्रियों के भेदोपभेद की वस्त्रना की है। उदाहरण के लिये भृगु के स्वभाव वाली स्त्री, घोड़ी, भैंस गाय इत्यादि के स्वभाव वाली स्त्री इसी प्रकार मछली गधा मुआर, ऊट इत्यादि के स्वभाव वाली स्त्रियों पर विचार किया गया है। पशुओं के अतिरिक्त देवता असुर, गन्धर्व राक्षस नाग इत्यादि के स्वभाव वाली स्त्रियों का विवेचन भी इसी क्षत्र में आता है।

पार्वती आचार्यों ने नाट्य शास्त्र की इस भेदोपभेद वस्त्रना को नहीं अपनाया है। उनका दृष्टि में मनोवैज्ञानिक आधार ही प्रमुख रहा है। पार्वती साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में धनञ्जय का दशरूपक भानुदत्त की रसमञ्जरी और विश्वनाथ का साहित्य दर्पण ये तीन ग्रन्थ नायिका भेद की दृष्टि से प्रमुख रहे हैं। हिन्दी सत्काल का नायिका भेद इन्हीं पर आधारित रहा जिसमें भानुदत्त की रस मञ्जरी का आश्रय विशेष रूप से लिया गया।

संक्षेप में मौलिक रूप से नायिका व तान भेद किये गये स्वकीया परकीया और सामान्या। स्वकीया व भा मभी आचार्यों ने तान भेद माने हैं— मुग्धा मध्या और प्रौढ। मुग्धा नायिका में लज्जा की अधिकता और उत्कण्ठा की कमी होता है। मध्या में लज्जा और उत्कण्ठा समान वाटि की होती है और प्रौढ में लज्जा न्यूनतम अवस्था में पहुँच जाता है ठसम क्वल उत्कण्ठा का अधिकता होती है। कतिपय आचार्यों ने स्वकीया के अन्तर्गत परकीया और सामान्या में भा ठकन मुग्धा इत्यादि तानों भेद माने हैं। किन्तु

परकीया कन्या केवल मुग्धा होती है, वह मध्या या प्रौढा हो ही नहीं सकती उसे काम कला का ज्ञान ही नहीं होता क्योंकि पुतले समय में छोटी उम्र पर शादी हो जाती थी। परकीया परोढा मुग्धा नहीं होती क्योंकि वह कामकला के ज्ञान से रहित रह ही नहीं सकती। वह प्रौढा भी नहीं होती— यदि वह प्रौढा होगी तो वेश्या बन जायेगी। सामान्या (वेश्या) न मुग्धा होती है न मध्या, क्योंकि ये दोनों भेद उसके व्यवसाय के विरोधी हैं। इस प्रकार स्वकीया में दोनों भेद होते हैं, कन्या केवल मुग्धा होती है, परोढा केवल मध्या होती है और सामान्या केवल प्रौढा होती है।

स्वकीया के मध्या और प्रौढा इन दोनों भेदों में प्रत्येक के तीन तीन भेद होते हैं—धीरा, धीराधीरा और अधीरा। ये भेद इस दृष्टि से किये गये हैं कि नायक के अपराधी होने पर उसके प्रति इनका व्यवहार कैसा रहता है। प्रियतम से रूठ जाने पर वह अपने क्रोध (मान) को किस प्रकार व्यक्त करती है और किस प्रकार उसका मान दूर होता है। मध्यधीरा रूठ जाने पर अपने क्रोध को वक्तोक्ति के द्वारा व्यक्त करती है। मध्या धीराधीरा रोकर और अधीरा कठोर शब्द बोलकर अपने क्रोध को प्रकट करती है। प्रौढाधीरा जब रूठती है तब अपने रोष को छिपाकर और प्रियतम का सीमा से अधिक आदर दिखलाकर अपने रोष को व्यक्त करती है। प्रौढाधीरा धीरा आक्षेप गर्भित शब्द बोलकर प्रिय को पीडित करती है। प्रौढा अधीरा प्रियतम को पीटने लगती है।

मुग्धा के भेदों के विषय में आचार्यों में मतभेद नहीं है। साहित्यदर्पण में मुग्धा की विशेषताये बतलाई गई हैं उसके भेद नहीं किये गये और स्पष्ट कह दिया गया है कि मुग्धा एक ही प्रकार की होती है। भानुदत्त ने मुग्धा के तीन भेद किये हैं अकुरित यौवना, नवोढा और निश्रव्य नवोढा। हिन्दी के आचार्यों ने इस दिशा में भानुदत्त का ही प्राय अनुसरण किया है। किसी किसी आचार्य ने दो भेद किये हैं— ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना। वस्तुतः अकुरित यौवन और अज्ञात यौवना का आशय एक ही है। शेष दो भेद नवोढा और निश्रव्य नवोढा को ज्ञात यौवना के अन्तर्भुक्त कर दिया गया है। हिन्दी के आचार्यों ने इन्हीं भेदों को घुना फिर कर नई व्यवस्था प्रदान की है।

शेष दो भेदों में परकीया और सामान्या में परकीया पर ही कुछ विचार किया गया है, सामान्या का प्रवृत्ति निमित्त तो धन होता है। अतः मनोभाव में विच्छिन्न की विशेषता न होने के कारण उनकी भेदोपभेद कल्पना उचित नहीं करी जा सकती। परकीया के दो भेद तो प्रायः सभी ने किये हैं— कन्या और परोढा। कन्या मुख्य रस की भी नायिका हो सकती है क्योंकि उसका प्रेम स्वकीया प्रेम होने का क्षमता रखता है। उसे परकीया इमोलिषे कहा जाता है क्योंकि उसका प्रेम स्वचंचल नहीं होगा, वह पिता इत्यादि के दबाव में रहती है। नाटकों और आज की फिल्मों में कन्या का प्रेम दिखलाकर उसे विनाश से परित्यक्त कर दिया जाता है। कन्या प्रेम का प्रदर्शन रस रूप होता है। उसके प्रदर्शन में कोई अनौचित्य नहीं माना जाता। परोढा दूसरे को व्याही होती है। उसको

पति से भिन्न किसी अन्य से प्रेम करने का अधिकार नहीं होता। उसका प्रेम अनौचित्य से उपहत होता है अतः वह रस की नहीं रसाभास की आलम्बन होती है। इसीलिये आचार्यों ने अधिकतर उसके भेदोपभेद की कल्पना नहीं की है। शनुरत्न ने उसके ६ भेद किये हैं— गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता। कृपाराध ने एक भेद स्वयं दूतिका और जोड़ दिया है।

प्रकृति भेद से नायिकायें तीन प्रकार की मानी गई हैं उत्तमा माध्यमा और अधमा इनका परिचय पहले दिया जा चुका है। सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर ४ भेद किये गये हैं— दिव्या, नृपपत्नी, कुलसी और गणिका। विक्रमोवशां में स्वर्गाय अप्सरा (दिव्या) उर्वशी नायिका है। राजपत्नी वासवदत्ता स्वप्नवादवदत्ता की नायिका है, कुलसी मालती माधव की नायिका और गणिका वसन्तसेना मृच्छकटिक की नायिका है। इसी प्रकार शील इत्यादि अन्य आधारों का भी नायिक भेद के लिये उपयोग किया गया है।

कामदशा की अवस्था के आधार पर भी भरतमुनि ने नायिका भेद का निरूपण किया है जिसका उपादान भरवर्ती आचार्यों ने भी किया है। इस विभाजन में पुरुष के नायिकाओं के साथ या नायिकाओं के पुरुष के प्रति व्यवहार में उनकी अवस्था का विचार किया गया है। इन अवस्थाओं का परिचय इस प्रकार है—

(१) स्वाधीन पतिव्रता— जिसका पति सर्वदा उसके आधीन रहता है, नायिका प्रयत्न करने पर भी उसके अपाध नहीं दूढ़ पाती। उसे स्वाधीन पतिव्रता कहा जाता है।

(२) अभिसारिका— जब कोई सुन्दरी कामवासना से फीड़ित होकर प्रियतम से सङ्केत स्थान पर मिलने जाती है या प्रियतम को अपने पास बुलाती है तब उसे अभिसारिका कहा जाता है। यह नायिका प्रधान रूप से दो प्रकार की होती है— (अ) सुलभाभिसारिका जो चादिनी रात में सपेद वस्त्र पहन कर अभिसरण करती है। और (आ) कृष्णाभिसारिका जो काली रात में काल कपड़े पहिन कर अभिसरण करती है।

विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार नायिकाओं का अभिसरण विभिन्न प्रकार का होता है। कुलटा रीति का अभिसरण समाज से छिपकर होता है, चित्तुल दबकर अपने अंगों में घुसी हुई सी जाती है, अपने सभी आभूषणों को मीन बना देती है और मृष्ट में छिपी रहती है जिससे उसे कोई पहिचान न सके। यदि वेश्या अभिसरण करती है तो आवर्षक साक्षरज्ञान से विचित्र उञ्जल वेष बनाकर नूपुर और कङ्कणों का शब्द करती हुई आनन्द से मुसुराती हुई अभिसरण करती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि नायिका किसी दूत को नायक के पास प्रेम सम्बन्ध जोड़ने के लिये भेजती है। वह प्रिया कहलाती है, प्रिया स्वयं अपना सम्बन्ध नायक से बना लेती है। यदि वह अभिसरण करती है तो सदित या पौवन के वेश में उसकी आवाज स्वतित हो जाती है, विधस से उसके गत्र प्रफुल्लित हो जाते हैं और चाल लड़खड़ाने लगती है। आचार्यों ने इन स्थानों का भी उल्लेख किया है जो सकेत स्थान के लिये उपयुक्त रहते हैं।

(३) कलहान्तरिता- प्रणय कलह में रूठी हुई नायिका को प्रियतम चाटुकारी करते हुये मनाने की चेष्टा करता रहे लेकिन वह क्रोध के साथ उसका परित्याग कर दे और नायक निराश होकर चला जाय तब प्रियतम के परित्याग का परचाताप करने वाली नायिका कलहान्तरिता होती है।

(४) प्रेषितपतिका- जिसका पति अनेक कार्यों से दूरदेश में चला जाय। कामवेदना से पीड़ित ऐसी स्त्री प्रेषितपतिका कहलाती है। प्रवास में जाने वाले पति की नायिका के तीन प्रकार हो सकते हैं- जिसका पति परदेश जाने की तैयारी कर रहा हो (प्रवत्स्यपतिका), जिसका पति चला गया हो (प्रेषितपतिका), और जिसका पति परदेश से आने वाला हो (आगमिष्यपतिका) तीनों अवस्थाओं में मनोवृत्तिया भिन्न प्रकार की होती हैं।

(५) विप्रलब्धा- जिसका पति संकेत करके भी नहीं आता, अत्यन्त अपमानित वह स्त्री विप्रलब्धा कहलाती है।

(६) वासकसज्जा- जिसका पति आने वाला हो और उसे प्रियतम सगम की आशा हो, वह अपना घर सजाती है उसकी सखिया उसका शृङ्गार करती हैं या वह स्वयं अपना शृङ्गार करती हैं और इस प्रकार तैयार होकर प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं उस नायिका को वासकसज्जा कहा जाता है।

(७) विरहोत्कण्ठिता- जिसका पति आने के लिये तैयार हो किन्तु दैववश किसी आवश्यक कार्य में उलझ जाने के कारण न आ सके। उसके न आ सकने से जो नायिका दुःख से पीड़ित हो उसे विरहोत्कण्ठिता कहा जाता है।

(८) खण्डिता- जिसका पति उसके पास परस्त्री सहवास का चिन्ह लिये हुये आता है- ईर्ष्या से बलुपित मनोवृत्ति वाली ऐसी नायिका खण्डिता कहा जाती है।

ये सभी भेद स्वकीया नायिका में ही सम्भव हैं। परकीया कन्या और परकीया परोदा में केवल तीन भेद होते हैं- (१) जब तक मिलने का संकेत निश्चित न किया गया हो तब तक वे विरहोत्कण्ठिता रहती हैं। (२) जब विदूषक इत्यादि की सहायता से वे संकेत स्थान पर जाने की या नायक को अपने यहाँ बुलाने की चेष्टा करते हैं तब अभिसारिका होती हैं। अभिसारिका केश्या भी हो सकती हैं और (३) यदि नायक किसी कारण संकेत स्थान पर न पहुँच सके तो विप्रलब्धा होती है। शेष भेद परकीया में सम्भव नहीं हैं। कारण यह है कि स्वाधीनपतिका तो स्वकीया ही हो सकती है, प्रेषितपतिका भी स्वकीया ही होगी। परस्त्री न तो खुलकर प्रियतम के सम्मिलन की प्रसन्नता ही प्रकट कर सकती है और न कलह को ही दूसरों को बतला सकती है उसके लिये पर पुरुष के सम्मिलन की तैयारी में न तो घर का सजाना और अपना शृङ्गार करना ही सम्भव होता है और न वह अपनी तैयारी या प्रियतम के आगमन की सम्भावना की बात दूसरों से कर सकती है। इसलिये परकीया न हो वासकसज्जा हो सकती है, और न कलहान्तरिता

हो सकती है। खण्डिता भी वही होती है जिसका पति परस्त्री सभोग से चिन्तित होकर आता है। जब परकीया का पति ही नहीं होता, वह पर पुरुष होता है तब उसका खण्डिता होना भी सम्भव नहीं है।

भरत ने कतिपय अन्य नायिकाओं का उल्लेख किया है वे हैं मदनातुरा, अनुरक्ता, विरक्ता, चतुरा, लुब्धा, मानिनी, पण्डिता। ऊपर जो आठ भेद बतलाये गये हैं वे विशिष्ट परिस्थिति के घोटक हैं। किन्तु ये भेद सामान्य विशेषतायें बतलाने वाले हैं। ये शब्द ही इनकी विशेषतायें बतलाते हैं। विरक्ता भी अनुरक्ता ही होती है। वह किसी वस्तु के देने लेने या प्रेम करने से सन्तुष्ट हो नहीं होती निरन्तर शृष्ट ही बनी रहती है। इसके वश में करने के उपाय भी इन्हीं शब्दों में सन्निहित है। पट्टी लिखी (पण्डिता) विद्वान और कलाभिज्ञ की वशवर्तिनी हो जाती है। लालची (लुब्धा) स्त्री उदार व्यक्ति से प्रसन्न होती है जो कुछ दे सके या उस पर कुछ खर्च कर सके। चतुर स्त्री चतुर व्यक्तियों को चाहने लगती है और जिसको रूठने की आदत होती है वह ऐसे व्यक्ति की वश वर्तिनी हो जाती है जो मनाने में निपुण हो। आचार्य ने सभी भेदों में सामान्य रूप से तीन प्रकार स्वीकार किये हैं— उत्तमा, मध्यमा और अधमा। नायिका भेद का जो विस्तृत विवेचन नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र पर रचना करने वालों ने किया है उनकी ससृष्टि और सत्कर से कई हजार भेद हो जाते हैं। प्रदेशों की विशेषताओं का भी नायिकाओं की मनोवृत्ति पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार नायिका भेद की सख्या सीमातीत हो जाती है।

नायिकाओं के अलंकार

अलंकार शब्द का अर्थ है अलंकृत करने वाला (रमणीय बनाने वाला) तत्त्व। 'स्त्री का नाम ही रमणीयता का पर्याय है' (लोति नामापि पेशलम्)। स्त्री की रमणीयता ही आकर्षण और अनुगम का प्राण तत्त्व है। वात्सापरण इत्यादि तो आभूषण कहलाते हैं, किन्तु वास्तविक अलंकार तो स्वाभाविक सौन्दर्य होता है उस समय जो कुछ भी धारण कर लिया जाता है वही व्यक्ति को रमणीय बनाने में कारण बन जाता है— 'विमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्' स्त्रियों के यौवन विकास के साथ उनके व्यक्तित्व में और बाह्य आकृति में कुछ ऐसी विलक्षण रमणीयता उत्पन्न हो जाती है कि मानव उस रमणीयता की पूजा करने के लिये सर्वस्व निछावर करने को उद्यत हो जाते हैं। इस रमणीयता को आचार्यों ने तीन भेदों में विभाजित किया है— अगज या सत्त्वज अयन्त्रज और यत्नज।

(१) सत्त्वज (सात्विक) अलंकार— सत्त्व एक विशेष पारिभाषिक शब्द है, यह मन की एक विशेष शक्ति है जिसका प्रभाव किसी भावना के उद्रेक में आसू आने, रोंगटे खड़े हो जाने चेहरे के छिल जाने या मलीन पड़ जाने पमीना आ जाने, आवाज बदल जाने इत्यादि से प्रत्यक्ष रूप में प्रतीतिगोचर हो जाता है। इसी प्रकार जवानी की दहलीज पर पैर रखने से चेहरे पर जो चमक आ जाती है जिसे लावण्य की मञ्जा दी जाती है

वह उस सत्व का ही प्रभाव होता है। यह लावण्य अनेक भावनाओं को आत्मसात् करते हुये अपना स्वरूप बदलता जाता है, सत्व के प्रभाव से जो परिवर्तन अलंकार रूप में उपस्थित होने हैं आचार्यों ने उन अलंकारों की संख्या तीन मानी है—

(अ) भाव— बचपन में मन निर्लिप्त होता है, उन पर रजोगुण और तमोगुण का आवरण उस समय तक नहीं होता। तब मन सत्व गुण से परिपूर्ण होता है। इसी अविकारात्मक सत्व से एक अन्दर ही अन्दर विपरिवर्तित होने वाला सूक्ष्म विकार उत्पन्न हो जाता है। यह विकार उसी प्रकार उत्पन्न होता है जिस प्रकार मिट्टी और जल का संयोग प्राप्त कर बीज कुछ फूल आता है। यह प्रथम विकार ही भाव कहलाता है। इसमें शृङ्गार भावना का पहला प्रभाव लक्षित होता है।

(आ) हाव— जब उक्त भाव ही बानधीत, चितवन आख और भौ की गति पर कुछ प्रभाव डालने लगे तब उसे हाव की संज्ञा दी जाती है। निश्चित अंगों में विकार उत्पन्न करने वाला शृङ्गार होता है और उसी के विशेष प्रकारस्वभाव को हाव कहा जाता है।

(इ) हेला— जब भाव और हाव बढ़ कर इस योग्य हो जाते हैं कि आङ्गिक चेष्टाओं से कामवासना पूर्ण रूप से प्रतीति गोचर होने लगे उसे हेला कहा जाता है। इस हेला में विकार अत्यधिक रूप में स्पष्ट हो जाते हैं और इससे शृङ्गार की सूचना स्पष्ट रूप में मिलने लगती है।

(२) अयत्नज अलंकार— ऊपर जिन विकृतियों का वर्णन किया गया है वे मन की सात्विक शक्ति से उत्पन्न होती हैं और उनकी अभिव्यक्ति अंगों के माध्यम से होती है। अतः उन्हें अगज अलंकार कहा जाता है। इनके अतिरिक्त मन में भावना उत्पन्न होने पर कतिपय परिवर्तन बिना प्रयत्न के ही उत्पन्न हो जाते हैं। जिनसे सौन्दर्य में अभिवृद्धि हो जाती है। इनमें चेष्टा नहीं होती। इन सौन्दर्य परक परिवर्तनों को अयत्नज अलंकार कहा जाता है। इनकी संख्या सात है—

(अ) यौवनागम में चेहरे पर नई चमक आ जाती है जो आकर्षण में सबसे बड़ा कारण होती है इस चमक को ही शोभा कहा जाता है।

(आ) जब यौवन जन्म लावण्य में कामवासना का संचार हो जाता है तब शरीर के रंगदग कुछ और ही हो जाते हैं। काम वासना से प्रभावित शोभा कान्ति कहलाती है।

(इ) जब कान्ति का अत्यधिक विस्तार हो जाता है तब उसे दीप्ति कहा जाता है।

शोभा, कान्ति और दीप्ति के अनन्त कवियों ने नख शिख वर्णन या शिखनख वर्णन अत्यन्त चमत्कारिक ढंग से किया है।

(ई) प्रत्येक अवस्था में बिना शृङ्गार के सौन्दर्य की प्रतीति माधुर्य अलंकार कहलाता है। जैसे कालिदास का पद्य—

सराजिमनुविद्ध शैवलेनापिरम्य,
मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्य सक्ष्मीं तनोति ॥
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

(४) मन का सक्षोभ रहित होना । मन के सक्षोभ से आगे में मलिनता आ जाती है । जब आन्तरिक सात्त्विक प्रभाव से सक्षोभ की अवस्था में भी मलिनता की प्रतीति न हो तब वह अयलज अलंकार प्रागल्भ्य कहलाता है ।

(क) औदार्य- निरन्तर विनयशीलता । नायिकाओं का रूठना और इठलाना तो आकर्षक होता ही है, उनकी सरलता भी जादू का प्रभाव डालने वाली होती है । वह भी कुलवती ललनाओं का एक आभूषण है । जैसे अमरुक का पद-

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलं कालं विमारभ्यते
मानधत्स्व धृतिं बभान ऋजुता दूरीकुरु प्रेयसि ॥
सख्यैव प्रतिबोधिता प्रतिपद्यस्तामाह भीतानना ।
नीचैः शस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वर श्रोष्यति ॥

(ए) सादवा अयलज अलंकार है धैर्य नायिकाओं का सटपटाना, चंचल होना इत्यादि जिस प्रकार आनन्द दायक होता है उसी प्रकार उनका धैर्य और दृढ़ता भी आनन्द देने वाली विशेषताये हैं ।

(३) उक्त अयलज ७ अलंकारों के अतिरिक्त कतिपय यलज अलंकार भी होते हैं । भरत ने उनकी सख्या १० बतालाई हैं और दशरूपकवार ने उन्हीं का उल्लेख किया है । किन्तु विश्वनाथ ने उनकी सख्या बढ़ाकर १८ कर दी है । ये १८ अलंकार सक्षेप में इस प्रकार हैं-

(अ) लीला- अंग, वेष, अलंकार, प्रेम और वचनों से प्रियतम की नकल करना लीला कहलाता है ।

(आ) दूसरा यलज अलंकार है विलास । प्रेयसी का उठना बैठना, चलना फिरना तथा किसी प्रकार की चेष्टा करना प्रियतम के आकर्षण का कारण बन जाता है । यदि प्रियतम के अवलोकन से इस प्रकार की चेष्टायें प्रवृत्त हों या उनमें विशेषता आ जाय तो प्रियतम के लिये उनमें और अधिक आकर्षण उत्पन्न हो जाता है । इन चेष्टाओं को विलास करते हैं ।

(इ) विच्छिन्न- जब थोड़ी सी शृङ्गार रचना में कान्ति का अधिक परिपोष हो तब उस अलंकार को विच्छिन्न कहा जाता है ।

(ई) विबोद्ध- स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है कि इष्ट वस्तु का अनादर । कालिदास

के अनुसार 'उल्ट इच्छा होते हुये भी प्रियतम की प्रार्थना में वामाचरण की प्रवृत्ति होती है, सम्भोग सुख की आकाङ्क्षा होते हुये भी अपने शरीर के प्रदान में वे कातर हो जाते हैं। इस प्रकार केवल कामदेव ही उन्हें पीड़ित नहीं करता, अपितु समय को बिताकर वे भी कामदेव को पीड़ित करती हैं।' गर्व के कारण इष्ट वस्तु का अनादर बिम्बोक्त कहलाता है।

(३) किलकिञ्चित- भावनाओं का सघात जब परस्पर विरुद्ध अनेक भावनायें उद्भूत कर हसी, त्रास, रोदन इत्यादि को उत्पन्न करता है तब वहा पर किलकिञ्चित अलंकार होता है। बिहारी का निम्न लिखित दोहा इसका अच्छा उदाहरण है-

बालम वारै सौति के सुनि मनारि विहार।

भौ रसु अमरसु रिस रली रोझ खोझ एक बार ॥

अपने प्रिय का सौत की पारी में परखी गमन सुनकर नायिका के अन्दर विरोधी भावनायें उत्पन्न हुई हैं- उसे सुख मिला क्योंकि उसकी सौत को शोखा दिया गया, उसे दुःख हुआ क्योंकि एक नई सौत तैयार हुई उसे क्रोध हुआ कि यदि प्रियतम को कहीं और जाना या तो मेरे पास क्यों नहीं चला आया सौत की गुणहीनता पर मजाक करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई प्रसन्नता हुई कि प्रियतम मेरी पारी में कहीं नहीं जाता, खास इस बात की हुई कि आदत विगड़ी है अब मेरी पारी में भी कहीं और जा सकता है।'

(क) मोड़पित- हाव वहा पर होता है जहा भाव छिपाने के लिये वान खुबताने जैसा कोई और कार्य करने लग जाया जाय।

(ए) कुटुमित- हाव वहा पर होता है जहा प्रियतम की छेड़ छान से प्रसन्नता का अनुभव होत हुये भी इन्कार किया जाय। उदाहरण के लिय बिहारी का दोहा लाबिय।

भौहनु त्रासति मुर नरति आखिन सौलपटाति।

ऐंच छुडावति वरु इची आगे आवति जाति ॥

नायक ने एकान्त पावर सम्भोग के लिये नायिका का हाथ पकड लिया है नायिका भी हो से डर दिखती है मुर से इन्कार करती है लेकिन आखों से लिपटी जा रही है खींचकर हाथ छुडाने का प्रयत्न करती है किन्तु खिंची हुई आंग का संरक्ता चली आती है।

(ऐ) विध्रम- हाव जहा प्रियतम के अकस्मात आबाने से हृत्बडाहट में नायिका ऊट पटाग काम करने लगता है।

(ओ) ललित- अंगों के सौकुमार्य का अभिव्यक्ति ललित हाव कहलती है।

(औ) मद्- सौभाग्य या जीवन के प्रभाव से जो मढवाला पन आता है वह भी नायिकाओं को सुन्दरता प्रदान करने में कारण होता है।

(अ) विहृत- यदि बात बाने के अवसर पर अवरुद्ध बर के कारण अपना सम्बोध

के कारण गला रुध जाय और बात मुह से न निकले तो वहा पर बिहृत हाव होता है।

(अ) तपन- नायिका को उदीप्त विरह ध्यया भी नायिका को सुन्दरता प्रदान करती और उसे आकर्षक बनाती है।

(क) मौग्ध्य- अलहडपन भी सौन्दर्य में कारण बनता है। यह भी प्रेमी को अपना ओर आकर्षित करता है।

(ख) विक्षेप- यह कई प्रकार का होता है- आभूषणों की अर्थ रचना वृथा इधर उधर देखना और थोडा थोडा रहस्य कथन।

(ग) कुतूहल- किसी अद्भुत वस्तु को देखकर उसको जान लेने के लिये सीमादोत उत्कण्ठा।

(घ) हसित- वैमदलत्व में हसी की आदत।

(ङ) चकित- किसी सत्संगता की दशा में प्रियतम के अकस्मात आ जाने पर भय में परेशान हो जाना।

(च) केति- हसी मजाक की आदत।

नायिका की सहायिकायें

प्राचीन भारतीय नाटकों में अधिकांश राजघराने के भोग विलासमय जीवन का चित्रा किया जाता है जिसमें अनेक रानिया होती हैं जिनके स्तर भी भिन्न भिन्न होते हैं। कोई महादेवी होती है कोई स्वामिनी होती है, उसी के अनुसार उनकी परिचारिकायें भी होती हैं। भरत ने अनेक परिचारिकाओं का उल्लेख किया है जिनमें भोगिनी शिल्पकारिणी नाटकीया अनुचारिका परिचारिका सचारिका मरत्तरी, प्रतिहारि कुमारा स्पक्षिका आदि इसी प्रकार के नारा पत्र हैं। परवर्ती नाटकों में प्रतीहारि इत्यादि मध्यम तथा अधम वर्ग के पात्रों का समावेश किया गया है।

नाट्यशास्त्र ग्रन्थों में शुद्धाधिक सहायिकाएँ एवं सहायिकाओं में दूती का उल्लेख किया गया है जिसमें किम जाति की और किस व्यवसाय का दूतिया उपयोगी हो सकती है इसका विवेचन किया गया है जो अधिक संगत प्रतीत नहीं होता। किसी जाति की कोई स्त्री दूतत्व बर्न कर उसमें बलान्तर सौन्दर्य में क्या अन्तर आता है। यह तो वामशास्त्र का विषय है जिसमें प्रेम के सपेदन के लिये बौन बौन व्यक्ति उपयोगी हो सकते हैं और किनसे सहायता ला जा सकती है इसका विवेचन करना उस शास्त्र की विषय सामा में आता है। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से दूतत्व बर्न कोई भी वरें इसका कोई मतलब नहीं। अतः दूत के केवल दो भेद किम जन चरित्रों स्वयं दूती और परदूती। अपना दूतत्व बर्न अपने आप करना अधिक अच्छा था है और निरापद था। दुम्न के द्वारा दूतत्व बर्न करना कथा कथा पराक्रम में परम्परा हो जाता है।

दूती के गुणों पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है इसकी विशेषतायें हैं— कलाकौशल में प्रवीणता, उत्साह, स्वामिनी के प्रति भक्ति, दूसरे के चित्त को समझने और पारखने की योग्यता, स्मरण शक्ति, मधुर व्यवहार, हसी मजाक की प्रवृत्ति, वस्तुतत्त्व का विशेष ज्ञान और बोलने की निपुणता। शास्त्रकारों के अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम भेद दूतियों के भी होते हैं।

रस के उपकरण

शास्त्रकारों ने रूपक के भेदकों में वस्तु और पात्र के अतिरिक्त रस को भी भेदक माना है। वास्तव में रस ही सभी कृत्यों में प्रधान है, दूसरे सभी तत्वों की संयोजना रस निष्पत्ति के निमित्त ही होती है। अभिनव गुप्त ने तो नाट्य का अर्थ ही रस माना है।

मानवों के अन्तःकरणों में स्थायी भाव विद्यमान रहता है। 'प्राणी इससे शून्य हो ही नहीं सकता।' ये स्थायी भाव ही उपकरणों के संयोग से रस रूपता में परिणत होते हैं। रस सूत्र में रसोपकरण तीन बतलाये गये हैं— विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव। इस सूत्र में स्थायीभाव का प्रयोग नहीं किया गया है। स्थायीभाव ही तो रस बनता है। उसका रसोपकरणों में प्रयोग न होना विज्ञप्ति उत्पन्न करता है। यदि उसे कारण कोटि में नहीं रखना था तो उसे पृथक् भिन्न विभक्ति में रखा जा सकता था— 'स्थायिनो विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पत्ति' ऐसा सूत्र बनाया जा सकता था। दशरूपक कार ने स्थायी भाव को परिभाषा में स्थान दिया भी है—

विभावेरनुभावेऽथ सात्त्विकेऽर्थे भिचारिभिः ।

आनीयमानः स्वाद्यत्वस्थायि भावो रसः स्मृतः ॥

अर्थात् विभाव, अनुभाव सात्त्विक भाव और सञ्चारी भाव के द्वारा आस्वादन के योग्य बनाया हुआ स्थायी भाव रस माना जाता है।

स्थायी भाव को रस सूत्र में शामिल न करने का कटिपय आचार्यों ने यह कारण बतलाया है कि अनुभावों और सञ्चारियों में वासना रूप में स्थायी भाव सन्निहित रहता है अतः उसके पृथक् उल्लेख की आवश्यकता नहीं।

स्थायीभाव के अतिरिक्त सात्त्विक भाव की स्थिति भी कुछ विलक्षण है। धनञ्जय ने स्थायीभाव के समान सात्त्विक भावों का भी समावेश अपनी रस परिभाषा में किया है। सात्त्विक भाव बाह्य अभिव्यक्ति रूप होते हैं, अतः उनका समावेश अनुभावों में होना चाहिये। किन्तु उनकी स्थिति अन्तःकरण में होती है। अतः वे भावों के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार उनकी द्विधा स्थिति है और इसीलिये उनका पृथक् प्रयोग सर्वथा उचित है। भरत ने भी किसी न किसी रूप में सात्त्विकों की पृथक् सूत्र मानी है। उन्होंने ४९ भाव माने हैं— ३३ सञ्चारी, ८ सात्त्विक और ८ स्थायी। इससे वे यह स्वीकार कर लेते हैं कि सात्त्विकभाव सर्वथा पृथक् है— न वे सञ्चारियों में आते हैं और न पूर्ण रूप से

अनुभावों में।

रस सूत्र के व्याख्याकार लोत्स्त ने रस की उत्पत्ति मानी है अर्थात् मिट्टी से बने घड़े के समान सामग्री से रस की भी उत्पत्ति होती है। प्रत्येक कार्य में तीन तत्वों की आवश्यकता पड़ती है— कारण, सहकारी और कार्य। घड़ा के निर्माण में मिट्टी कारण है, कुम्हार दण्ड, चाक इत्यादि सहकारी कारण है और घड़ा कार्य (फल) है। यहाँ पर भी विभाव कारण है, सहायी भाव सहकारी कारण है और अनुभाव कार्य है। किन्तु यहाँ पर भी एक प्रश्न उपस्थित होता है— किसी भी कार्य में फल अन्तिम अवस्था होती है, उसके आगे कुछ और नहीं होना चाहिये। यहाँ अन्तिम अवस्था रस है और कार्य अनुभाव है। यह परस्पर विरोध दिखलाई पड़ता है। तो क्या रस भी कारण कोटि में आ जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि अनुभाव सहायी और स्थायी भावों के कार्य होते हैं और रस को उत्पन्न करने के कारण वे रस की कारणकोटि में ही आते हैं। इसीलिये आचार्य ने ठनका समावेश रस के कारणों में ही किया है। वस्तुतः अनुभावों की स्थिति व्यापार की है— व्यापार कारण से उत्पन्न होता है और कार्य को उत्पन्न करता है। विभावादि कारणों से अनुभाव उत्पन्न होता है और रस रूप कार्य को उत्पन्न करता है। अनुभाव भावों के कार्य और रस के कारण हैं। अन्तिम स्थिति रस ही है अतः वास्तविक कार्यरूपता उत्पत्ति चाद में उसी की है।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि विभाव अनुभाव और सहायी भाव तो बाह्य होते हैं— इनका या तो वाक्य में वर्णन होता है या वे अभिनय के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। किन्तु स्थायीभाव सहृदयों के हृदयों में ही विद्यमान होता है। अतः वह आन्तरिक हो जाता है बाह्य नहीं। बाह्य विभावादि जब आन्तरिक स्थायीभाव को उकसाकर इस योग्य बना दते हैं कि उनमें स्वाद रूपता आ जाती है अर्थात् सहृदयों की ऐसी चेतना उन्मूलित हो जाती है कि उनमें आनन्दानुभव के अतिरिक्त अन्य समस्त संवेदनीय पदार्थ निराहित हो जाते हैं तब वह आनन्द रूपता ही रस बनी जाती है। यह रस वस्तुतः सामाजिक के ही अन्तःकरण में विद्यमान रहता है। इसीलिये सामाजिक को रसिक कहा जाता है। सामाजिक में ही स्थायीभाव और रस मानने का कारण यह है कि रस ज्ञान और आनन्द स्वरूप होता है। ये दोनों धर्म चेतना के हैं और वाक्य अचेतन होता है। अतः अचेतन वाक्य में चेतन धर्म रह ही नहीं सकता। ये तो चेतन सहृदय के हृदय में ही रह सकते हैं। किन्तु वाक्य का भी रसमय कह दिया जाता है। इसका कारण यह है कि वाक्य उस रसमयी चेतना का उन्मूलन करता है। इसीलिये औपचारिक रूप में वाक्य को रस मय कहा जाता है।

रस और उसके उपादानों की विलक्षणता

आचार्यों ने रस की कार्य मानकर उसके कारणों का विवेचन किया है। किन्तु रस

में अन्य कार्यों की अपेक्षा कुछ विलक्षणता होती है। लोक में समस्त कार्य और कारण मूर्त ही होते हैं, किन्तु न तो रस ही मूर्त होता है और न उसके उपादान स्थायीभाव अथवा सहकारी कारण सञ्जाती भाव मूर्त होते हैं। ये मानव हृदय में विद्यमान अमूर्त तत्व हैं। लौकिक पदार्थों घड़े इत्यादि में उनकी सत्ता बनने के बाद सामने आती है और बन जाने के बाद वे कार्यन्वित हो या न हो तब तक बने रहते हैं जब तक उनके कारणों का लोप नहीं हो जाता। सूत से कपड़ा बनता है। वह तब तक बना ही रहता है जब तक सूत रहता है। आशय यह है कि विलक्षणता के होने से उसे कार्यकारणकोटि में नहीं लाया जा सकता। स्थायी भाव और रस दोनों दृष्टिगोचर नहीं होते। हृदय में पहले विद्यमान एव सदा रहने वाले प्रेम इत्यादि अस्थायी तत्व नहीं हैं। रस भी अस्थायी नहीं है। किन्तु रस की अनुभूति हमें तभी तक होती है जब तक उनका आस्वादन किया जाता है। आस्वादन और अनुभूति समाप्त हो जाती है रस समाप्त नहीं होता। अतएव रस के कारण को कारण नहीं कहा जा सकता। वह किसी अमूर्त पदार्थ की रचना नहीं करता बल्कि पहले से ही विद्यमान पदार्थ को प्रतीति गोचर बनाता है। प्रतीति गोचर बनाने के ही हेतु से कारणों को विभाव अर्थात् विभावित करने वाला अर्थात् प्रतीति गोचर बनाने वाला तत्व कहा जाता है। स्थायीभाव रति, क्रोध इत्यादि को विभाव प्रतीति गोचर बनाता है। स्थायी वस्तु के प्रतीति गोचर होने के कारण ही औपचारिक रूप से उसे कार्य कह दिया जाता है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि स्थायीभाव किस प्रकार प्रतीति गोचर बनाया जाता है और वे तत्व कौन से हैं जो उसे प्रतीति गोचर बनाते हैं। स्थायी भाव अन्तरात्मा में रहता है। उसे मूर्त पदार्थों के समान मूर्त रूपता देकर दिखलाया जाना असम्भव है। इसलिये रमण पर उसे किसी व्यक्ति पर डाल कर दिखलाया जाता है। उदाहरण के लिये मान लो कवि या नाटककार प्रेम का आस्वादन कराना चाहता है तो वह प्रेम (रति) को किसी व्यक्ति (नट) पर डालकर दिखलायेगा और उसे वह दुष्यन्त का नाम देगा। इसी प्रकार यदि वह क्रोध को डाल कर दिखलायेगा और उसे भीमसेन का नाम देगा। किन्तु 'दुष्यन्त प्रेम कर रहे हैं' या 'भीमसेन क्रोध में हैं' पर बात सामने आने पर प्रश्न पैदा होगा दुष्यन्त किससे प्रेमकर रहे हैं या भीमसेन किसके प्रति क्रोध में हैं। तब उत्तर होगा— 'शकुन्तला के प्रति या दुरशासन के प्रति। इस प्रकार कारण कोटि में दो तत्व आ गये— जिस पर कोई भाव डाल कर दिखलाया जाता है उसे उस भाव का आश्रय कहा जाता है और जिसके प्रति वह भाव दिखलाया जाता है उसे उस भाव का आलम्बन कहा जाता है। उस भाव को सञ्चाई प्रदान करने के लिये परिस्थितियाँ भी बनानी पड़ती हैं। प्रेम में आलम्बन का सौन्दर्य और उसकी चेष्टायें सबसे बड़ा कारण हैं। प्रेम की जो अनुभूति एवान्न सुरम्य नदी तट, वसन्तकाल में और चन्द्रमा के प्रकाश में की जा सकती है वह गन्दे दुर्गन्धित स्थान पर नहीं की जा सकती। अतः प्रदर्शन में भाव के अनुकूल वातावरण भी बनाना पड़ता है और आलम्बन की ऐसी चेष्टायें भी दिखलानी पड़ती हैं जिससे आश्रय

का भाव लगाकर बहती रह। शकुन्तला की सजा तो दुष्पन्न में प्रेम की भावना प्रकट होगी किन्तु उल्लस दृष्टि भाव में स्थित रहना दुष्पन्न के भाव को कब तक जीवित रख सकेगा? अतः प्रेम की सजादार बचे रहने के लिये शकुन्तला का हस्त बेतला चलना फिरना, उठना बैठना भा दिखलना पड़ेगा। सभी उठते बैठते चलते फिरते हैं किन्तु प्रेमिका के उठने बैठने चलने फिरने की वरत ही कुछ और ही होती है। उनको देख देख कर प्रेमी रोझता है। इस बात से यह होता है कि जिस पर दल पर भाव दिखलना बड़ा है वह अव्यक्त होता है और भाव के अनुकूल परिस्थिति एवं आत्मन की चेष्टाओं उद्योग कही जाती हैं।

प्रश्न यह है कि परिणामतः आत्मन और उसकी चेष्टाओं, एवं आपस की सजा मात्र से तो भावानुभूति और उसने इस निर्भर नहीं हो सक्ता। यह कैसे मानूँ पड़े कि दुष्पन्न के मन में प्रेम जा हुआ है? इसके लिये दुष्पन्न का पुन पुन घूरा का दृष्टि, बेसी बर्ते बर्ता विनोदना का अनुभव करना मन का अभिव्यक्ति करना यह सब भाव अव्यक्त हो सक्ता। जो व्यापार (विषयवस्तु) भावना के उत्पन्न हो जाने के बाद मन में आते हैं और जिसका देखकर दयाब स्नेहन लगता है कि कुछ व्यक्ति किसी विरिष्ट भावना से भा हुआ है वे तथा व्यापार भावना को व्यक्त करते हैं और भाव के उदय के बाद के भाव चलाने हैं अतः उन्हें अनुभाव कहा जाता है अर्थात् भाव के उत्पन्न हो जाने के बाद का चेष्टाओं। इस प्रकार कहा तक मन के इन उपकरणों पर प्रकाश पड़ गया जिस पर दल पर भाव दिखलना जाता है वह आपस होता है जिसके प्रतिभाव दिखलना जाता है उस आत्मन का है। आत्मन की चेष्टाओं भाव का उपपन्न बली होता है अतः व उद्योग कहलगा है भाव के अनुकूल परिस्थिति भा उत्पन्न हो कहा जाता है और आपस का चेष्टाओं अनुभव कहलगा है।

किसी भा वार्द में मृत बर्ता के अभिव्यक्ति बर्तित्व सहजता जाता भी होत है। यह के निमित्त में बहारा चक्र का चलन बना डहा य सब भावनाओं बर्ता होत है। भाव ही अवला शक्ति और अनुभूति प्रान नहीं का सकता। मन में वधा लज्जा वधा हय वधा रहु वधा दुख वधा र्था वधा मर इत्यादि अनेक भाव सम्मिलित रह कर मन की प्रकटता बनत है। य भाव अतः मन प्रकट होते और बर्तित्व होते रहत हैं। सहज बर्त (पुनर्न मिले) और व्यभिचार बर्त (मिष्ट र्थ का कर का अने) व बर्तान इन्ने सहज भाव कहा जाता है। भाव स्थायी भी होता है और सहज भी रहने में अन्य भाव होत है कि एक स्थान भाव से दूसरा स्थान टब जाता है- मन मन पर प्रकट जाता रहत है उत्तर के उदय से भाव रूढ़ हो जाता है। किन्तु सहज भाव दूसरे भाव का बर्तित्व नहीं करत अर्थात् जिस स्थान भाव पुष्ट हो जाता है। शकुन्तला का सहज भाव आत्मन के निकलना दुष्पन्न के प्रेम का बहावना उस समय नहीं बर्ता। य सब तब प्रकट होता है भाव उत्पन्न का यह है कि वार्द भाव शक्ति के अन्तर्धान में

पहले से विद्यमान भाव को आनन्दमय बना देता है और दर्शक वन्य होकर रसास्वादन करने लगता है अथवा यों कहिये कि उसकी सत्ता ही विलीन होकर उसकी रसमय स्थिति बन जाती है। वह क्या है, कहा है यह सब भूलकर रसमय स्थिति में पहुँच जाता है। आशय यह है कि रस आनन्दमय स्थिति है, रस आनन्द रूप ही होता है। विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव इस सान्ग्री से पुष्ट होकर स्थायी भाव ही रस रूपता को धारण करता है और वह भाव बाहरी नहीं परिशीलक के अपने अन्तःकरण में निरन्तर विद्यमान रहता है तथा प्रतीतिगोचर होकर रस रूपता को धारण करता है।

भरत ने नाट्यरस को एक पेय की उपमा दी है। लोक में भी मीठा, खट्टा, चरपरा, इत्यादि ६ रस माने जाते हैं। जिस प्रकार चीनी, काली मिर्च, कपूर इत्यादि डाल कर कोई पेय तैयार किया जाता है उसी प्रकार विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव मिलाकर नाट्यरस बनता है। पेय में सभी द्रव्यों को मिलाकर एक अलग का ही स्वाद बन जाता है, यही नाट्य रस की भी स्थिति है। रसास्वादन के तैयार हो जाने पर विभावादि की पृथक् प्रतीति समाप्त हो जाती है— केवल आनन्दानुभूति ही शेष रह जाती है जो सभी भावों से पृथक् होती है। कभी कभी किसी द्रव्य के अधिक पड़ जाने से उसका स्वाद पृथक् रूप में उमड़कर सामने आ जाता है तब लोग कहने लगते हैं कि अमुक पेय में अमुक वस्तु का स्वाद अधिक तीव्र है— 'यह शर्वत क्या इसमें तो काली मिर्च भर दी गई है' 'इसमें तो चीनी ही चीनी मालूम पड़ती है' इसी प्रकार काव्य रस में भी लज्जा, ईर्ष्या इत्यादि भाव इतना उमड़कर सामने आ जाते हैं कि आस्वादक को सभी की सघटित अनुभूति नहीं होती। उसे प्रतीत होता है कि वह लज्जा या ईर्ष्या जैसे किसी भाव का आस्वादन कर रहा है। इस प्रकार वह रसानुभूति नहीं भावानुभूति कही जाती है। कभी-कभी कोई भाव शान्त होने की स्थिति में आनन्द देता है कभी उदय होने पर, कभी दो भावों की सन्धि में और कभी भाव सघात में आनन्द देने वाले होते हैं। दो एक उदाहरण—

भाव सन्धि

समय समर सकोचवस विवस न ठिक ठहराइ ।

फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाइ ॥

नायक की उपस्थिति में नवोद्भा नायिका वयमवासनाजन्य समान स्तर की उत्कण्ठा और लज्जा जन्य सकोच के कारण विवस होकर स्थिर हो ही नहीं रहती है। बार बार झकती है, फिर छिपती है, छिप छिप कर बार बार झाकती है। यही लज्जा और उत्कण्ठा की सन्धि आनन्ददायक है।

भावोदय

विपुरयो जावक सौति पग निरीख रही भहि भासु ।

सज्ज हसौही नखि तियौ आपी हनी उसासु ॥

सौत के पैर में महावर बिखर गया है यह देखकर नायिका के मन में एक धृणा की भावना जागृत होती है कि कैसी बेशऊर है इसे महावर लगाना भी नहीं आता । थोड़ी देर में पति की अगुलियों में लाली देखी और समझ गई कि इसके पैरों में पति ने लाली लगाई होगी और प्रेम में भर जाने से उसके हाथ बाप गये होंगे, इसलिये महावर फैल गया । यह समझकर आधी हसी में ही उसने गहरी सास ली । यहा पर विषाद का उदय आनन्द दायक है ।

रसोपकरणों का समाहार

आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक नायिका भेद दोनों के सहायक इत्यादि पात्र आ जाते हैं । उद्योपन में नायिकाओं के अलंकार चन्द्रोदय इत्यादि प्राकृतिक सौन्दर्य सम्मिलित हो जाते हैं । अनुभाव चार प्रकार के होते हैं (१) आंगिक अनुभाव जिनमें हाथ पैर आख कान इत्यादि की दौडधूप इत्यादि क्रियाएँ आती हैं । इनका विस्तृत विवेचन भरत ने नाट्यशास्त्र ने किया है । (२) वाचिक अनुभाव— इनमें सवादों का समावेश होता है । (३) आहार्य अनुभाव पहिरावे उढावे द्वारा भावाव्यक्ति । प्रियतम से सयोग की स्थिति में जो शृङ्गार किया जायेगा वह वियोग में नहीं होगा । पहिरावे उढावे को देख करके भी भाव की अभिव्यक्ति हो जाती है और (४) सात्विक भाव मन में किसी भावना के भर जाने पर शरीर पर जो स्वतः प्रभाव पड़ जाता है वह सत्व (मनोभाव) से उत्पन्न होने के कारण सात्विक कहलाता है । ये भाव ८ होते हैं— (अ) स्तम्भ (किसी समाचार को सुनकर शरीर का स्तब्ध रह जाना उसकी गतिविधि समाप्त होकर जकड़न उत्पन्न हो जाना) (आ) पसीना (इ) रोंगटे खड़े हो जाना (ई) आवाज की बदल जाना (उ) शरीर का कापने लगाना, (ऊ) घेहरे का रंग डलर जाना या बदल जाना (ए) आसू आ जाना और (ऐ) मूर्छा । सञ्चारी भाव निम्नलिखित ३३ होते हैं—

निर्वेद (१) ग्लानि (२) शङ्काख्या (३) स्तथासूया (४) मद (५) क्रमा (६) ।

आलस्य (७) धैर्य दैन्यश्च (८) चिन्ता (९) मोह (१०) स्मृति (११) धृति (१२) ॥

क्रोडा (१३) विषाद (१४) हर्ष (१५) आवेगो (१६) जडता (१७) तथा ।

गर्वो (१८) विषाद (१९) आत्मकुप्य (२०) निद्रापस्मार (२२, २३) एव च ॥

मुग्न (२३) वियोगोन्मत्तता (२४ २५) मयोपमा (२७) ।

मति (२८) व्याधि (२९) स्तब्धोन्माद (३०) स्तब्धभरणमेवच (३१)

ज्ञानद्वेष (३२) विवर्कश्च (३३) विज्ञेयाव्यभिचारिण ।

असिद्धिभय भावा ममाख्यातास्तुनामन ॥

१ गन्धो भाव—

रस (१) हासश्च (२) शाब्दश्च (३) क्रोधात्माहो (४, ५) भय (६) तथा ।

जुगुप्सा (७) विस्मयश्चेति (८) स्थायिभावा प्रकीर्तिता ॥

इन्हीं स्थायी भावों के आधार पर मुनि ने ८ रस माने हैं— शृङ्गार हास्य, करुण रौद्र, वीर, भयानक वीभत्स और अद्भुत। कतिपय आचार्यों ने शान्त, वात्सल्य इत्यादि अतिरिक्त रसों को भी कल्पना की है। किन्तु मुनि ने इन्हीं रसों को स्वीकृत किया है और ये ही अभिनय के अनुकूल होकर नाट्य रस कहे जाते हैं। सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त शान्त रस काव्यरस हो सकता है किन्तु वैराग्य के अभिनय में कोई विलक्षणता नहीं होती। अतः नाट्य में उसका महत्व नहीं है। वात्सल्य इत्यादि में रति स्थायी दशा तक न पहुँचकर भावमात्र होता है। अतः शृङ्गारदि ८ रस ही नाट्य रस कहे जाने के अधिकारी हैं। आचार्यों ने माना है कि इन रसों में भी शृङ्गार और वीर दो ही रस अङ्गी (प्रधान) रस बनने के अधिकारी हैं। अद्भुत रस निर्वहण में प्रयुक्त किया जाना चाहिये। शेष रस अङ्गी रस नहीं होते वे केवल सहायक (अङ्गरस) ही हो सकते हैं। कुछ लोगों ने भक्ति, अद्भुत इत्यादि अन्य रसों को भी रसराजता स्वीकार की है। किन्तु वर सब विचार काव्य रस के विषय में किया जा सकता है, नाट्य रस के अनुकूल सिद्ध नहीं होता।

कतिपय नाट्य रूढ़ियाँ

नये प्रवर्तनों में रूढ़ि लेना मानव का स्वभाव है। सर्वप्रथम विवेक के साथ मानव नई प्रवृत्ति को जन्म देता है अपने ही प्रवर्तन पर रौझता है और दूसरों द्वारा उसकी प्रशंसा भी कराना चाहता है तथा प्रशंसा सुनकर प्रसन्न भी होता है। उसकी सफलता में प्रभावित होकर दूसरे लोग भी उसका अनुसरण करने लगते हैं क्योंकि अनुकरण भी मानव स्वभाव का एक अंग है। धीरे धीरे अनेक लोगों के द्वारा अनुकरण विये जाने से एक परम्परा बन जाती है। लोग अपनी या दूसरे की कृतियों को उसी मापदण्ड से तालते हैं और उसके व्यङ्ग्य को दोष कहने लगते हैं। जब यह परम्परा बहुत समय तक चलता रहता है तब वह रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है। प्रवर्तन काल में जिस विवेक की प्रशंसा मूल कारण बनी था वह विवेक सर्वथा तिरोहित हो जाता है और रूढ़ि ही समाज का श्रेष्ठ एवं नियन्त्रक शक्ति बन जाती है। समाज के आचार विचार पहिरावा उढ़ावा खाना पीना पूजा पाठ सभी कुछ रूढ़ि पर ही आधारित होता है। रूढ़ियाँ टकराता भा है उनमें सुधार भी होता है। फिर नई रूढ़ियाँ जन्म लेती हैं। किन्तु तिरोहित हुई रूढ़ियाँ भी अपना कुछ प्रभाव छोड़ जाता है यदि नहीं तो भी उनका ऐतिहासिक महत्व तो रह ही जाता है।

नाट्य के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की अनेक रूढ़ियाँ उद्भूत हो गईं थी जिनका अध्ययन कर भरत तथा दूसरे नाट्यशास्त्रकारों ने उल्लेख किया है। इनका परिपालन भा रहा है और अब भी उनका किसी सीमा तक पालन किया जाता है। उनका परिचय मनोज्ञक भा है और ज्ञानवर्धक भी।

नाटक का नामकरण

आचार्यों का निर्देश है कि नाटक का नाम उसके कथानक के आधार पर होना चाहिये जिससे नाम सुनते ही नाट्यवस्तु का सकेत प्राप्त हो सके। वेणोसहार का नामकरण इसी आधार पर हुआ है। द्रौपदी ने सभा में चोटी खींचे जाने के विरोध में प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह तब तक चोटी नहीं बाधेगी जब तक दुर्योधन का रक्त उसके केशों पर नहीं पड़ेगा। इस नाटक का विषय है द्रौपदी की चोटी बाधना। इसी आधार पर इसका नाम वेणोसहार रखा गया है जो विषय वस्तु की ओर सकेत करता है। मुद्राराक्षस का विषय है मुद्रा (अगूठी) के प्रयोग से राक्षस पर अधिकार करना। अतः मुद्राराक्षस नाम विषयवस्तु का सकेतक है। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला की अगूठी पहिना कर गन्धर्व विवाह किया गया जो एक अभिज्ञान (निशानी) था। उसके गुम हो जाने से उसका परित्याग सम्भव हुआ। मृच्छकटिक में चारुदत्त की मिट्टी की गाड़ी के स्थान पर सोने की गाड़ी बनाने के लिये वसन्तसेना द्वारा सोने के जेवर दिये जाने की ओर सकेत किया गया है। मिट्टी की गाड़ी से चारुदत्त के उदार चरित्र पर प्रकाश पड़ता है और सोने के जेवर दे देने से वसन्त सेना का सच्चा प्रेम व्यक्त होता है यही नाटक का मुख्य विषय है। उत्तर रामचरित महावीर चरित, अभिषेक नाटक इत्यादि का नामकरण भी वस्तु निर्देश के सिद्धान्त पर ही हुआ है।

प्रकरण के विषय में शास्त्र की मान्यता है कि नायक और नायिका के नाम के आधार पर नामकरण किया जाना चाहिये। मालविकाग्निमित्र मालतीमाधव इसी प्रकार के नाम हैं। मृच्छकटिक भी एक प्रकरण ही है, किन्तु इसके विषय में इस नियम की अवहेलना हुई है। विश्वनाथ ने नाटिका और सट्टक इत्यादि का नामकरण नायिका के नाम पर रखने का निर्देश दिया है— रत्नावली, कर्पूरमञ्जरी इत्यादि नाम इसी निर्देश के अनुसार रखे गये हैं। इत्यादि से विश्वनाथ का क्या अभिप्राय है ज्ञात नहीं होता। सम्भवतः वे सभी उपरूपों का नामकरण नायक नायिका के नाम के आधार पर ही रखने के पक्षपाती थे। इसी नियम के अनुसार रत्नमदनिका, देवीमहादेवम्, चित्रमोर्वशी इत्यादि नाम भी रखे गये। कुछ उपरूपों के नाम प्रधान वस्तु के आधार पर भी पाये जाते हैं जैसे यादवोदय वासिष्ठ कहीं कहीं नायिका के नाम पर भी नामकरण हुये हैं जैसे नर्मवती विलासवती इत्यादि। इससे सिद्ध होता है कि नाटक के नामकरण के विषय में नियमों के घालन में दृढ़ता नहीं बरती गई।

नाटक के नामकरण में जहाँ विषय वस्तु के अनुसार नाम रखने के विधान हैं वहाँ इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रधानता किस तत्व की है। कहीं कहीं चरित्र चित्रण और पात्र प्रधान होता है जिसके चारों ओर कथावस्तु घूमती है। ऐसे नाटकों में पात्र का नाम किसी न किसी रूप में शामिल किया जाता है जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल, मुद्राराक्षस इत्यादि। कहीं ठरेरयमूलक शब्द के द्वारा नामकरण किया जाता है जैसे उद्वेग मुद्राद्वय

इत्यादि। कहीं कहीं प्रतीकात्मक नाम रखे गये हैं और कहीं रूपकात्मक नाम भी हैं। नाटक के नामकरण में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि दर्शक नाट्यवस्तु का कुछ अनुमान लगा सके नाट्य वस्तु के आस्वादन के लिये तत्पर हो सके।

पात्रों के नामकरण

इस विषय में कोई परिनिष्ठित शास्त्रविहित परम्परा विस्तृत रूप में नहीं पाई जाती। नाटकों में प्रतिष्ठित कथानक होता है, अतः उसमें प्रतिष्ठित नामावली का ही प्रयोग किया जाता है। यह दूसरी बात है कि मूल कथानक में ही अन्वर्धता का पालन किया गया हो। रावण का अर्थ है रुलाने वाला। यह चरित्र व्यञ्जक नाम है, इसी प्रकार विभीषण नाम भी राक्षस चरित्र का द्योतक है। इसी प्रकार दुर्योधन इत्यादि भी चरित्र द्योतक नाम हैं। कभी कभी दो पात्रों के नाम सम्बन्ध सूचक रखे जाते हैं। उदात्त पात्रों के नाम उदात्त और अनुदात्त पात्रों के नाम अनुदात्त रखे जाने चाहिये। प्रहसन में पात्रों के नाम हास्य जनक होने चाहिये और उनके उपनामों में भी हास्य की व्यञ्जना होनी चाहिये। क्रूर तथा दुष्टों के नाम क्रूरता व्यञ्जक रखे जाते हैं और सुन्दरता की व्यञ्जना के लिये सुकोमल नाम रखने की प्रथा है।

नामकरण में जहाँ पात्रों की विशेषता पर ध्यान रखा जाता है वहाँ इस का भी ध्यान रखा जाता है कि नाम में स्वाभाविकता बनी रहे। प्रांतों और प्रदेशों के अनुसार भी नाम रखने की प्रथा है। पञ्जावियों बंगालियों दक्षिणात्यों के नामों में अपना अपना स्वरूप रहता है, रूसियों, चीनियों और अग्रेजों के नाम अपनी तरह के होते हैं।

नाट्यदर्पण में कल्पनीय नामों का कल्पना प्रकार यह बतलाया गया है कि शूर का नाम पराक्रम सूचक होना चाहिये जैसे भीम, अरिर्मर्दन, दुर्योधन इत्यादि। बलिये का नाम दत्तान्न होता है जैसे सागरदत्त समुद्रदत्त इत्यादि। कभी कभी बलिये का नाम व्यवसाय के अनुरूप भी हो सकता है जैसे धनपति। ब्राह्मण का नाम गोत्र के आधार पर रखा जाता है जैसे शाण्डिल्य, गार्ग्यायण इत्यादि। स्त्री पात्र का नाम शुभ सूचक होना चाहिये जैसे शीलवती प्रियम्बदा, सुदक्षिणा, सुलक्षणा, विनयवती, विजयवती इत्यादि। सौन्दर्य बोधक नाम रखने की प्रथा है जैसे शृङ्गारमञ्जरी, चन्द्रकला, मदनमञ्जरी आदि। वेश्या का नाम दत्ता या सेना पर रखा जाना चाहिये जैसे देवदत्ता, वसन्तसेना। दासी या दूती के पुष्पवाचक नाम होते हैं जैसे मालिनी, मल्लिका इत्यादि। दूत या दास का नाम कार्यसिद्धि सूचक रखा जाता है जैसे सिद्धार्थक। विदूषक का नाम कुसुम, वसन्त इत्यादि के सूचक रखे जाते हैं।

नाटकों में भाषा प्रयोग

नाटकों में अनेक भाषाओं का प्रयोग पाया जाता है। इस विषय में भरत ने तथा नाट्यशास्त्र के दूसरे आचार्यों ने नियम बनाये हैं। भरत ने चार प्रकार की भाषाओं का

उल्लेख किया है- अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा और योन्यन्तरी। वस्तुतः ये वैकल्पिक चारों प्रकार की भाषायें सस्कृत और प्राकृत रूप ही हैं, केवल जनता के भेद से इन भाषाओं का वैकल्पिक रूप बन जाता है। अतिभाषा मनुष्य के स्तर से ऊपर की भाषा होती है। इसमें वैदिक शब्दों का बाहुल्य होता है और इसे देवता प्रयोग में लाते हैं। आर्यभाषा श्रेष्ठजनों की भाषा होती है। इसे विशेष रूप से राजा लोग बोलते हैं। यह सस्कार की हुई (सस्कृत) भाषा होती है। जातिभाषा सामान्य व्यक्तियों की होती है। रामायण पर इसका प्रमुख रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रदेशों की अनेक भाषाओं का प्रयोग रहता है और म्लेच्छ प्रदेशों में बोले जाने वाले शब्दों का भी समावेश हो गया है। योन्यन्तरी भाषा दूसरे पशु पक्षियों की भाषा होती है। इस प्रकार की भाषा के स्वरूप और प्रयोग के विषय में न तो भरत ने, न किन्हीं अन्य नाट्यशास्त्रीय आचार्यों ने कुछ कहा है और न इसका प्रयोग ही उपलब्ध नाटकों में कहीं मिलता है। आजकल बच्चों की फिल्मों में कोई मनुष्य ही पशुपक्षी का रूप धारण कर अभिनय करता है और प्रारम्भ में उस पशु की नकल कर कुछ स्वर निकाल देता है तब सार्थक बातचीत करता है। ज्ञात होता है मानो वह पशु ही अभिनय कर रहा हो और सवाद बोल रहा हो। हो सकता है नाट्यशास्त्र की रचना के समय में भी ऐसी कोई व्यवस्था रही हो जिसका प्रचलन बाद में लुप्त हो गया हो।

अतिभाषा और आर्यभाषा सम्भवतः शुद्धरूप में भारतीय आर्यों की भाषा रही होगी। आचार्य ने इसके लिये सस्कृत शब्द का प्रयोग नहीं किया है। भोजराज ने अतिभाषा को श्रौत (वैदिक) भाषा आर्य भाषा को पौराणिक और जाति भाषा को लौकिक भाषा कहा है।

जाति भाषा

यह नाटकों की सामान्य भाषा है जिसका प्रयोग नाटकों में किया जाता है। मूल रूप में यह दो प्रकार की होती है- सस्कृत और प्राकृत। वस्तुतः अतिभाषा और आर्यभाषा भी सस्कृत का ही एक रूप हैं। इन भाषाओं का कोई नमूना वर्तमान उपलब्ध नाटकों में कहा दिखलाई नहीं देता। पता नहीं इन भाषाओं का कोई स्वरूप स्थिर था और इनका प्रयोग प्राचीन काल के नाटकों में प्रचलित था या ये केवल मुनि की कल्पना प्रसूत भाषायें ही थीं। मुनि (भरत) ने जातिभाषा पर ही विस्तृत प्रकाश डाला है और उसके दो प्रकार बनलाकर उनके प्रयोग स्थलों का परिगणन किया है। वास्तव में रामायण की प्रमुख भाषा जाति भाषा ही है जिनमें दूसरे द्वीपों और प्रदेशों के निवासियों की भाषा के शब्दों का भी मनमाना समावेश हो गया है।

सस्कृत भाषा

यह एक प्रकार की जाति भाषा है जो विधि निषेधों से जकड़ी होने के कारण

परिनिष्ठित हो गई है और सभी प्रदेशों में बोली और समझी जाती है। भाषाओं के सामान्य नियम के अनुसार विभिन्न प्रदेशों में उच्चारण भेद भले ही हो गया हो स्वरूप भेद नहीं है तथा सामान्य व्यवहार की भाषा (लिंगुआफ्रान्का) के रूप में व्यवहार के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

संस्कृत साक्षर संस्कृति (Culture Literate) की भाषा है जिसे प्राकृत (Prakrit) भाषा से भिन्न नागरिक भाषा कहा जा सकता है। जो लोग धीरे हैं अर्थात् जिनका अपनी अन्तरात्मा पर पूर्ण अधिकार है और जो स्वयं नियन्त्रित (self controlled) हैं वे चाहे उदात्त हों, उद्धत हों, ललित हों या शान्त हों मुनि के अनुसार रगमञ्ज पर उनकी संस्कृत भाषा ही होती है। भ्रमणशील परिव्राजकों, मुनियों, बौद्धों, ईमानदार शुद्ध निपुण श्रोत्रियों या जिन लोगों ने वेद इत्यादि का अध्ययन कर लिया है उन सबकी भाषा संस्कृत ही होती है। यद्यपि बौद्धों की धार्मिक भाषा पाली है किन्तु संस्कृत में भी अश्वघोष, नागार्जुन, आर्यदेव वसुबन्धु इत्यादि उच्चकोटि के विद्वान् हुये हैं। बौद्ध साहित्य के अनेक ग्रन्थ संस्कृत में भी लिखे गये हैं और अश्वघोष की खण्डित उपलब्ध रचना शारिपुत्र प्रकरण में भगवान् बुद्ध एवं उनके शिष्यों द्वारा संस्कृत का ही प्रयोग किया गया है। श्रोत्रिय किसी पढ़े लिखे विद्वान् को ही कहा जाता है। भारत ने उनकी भाषा संस्कृत ही रखी है जो स्वाभाविक है, किन्तु उनके लिये भारत ने 'शुद्ध' विशेषण दे दिया है जिसका आशय यह प्रतीत होता है कि जो लोग अपने अध्ययन और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र तक ही सीमित हैं उनकी भाषा संस्कृत ही होती है। जो लोग पढ़ लिखकर किसी सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाते हैं जिनकी भाषा सम्प्रदाय के अनुसार भिन्न होती है। उनको अधिकार है कि वे अपने सम्प्रदाय की भाषा या संस्कृत दोनों में आवश्यकतानुसार किसी भी भाषा का प्रयोग कर सकते हैं।

रानियों, वेश्याओं, महिला कलाकारों को भी अवसर पड़ने पर संस्कृत प्रयोग का अधिकार है। भारत का कहना है कि रानिया राजा का प्रतिरूप होती है। उन्हें राजा को परामर्श भी देना होता है, जब वे राजनीति की सन्धि विग्रह इत्यादि समस्याओं पर चर्चा करती हैं, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि की गतियों, पक्षियों की बोलियों तथा ऐसे ही शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर बातें करती हैं अथवा राजा की उन्नति या विपत्ति में परामर्श देना होता है तब उन विषयों और उन अवसरों पर रानी की संस्कृत बोलने का तभी अधिकार है जब वह पढ़ी लिखी हों और संस्कृत बोल सकती हों। वेश्यायें भी इसी प्रकार संस्कृत बयावसर प्रयोग कर सकती हैं। मृच्छकटिक में वसन्तसेना को संस्कृत की कुछ भूमिका दी गई है।

मनोरञ्जन के लिये तथा जनता को प्रसन्नता देने के लिये टूटी फूटी संस्कृत बोली जा सकती है। इसी प्रकार जो लोग कला की शिक्षा ग्रहण करते हैं या जो वेश्यायें राजा या दूसरे लोगों को प्रसन्न करना चाहती हैं उन्हें भी ऐसी संस्कृत बोलने की भूमिका दी जाती है जो आसानी से समझी जा सकती हो और जिसमें व्याकरण की जटिलतायें न

हों। (आजकल के उपलब्ध संस्कृत नाटकों में इसके उदाहरण नहीं मिलते।)

अप्सरसों की शुद्ध भाषा संस्कृत ही होती है क्योंकि उनका सम्पर्क देवताओं से होता है। अप्सराओं द्वारा संस्कृत बोले जाने का कोई उदाहरण वर्तमान साहित्य में नहीं मिलता। विक्रमोर्वशीय में उर्वशी ने भी भाषा प्राकृत ही है। ज्ञात होता है भरत के सामने भी इसका कोई उदाहरण नहीं था। क्योंकि उनका कथन है कि अप्सराओं की संस्कृत भाषा आम्याय (वैदिक इत्यादि पवित्र साहित्य) द्वारा सिद्ध है। इसका आशय यही है कि भरत ने प्राचीन साहित्य में इस विषय का कोई उल्लेख देखा होगा उसी आधार पर इसका उल्लेख कर दिया होगा भुनि का कहना है कि आम्याय के प्रतिपादन को लोक मानता ही है। किन्तु जब अप्सरायें मृत्यु लोक में विवरण करें या किसी मानव की पत्नी बनें तब उन्हें प्राकृत की ही भूमिका दी जानी चाहिये।

प्राकृत भाषा

प्राकृत भाषा ग्रामीणों एवं अशिक्षितों, निम्नकोटि के पात्रों की भाषा है। किन्तु उसके लिये एक नियम यह भी है कि विशेष कारण के उपस्थित होने पर उच्चकोटि के पात्र भी प्राकृत बोल सकते हैं। उदाहरण के लिये महाभारत में अर्जुन जब वृहन्नला के रूप में विसाटपुर में रह रहे थे वे प्राकृत ही बोलते थे। अच्छे घराने के पात्र यदि दरिद्रता के कारण शिधा प्राप्ति न कर सकें हों तो उन्हें प्राकृत ही बोलनी चाहिये।

जो उच्चकोटि के लोग राजसत्ता के भेद में मस्त हैं और पढ़ने लिखने को अनावश्यक मानते हैं या अच्छे घराने के लोग गरीबी के कारण पढ़ लिख नहीं सके हैं उन्हें प्राकृत भाषा ही बोलनी चाहिये। जो लोग कार्यवश विभिन्न परिस्थितियों और व्यवसायियों के लोगों का रूपधारण कर लेते हैं या जो जैन सन्यासी होते हैं या जो सामान्य तपस्वी होते हैं, जो भिक्षुओं के दल में विचारण करते हैं उनको प्राकृत की ही भूमिका दी जानी चाहिये। विभिन्न छलपूर्ण रूप धारण करने वालों से मुनि का अभिप्राय है उच्चकोटि के लोग जो कार्यवश किसी निम्न पात्र का रूप धारण कर लेते हैं वे अपने छलपूर्ण रूप की सच्चाई के लिये उस स्वरूप के अनुकूल निम्न स्तर की भाषा ही बोलते हैं। मुद्राराक्षस में विसाट गुप्त सपेरे का रूप धारण करके गुप्तघरी का कार्य करने आया था अतः उसकी भाषा प्राकृत ही थी। इसी प्रकार ब्राह्मण भिक्षु बनकर इन्द्र जब वर्ण से कुडल कवच की भिक्षा मागने आये थे तब वर्णाभरण में घास ने उनकी भाषा प्राकृत ही रक्खी थी। सन्यासियों के जो दल गोल बनाकर जनता में घूमा करते हैं, ये आजीविका के लिये सन्यासियों में शामिल हो जाते हैं उनकी भाषा प्राकृत ही होती है। जैनियों की तो धार्मिक भाषा भी प्राकृत ही थी, अतः उनके प्राकृत बोलने का निर्देश दिया गया है। इसी प्रकार जादू का खेल दिखाने वाले भी प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं। पन्डितों में पूजा करने वाले (पुजारी लोगों) की भाषा प्राकृत होती है। ठगान, पागल, चालक इन सबका अभिनय करने

वाने इसी प्रकार नीच प्रहों से प्रस्त लोगों की (जिन्हें पिशाच इत्यादि कोई नीच ग्रह पकड़े हुये है) भाषा प्राकृत ही होती है। इससे सिद्ध होता है कि जिन पर उतम ग्रह देव गन्धर्व इत्यादि का प्रभाव होता है वे लोग संस्कृत ही बोलते हैं। स्त्री, नीच जाति तथा नपुंसकों की भाषा प्राकृत होती है।

प्राकृत की उपभाषाये

उच्च जातियों में संस्कृत भाषा प्रतिष्ठित है। उसके बाद प्राकृत भाषाओं में शौरसैनी का नम्बर आता है। उच्चवर्ग में जहां प्राकृत का विधान है वहां शौरसैनी भाषा बोली जानी चाहिये। यहां यह ध्यान देने वाली बात है कि शौरसैनी उत्तर प्रदेश की भाषा है जो मगध के आसपास बोली जाती है। यह संयोग की बात है कि जब बौद्ध साहित्य के लिये पाली अपनाई गई तब शौरसैनी भाषा को ही स्वीकार किया गया। फिर जैन साहित्य के लिये महाराष्ट्री भाषा स्वीकार की गई उसमें भी प्रभुत्व शौरसैनी का ही था। उसका कारण यह था कि बुद्ध और महावीर का प्रचार क्षेत्र ब्रह्म में उत्तर भारत ही था और उस समय उत्तर भारत की प्रमुख तीन भाषायें ही थीं बिहार में मागधी, उत्तर प्रदेश में शौरसैनी और पश्चिम में पैंशाची। शौरसैनी मध्य में पड़ती थी जिसका एक छोर मागधी से और दूसरा पैंशाची से मिलता था। अतः प्रचार के लिये शौरसैनी को ही महत्व दिया गया है और उसे उच्चलोगों की भाषा बतलाया गया है। शायद इसका कारण यही था कि यह अधिक क्षेत्र में बोली समझी जाती थी। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल एवं रीतिकाल में ब्रजभाषा का ही महत्व रहा और सुदूर प्रदेश में स्थित नानक तथा उनके अनुयायी सिख गुरुओं ने ब्रजभाषा को ही अपनाया। जब मुस्लिम शासकों के सामने भाषा का प्रश्न आया तब प्रशासनिक कार्यों के लिये उत्तर प्रदेश की ही एक दूसरी खड़ी बोली को अपनाया जिसने आगे चल कर मुस्लिम शासकों के हाथ में पड़कर उर्दू का रूप धारण किया। हिन्दी में गद्य लेखन और बाद में कविता के लिये भी यही खड़ी बोली हिन्दी के नाम पर अपनाई गई जो स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। इस प्रतिष्ठा का कारण बहुदेश व्यापी होना ही है। वैसे तमिल और बंगला का साहित्य कम नहीं है। आशय यह है कि प्राचीन काल से उत्तर प्रदेश की भाषा ही प्रतिष्ठित पद की अधिकारिणी रही है, पहले शौरसैनी थी, अब खड़ी बोली है। भरत द्वारा अनुमोदित उत्तर भारत की दो अन्य भाषाये हैं— मागधी और अर्धमागधी। मागधी निम्न स्तर के लोगों की भाषा है और अर्ध मागधी मध्यश्रेणी की है। मागधी भरत के अनुसार राजघरानों में नौकर चाकरों की भाषा मानी गई है। अर्धमागधी भाषा शौरसैनी और मागधी के बीच की भाषा है। इसका प्रयोग राजा के कर्मचारियों, राजपुत्रों और सेठ लोगों द्वारा किये जाने का विधान है।

भरत ने कहा है कि नाटकों की रचना प्रायः प्रत्येक प्रदेश में की जाती है। अतः

विभिन्न प्रदेश के लेखकों को अधिकार है कि वे चाहे उक्त योजना को स्वीकार करें या प्राकृत के विषय में अपने शान्तों की भाषा का प्रयोग करें। इस विषय में भारत ने प्राकृत की ७ उपभाषाओं का उल्लेख किया है— मागधी, आवन्ती प्राच्या शौरसेनी अर्धमागधी बाल्लीका और दाक्षिणात्या। शौरसेनी मागधी और अर्धमागधी का स्तर ऊपर बतलाया गया है। अन्य भाषाओं के विषय में भारत का निर्देश है— कि इन भाषाओं का प्रयोग अपने प्रदेश के अनुसार करना चाहिये। खसों (उदीच्यों) की भाषा बाल्लीका है— व्यवसाय के या अपनी भूमिका के अनुसार भाषा विभाग किया गया है— विदूषकों की भाषा प्राच्या सैनिक नगर रक्षकों (पुलिस के अधिकारियों) की भाषा दाक्षिणात्या इसी प्रकार विभिन्न व्यवसायों में नियुक्त अनेक लोगों की भाषा का भारत ने निर्देश किया है।

उक्त सात भाषाओं के अतिरिक्त भारत ने विभाषाओं का भी उल्लेख किया। अभिनव गुप्त के अनुसार संस्कृत का अपभ्रंश प्राकृत भाषायें होती हैं जिनको केवल भाषा के नाम से अभिहित किया जाता है। भाषाओं की अपभ्रंश विभाषायें होती हैं जिनके बोलने वाले उन उन प्रदेशों की खाहों के निवासी निम्नस्तर का व्यवसाय करने वाले होते हैं।

भारत का निर्देश है कि गंगासागर के आस पास के जो प्रदेश हैं उनके लोगों की 'एकार' बहुत भाषा बोलनी चाहिये सुराष्ट्र, अवन्ति देश और वेतवा के उत्तर के प्रदेशों में 'धकार' बहुत भाषा का प्रयोग किया जाता है। जो लोग हिमालय सिन्धु और सौवीर प्रदेशों में रहते हैं वे भाषा में उ का प्रयोग अधिक करते हैं। जो लोग चवत के किनारे या अर्बुद एवम् शङ्खला में निवास करते हैं उनकी भाषा में आ की प्रधानता रहती है।

प्रदेशों के अतिरिक्त भारत ने व्यवसायों के आधार पर भी भाषा प्रयोग के नियमों का निर्देश दिया है। जहाँ जा भाषा बोली जाती है उसी का प्रयोग रंगमञ्च पर करने का निर्देश है। ज्ञात होता है उस समय विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न व्यवसाय अनपाये जाते थे। यह एक ऐतिहासिक अध्ययन भा है। इसीलिये प्रदेश विशेष की भाषायें विभिन्न व्यवसायों के लिये बतलाई गई हैं। इस प्रकार साङ्गोपाङ्ग विवेचन कर भारत ने लिख दिया है यहाँ हमने जा कुछ नहीं कहा है उस (अपने समय का स्थिति के अनुसार) स्वयं समझ लेना चाहिये। भाषाओं की प्रदर्शानुसार बालन का मन्तव्य यही है कि नाटक की जन साधारण का अधिक से अधिक प्रतिनिधि बनाया जाय। यह नाट्यकला का एक बहुत बड़ा उद्देश्य है जिसका प्रत्येक कलाकार का पालन करना चाहिये।

सम्योचन के प्रकार

भारत ने नाट्यशास्त्र में और उनके अनुकरण पर दूसरे आचार्यों ने सम्योचन के उन प्रकारों पर प्रकाश डाला है अभिनेता जिन सम्योचनों से अपने सम्योच्य को पुकारते हैं। साहित्यदर्पण में भारत की स्थापनाओं को समाहित रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके

अनुसार राजा को नौकर चाकर स्वामी कह कर पुकारते हैं, अधम पात्र भट्ट कह कर संबोधित करते हैं। ऋषि लोग राजा को राजन् कह कर पुकारते हैं या वंश परम्परा मूलक संबोधन प्रयुक्त करते हैं जैसे हे राघव । हे दाशरथे । सामान्य स्त्री पुरुष राजा को 'महाराज' कह कर संबोधित करते हैं। ब्राह्मण लोग राजा को 'हे राजन्' कहकर या नाम लेकर संबोधित करते हैं। राजा लोग इसका बुरा नहीं मानते, क्योंकि ब्राह्मण पूज्य होते हैं। राजा को विदूषक तथा दूसरे राजा 'वयस्य' या 'राजन्' कहकर पुकारते हैं। अधम पात्रों द्वारा राजा को भट्टी कहा जाता है तथा दूसरे व्यक्तियों द्वारा देव कहा जाता है। संबोधन में आर्य शब्द का प्रयोग बहुत अधिक किया जाता है। छोटा भाई बड़े भाई को तथा अधम पात्र मन्त्री को आर्य कह कर पुकारते हैं। स्त्रियों के लिये विभिन्न संबोधन प्रयुक्त होते हैं- द्विज लोगों द्वारा दलती आयु वाली पत्नी को आर्या शब्द से संबोधित किया जाता है। इसी प्रकार सन्यासिनी, जननी, वृद्धा और पूज्या को भी आर्या शब्द से पुकारते हैं। जननी और वृद्धा को अम्बा कहकर भी पुकारा जाता है। और पूज्या को भवती भी कहा जाता है। पुरोहित तथा सारथवाह अपनी युवती पत्नी को भी आर्या कहते हैं। पुरुष उपभोग्या स्त्री को प्रथम परिचय में भद्रा कहकर पुकारते हैं। पत्नी को प्रिया कहा जाता है अथवा देवी शब्द से भी संबोधित किया जाता है। राजा मुख्य पद पर अभिषिक्त रानी को तथा अन्य व्यक्ति भी पटरानी को देवी कहते हैं। विदूषक रानी या चेटो को भवती कहकर पुकारते हैं। राजा की सभी पत्नियों को परिजन लोग स्वामिनी, भट्टिना या देवी कहते हैं। नौकर चाकर यौवनवती वेश्याओं को अञ्जुका और वृद्धा वेश्याओं को अता कहते हैं। सहेलिया एक दूसरे को हला वर कर पुकारती हैं। दूता या इसा प्रकार की अनुत्तम स्त्री को हजे कहा जा सकता है। देवता और तपस्विनी को भगवता कहा जाता है। इसी प्रकार पूजनीय, देवर्षि और विद्यावान् व्यक्तियों की पत्नियों को भी भगवती कहा जाता है। राजकुमारी को भर्तृदारिका और स्त्रियों को किसी सम्बन्ध से पुकारा जाता है जैसे आमुक्की पुत्री आमुक् की पत्नी आदि। स्त्रियों द्वारा अधिक अवस्था वाले राजा पति को 'आर्य' कहा जाता है और पत्नी अपने दलती आयु वाले पति को आर्य कहती हैं। अधिक अवस्था वाले राजा पति को पत्नी महाराज कहती हैं। अन्य सभा पत्नियां अपने पतियों को आर्यपुत्र कहती हैं। आर्यपुत्र में आर्य शब्द का अर्थ स्वशूर है। युवा राजा को रानिया 'आर्यपुत्र' कहती हैं। इस शब्द का प्रयोग पति की यौवनावस्था को सूचित करते हुये शृङ्गार के औचित्य को सिद्ध करता है।

दूसरे लोगों के संबोधन- सूत्रधार को उनके अनुचर 'भाव' शब्द से तथा सूत्रधार अपने अनुचरों को मार्ग शब्द से अभिहित करते हैं। नटी और सूत्रधार एक दूसरे को आर्य और आर्या कहकर पुकारते हैं। समान गुण वाले व्यक्ति को मित्र वाचक शब्द से भी अभिहित किया जाता है। तथा उसका नाम भी लिया जाता है। पुत्र, शिष्य तथा छोटे भाई से 'पुत्र', 'वत्स', शब्दों द्वारा संबोधन के साथ बातचीत की जाती है। 'तात' शब्द

मैकवेथ के उस दृश्य से ली गई हो जिसमें झारपाल के दृश्य में दरवाजे पर तीन बार दस्तक दी जाती है या चुडैलों के तीन की सख्या में शाप देने की परम्परा से या उन्हीं चुडैलों की उस समय की अभिचार मन्त्रणा से जब मैकवेथ उनके पास जाते हैं अभिशाप को दूर करने की यह पद्धति अपनाई गई हो। अभिशाप को दूर करने का एक और ठपाय बतलाया जाता है- मैकवेथ जितना अभिशाप मस्त माना जाता है उतना ही 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' पुण्यदायक समझा जाता है। अतः यदि कभी मैकवेथ का नाम घोखे से मुह से निकल जाय तो मर्चेण्ट आफ वेनिस की कुछ पक्किया दोहरा देनी चाहिये विशेष रूप से सोरेजों की वे पङ्क्तिया जिससे वह प्रस्थान काल में पोर्शिया को आशीर्वाद देता है- 'शुभ विचार और आनन्ददायक घडिया सदा तुम्हें प्राप्त होती रहें।' इस प्रकार मैकवेथ की अकल्याण कारिणी शक्ति का मर्चेण्ट आफ वेनिस प्रतिरोधी माना जाता है।

यह भी रामञ्ज के इतिहास की एक पर्याप्त मनोरञ्जक घटना है- सन् १६७२ में मैकवेथ इंग्लैण्ड से बाहर पहली बार खेला गया था। एक ठब अभिनेता मैकवेथ का अभिनय कर रहा था। उसको डकेन के अभिनय करने वाले के हाथों एक बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा था। उस अभिनय में डकेन के अभिनेता की पत्नी सेडी मैकवेथ का अभिनय कर रही थी। एक शाम को हत्या का दृश्य विशेष रूप में खूनी था। परदे के मुलावे पर डकेन उपस्थित नहीं हुआ। बाद में ज्ञात हुआ कि उसमें वास्तविक तलवार का प्रयोग किया गया था। मैकवेथ को डकेन की पत्नी से प्रेम हो गया था अतः उसने डकेन की वास्तविक हत्या कर दी थी। उस हत्या के अपराध में मैकवेथ को आजीवन कारावास मिला था।

आजकल के सिनेमा चित्रों में तो इस मर्दादा का सर्वथा अतिव्रमण कर दिया गया है और भयानक हत्या, युद्ध, अत्यन्त उत्तेजक दृश्य, राजविप्लव, देशविप्लव इत्यादि का खुलकर प्रदर्शन होता है। तारों के ढेर के ढेर स्वतन्त्रता पूर्वक दिखलाये जाते हैं। वयस्क (एडल्ट) फिल्म का प्रतिवन्ध निस्सन्देह इस बुराई को रोकने में सर्वथा अशम है।

दूसरे प्रकार की नाट्य वर्जना अरलील दृश्य विषयक है जिसमें सेक्स का खुला प्रदर्शन निषिद्ध माना जाता है। इस प्रकार के प्रदर्शनों में साथ सोना, अधरपान, चुम्बन यरा तक कि सुरत व्यापार दिखलाने में सकोच नहीं किया जाता। इस प्रकार के दृश्य लज्जाजनक होते हैं, उनसे एक दबाव पैदा होता है जो तत्सास्वादन में व्यापार उत्पन्न करता है। कुछ लोगों ने इस प्रकार के दृश्यों की बकालत की है। उनका कहना है कि स्वाभाविकता के लिये इन दृश्यों का दिखलाना जाना अनिवार्य है। उनका मत है कि अरलीलता वहीं पर होती है जहाँ इस प्रकार के दृश्य ऊमर से दूमे हुये जान पड़ें। इसक प्रतिमूल अरा इस प्रकार के दृश्य कथानक के स्वाभाविक विश्राम में सहायक होते हैं, स्वाभाविक रूप में आते हैं उनके न दिखलाने में कथानक बिगड़ जाता है यहाँ इनका दिखलाने में कोई दोष नहीं। दूसरी ओर से कहा जाता है कि यह पारजात्य देशों का अन्यायपूर्ण है जिसे

हमारा समाज सहन नहीं कर सकता। इनके प्रदर्शन से युवकों के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि माता पिता भी बच्चों के साथ स्वतन्त्रता पूर्वक निस्मझेच इन दृश्यों को देख भी नहीं सकते। जहां तक स्वाभाविकता का प्रश्न है समाज में चुम्बन, आलिङ्गन इत्यादि कभी भी खुले रूप में नहीं किया जाता। लोक में जैसा व्यवहार प्रचलित है वैसा दिखलाना स्वाभाविकता है। इनको खुले रूप में दिखलाना स्वाभाविकता के विरुद्ध है।

नीरसता उत्पन्न करने वाले कुछ दृश्य नाट्य वर्जनाओं में सम्मिलित किये गये हैं कुछ स्वभावतः समझे जाकर उद्देश्य की पूर्ति कर देते हैं उनका रंगमञ्च पर प्रदर्शन आवश्यक नहीं होता है, ऐसे दृश्यों को या तो दर्शकों की समझ के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये या उनकी सूचना दे दी जानी चाहिये। इस प्रकार के दृश्यों में लम्बी यात्रा विवाह, भोजन इत्यादि आते हैं। वस्तुतः लम्बी यात्रा जहां चमत्कार जनक हो वहां दिखलाई जा सकती है जैसे पर्वतों के मनोरम दृश्य दिखलाने के लिये इस प्रकार की यात्रायें कुछ लम्बी दिखला दी जाती हैं। विभिन्न आचार विचारों के प्रदर्शन के लिये कभी कभी विवाह और भोजन के लम्बे दृश्य दिखला दिये जाते हैं। वस्तुतः प्राचीनाभिमत नाट्य वर्जनायें अब बहुत कुछ अपना महत्व खो चुकी हैं। फिर भी औचित्य का ध्यान रखना निदान्त अपेक्षित है, अन्यथा समाज की विशृङ्खलता और सदाचार के पतन के लिये नाट्य जगत उत्तरदायी होगा इसका ध्यान रखना प्रत्येक कलाकार का कर्तव्य है।

नाट्यसिद्धि

सारा उद्योग सफलता के लिये ही किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का मशग्य यह देखना अवश्य होता है कि क्या उसका उद्योग सफल हुआ है या नहीं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो दर्शकों की सन्तुष्टि है। उसके सन्तुष्ट हो जाने पर ही यह माना जाता है कि नाटक सफल हो गया है। नाटक के मार्ग में बाधायें भी आती हैं जिससे सिद्धि सिद्धि हो जाती है। इन बाधाओं को ओर आचार्य का ध्यान गया था।

दर्शक के सन्तोष का निर्णय उसकी प्रतिक्रिया से होता है। अभिनय देखते समय कभी दर्शक मुस्कराता है कभी अट्टहास करता है कभी प्रशंसा वाचक कोई शब्द बोल देता है— जैसे 'बहुत अच्छे' 'क्या खूब' इत्यादि कभी रोमाञ्चित हो जाता कभी करुण हो जाता है तथा उसकी आंखों में आसू आ जाते हैं। जब कोई उस प्रकार का अभिनय होता है तब दर्शकों की ओर से एक ठहाका लगता है, कभी सारी रंगभूमि में प्रतिक्रिया जन्यशोर मच जाता है। इससे सिद्धि की सोमा जानी जा सकती है। दर्शक बहुत प्रसन्न होकर विशिष्ट अभिनेताओं को चादर, शाल इत्यादि बस्तु भेंट करते हैं। कभी कभी प्रसन्न होकर रंगमञ्च को ओर रुपये पैसे फेंकने लगते हैं कोई अगुठी देता है। कभी कभी दर्शक पुरस्कार की घोषणा करते हैं। ये सब सिद्धि की निर्णायक और दर्शकों की सन्तोष सूचक

चेष्टायें हैं।

ऊपर मानुषी सिद्धि का सक्षिप्त परिचय दिया गया। इसके समकक्ष सिद्धि का एक और रूप है— अभिनय के समय किसी प्रकार की आवाज न होना, किसी प्रकार की गडबडी न होना। यह इस बात का सूचक है कि दर्शक अभिनय में गहरी रुचि ले रहा है, दर्शक कक्ष दर्शकों से भरा रहता है, सभी दर्शक मन्त्र मुग्ध होकर रसास्वादन में सल्लग्न रहते हैं। ऊपर वाणी और शरीर की जिस प्रतिक्रिया का परिचय दिया गया है वह सामान्य मानवों की प्रतिक्रिया है जो लोग शोर शराब से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। अतः उभे मानुषी सिद्धि कहा जाता है। इसके प्रतिकूल गम्भीरता और शान्ति एवं निरशब्दता दर्शकों के दैवी गुण हैं। अतः आचार्यों ने इसे दैवी सिद्धि कहा है।

नाट्य में विघ्न

नाट्य में तीन प्रकार के विघ्न घटताये गये हैं— (१) दैवी विघ्न जो प्राकृतिक तत्वों की ओर से आते हैं (२) आत्मसमुत्थ विघ्न जो स्वयं अभिनेताओं के दोषों से उत्पन्न होते हैं और (३) जो शत्रु की ओर से आते हैं।

दैवी विघ्नों पर मानव का वश नहीं होता। तेज वायु चलने लगे, आग लग जाये, भयानक वर्षा होने लगे दर्शक कक्ष में शीथी, साप या चींटिया आ जाय, बिजली कड़कने लगे, मण्डप गिर जाय, कोई शिकारी जानवर अपने शिकार का पीछा करते दृष्टे अन्दर घुस आये। इन सारे विघ्नों से दर्शकों में हहर्वाग मच जाता है और अभिनय जम नहीं पाता। (भरत मुनि ने मञ्जूत एव टिकाऊ रंगशालाओं के निर्माण का उपदेश दिया है। उन रंगशालाओं में विघ्न अकिञ्चित्कर होते हैं। ये विघ्न बड़ा लागू होते हैं जरा पर अस्थायी रूप से रगमञ्च बनाकर दर्शकों को खुले में बैठने की व्यवस्था की जाती है।)

शत्रु के द्वारा उत्पादित विघ्न

महत्ता प्राप्त करने के लिये प्रतिस्पर्धायें तो होती ही हैं। नाटक सिद्धि दर्शकों में बराबरी जम जाने से होती है। विरोधी पक्ष सर्वदा यही चाहा करते हैं कि किसी प्रकार उसके विरोधी का प्रदर्शन ठूँट जाये। इसीलिये कुछ लोग जानबूझकर अभिनय को ठूँटाने का प्रयत्न किया करते हैं। उनके लिये वे अनेक उपाय निकालते हैं— चारों ओर जोर जोर से चीखना, फुस्फुसाहट के स्वर में इधर उधर रंगशाला के अन्दर बातचीत करना, रंगे लगना, जोर जोर से तालिया बजना, रगमञ्च की ओर गोबर, घास और छोटे छोटे पत्थर के टुकड़े फेंकना, चींटिया और मक्खियों के छत्ते फेंकना ये सब शत्रु की ओर से आने वाले विघ्न हैं। बुद्धिमान लोग उन विघ्नों को ईर्ष्याद्वेष, वितोष एव पक्षपात जन्य मानते हैं। इसके लिये निरवत भी चलती है। विरोधी पक्ष के लोग ऐसे देखकर कुछ लोगों को निपुस्त कर लेते हैं जिनका नाम शत्रुपक्ष के अभिनय में विघ्न डालना होता है।

आत्मसमुत्थविघ्न

अभिनेताओं के अपनी ओर से उत्पन्न होने वाले विघ्न भी अनेक होते हैं— अभ्यास की कमी के कारण अभिनय में स्वाभाविकता नहीं आ पाती, चलना फिरना घूमना गलत ढंग से होता है और भूमिका ठीक नहीं बन पाती। पात्र याद किये हुये संवाद को भूल जाते हैं, और का और बोल जाते हैं। (जैसे विक्रमोर्वशीय में लक्ष्मी की भूमिका में उर्वशी को अपने प्रेमी का नाम विष्णु बतलाना चाहिये या जिसके स्थान पर वह पुरूरवा का नाम बोल गई।) स्मृति भ्रंश हो जाता है, इसी प्रकार के अन्य भी विघ्न हैं जैसे जोर से विल्लाने से आर्तनाद, हाथों का त्रुटिपूर्ण संचालन, अत्यधिक हसना रोना, त्रुटिपूर्ण स्वर, अभूषणों को ठोक रूप से न पहिनना, चींटों, खटमल इत्यादि कीड़ों की बाधा, मुकुट का गिरना, अभूषणों का गिरना, उच्चारण दोष, इस प्रकार के दोष अभिनय के सौन्दर्य को पूर्ण रूप से नष्ट कर देते हैं। कभी कभी शत्रु पक्ष से मिलकर भी अभिनेता अपने उच्चारण इत्यादि से अभिनय को बिगाड़ देते हैं। अभिनेताओं की शर्माती आवाज और बाधों का गलत प्रयोग अभिनय को पूर्ण रूप से नष्ट कर देते हैं।

दो विघ्न अत्यन्त विघातक होते हैं जिनका कोई उपाय नहीं हो सकता एक तो दैवी प्रकोप दूसरे नालिका से जल का गिर जाना। (प्राचीन काल में घड़िया नहीं थीं, किन्तु अभिनेताओं का समय बढ़ रूप में अभिनय अनिवार्य था, समय से ही अभिनेताओं का रमण पर प्रवेश होता था। यदि साण जल एक दम वह जाता तो समय का पालन नहीं किया जा सकता था। अतः अभिनय पूर्ण रूप से बिगड़ जाता था। मुसलमानी काल में नालिका का कार्य छोटे घड़े में सुराख कर उससे जल टपकाकर उसमें दिया जाता था। छोटे घड़े को घड़ी कहा जाता था। इसीलिये समय निर्देशक की सजा घड़ा पड़ गई।) भारत ने इसी प्रकार आत्मसमुत्थ विघ्नों का विस्तार पूर्वक निरूपण किया है।

भारत ने कतिपय अन्य विघ्नों का भी उल्लेख किया है। कभी कभी पूर्वगम में अपेक्षित देवता के स्थान पर कियी अन्य देवता की स्तुति की जाने लगती है। कभी नाट्यिक नाटककार के स्थान पर किसी दूसरे का नाम बोल दिया जाता है, कभी एक नाटक के अभिनय करने में किसी अन्य नाटक का कोई अंश बोला जाने लगता है। कभी कभी अभिनेता शास्त्रविहित भाषा, वेश और देश के नियमों को अवहेलना कर जाते हैं। कभी अभिनेता ठीक समय पर उपस्थित नहीं हो पाते। अतः भारत का निर्देश है कि इन सभी दोषों को दूर करने के लिये प्रत्येक बात लिखी होनी चाहिये उसी के अनुसार कार्य करना चाहिये। अन्यथा अभिनय निश्चित रूप से बिगड़ जाता है।

भारत ने विस्तार पूर्वक विघ्नों और दोषों का निरूपण किया है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि दोष रहित तो कुछ हो ही नहीं सकता। दोषों को बचाने का

प्रयत्न करना चाहिये। थोड़ा बहुत दोषक्षम्य भी होता है। किन्तु इतने दोष नहीं आ जाने चाहिये कि नाटक प्रभाव हों एव अनास्वाद्य हो जाय।

परीक्षा

परीक्षक के बाञ्छनीय गुणों का नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया गया है जिसको देखने से ज्ञात होता है कि भद्र की दृष्टि में सर्वगुण सम्पन्न एव आदर्श चरित्र वाला व्यक्ति अपेक्षित होता है। उसमें व्यक्तिगत चरित्र की भी विशेषता होनी चाहिये और उसे सभी शास्त्रों का ज्ञान भी होना चाहिये। संक्षेप में जिसका चरित्र बहुत ऊँचा हो, जिसका जन्म उच्च वंश में हुआ हो, शान्त व्यवहार हो, अध्ययन में परिश्रम किया हो, जिन्हें धर्म और धर्म को प्राप्त करने की उत्कट इच्छा हो जो पक्षपात रहित हो, आयु के अधिक भाग को भोग चुका हों नाट्यकला में और उसके सभी अंगों में निपुण हों, सावधान हों, ईमानदार हों, ठोठेबजा के वशीभूत न होते हों अच्छे खिलाडी हों, सभी चार प्रकार के वाद्यों में निष्णात हों, बहुत की गुणवान हों, वसाभरण के विषय में विशेषज्ञ हों, शूद्रा की सभी विधियों से परिचित हों, भाषाओं के नियमों को जानते हों, चारों प्रकार की अभिनय-कला के प्रदर्शन के विशेषज्ञ हों, व्याकरण, छन्द इत्यादि सभी शास्त्रों के विशेषज्ञ हों, विभिन्न कलाओं और दस्तकारी में निपुण हो चित्रकृतियों के समझने की उनमें सुन्दर भावना हो, और मनोवैज्ञानिक स्थितियों के पारखी हों, अहापोह में निपुण हों, वाद विवाद में दक्ष हों, दोनों को निकालने और गुणों को महत्ता देने की निपुणता से परिपूर्ण हों, प्रसन्न लोगों को देखकर प्रसन्न दुःखी लोगों को देखकर दुःखी दोनों को देखकर दोनों हो जाता हो ऐसा व्यक्ति नाट्य परीक्षा में यत्न हो सकता है, उसे नाट्य परीक्षा का कार्य सौंपना चाहिये। क्या ऐसा कोई व्यक्ति सम्भव है? उत्तर होगा नहीं। विशेष रूप से लोगों को मनोवृत्तियाँ भिन्न होती हैं। ज्ञान के क्षेत्र असीमित हैं और जीवन की सीमा बहुत छोटी है। उत्तम, मध्यम, अयम सभी प्रकार की प्रकृति के व्यक्ति सभा में उपस्थित होते हैं। कोई एक व्यक्ति सभी का अकेले निर्णय नहीं कर सकता। तरण लोग काम वासना के प्रदर्शन से, विद्वान लोग दार्शनिक सिद्धान्तों से, धन के इच्छुक धन के दृश्यों से विरागी मोक्ष की बातों से, वीर लोग वीरता के भयानक दृश्यों से मुग्ध से, बृद्ध लोग पुराण की कथाओं से, बच्चे स्त्रियाँ अशिक्षित लोग हास्य जनक दृश्यों से सन्तुष्ट होते हैं। सारांश यह है कि एक ही व्यक्ति सभी का निर्णय नहीं कर सकता।

उक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुये भारत ने परीक्षा तथा विवाद निर्णय के लिये अनेक व्यक्तियों को नियुक्त करने का विधान किया है। नाट्य मन्त्रालयों में असौपार्जन इत्यादि अनेक कार्यों से प्रतिस्पर्धा होती ही है। अतः परीक्षक को नाट्यशास्त्र के निकट उचित दूरी पर मुखरसन पर बैठकर नाट्यप्रिया का अवलोकन करना चाहिये। निर्णायक उसी को नियुक्त किया जाना चाहिये जो उस विषय का निपुण व्यक्तित्व है। यह क्रिया

का परीक्षक यज्ञवेत्ता, नृत्य का निर्णायक नर्तक छन्दों का छन्दशास्त्र का ज्ञाता, पाठ्यभारा का व्याकरण का विशेषज्ञ निर्णय करे। रंगमञ्च पर अन्य शस्त्र के सज्जालन की परीक्षा अन्तरास्त्र कर्ता, सौन्दर्य की परीक्षा के लिये चित्रकार, कर्मोपचार का परीक्षा के लिये वेरया, स्मरनायना के लिये गान्धर्व शास्त्र का विशेषज्ञ, व्यक्तिगत शान और ऐश्वर्य प्रदर्शन के लिये राजा, शिष्टाचार प्रदर्शन की परीक्षा के लिये सेवक, सामान्य अभिनय के लिये कुशल अभिनेता, अनन्दुर की शानशौकत की परीक्षा के लिये राजा, स्वरताल इत्यादि की परीक्षा के लिये कोई विशिष्ट समीक्षक नियुक्त किया जाना चाहिये। भरत ने इस प्रकार की विभिन्न तत्वों की परीक्षा के लिये बड़ी लम्बी सूची दी है। इससे ज्ञात होता है कि वे नाट्यकला को परिपूर्ण बनाने के लिये कितने उत्सुक थे। नाट्य के लिये उपयोगी विभिन्न तत्वों की परीक्षा विभिन्न विशेषज्ञों से कराई जाती थी। उनका आग्रह था कि क्योंकि नाट्य में सभी प्रकार के शालीय सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है, सभी का निर्णय कोई एक व्यक्ति कर नहीं सकता अतः अलग अलग विभिन्न तत्वों की उत्तमता का निर्णय विभिन्न व्यक्तियों में कराया जाना चाहिये। वे परीक्षक नाटक के अभिनय में आने वाली कर्मियों का भी निर्णय करे और विशेषतायें भी बतलायें। भरत के निर्देशों को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय सभी विषयों के ठीक व्यवस्थापन के लिये अनेक पुस्तकें विद्यमान थीं, क्योंकि उन्होंने विभिन्न विषयों की पुस्तकों के आधार पर नाट्यपरीक्षा का निर्देश दिया है। कर्मियों और विष्णों का भी उल्लेख कर दिया जाना चाहिये। किन्तु आकस्मिक दैवी विष्णों और शत्रु पक्ष द्वारा पैदा किये हुये विष्णों की उपेक्षा की जानी चाहिये। उनके अभिलेख की आवश्यकता नहीं है। किन्तु नाटक की और अभिनेताओं की कर्मियों का ठीक रूप से निष्पक्ष होकर अभिलेख किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

पताका टान

प्रतियोगिता में भूषण पक्ष को पताका प्रदान की जाती थी जैसी कि आजकल ट्राफी प्रदान करने की प्रथा है। वाण में भाम के नाटकों को पताकाओं से युक्त एक राजमहल की उपमा दी है। इस पताका शब्द का अभिप्राय प्रायः नाटकों में प्रयुक्त होने वाले पताका नामक ग्रामद्विक कथानक से लिया गया है। किन्तु पताका का प्रयोग भाम के नाटकों की कोई पृथग्भूत विशेषता नहीं है। यदि देखा जाय तो भाम के नाटकों में अनिवार्यतः पताका का प्रयोग है भी नहीं। वाण का अभिप्राय यही ज्ञात होता है कि भाम की प्रतिप्रयोगिताओं में पताकायें प्राप्त हुई थीं और हमने भाम की नाटककार के रूप में प्रतिज्ञा और यश में अभिवृद्धि हुई थी। इमरॉलिये कालिदास ने भी अपने से पूर्ववर्ती महान नाटककारों में भाम को पहला स्थान दिया है।

पताका प्रदान करने का अधिकार राजा को था। परीक्षक सर्वोद्देश्य परीक्षा कर और पताका के अभिप्राय का निर्णय कर राजा के पास अपनी सम्पत्ति भेंट देते थे और तदनुसार

राजा उस निर्णय का आदर कर सम्भवत किसी आयोजन में पताका प्रदान करता था। अपनी सस्तुति में निर्णायक गुणों और अवगुणों दोनों का उल्लेख कर देता था और पताका उसी को प्रदान करने की सस्तुति करता था जिसके गुणों की अपेक्षा दोष कम होते थे तथा दूसरों की अपेक्षा भी जो अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होते थे।

कभी कभी निर्णय करने के समान स्तर के दो नाटक सामने आ जाते थे। अतः निर्णायक मण्डल दोनों नाटकों को अपनी शिफारिश के साथ राजा के पास भेजे देता था, राजा दोनों का प्रदर्शन देखता था तथा उसे अधिकार प्राप्त था कि वह दोनों में जिसको चाहे पताका भेंट कर दे। कभी कभी ऐसा भी हो जाता था कि राजा स्वयं निर्णय नहीं कर पाता था कि पताका किसे दी जाय। ऐसी अवस्था में भरत का निर्देश है कि पताका दोनों को प्रदान कर दी जानी चाहिये।

पताका प्रदान करने के लिये विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों की तो राय ली ही जाती थी, विशेष रूप से देखा जाता था कि नाटक के प्रदर्शन में उपलब्धियाँ क्या हैं, नाटकीय प्रस्तुतीकरण में विभिन्न तत्वों का समन्वय किस मात्रा में हुआ है, अभिनेताओं के चुनने में भूमिका के अनुसार उनके अंगों का आकार प्रकार उपयुक्त है या नहीं, उनकी सवाद बोलने की स्वाभाविकता में कोई कमी तो नहीं, रस निष्पत्ति किस मात्रा में सफल रही है तथा अभिनेता दर्शकों को किस सीमा तक सन्तुष्ट कर सके हैं।

भरत ने उन तत्वों पर भी प्रकाश डाला है जिन पर परीक्षकों का विशेष रूप से ध्यान जाना चाहिये। ध्यान देने योग्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है— सामञ्जस्य जिसके लिये भरत ने 'सम' शब्द का प्रयोग किया है। सामञ्जस्य में नाट्याङ्गों, समय की व्यवस्था, नर्तकों की गतियों, चरणन्यासों, ध्रुवा संगीत, वाद्य ताल, लय इन सब की संगति तो अनिवार्य है ही साथ ही इन्हीं के मेल में अभिनेताओं की अंगसञ्चालन की क्रिया पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। यह भी देखना चाहिये तबले पर थाप भी समस्त इतर तत्वों के मेल में है या नहीं। समत्व (सामञ्जस्य) के अभाव में अभिनय जमता नहीं। जब सभी तत्वों की समता होती है संगति में एक समा भी बध जाता है जिससे दर्शक रस प्राप्त में स्वयं को खाँ देता है।

भरत ने नर्तकों के शारीरिक गठन के लिये भी कुछ निर्देश दिये हैं। इसके साथ ही पाठ्य की विशेषताओं तथा रस निष्पत्ति पर भी ध्यान देने का निर्देश दिया है।

सिद्धि प्रकरण में भरत ने जिस दूसरे तत्व का विशेष रूप से उल्लेख किया है वह है कालक्रम का विभाजन। कौन सा रस किस समय उपयुक्त रहता है और किस प्रकार के नाटक का आयोजन दिन के किस भाग में या रात्रि में किस समय करना चाहिये यह सब बतलाकर आचार्य ने कहा है कि समय स्थान और नाट्यकृति को देखकर तथा मनोवैज्ञानिक अवस्था को देखकर नाटक प्रदर्शन का आयोजन करना चाहिये। किन्तु इसके साथ ही आचार्य के आध्यात्मिक आवरणकता पर भी विचार किया है। जब सयोजक या

प्रशिक्षण में गृह आदेश दे दे तब समय का बिना विचार किये निस्सङ्कोच अभिनय में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

अभिनेता की विशेषतायें

अभिनय में अभिनेता की योग्यता सिद्धि के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। प्रदर्शन की समृद्धि उसी पर निर्भर है। आचार्य ने अभिनेता ये गुण बतलाये हैं— बुद्धिमत्ता, शक्ति, शारीरिक सौन्दर्य, समय और लय ताल का ज्ञान, चित्तवृत्तियों और मनोवैज्ञानिक अवस्था को समझना और उसमें रुचि लेना, ठीक आयु, वस्तुओं के ज्ञान के लिये उत्कृष्ट (कौतूहल) ज्ञान और कला से परिचय और उनकी धारणा में रुचि, नृत्य के साथ कंठ संगीत, रंगमञ्च पर जाने से घबराहट को दवाने की शक्ति और उत्साह। इन गुणों वाला अभिनेता उच्चकोटि के अभिनय में समर्थ होता है।

प्रयोग

नाटक को रुचिकर बनाने वाला दूसरा तत्व है प्रयोग की विशेषता। वाद्ययन्त्र अच्छे हों और वादक लोग वाद्यकला में निपुण हों, संगीत का आयोजन उच्च कोटि का हों, सवादों में पात्रों का उच्चारण मनोहर हो और शास्त्रीय कर्म के साथ सामञ्जस्य हो तो निस्सन्देह नाटक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है।

समृद्धि

यह तत्व भी नाटक प्रयोग में आवश्यक माना जाता है। चमकदमक तो होनी चाहिये। आभूषणों और वस्त्रों की उत्तमता और उनके विन्यास की विलक्षणता एवं बनावट सजावट (मेकअप) प्रदर्शन में भव्यता उत्पन्न कर देते हैं।

जहाँ अच्छे पात्र, उत्तम प्रयोग और समृद्ध सजावट ये सभी तत्व सघटित हो जाते हैं वहाँ उच्चकोटि के प्रदर्शन में सन्देह नहीं रह जाता, नाट्यसिद्धि के लिये इस प्रकार का समायोजन सफलता की पहली सीढ़ी है।

